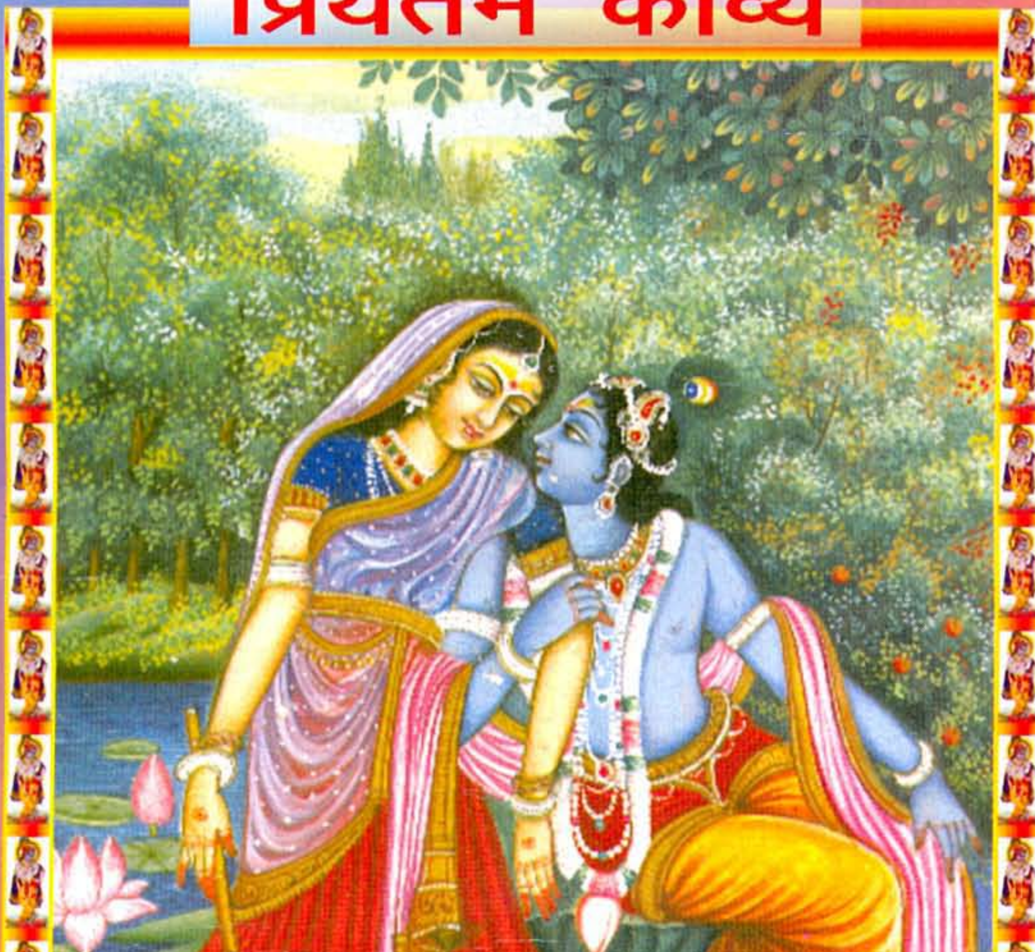
महाभाव-दिनमणि
श्रीराधाबाबा

षष्ठम खण्ड (प्रथम भाग)

प्रियतम काव्य



पृष्ठ संख्या
001-100
तक

टीकाकार : साधु कृष्णप्रेम

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

षष्ठम खण्ड

(प्रथम भाग)

प्रियतम काव्य

(षष्ठम शतक तक)

छन्दार्थ एवं विस्तृत व्याख्या सहित



साधु कृष्णप्रेम

प्रकाशक :
मुकुन्द गोस्वामी,
राधामाधव प्रकाशन,
षोडशगीत मन्दिर, अनाथालयके पीछे
बीकानेर (राजस्थान)

•

पुस्तक प्राप्तिस्थान
मुकुन्द गोस्वामी,
गोस्वामी चौक, बीकानेर (राजस्थान)
पिन ३३४००१
फोनः ०१५१–५२४३५३

•

•

अक्षय तृतीया, सं.२०५८वि. श्रीकृष्ण संवत् ५२२५
(२६, अप्रेल, सन् २००१)

•

प्रथम प्रकाशन ५०० प्रतियाँ

•

न्यौछावर रुपये २००.००

•

मुद्रक :

श्रद्धांजलि–सुमन

हरि अनन्त हरि-कथा अनन्ता - हरिकथाकी भाँति हरिभक्तोंकी जीवनगाथा तथा उनके भावोंके रसोदधिमें भी डूबनेके बाद कोई न उबर पाये तो आश्चर्य ही क्या है ? देवाधिदेव भगवान् शंकर एक बार गोलोकधाम पहुँचकर गोलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका रसमय लीलागान करने लगे। गाते-गाते ही वे ऐसे तल्लीन हुए कि स्वयं ही रसनदीके रूपमें परिवर्त्तित होकर प्रवाहित हो चले। इसी तरह एक बार भगवती पार्वतीके प्रबल अनुरोधसे भगवान् शंकरने श्यामसुन्दरकी रासकथा सुनाना प्रारम्भ किया। इस वार श्रोताके रसलीन होनेकी बारी थी। जगन्माता इस रसकथामें सुध-बुध ही बिसार बैठीं। अब हुँकारी देते रहनेका दायित्व तरुस्थित शुकराजको सम्हालना पड़ा अन्यथा भगवान् त्रिपुरारि कथा कैसे चालू रखते ? यह तो रसकथाका प्रकृत चमत्कार ही है कि इसका वक्ता कहते-कहते ही, लिखते-लिखते ही उसीमें लीन हो जाता है।

यही पुनरावृत्ति हुई गत मार्गशीर्ष कृष्ण ९, सं.२०५६ वि. बुधवार (१ दिसम्बर, १९९९ ई.)के दिन जब इस ग्रन्थके व्याख्याकार लेखक साधु कृष्णप्रेमजी अपने पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी जीवनगाथा – **महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा (षष्ठम खण्ड) प्रियतम-काव्यकी** रसमयी टीका लिखते-लिखते ही चिर भावनिद्रामें तल्लीन हो गये। उनके प्राण-पक्षी इस नश्वर भौतिक देह-नीड़को त्यागकर चिर लक्ष्य – अपने पू.गुरुदेवके चरणोंमें स्थान प्राप्त करनेको आतुर हुए उड़ चले।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके हृदयसे निःसृत इस परम रसमयी काव्यरचना **प्रियतम-काव्यके.** कुल ११ शतकोंमें से संयोग-खण्डके प्रथम आठ शतकोंकी ही व्याख्या लेखक द्वारा सम्पन्न हो पाई थी कि दीपावली (७.नवंबर,१९९९ई) को उन्हें हृदयाघात हुआ। इस घोर कलिकालमें **प्रियतमकाव्य**-सरीखी लोकोत्तर रसमयी कथाकी टीका करके उसे सर्वसाधारणके समझने योग्य बनाकर प्रस्तुत करना सचमुच ही एक दुष्कर चुनौती रही। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा भूतलमें अपने जीवनकालमें लेखकको ऐसे दुष्कर कार्योंमें अपनेको झोंक पड़ते देखकर प्रायः हँसकर करुणापूर्वक कहा करते थे – **'मूसक बिल प्रविसत नहीं, पूँछ बाँधिये छाज'** तात्पर्य यह कि 'इस बालक (लेखक)की चेष्टाएँ उस चूहेके समान हैं जिसका बिलके अति छोटा होनेके कारण स्वयंका तो प्रवेश करना संभव ही नहीं हो पा रहा है, पर कैसे आश्चर्यकी बात है कि यह अपनी पूँछमें छाज बाँधे अर्थात् अपने अनेकों अनुयायी-अनुगामीजनोंके सहित इस रसमय मार्गमें प्रवेश चाहता है।' पर लेखक अपने बलपर थोड़े ही असम्भव लगने–जैसे कार्योंमें प्रवृत्त होता था, उसे तो चरणाश्रय-बल प्राप्त था अपने पू.गुरुदेवका, तथा उस बलको ग्रहण करनेके बाद कौन ऐसा कार्य है जो दुष्कर रह जाता है ?

हृदयाघात होनेके बाद लेखक साधु कृष्णप्रेमजीके मनमें अपने पू.गुरुदेवकी इस कालजयी रचना **प्रियतम-काव्यकी** व्याख्या पूरी करके प्रकाशित कर देनेकी कैसी छटपटाहट थी, इसे तो उनके हृदयस्थित उनके प्राणाराध्य पू.गुरुदेव ही जानते थे, उनके निकटस्थ शिष्यों अथवा मुझ सरीखे सेवकोंको तो उसकी एक झलक ही मिली थी। उन्होंने इस सम्बन्धमें मुझे लिखे पत्रमें आदेश दिया था – **'शरीरकी स्थिति ऐसी है। मेरे पास दिसम्बरतकका समय है नहीं। .... नवम शतक एवं शेष जो भी ब्रजसम्बन्धी (पू.गुरुदेव-रचित) लीलापद हैं, सब छापने हैं। टीकाएँ नहीं कर पाऊँगा। सब मूल या तुम्हारे द्वारा किये गये भावार्थ, जो भी हैं, उन्हें तनिक संशोधितकर छापेंगे। परन्तु दोनों खण्ड सम्पूर्ण (प्रियतमकाव्यके दोनों - संयोग खण्ड तथा वियोग खण्ड) जीवनकालमें छपा जाना चाहता हूँ। मेरी (आत्मा)इन पुस्तकोंको छपा देखना चाहती है, तभी मृत्युको वरण करूँगा। .... दूसरे खण्डका काम भी समझ लो। जीवनके क्षण अल्प हैं। घबडानेकी बात नहीं है। परन्तु इस जीवनका कार्य अधूरा नहीं छूट जावे' – कृष्णप्रेम।**

प्रभुकी कृपाके बलपर ही मेरा विश्वास था कि 'पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने जब इस लोकोत्तर कार्यके लिये लेखक साधु कृष्णप्रेमजीको प्रवृत्त किया है तथा आठ शतकोंकी व्याख्या भी आप द्वारा निष्पन्न हुई है तो पू.श्रीराधाबाबा आपको आयु भी देंगे; **प्रियतमकाव्यका** शेष कार्य (नवमसे एकादश खण्डोंमें वर्णित वियोगखण्ड) भी आपसे ही सम्पन्न

करवायेंगे।' किन्तु मेरा अनुमानभरा विश्वास धरा रह गया और साधु कृष्णप्रेमजीका लिखना **'मेरे पास दिसम्बरतकका समय है नहीं'** ही सत्य सिद्ध हुआ। उनके प्राण १ दिसम्बर, १९९९ के सूर्योदय होनेसे पहले प्रातः ४.३० पर ही अपने प्राणाराध्यके चरणोंकी ओर उड चले।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके आदेशसे वे सं २०२१ वि. (सन् १९६४ ई.से) ही प्रतिरात्रिमें २ बजेसे ४.३० तक पू.गुरुदेवके सम्मुख पू.श्रीपोद्दार महाप्रभु-रचित षोडशगीतोंका गायन करते थे। लगता है आज भी उनकी आत्माने अपने प्राणाराध्य पू. गुरुदेवकी अपनी अन्तिम षोडशगीत-गायनकी सेवा सम्पन्न करके ब्राह्म मुहूर्त्त प्रातः ४.३० बजे ही इस भूतलसे विदा होना उपयुक्त समझा। लेखक साधु कृष्णप्रेमकी अन्तिम अभिलाषानुसार उनका पार्थिव देह उनके प्राणाराध्य-द्वय पू.श्रीपोद्दार महाप्रभुकी चितास्थली एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी समाधिस्थली गीतावाटिका, गोरखपुर ले आया गया तथा ता.३ दिसंबर, १९९९ई. को पू.गुरुदेवकी चरणधूलि तथा पू.श्रीपोद्दार महाप्रभुकी चितालेपसे लथपथ होकर चिर कृतार्थता-लाभ प्राप्त कर गया। गोरखपुर नगरमें प्रवाहित श्रीराप्तीगंगा नदीमें उनके पार्थिव कलेवरको समारोहपूर्वक जलसमाधि दे दी गयी। पू. श्रीपोद्दार महाप्रभुकी आत्मजा अ.सौ. सावित्रीबाईने अपने धर्मभ्राता साधु कृष्णप्रेमजीके अन्तिम संस्कारके समय जो श्रद्धांजलि अर्पित की, उसे यहाँ अविकल रूपसे दिया जा रहा है –

राधा

आजके सूर्योदयके साथ एक युग अस्त हो गया। साधु कृष्णप्रेम अपने पांचभौतिक शरीरका परित्यागकर चले गये। यह समाचार सुनकर मैं स्तब्ध-सी हो गयी और स्मृतियोंके झुरमुटसे अर्ध शताब्दीसे भी अधिकको स्मृतियाँ उभरकर आँखोंके सामने नाचने लगीं। कृष्णप्रेम – नहीं, नहीं, नटवर मेरे बचपनका साथी था। हम लोगोंने जाने कितनी खुशियाँ और दुःख साथ-साथ झेले, साथ-साथ खेले-खाये, साधनाके पथपर हमराही रहे। उसका खिलखिलाकर हँसना आज भी मेरे कानोंमें गूँज रहा है। सदासे अपने खिलहड़े स्वभावके कारण नटवर जीवनमें कहीं कभी शान्त नहीं बैठा। कुछ-न-कुछ नवीन कर डालनेका उसका स्वभाव आरम्भसे ही रहा। इसी प्रवृत्तिके साथ ही वह बढ़ा साधनाके पथपर भी। परन्तु उसके स्वभावमें अपनी एक विशेषता थी - एक आकर्षण था - वह पूज्य बाबूजी-बाबाको सदैव ही अत्यन्त प्रिय रहा। उसकी उनके प्रति निष्ठा भी अप्रतिम थी, उसका उनके प्रति विश्वास अखण्ड था, उसका उनके प्रति अनुराग हार्दिक था।

आरम्भमें षोडशगीतके गायनमें उसे मानो एक मस्ती-सी चढ़ गयी थी। पूज्य बाबाके संरक्षण-निर्देशनमें वह गाता। बार-बार गाता, गाता ही रहता। अपनी लड़कियों - ललिता, कनक, चित्रा आदिको जब उसने नृत्यकी मुद्राएँ सिखाईं तब काठके पुतलोंके प्रस्तुतीकरणकी मुद्रा देखकर बाबा सदा ठठाकर हँसते, उनका अनुकरण करके दिखाते। बाबूजी भी मुस्कराते हुए नृत्य-संगीतको चावसे देखते-सुनते।

वास्तवमें काठकी पुतली ही बाबा बनाना चाहते थे अपने नटवरको, अपनी अँगुलियोंमें फँसाकर रखना चाहते थे – उसकी गतिविधिकी डोर और मेरा अपना मानना यही है कि बाहरी परिवेशमें परिस्थिति चाहे जो रही हो, वह नटवर न रहकर कृष्णप्रेम बन गया हो, अपने अन्तरकी डोर उसने जरूर अपने आराध्य-युगलके हाथ थमा दी थी।

रात्रिमें दो से साढ़े चार बजेतक षोडशगीतके जगन्मंगलकारी पाठकी योजना बनायी बाबाने नटवरके लिये ही। उन्होंने उसे आश्वासन दिया - 'तू गायेगा, और मैं सुनूँगा। पर्याप्त समयतक यह क्रम चला भी ....। निस्तब्ध निशामें उस क्षण उपस्थित रहते थे - गायक और श्रोताके दो प्राण और नित्य नीलदम्पति। कोई इसे माने, न माने, परन्तु है यह ध्रुव सत्य। उस क्षणके गायकके नित्य श्रोता रहे हैं - रसराज एवं महाभाव स्वयं।

ब्रजभावकी सरस चर्चा करते समय आजका यह साधु कृष्णप्रेम उस समयका नटवर ऐसा तल्लीन होकर

वहाँ बाबाके पास बैठा रहता था मानो उसे अन्य सारी बातें उस समय विस्मृत ही हो जाती थीं। सरस हृदयका स्वामी था वह, भावुक मन, विनोदप्रिय व्यक्तित्व, विशाल देहयष्टि, मनमौजी स्वभावके साथ थी एक विशेषता - उसकी ग्राहकताशक्ति। बातको पकड़ लेता था वह, पर था तो वह भी हम जैसा भोला। उसे भी कहाँ विश्वास था कि उसके मामाजी और उसके बाबा उसे यों ही मँझधारमें छोड़कर चले जायेंगे - भटकनेके लिये अकेला छोड़ जायेंगे।

बाबाको गुरुदेव सम्बोधितकर लिखी गयी उसकी अन्तिम कृति 'महाभावदिनमणि श्रीराधाबाबा' ही सम्भवतः उसके जीवनका शेष कार्य था। अत्यधिक बीमारीकी अवस्थामें भी उसने पूरी लगनके साथ अपनी अर्चना सम्पन्न कर ही ली और वास्तवमें उसकी यह कृति स्वयंमें एक कोश है। जो कुछ उसने बाबासे सुना, समझा, जाना, माना - सबको सहेजकर, एक-एक फूल चुन-चुनकर अपने गुरुदेवके चरणोंमें अर्पित कर दिया, साधकोंके लिये एक अनमोल निधि दे गया।

गत एक वर्षसे कृष्णप्रेमजीकी आन्तरिक इच्छा थी कि वे आकर गीतावाटिकामें रहें और उनके पंचभूत विसर्जित हों - यहाँकी धराके पंचतत्वोंमें ही। समितिने अपनी ओरसे उनकी सुविधाके अनुरूप आवास-निर्माण आदिकी स्वीकृति भी दे दी। लगभग २० दिन पूर्व ही हरिजी खत्रीसे उनको पुनः पत्र लिखवाया था कि वे एक बार आकर सब निर्णय कर लें और जबतक नया घर नहीं बनता वे यहाँ जो उपलब्ध है, उसमें रहें। उनका भी बार-बार पत्र आता रहा कि मैं आऊँगा, आऊँगा और आज आया है उनका निर्जीव शरीर - इस मिट्टीमें मिलने। वास्तवमें उसकी निष्ठामें मिलावट नहीं थी। वह भले न देख सके, परन्तु उसके मामाजी - उसके बाबा तो उसे देख ही लेंगे। उनकी वस्तु उनके अर्पण - उनके दृष्टिपथमें आना ही तो कृतार्थता है। साथ ही एक बात विशेष रूपसे ध्यान देनेकी है - 'सत्संग-सुधा'में बाबाने लिखा है - 'आपका मन जहाँ है, वहीं आप हैं।' इस व्याजसे तो साधु कृष्णप्रेम निश्चितरूपसे यहाँ ही था। उसके अन्तरके कोने-कोनेसे झाँकती रहती थी अपने प्रियकी स्मृतियाँ, उनका लाड-दुलार, कहीं रहकर भी कब भूल सका था वह उन्हें। उसकी स्थिति थी -

'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाजको पंछी पुनि जहाज पै आवै।।'

मनसे तो वह यहाँ था ही, अब ढाँचा भी आ पहुँचा है। अब इसकी अपने पास बुलानेकी व्यवस्था तो करनेवाले करेंगे। वे जानें, कैसे, किस मार्गसे ले जानेकी अभिसन्धि है उनकी। बालक नटवरसे वृद्ध जर्जर साधु कृष्णप्रेमतककी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा शेष हुई।

न जाने कितने पड़ाव आये, कैसी-कैसी कठिनाइयाँ आयीं, विपरीत परिस्थितियाँ आयीं। जन-जीवनने अपने-अपने तराजूपर तौला, निन्दा-स्तुतिके पहाड़-पत्थर रास्तेमें आये; परन्तु कृष्णप्रेम भी था अड़िग चट्टान। उसने अन्यसे प्रकाश स्वीकार ही नहीं किया, इतरकी आराधना नहीं की, अन्यत्र आश्रय ग्रहण नहीं किया, अन्यथा अस्तित्वको सहन नहीं किया - मर-मिटा वह अपनी टेकपर। उसकी स्थिति थी -

'तेरो हूँ, तेरो ही कहाइहौं'

उसकी इस अटल अखण्ड निष्ठाको नमन करती हूँ मैं। मेरा निश्चित विश्वास है - मेरे बाबूजी, मेरे बाबाने उसे अंकमें निश्चित बैठा लिया है। वह तो उनकी ही वस्तु था, उनके पास चला गया।

अपने भाईको झरती आँखोंसे विदाई दे रही हूँ मैं। मेरे प्रति उसका स्नेह, उसकी भावना, उसकी आस्था हृदयको विदीर्ण कर रही है। मेरे जीवनमें भी उसका एक अपना स्थान था। २ वर्ष पूर्व जब 'पद-रत्नाकर'पर उसने कथा कही थी तब यह विचार ही हो रहा था कि पुनः ऐसा आयोजन किया जायेगा, परन्तु वह अवसर नहीं आ सका। मेरे पास टेपके रूपमें सुरक्षित हैं उसके भाव। वह समा गया उसी रसके सागरमें।

जाओ भैया ! सुखसे जाओ और निरवधि निवास करो मेरे बाबूजी-बाबाकी सन्निधिमें। मेरे बाबूजीकी समाधिकी यह पीली प्यावड़ीमें है परिवेष्ठन पीत-पटवारेका और मेरे बाबाके गलहारकी ये अरुणिम गुलाबकी पंखुड़ियाँ हैं आच्छादन आह्लादिनीका। इस पाथेयके बाद और क्या चाहिये तुम्हें ? जाओ मेरे भाई ! सुखसे निरवधि निवास करो उनकी ही संनिधिमें - उनके श्रीचरणोंमें। तुम्हारे लिये शेष अब केवल -

'एक तुम्हारे सिवा न मेरा रहा कहीं भी कुछ सम्बन्ध।'

लेखक साधु कृष्णप्रेमजीकी आत्माकी अदम्य अभिलाषा विलम्बसे ही सही, भगवत्कृपासे अब पूरी होने जा रही है। इस कार्यकी पाण्डुलिपि जब पू. सावित्रीबाईके सम्मुख प्रस्तुत की गई तो विचार जगा कि 'प्रियतम काव्य' की पू. सावित्रीबाईकी हस्तलिपिमें लिखित एवं पू. राधाबाबा द्वारा पढ़कर अनुमोदित की गई प्रति जब उपलब्ध है तथा उसकी फोटोप्रति कम्प्यूटर द्वारा तैयार हो सकती है तो उस प्रतिको ही क्यों नहीं प्रकाशित कराया जावे। पू. राधाबाबाकी इस रचनाका तो एक–एक शब्द मंत्र है तथा विरामचिह्नोंतकको ज्यों का त्यों बनाये रखना ही हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। प्रतिलिपि करते हुए मानवीय भूलसे कुछ न कुछ छूट जाना, परिवर्त्तन हो जाना संभावित होता ही है। पू. सावित्रीबाईके स्वयंके हाथकी लिखी एवं पू. राधाबाबा द्वारा देखकर अनुमोदित की गई प्रतिकी हू–ब–हू फोटोकापीका ही जब इस ग्रन्थमें उपयोग किया जा रहा है तो मुझ अल्पमतिको मूलरचनाकी छेड़छाड़के अपराधसे तो क्षमा मिल ही जायेगी, ऐसी आशा है।

फोटोकापी करना, उसे प्रकाशित पृष्टके अनुरूप आकारित करना तथा साथ ही पू.बाईकी हस्तलिपिको ज्यों की त्यों रखते हुए उसको शृंगारित करना भी अति लगनका, परिश्रमसाध्य एवं कुशलताका कार्य था। मुझ जैसे मूढ़मतिके लिये इसे करना तो रहा दूर, करवा पाना भी दुःशक्य था। किन्तु भगवत्कृपाके लिये क्या असाध्य है ? भाई कुंजबिहारीजी पालड़ीवालके सामने बात चली तो उन्होंने उदार होकर कहा – 'साधु कृष्णप्रेमका कार्य तो मेरा ही कार्य है।' और वे लग गये इसी काममें। फोटोशाप प्रोग्रामको जाननेके लिये किताबें मँगवाईं, जानकारोंसे पूछताछ की, स्वयं अपनी बुद्धि लगाकर कई नये प्रयोग करके कार्यको उत्तमोत्तम बनानेकी चेष्टा की तथा लगभग एक वर्षतक अपने व्यावसायिक दायित्वोंकी अवहेलना करके भी इस कार्यको सुसम्पन्न किया। मैंने इतना कुछ लिख दिया यह भी उनके बडे. संकोचका कारण बनेगा क्योंकि उन्होंने इस कार्यको अपनी पूजा मानकर किया है, तथा उन्हें इस कार्यको करते हुए बहुत आत्मसंतोष मिलता रहा है। उनके नामोल्लेखके लिये वे मेरी भर्त्सना ही करेंगे किन्तु मैंने तो भगवत्कृपाने इसे कैसे सुसम्पन्न कराया है, इसीकी गाथा गाई है।

इस कार्यकी सुसम्पन्नताके लिये कितने ही महानुभाव माध्यम बने हैं। स्वामी कम्पूटर्स के भाई विष्णु स्वामीने जितना परिश्रम किया, बारबार परिवर्त्तन हुए किन्तु कभी अनमनापन भी नहीं दिखाया, उसके लिये तो मैं आभार ही प्रकट कर सकता हूँ। अन्य स्वजनोंका उल्लेख करना तो उन्हें अतिशय खलेगा अतः उनके सहयोगकी बात अपने मनमें ही रखकर मैं भगवान् श्रीराधामाधवके श्रीचरणोंमें अनन्त वन्दन सहित इस विषयको विराम देता हूँ।

दि. २६- ४- २००१

भक्तोंकी चरणधूलि,

मुकुन्द गोस्वामी



वस्तु तुम्हारी तव चरणोंमें अर्पणकर कर रहा प्रणाम । (पृष्ठ ५)

समर्पण

योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च।
तत्सर्वं कृष्ण ते नाथ पादपद्मे समर्पितम्।।

जो मैं हूँ, मेरा जो कुछ है – लोक और परलोक सभी।
कर अर्पित चरणोंमें तव मैं हुआ पूर्ण कृतकृत्य अभी।।

योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिद् विश्वेऽस्मिन्मद्निर्मितम्।
राधे प्राणेशि तत्सर्वं त्वत्पादयोः समर्पितम्।।

जो मैं हूँ, जो कुछ है जगमें दृश्यरूप मेरा निर्माण।
हे प्राणेशि राधिके, सब तव चरण-समर्पित लेना जान।।

योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिद् विश्वं मच्छासनाश्रितम्।
राधे प्राणेशि तत्सर्वं त्वत्पादयोः समर्पितम्।।

जो मैं हूँ, जो कुछ भी मम है आश्रित-शासित सारा विश्व।
राधे हे प्राणेशि, सभी तव चरणसमर्पित सकल निजस्व।।

जो भी, जब भी, जैसे, तुमसे मेरी है माँग हुई, प्रियतम !
है उसे, उसी क्षण, वैसे ही, तुमने पूरी कर दी, प्रियतम !
है सत्य अनन्तकालतक तुम आगे भी, ऐसे ही, प्रियतम !
मेरे प्रति यही स्वभाव नाथ ! अपना बरतोगे ही, प्रियतम !

है किन्तु मुझे धिक्कार, लाख शत बार सर्वदा ही प्रियतम !
न्यौछावर जो मैं हो न सकी केवल सच, तुमपर ही प्रियतम !
'मेरे प्राणोंकी रानी हे ! प्रियतमे ! वल्लभे !' हे प्रियतम !
सम्बोधित तुमसे नित्य हुई, विगलित पर उर न हुआ, प्रियतम !

आँखें न निरन्तर झरीं अहो ! काया पुलकित न हुई प्रियतम !
यह भावरहित मृण्मय बोझा कबतक मैं लिये फिरूँ, प्रियतम !
'है ब्रजलीला उद्देश्य मुझे लानेका इस तनमें' प्रियतम !
कहते हो तुम, फिर क्यों न चलें, खेलें, हो गयी देर, प्रियतम !

(पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी भावमयी वाणी)

श्रीराधा

आत्मकथ्य

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके भावजीवनकी इस श्रुतिरूपा कृति **'प्रियतम काव्य'**के संयोग खण्डके सात शतकोंकी टीकाको पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मैं भावाभिभूत एवं कृतकृत्य हूँ। इस श्रुतिरूपा काव्यके उद्गाता ऋषि थे – पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा, और श्रोता थे – उनके भी गुरुदेव महाप्रभु श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महाराज। यह ग्यारह सौ ग्यारह छन्दोंका ग्यारह शतकोंमे विभाजित काव्य लेखनीके माध्यमसे तो लिखा ही नहीं गया। यह तो मात्र अवतरित हुआ था – छन्दोंके स्वरूपमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके अन्तःकरणमें और उनके द्वारा ही इसे सुनाया गया था – श्रीमहाप्रभु पोद्दार महाराजको। हाँ, जब ब्रजेन्द्रनन्दन नीलमणिकी इच्छासे ही –

एक द्वार रखि कुँअरि ने लीनी पैठ उठाय।
रुचै जो रंचक कीनु पिय, बहिनी, भैया, माय।।

कुँअरि राधाने अपने प्रीति-वितरणकी पैठ उठा ही ली, मात्र एक द्वार – अ.सौ.सावित्रीबाई फोगला (सुपुत्री महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराज)को ही निर्धारित कर दिया। उस समय पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने ही अपने सर्वथा अप्राकृत भावजीवनके इस काव्यको बोल-बोलकर पूज्या अ.सौ. बाई सावित्रीको यह 'रसश्रुति' प्रदान कर दी। कुछ कृपापात्रोंको, जिनमें एक लेखक भी रहा, पू.अ.सौ. सावित्रीबाईने ही यह श्रुतिग्रन्थ कृपापरवश प्रदान कर दिया, एवं फलस्वरूप ही यह टीका रसिक वैष्णवोंकी सेवामें समुपस्थित है।

इसमें कहीं कोई संशय नहीं कि इस श्रुतिकाव्यके नायक नायिका प्रिया-प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन नीलसुन्दर एवं बृषभानुनन्दिनी बाला राधा सर्वथा अप्राकृत हैं। इन प्रिया-प्रियतमके माता-पिता, पितामह, ताऊ-चाचा, भाई-बहिन, सखा एवं सखीगण, इनके पितृकुल, मातृकुल एवं श्वसुरालयके भी सभी पात्र, उनके देहादि मायाके कार्य, पञ्चमहाभूतोंमें निर्मित माया-आवरणरूप कदापि-कदापि नहीं हैं। इस रसश्रुतिमें वर्णित लीलाएँ अप्राकृत हैं – जो अप्राकृत क्षेत्र, वृन्दाकानन, श्रीसुन्दरीवनके निकुञ्जों, एवं ब्रजके ग्रामोंमें घटित हुई हैं एवं निश्चय ही अप्राकृत मन-बुद्धि एवं शरीरधारी अप्राकृत चिन्मय पात्रोंकी लीलाएँ हैं। इसीलिये इस प्रियतम काव्यका शब्द-शब्द मंत्र है एवं इन मंत्रोंके जापसे निश्चय ही अप्राकृत मन-बुद्धिका निर्माण संभव है। यही इस ग्रन्थका अपूर्व माहात्म्य है।

सर्वप्रथम जब इस श्रुतिरचनाका प्रथम छन्द पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके अन्तःकरणमें अवतरित हुआ एवं उन्हें यह भासित होने लगा मानो उनके प्रियतम श्रीकृष्ण उनसे उनके भावजीवनको काव्यरूपमें प्रकट कराना चाह रहे हैं, एवं यह रचना ग्यारह शतकोंमें क्रमशः प्रसूत हो रही है, उस समय पू.गुरुदेवने अपने प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनसे यही विनय की थी कि 'जब भूतकालके अनेकों महासिद्ध रसिकाचार्योंकी अनेकों वाणियाँ वर्त्तमानमें उपलब्ध हैं एवं साहित्यके उत्कृष्टतम प्रयोगों द्वारा राधाकृष्णकथाके सभी पक्ष अष्टछापके सूरदास, नन्ददासादि तथा इतर कवियों द्वारा भी प्रचुरतासे वर्णित किये जा चुके हैं, फिर मेरे-जैसे व्यक्तिसे यह पिष्ट-पेषण करानेकी आवश्यकता ही क्या है ? यदि पूर्वके इन सभी रसिकाचार्यों एवं कवियोंसे मेरी यह रचना कुछ अपूर्व सिद्ध हो, तब तो इसकी सार्थकता है; अन्यथा यह क्रिया चर्वितका चर्वण मात्र ही तो होगी ?'

पू.गुरुदेवके इस निवेदनके उत्तरमें प्रियतम श्रीकृष्णने मुसकाकर उनसे इतना ही कहा – 'तू इसे प्रकट तो कर ! तेरे द्वारा प्रकट इस श्रुतिका माहात्म्य उन सभी कृतियोंसे अपूर्व ही होगा। इस घोर कलिकालमें विशुद्ध भागवती प्रीतिकी प्रतिष्ठाके लिये ये तेरे श्रुतिछन्द अप्राकृत नेत्र, कर्ण, वाणी, मन एवं अन्तःकरणके निर्माणमें निश्चय ही हेतु होंगे। यह श्रुलि कालजयी सिद्ध होगी एवं भविष्यमें पच्चीस सौ वर्षों तक इसका प्रभाव स्थायी रहेगा।'

निश्चय ही इस लेखक द्वारा व्यक्त यह प्रसङ्ग किन्हीं महासिद्ध रसिकाचार्योंकी कृतियोंकी हेठी सिद्ध करनेके हेतुसे सर्वथा उल्लेख नहीं किया गया है, न ही यह किसी मतविशेषपर आक्षेप ही है। लेखकने अपने गुरुमुखसे जो भी वाणी सुनी है, हृदयङ्गम की है, उपरोक्त शब्द लेखककी अपनी ही व्यक्तिशः निष्ठा एवं श्रद्धाको अभिव्यक्त कर रहे हैं। लेखकका यह आग्रह सर्वथा नहीं है कि उसके द्वारा लिखी बातोंको पाठक मान ही लें। यह तो मात्र लेखकके स्वयंके विश्वासकी बात है और लेखकका तो निश्चय ही इस विश्वासमें ही कल्याण है। लेखक आग्रहपूर्वक अपना विश्वास दूसरोंपर लादनेके लिये उपरोक्त लेखन सर्वथा नहीं कर रहा।

लेखककी प्रार्थना है कि पाठकगण इस विषयमें तर्कबुद्धिका आश्रय करके उससे प्रश्नोत्तरकी आशा कृपया नहीं रक्खें। विवादमें तो अपनी हार वह पहले ही स्वीकार कर लेता है एवं तर्क करना सर्वथा ही नहीं चाहता। अवश्य ही पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराजपर उसकी सर्वोपरि निष्ठा, विश्वास, श्रद्धा क्षण-क्षण बढ़ती रहे और उनकेद्वारा कथित प्रत्येक शब्द उसे साक्षात् परमात्माकी वाणी ही अनुभव हो, अन्तर्यामी प्रभुसे उसकी रोम-रोमसे यही विनीत प्रार्थना है।

स्कन्दपुराणमें उल्लेख है – 'भगवान् शिव पार्वतीजीसे गुरुमहिमाके विषयमें कहते हैं – '**गुरुवक्त्रस्थितं ब्रह्म प्राप्यते यत्प्रसादतः**' अर्थात् 'हे पार्वति ! गुरुके द्वारा निःसृत वाणी ही परात्पर परब्रह्म परमात्मा है, और गुरुप्रसाद, गुरुकृपा ही उसकी प्राप्तिका एकमात्र कारण है।' इस निष्ठाके प्रद्योतक ही मेरे उपरोक्त शब्द हैं।

यदि यह मेरी निष्ठा नहीं होती तो रसिकेन्द्रशेखर ब्रजेन्द्रनन्दन रसराज श्रीकृष्ण मुझ-जैसे प्राकृत मन-बुद्धि वाले पामर प्राणीसे जिसने आवरणरूपा मायामें ही जन्मग्रहण किया है, कदापि इस चिन्मय भागवती श्रुतिग्रन्थकी टीका नहीं कराते। उन्होंने मुझ पशुको इस पावनतम कार्यमें हेतु बनाया, इसका यदि कोई प्रकट कारण हो सकता है, तो यही है कि न जाने किस पुण्यबलसे मेरी बुद्धि दिवस-प्रतिदिवस, क्षण-प्रतिक्षण इसी निष्ठाको ग्रहण कर रही है कि 'जो राधा हैं, वही, वही, वही मेरे श्रीराधाबाबा हैं। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका शक्ति, और पृथ्वीमें गन्ध रहती है, उसी प्रकार महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराजमें परात्पर रसिकेन्द्रशेखर प्रियतम श्रीकृष्ण एवं मेरे पू. गुरुदेवमें श्रीराधारानी रही हैं। फिर ये दोनों सदा अभिन्न एकरस एवं एकात्म हैं। प्रेमरससार मेरे पू. गुरुदेवका अस्तित्व ही आनन्दरससार परम पूज्य पोद्दार महाराजमें संगुप्त रसिकशेखर-रसराजतत्वको उजागर करानेके लिये ही था, है एवं रहेगा।

मैं यह सत्य, सत्य, सत्य कह रहा हूँ कि मैं रसशास्त्रसे एवं रसतत्वसे सर्वथा अनभिज्ञ, नितान्त अज्ञ हूँ, घोर विषयी, पामर कोटिका प्राणी हूँ। इस दृष्टिसे पू.गुरुदेवकी इस अप्राकृत भावजीवनीकी व्याख्या करनेमें सर्वथा एवं सर्वदा अपात्र हूँ। इसे संस्पर्श करनेका भी मुझ-जैसे अघी प्राणीका अधिकार नहीं है। मेरे पू.गुरुदेवकी भावजीवनीकी व्याख्या तो राधाभावद्युति-वलित-तनु श्रीकृष्णचन्द्र ही कर सकते हैं। वे कर सकते हैं और साथ-ही-साथ वे भी नहीं कर सकते, क्योंकि चिन्मय, अप्राकृत, महाभावरूप प्रिया राधाके चरित्रकी ऐसी ही अपूर्व शोभा है। इसकी व्याख्या स्वयं रसराज श्रीकृष्ण भी नहीं कर सकते। वे कर सकते होते तो मुझ-जैसे सर्वथा अनधिकारीका इस कार्यके लिये वे चयन करते ही नहीं। कारण सुस्पष्ट है। राधा प्रीति-गुण-स्वभाव-स्मृति मात्रसे ही वे रसिकेन्द्रशेखर इतने विह्वल, मुग्ध तथा गद्गदकण्ठ हो जाते कि उनके द्वारा उनके प्रिया-चरित्रका व्याख्या-लेखन संभव ही नहीं होता। तभी न, उन्होंने मुझ-जैसे सृष्टिके सर्वाधिक वज्र-कठोर नीरस प्राणीका चयन किया। उन्होंने मुझमें एक ही पात्रता पाई। वह पात्रता यही थी कि महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके दिव्यातिदिव्य पद-रजकण ही मेरे परम आश्रय थे। मैंने अपने मस्तकको शताधिक बार इस पद-रजकणसे परिस्नात किया था। मुझ निरालम्बके मात्र वे ही अवलम्ब थे, एवं हैं। मुझ पतितको महाप्रभु पोद्दार महाराजका वाचिक वरदान प्राप्त था कि 'कभी-कभी महज्जन-चरणाश्रयसे सर्वाधिक निकृष्ट जीव भी सर्वोत्कृष्ट कृपाभिव्यक्तिमें हेतु हो जाता है'। उन हेतुरहित कृपाघनकी महान् अनुग्रहवर्षा ही मुझ पतित पामर प्राणीसे यह कार्य निष्पादन करा गयी है।

मैं सत्य कह रहा हूँ कि इस श्रुतिकाव्यके मर्मका परिचय मुझे महाप्रभु पोद्दार महाराजकी कृपासे ही मिला। ऐसे अनेकों प्रसङ्ग आये जहाँ मैं कुछ भी नहीं समझ पाया, मेरे सम्मुख वे लीलाएँ प्रकट हुईं जिनका सूत्ररूपमें मात्र सङ्केत ही पू.गुरुदेव राधाबाबा कर गये थे। मैंने इस व्याख्यामें एक-एक शब्द पूर्ण प्रामाणिकतासे लिखनेकी चेष्टा की है, क्योंकि यह मेरे सर्वाधिक प्रिय, पूज्य, जीवनसर्वस्व, जीवननिधि गुरुदेवका भावचरित्र था। मैंने इस ग्रन्थकी व्याख्यामें कहीं भी अपनी मनोप्रसूत कल्पनाका सहारा नहीं लिया है। यदि मैं मनोप्रसूत कल्पनाकी छायाका संस्पर्श भी इस व्याख्यामें करता तो यह प्रीतिका निर्मलतम सूर्य मेरे अन्धतम 'काम'से ग्रस्त हो जाता। मै इस व्याख्याका शब्द-शब्द लिखते समय इस भयसे सदैव आशङ्कित रहा हूँ कि कहीं भी मेरी कल्पनाकी कोई काचमणि इस हीरक-हारावलिमें नहीं विजड़ित हो जाय, अन्यथा यह रचना सच्चे रसमर्मज्ञ जौहरियोंके लिये समादरणीय नहीं होगी। निश्चय ही यह ग्रन्थ लीलाजगत्में नित्य स्थित – रसिकाचार्य चैतन्य महाप्रभु, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य, परम वन्दनीय स्वामी हरिदासाचार्य, महाप्रभु हितहरिवंश, भक्तप्रवर वन्दनीय रूप-सनातनादि गौडीय आचार्योंके दृष्टिपथमें भी आवेगा। वे इस व्याख्यापर भी निश्चय ही दृष्टिपात भी करेंगे। वे रसिकशिरोमणि महासिद्ध आचार्यवर्य कहीं मेरी व्याख्यामें किञ्चित् भी लौकिकावेशकी गन्ध पा जावेंगे तो मेरे गुरुदेव श्रीराधाबाबाके नामकी किरकिरी हो जावेगी, क्योंकि अन्ततः शिष्य तो मैं उनका ही हूँ।

अस्तु, इस आशङ्काको ध्यानमें रखते हुए इस महाभावश्रुतिकाव्यके किसी भी छन्दके अर्थप्रकाशपर जहाँ कहीं भी मेरी बुद्धि कुण्ठित हुई है तो मैंने महाप्रभु श्रीपोद्दार महाप्रभुकी चरणरेणुका ही आश्रय लिया है। उन हेतुरहित कृपा-वरदानीकी चरणरेणुने मुझे कहीं भी निराश नहीं किया है। इस ग्रन्थके कूट-से-कूट स्थलोंके मर्मका प्रकाश तत्क्षण ही मेरे सम्मुख इस सरलतासे हुआ है कि मैं धन्य-धन्य कर उठा हूँ।

महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराज तो व्यक्ति थे ही कहाँ ?

त्रिगुणरचित यह देह, महाभावमय करि रह्यौ।
ऐसो किरपा-मेह बरसायौ पिय साँवरौ।।

(पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा रचित सोरठा)

उनका त्रिगुणरचित देह रहा ही कहाँ था ? वह तो कबका ही लहराते, नित्योच्छलित, महाभावसिन्धुकी ऊर्मि बन गया था ! तभी न,

छाँड्यौ अपनौ नेम, सभी मोर साँचौ कर्यौ।
करै जोग अरु छेम, पिय सौ भयौ न होहिहै।।

(पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा रचित सोरठा)

मेरे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके हृदयेश्वर, प्राणाराम, प्राणाधिक, प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनका स्वभाव ऐसा ही है। वे अपना न्याय-नियम त्याग देते हैं और अपने आश्रित जनोंके मनोरथको सच्चा बनाकर पूर्ण कर देते हैं। उन मेरे प्रियतम जैसा योग-क्षेमका निर्वाह करनेवाला अन्य कोई हुआ है, न होगा ही।

उन मेरे प्रियतम श्रीकृष्णकी मेरे गुरुदेव श्रीराधाबाबापर अनन्त असीम प्रीतिको परखते हुए ही मेरा पूर्ण विश्वास है कि पू.गुरुदेवके भावजीवनके इस श्रुतिग्रन्थका जो भी पाठक भाव एवं श्रद्धासहित अवगाहन करेंगे, वे निश्चय ही महाभावस्वरूप प्रेमजगतमें प्रवेश पावेंगे।

यह निश्चय है कि मैं एक प्रेमशून्य जन्तु हूँ। ऐसे कृपावाक्य कहने-लिखनेकी मेरी सामर्थ्य सर्वथा नहीं है। किन्तु मेरे गुरुदेवपर उनके प्रियतम प्राणनाथकी प्रीति देखकर ही मैं महाप्रभु पोद्दार महाराजकी चरणरजको साक्षी बनाकर कहता हूँ कि मेरी वाणी अक्षरशः अखण्ड सत्य सिद्ध होगी।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा स्वयं और उनका यह लीलाचरित्र दो वस्तुएँ तो हैं ही नहीं। जहाँ पू.गुरुदेवके प्रियतम श्रीकृष्णका नाम, रूप, लीला,• एवं धाम – चारों वस्तुएँ पूर्ण परात्पर प्रियतम श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं तो प्रियतम-प्रिया श्रीराधाका चरित्र प्रिया श्रीराधासे भिन्न कैसे संभव है ? अतः मैं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा-रचित निम्न छन्दोंका आश्रय लेकर ही ऐसी मङ्गलमयी वाणीका उच्चारण कर रहा हूँ –

(दोहा)

मो इच्छित कै कृस्न पिय, रुचै बनिउ, बनराउ।
होइ निराविल सर्वथा भाव-उदधि बुड़ि जाउ।।१।।
बिस्वरूप जसुमति-सुअन ! अब विलम्ब जनि लाउ।
होइ निराविल एहि छिन भाव-उदधि बुड़ि जाउ।।२।।
बिस्वरूप बिनती धरत अभिनौ सुख बिसराउ।
करौ अनुग्रह अब महाभाव-उदधि बुड़ि जाउ।।३।।
बिस्वरूप पिय बेनुधर, साँवर बिरद बढ़ाउ।
करौ तुरन्त कृपा महाभाव-उदधि बुड़ि जाउ।।४।।

(सोरठा)

मो सुख लगि तुम पीउ, अब लौं कहा नहीं कर्‌यौ।
तुम्हरौ प्यार असीउँ, नित्य अतुल ऐसोइ है।।५।।
देख्यौ अद्भुत खेल, इन माटी-पुतरीन कौ।
अब तुरन्त दो ठेल, सबननि ब्रज-रस-सिन्धुमें।।६।।

(छन्द)

हे महामहिम ! हे ब्रजनन्दन ! करुणावरुणालय ! हे प्रियतम !
हे कृष्ण ! प्राणवल्लभ ! साँवर ! मुझ राधाके रसिया ! प्रियतम !
हे वंशीधर ! मुझ राधाके सुखमें ही बस, सुखिया ! प्रियतम !
हे प्राणेश्वर ! मुझ राधाकी नैयाके खेवैया ! प्रियतम !
अब ढरौ तुरन्त प्रथम अपने इन दस रूपोंपर, हे प्रियतम !
फिर ढरौ तुरन्त विश्वमय निज मद्दृश्य रूपपर, हे प्रियतम !
सर्वथा सुखी तुम हो जाओ, खिल उठो फूल-से, हे प्रियतम !
पल-पल बढ़ते ही चलो भावसागरकी ओर तथा, प्रियतम !
जो दोष न देखे कहीं, कभी, ऐसे हो एक तुम्हीं, प्रियतम !
अतएव तुम्हारी प्यारी मुझ राधाकी बिनती है, प्रियतम !
यद्यपि आवश्यकता तुमसे कहनेकी थी न किन्तु, प्रियतम !
कह गयी और कर गयी, हुई प्रेरित तुमसे बिनती, प्रियतम !
कहनेवाली, सुननेवाले दोनों तुम ही तो हो, प्रियतम !
यह खेल तुम्हारा नित्य सरस एवं रहस्यमय है, प्रियतम !
है लहराता ही रहता वह, संविद-स्वरूप सागर, प्रियतम !
उन लहरोंका ही नाम यहाँ संस्थान, सृजन, लय है, प्रियतम !

प्रियतम श्रीकृष्णका उत्तर –

है सदा तुम्हारा ही सुख बस, मेरा तो सुख प्रियतमे ! अहो !
मैं कर दूँगा अवश्य पूरी प्रत्येक चाह, निश्चिन्त रहो !
हम सभी अभिन्न निरन्तर हैं, फिर भी जो रुचि हो, तुरत कहो।
हे महाभावमयि ! हमें लिये, रस-सुधा-सिन्धुमें नित्य बहो।।

(भावार्थ)

हे प्रियतम ! श्रीकृष्ण ! यदि आपको रुचिकर लगता हो तो मेरी इच्छाके अनुसार रूप धारण कर लीजिये। हे बनराइ (वृन्दावनके राजा), आप संसारगत मायावेश त्यागकर सर्वथा निराविल (निष्कल्मष) होकर भावसमुद्र प्रेमोदधिमें डूब जाइये।।।१।।

हे विश्वरूप यशुमतिनन्दन ! अब विलम्ब मत करिये। इसी क्षण समग्र कल्मषरहित होकर भावसमुद्र – प्रीतिसिन्धुमें डूब जाइये।।२।।

हे विश्वरूप धारण किये मेरे स्वामी ! मेरी प्रार्थनाको अपने चित्तमें धारण कर लीजिये। अब इन्द्रियजन्य नये-नये विषयोंमें सुखाशा छोड़ दीजिये। अब अपनी प्रिया मुझ आपकी आत्मापर अनुग्रह करिये एवं प्रीतिके सर्वोच्च सर्वशुद्ध महाभाव-समुद्रमें डूब जाइये।।३।।

हे विश्वरूप धारणकिये वेणुधर श्यामसुन्दर ! अपने यशकी अभिवृद्धि करिये एवं मुझ अपनी आत्मापर तुरन्त कृपा करके महाभाव-समुद्रमें डूब जाइये।।४।।

हे प्राणनाथ ! आपने मेरे सुखके लिये अबतक क्या नहीं किया ? आपका प्रेम असीम अनन्त है। वह ऐसा है कि उसकी तुलना कहीं किसीसे हो ही नहीं सकती।।५।।

मैंने इन पञ्चभूतरचित देहोंको धारण करनेवाली मृत्तिकामयी पुतलियोंका अद्भुत खेल खूब देख लिया। अब तो इन सभी पुतलियोंको आप ब्रज-रस-सिन्धुमें ठेल दीजिये।।६।।

हे महामहिम ब्रजनन्दन ! हे करुणावरुणालय ! हे कृष्ण ! हे प्राणवल्लभ साँवरे ! हे मुझ राधाके रसिया ! हे वंशीधर ! हे मुझ राधाके सुखमें ही सुखिया ! हे जीवनधन ! हे प्राणाधिक ! हे प्राणेश्वर ! हे मुझ राधाकी नैयाके खेवैया ! हे प्रियतम ! सर्वप्रथम आप तुरन्त ही आपके इस दस नामरूप धारण किये स्वरूपोंपर (पू.गुरुदेवके दस प्रमुख कृपापात्रोंपर) अनुग्रहीत होओ एवं तब अविलम्ब अपने विश्वमय मेरे दृश्य बने रूपोंपर कृपालु हो जाओ। हे प्रियतम ! तुम सर्वथा सुखी हो जाओ एवं फूलकी तरह प्रफुल्लित होकर खिल उठो।।७।।

हे प्रियतम ! तुम प्रतिपल प्रेमके सर्वोच्च भावसमुद्रकी ओर बढ़ते ही जाओ। जो किसीका कभी दोष नहीं देखे - ऐसे एकमात्र तुम्हीं हो। इसीलिये तुम्हारी प्यारी मुझ राधाकी तुमसे विनय है। हे प्रियतम ! सर्वान्तर्यामी होनेके नाते तुमसे अपनी प्रार्थना मौखिक कहनेकी यद्यपि कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु फिर भी मैं तुम्हारे द्वारा ही प्रेरित हुई तुम्हें सबकुछ मौखिक कह गयी एवं प्रार्थना भी कर ही गयी। मैं यह बात भली प्रकार जानती थी कि प्रार्थना करनेवाली भी तुम ही बने हो, और सुननेवाले तो तुम हो ही। प्रियतम ! अपने आपसे, अपने आपमें ही यह खेल नित्य सरस एवं रहस्यमय है। रहस्यमय इस अंशमें कि इसके भीतरका मार्मिक सत्य कोई जान नहीं पाता, वह सदैव अज्ञात ही रहता है; एवं सरस इस रूपमें कि दुखरूप क्षणभंगुर रहते हुए भी इसमें सुखाशा बनी ही रहती है। यह संविद् रूप समुद्र (चेतन-जीवमय संसार) लहराता ही रहता है। इस समुद्रकी लहरोंका ही नाम सृजन, स्थिति, एवं प्रलय है।

प्रियतम श्रीकृष्णका पू.गुरुदेवको उत्तर –

अहो प्रियतमे राधे ! सदैव तुम्हारा ही सुख बस, मेरा सुख है। मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा अवश्य पूरी कर दूँगा, तुम निश्चिन्त रहो। तुम, मैं, एवं यह सृजन, स्थिति एवं प्रलयरूप जीव-समुदाय – सभी परस्पर अभिन्न हैं। फिर भी जो तुम्हारी रुचि हो, तुम तुरन्त कहो। हे महाभावमयि ! तुम मुझे एवं मेरे अभिन्न स्वरूप – सृष्टि, स्थिति, प्रलयरूप इस तुम्हारे दृश्यरूप विश्वको साथ लिये रस-सुधा-सिन्धुमें नित्य बहती रहो।

पू.गुरुदेव द्वारा अपने प्रियतम प्राणनाथ ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णसे की हुई उपरोक्त प्रार्थना एवं उनके सर्वभवनसमर्थ, कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् समर्थ प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा उन्हें दियेगये उत्तरके आधारको लेकर ही पू.गुरुदेवके स्वरमें अपना निर्बल निरीह स्वर मिलाते हुए मैं सर्वथा अपात्र निम्न मङ्गलवचन कह रहा हूँ –

'पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके भावजीवनके इस श्रुतिकाव्यमें जो भी पाठक भावसहित अवगाहन, निमज्जन करेंगे, वे एक ऐसे अनिर्वचनीय परम दुर्लभ विलक्षण चिदानन्दमय महारसकी उपलब्धि करेंगे, जो उनके समग्र विषय-व्यामोहको सदाके लिये मिटा देगा। मेरे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके भावजीवन इस प्रियतमकाव्यके पठनका यही माहात्म्य है। इसका अक्षर-अक्षर, इसके पूर्ण विराम, अर्ध विराम, अनुस्वार, चन्द्रविन्दुतक पूर्ण रसमय हैं। इसमें निरन्तर डूबनेवालेको दुर्लभ-से-दुर्लभ दिव्य देवभोगोंके आनन्दसे ही नहीं, परम तथा चरम वाञ्छनीय ब्रह्मानन्दसे भी अरुचि हो जायगी। श्रीप्रिया-प्रियतम ही उसके सर्वस्व होकर उसमें बस जावेंगे और उसको अपना स्वेच्छाचालित लीलायंत्र बनाकर धन्य कर देंगे।'

'नाथ ! हृदयेश्वर ! प्राणाराम ! प्राणाधिक ! जीवनसर्वस्व ! नयनानन्द ! रसमय ! करुणामय ! भावमय ! लीलामय ! प्राणाधार ! प्रियतम ! श्रीकृष्ण ! सर्वथा अदोषदर्शी प्रियतम ! अनन्त कल्याणमय, स्वरूपभूत गुणगणशाली ! विश्वरूप विश्वेश्वर ! अखिलात्मन् ! सर्वज्ञ-सर्वविद् ! सर्वभवनसमर्थ ! अनन्तैश्वर्यनिकेतन ! सर्वलोकमहेश्वर ! करुणावरुणालय ! मेरे गुरुदेवकी रुचिका ही अनुसरण करनेवाले ! मेरे देवता ! मेरे गुरुदेवकी रुचिको ही सर्वथा सर्वांशमें ही पवित्रतम ढंगसे, सर्वथा सर्वांशमें ही पवित्रतम ढंगसे, सर्वथा सर्वांशमें ही पवित्रतम ढंगसे, शीघ्र-से-शीघ्र, शीघ्र-से-शीघ्र, शीघ्र-से-शीघ्र पूर्णकरके उसे तत्क्षण अनन्त अपरिसीम परम मङ्गलमें, श्रीमहाप्रभु पोद्दार महाराजके और मेरे पू.गुरुदेवके महाभावके स्वरूप-विलास-समुद्रकी परम रमणीय ऊर्मिमें पर्यवसित करदेनेवाले मेरे नीलपद्म, प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण ! प्राणधन ! प्राणरमण ! सर्वस्व ! प्राणमूल प्रियतम श्रीकृष्ण ! मेरे प्राणोंके परमाराध्य देव ! अखिल रसामृतमूर्त्ति प्रियतम श्रीकृष्ण ! अपना स्वेच्छाचालित लीलायंत्र बनाकर, अपनी चरणधूलिकी कृपाका वरदान देकर आपने इस पतितसे जो लिखाया, सब आपको ही समर्पित है।'

'आत्मस्वरूपिणि ! महाभावरूपिणि ! जगज्जननीरूपिणि ! योगमायारूपिणि ! जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-भावापन्ने ! तूर्यतात्मिके ! यमुना-गङ्गा-सरस्वतीरूपिणि ! ऋद्धि-सिद्धि-महासरस्वती-महालक्ष्मीरूपिणि ! आवयोः शिव-पार्वती-लीलायां शिवरूपिणि ! पुनश्च उमारूपिणि ! नवदुर्गारूपिणि ! दशविद्यारूपे ! भगवति ! श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीरूपिणि ! क इति मंत्रसुलभे ! श्रीमातृरूपे ! ललितादि-परिकर-रूपिणि ! मञ्जुश्यामारूपं प्रत्यपि अपरिसीमानुराग भावयति ! मञ्जुश्यामायां छायायां प्रत्यपि मच्छायायां प्रति च मच्छायायां छायायां प्रति च अपरिसीमानुराग-भाव-विधायिनि ! अनन्ताभिव्यक्त-नाभिव्यक्त-शक्तिस्वरूपिणि ! सर्वस्वरूपे ! सर्वरूपे ! सर्वातीते ! नित्यानिर्वचनीयाचिन्त्य-विरुद्धधर्माश्रयत्वं-विभूषिते ! राधे ! तव नित्यप्रियतमः नित्यप्राणाधिकः नित्यप्राणेश्वरः नित्यप्राणवल्लभः, नित्यनवनिकुञ्जेश्वरः नित्यवृन्दावनेश्वरः नित्यब्रजेन्द्रनन्दनः अहं श्रीकृष्ण एव तवात्मानं मन्नित्यप्रियतमा नित्यप्राणाधिका नित्यप्राणेश्वरी नित्यप्राणवल्लभा नित्यनवनिकुञ्जेश्वरी नित्यवृन्दावनेश्वरी नित्यवृषभानुपुत्री त्वं राधैव ममात्मा नित्यलीलार्थं

भिन्नतया स्थितः सन् तवाङ्गस्य प्रत्येके कणे हि महाभावात्मकाह्लादरूपेण नित्यं वर्त्तमानः तव हृदयाकाशे तु बहिश्च निखिले रोमकूपे च यथानुभूतरीत्या त्वदभिलषिताभिव्यक्त नवनीरदवर्ण द्विभुजानन्तैश्वर्यनिकेतन सर्वलोकमहेश्वर स्वयंभगवत्प्रकाश पुरुषोत्तम प्रियतम प्राणाधिक प्राणेश्वर प्राणवल्लभ नित्यनवनिकुञ्जेश्वर नित्यवृन्दावनेश्वर नित्यब्रजेन्द्रनन्दनरूपेण मम प्रियतम ! प्रिया-प्रियतम युगल ! मेरे सम्मुख यहाँ मेरे हृदयमें सतत सम्प्रतिष्ठित हों एवं मेरी इस टीकापर अपना वरद अनुग्रह-हस्त रखकर इसे अनन्तकालतक, स्वइच्छित कालतक अपने एवं अपनी प्रियाके विशुद्ध प्रेम-वितरणके योग्य सिद्ध करें। एवमस्तु, इत्यलम् ।

विनीत

साधु कृष्णप्रेम

है पथ तुलसी-वन जोह रहा हम दोनोंका पल-पल, प्रियतम।
नीली सरिता हो व्याकुल है कर रही शब्द कल-कल, प्रियतम।
है अपलक पन्थ निहार रहीं वे वल्लरियाँ फूली, प्रियतम।
सुस्पष्ट दे रही है इङ्गित सारी शुकपर झूली, प्रियतम।

काँटोंकी अटवीमें रुककर देरी न करो प्यारी-प्रियतम।
चेरीपर चरण-सरोरुहकी अविलम्ब ढरो प्यारी-प्रियतम।
नश्वरतनकी पगडण्डीपर ठहरो मत तुम प्यारी-प्रियतम।
चलती जाओ, चलते जाओ, रहकर गुमसुम प्यारी-प्रियतम।

।। भावार्थ ।।

अरे भैया ! वृन्दावन हम दोनों प्रिया–प्रियतमकी बाट, पथ जोह रहा है। नीली रसमयी–सरिता व्याकुल होकर देखो कैसा कल–कल शब्द कर रही है। देखो, ये पुष्पित सुमनोंसे लदी आनन्दसे फूल रही लताएँ, वल्लरियाँ हमारा पथ पलक नहीं गिराते हुए (अपलक), अति आतुर हुई, निहार रही हैं। और देखो, यह सारिका पक्षी शुकके ऊपर प्यारसे झूलती हुई सुस्पष्ट सङ्केत दे रही है कि तुम्हें इस पथसे चलकर प्रिया–प्रियतमके पास पहुँचना है।

अरे भैया ! यह संसार तो कण्टकाकीर्ण जंगल, काँटोंका वन है। इसमें आपसमें एवं मुझसे मिलनेमें प्रिया प्रियतमके पास पहुँचनेमें विलम्ब हो सकता है। भगवान् नन्दनन्दनकी चरण सरोरुहकी चेरी श्रीराधारानीपर बिना विलम्ब किये ढर जाओ। यह तन तो नश्वर है ! इसकी पगडंडीपर तनिक भी मत ठहरो। तुम चाहे स्त्री–वेषधारी हो, चाहे पुरुष–वेषधारी, साधनाके पथमें चलते जाओ, चलती जाओ, चुपचाप गुमसुम रहो और चलो।

।। विजयेतां श्रीप्रिया-प्रियतमौ।।

प्रियतम काव्यके छन्दों, श्लोकोंके पाठ, जप, पारायणकी पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा निर्दिष्ट फलश्रुतियाँ

शतक सं.	छन्द संख्या	साधन निर्देश	फलश्रुति
१	श्लोक-ललिताम्बामयीं	प्रतिदिन अर्थ-अवधारणा एवं अतिशय श्रद्धापूर्वक १०८ बार जप	मृत्युके समय भगवती ललिताम्बाका साक्षात् दर्शन होगा। महाप्रभु पोद्दार महाराजका स्वरूप प्रकट होकर ब्रजभावमें प्रवेशकी भूमिका बन जायेगी। जीवनमें आर्थिक संकटोंसे निश्चय ही त्राण होगा।
१	श्लोक कृष्णस्वरूपिणीं	प्रतिदिन १०८ वार जप	मृत्युके समय भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन, ब्रजभावमें प्रवेशकी भूमिकाका अवश्यंभावी निर्माण। श्रीकृष्ण कृपाका जीवनकालमें ही अनुभव।
१	छन्द सं. १	प्रतिदिन १०८ वार जप	जीवनकी संध्याके पूर्व ही 'संसार सत्य नहीं है, स्वप्नतुल्य है', इसका स्पष्ट अनुभव (पू.गुरुदेव द्वारा सन् १९६४ई.में बताया साधन)
१	छन्द सं. २	प्रतिदिवस दस मालाका भावसहित जप	मायाकी आत्यन्तिक निवृत्ति। साक्षात् श्रीकृष्ण द्वारा हस्त-धारणकर निकुंजमें प्रवेश।
१	छन्द सं. ४	प्रतिदिन दस मालाका जप	शक्तिपात होकर वैषयिक आकर्षणोंसे मुक्ति एवं वैराग्यकी अदम्य प्रतिष्ठा।
१	छन्द सं. ८	केवल चौथी पंक्तिकी दस मालाका नित्य जप	श्रीकृष्णका अनिर्वचनीय अद्भुत रूप-दर्शन।
१	छन्द सं. १२	प्रतिदिन दस मालाका जप	श्रीकृष्ण विरहभावका हृदयमें सच्चा प्रकाश।
१	छन्द १३ से १५तक	प्रतिदिन १ माला	मृत्युके पूर्व श्रीराधाके बाल-चरित्रका हृदयमें प्रकाश। विशुद्ध वात्सल्यरसकी हृदयमें प्रतिष्ठा।
१	छन्द १६ से १९ तक	प्रतिदिन एक माला पाठ	मृत्युके पूर्व राधा-काम्यकाननका प्रत्यक्ष अनुभव। भगवती लीला-महाशक्ति त्रिपुरसुन्दरीके श्रीयंत्रके रहस्यका ज्ञान। वृन्दादेवीके तत्व-रहस्यकी अनुभूति। वृन्दावनके पशु-पक्षियोंके तत्व-रहस्यका ज्ञान।
१	छन्द २६ से २८ तक	एक मालाका पाठ प्रतिदिन	जीवनयात्रा अत्यन्त सुकर। चित्तवृत्तिमें आत्यन्तिक सात्विक शान्ति बनी रहेगी। कोई, कैसा भी हो, शनैः शनैः चित्तमें शान्ति एवं एकाग्रता स्वभावतः आवेगी। सच्ची आस्तिकताका उद्रेक होगा। इष्टके प्रति निष्ठा एवं श्रद्धा उपलब्ध होगी। पवित्र एवं निष्काम शक्ति-उपासनाके बीज पड़ेंगे।

शतक सं.	छन्द संख्या	साधन-निर्देश	फलश्रुति
१	छन्द ३६से ४५ तक	प्रतिदिन १ माला पाठ	कुन्दवल्ली देवी एवं श्रीदाम भैयाके जन्मोत्सवका अनुभवपूर्ण दर्शन। बृषभानुपुरीके अपूर्व वैभवका प्रत्यक्ष प्रकाश। शुद्ध सख्य रसका प्रादुर्भाव। निष्काम तत्सुखिया भावसे हृदयके ओतप्रोत होनेकी भूमिकाका प्रादुर्भाव ।
१	छन्द ४६ से ५५ तक	१ माला प्रतिदिन पाठ	ललिता भावकी अनुभूति। उनके जन्मोत्सवकी झाँकी। सखियोंके मध्यकी तत्सुखी प्रीतिका अन्तःकरणमें प्रादुर्भाव। कीर्त्तिदा मैया एवं बृषभानुपुरके अन्य मातृवर्गकी सखियोंके विशुद्ध वात्सल्यका बीज-वपन।
१	छन्द सं. ६०	जय देवि दयामयि जय जगदम्बे जय ललिते	इस अमोघ जाग्रत मंत्रका प्रतिदिवस दस माला जपसे समग्र आसुरी शक्तियोंपर शत-प्रतिशत विजय।
१	छन्द सं.६३ से ७२ तक	दस माला प्रतिदिन जप	यहाँ वर्णित सम्पूर्ण लीलाका निश्चय ही जीवनके अवसानके पूर्व दर्शन।
१	छन्द ७३ से ८७ तक	प्रतिदिन १० माला जाप	राधा-जन्मोत्सवकी लीलाका जीवनके अवसानके पूर्व निश्चय दर्शन।
१	छन्द ८८ से ९६ तक	प्रतिदिन दस माला जप	मञ्जुश्यामा-जन्मोत्सवकी अनुभूति। मंजरीभावमें प्रतिष्ठा।
२	छन्द १०२ से ११० तक	प्रतिदिन १० माला पाठ	जीवनकी सन्ध्याके पूर्व अवश्य-अवश्य चिन्मय गिरिपरिसर एवं गिरिराजका दर्शन।

(विशेष मंत्र)

उस ओर शैलके कण-कणमें मानो चेतनता थी प्रियतम !
वह खड़ा सतत देखा करता ऊँचा सिर किये हुए, प्रियतम !

प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	चिन्मय गिरिपरिसर एवं गिरिराजका दर्शन।

(विशेष मंत्र)

जीवनकी धारा किधर मुड़े, भावी क्या है किसकी, प्रियतम !
सच्चा प्रतीक इसका वह था, आदर वे सब करतीं, प्रियतम !

प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	परमार्थकी ओर जीवनधारा मोड़नेके लिये विशेष मंत्र

शतक सं.	छन्द संख्या	साधन-निर्देश	फलश्रुति
२	छन्द १११ से १२२ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व ललिताकुंजके, भगवती ललिता सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १२३ से १३० तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व विशाखाकुंजके, भगवती विशाखा सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १३१ से १३८ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व चित्राकुंजके, भगवती चित्रा सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १३९ से १४६ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व इन्दुलेखाकुंजके, भगवती इन्दुलेखा सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १४७ से १५४ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व चंपकलताकुंजके, भगवती चंपकलता सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १५५ से १६२ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व रंगदेवीकुंजके, भगवती रंगदेवी सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १६३ से १७० तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व तुंगविद्याकुंजके, भगवती तुंगविद्या सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १७१ से १७८ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व सुदेवीकुंजके, भगवती सुदेवी सखीके प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १७९ से १९४ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व प्रिया प्रियतम निकुंजेश्वर एवं निकुंजेश्वरीके कुण्डोंका तत्वसहित रहस्यका प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभूति।
२	छन्द १९५ से १९८ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व बृषभानुपुरधामके अधिष्ठात्री देवता सूर्यदेवके प्रत्यक्ष दर्शन एवं उनकी विशेष कृपाकी अनुभूति।
२	छन्द १९९ से २०२ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व परकीया भावके तत्व-रहस्यका प्रकाश एवं यावट ग्राम एवं उसकी महिमाके दर्शन।
३	छन्द २०३ से २०५ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व प्रिया श्रीराधा एवं अष्ट सखियोंके सप्तवर्षीय पौगण्ड एवं कौमार वयके रूपकी झाँकी।

शतक सं.	छन्द संख्या	साधन निर्देश	फलश्रुति
३	छन्द २०६	प्रतिदिन १० माला भावसहित जप	पूर्ण जीवन निश्चय ही मंगलमय बन जायेगा।

विशेष मंत्र

'अप्रतिम यहाँ कोई मंगल निश्चय होगा, सखि री, प्रियतम !'

किसी भी कार्यकी मङ्गलमय संपन्नताके लिये इस मंत्रकी दस माला जप करें।

३	छन्द २०७से २१६तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व श्रीराधा-काम्यकाननके अन्तर्गत लीलाजगत्के अप्राकृत चिन्मय पक्षियोंके रूप, रहस्य, तत्व एवं उनकी तत्सुखभाव-भावित वृत्तियोंका साक्षात्कार। ब्रजमें पक्षीभावकी प्राप्तिकी भूमिकाका निर्माण।
३	छन्द २१७से २१९तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व राधा-काम्यकाननकी निश्चय झलक। वटतरुके माहात्म्यका ज्ञान।
३	छन्द २२० से २२४तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व शुकराज विचक्षणके दर्शन। प्रियतम श्रीकृष्ण ही दूतके रूपमें शुकपक्षी बनकर आते हैं इस रहस्यका परम मधुर प्रकाश।

३ छन्द २२५ - यह विशेष मंत्र है। शुद्ध जल लेकर प्रतिदिन इस मंत्रकी १० माला भावसहित जपकरके अभिमंत्रित जल पीलें। निश्चय ही जीवनकी संध्याके पूर्व महामायाकी विशिष्ट शक्तियोंका अभ्युदय होगा।

३	छन्द २२६ से २३३ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व रसात्मक श्रीयंत्रका प्रकाश। जीवनमें अनेक सिद्धियोंका प्रकाश एवं ब्रजभावका चित्तमें बीज-पल्लवन।
३	छन्द २३७	प्रतिदिन १० माला भावसहित जप	जीवनकी संध्याके पूर्व विलक्षण चिन्मय आनन्दकी अनुभूति एवं आह्लादतत्वका साक्षात्कार।
३	छन्द २३८ से २४१ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व सन्धिनी महाशक्ति वृन्दाके स्वरूपका साक्षात् दर्शन।
३	छन्द २४२	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	यह विशेष मंत्र है। इसके जपसे जीवनकी संध्याके पूर्व वृन्दाकानन, वृन्दादेवी एवं प्रिया श्रीराधा, राधानुजा मंजुश्यामाका साक्षात् दर्शन होगा।

शतक सं.	छन्द संख्या	साधन निर्देश	फलश्रुति
३	छन्द २४३	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	यह विशेष मंत्र है। इसके जपसे जीवनकी संध्याके पूर्व हंस-हंसिनीके तत्व-रहस्यका ज्ञान, प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुंजेश्वरकी इन दूतोंके रूपमें स्वयं प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन ही लीलारत हैं, इसका स्पष्ट प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा।
३	छन्द २४४से २४६ तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	इसके जपसे जीवनकी संध्याके पूर्व अशोकनिकुंजके दर्शन, नित्यनिकुंजेश्वर एवं नित्यनिकुंजेश्वरीके इस निकुंजमें लीलारत दर्शन। जन्म, स्थिति, प्रलयसे परे त्रिगुणातीत अप्राकृत निकुंज-लीलाधामकी अनुभूति।
३	छन्द २४७से ३०३ तक	सम्पूर्ण लीलाके भावसहित दस पाठ प्रतिदिन करें।	समग्र लीला जीवन्के अन्तिम पड़ावतक प्रत्यक्ष अनुभवमें मूर्त्त हो उठेगी।
४	छन्द ३०४ से ३२६तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व पूर्वराग-महाभावकी हृदयमें प्रतिष्ठा होगी।
४	छन्द ३२७से ३२८तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव – प्रेमकी इन आठों स्तरोंका चित्तमें संस्पर्श।

विशेष मंत्र

इतना सा ही कह सकती हूँ, वह मिलन अर्ध पलका, प्रियतम !
आधार-शिला बनकर उसपर बनने प्रासाद लगा, प्रियतम !
जिसमें विभागके स्नेह, मान, वे प्रणय, राग, आगे प्रियतम !
अनुराग, भाव, फिर महाभाव, सातों अप्रतिम बने, प्रियतम !
अधिदेवी उन सातोंकी थी, वह राजतनूजा ही, प्रियतम !

४	छन्द ३३४ से ३६१तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व सख्यरस-प्रधान तत्सुखिया-भावकी प्रतिष्ठा। श्रीदाम भैयाके दर्शन एवं मृत्युके पश्चात् उनमें प्रतिष्ठा।
४	छन्द ३७५से ४०४तक	प्रतिदिन १० माला भावसहित पाठ	जीवनकी संध्याके पूर्व इन छन्दोमें वर्णित श्रीराधाभावकी सम्पूर्ण अनुभूतियोंमें चित्त डूबने लगेगा।

विशेष मंत्र

संदेश एक है श्रीपदमें उन नीलदेवताका, प्रियतम !
सेवा न बनी कुछ भी सचमुच, अरसिक मुझ किंकरसे, प्रियतम !
अपनी ही ओर देख उरमें अविचल निवास देना, प्रियतम !
है नहीं मनोभ्रम, सच्ची है घटना सब इस तनकी, प्रियतम !
माला है झूल रही उरपर, झूलेगी नित्य तथा, प्रियतम !

• • •

बोला 'श्रीपदमें प्रणति सरस उनकी पल पल शत है, प्रियतम !
है और विनम्र निवेदन यह, उनके अन्तरस्तलका, प्रियतम !
'प्रियतमे, रखो, धीरज मुझसे अब नित्य मिलन होगा, प्रियतम !
जय हो ! जय हो ! निरवधि जय हो !' श्रीचरणसरोरुहकी, प्रियतम !

इन मंत्रोंकी दस मालाके जपसे प्रियतम नीलसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दनसे नित्य अविच्छिन्न मिलनका विधान।

पंचम शतक

सम्पूर्ण पंचम शतकके भावसहित प्रतिदिन १० पाठसे जीवनकी संध्याके पूर्व सम्पूर्ण लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन होगा। मंजुश्यामाका तत्वरहस्य हृदयंगम होगा, उनके जन्मोत्सवकी झाँकी प्रत्यक्ष होगी।

षष्ठम शतक

छन्द सं. ५०६से ५३०तक - प्रतिदिन भावसहित १० पाठसे जीवनकी संध्याके पूर्व वंशीनाद श्रवणगोचर होगा। चर अचरपर उसके प्रभावका प्रत्यक्ष अनुभव होगा।

छन्द सं. ५३१से ५५७तक - प्रतिदिन भावसहित १० पाठसे जीवनकी संध्याके पूर्व श्रीकृष्ण एवं सखावर्गकी गोचारणलीलाका दर्शन। श्रीसुन्दरीसरोवरका दर्शन। सद्यस्नाता किशोरी राधा एवं सखियोंके सौन्दर्यका दर्शन। ब्रजकिशोर नीलमणिके पूर्वरागकी तत्वरहस्य सहित अनुभूति।

छन्द सं. ५५८से ५७५तक - प्रतिदिन भावसहित १० पाठसे जीवनकी संध्याके पूर्व भगवती पौर्णमासीके दर्शन, उपनन्दपत्नी पीवरी, यशोदामैया, कीर्त्तिदा मैया आदि मातृवर्गकी वात्सल्यवती गोपांगनाओंके दर्शन, समग्र रन्धनलीलाके दर्शन होंगे।

सप्तमसे एकादश शतक

इन शतकोंके प्रतिदिवस भावसहित १० पाठ करनेसे जीवनकी संध्याके पूर्व इन शतकोंमें वर्णित सभी लीलाओंकी अनुभूति होगी।

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

षष्ठम खण्ड (प्रथम भाग)

प्रियतम–काव्य – छन्दार्थ एवं विस्तृत टीका

अनुक्रमणिका

प्रारम्भिक

प्रथम शतक

द्वितीय शतक

तृतीय शतक

चतुर्थ शतक

पंचम शतक

महर्षि दुर्वासा द्वारा श्रीराधाको वरदानकी प्राप्ति

षष्ठम शतक

श्रीकृष्णका पूर्वराग

❋ ❋ ❋

चित्रसूची

।।श्रीराधा।।

अथ श्रीप्रियतम काव्यम्

प्रथम शतक

सार-संक्षेप

(१)श्रीराधाभावमें प्रतिष्ठित हुए पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दृश्यरूपमें सर्वत्र अपने प्रियतम श्रीकृष्णको देखते हुए अपनी 'कृष्णान्धता' की स्थितिका प्रकाश करते हैं एवं अपने समग्र दृश्यको श्रीकृष्णप्रीतिके निर्मल सिन्धुमे नहीं डुबो पानेकी अपनी असमर्थतावश ' प्यार न दे पाई, प्रियतम!'कहकर महाभावगत अतिशय दैन्यका प्रकाश कर रहे हैं। (छन्द सं. १)

(२)'' मैं वस्तुतः वही श्रीराधा हूँ, जिसे तुम 'प्राणोंकी रानी' कहकर सम्बोधित करते हो' - कहकर पू.गुरुदेव अपनी महाभावमयी स्थितिका परिचय दे रहे हैं, किन्तु साथ ही 'भग्न हुआ-सा था गृह' कहकर अपने पाञ्चभौतिक शरीर (कलेवर) की तत्कालीन परिस्थितियोंका आलेख कर रहे हैं। (छन्द सं. २ से १३)

(३) वृभभानुपुरकी श्रीराधाकी सखियों एवं कुटुम्बियोंका वर्णन। (छन्द सं. १४-१५)

(४) पौगण्ड एवं कैशोर वयकी सन्धिमें श्रीराधामें 'राधा-काम्य-कानन' से पुष्प-चयन कर लानेकी इच्छाका उदय होना। राधा-काम्य-काननका माहात्म्य। (छन्द सं. १६-२०)

(५) महारानी कीर्त्तिदाके सम्मुख उनके विगत जीवन एवं सुहाग-निशाके स्मृति-चित्रोंका प्रकाश होना। (छन्द सं. २१-२४)

(६) युवराज वृषभानु द्वारा शिवरात्रिपर महादेवी त्रिपुरसुन्दरीकी मन्त्र-दीक्षा-ग्रहण एवं हरिशयनी एाकदशीसे श्रीदेवीका अर्चन प्रारंभ - श्रीदेवीकी प्रतिमाका प्रकट प्रभाव । (छन्द सं. २५- ३१)

(७) कुन्दवल्लीका जन्म (छन्द ३२ से ४१) तथा श्रीदामका जन्म (छन्द सं. ४२ से ४५)

(८) श्रीललिता सखीका जन्म (छन्द ४६ से ५५) , श्रीराधाजन्म (छन्द ६३ से ८७ तक) एवं श्रीमञ्जुश्यामाका जन्म (छन्द सं ८८ से ९६ तक)

(९) श्रीराधाकिशोरीको 'काम्यवन'से पुष्प बीन लानेकी आज्ञा। (छन्द सं.९६ से १०१)



ललिताम्बामयीं ध्येयां रामदत्तापदाभिधाम् ।
आत्मस्वरूपिणीं साध्वीं वन्देऽहं धर्ममातरम् ।। (पृष्ठ २७)

(भगवती ललिताम्बा-स्वरूपिणी पू. माँ श्रीमती रामदेई, पू. श्रीपोद्दार महाराज की धर्मपत्नी)



कृष्णस्वरूपिणीं वन्दे हनुमद्गुप्तसंततिम् ।
नित्यां धर्मस्वसारं वै मंजुश्यामां सहोदराम् ।। (पृष्ठ २७)

(राधानुजा श्रीमंजुश्यामाजी-स्वरूपिणी अ.सौ. श्रीमती सावित्रीबाई, पू. श्रीपोद्दार महाराज की सुपुत्री)

अथ श्रीप्रियतमकाव्यम्

वन्दना

ललिताम्बामयीं ध्येयां रामदत्तापदाभिधाम् ।
आत्मस्वरूपिणीं साध्वीं वन्देऽहं धर्ममातरम् ॥१॥

मेरी आत्मरूपिणी, परम वन्दनीया, भगवती श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बा-स्वरूपा, रामदत्ता(रामदेई) नामसे जानी जानेवाली, अपनी साध्वी धर्ममाताकी मैं वन्दना करता हूँ।।१।।राधा।।

कृष्णस्वरूपिणीं वन्दे हनुमद्गुप्तसन्ततिम् ।
नित्यां धर्मस्वसारं वै मञ्जुश्यामां सहोदराम् ॥२॥

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सन्तति(पुत्री) सावित्रीकी मैं निश्चय ही वन्दना करता हूँ, धर्मनिष्ठा ही जिसका सर्वस्व है, तथा जिसके रूपमें नीलसुन्दर कृष्ण ही मेरी चिरन्तन सहोदरा छोटी बहन मञ्जुश्यामा बने हुए नित्य विराजित हैं।।२।।कृष्ण।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

जिज्ञासा

परम पूज्य श्रीराधाबाबाने समाधिभाषामें उद्धृत अपने इस खण्डकाव्यमें मङ्गलाचरण करते हुए प्रारंभमें ही रामदत्ता(रामदेई) नामसे ख्यात, श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नीकी अपनी धर्ममाताके रूपमें वन्दना की है एवं उन्हें परम वन्दनीया, ललिताम्बास्वरूपा, श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी बतलाया है; कृपया इसे विस्तार-सहित समझानेकी कृपा करें।

समाधान

अनादिकालीन रसकी यह परिपाटी ही है कि जब किसी महाभाग्यवान् जीवकी हृदयगुहामें दिव्य अप्राकृत नराकृति परात्पर परब्रह्म पूर्णरसमय रसिकेन्द्र-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णका पदार्पण होता है, उसके पूर्व ही उसके हृदय-मन्दिरको अप्राकृत बनानेके लिये अचिन्त्य लीलामहाशक्ति स्वयं सूत्रधारिणी बनकर उसमें अभिनव रंगमञ्च सृजन करनेको प्रवेश करती हैं। वे अघटन-घटना-पटीयसी सर्वसमर्था लीलामहाशक्ति पहले उस जीव-हृदयको अपने चिन्मय वात्सल्यरससे आप्यायित करती हैं। कदाचित् अनन्त सौभाग्यवश कोई महाभाग्यवान् द्रष्टा उस पवित्रतम हृदयभूमिमें झाँक पाता है तो देखता है कि उस पावनकालमें वह हृदय प्राकृत रहता ही नहीं है। वह तो विशुद्ध अप्राकृत सुधा-रस-सरोवर ही बन जाता है। अचिन्त्य लीलामहाशक्ति उस चित्तके अणु-अणुको पहले विशुद्ध रसमें पूर्णतया निमज्जित करती हैं। जब रस-सम्मार्जित हुआ वह परम विशुद्ध हो उठता है, तभी उस पावन रस-मसृण हृदयभूमिमें चिन्मय अद्भुत अपूर्व नीलारविन्दको विकसित करनेकी उर्वरता प्राप्त होती है। तभी अनिन्द्यसुन्दर भगवान्‌की अतुलनीय रूप-गुण-माधुरीका विस्तार उस भूमिमें होना संभव होता है। प्रत्येक रस-साधकके लिये इस प्रक्रियाको पूरी करना नितान्त परमावश्यक होता ही है।

पू.गुरुदेव भी अपने प्रारंभिक रस-साधनाके कालमें इस प्रक्रियासे गुजरे हैं। बात उन दिनोंकी है, जिन दिनों पू.गुरुदेवने अपना सर्वस्व समर्पणकर, अपनी समग्र अहंताजन्य योग्यता, ज्ञान और वैराग्यको किनारेकर, श्रीपोद्दार महाराजकी शरण शिष्यरूपमें ग्रहण की थी। अपनी वात्सल्यमयी देह-जननीका तो उन्होंने संन्यासकालमें ही त्याग कर दिया था, किन्तु अनादि अनन्तकालसे सभी माताओंको अपने वात्सल्यकणकी छाया मात्र देकर वात्सल्यवती बनानेवाली जगज्जननीके वात्सल्यको वे भला, कैसे त्याग सकते थे ? पू.गुरुदेवको उन्हीं दिनों एक विलक्षण दिव्य स्वप्न हुआ। वस्तुतः अचिन्त्य लीलामहाशक्ति योगमाया ही इस स्वप्नमें उनके सम्मुख प्रकट हुई थीं। उनके रोम-रोमसे कोटि-कोटि सूर्य-समप्रभ लोकोत्तर आह्लादक महातेजोराशि प्रकीर्ण हो रही थी। पू.गुरुदेव इस विलक्षण तेजपुञ्ज देवीके दर्शनकर चमत्कृत एवं रोमाञ्चित हो उठे। उन्हें यही आश्चर्य था कि कर-चरणादि अवयवोंसे युक्त निरतिशय निराविल सुन्दरी इस देवीकी आकृति श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी अ.सौ. रामदेई माताके सरीखी थी। पू.गुरुदेवने इस देवीका यथाविधि भावात्मक पूजन करना चाहा तो उन्हें अपने अस्थि-मांसादियुक्त हाथोंसे भगवतीके परम पवित्र चरणोंको संस्पर्श करनेमें भी हिचक होने लगी। भला कोई मलिन जन परमपूत देवप्रतिमाको संस्पर्श भी कैसे करे ? पू.गुरुदेवकी हिचक एवं सङ्कोचको देखकर भगवती मुसकायीं। इस मुसकानने एक जादू किया। पू.गुरुदेव व्यक्ति रहे ही नहीं; वे सर्वकारणभूता सच्चिदानन्दमयी परमात्मशक्तिके संग्राहक – योग्य पात्र बन गये। यह घटना संभवतः सन् १९४० ई.में गोरखपुरकी है।

पू.गुरुदेवकी तो सन् १९३६ ई.से ही ऐसी स्थिति थी कि उन्हें स्वप्न-जागरण – सर्वकाल वंशीविमोहन श्रीकृष्ण अपने हृदयदेशमें प्रकट प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते रहते थे। उन्होंने तत्क्षण ही अपने आराध्यसे पूछा – "प्राणनाथ ! यह स्त्रीदेहधारिणी विलक्षण कृपामयी महाशक्ति कौन हैं ?" तत्क्षण ही उनके अन्तःकरणमें से ही भगवान् श्रीकृष्णकी परम मधुर चिन्मय ध्वनि उन्हें श्रवणगोचर हुई –"ये ही तो मेरी प्रकट-अप्रकट सम्पूर्ण लीलाओंकी सूत्रधार, सञ्चालनकर्त्री योगमाया महाशक्ति हैं। इन महात्रिपुरसुन्दरी आद्या महाशक्तिको प्रणाम करो।"

अपने प्राणपतिके इस समादेशको सुनते ही पू.गुरुदेवके अन्तर्हृदयका आनन्दस्रोत तरङ्गित हो उठा। इस तरङ्गायमान निराविल भावधाराने पच्चीस वर्षके तरुण संन्यासी पू.गुरुदेवको एक स्तनपायी शिशुके रूपमें परिवर्त्तित कर दिया। उस समय आश्रयालंबनके रूपमें तो वे स्वयं एक अबोध शिशुके रूपमें अवस्थित थे और उनका विषयालम्बन बनी थीं – जगन्माता भगवती आद्यामहाशक्ति। उन वात्सल्य-रस-घन-विग्रहा जगन्माताका हृदय-सञ्चित समग्र स्नेहरस स्रवित हो रहा था – अपने वक्षस्थलसे मुख सटाये अबोध शिशु बने पू.गुरुदेवपर। पू.गुरुदेव देख रहे थे कि जगन्माताका स्नेह कोई भी व्यवधान नहीं पाकर अश्रुविन्दुओंके रूपमें झरने लगा है। पू.गुरुदेव अबोध शिशुरूपमें जगन्माताके वक्षस्थलसे चिपक गये । पू.गुरुदेवने देखा कि भगवती उन्हें सम्प्रेरित कर रही हैं कि वे उनके मुखकी ओर न देखकर, सम्मुख देखें। पू.गुरुदेवने ज्योंही सम्मुख दृष्टिपात किया, उन्हें अपने समक्ष ब्रजराज्यके विलक्षण निकुञ्ज दृष्टिगोचर होने लगे। पू.गुरुदेव जगन्माताके वक्षस्थलसे ही मुख सटाये उन अनोखे ब्रजनिकुञ्जोंको निरखने लगे। पू.गुरुदेवने देखा कि बिल्ववृक्षोंके हरे-भरे कुञ्जमें श्रीपोद्दार महाराज विराजमान हैं। ज्योंही पू.गुरुदेवकी दृष्टि श्रीपोद्दार महाराजपर पड़ी, जगन्माताने अपने हाथोंके सङ्केतसे निर्देश किया कि इन्हें ही अपना सर्वस्व मान ले।

जिस समय पू.गुरुदेव उपरोक्त दृश्य देख रहे थे, उस समय उनकी दशा न जागृत् ही कही जा सकती थी, न ही स्वप्नमयी। क्योंकि स्वप्न तो रजोगुण-तमोगुणप्रधान होता है एवं पू.गुरुदेवमें उस समय अन्तर्हृदयका सम्पूर्ण आनन्दस्रोत् तरङ्गायित हो रहा था। वह कैसी दशा थी, उसे बतलानेकी जड़ शब्दोंमें शक्ति ही नहीं है। सर्वसाधारणको हृदयङ्गम करानेको ही इसे स्वप्न संज्ञा दी गयी है।

इस अन्तश्चेतनाके जगत्में जबसे पू.गुरुदेवको जगन्माताके श्रीपोद्दार महाराजकी पत्नी सरीखी आकृतिमें दर्शन हुए, तभीसे, वे उन्हें अपनी आत्म-स्वरूपिणी परम वन्दनीया श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बास्वरूपा ही मानते रहे हैं। इसी सन्दर्भमें उन्होंने अपने समाधिभाषामें उद्धृत इस खण्डकाव्यमें श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी अ.सौ. रामदेईकी रामदत्ता कहकर वन्दना की है।

इस घटनाको विस्तारपूर्वक जाननेके इच्छुक पाठकोंको 'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा –प्रथम खण्ड' नामक ग्रन्थके पृष्ठ संख्या २८४-२८५ में 'विलक्षण दिव्य स्वप्न' शीर्षक अध्याय पढ़ना चाहिये।

जिज्ञासा

कृपया पूर्वप्रसङ्गके समान श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सन्तति अ.सौ. बाई सावित्रीके महत्त्वका भी विस्तारसे उल्लेख करें, जिनकी प्रशस्ति पू.गुरुदेवने इस दूसरे छन्दमें की है।

समाधान

बात सन् १९३७ ई.की है। श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके साथ पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा गीताप्रेसमें ठहरे थे। श्रीसेठजीने पू.गुरुदेवको जिस कमरेमें ठहराया था, वह वही कमरा था, जिसमें आठ वर्ष पूर्व श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री अ.सौ. सावित्रीबाईका प्रसव हुआ था।

प्रभातकाल था, और निरे ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही पू.गुरुदेव स्नानादि क्रिया सम्पन्नकर अपने इष्टदेवके ध्यानमें निरत हो गये थे। उन दिनों उनके ध्यानकी पद्धति यही थी कि वे अपने इष्टके चित्रकी छविको पहले एकटक देखते और तब उसे नेत्र मूँदकर अपने हृदयदेशमें पूरा-का-पूरा ज्यों-का-त्यों उतार लेते थे। ऐसे करना पू.गुरुदेवका नित्यका नियम था।

उस दिवस पू.गुरुदेवका ध्यानमें मन अत्यधिक ही एकाग्र हो उठा था। ध्यानक्रिया क्रमशः इतनी प्रगाढ़ हो उठी कि उन्हें खुली आँखों ही चित्र जीवन्त अनुभव होने लगा। सर्वप्रथम उनकी दृष्टि चित्रपटके होठोंमें अटकी और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानों वे होठ सजीव, अलौकिक एवं दिव्य हैं। उन होठोंके अणु-अणुमेंसे परम मधुर शीतल प्रकाश फूट रहा है। धीरे-धीरे होठोंसे लेकर सम्पूर्ण चित्रपट ही जीवन्त, चिन्मय होता चला गया।

उस दिवस पू.गुरुदेवके लिये एक और आश्चर्य सङ्घटित हुआ। चित्रपटके सजीव होनेके उपरान्त शनैः-शनैः उन्हें अपने सम्पूर्ण अङ्ग-संस्थानोंमें भी विलक्षण नारीत्वका समावेश होता दृष्टिगोचर होने लगा। अबतक तो चित्रपटमें मुरली-मनोहर श्रीकृष्णके साथ उन्हें श्रीराधाजी ही दिखती थीं। वे स्वयं तो उन्हें इन दोनों छवियोंके द्रष्टा, पृथक् शरीररूपमें ही अनुभव होते थे। परन्तु आज तो यह चमत्कार ही था कि उनके स्वयंके शरीरके स्थानपर भी उन्हें एक विलक्षण, कमनीय नारी दृष्टिगोचर हो रही थी।

वह नारी चित्तहारी, सुन्दर शृङ्गारसे सुसज्जित थी। उनका मुख पूर्ण विकसित अरविन्दके सदृश शोभा पा रहा था। उनके रोमछिद्रोंसे सौरभके झौंके लहक रहे थे। उनके अधरोंमें अभिनव अमृतके सदृश मधुर मधु परिपूरित था। उनकी वय चौदह वर्ष एवं कुछ माहकी ही थी। उनके इस प्रफुल्लित मुखचन्द्रका दर्शन कर रहे थे – चिन्मयवपु वनमाली। पू.गुरुदेवके प्राणवल्लभ प्राणाराम प्रियतमके लोचन-चञ्चरीक उनके आनन-सरोजपर मुग्ध होकर मँडरा रहे थे, मानो वे युगों-युगोंसे पिपासातुर हों। चरम उत्कण्ठातुर उनकी मधुपान-लालसा क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही थी।

सहसा एक अतिशय सरस मधुर वाणी उनके श्रवणेन्द्रियोंमें गूँज उठी – 'हे अनाविल सुख-स्वरूपिणी मेरी प्राणेश्वरी ! तुम ही एकमात्र मेरे जीवनकी अवलम्बनरूपा हो।'

इस वचन-माधुरीकी महावेगशाली ऊर्मियोंमें पू.गुरुदेव पूर्णतया ही निमग्न हो गये। उनके नेत्र स्थिर एवं निमीलित हो उठे। उन्हें सर्वथा ही विस्मृत हो गया कि वे संन्यासीवेषमें कोई पुरुषदेह हैं।

पू.गुरुदेवकी यह आन्तरिक भावदशा फिर यावज्जीवन ज्यों-की-त्यों ही बनी रही। एक दिवस मेरे पूर्वाश्रमके मामा श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको वे अपनी आन्तरिक स्थितिका रहस्य खोलकर सुना रहे थे – 'गोस्वामीजी ! उस दिवसके पश्चात् मैं अपनी कायामें रहकर भी कभी अपनी कायामें नहीं रहा। जैसे साँप अपनी त्यागी हुई केंचुलीको स्वयं देखता है, साँपकी केंचुलीमें साँपका मुख, आँख आदि सभी आकृतियाँ ज्यों-की-त्यों साँपके समान ही होती हैं, परन्तु साँप उससे सर्वथा असंपृक्त कुछ और ही होता है, ठीक इसी प्रकार आज मेरी स्थिति समझ लीजिये।'

पू.गुरुदेवके कथनका अर्थ यही था कि जीव जब भागवती लीलाजगत्का पात्र बन जाता है एवं उसे कोई चिन्मय लीलादेह प्राप्त हो जाती है, उसी क्षण उसकी प्रारब्ध कर्मराशि भी जल जाती है। इसके फलस्वरूप होना तो यही चाहिये कि तत्क्षण ही जीवको मिली प्रारब्ध-भोग-देह भी विनष्ट हो जाय; परन्तु कभी-कभी भगवान् ऐसे विलक्षण कृपापात्र जीवोंसे अपना कार्य करानेकी महाइच्छा कर बैठते हैं। अतः वे स्वयं उस देहको पकड़ लेते हैं और उसमें रहने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें जीव भगवान्में एकमेक हुआ भगवान्के सम्बन्धसे उस देहमें रहता भी है,

एवं नहीं भी रहता। नहीं रहता – इस अर्थमें कि वह अपनी देहको भागवती स्मरणमें सर्वथा सर्वांशमें ही भूल चुका होता है, और उसे अपने नाम-रूपका भी विस्मरण हो जाता है; एवं रहता है – इस अंशमें कि भगवान्‌में वह पूर्णतया ओतप्रोत है और भगवान् उस देहको ग्रहण किये हुए हैं।

श्रीगोस्वामीजीके साथ-साथ लेखक भी उस दिवस पू.गुरुदेवसे यह सत्सङ्ग-वार्त्ता सुन रहा था। पू.गुरुदेव कह रहे थे – 'गोस्वामीजी महाराज ! सरिताके आप्लावनके कारण जो स्वामी चक्रधर नामक पोखरा उस दिवस विलीन हो गया, तो उस पोखरेका रूप, संज्ञा, उसके जलका स्वाद एवं उसके जलकी गंभीरता कुछ भी पहलेवाली नहीं रही; किन्तु अप्रतिम स्नेही श्रीकृष्णने अपने प्यारवश इस पोखरेको आज भी बाह्यरूपमें ज्यों-का-त्यों, वैसे-का-वैसा ही बनाया हुआ है। यहाँतक कि उस गीताप्रेसके कमरेमें प्रथम रसप्लावनके समय ही उन्होंने सङ्केत कर दिया था कि वे स्वयं इसी कक्षको अपनी प्रसूतिगृहकी संज्ञा देते हुए, आजके आठ वर्ष पूर्व, स्वयं मेरी सेवार्थ श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री – धर्मभगिनी अ.सौ. सावित्रीबाईके रूपमें जन्म ले चुके हैं।

श्रीगोस्वामीजीके सम्मुख पू.गुरुदेवने अपनी उक्तिको काव्यरूपमें प्रस्तुत करते हुए कहा -

होता न स्वभाव कहीं मेरी इस भगिनीका तुम-सा, प्रियतम !
थी पाँख भले बन्धनमें, पर उड़ जाते प्राण कभी, प्रियतम !
हो दैवदलित यदि रह जाते, नीरस हो जाते ये, प्रियतम !
कैसे नहलाती मैं तुमको प्रतिपल नव-धारामें, प्रियतम !

(विहगीकाव्य छन्द १०५)

"गोस्वामीजी ! यदि मेरे प्राणपति श्रीकृष्ण मेरी भगिनीका स्वभाव भी अपने समान ही प्रेम-समर्पणमय बनाकर नहीं आते, तो मेरा यह देह भले ही यहाँ पड़ा रह सकता था, प्राण कभी ही इस कलेवरको छोड़कर उड़ जाते। और दैवविधानसे यदि प्राण भी रुके रह जाते, तो वे सर्वथा नीरस होकर ही रह जाते। मैं अपने प्राण-प्रियतमको रसकी नित-नूतन धारामें नहला नहीं पाती।"

अपनी रचित काव्यधाराका प्रवाह आगे बढ़ाते पू.गुरुदेवने कहा था -

जो हो, इन रूपोंमें तुमने मुझसे है खेल किया, प्रियतम !
ये रूप सभी प्राणोंसे हैं प्रिय अधिक अतः मुझको, प्रियतम !
होकर वियोग इनका न कहीं, पड़ जाय रंग फीका, प्रियतम !
अतएव साथ लेकर ही मैं जाऊँगी इन सबको, प्रियतम !

(विहगीकाव्य छन्द सं.१०६)

जो भी हुआ हो, इन रूपोंमें मेरे प्रियतम श्रीकृष्णने मुझसे जो खेल किया है, ये सभी रूप मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं। अतः इनका कहीं मुझसे वियोग होकर प्रीतिका रंग फीका नहीं पड़ जाय, इस आशङ्कासे इन सभीको अपने साथ ही लेकर जाऊँगी।

मैया तन्मय होगी दोनों दृगकी इन पुतलीमें, प्रियतम !
जिनमें अनादि कालसे ही रहती यह दासी है, प्रियतम !
मेरी यह बहिन मिलेगी आ तुममें फिर बेसरमें, प्रियतम !
हम दोनोंकी, एवं पिंजड़ा नीली द्युतिमें वपुकी, प्रियतम !

(विहगीकाव्य छन्द सं. १०७)

"गोस्वामीजी ! इसे निश्चय ही एक अमोघ एवं अकाट्य विधान मान लीजियेगा कि मेरी अ.सौ. मैया रामदेई (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) निश्चय ही सच्चिदानन्दकन्द मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके नेत्रोंकी दृगपुतलीमें तन्मय हो जायगी, जिसके दृश्यरूपमें अनादिकालसे मैं – उनकी दासी रहती हूँ, एवं मेरी बहिन (श्रीपोद्दार महाराजकी सुपुत्री अ.सौ. सावित्रीबाई) प्रथमतया प्रियतममें स्वयंमें एवं फिर हम दोनोंकी बेसरमें आ मिलेगी। श्रीपोद्दार महाराज स्वयं जो पिंजड़ा बने मुझ पक्षिणीको अपनेमें आश्रय दिये हैं, श्रीकृष्णके वपुकी नीली द्युतिमें तल्लीन हो उठेंगे।"

ये सभी मन्तव्य छिपाये हुए पू.गुरुदेव यहाँ श्रीसावित्रीबाई (पू.पोद्दार महाराजकी पुत्री) की भी वन्दना करते हैं एवं निकुञ्जलीलामें श्रीराधारानीकी कायव्यूहस्वरूपा भगिनी मञ्जुश्यामाके रूपमें उन्हें सङ्केतित कर रहे हैं।

ऐसे काल बिताओ निसदिन।
भोर साँझ लौं साँझ भोर लौं लाड़ लड़ाइ दुहूँजन ।।
छिन विच्छेप न होइ टहलमें, कीजै यह अद्भुत पन।
सब रसको रस सार बिहार, सो चीन्हौ हम रसिकन जन।।
विविध भाँतिके और भजन जे, लौन बिना ज्यों बिंजन।
श्रीराधा पद कमल कृपा बिनु को पावै रसकौ कन।।
श्रीबृन्दावन-बास रासि-रस समय-प्रबंध परम धन।
अलबेली श्रीबंसी अलि बलि यह मानो मेरे मन।।

'हे मेरे मन, तू यह मेरी बात मान ले तथा इस रीतिसे दिन-रातका समय व्यतीत कर। सायंसे लेकर भोरतक और भोरसे लेकर सायंतक तू प्रिया-प्रियतम दोनोंके लाड़ लड़ानेमें ही लगा रह। इनकी सेवामें क्षणभर भी विक्षेप न हो पावे - यह अद्भुत व्रत तू ग्रहण करले। विहार-रस ही सारे रसोंका सार है - यह निर्णय रसिकजनोंका है। दूसरी अनेक प्रकारकी जो भजनक्रियाएँ हैं वे तो बिना नमकके व्यंजनकी भाँति बेस्वाद हैं। श्रीराधाके चरणकमलोंकी कृपाके बिना रसका कण भी किसीको नहीं मिल सकता। श्रीवृन्दावनमें वास ही समस्त रसोंकी राशि है और जीवनकालको विहार-सेवामें व्यतीत कर देना ही परमधनका संचय है। हे मेरे मन, तू श्रीअलबेली बंसीअलिजीकी इस सीखका कब पालन करेगा ?'



था खेल मनोहर वह, जिसमें गुरुदेव बने तुम थे, प्रियतम ! (पृष्ठ ३३)

।।विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ।।

प्रथम शतक

महाभावका अवतरण

इन धुँधली आँखों से सब कुछ मैं देख नहीं पाती, प्रियतम!
सपना-सा विश्व बने तुमको मैं प्यार न दे पायी, प्रियतम!
था खेल मनोहर वह, जिसमें गुरुदेव बने तुम थे, प्रियतम!
करने बैठी हूँ अब पूजा प्राणों में व्यथा लिये, प्रियतम ॥१॥

हे मेरे प्राणवल्लभ ! सुनो मैं अपनी इन धुन्धभरी आँखोंसे तुम्हारी लीलाओंका समग्र मर्मरहस्य तो प्रत्यक्ष नहीं कर पाती, किन्तु फिर भी इतना मेरा अखण्ड निश्चय अवश्य है कि इस परिदृश्यमान विश्वके रूपमें बने हुए तुम ही स्वप्नकी भाँति मेरे सम्मुख स्थित हो। तुम्हें विशुद्ध प्यार देनेकी अतीव चाह रखने पर भी हा ! हतभाग्य ! मैं तुमको हे मेरे प्राणेश्वर ! प्रेम नहीं दे पायी।

अहा ! न जाने क्यों मुझे पूर्वकालकी अत्यन्त प्रेमभरी स्मृति हो आई है जिसमें तुमने मेरे गुरुदेव पदपर आसीन होकर मेरे साथ परम मनोहर खेल किया था, पर हाय रे ! अब तो मेरे प्राणोंमें मात्र व्यथा ही शेष बची है। अब वे खेल कहाँ ? इस अपनी प्राणोंकी असीम व्यथाको ही लेकर मैं तुम्हारी आज अर्चना करने बैठी हूँ।।१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

जिज्ञासा

यहाँ पू.गुरुदेवने अपनी आँखोंको सबकुछ देखनेमें असमर्थ – धुँधली क्यों कहा है, जबकि इस काव्य-रचनाके कालमें तो वे राधा-महाभाव-सिन्धुरूप होकर लहरा रहे थे ?

समाधान

यह सत्य है कि इस काव्य-संरचनाके कालमें पू.गुरुदेव राधा-महाभावकी परमोच्च मोदन-मादन अवस्थामें प्रतिष्ठित थे। उन्हें इस कालमें देहाध्यासकी तो बात ही कहाँ, देह-ज्ञान भी नहीं रहता था। उनकी इस कालमें अधिकांशतः ऐसी दशा थी कि शश-शृङ्गवत् यह जगत् उन्हें दीखता ही नहीं था। वे जगत्दृष्टिमें पूरे श्रीकृष्णान्ध थे, क्योंकि उनकी आँखें श्रीकृष्णके अतिरिक्त कुछ भी देखनेमें पूर्णतया असमर्थ हो गयी थीं।

अपने पूर्ण रसमय रसिकेन्द्रशिरोमणि प्रियतम श्यामसुन्दरके वामभागमें उन दिनों वे निरवधिकाल श्रीराधा बने विराजित रहते, और उनकी उनसे नाना प्रकारकी पूर्ण रसमयी वार्ता होती रहती। इस परम चिन्मयी रसालापकी आह्लाद-सुधा-सरितामें वे बहे जाते, उनके अणु-अणु, रोम-रोममें उस कालमें परम अनिर्वचनीय रसमत्तताका आविर्भाव रहता।

उनके हृदयका अनुराग-सागर परमोन्नत ज्वारके रूपमें उस कालमें इतना उल्लसित एवं तरङ्गायित रहता कि अखण्ड अनुभूत उनके प्रियतमकी स्मृति भी इस प्रेमोत्कर्षरूप प्रगाढ़ अनुराग-भावमें पूरी डूब जाती। उस समय पू. गुरुदेवमें ऐसी विलक्षण तृष्णा उदय हो जाती कि उन्हें अपने प्रियतमकी गोदमें आसीन रहनेपर भी वे अननुभूत लगने लगते। उस समय उनका यही अनुभव होता कि मेरी आँखें सचमुच ही श्रीकृष्णदर्शनके अयोग्य हैं, अतः वे निश्चय ही माया-धुन्धसे युक्त – धुँधली हो गयी हैं। पू.गुरुदेवमें वस्तुतः अविद्यामयी जड़ भगवद्विमुखताकी हेतु – मायाके होनेका तो प्रश्न ही नहीं है। ये सब विलक्षण प्रेमानुभूतियाँ तो लीलासागरकी विविध ऋजु-कुटिल तरङ्गें हैं, जिनमें लहराते पू.गुरुदेव भगवती श्रीराधा बने महाभावस्वरूपमें लहरा रहे हैं।

सचमुच ही भगवल्लीला विलक्षण है। उसमें समय-समयपर सभी भावोंका लीलाक्षेत्रानुसार प्रकाश होता है। प्रगाढ़ भावमें लहराते हुए ऐसे महासिद्ध प्रेमी सन्तके सम्मुख कभी-कभी उसके रसेश्वर प्रियतम इस प्रापञ्चिक मायाजगत्‌को भी लीलाक्षेत्रके रूपमें पृथक् कर देते हैं, इस अवस्थामें जगत् दिखनेके कारण और श्रीकृष्णदर्शनानुभूतिके प्रत्यक्ष नहीं होनेसे उसे अपनी आँखें धुँधली लगने लगती हैं। इस अवस्थामें उत्पन्न महाभावगत पूर्ण दैन्यके उदय होनेसे वह अपने को भगवद्विमुख, संसार-परायण समझने लगता है। परन्तु वस्तुतः वह वैसा होता नहीं है। श्रीपोद्दार महाराजमें तो यह स्थिति प्रायः देखनेको मिलती थी जबकि वे भगवान्‌में नित्य पूर्ण प्रतिष्ठित रहते थे।

यही इन पंक्तियोंका सही अर्थ है।

जिज्ञासा

कृपया *'सपना–सा विश्व बने तुमको मैं प्यार न दे पायी प्रियतम !'* **– इन पंक्तियोंका भी विस्तृत विवेचन करें।**

समाधान

तत्त्वज्ञानी महात्मागण जब अपनी तत्त्वमयी दृष्टि से इस विराट अन्तहीन जड़ दृश्यप्रपञ्चको देखते हैं तो उन्हें यह प्रपञ्च स्वप्नके तुल्य ही क्षणभङ्गुर, असत् दृष्टिगोचर होता है। सूर्यकी प्रखर तप्त किरणोंमें जैसे मृग-मरीचिका कहीं भी त्रिकालमें नहीं होती, किन्तु पिपासातुर मृगको वह स्पष्ट सत्यवत् दिखती है, इसी भाँति भीत प्राणीको वृक्षके ठूँठमें भूतप्रेतका , रज्जुमें सर्पका एवं अज्ञानसे सीपीमें रजतका आभास होता है। इस क्षणभङ्गुर जड़ जगत्प्रपञ्चका अस्तित्व नहीं होनेपर भी इसका आभासभर स्वप्नवत् अज्ञानी लोगोंको होता है। तत्त्ववेत्ता महात्मा कहते हैं कि कर्म-वासनाओंके कारण जन्म लिये इस शरीरमें जो भी अज्ञानी अहंता-ममता कर लेते हैं, उन्हें ही शरीरगत ज्ञानेन्द्रियाँ अपने मिथ्या आभासमें जगत्प्रपञ्च स्वप्नवत् दिखाती हैं। सभी जानते हैं कि भोजनमें रुचि एवं प्रीति मात्र भूखके कारण होती है। क्षुधा निवृत्त होते ही भोजनमें रुचि और प्रीति नहीं रहती। यदि किसी कारणवश भूख लगना ही न रहे तो भोजनका प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार अज्ञानके पूर्णतया निवृत्त होते ही यह संसार भी शश-शृङ्गवत् लुप्त हो जाता है। इस क्षणभङ्गुर देहमें भोगेच्छाकी अपूर्त्ति होनेके कारण ही मनमें भोगकी लालसा बनी रहती है। यह उत्कण्ठा, ही इस प्रापञ्चिक विश्वको बनाये रखती है। इस विषय-भोगेच्छाके समूल नाश होते ही स्वप्नवत् यह विश्व कहीं ढूँढेसे भी नहीं मिलता। पर यहाँ पू.गुरुदेवकी दृष्टि इन तत्त्ववेत्ताओंके तुल्य नहीं है। उन्हें तो सर्वत्र श्रीकृष्ण ही दृश्यप्रपञ्च बने दीख रहे हैं। वे श्रीकृष्ण सत्यके परम सत्य हैं। कर्मफलजन्य शरीर तो प्रारब्धभोगके नष्ट होते ही स्वतः नष्ट)हो जाता है। सम्पूर्ण विषयभोग तो शरीरकी सत्तामें अध्यास होनेसे ही प्राप्त होते हैं। परम सत्यके सत्य श्रीकृष्ण तो श्रीराधाभावाविष्ट पू. गुरुदेवके विभु प्रेमके मूर्त्तिमान् विग्रह हैं। श्रीराधाकी मादनाख्य महाभावमयी प्रेमस्पृहा कभी समाप्त हो जाय, इसकी तो कल्पना ही नहीं है। यहाँ श्रीराधाभावमें प्रतिष्ठित पू.गुरुदेवकी आत्मा श्रीमती राधारानी न तो अनन्तकालतक समाप्त होनेवाली हैं, न ही उनके दृश्य बने श्रीकृष्णके माधुर्यका ही कहीं अन्त होनेवाला है। यहाँ तो

श्रीराधा भी अनन्त सत्य है, और उनके दृश्य बने श्रीकृष्ण भी पूर्ण-पूर्ण परम सत्य हैं; साथ ही, इनका परस्पर प्रेम तथा इस प्रेमको आस्वादित करनेवाली माधुर्यास्वादनमयी प्रेमस्पृहा भी पूर्ण-परिपूर्ण विभु एवं नित्य सत्य है। इतना ही नहीं, इन प्रिया-प्रियतमका प्रेम प्रतिक्षण नित्य नूतन वेगसे अभिवर्धित होता रहता है। श्रीमती राधारानीका प्रेम विभु होनेपर भी ज्यों-ज्यों प्रतिक्षण बढ़ता है, उसमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णके माधुर्यास्वादनकी योग्यता एवं उत्कण्ठा भी बढ़ती रहती है। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों श्रीराधारानीमें श्रीकृष्णके माधुर्यास्वादनकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती है, त्यों-ही-त्यों उनके प्रियतम श्रीकृष्णका माधुर्य भी उत्तरोत्तर बढता रहता है। उसमें पल-पल नित्य नये-नये माधुर्यका एवं नयी-नयी माधुर्य-विचित्रताओंका विकास पूर्ण वेगसे होता रहता है।

श्रीमती राधारानीका विशुद्ध प्रेम काम-गन्ध-हीन, स्वसुख-वाञ्छा-वासना-कल्पना-गन्धसे भी सर्वथा रहित, केवल श्रीकृष्ण-सुख-तात्पर्यमय, निर्मल दिव्य दर्पणके समान है। श्रीराधा-हृदयरूप यह परम निर्मल दर्पण जैसे ही अपने प्रियतम श्रीकृष्णके परमोज्ज्वल माधुर्यको ग्रहण करता है, श्रीकृष्ण- माधुरीकी जगमगाती ज्योति श्रीराधा-प्रेमरूप दर्पणको और भी अधिक स्वच्छ एवं ज्योतिग्राही बना देती है। इसी प्रकार श्रीराधा-प्रेमरूप दर्पणमें प्रतिफलित ज्योति श्रीकृष्णके माधुर्यपर अनवरतरूपसे गिरकर उस माधुर्यको और भी अधिक मधुर बना देती है। श्रीकृष्णके माधुर्यसे श्रीराधाका प्रेम एवं श्रीराधाप्रेमसे श्रीकृष्णका माधुर्य बढ़ता जाता है। दोनों ही मानों होड़ लगाकर एक-दूसरेको आप्यायित करनेके लिये उत्तरोत्तर मधुर होते रहते हैं, पर हारता कोई नहीं।

इसी महाभावमयी होड़में श्रीमती राधारानीमें एक विलक्षण दैन्य प्रकट होता है, और वे अपनेको परिपूर्ण प्रेममयी होनेपर भी प्रेमहीना अनुभव करने लगती हैं। वे समझने लगती हैं कि उनमें प्रेम देनेकी लेशभर भी योग्यता नहीं है। वे अपना दोष देखने लगती हैं और अपने प्रियतमकी असाधारण प्रेम-गुणावलीपर विमुग्ध हुईं अपनेको असमर्थ, लज्जासे गड़ी अनुभव करने लगती हैं। यही राधा-महाभावरसका एक विलक्षण रहस्य है। प्रेमराज्यमें भला अभिमानको स्थान ही कहाँ ? इसी निरभिमानतासे भरी, राधा-महाभावमें प्रतिष्ठित पू.गुरुदेवकी यह उक्ति है कि – 'हे प्रियतम श्रीकृष्ण ! तुम, जो मेरा यह विश्वात्मक दृश्य बने हो, तुम्हें मैं प्रेम नहीं दे पायी हूँ।'

श्रीराधाभावमति पू.गुरुदेवकी विलक्षण दशा है। अपने प्रियतम श्रीकृष्ण तो उन्हें परम सत्य समझमें आते हैं, शेष सभी स्वप्नवत् क्षणभङ्गुर ही दिखाई पड़ता है। इसका कारण यही है कि उनमें स्वयंका कहीं कुछ भी नहीं है। न तो उनका कर्मसे कुछ प्रयोजन है, न तत्त्वज्ञानकी उन्हें आवश्यकता है, न ही उनमें विधिसङ्गत भक्तिसाधना है, न ही अष्टाङ्गयोगकी विशिष्टता है, यहाँतक कि मुक्तिके लिये भी उनके जीवनमें कहीं कोई स्थान नहीं है। बन्धनके भयका भी उनमें लवलेश नहीं है। उनका तो सबकुछ मात्र प्रेमसागर श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं बचा है।

वे कृष्णमना हैं, कृष्ण ही उनकी मति हैं, वे देखती-सुनतीं, खाती-पहनतीं केवल श्रीकृष्ण हैं। उनके नेत्र श्रीकृष्णरूप ही हैं। अतः उन्हें ललिता, विशाखादि सखियाँ, अपनी सगी भगिनी मञ्जुश्यामा, उनका अनुज श्रीदाम, यहाँतक कि पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, चर-अचर, कुञ्ज-भूमि, भवन- आकाश सब श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण दिखाई पड़ते हैं। उनका देश, काल सब श्रीकृष्ण हैं। उन्हें अपना आपा भी श्रीकृष्ण ही दीखता है। इसी कारण उद्दीपित हुईं वे अपनेको कृष्णरूप जानती-मानती, प्रायः 'हा राधे ! हा राधे !' की करुण ध्वनि कर उठती हैं।

यदि उन्हें किसी क्षण श्रीकृष्णके अतिरिक्त कुछ भी अन्य दिखने लगता है, तो उनकी यही सुदृढ़ मान्यता होती है कि श्रीकृष्ण ही मेरी ललिता, विशाखादि सखियाँ, मेरी चिरन्तन अनुगता मञ्जुश्यामा बनकर मेरी सेवार्थ यहाँ उपस्थित हैं। उन्हें मात्र एक क्षणके लिये ही ललिता ललिताके रूपमें दीखती है, दूसरे ही क्षण उसके स्थानपर श्रीकृष्ण दीखने लगते हैं। अतः उन्हें अपना सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च ही प्रथमतः तो श्रीकृष्ण बना दीखता है और फिर वे उस दृश्यको स्वप्नवत्

देखती हुईं मात्र अपने प्रियतम श्रीकृष्णको ही सत्य मानती हैं। प्रिया श्रीराधारानीकी इसी भावदशाको दर्शाती हुई पू. गुरुदेवकी उपरोक्त पंक्तियाँ हैं।

पू.गुरुदेव द्वारा कही गयी ***''प्यार न दे पायी, प्रियतम''*** का भी यही अर्थ है कि जब वे किसी भी दृश्यमें श्रीकृष्णसे इतर कुछ अन्य देखती हैं तो वे उसे अपने प्रियतम परम प्रेमास्पद श्रीकृष्णमें घोलने लगती हैं। वे अपने परम पावन सङ्कल्पसे उसे श्रीकृष्णरूप ही बनानेको उद्यत हो उठती हैं। उनका 'प्यार' श्रीकृष्णदानके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। श्रीकृष्ण ही तो उनके मूर्त्तिमान प्रेम हैं, अतः वे अनवरत अपने प्रत्येक दृश्यको, उस दृश्यगत पात्रको श्रीकृष्णरूप प्रेमदान देती रहती हैं। इसके उपरान्त भी जब वह दृश्य अथवा वह पात्र उन्हें श्रीकृष्णरूप न दिखकर कुछ पृथक् दीखता है तो वे समझती हैं कि मैं इसे प्यार नहीं दे पाई। यह मेरी ही भाव-सामर्थ्यकी न्यूनता है कि यह मेरे प्रियतमसे भिन्न अपनी कोई पृथक् स्वतंत्र सत्ता बनाये है। यही उनके ***''प्यार न दे पायी, प्रियतम'*** कहनेका अर्थ है।

जिज्ञासा

कृपया अब इस प्रथम छन्दकी शेष दो पंक्तियोंका भी अर्थ समझावें । पू.गुरुदेव अपने प्राणोंमें ऐसी व्यथा क्यों अनुभव करते हैं एवं श्रीकृष्ण उनके गुरुदेव कब एवं कैसे बने थे ?

समाधान

अध्यात्मसाधनामें गुरुका स्थान तो अप्रतिम होता ही है। सद्गुरु पूर्ण है, सर्वज्ञान-समन्वित है, उसमें पूर्ण ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिके समन्वयसे पूर्ण विज्ञानशक्ति भी आविर्भूत होती है। उसकी इच्छाशक्ति महाइच्छाशक्तिसे एकमेक होती है। उसके सभी कार्य महाइच्छाके कारण होते हैं । उसमें अपना सङ्कल्प भी नहीं होता, क्योंकि वह अहंकारशून्य होता है। अतः महासङ्कल्पका ही उसमें बिम्ब पड़ता है। वही इसकी नियन्त्रीशक्ति होती है। ऐसे सद्गुरु महारसराज-स्वरूप श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कौन हो सकते हैं ?

पू.गुरुदेवको अपनी साधनाकी प्रथम अवस्थामें ऐसे सिद्ध गुरुकी अपेक्षा हुई। उनके सम्मुख ब्रजभाव-साधनाके सम्बन्धमें कुछ ऐसी प्रश्नावलियाँ खड़ी हो गयी थीं जिनका समाधान किसी महासिद्ध गुरुकी अहैतुकी कृपासे ही संभव था। शास्त्रके अवलोकन एवं अध्ययनसे वे प्रश्न हल नहीं हो सकते थे। पू.गुरुदेव विचारमग्न अपनी कुटीके बाहर बैठे थे। चिन्ताकी गहरी रेखाएँ उनके मुखमण्डलपर स्पष्ट थीं।

उसी समय पू.गुरुदेवके सामनेका दृश्य बदला। उन्होंने देखा कि मुस्कुराते हुए पू.पोद्दार महाराज आये हैं। वस्तुतः उस समय श्रीपोद्दार महाराजका रूप धारणकर साक्षात् श्रीकृष्ण ही उनके सम्मुख आये थे। आते ही श्रीपोद्दार महाराजने उनसे पूछा – 'बाबा ! आज आप गंभीर कैसे बैठे हैं ?' पू.गुरुदेवने उत्तर में कहा – 'मेरे मनमें ब्रजभाव सम्बन्धी एक उलझन है, जिसका समाधान गुरुकृपासे ही संभव है। अब भला मेरे गुरुपदको कौन स्वीकार करे ? सिद्धगुरुके बिना मेरे प्रश्नोंका समाधान संभव नहीं। आप सब प्रकारसे समर्थ हैं किन्तु आप मेरा गुरुपद स्वीकार करेंगे नहीं।'

श्रीपोद्दार महाराजने कहा – 'यह कौन-सी बड़ी बात है ? यह मैंने कब कहा कि मैं किसीको कभी शिष्य बनाऊँगा ही नहीं।'

पू.गुरुदेवको बहुत विस्मय हुआ। वे उल्लासमिश्रित वाणीमें पूछने लगे – 'सच-सच बतलाइये, क्या आप मेरे लिये गुरुपदको स्वीकार कर लेंगे ?' श्रीपोद्दार महाराजकी आँखोंकी मूक भाषा पू.गुरुदेवके लिये स्वीकृति प्रदान कर रही थी।

श्रीपोद्दार महाराजने कहा – 'आप अपनी दोनों हथेलियाँ मेरे सामने फैलाइये।' फिर उन्होंने हथेलियोंको उलट देनेकी आज्ञा दी जिससे नख ऊपरकी ओर हो जायँ। इसके पश्चात् वे अपनी अँगुलियोंसे पू.गुरुदेवके नखोंका स्पर्श करने लगे। पहले कनिष्ठिकाके नखका, फिर अनामिकाके, फिर मध्यमाके, फिर तर्जनीके तथा सबसे अंतमें उन्होंने करांगुष्ठोंके नखोंका स्पर्श किया। स्पर्शकी क्रियाके समाप्त होते ही श्रीपोद्दार महाराजने हँसते हुए कहा – 'लीजिये, हो गया।'

उनके स्पर्शने चमत्कार कर दिया। पू.गुरुदेवके सभी प्रश्न स्वतः ही समाधान हो गये। उसके पश्चात् उनके सभी प्रश्नोंके समाधान उन्हें स्वतः ही प्राप्त होते चले जाते थे। साधना सम्बन्धी कोई समस्या उनके लिये समस्या रही ही नहीं। समस्या उठनेके पूर्व ही उसका हल उनमें स्फुरित हो उठता था।

इन पंक्तियोंमें यही रहस्य प्रकट किया गया है।

इस घटनाको विस्तार सहित जाननेके इच्छुक पाठकोंको **'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा** – प्रथम खण्ड'के पृष्ठ सं.२८६से २८९ में वर्णित 'गुरुदीक्षा' प्रसंग पढना चाहिये।

यहाँ जिस प्राणोंकी व्यथाका उल्लेख पू.गुरुदेव अपने इस काव्यमें करते हैं उस व्यथाकी तो उनकी श्रीराधारानी घनीभूत मूर्त्ति ही है। उनकी आराध्या श्रीराधारानी के पास व्यथा, सिसकना, अनर्गल अश्रुपात एवं हाहाकारके सिवाय और कोई धन है ही नहीं । श्रीराधाका अपने प्रियतमके प्रति अति विलक्षण प्रेम है। श्रीराधाके सामने बात करते-करते ही यदि कोई 'कृष्ण' नामका उच्चारण भर कर ले तो भी वे विवश-सी होकर रुदन करने लगती हैं। एक दिवस परस्पर वार्त्तामें उनकी सखी ललिताने 'कृष्ण' नाम ले लिया। बस, 'कृष्ण' नाम सुनते ही श्रीराधारानीका सम्पूर्ण धैर्य जाता रहा। वे अपनी सखि ललितासे ही पूछने लगती हैं – 'बता बहिन ! यह 'कृष्ण' किसका नाम है ? बहिन ! मैं तेरा अनन्त जीवन उपकार मानूँगी, तू मुझे इस 'कृष्ण' नामधारी व्यक्तिसे मिला दे।' श्रीललिता तो श्रीराधारानीकी भोली उक्ति सुनकर चकित हो उठती है। वह इस पगलीको भला कैसे समझावे कि श्रीकृष्णके हृदयदेशमें तो वह नित्य ही बसी रहती हैं। किन्तु श्रीराधा तो प्रेम-प्रगाढ़तामें सबकुछ भूली हुईं निरन्तर रोती ही जाती हैं। श्रीललिता उन्हें समझाती है – 'रागान्धे ! श्रीकृष्ण तो तुम्हारे पूर्णतया प्रेमाधीन, अनुगत हैं।' किन्तु श्रीराधा समझती हैं कि ललिता उनसे परिहास कर रही है। तब ललिता उनके प्रियतमका हाथ लेकर उनके हाथमें देती है, फिर भी श्रीराधा बहुत कालतक सोचनेके पश्चात् ही अपने प्रियतमसे मिल पाती हैं।

श्रीराधारानीके विलक्षण प्रेमभावकी एक और झाँकी यहाँ प्रस्तुत है। एक दिवस अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी किसी बातपर श्रीराधारानी खीझ गयीं। ललिता, विशाखादि सखियाँ उन्हें समझाने लगीं तो वे क्रोधमें भरी कहने लगीं -'देखो ! आजसे तुम उनका नाम भी मेरे सम्मुख मत लेना। उनकी तो बात ही क्या है, मै काले रंगकी वस्तुमात्रका त्याग कर दूँगी। जीवनभर उनके विरहतापसे जलती रहूँगी, परन्तु उनसे मिलूँगी नहीं।'

मिलौं न तिनसों भूल, अब जौलौं जीवन जियौं ।
सहौं विरहको सूल, बरु ताकी ज्वाला जरौं ।।
मैं अब अपने मन यह ठानी। उनके पंथ पिऊँ नहिं पानी।।
कबहूँ नैन न अंजन लाऊँ। मृगमद भूलि न अंग चढ़ाऊँ।।
सुनौं न स्रवननि अलि पिक बानी। नील जलज परसौं नहिं पानी।।

यह उच्चारण करती-करती श्रीराधारानी रुदन करने लग जाती हैं। इस भावदशामें जो असम्बद्ध उद्गार अपनी प्राणप्रियतमाके अधरोंसे विस्फुटित हो पड़ते हैं , उन्हें उनके प्रियतम श्यामसुन्दर छिपकर सुनते हैं। उनके संयमकी

सीमा टूट जाती है। इधर तो श्रीराधारानी रोती हैं, उनके नयनोंसे बड़े-बड़े गोल-गोल रसमय अश्रुविन्दु झरते जा रहे हैं, उधर प्रियतम श्यामसुन्दर भी सुबक-सुबककर, हिचकी बाँधकर रोने लगते हैं। प्रियतमके अश्रुविन्दु अपनी अङ्कस्थिता प्रियाके कोमल कमनीय केशपाशको भिगोते जाते हैं और प्रियाके अश्रु प्रियतमके हृदयस्थलको आर्द्र करते जाते हैं।

एक झाँकी और देखें – 'निभृतनिकुञ्जका हरीतिमापूर्ण उपवन। उस सुवासित मनोरम एकान्त उपवनमें नीलसुन्दर नित्यनिकुञ्जेश्वर विराजित हैं तथा प्रियतम नीलमणिकी जानुका सहारा लेकर विश्राम कर रही हैं – प्राणाधिका श्रीराधा। श्रीकृष्ण-प्रेममें निमग्न श्रीराधाको पूर्णतः विस्मृत हो जाता है कि मैं अपने प्राणप्रियतमके मृदुल अङ्कमें विराजित हूँ। बस, उनकी स्मृतिक्षेत्रमें रह जाता है मात्र एक ही दृश्य - प्रातःकालका समय है। मैं गोवर्धन गिरिकी उपत्यकामें पुष्पचयनके लिये आयी हूँ। पुष्पचयन करते-करते मैं देखती हूँ कि नन्दग्रामकी ओरसे गो-गोवत्सोंका विशाल समुदाय लिये नीलसुन्दर चले आ रहे हैं। गोचारणकी बेला है। नीलसुन्दर गोचारणके लिये ही गिरिराजके दूर्वादल-सङ्कुल चरणप्रदेशकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। सूर्योदय अभी कुछ देर पहले हुआ ही है, अतः वृक्षोंकी छाया दूर-दूरतक विस्तृत है। एक वृक्षकी छायामें कुछ देर ठहरकर वे मुरलीवादन करते हैं तथा पुनः आगे बढ़ जाते हैं। अग्रसर होते-होते क्रमशः उनका कलेवर वनके हरे-घने वृक्षोंकी ओटमें विलीन हो जाता है। बस, यही मात्र, एक वार नीलसुन्दरका उन्हें दर्शन मिला था। मात्र एक वार ही उन्होंने मुरली-निनाद सुना था। उसके पश्चात् तो न वे उनका दर्शन ही कर सकीं, और न कभी मुरलीकी स्वरलहरी ही सुन पायीं। वे कह उठती हैं - 'हाय ! अब वह दर्शन एवं वह मुरलीश्रवण मुझ हतभागिनीके भाग्यमें कहाँ ? दिवस और मासकी कौन कहे, उस नीलकान्तिके दर्शनकी प्रतीक्षामें युग-के-युग बीत चले। लगता है, अब उस नीलवपुका दर्शन मेरी भाग्यरेखामें लिखा ही नहीं।'

व्यथासागरकी उत्ताल लहरोंसे प्रताड़ित श्रीराधारानी धैर्य तो तब धारण करें, जब किसी दिशामें आशाका तट उन्हें दिखाई पड़े !

एक-एक पल बना युगों-सा दारुण पीड़ाका आगार।
आँखोंमें छायी वर्षाऋतु, अविरल बही अश्रु-जलधार।।
हुआ व्यथामय हृदय, कर उठे प्राण करुण-स्वर हाहाकार।
प्रियतम-विरह विषमसे सूना हुआ सहज सारा संसार।।

आशा-विरहिता विरहिणी राधाकिशोरी उस वृक्षकी छायाके नीचे आती हैं जहाँ उन्हें उनके प्रियतम नीलसुन्दरका दर्शन प्रथमतः हुआ था। श्रीराधारानीको अब ठीक अनुभव होने लगता है कि प्रियतमके विरहमें छटपटाते प्राणोंका संरक्षण उनका यह क्षीण गौर कलेवर और नहीं कर पायेगा। प्राणोंको यदि विदा ही लेनी है तो वहीं विदा दी जाय जिस वृक्षके नीचे विश्राम करते उनके प्राणवल्लभने उन्हें दर्शन दिये थे। इसीलिये भावोन्मादिनी श्रीराधा उस कदम्ब वृक्षके नीचे आयी बैठी हैं।

कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि प्रेमकी राहपर चलती श्रीराधारानीके प्राणोंकी व्यथा ही उनके दैनिक जीवनके क्षण-क्षणका उपक्रम है। श्रीराधारानी मूर्त्तिमान् प्रीतिव्यथा हैं। इस व्यथाको उनके प्राणोंसे पृथक् करना सर्वथा असंभव है। परन्तु उनकी यह व्यथा है परमानन्दमयी, उनके प्रियतम श्रीकृष्णको अपार सुखसिन्धुमें डुबोनेवाली। यह उनकी विरह-व्यथा भी श्रीकृष्ण-सुखैक-तात्पर्यमयी है। यह व्यथा भी उन्हें उनके प्रियतमका प्रेमदान है। इसलिये इस व्यथासे भी वे अपने प्रियतमका क्षण-क्षण प्रेमपूजन ही करती रहती हैं। श्रीराधारानीका सिसकना, रोना, कलपना, हाहाकार करना, मूर्च्छित हो जाना – ये सभी उनके प्रेमभावके ही परमोच्च स्तर हैं। श्रीराधारानीकी प्रेमव्यथासे हम सांसारिक जनोंकी काम-व्यथाकी तुलना हो ही नहीं सकती। हम सभी मात्र स्वार्थके लिये रोते हैं जबकि श्रीराधारानीकी

प्रगाढ व्यथा श्रीकृष्णसुखार्थ है। इसीलिये नित्याचिन्त्य भावमयी श्रीराधाकी व्यथा भी परम आदर्श, महामङ्गलमयी, पूर्ण पवित्र और श्रीकृष्णाकर्षिणी है, श्रीकृष्णको आनन्द-प्रदायिनी है। प्रियतम श्यामसुन्दरको सुखी करनेके भावके अतिरिक्त श्रीराधामें कहीं कुछ भी अन्य नहीं है।

हूँ वही, जिसे कहकर 'मेरे प्राणों की रानी'; हे प्रियतम!
थे पकड़ लिये वे हाथ, लगी मेंहदी जिनमें थी, हे प्रियतम!
पर भग्न हुआ-सा था गृह वह, जिसमें रहती बाला, प्रियतम!
थी तम से परिपूरित रजनी, जब तुम आये थे, हे प्रियतम ।।२।।

............मैं वही हूँ प्रियतम ! जिसको तुमने 'अहो मेरे प्राणोंकी रानी !' कहकर सम्बोधन किया था। और फिर मेरे दोनों हाथोंको, जिनमें मेंहदी लगी हुई थी, अपने करकमलोंसे धारण कर लिया था। किन्तु..........वह भवन टूटा हुआ-सा था, जिसमें एक किशोरवयसा रमणी बाला रहती थी। जिस समय तुम पहली बार आये थे, उस समय घोर अन्धकारसे परिपूरित रजनी साँय-साँय कर रही थी।।२।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

श्रीराधा-महाभावमें लहराते रसमत्त पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस काव्य-रचनाकी स्फुरणा होनेपर बाह्यज्ञान-राहित्य-दशामें होते हुए भी अन्तश्चेतनाके जगत्में जा पहुँचते हैं। उनके अपने अतीत जीवनके दृश्य उनके सम्मुख एक-एककर आने लगते हैं। वे देखते हैं - "गीताप्रेसका एक कमरा है। प्रभातकाल है। ब्रजरसकी साधनाके ये उनके प्रारंभिक दिन ही हैं। वे एक चित्रपटपर दृष्टि जमाये, उसे अपने चित्तमें स्थिर करनेकी साधनामें जुटे हैं। वे अपने प्रियतम नीलसुन्दरके एक-एक अङ्ग-अवयवको खूब ध्यान लगाकर देखते हैं और तब उसे नेत्र मूँदकर अपने हृदयदेशमें ज्यों-का-त्यों देखनेकी चेष्टा कर रहे हैं। सहसा ऐसी कृपा होती है कि वह चित्रपट पूरा-का-पूरा चिन्मय होकर उनके सम्मुख प्रत्यक्ष हो उठता है।

ओह ! उस समय पू.गुरुदेव सुस्पष्ट देखते हैं कि उस चित्रमें अङ्कित उनके प्रियतम श्रीकृष्णकी छविसे अनन्त अपार अधिक सुन्दर छवि जीवन्त हुई उनके सम्मुख खड़ी मुसका रही है। उस इन्द्रनीलद्युति किशोर छवि-पुरुषका सौन्दर्य कुछ ऐसा निराला है कि वे उसे निर्निमेष देखते ही रह जाते हैं। उनकी दशा काष्ठ-पुत्तलिकाकी भाँति हो उठती है। उन्हें समयोचित पूजादि – किसी कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं रहता। उनका शरीर आनन्दातिरेकसे अवश हो उठता है।

इतना ही नहीं, वे देखते हैं कि उनके स्वयंके शरीर एवं अङ्ग-संस्थानोंमें भी चिन्मय परिवर्तन हो गया है। वे स्वयं एक अनिर्वचनीया सुन्दरी किशोरीके रूपमें परिवर्त्तित हो गये हैं। वे अपने पद्मदलायत कञ्चनवर्णी कर-युगलोंको निहारते हैं। अपने हाथोंमें अतीव कलात्मक लाल-लाल मेंहदीकी संरचना देखकर तो वे सर्वथा मुग्ध हो उठते हैं। उन्हें भ्रम हो जाता है कि यह उनकी जागृत् अवस्था है कि स्वप्नावस्था है। यह क्या हो रहा है – वे स्वयंमें कुछ भी निर्णय नहीं कर पाते। उन्हें तो यही दिखता है कि नवजलधरकी अपेक्षा भी जिसकी सुन्दर कान्ति है, नवीन विद्युन्मालासे भी अधिक चमकीला जिसका मनोज्ञ पीताम्बर है, जिसका वदनचन्द्र निर्मल शारदीय पूर्ण चन्द्रमाकी अपेक्षा भी समुज्ज्वल है, जिसकी कटिमें मुरली खौंसी है, जिसकी कुञ्चित केशराशि मयूरपिच्छसे सुभूषित है, जिसके गलेमें निर्मल कान्तियुक्त श्रेष्ठ मोतियोंकी माला शोभायमान है, ऐसा एक किशोर उनके सम्मुख खड़ा मन्द-मन्द मुसका रहा है।

परम सुन्दरी किशोरी बने पू.गुरुदेवकी उस किशोरमूर्त्तिको देखकर उस समय लज्जावश ऐसी दशा होती है कि उन्हें कहीं कोई छिपनेका स्थान मिल जाय तो वे भागकर उसमें छिप जावें। वे अपना चन्द्रानन अपनी दोनों अतीव सुन्दर मेंहदी रचनासे अलंकृत हथेलियोंसे ढाँप लेते हैं। इसके उपरान्त भी उनके मनमें उस श्यामलमणि किशोरको

श्रीपोद्दार महाराजने कहा – 'आप अपनी दोनों हथेलियाँ मेरे सामने फैलाइये।' फिर उन्होंने हथेलियोंको उलट देनेकी आज्ञा दी जिससे नख ऊपरकी ओर हो जायँ। इसके पश्चात् वे अपनी अँगुलियोंसे पू.गुरुदेवके नखोंका स्पर्श करने लगे। पहले कनिष्ठिकाके नखका, फिर अनामिकाके, फिर मध्यमाके, फिर तर्जनीके तथा सबसे अंतमें उन्होंने करांगुष्ठोंके नखोंका स्पर्श किया। स्पर्शकी क्रियाके समाप्त होते ही श्रीपोद्दार महाराजने हँसते हुए कहा – 'लीजिये, हो गया।'

उनके स्पर्शने चमत्कार कर दिया। पू.गुरुदेवके सभी प्रश्न स्वतः ही समाधान हो गये। उसके पश्चात् उनके सभी प्रश्नोंके समाधान उन्हें स्वतः ही प्राप्त होते चले जाते थे। साधना सम्बन्धी कोई समस्या उनके लिये समस्या रही ही नहीं। समस्या उठनेके पूर्व ही उसका हल उनमें स्फुरित हो उठता था।

इन पंक्तियोंमें यही रहस्य प्रकट किया गया है।

इस घटनाको विस्तार सहित जाननेके इच्छुक पाठकोंको **'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा** – प्रथम खण्ड'के पृष्ठ सं.२८६से २८९ में वर्णित 'गुरुदीक्षा' प्रसंग पढना चाहिये।

यहाँ जिस प्राणोंकी व्यथाका उल्लेख पू.गुरुदेव अपने इस काव्यमें करते हैं उस व्यथाकी तो उनकी श्रीराधारानी घनीभूत मूर्त्ति ही है। उनकी आराध्या श्रीराधारानी के पास व्यथा, सिसकना, अनर्गल अश्रुपात एवं हाहाकारके सिवाय और कोई धन है ही नहीं । श्रीराधाका अपने प्रियतमके प्रति अति विलक्षण प्रेम है। श्रीराधाके सामने बात करते-करते ही यदि कोई 'कृष्ण' नामका उच्चारण भर कर ले तो भी वे विवश-सी होकर रुदन करने लगती हैं। एक दिवस परस्पर वार्त्तामें उनकी सखी ललिताने 'कृष्ण' नाम ले लिया। बस, 'कृष्ण' नाम सुनते ही श्रीराधारानीका सम्पूर्ण धैर्य जाता रहा। वे अपनी सखि ललितासे ही पूछने लगती हैं – 'बता बहिन ! यह 'कृष्ण' किसका नाम है ? बहिन ! मैं तेरा अनन्त जीवन उपकार मानूँगी, तू मुझे इस 'कृष्ण' नामधारी व्यक्तिसे मिला दे।' श्रीललिता तो श्रीराधारानीकी भोली उक्ति सुनकर चकित हो उठती है। वह इस पगलीको भला कैसे समझावे कि श्रीकृष्णके हृदयदेशमें तो वह नित्य ही बसी रहती हैं। किन्तु श्रीराधा तो प्रेम-प्रगाढ़तामें सबकुछ भूली हुईं निरन्तर रोती ही जाती हैं। श्रीललिता उन्हें समझाती है – 'रागान्धे ! श्रीकृष्ण तो तुम्हारे पूर्णतया प्रेमाधीन, अनुगत हैं।' किन्तु श्रीराधा समझती हैं कि ललिता उनसे परिहास कर रही है। तब ललिता उनके प्रियतमका हाथ लेकर उनके हाथमें देती है, फिर भी श्रीराधा बहुत कालतक सोचनेके पश्चात् ही अपने प्रियतमसे मिल पाती हैं।

श्रीराधारानीके विलक्षण प्रेमभावकी एक और झाँकी यहाँ प्रस्तुत है। एक दिवस अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी किसी बातपर श्रीराधारानी खीझ गयीं। ललिता, विशाखादि सखियाँ उन्हें समझाने लगीं तो वे क्रोधमें भरी कहने लगीं -'देखो ! आजसे तुम उनका नाम भी मेरे सम्मुख मत लेना। उनकी तो बात ही क्या है, मै काले रंगकी वस्तुमात्रका त्याग कर दूँगी। जीवनभर उनके विरहतापसे जलती रहूँगी, परन्तु उनसे मिलूँगी नहीं।'

मिलौं न तिनसों भूल, अब जौलौं जीवन जियौं ।
सहौं विरहको सूल, बरु ताकी ज्वाला जरौं ।।
मैं अब अपने मन यह ठानी। उनके पंथ पिऊँ नहिं पानी।।
कबहूँ नैन न अंजन लाऊँ। मृगमद भूलि न अंग चढ़ाऊँ।।
सुनौं न स्रवननि अलि पिक बानी। नील जलज परसौं नहिं पानी।।

यह उच्चारण करती-करती श्रीराधारानी रुदन करने लग जाती हैं। इस भावदशामें जो असम्बद्ध उद्गार अपनी प्राणप्रियतमाके अधरोंसे विस्फुटित हो पड़ते हैं , उन्हें उनके प्रियतम श्यामसुन्दर छिपकर सुनते हैं। उनके संयमकी

उस चित्तभूमिको बाह्य मलिनतासे बचानेके लिये जो कपाट (ज्ञानेन्द्रियाँ) एवं गवाक्ष (कर्मेन्द्रियाँ) थे, वे अवश्य टूटे थे। अर्थात् इन ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियोंका उपयोग उन दिनों भक्ति एवं प्रीतिसाधनाजन्य कर्मोंमें नहीं किया जा रहा था। सभी दिशाओंसे इन्हें प्रेरणा भी श्रीमद्भगवद्गीतादि शास्त्रोंके प्रवचनादि (निष्काम कर्मरूप रजोगुणी क्रिया) की ही मिलती थी, अतः उस चित्तभूमिरूप पवित्र अवनीमें रजोगुणी पवन सम्मान-प्रशंसादिकी धूलि ही भरकर लाता एवं डालता रहता था।

उस कच्चे घर में रहकर भी निर्मल थी वह बाला, प्रियतम!
था सका नहीं छू उसे एक कण बाहर से आया, प्रियतम!
थी छिपी शक्ति उसमें सहस्र पावक-पुञ्जों की, हे प्रियतम!
सामर्थ्य नहीं थी कहीं किसी में, जो दूषित कर दे, प्रियतम ॥४॥

उसी कच्चे घरमें वह बाला रहती थी। किन्तु कच्चे आवासमें रहनेपर भी अत्यन्त निर्मल थी वह । बाहरसे आया हुआ एक रजकण भी उसे छू नहीं सका था; उसमें सहस्त्र पावकपुञ्जोंकी शक्ति जो छिपी हुई थी। कहीं किसीमें सामर्थ्य नहीं थी जो उसे दूषित-मलिन बना दे ।।४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस छन्द सं.४ में एक विलक्षण रसतत्त्वका प्रकाश कर रहे हैं। वे कहते हैं कि वह बाला रहती तो अवश्य ही उस कच्चे घर (कर्मजनित पाञ्चभौतिक जड़ देह)में थी, किन्तु वह स्वयं परम निर्मल (सच्चिदानन्दमयी परात्पर परब्रह्मकी रमणी भावमें स्वरूप-लीलापरिकर) थी। उसे जड़ मायाराज्यकी स्त्री माननेकी भूल कदापि नहीं करनी चाहिये। वह तो विशुद्ध प्रेम, अनन्य प्रीति एवं एकमात्र विशुद्ध माधुर्यकी परम निर्मल प्रतिमा थी। उसे (उस विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी काम-कषायशून्य रमणीको) बाहर (प्राकृत जड़ जगत्के राज्य) से आया एक कण (किसी-न-किसी रूपमें आत्मसुखकी कल्पना-लेश-गन्धरूप कषायका अणु मात्र) छू भी नहीं सका था।

यहाँ यह समझनेकी बात है कि ब्रजलीलाके अतिरिक्त कहीं भी काम-कषाय-शून्यता नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णकी द्वारका-महिषियों, अष्ट पटरानियोंमें भी किसी-न-किसी रूपमें आत्मसुख -कल्पना-लेश- गन्धरूप कषाय रहता ही है। एकमात्र श्रीराधा और उनकी कायव्यूहस्वरूपा ब्रजाङ्गनाएँ ही ऐसी निर्मल प्रेममयी हैं, जिनको स्वसुखकाम-लेश-कल्पनाकी गन्धका एक कण भी छू नहीं पाता है।

यह बाला क्योंकि श्रीमती राधारानीकी ही कायव्यूह-स्वरूपा रमणी थी, अतः उसमें सहस्रों पावकपुञ्जोंकी शक्ति (केवल श्रीकृष्ण-सुखमयी, परम अनिवर्चनीया रसमत्त प्रेमकी ज्वाला) छिपी थी। कहीं किसी (परात्पर परब्रह्म स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके असमोर्ध्व सौन्दर्य-माधुर्य एवं रसैश्वर्य) में भी सामर्थ्य नहीं थी कि जो उस प्रेम-पवित्र बालाको दूषित (स्वसुख-वासनायुक्त) कर दे।

कैशोर रूपमें श्रीराधा और उनकी कायव्यूहरूपा गोपियोंके साथ ही अखिल- अनन्त-अतुल-सौन्दर्य- सुधा-सागर श्रीकृष्णकी अति रसमयी प्रेमलीला होती है। यहाँ स्वयं श्रीराधारानी ही अपनी कायव्यूहरूपा शक्तिके रूपमें – बालारूपमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबामें अति गोपनीयरूपमें प्रकाशित हुई हैं। इनके साथ ही उनके भाव(प्रीति)-जीवनमें आये हैं – रासरसिकशेखर, नित्य निरतिशयानन्द-स्वरूप, दिव्य दीप्तिच्छटाविभूषित, मुनि-मन-मोहन, मन्मथ-मन्मथ प्रियतम श्रीकृष्ण।

इस बालाका जीवन केवल प्रियतम-सुखमय है। यह बाला एक सांसारिक रमणी नहीं है; न ही इसका प्रेम भी लौकिक रमण-रमणी, नायक-नायिकाका प्रेम है। लौकिक नायिकामें स्वसुखलाभके लिये नायकसे मिलन है और वियोगमें दुख-ही-दुख है। परन्तु इस बालामें स्वसुख-कामनाका लेश-गन्ध भी नहीं है। इस बालाकी आशा-आकांक्षा, भोग-त्याग, विरह-मिलन, व्यवहार-बर्त्ताव – सब श्रीकृष्ण-सुखार्थ है। इसकी वियोग-व्यथासे पीड़ा, विरहताप-दग्ध देहमें प्राणोंकी रक्षाके लिये होनेवाला आर्त्त क्रन्दन भी अपने प्रियतम-सुखके लिये ही है। यह विलक्षण बाला अपने दुःखनाश अथवा आनन्दलाभके लिये कदापि नहीं रोती-कराहती। इसका आर्त्त क्रन्दन भी अपने प्रियतम-सुख-तात्पर्यार्थ ही है। जगत्का कामभाव इसे संस्पर्शित नहीं कर पाता है। इसमें अनन्त प्रियतम-सुखमय प्रेमके पावक-पुञ्जोंकी ज्वाला धधक रही है। यही इस छन्दमें निहित भाव है।

उस पथ से जो जाते, पाते पर देख भग्न गृह ही, प्रियतम !
अवकाश कहाँ किसको था, जो भीतर जाकर देखे, प्रियतम !
है मात्र खण्डहर ही प्रायः सबके मनमें आता, प्रियतम !
वे थे राही, था लगा ध्यान उनका पथ पर अपने, प्रियतम ॥५॥

किन्तु जो भी उस पथसे जाता था, उसे केवल वह टूटा हुआ घर मात्र सामने दीखता था। किसको कहाँ अवकाश था प्रियतम ! जो गृहके भीतर प्रविष्ट होकर वहाँकी वास्तविकताको जान सके। इसीलिये उसपर दृष्टि पड़ते ही प्राय सबोंकी यही धारणा होती थी कि बस, यह तो खंडहर मात्र है। ऐसा इसीलिये कि वे बिचारे राही थे, उनका ध्यान तो अपने पथपर लगा था।।५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

जिन दिनों पू.गुरुदेवमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका भावोन्मेष हुआ था, वे उस समय सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ उनकी श्रीमद्भगवद्गीताकी निष्काम कर्मयोग-प्रधान टीकाके कार्यमें जुटे थे। अतः जो भी इस टीकाका सम्पादन-कार्य करते समय उन्हें देखता था, वह उन्हें भग्नगृह (संन्यासी शरीर रूप) में ही देखता था। उसे उनके आन्तरिक जीवनको देखनेका अवकाश ही कहाँ था ? सबकी समझमें यही आता था कि यह कोई सांसारिक दुःखोंके कारण विरक्त हुआ संन्यासी है, जो श्रद्धालु होकर श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके पास ज्ञानलाभार्थ आया है। उनके सम्पर्कमें आनेवाले प्रायः भवसागरके थपेड़ों से त्रस्त संसार-यात्री ही होते थे। ऐसे लोगोंका ध्यान तो अपनी संसार-यात्राको पूरा करनेमें ही लगा रहता था।

दल तथाकथित राजाओं का, ऋषियों का, मुनियों का, प्रियतम !
कुछ सिद्धों का भी आता था एवं गन्धर्वों का, प्रियतम !
पड़ती उसपर जो दृष्टि कहीं उनकी पैनी-सी, हे प्रियतम !
वह भवन वस्तु बनता विराग अथवा विनोद की ही, प्रियतम ॥६॥

तथाकथित राजाओंका दल, ऋषियोंकी, मुनियोंकी, कुछ सिद्धोंकी एवं गन्धर्वोंकी टोली भी आ जाती थी। उस भवन(पू.गुरुदेवकी देह) पर जब उनकी पैनी दृष्टि कहीं पड़ जाती तो वह भवन या तो उनमें वैराग्यका संचार कर देता अथवा उनके लिये विनोदकी वस्तु बन जाता था।।। ६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीसेठजीके सत्संगमें सीतामऊके राजा आदि नृपति भी आते, श्रीस्वामी रामसुखदासजी-जैसे गीताशास्त्रका मनन करनेवाले मुनि तथा अच्छे साधु-संत-ऋषि भी सम्मिलित होते, महात्मा मंगलनाथजी, एकरसानन्दजी, श्रीभोलेबाबा आदि सिद्धोंका भी सम्पर्क होता और कुछ भजनादि गानेवाले सुरीले गायक गन्धर्वोंका भी आगमन होता रहता था। पू. गुरुदेव जो अल्पवयस्क, अति वैराग्यसम्पन्न साधु थे, उनपर इन सबकी पैनी जिज्ञासाभरी दृष्टि भी पड़ती, परन्तु वे उनको मात्र एक गैरिकवस्त्रधारी, त्यागपूर्ण रहनीवाला संन्यासी ही देख पाते, अतः या तो उनसे वे विनोद (मैत्री) करते अथवा विराग (उपेक्षा) करके किनारे हो जाते थे।

कुछ थे विहङ्ग उसमें अवश्य, पर थे वे सब सोये, प्रियतम!
थे नीड़ सभी के भिन्न-भिन्न, सहचरी साथ में थी, प्रियतम!
उनका था वह संसार अलग, वे थे भूले उसमें, प्रियतम!
है कौन यहाँ बाला बसती, वे क्या कैसे जानें, प्रियतम ।।७।।

उनमें कुछ विहङ्गम भी थे, पर वे सब-के-सब सोये हुए थे। सभीके नीड़ भिन्न-भिन्न थे। उनकी सहचरियाँ भी उनके साथ थीं। उन सबका अपना-अपना संसार अलग ही बसा हुआ था। वे सब-के-सब उसीमें भूले हुए थे। उनको क्या पता कि यहाँ कौनसी बाला निवास करती है। बालाके इतिवृत्तके सम्बन्धमें क्या, कैसे है,. वे इससे परिचित ही कैसे हो सकते थे।।।७।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

उन् सत्संगियोंके दलमें कुछ विहङ्गम अर्थात् विशुद्ध रागात्मिका प्रेमाभक्तिके नभमें उड़नेवाले श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी-सरीखे लोग भी थे, किन्तु वे सभी अभी अपरिपक्व साधनदशामें होनेके कारण मायाजन्य अविद्यामूलक तमोमयी निद्रामें सुषुप्त थे। उनके अपने-अपने नीड़ - आवास-गृह थे, एवं उनकी पत्नियाँ उनके साथ थीं। वे अपने अलग ही संसारमें रचे-पचे थे। वे इतने आत्मविस्मृत थे कि उन्हें उस कालमें अपने सच्चे स्वरूप - स्वयंके गोपी होनेका ज्ञान ही नहीं था। वें भला, कैसे जानते कि इस गैरिक वस्त्रधारी युवा संन्यासीके अन्तःकरणकी नियन्तृ-शक्ति बनी साक्षात् श्रीराधारानी (बाला) ही बसती हैं, इसमें निवास कर रही हैं।

वह रात नहीं थी चार पहर वाली, जो मिट जाती, प्रियतम!
हैं सब कहते अनादि उसको, जो पण्डित सच्चे हैं, प्रियतम!
होता है उसका अन्त उसी के जीवन में, बस, हे प्रियतम!
जो रूप अनिर्वचनीय तथा अद्भुत अचिन्त्य देखे, प्रियतम ।।८।।

एक तो रात्रिका समय था। दूसरे, वह रात भी चार पहरवाली नहीं थी जो मिट जाती। जो सच्चे पण्डित हैं, वे सब-के-सब उसको अनादि कहकर सत करते हैं। उनका यह भी कहना है कि उस रात्रिका अन्त केवल उसीके जीवनमें होता है, जो व्यक्ति उस अनिर्वचनीय, अद्भुत अचिन्त्य रूपको देख ले सके।।८।।

तात्विक विवेचन–विस्तार

हे प्रियतम ! कठिनाई यही थी कि वह निशा जिसमें कतिपय (विशुद्ध रागमार्गके आकांक्षी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी प्रभृति साधक) सोये थे, चार प्रहरवाली प्राकृत जगत्की दिवस-रात्रिवाली निशा नहीं थी। वह तो अनादिकालीन मायाजन्य अविद्यामयी मोह-निशा थी, जिसे मात्र सच्चे पण्डित (सत्-असत्का पूर्ण विवेचन करनेमें समर्थ मुमुक्षार्थी जन) ही पहचान सकते हैं। हे प्राणवल्लभ ! इस अविद्याप्रधान देहाध्यासजन्य माया-निशाका समूल नाश तो उसके जीवनमें ही होता है जिसके हृदयमें अखिल-रसामृतसिन्धु तुम अपने घनीभूत परमानन्द-रस-रूप लीलाविहारको प्रकट करनेकी इच्छा कर लेते हो। हे अतसी-कुसुम-सुन्दर गोपवधू-किशोर मेरे प्रियतम ! तुम इतने अनिर्वचनीय अचिन्त्य विलक्षण सुन्दर हो कि बस, एकमात्र ही सही, तुम्हारे मधुर मुसकानभरे मुखका किसीको भी दर्शनभर हो जाय, भले ही वह बड़े-से-बड़ा अहंकार-महारथी ही क्यों न हो, उसे हठपूर्वक अपना दास बना लेनेमें तुम्हें एक लवमात्र भी प्रयास नहीं करना पड़ता। जब तुम अद्वैतपथसे स्वाराज्य-सिंहासनारूढ़ शिव-ब्रह्मा-शुक-नारदादिको भी अपने अपरिसीम अखण्ड अद्वैतानन्दसे अन्धाकर निज रूप-सुधाके लुब्धकामी बनानेमें चतुर हो, तो तुम्हारे लिये अपनी प्रेमसुधावर्षिणी दृष्टि द्वारा सांसारिक मायारूप निद्राभिभूत प्राणियोंको जागृत् करना कौन कठिन कार्य है ?

इसलिये विहङ्गम सोये थे, पर थी जगती बाला, प्रियतम!
थी नींद नहीं आयी क्षणभर भी जीवन में उसके, प्रियतम!
झरती रहती आँखें, ज्वाला हृत्तल में थी जलती, प्रियतम!
था पास नहीं कोई उसके, जो अश्रु पोंछ दे, हे प्रियतम।।९।।

इसीलिये सब-के-सब विहङ्गम सोये थे........ किन्तु वह बाला तो सदा ही जागती रहती थी। उसके जीवनमें क्षणभरके लिये भी नींद नहीं आयी थी। आँखें झरती रहती थीं। हृत्तलमें ज्वाला जलती रहती थी। किन्तु उसके पास कोई नहीं था, जो उसके आँसू पोंछ दे।।।९।।

तात्विक विवेचन–विस्तार

क्योंकि इन विशुद्ध रागमार्गाकांक्षी साधकोंके जीवनमें हे प्रियतम ! तुम अखिल-रसामृत- सिन्धु प्राणपतिकी कृपा अभीतक अवतरित नहीं हुई थी, इसीलिये वे विहङ्गम अनादि माया-निद्राभिभूत घोर सुषुप्तिमें थे। किन्तु वह बाला तो सर्वतोभावेन अपने प्रियतम नीलमणिकी मादनाख्या आह्लाद-महाशक्ति थी।

'मादनोऽयं परात्परः' इस सिद्धान्तानुसार उससे श्रेष्ठ कोई होना तो संभव ही नहीं था। अतः उस चिन्मयी प्रेमशालिनी बालाके जीवनमें घोर तमोमयी प्राकृत मायाके प्रवेश करनेका तो प्रश्न ही नहीं था। उसके नेत्रोंमें तो निरन्तर उसके मन्मथ-मन्मथ प्रियतम स्मृतिरूपमें बसे रहते थे और अपने प्रियके वियोगकी प्रेमज्वाला उसके हृदयमें निरन्तर धधकती रहती थी। अपने प्रियकी भयानक वियोग-व्यथा-ज्वालासे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये उसके नेत्र अनवरत अश्रुवर्षा करते रहते थे। वह सर्वथा एकाकिनी थी, एवं कोई भी उसकी व्यथाको समझकर उसके अश्रु पौंछनेवाला वहाँ नहीं था।

रहते कुञ्चित काले हरदम थे केश खुले उसके, प्रियतम!
भीगा रहता परिधान नील नयनों की धारा से, प्रियतम!
उन जीर्ण हुए वातायन के रन्ध्रों से लगकर, हे प्रियतम!
देखा करती थी निर्निमेष लोचन से अम्बर को, प्रियतम।।१०।।

उसके काले कुञ्चित केश हरदम खुले रहते। उसका नीला परिधान उसके नयनोंकी धारासे निरन्तर आर्द्र बना रहता था। भवनके उन जीर्ण हुए वातायनके रन्ध्रोंसे लगकर वह निरन्तर निहारा करती, निर्निमेष नयनोंसे वह आकाशको ही देखा करती।।।१०।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

उस बालाका वर्ण श्वेत चम्पाकुसुम-सदृश था। मुख शारदीय शशिका गर्व हरण करता था। उसके नेत्र शरद् ऋतुके खिले हुए कमलके समान थे। अरुण अधर बिम्बफलके सदृश, स्थूल श्रोणि और क्षीण कटिप्रदेश दिव्य करधनीसे अलंकृत था। दिव्य नील पटवस्त्र वह धारण किये रहती थी। अपने प्रियतमके वियोगमें वह परम संतप्ता थी। परन्तु वह अपने दुःखनाश और आनन्दलाभके लिये रोती-कराहती नहीं थी। अवश्यमेव उसके नेत्र प्रिय-वियोगमें निरन्तर झरते रहते थे और उन झरते नेत्रोंकी अश्रु-धारासे उस किशोरी बालाका नील वस्त्र सदैव भीगा रहता था। उस बालाके आर्त्त क्रन्दनमें केवल अपने प्रियतमका सुख ही हेतु था। इस बालाको अपने इस असह्य वियोगमें भी अपने प्रियतम नीलसुन्दरकी सुख-रसमयी सन्निधिका अभाव नहीं था।

बात यह है कि भगवल्लीलाके पावनतम पूर्ण रसमय चिन्मय लीलाराज्यमें भी संयोगमें जहाँ समय-स्थान आदिकी निर्बाध स्थिति नहीं होती, वहाँ रस-निष्पत्तिके लिये लोकवत् बहुतसे प्रतिबन्धक रहते ही हैं। वियोगमें समय-स्थानकी कोई बाधा नहीं रहती। इसीलिये अपने प्रिय-वियोगके दिव्योन्मादमें वह बाला अपने प्राकृत नाम-रूपात्मक देह-आवासके मनरूपी वातायनके वृत्तिरूप रन्ध्रोंसे जुड़ी अपलक (निर्निमेष) लोचनोंसे अम्बर (नीलाकाश) में ठसाठस भरे अपने प्राण-प्रियतमको निहारा करती थी।

भ्रम होता सहसा उसे कभी, रवि उदित हो चुका, हे प्रियतम!
सुनने लगती कलरव खग का, भ्रमरों का गुञ्जन, हे प्रियतम!
स्वर-चातक का 'पी कहाँ' तथा कोयल की 'कू-कू', हे प्रियतम!
श्रवणों में आकर लग जाती, होने प्रतीति दिन की, प्रियतम।।११।।

सहसा उसे कभी भ्रम होता कि सूर्योदय हो चुका है। और फिर विहङ्गमोंका कलरव भी सुनने लग जाती थी, भ्रमरोंका गुञ्जन भी उसे स्पष्ट सुन पड़ता था। कभी वह चातकका पी-कहाँ, पी-कहाँ सुनने लग जाती थी और फिर दूसरे ही क्षण उसके कानोंमें कोयलका कुहू-कुहू स्वर प्रविष्ट होने लगता। इस प्रकार उसे दिन उग आनेकी स्पष्ट प्रतीति होने लगती थी।।११।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

उसे यदा-कदा अपने मनकी निस्पन्द एकाग्रताजन्य ध्यानावस्थासे होनेवाले प्रियदर्शनकी प्रत्यक्षवत् अनुभूतिके कारण कभी-कभी यह भ्रम हो उठता था कि वियोग-निशा समाप्त हो चुकी है और प्रिय-मिलनका सूर्योदय हो चुका है। वह अपनी विशुद्ध प्रेम-निर्मल भावधारामें मिलनोद्दीपक शुभ सङ्केत करनेवाले कागादि खगोंकी बोली, अपने प्रियतमकी मादक अङ्गगन्धसे समाकृष्ट भ्रमरोंका गुञ्जन, चातकोंकी 'पी कहाँ-पी कहाँ'(कुहू-कुहू)की मधुर वाणी, कोकिलोंका रस-कलरव सुनने लगती थी और उसे वियोग-निशाके अन्त और संयोग-दिवसके अभ्युदयकी प्रतीति हो उठती थी।

आशा की बेलि हरी होती, वे आयें आज कहीं, प्रियतम !
मिलने का फिर अनुभव करती, रस-सरिता में बहती, प्रियतम!
उठता वह बोल पहरुआ खग इतने में धीरे से, प्रियतम!
जगकर उस सपने से बाला रोने लगती थी, हे प्रियतम।।१२।।

फिर क्या था, आशाकी बेलि लहरा उठती - इस भावनासे कि आज कहीं प्रियतम आ ही जायँ। दूसरा क्षण बीतते-न-बीतते वह अनुभव करने लग जाती कि प्रियतम आ गये हैं और मेरा उनका मिलना सचमुच सङ्घटित हो रहा है। रसकी कल्लोलिनी उमड़ चलती। उसमें न जाने वह कहाँ-से-कहाँ बह जाती। इतनेमें वह पहरुआ पक्षी धीरेसे बोल उठता था। बालाका वह सुन्दर सुखद स्वप्न टूट जाता और वह रोने लग जाती थी।।१२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

उसकी प्रियतम-मिलनकी आशा हरी हो उठती थी – इस भावनासे कि कहीं आज उसके प्राणवल्लभ आ ही जावें। वह उनके मिलनका मानसिक अनुभव करने लगती और संयोग-रस-सरितामें बहने लगती थी। उसे अनुभव होने लगता कि उसके प्रियतम उसके साथ परम रसमय निकुञ्जमें विराजमान हैं। वह अपने प्रियतमसे वह मन-ही-मन नाना प्रकारके दिव्य रसालाप करने लगती। उस समय अपने परमानन्दस्वरूप प्रियतमको अपने साथ विशेष सुखानुभव करते जानकर वह आह्लाद- सुधा-सरितामें बहने लगती थी। उसमें परम अनिर्वचनीय रसमत्तताका आविर्भाव हो जाता था। अचानक ही वह पहरुआ पक्षी बोल उठता था। बालाका वह सुखद मानसिक ध्यान टूट जाता और वह पुनः विरहाग्निकी ज्वालामें दग्ध हुई रोने लगती।

महाभावस्वरूपा श्रीराधारानीमें अमूर्त्त-समूर्त्त अनन्त भावोंका विकास एवं विस्तार है। उन-उन विभिन्न भावोंके अनुसार ही तदनुरूप रसका ग्रहण उनके प्रियतम श्रीकृष्ण करते रहते हैं। इसी प्रकार श्रीराधाका प्रगाढ़ अनुराग संवर्धित होता हुआ चरम प्रेमोत्कर्षकी अभिव्यञ्जना करता है।

प्रेममें न विरह सत्य और स्थायी है, न ही मिलन स्थायी है। प्रियतमके पास रहनेपर भी प्रेमके उत्कर्षके कारण श्रीराधारानीको विरहकी प्रगाढ स्फूर्ति हो उठती है और मथुरागमनकालमें सर्वथा अमिलनमें भी नित्य मिलनका अनुभव उन्हें स्थायीरूपमें होता है। फिर यह बाला भी तो साक्षात् श्रीमती राधारानी ही है। उसमें है – अपने प्रियतमके प्रति अनुराग-महासागरका महाप्लावन, और वह उसीमें अपनेको सर्वथा आत्मविस्मृत किये रहती है।

थी राजा की पुत्री बाला, स्वर्णिम दिन थे देखे, प्रियतम !
माता उसकी थी रानी, वह दृगपुतरी थी जिसकी, प्रियतम!
उसकी थी एक बहिन छोटी, प्राणों की छाया थी, प्रियतम!
उसका था एक बड़ा भाई, प्राणों का सहचर था, प्रियतम।।१३।।

.........बाला राजाकी पुत्री थी। उसके पिता गोपराज वृषभानु थे। उसकी माता राजरानी कीर्त्तिदा थीं। अपने पिता-माताकी वह सचमुच ही दृगपुतली थी। उसकी एक सहोदरा अनुजा (छोटी बहिन) मञ्जुश्यामा थी। उसकी छोटी बहिन उसे प्राणोंकी छायाके समान प्यार करती थी। एक उसका सहोदर बड़ा भैया श्रीदाम था। वह वास्तवमें उसके प्राणोंका सहचर ही था। बालाने अपने बालपनमें स्वर्णिम सुखके दिन देखे थे।।।१३।।

अगणित सहेलियाँ थीं उसकी, प्राणों की धारा थी, प्रियतम!
दासी-दासों का था समूह, थी प्राण बनी उनके, प्रियतम!
अगणित कुटुम्बिजन थे उसके प्राणों की ऊर्मि हुए, प्रियतम!
पशु-पक्षी तक के प्राणों में वह थी निवास करती, प्रियतम।।१४।।

श्रीललिता, श्रीविशाखा, श्रीचित्रा, श्रीइन्दुलेखा, श्रीचम्पकलता, श्रीरङ्गदेवी, श्रीतुङ्गविद्या एवं श्रीसुदेवी - ये आठ उसकी मुख्य सहेलियाँ थीं, जो उसकी कायव्यूहरूपा प्राणोंकी धारा ही थीं। इन आठों मुख्य सखियोंके अतिरिक्त भी उसकी अनेकों मञ्जरियाँ एवं दासियाँ थीं, अनेकों दास थे। इन सभीके प्राण उसमें ही बसते थे। उसके अगणित कुटुम्बी लोग थे, जो उसके प्राणोंकी लहरके समान ही उसके परमात्मीय थे। वह सभीकी इतनी अधिक प्यारी थी कि मनुष्योंकी तो बात ही क्या, पशु-पक्षियोंतकके प्राणोंमें उसका निवास रहता था।।।१४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यहाँ श्रीराधारानीके परिवारजनों, सखियों, मञ्जरियों - सभीका पू.गुरुदेवके द्वारा उल्लिखित पूरा वर्णन दिया जा रहा है –

सूर्यवंशी महाराजा महीभानु एवं महारानी सुषमा

यथाकालचक्रानुसार कलिन्दनन्दिनी यमुनाके सुरम्य पुलिनपर भगवती अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया साक्षात् गोलोकधामकी छाया लेकर प्रतिबिम्बवत् अतिशय रमणीय परम पावन ब्रजप्रदेशका निर्माण करती है। इस सम्पूर्ण चौरासी कोस वर्गमें फैले ब्रजके अधिपति होते हैं – महाराजा महीभानु।

यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि महाराज महीभानुके पिता कौन थे ? उनका यहाँ उल्लेख क्यों नहीं है ? इसका उत्तर यही है कि सगुण-साकार भागवत चिन्मय धाममें मात्र उनकी पूर्वकी एवं पश्चात्की भी दो पीढ़ी ही नित्यलीलामें परिकररूपमें सम्मिलित रहती है। भगवान् नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण एवं उनकी ह्लादिनी महाशक्ति प्रिया श्रीराधारानीके नित्य चिन्मय लीलाधाम गोलोकमें भी उनकी पूर्वकी दो पीढी ही लीला-परिकरके रूपमें सम्मिलित है। इसीलिये यहाँ भी मात्र उनकी दो पीढियोंका ही उल्लेख है।

इस प्राकृत पृथ्वीलोकके माथुरमण्डल एवं ब्रजधाम–चौरासी कोसकी देश-परिधिमें भी आजके लगभग पाँच हजार एवं कुछ वर्ष पूर्व भगवान् श्रीराधामाधवके नित्य चिन्मय लीलाधाम –गोलोकका ही प्रतिबिम्बरूपमें अवतरण हुआ था। यह चिन्मयत्व चन्द्रवंशी महाराज देवमीढके पुत्र शूरसेन एवं पर्जन्य गोप तथा सूर्यवंशी बृषभानुपुर-नरेश महीभानुसे ही प्रारंभ हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णकी चतुर्व्यूह विभूतियोंमें श्रीकृष्ण, श्रीबलरामजी, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्धका ही शास्त्रोंमें उल्लेख आता है। अस्तु,

बृषभानुपुरमें महाराजा महीभानु अतिशय तेजस्वी धर्मात्मा एवं परम समृद्ध गोपराज थे। इनके पास दस कोटि दुधारू गोधन था। उन दिनोंकी यह प्रथा थी कि जिस गोपके पास एक कोटिसे अधिक गोधन होता था, वह 'बृषभानु' की उपाधि पाता था। दस लाखसे अधिक दुधारू गोधन रखनेवाले गोपको 'नन्द' उपाधि दी जाती थी। श्रीमहीभानु

गोपराज चौरासी कोसकी परिधिमें रहनेवाले सभी नन्दों एवं बृषभानुओंके एकछत्र राजा थे। उस समय माथुरमण्डलमें यदुकुलके चन्द्रवंशी महाराज शूरसेन सम्राट थे। महाराज शूरसेनके पिता देवमीढ़ मुनि थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। एक क्षत्रिय पत्नी थी, जिसकी कोखसे शूरसेनका जन्म हुआ था और दूसरी पत्नी थी वैश्यकुलकी, जिसकी कोखसे श्रीपर्जन्य गोपका जन्म हुआ।

श्रीमहीभानु गोपराजकी महाराज शूरसेनसे प्रगाढ मैत्री थी। इस मैत्रीके फलस्वरूप ही महीभानु गोपराज समग्र मथुरामण्डलको अपने ब्रजप्रदेशसे प्रचुर मात्रामें गोदुग्ध, गोघृत, मक्खन, दही एवं गोदुग्धसे बना छेना, मावा आदि मिष्ठान्न निर्यात करते थे और वहाँसे स्वर्ण, रत्न, सैन्य-उपकरण, रेशमी वस्त्र एवं अन्न सामग्री आयात करते थे। ये महाराज शूरसेन ही श्रीवसुदेवजीके पिता थे। श्रीवसुदेवजीसे ही यदुवंशी देवककी पुत्री देवकीका पाणिग्रहण हुआ था। देवकीके आठवें गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ था।

महाराज शूरसेनकी प्रेरणासे ही पर्जन्यजीको महाराज महीभानुने नन्दोंका अधिपति नियुक्त करके अपनी राजधानीके पार्श्वमें नन्दग्राममें बसाया था। इन्हीं पर्जन्य-पुत्र नन्दरायके गृहमें श्रीकृष्णको वसुदेवजी छोड़ गये थे और उनकी पुत्रीके रूपमें अवतरित भगवती योगमायाको अपने साथ 'मधुपुरी' ले गये थे। भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके पश्चात् ही कंसप्रेरित मनुजादों (राक्षसों) का इस क्षेत्रमें अनवरत प्रकोप होने लगा था। इन महाबली मनुजादोंसे अपनी रक्षा करने सभी गोप नन्दग्रामकी भूमिको त्यागकर बृहद्वन बृन्दावनमें निवासके लिये पलायन कर गये थे।

ये महाराज महीभानु ही श्रीराधारानीके पितामह थे। पराभट्टारिका आदिमहाशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरी इनकी कुलदेवी थीं। इनका सम्पूर्ण जीवन ही इन महादेवीकी उपासना एवं तपश्चर्यामें ही व्यतीत हुआ था। इन महातपस्वीको भगवान् सूर्यदेवका भी साक्षात्कार हुआ था एवं भगवान् सूर्यने प्रकट होकर इन्हें आचार्यरूपमें भगवती महादेवीकी सूर्यविद्याका सम्पूर्ण तत्व-रहस्य समझाया था और पराभट्टारिका भगवतीका सूर्यविद्या-मंत्र भी इन्हें प्रदान किया था। भगवान् सूर्यदेवके परम कृपापात्र महर्षि भागुरि इनके कुल-पुरोहित थे। इनके प्रासादमें जो भगवतीका अद्भुत स्वर्णिम विग्रह प्रतिष्ठित था, वह पूर्ण जागृत् एवं स्वयं भगवान् सूर्यदेव द्वारा स्थापित किया गया स्वयंभू विग्रह था। भगवती आद्याशक्ति महादेवी महाराज महीभानुके सम्मुख प्रत्यक्ष थीं। इनका सम्पूर्ण बृषभानुपुरनगर भगवती महादेवी द्वारा सुरक्षित था और किसी आसुरी शक्ति अथवा मायाका उसमें प्रवेश ही संभव नहीं था।

इन पूर्ण तपस्वी महापुरुष महीभानुजीकी पत्नीका नाम सुखदा था। ब्रजमण्डलमें ये सुषमा दादीके नामसे ही सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। दोनों दम्पतिका प्रायः सभी समय भगवतीकी अर्चना-उपासनामें ही व्यतीत होता था। अपने राजकाजका समग्र भार इन्होंने अपने विश्वासपात्र मन्त्रियोंको सौंप रखा था।

भगवती त्रिपुरसुन्दरीके समादेशसे ही इन्होंने यथाकाल गृहस्थधर्मका पालन करते हुए चार अति तेजस्वी धर्मात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया था। इनके सभी पुत्र पूर्ण सदाचारी, कर्त्तव्यनिष्ठ, प्रजापालक एवं भगवतीके अनन्य भक्त थे। महाराजा महीभानुके एक पुत्री थी। इनके सबसे बड़े पुत्र युवराज बृषभानुवर थे। शेष तीन पुत्र अपने बड़े भ्राताके पूर्ण अनुगत एवं सदैव उनकी सेवामें तत्पर रहते थे। इन तीनों भ्राताओंके नाम भानु, रत्नभानु एवं स्वर्भानु थे। इनकी पुत्रीका नाम भानुमुद्रा था जो काश्यभानु गोपकी पत्नी थीं।

गोपराज श्रीबृषभानुवर

गोपराज श्रीबृषभानुवरको ही श्रीराधारानीके पिता होनेका सौभाग्य मिला था। पूर्व जन्ममें ये महादानी श्रीकृष्णभक्त राजा नृगके सुपुत्र महाराजा सुचन्द्र थे। इन्होंने तथा इनकी धर्मपत्नी परम सती कलावतीने भगवान् गोलोकेश्वर श्रीकृष्णकी कठोर तपस्यापूर्वक साधना की। दम्पतिपर भगवान् प्रसन्न हुए तो इन्होंने भगवती श्रीराधारानीको अपनी पुत्रीके रूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषा व्यक्त की। भगवान् श्रीकृष्णने उनको तथाऽस्तु कहा एवं अगले जन्ममें

द्वापर युगमें बृषभानु गोपके रूपमें जन्म लेनेपर इस लालसाकी पूर्ति होनेका वर दिया। इनकी पत्नी महाभागा कलावती ही कीर्त्तिदाके रूपमें श्रीराधारानीकी माता हुईं। इधर भगवान् सूर्यदेवने भी भगवती श्रीराधाको अपनी पुत्री बनानेकी इच्छासे श्रीकृष्णकी आराधना की। भगवान् सूर्यदेवको भी यही आदेश हुआ कि वे अपना तेज महाराज महीभानुमें स्थापितकर बृषभानु गोपरूपमें जन्म लें। अतः श्रीबृषभानुजीमें भगवान् सूर्यका भी तेज निहित था, साथ ही ये नृगपुत्र सुचन्द्रके भी अवतार होनेसे अत्यन्त दानवीर, परम उदार, परम तेजस्वी धर्मात्मा एवं भगवती परमाद्या योगमाया लीला-महाशक्ति महात्रिपुरसुन्दरीके अद्वितीय कृपापात्र भक्त थे। ज्योंही ये युवराज हुए इन्होंने अपने पितृचरण महीभानुजीकी अनुमति लेकर, अपने ऊपर भगवती पराभट्टारिका महादेवीकी सेवा एवं पूजार्चनाका समग्र दायित्व ले लिया। इसके पूर्व इनके कुलाचार्य ऋषिवर जो दिव्य शक्तियोंके अधिपति, आगम शास्त्रके विज्ञाता ब्राह्मणश्रेष्ठ थे, वही इस दायित्वका निर्वाह कर रहे थे। श्रीबृषभानुजीने अनवरत सत्तर वर्ष, नौ माह एवं दो दिवस तक अतिशय भाव-संवलित चित्तसे भगवती महादेवीकी अर्चना की। इनकी धर्मपत्नी कीर्त्तिदा ने भी उनका इस साधनामें ऐसा साथ दिया, जिसकी तुलना विश्व-इतिहासमें ढूँढनेसे भी नहीं मिलती। तब एक पावन दिवस भगवती महादेवी त्रिपुरसुन्दरी इनपर प्रसन्न हो उठीं। किन्तु इस प्रत्यक्ष प्रसन्नताका प्रकाश भगवती महादेवीने महारानी कीर्त्तिदा एवं उनकी छोटी बहिन कीर्त्तिमतीपर ही किया। लीला-रहस्य अवगुण्ठित बनाये रखनेके कारण इस भेदसे श्रीबृषभानुजी तबतक अपरिचित रहे जबतक महारानी कीर्त्तिदाने ही उन्हें यथाकाल इसकी सूचना नहीं दी।

कोई कह सकता है, बृषभानुजी जैसे निर्दोष भक्तसे भगवतीने अपना लीला-रहस्य क्यों छिपाया? इसका उत्तर यही है कि बृषभानुजी ब्रजके विशुद्ध माधुर्यमय रागात्मिका वात्सल्यरतिके आश्रयभूत पात्र थे। उनका वात्सल्य-रसोत्कर्ष बिना मुग्धताके शोभा-सम्पन्न नहीं हो सकता था। मैया कीर्त्तिदाका पूर्वजन्मका घोर तपस्यारत जीवन उन्हें इस योग्य बना चुका था, जिससे उनके हृदयमें किञ्चित् ऐश्वर्य भी यदि प्रकाशित हो जाय, तब भी उनके विशुद्ध मातृवात्सल्यभावमें क्षति नहीं लगे। इसीलिये भगवतीने सर्वप्रथम मैया कीर्त्तिदा एवं मौसी कीर्त्तिमतीपर ही अपनी लीलाके रसात्मक रहस्य प्रकट किये । श्रीबृषभानुजी सर्वथा भोले, एवं मुग्ध ही बने रहे।

दिव्यधामका स्वरूप

सच्चित् परमानन्दमय गोलोकधाम समस्त दिव्य धामोंमें प्रमुख है। गोलोकधाम ही समग्र ब्रह्माण्डोंकी आत्मा है। गोलोकधामसे ही अनन्त ब्रह्माण्ड नित्य अनुप्राणित होते रहते हैं। यह नित्य सच्चिदानन्दमय परधाम सबसे विलक्षण एवं सर्वोपरि होनेपर भी सर्वत्र व्याप्त और सबमें स्थित है। इसकी पादविभूतिके एक अंशमें ही समस्त प्राकृत लोकोंकी परिसमाप्ति हो जाती है। इनसे सर्वथा अस्पृष्ट जो त्रिपादविभूति है, वह अप्राकृत सच्चिदानन्दमय धाम है। वही आदिमहाशक्ति पराभट्टारिका सोपाधिक परात्पर परब्रह्म परमात्मशक्तिका परमैश्वर्यमय श्रीपुरधाम है। उसका ही विशुद्ध सार-स्वरूप माधुर्य-रसैश्वर्यसम्पन्न गोलोकधाम है। इस परमोज्ज्वल, परम मधुर, परम कल्याणप्रद, परम सुन्दर, सर्वातिशयी, नित्य गोलोकधाममें ही बृन्दावन, मथुरा, गोकुल, नन्दग्राम, बरसाना, गिरिराज तथा यमुनापुलिन आदि दिव्य शाश्वत प्रदेश हैं। हमारा यह मर्त्यधाम पार्थिव है। यह जड़ एवं ठोस है। यहाँ एकमें दूसरा एवं दूसरेमें तीसरा नहीं रह सकता। दिव्य सच्चिन्मय परमानन्दपूर्ण गोलोकधाम इस प्रकारका जड़ एवं ठोस नहीं है। वह कैसा है, इसे वाणीसे समझाया ही नहीं जा सकता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भगवान्‌की ही भाँति वह सर्वशक्तिसम्पन्न, सर्वाधार, दिव्य प्रकाशमय, तेजोमय, नित्य सत्य भावमय है। उसीमें समस्त दिव्य लोकोंका सत्य स्फुरण है। वे साकेत, वैकुण्ठ, कैलास आदि भेदोंसे सत्य-सत्य ही अनेक होते हुए भी सत्य-सत्य एक ही हैं। इस परतम गोलोकधामकी अधीश्वरी श्रीराधारानी हैं। ये भगवान् श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्न हैं। ये गोलोकेश्वर श्रीकृष्णको परमानन्द प्रदान करनेवाली उनकी ह्लादिनी शक्ति हैं। ये श्रीकृष्णके स्वरूपकी आधार हैं और इनके स्वरूपके आधार श्रीकृष्ण हैं। ये नित्य प्रिया-प्रियतम

हैं। यह प्रिया-प्रियतमभाव कैसा है, इसे समझनेके लिये कोई लौकिक दृष्टान्त समीचीन ही नहीं है। शब्द इतना ही बता सकते हैं कि यह सर्वविलक्षण, निरुपाधि, अतुलनीय एवं अचिन्त्य है।

प्राकृत जगत् रूपमें जो भी बृषभानुपुर, गोकुल, नन्दग्राम आदि धाम, साथ ही बृषभानुजी, नन्दजी आदि ब्रजके सभी नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, गोप-गोपियाँ, अनन्त सखी-सखागण, गिरि-पहाड़, नद-नदी आदि अवतरित हुए हैं, वे सभी इनके दिव्य राज्यमें इनकी मात्र एक स्वप्न-लीलामात्र हैं।

विचित्र लीला-सम्पादिनी भगवती पराभट्टारिका त्रिपुरा सदैव लीला-वैचित्र्यके आयोजनमें लगी रहती हैं। प्रिया-प्रियतम निकुञ्जमें शयन कर रहे हैं। इसी समय प्रिया श्रीराधारानीके सामने योगमाया एक दृश्य उपस्थित करती हैं। प्रियाको स्वप्न होता है – मैं भारतवर्षमें बृषभानुपुरीमें कीर्त्तिदा माताके अङ्कमें बालिका रूपमें प्रकट हुई हूँ। स्वप्न मनका सङ्कल्प है। प्रिया राधारानी सत्य-सङ्कल्प हैं। अतः उनके इस सङ्कल्पके अनुसार भारतवर्षके ब्रजमण्डलान्तर्गत बृषभानुपुरीका प्रादुर्भाव होता है। श्रीराधारानीके दादा-दादी, पिता-माता, चाचा-चाची, मामा-मामी, नाना-नानी, फूफा-भूआ, मौसा-मौसी सखा-सखी, दास-दासी – सभीके प्रादुर्भावका घटनाक्रम प्रारंभ हो जाता है। कहनेका तात्पर्य यही है कि श्रीबृषभानुजी श्रीराधारानीके नित्य सनातन स्वरूपभूत पिता हैं । इनका शरीर तप्तस्वर्णके सदृश है। केश सर्वथा काले हैं। राज्यशासनमें इनके समान कुशल ब्रजमण्डलमें दूसरा कोई नहीं। धर्मपालनमें भी ये अद्वितीय हैं। ये दस कोटि दुधारू गौओंके स्वामी हैं।

जगन्माता कीर्त्तिदा

पुराणोंके अनुसार पितरोंकी कन्या मानसीने सच्चिदानन्दमयी योगमाया महाशक्ति जगन्माताको अपनी पुत्री बनानेकी लालसासे घोर तप किया। सूर्यकी प्रखर रश्मियोंके सदृश उसकी तेजोमयी तपःशक्तिने त्रिलोकीको विचलितं कर दिया। अन्ततः जगन्माता भगवती त्रिपुराको प्रकट होना ही पड़ा। उन्होंने उसे वरदान दिया कि सत्ययुगमें तुम्हारा जन्म मेनकाके रूपमें होगा और नगराज हिमालय तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे, उस समय पार्वतीके रूपमें मैं तेरी कोखको सफल करूँगी। इसी प्रकार त्रेतायुगमें तेरा जन्म सुनयनाके रूपमें होगा और राजा जनक तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। तब पुत्री सीताके रूपमें मैं ही धरासे प्रकट होकर तुम्हारी अयोनिजा पुत्री बनूँगी। इसी प्रकार द्वापरमें तुम कलावतीके रूपमें अवतरित होवोगी। उस समय परम दानवीर महाराजा नृगके परम धर्मात्मा सुपुत्र सुचन्द्रसे तुम्हारा पाणिग्रहण होगा। तुम दोनों नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाको अपनी पुत्रीके रूपमें प्राप्त करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी अनवरत साधना करोगे। तुम्हारी साधनाको सफल करने स्वयं वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण प्रकट होंगे एवं तुम्हें वरदान देंगे। उस वरदानके फलस्वरूप तुम्हारे पति महाराज सुचन्द्रका तो यथावसर बृषभानुपुरनरेश महीभानुके घर सुषमा महारानीकी कोखसे बृषभानुवर गोपराजके रूपमें जन्म होगा, एवं तुम एवं तुम्हारी अनुजा कीर्त्तिमती -दोनों एक साथ ही रावलाधीश परम धर्मात्मा गोपराज बिन्दुके गृहमें 'यज्ञकन्या'के रूपमें यज्ञाग्निसे प्रकट होओगी। तुम्हारी उज्ज्वल कीर्त्तिका गान देवर्षि, मुनीश्वर एवं सकल महात्मा करेंगे और तुम्हारा नामकरण कीर्त्तिदाके रूपमें विश्वविख्यात होगा। इसी प्रकार तुम्हारी अनुजा बहिनका नामकरण भी कीर्त्तिमती होगा।

यथावसर तुम्हारा पाणिग्रहण गोपराज बृषभानुवरसे होगा और तुम्हारी पुत्रीके रूपमें गोलोकेश्वरी श्रीराधा जन्मग्रहण करेंगी। तुम्हारी अनुजा छोटी बहिनका पाणिग्रहण सत्यभानु गोपके साथ होगा जिनका एक नाम कुशगोप भी होगा। बृषभानुजीके साथ सत्यभानु गोपका इतना प्रेम होगा कि इन दोनोंको लोग लव-कुशके समान सगा भाई ही मानेंगे और सत्यभानुका नाम 'कुश' ही रख देंगे।

यहाँ यह नित्य ध्यान रहे कि जैसे भगवान् श्रीकृष्ण विशुद्ध चिन्मय, आनन्दमय, प्रेम एवं रसमय हैं, ठीक इसी प्रकार ये जगन्माता कीर्त्तिदा मैया एवं कीर्त्तिमती मौसी दोनों ही विशुद्ध चिन्मयी, प्रेमभावमयी श्रीराधारानीकी जन्मदात्री

माता एवं मौसी हैं। हम लोगोंकी भाँति वस्तुतः इनका देह प्राकृत रक्त-मांसमय नहीं है। न ही ये प्रापञ्चिक, किसी सृष्टि के ब्रह्मा द्वारा कल्पित ही हैं। श्रीबृषभानुजी, उनके पिता महीभानु, उनकी पत्नी सुखदा – सभी अप्राकृत सृष्टि ही हैं। यह सदैव ध्यान रहे कि ब्रजमें उत्पन्न होनेवाला भगवल्लीलाका पात्र एक कीट भी कर्मजन्य प्रारब्धभोक्ता जीव नहीं है। ये सभी पात्र महाभाग्यवान् हैं, रसनिधि हैं, भावशरीरधारी हैं और नित्य सनातन हैं। ये सभी आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रपञ्चमय मायिक जगत्में अवतरित अवश्य हुए थे, इनकी मृत्युलोकमें अवतार-लीला ऐतिहासिक सत्य है, फिर भी ये सभी जन्म-मरणधर्मसे सर्वथा अतीत हैं। प्रेमसे छलकते हुए दिव्य नेत्रोंसे ही जगन्माता कीर्त्तिदाके पावन चरित्रका दर्शन अनुभव हो सकता है।

पद्मपुराण पाताल खण्डमें श्रीमहादेवजीके प्रति स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके वचन हैं –

नित्याः सर्वा इमा रुद्र यथाहं नित्यविग्रहः।
सखायामितरो गोपा गावो वृन्दावनं मम।।
सर्वमेतन्नित्यमेव चिदानन्द रसात्मकम्।
इदमानन्दकन्दाख्यं विद्धि वृन्दावनं मम।। (५१।७४-७५।)

अर्थात् मेरे पिता, माता, सखा, गोप, गौएँ और यह मेरा वृन्दावन – सभी नित्य और सच्चिदानन्दरसमय हैं। मेरे इस वृन्दावनका नाम आनन्दकन्द जानो।

यह सत्य है कि कलावती प्राकृत देहधारी थीं, राजा सुचन्द्र भी प्राकृत जीव थे, किन्तु इन्होंने उत्कट साधनाके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-पात्रता प्राप्त की और उन्हींकी कृपासे जन्मान्तरमें ये सहज भावदेहको प्राप्त हुए। जैसे शरीरके स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण आदि भेद होते हैं, ऐसे ही एक भावदेह भी होता है। यह भावदेह न कर्मजन्य सगुण-साकार ही है, एवं न ही निर्गुण-निराकार ही है। यह परात्पर परात्मक देह है, जो मात्र नित्य गोलोक अथवा नित्य वृन्दावन-धाममें ही दृष्टिपथमें आता है, अन्यत्र कहीं नहीं।

इस विलक्षण वृन्दावनधाममें सभी लोग भावदेहसे एकमात्र नन्दनन्दन श्रीकृष्णको सुखदान करनेके लिये ही सदैव लालायित रहते हैं।

श्रीकीर्त्तिदामैया और श्रीयशोदामैया – ब्रजराज्यकी इन दोनों वात्सल्यवती महिषियोंका वात्सल्य-प्रेम वस्तुतः अत्यन्त सुदुर्लभ है। रसिक महात्माओंका अनुभव है कि यह वात्सल्यरस तीन प्रकारका होता है। इस वात्सल्यरसके तीनों प्रकारोंमें ही एककी अपेक्षा दूसरा अधिक, एवं दूसरेसे तीसरा और अधिक उत्कृष्ट और मूल्यवान् है। जैसे मणियाँ तीन प्रकारकी होती हैं – साधारण मणि, चिन्तामणि और कौस्तुभमणि। साधारण मणिका जैसे साधारण मूल्य होता है, उसी रीतिसे सभी वात्सल्यवती महाभागा ब्रजदेवियोंका ब्रजेन्द्रतनय कन्हैयाके प्रति अत्यधिक वात्सल्य रहता है। किन्तु वे सभी कन्हैयाके अपने घरोंमें आगमनपर, श्रीकृष्णके सम्पर्कसे महाभागा होनेपर भी, उनकी सेवा करके अपनेको कृतकृत्य, सुखयुक्त होनेका ही भाव रखती हैं। उनमें भरपूर निजसुख-संधान होता ही है। यद्यपि इस सुखसंधानके विषय स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, परन्तु इनमें स्वकल्याण, स्वआनन्दभोगकी भावना कूट-कूटकर भरी होती है।

दूसरे प्रकारकी मणि चिन्तामणि होती है। चिन्तामणि जहाँ-तहाँ सहजमें नहीं मिलती। वैसे ही भगवान्की जन्मदात्री माता देवकी, कौशल्या, अदिति, देवहूति आदि माताओंका भी भाव सुदुर्लभ होता है। इनमें उभयसुखी भाव है। अपने पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम, श्रीराम, वामन, कपिल आदिकी सुख-भावना इन माताओंमें है अवश्य, किन्तु साथ ही अपने कल्याणका भाव भी इनमें निहित रहता ही है। इसलिये इनके वात्सल्यको चिन्तामणि तुल्य कहा जाता है। चिन्तामणियाँ जैसे अनेक भी मिल सकती हैं, वैसे ही ये भगवज्जन्मदात्री माताएँ भी अनेक हैं।

भगवन्माता कीर्त्तिदा एवं यशोदाका वात्सल्यभाव सर्वोत्कृष्ट है। इनका असमोर्ध्व तत्सुखी वात्सल्यभाव कौस्तुभमणिके समान अद्वितीय है। जैसे कौस्तुभमणि मात्र भगवान्‌के कण्ठका भूषण होती है, उसी प्रकार महारानी कीर्त्तिदा एवं यशोदा–सरीखा भाव भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलास्थली ब्रजके अतिरिक्त कहीं नहीं मिलता। इस अतुलनीय, अनुपमेय और अप्रमेय विशुद्ध कृष्णसुख-भावभावित वात्सल्यरसके विषय, ग्राहक एवं भोक्ता हैं – यशोदोत्संगलालित, बाल्यलीलाविहारी, ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और इसकी आश्रय हैं – भगवती महाभागा यशोदा एवं कीर्त्तिदा मैया, जो इस दिव्य वात्सल्यप्रीतिरसकी अनन्त अगाध उदधि हैं। इनके परमपूत भोग-मोक्ष-कामना-लेश-शून्य हृदयमें यह वात्सल्यभाव नित-नित नव-नव वेगसे लहराता रहता है।

कोई प्रश्न कर सकता है कि कीर्त्तिदा मैया तो श्रीराधारानीकी माता हैं, उनका तो श्रीकृष्णसे सम्पर्क ही बहुत अल्पकालके लिये होता है। श्रीकृष्ण तो अपनी मैया यशोदाके साथ कभी-कभार वार-त्यौहार निमन्त्रित होनेपर ही बृषभानुपुर जाते हैं। फिर कीर्त्तिदा मैयाका श्रीकृष्णके प्रति अतुलनीय वात्सल्य प्रेमभाव कैसे सिद्ध होता है?

इसका उत्तर यही है कि श्रीराधा स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं। वस्तुतः वे दो हैं ही नहीं। जो श्रीराधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं, जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही श्रीराधा हैं। जिस प्रकार दुग्धमें धवलता है, अग्निमें दाहिकाशक्ति है, पृथ्वीमें गन्ध है, इसी प्रकार श्रीराधा-श्रीकृष्णका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण एक ही तत्वके दो अविच्छिन्न स्वरूप हैं। अतः श्रीराधाकी माता होनेके नाते श्रीकीर्तिदा मैया श्रीकृष्णकी भी माता हैं और श्रीकृष्णकी माता होनेसे श्रीयशोदा मैया श्रीराधाकी भी माता हैं। जो वात्सल्यधारा कीर्तिदा मैयाके द्वारा श्रीराधारानीकी ओर प्रवाहित होती है, उसका रस आत्मारूपमें श्रीकृष्ण ही पूर्णतया परितृप्त हुए पान करते हैं; और जो वात्सल्य- प्रीतिधारा यशोदा मैयाके द्वारा श्रीकृष्णको समर्पित होती है, उसका आस्वादन श्रीराधारानी आत्मरूपसे करती रहती हैं। इनमें भेद कदापि नहीं मानना चाहिये।

श्रीकीर्त्तिदाकी तो सदैवसे यही साध रहती है कि किसी भी प्रकारसे श्रीकृष्ण उसके गृहकी शोभा बन जावें; गृहके स्वामी होकर यहीं रहें। एक दिवस तो श्रीकृष्ण मैया कीर्त्तिदाकी यह साध पूरी करनेको तत्पर ही हो जाते हैं और एक लीलाप्रसङ्गमें अपना यह निर्णय मैया कीर्त्तिदाको सुना ही देते हैं कि वे उनके घरमें रहनेको तय्यार हैं। पू. गुरुदेवने अपने ***'प्रियतम काव्य'***में पञ्चम शतकमें यह लीला उल्लेख की है। अब तो यशोदा मैया घबड़ा जाती हैं। वे बोल उठती हैं – 'अरे साँवरे ! फिर मेरे गृहको नित्य उद्भासित कौन करेगा रे ?' इसके उत्तरमें अपनी मैया यशोदासे श्रीकृष्ण कहते हैं –

'मैया री ! अच्छा सुन ले यह, तू समझ नहीं पायी, प्रियतम !
मैं एक साथ दोनों गृहमें रह लूँगा, देख, सही, प्रियतम !
आरसी एक चम-चम करती थी पड़ी पासमें ही, प्रियतम !
मरकत-साँवर छोरा बोला, होकर समक्ष उसके, प्रियतम !

तेरे घर तो मैं स्वयं नित्य हूँ, और रहूँगा ही, प्रियतम !
अब अहो ! प्रतिच्छाया मेरी रानीको यह दूँगा, प्रियतम !
इनकी दृगपुतरी जो बेटी श्रीजीके साथ सदा, प्रियतम !
मेरी यह छाया भी खेले, मैं तो खेलूँगा ही प्रियतम !

जो हो अहो ! उस लघुवयके शिशुका यह रसपूर्ण विनोद सुनकर क्षणभरके लिये सबके मनकी विचित्र दशा हो जाती है। यह बात तो सर्वथा विनोदकी थी, किन्तु बृषभानु महाराजकी रानी कीर्त्तिदाके अन्तस्तलमें उसी क्षण यह लालसा गहरी-से-गहरी बनकर स्थान पा जाती है; बस, उनकी बुद्धिको, मनको उस क्षण यह लालसा पूरी तरह मन्थन

करने लगती है। उनके मनमें उस क्षणमें यही विचार आता है —'कदाचित् जगज्जननीकी रुचि मेरी इस लालसाको समर्थित करदे , और यह नीला शिशु, भले ही प्रतिबिम्बरूपमें ही सही, मेरी कोखसे मेरा पुत्र-पुत्री बनकर आ जाय और मैं इसे अप्रतिम वात्सल्यदानकर सुखसे नहला दूँ। उस समय मैं अपनी बड़ी पुत्रीको इसी प्रतिबिम्बस्वरूप साँवरे शिशुके पास रखकर निश्चिन्त हो जाऊँ। मेरी बड़ी पुत्री जो सदैव निमीलित-नेत्र रहती है, इस नीली प्रतिमाके सङ्गमें नेत्र खोलकर हँस-हँसकर खेला करे। जब मेरी बड़ी पुत्रीके हाथ पीले होनेका क्षण आवे, तब श्यामवर्णवाली छाया या तो नीले शिशुमें मिल जाय अथवा बड़ी पुत्रीकी नित्यसङ्गिनी हो जाये।'

बस, रानीकी इस विचारधाराके मध्य ही उनके नेत्रोमें सहस्रों दिवाकरोंकी ज्योति भर आती है। उन्हें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है मानों महामहिमामयी महात्रिपुरसुन्दरी आकाशमें खड़ी उनसे प्रश्न कर रही हो -'रानी ! क्या तुम्हारी एक भी अभिलाषा ऐसी है, जो तुरन्त पूरी नहीं हो गयी हो ? सुनो ! तुम्हारे सामने विराजित इस नीले बालककी प्रतिच्छाया अनुपम सुन्दर एवं चिन्मयी कन्याका रूप धारणकर तुम्हारे उदरस्थलमें प्रविष्ट होगी।' महादेवी इतना कहकर अन्तर्हित हो जाती है।

कहनेका इतना ही अर्थ है कि संधिनीस्वरूपिणी महारानीकी कोखसे श्रीकृष्णकी छाया ही मञ्जुश्यामाके रूपमें राधानुजा बनकर अवतरित होती है और उसके मिससे मैया कीर्त्तिदा अपनी अगाध वात्सल्य-नेहराशिका अप्रतिम दान श्रीकृष्णको दे-देकर अनवरत परितृप्त एवं कृतकृत्य होती रहती हैं।

वस्तुतः यह कीर्त्तिदा महारानीका विशुद्ध, घनीभूत, अपरिसीम वात्सल्यभाव ही है जो उन्हें यशोदारानीसे भी शताधिक सौभाग्य प्रदान कर देता है। वे श्रीकृष्णकी आत्मस्वरूपिणी राधारानीको तो वात्सल्यरस-सुख देकर नित्य परितृप्त करती ही हैं, साथ ही उनके विशुद्ध वात्सल्यभावका रस ग्रहण करने रसिकशेखर स्वयं श्रीकृष्ण भी अपनी छायारूपमें उनकी छोटी कन्या राधानुजा मञ्जुश्यामा बनकर उस रसका पूर्ण अवगाहन करते हैं।

यह सदैव ध्यान रहे कि मूर्त्तिमती वात्सल्यरस-घन-विग्रहा कीर्त्तिदा मैया द्वारा ही अमूर्त्त-समूर्त्त सर्वत्र वात्सल्यरसका वितरण अनादि कालसे अबतक जगत्की सभी माताओंको हो रहा है, और अनन्तकालतक होता रहेगा। देवलोककी माता अदितिसे लेकर एक मादा लघु कीटमें भी जो अपने सृजनके प्रति ममत्व एवं वात्सल्य है, उस सबकी मूल स्रोतस्विनी मैया कीर्त्तिदा हैं। जैसे श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण परस्पर अभिन्न हैं, वैसे ही मैया कीर्त्तिदा और यशोदा भी परस्पर नित्य अभिन्न हैं। ये पृथक् दो स्वतंत्र सत्ता हैं ही नहीं। दोनों ही वात्सल्य-सिन्धुकी ही एक होकर दो दिखनेवाली ऊर्मियाँ हैं।

भगवती श्रीराधा एवं उसके प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति मैया कीर्त्तिदाकी वात्सल्य-प्रीति इतनी अद्भुत समाकर्षक एवं अनिर्वचनीय है कि वह बृषभानुपुरकी सभी समान-वयशीला वयस्का गोपियोंको राधाकृष्ण- युगल-प्रीतिमें निमग्न कर देती है।

कीर्त्तिदा मैयाके माता-पिता एवं भाई-बहिन

मनुष्य प्रेमकी कितनी ही ऊँची-से-ऊँची कल्पना क्यों न करे, वह उस कल्पनातीत प्रेमके एक कणकी छाया भी नहीं छू सकता, जो इस ब्रजराज्यमें किसी भी गोपमें युगल दम्पति श्रीराधाकृष्णके प्रति है। रावलनरेश महाराज विन्दु एवं महारानी मोक्षदा श्रीराधारानीके नाना-नानी हैं। जिन अप्राकृत दिव्य तेजोमय धर्मात्मा रावलनरेश विन्दु गोपराजके बीज एवं मैया मोक्षदाकी कोखसे कीर्त्तिदा महारानी जैसी अप्राकृत वात्सल्यमयी पुत्रीका जन्म होता है, उनकी प्रीति-महिमाका बखान करनेमें भला कौन समर्थ हो सकता है। इन महाभाग्यशाली नाना-नानीकी महिमा, इनके स्वरूपभूत भाव-सौन्दर्यका यत्किञ्चित् आस्वादन तो वही कर सकता है, जिसे स्वयं प्रेमघनमूर्त्ति श्रीकृष्ण ही यह तत्व समझादें। एवं फिर तो वह तत्क्षण ही इन महात्मा गोपोंके समान स्वयं वात्सल्यभावसिन्धु हुआ, लहराने लगेगा। महाराज

विन्दु एवं नानी मोक्षदाकी महिमा अपनी विभिन्न भावनाओंके अनुसार वैष्णवाचार्योंने इतनी ही बखान कर पायी है कि इन महाभाग्यवान् नाना-नानीके प्राण सदैव अपनी दौहित्री राधामें ही समाये रहते हैं। इन दोनों वृद्ध दम्पतिके शरीरोंमें जीवनरसके रूपमें ब्रजेन्द्रतनय श्रीकृष्ण एवं राधा ही प्रवाहित होते रहते हैं। इनके श्वास-श्वास श्रीराधाके सुखकी कल्पनामें ही खोये रहते हैं। किसी कविकी उक्ति इनके लिये चरितार्थ होती है -

कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,
हियमें न जानि परै कान्ह हैं कि प्रान हैं।

इन नाना-नानीको इनकी दौहित्री राधाके सुखके अतिरिक्त न तो इन्द्रपद ही प्रिय था, न ही योगसिद्धियाँ। मोक्षपदको तो ये ठुकराकर ही गोप-गोपी बने हैं। इन्होंने कठोर तप एवं दीर्घकालीन साधना करके ही श्रीराधारानीके नाना-नानी होनेका सौभाग्यमूलक पद प्राप्त किया है। इन दोनों वृद्ध दम्पतिको खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते, राजकाज करते, यज्ञानुष्ठान आदि धर्मकार्य करते सभी समय श्रीराधारानीका ही स्मरण होता रहता है, और ये उसकी स्मृतिमें, उसका ही चिन्तन करते आँसू प्रवाहित करते रहते हैं।

रावलनरेश गोपराज विन्दुके तीन पुत्र हैं। सबसे बड़े पुत्रका नाम है - भद्रकीर्त्ति एवं उसके दोनों अनुजोंके नाम है – महीकीर्त्ति एवं चन्द्रकीर्त्ति। ये तीनों अपने भानजे श्रीदामपर एवं भानजी श्रीराधापर पूर्णतया न्यौछावर हैं। सबसे बड़े पुत्र भद्रकीर्त्ति तो राज-काज सम्हालनेमें संलग्न रहते हैं, शेष दोनों भाई – महीकीर्ति एवं चन्द्रकीर्त्ति अपने भानजे श्रीदामके साथ उसके सखा श्रीकृष्णके रक्षकके रूपमें गोचारणमें सहयोग करते रहते हैं।

भद्रकीर्तिकी पत्नी मेनकादेवी हैं एवं इन्हें ब्रजमें मौना भी कहा जाता है। महीकीर्तिकी पत्नी का नाम षष्ठीदेवी एवं चन्द्रकीर्त्तिकी पत्नीका नाम धात्री है। चन्द्रकीर्त्तिकी पत्नीको ब्रजमें धातकी भी कहा जाता है। धात्री एवं षष्ठीका यशोदारानीसे अतिशय प्रेम है। शिशु अवस्थामें श्रीकृष्णकी इन दोनोंने धायके रूपमें सेवा की है। श्रीकृष्ण भी इन्हें अपनी माताके तुल्य ही आदर एवं प्रेम करते हैं।

श्रीराधारानीके चाचा एवं फूफा-भूवा

राधारानीके पिता श्रीबृषभानुजी अपने पिताके सबसे बडे पुत्र हैं। इनके सभी अनुज सदैव इनके अनुगत एवं सेवा-परायण ही रहते हैं। इनके नाम क्रमशः रत्नभानु, सुभानु एवं भानुगोप हैं। ये सभी महादेवी भगवती त्रिपुरसुन्दरीके अनन्य उपासक हैं। इन सभीके आचार्य एवं गुरु भगवान् सूर्यदेव हैं और सूर्यविद्या इन सभीको प्रत्यक्ष है। ये सभी भगवतीकी कृपासे बृषभानु-दुहिता राधाके प्रेममें छके रहते हैं। ये जगदम्बाकी कृपासे उनकी उपासना करते-करते इतने शुद्धचित्त होगये हैं कि इन्हें विवाह करनेकी रुचि ही नहीं होती। अपने बड़े भाई बृषभानुजीकी भक्तिमें ये इतने तत्मय हैं कि स्वसुख-भावनाका लेश भी इनमें उत्पन्न नहीं होता। इनके सर्वस्व तो बृषभानु-दुहिता श्रीराधा, राधानुजा मञ्जुश्यामा एवं भतीजा श्रीदाम ही हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन उनके सुखमें ही सहज समर्पित है।

इनके समान ही गुण-शीलवती महाराज बृषभानुजीकी बहिन भानुमुद्रा है। भानुमुद्राका विवाह कुश नामक गोपसे हुआ जिसे ब्रजके लोग 'कुश'के स्थानपर काशगोप भी कहते हैं। इन सभीके पास कोटि-कोटि दुधारू गौएँ हैं।

श्रीराधारानीकी मौसी कीर्तिमती एवं मौसा सत्यभानु

श्रीराधारानीकी मौसी कीर्त्तिमतीका चरित्र पू.गुरुदेवने अपने *'प्रियतम काव्य'*में विस्तारसे दिया है। कीर्त्तिमतीका विवाह वृषभानु महाराजके अति विश्वासपात्र सगे भाईके समान सचिव सत्यभानुसे हुआ है। मौसी कीर्त्तिमती अपनी बड़ी बहिन कीर्त्तिदाकी तरह ही अयोनिजा हैं। दोनों बहिनें साथ-साथ रावलनरेश महाराजा बिन्दुके घरमें यज्ञाग्निसे प्रकट हुई हैं।

पू.गुरुदेव अपनी अनुभूत लीलाका वर्णन करते हैं -

नौ मास और कुछ दिन पहले इस देवशयनसे ही, प्रियतम !
प्रत्यक्ष महादेवीका था दर्शन-सौभाग्य मिला, प्रियतम !
जो प्रथम कृत्य रङ्गस्थलका है नटी किया करती प्रियतम !
फिर हो लीला, होती है जो चिन्मयी कदाचित् ही प्रियतम !

यहाँ जिन मंत्री सत्यभानुकी पत्नीका वर्णन है, वे अन्य कोई नही, महारानी कीर्त्तिदाकी बहिन कीर्त्तिमती ही हैं। महारानी कीर्त्तिदाकी कोखसे राजपुत्र श्रीदामके जन्मके पूर्व ही उनकी अनुजा कीर्त्तिमतीके कुन्दवल्ली नाम्नी पुत्री उत्पन्न हुई हैं। यहाँ इसका ही उल्लेख जगन्माता महामाया कर रही हैं। इन महाभाग्यवती कुन्दवल्लीके पाणिग्रहण-संस्कारकी लीलाको भी एक लघु नाटिकाके रूपमें पू.गुरुदेवने रचित की है जिसका प्रकाशन ***'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा'*** नामक पुस्तकके पञ्चम खण्डमें किया जा चुका है। ये कुन्दवल्ली ही सर्वप्रथम नटीकी तरह इस रसलीलाके रङ्गस्थलके प्रथम कृत्यका प्रारम्भ करती हैं। इनका विवाह प्रकटमें तो श्रीकृष्णके ताऊके पुत्र सुबलसे होता है किन्तु इस विवाह-समारोहमें कुन्दवल्लीको प्रथम वरमाला श्रीकृष्ण ही पहनाते हैं, फेरे भी श्रीकृष्ण ही लेते हैं, और पाणिग्रहण-संस्कार भी श्रीकृष्णसे ही होता है। सुबल तो मात्र अनुगतकी तरह श्रीकृष्णका अनुगमन करता हुआ विवाहके सात फेरोंमें मात्र तीन फेरे ही कुन्दवल्लीके साथ लेता है, शेष चार फेरे उसके श्रीकृष्णके साथ ही होते हैं। सुहागरातके समय भी निशामें जब कुन्दवल्ली एवं सुबल मिलते हैं तो सुबल अपने सखा श्रीदामकी मौसेरी बहिन होनेके नाते कुन्दवल्लीको अपनी धर्मबहिन जतलाकर पृथक्शैया होकर निशा व्यतीत करता है। दोनों दम्पति अति पवित्र मनसे यह प्रतिज्ञा लेते हैं कि वे दोनों उनके प्राणाराध्य श्रीकृष्णकी श्रीराधारानीके साथ होने वाली विशुद्ध रसमयी प्रीतिलीलाके मात्र उपकरण एवं सहयोगी ही बने रहेंगे।

राधारानीकी मौसी कीर्त्तिमती भगवती महामायाकी इतनी कृपापात्रा हैं कि उनकी प्रसववेदनाके प्रारंभ होनेका समाचार सेविका द्वारा प्राप्तकरके ज्योंही महारानी कीर्त्तिदा अपनी बहिनके सदन-कक्षमें पहुँचती हैं उन्हें भान होने लगता है - 'ओह ! यहाँ तो सचमुच सर्वत्र अंशुमालीकी ही ज्योति फैली हुई है।' जो दासी महारानी कीर्त्तिदाके साथ-साथ आती है, उसके नेत्र तो उस ज्योतिकी चकाचौंधसे ही बन्द हो जाते हैं और वह उस तेजोमय कक्षमें प्रवेश ही नहीं कर पाती। पू.गुरुदेव अपने काव्यमें कहते हैं –

मीलितनयना ध्यानस्थ हुई मंत्रीकी जायाकी, प्रियतम !
गोदीमें प्रकट जगन्माता हो गयी अचानक थीं, प्रियतम !
अप्रतिम सुन्दरी नवजाता कन्याका वेष लिये, प्रियतम !
केवल रानी ही देख सकीं अद्भुत उस घटनाको, प्रियतम !

ओह ! महादेवीकी कैसी अद्भुत कृपा महारानी कीर्त्तिदाके सम्मुख व्यक्त होती है ! वे प्रत्यक्ष देखती हैं कि अप्रतिम सुन्दरी कन्याका वेष धारण किये मंत्री सत्यभानुकी पत्नी (उनकी बहिन कीर्त्तिमती) की गोदमें अचानक साक्षात् जगन्माता ही अवतरित हो जाती हैं।

यह सभी विवरण मात्र यही दिग्दर्शित करनेके लिये उल्लिखित है कि कीर्त्तिदा महारानीकी अनुजा कीर्त्तिमती कितनी सौभाग्यवती हैं। जो सृष्टिकालमें सर्गशक्ति, स्थितिकालमें पालनशक्ति एवं संहारकालमें रुद्रशक्तिके रूपमें रहती हैं, चराचर जगत् जिनके मनोरंजनकी सामग्री है, परा, पश्यन्ती एवं वैखरी वाणीके रूपमें जो विराजमान रहती हैं; ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकरके द्वारा जो प्रतिपल आराधित हैं, उन अविज्ञातगति भगवती महामायाके अंशको अपनी पुत्रीरूपमें पाकर कृतकृत्य होनेवाली जगन्माता कीर्त्तिमतीके भाग्यको भला, क्या कहकर सराहा जावे ! सचमुच ही ये महाभाग्यवती राधारानीकी मौसी जो ठहरीं।

पुत्रीके रूपमें साक्षात् भगवती महादेवीके अंशको पानेके पश्चात् भी इस मौसीका मन जितना कीर्त्तिदाकुमारी राधापर न्यौछावर है, उतना अपनी पुत्रीपर नहीं। अपनी पुत्रीको तो सेविकाओंपर छोड़कर ये सदैव भानुनन्दिनीको ही अपनी गोदमें लिये रहती हैं।

यह तो महारानी कीर्त्तिदा एवं श्रीवृषभानुजीका नित्यका नैमित्तिक कार्य है। प्रभात होते ही बृषभानुभवनका मन्दिर-प्रासाद जिसमें परम तेजोमयी अद्भुत स्वर्णिम आभा विकीरित करनेवाली महादेवीका जागृत् जीवन्त विग्रह विराजमान है, स्वयं महारानी कीर्त्तिदा एवं श्रीबृषभानुजी द्वारा चन्दन, गुलाब, एवं केवड़ावारिसे प्रक्षालित किया जाता है। प्रति दिवस ही मन्दिर-प्राङ्गणकी सज्जा रङ्गबिरङ्गे क्षौम वस्त्रों एवं सुकोमलतम पल्लवोंसे निर्मित बन्दनवारोंसे की जाती है। ध्वजा-पताकाओंके स्तम्भ चमकाये जाते हैं, पुष्पमालाओंकी लड़ियोंसे मणिमय स्तम्भ आच्छादित कर दिये जाते हैं। स्थान-स्थानपर आम्रपल्लवोंसे समन्वित जलपूर्ण मङ्गलघट रखे जाते हैं। मन्दिरके द्वारको मोतियोंसे चौक पूरकर सज्जित किया जाता है। इस सब कार्योंमें यद्यपि महाराजके विश्वस्त सेवक सहयोगी होते हैं, किन्तु सब कार्य होता है स्वयं महाराज एवं महारानीकी प्रत्यक्ष समुपस्थितिमें ही। फिर मध्याहतककी आह्निक पूजामें तो महारानी कीर्त्तिदा महाराज बृषभानुके साथ छायाकी तरह रहती ही हैं। उस अवस्थामें नन्हे शिशु श्रीदामकी, श्रीराधाकी सम्हालका दायित्व तो मौसी कीर्त्तिमतीपर ही रहता है। यदि मौसी कीर्त्तिमती सहयोगिनी न हों तो महारानी कीर्त्तिदा महाराज बृषभानुके साथ धर्मपत्नीसम्मत उचित धर्मकार्योंको सम्पादित ही नहीं कर पावें।

रावलनरेश महाराज विन्दुने इस सब व्यवस्थाको पूर्वलक्षितकर ही अपनी कनिष्ठा पुत्रीका विवाह महाराज बृषभानुके ही सम्बन्धी एवं राज्यके मुख्य सचिव सत्यभानु गोपराजसे किया है। बृषभानुपुरके राजमहलके ही एक भागमें अनुजा कीर्त्तिमती भी अपनी बड़ी बहिन महारानी कीर्त्तिदाके साथ स्थायी रूपसे रहती हैं।

फिर यह राधा भी विलक्षण बालिका है। इसके कञ्चनद्युति पिङ्गलाभ अङ्गोंके भीतर एक ज्योतिर्मय श्याम कलेवर सदैव अहर्निश भरा दृष्टिगोचर होता है। इसीलिये वह दिवानिशि अनवरत नेत्र निमीलित किये अपने हृद्देशमें उद्भासित इस इन्द्रनीलमणि-द्युतिका ही ध्यान करती रहती है। निसर्गके क्षणार्ध-परिमित कालमानके लिये भी वह सच्चिन्मयी नीलज्योति उसके हृदयसे अपसारित नहीं होती। इसीलिये उसके नेत्र सदा निमीलित ही रहते हैं।

हाँ, यदा-कदा जब भी कोई आगन्तुक उसकी शिशु-शोभा निरखता हुआ, उसके नवकलिका- सदृश श्रवणपुटोंमें कृष्ण-गुणगान गाकर अथवा 'कृष्ण-कृष्ण' इस प्रकार बोलकर रस उँडेल देता है, तो यह बालिका क्षणभरके लिये चकित हरिणी-सी अपने निमीलित नेत्र विकसित कर देती है। ओह! उसके दीर्घकर्णविलम्बी नेत्रोंकी मुग्ध दृष्टि देखकर वह आगन्तुक तो कृतकृत्य हो ही उठता है। यह कृष्ण नाम सुनकर नेत्र विकसित करनेकी इस राधानाम्नी बालाकी क्रिया भी तभीसे हो रही है, जबसे ब्रह्मर्षि नारद वीणा लिये बृषभानुपुर पधारे थे, और इस बालिकाको ***'जय-जय कृष्ण मनोहारिन ! जय वृन्दावनप्रियः'*** स्तवन सुना गये थे। इसके पूर्व तो बालिका द्वारा यह क्रिया भी नहीं होती थी। हाँ! यदा-कदा जब गोपेशगेहिनी नन्दग्रामसे अपने नीलमणिको लेकर बृषभानुपुर आती थीं तो उस अवसरपर वह अपने श्याममयङ्क शिशुको इस बालिकाके पास ही इसके पर्यङ्कमें ही लिटा देती थीं। उस नवनील-नीरद-वपु बालककी स्पर्शित वायुका प्रभाव कहें अथवा अङ्ग-सुगन्धका प्रभाव मानें, यह बालिका तत्क्षण ही अपने नेत्र-सरोज विकसित कर देती थी, साथ ही मुसकान भरकर किलक उठती थी। बालिकाकी यह प्रसन्नता भी तभीतक रहती थी, जबतक इस नील-मयङ्ककी अङ्ग-सौरभ इसकी नासिकाको सुवासित करती रहती थी। ज्योंही यह अङ्ग-गंध इस बालाकी नासिकासे विलुप्त होती कि बस, बालिका पुनः अपने नेत्र मूँद लेती।

कीर्त्तिदा महारानी जब भी महादेवीके पूजाकार्यमें निरत हों, इस बालिकाकी सम्हालका कार्य मौसी कीर्त्तिमतीपर ही रहता है। बालक श्रीदाम भी जबतक वय प्राप्त नहीं कर पाया, एवं उसका वत्स अथवा गोचारणार्थ अहीरोंके साथ

वनमें जाना प्रारंभ नहीं हुआ, तबतक तो उस बालककी देखरेख भी मौसी कीर्त्तिमतीने ही की थी। मौसी तो उस विलक्षण स्वभाववाली बाला – राधाको गोदमें लेकर सदैव 'कृष्ण-यश' ही गाती रहती है, जिससे बालिका नेत्र खोले रखकर उसकी ओर निहारती रहती एवं प्रसन्नतासे किलकारी भरती रहती है। 'ओह ! जब यह बालिका किलकती है तो उसके हृदयमें 'कृष्ण' नाम सुननेसे उमड़ता आनन्द-प्रवाह स्पष्ट परिलक्षित होने लगता है। बालिकाके रोम-रोममें एक अभिनव कम्प उठने लगता है। परन्तु ज्योंही इस कृष्ण-नामध्वनिका विराम होता है, बालिका पुनः नेत्र मूँदकर अचञ्चल, अन्तर्मुखी होकर अपने भीतर ही समाहित हो जाती है। उसका आनन-मण्डल अतिशय शान्त योगस्थ हो उठता है। वह तत्क्षण ही समाधिस्थ हो उठती है। उसके सभी अङ्गोंसे बाल-वयजन्य चञ्चलता हटकर एक अति शान्त मनोरमता व्याप्त हो उठती है।

मौसी कीर्त्तिमतीकी जीवनचर्या ही यही रहती है कि जबतक कीर्त्तिदा महारानी पूजामें रहें, बालिका राधाको कीर्त्तिदा बहिनसे यथासमय स्तन्यपान कराकर अपनी गोदमें लिटा लेना और उसके आनन-सौन्दर्यको निहारते रहना, साथ ही कृष्ण-नामध्वनि सुना-सुनाकर उसके मुँदते एवं पुनः विकसित होते नेत्रोंकी शोभा देखते रहना।

कभी-कभी मौसी कीर्त्तिमती बाला राधाके आनन-सौन्दर्यको देखती-देखती इतनी अभिभूत हो जाती है कि वह अपनी हृदयधन – बाला राधाको उठाकर हृदयमें सटा लेती है। वह इस बालिकाके अनिन्द्य सौन्दर्यरसका अनवरत पान करती किसी अन्य लोकमें ही पहुँच जाती है। उसकी पुत्री कुन्दवल्ली प्रायः उसके साथ ही होती है। वही उसकी मुग्धावस्थासे उसे होशमें लाती है। मौसी अपनी अप्रतिम सुन्दर भानजी राधाके आनन-सौन्दर्यको देखकर चकित हो उठती है। वह सोचने लगती है - 'ओह ! इस बालिकाके ऐसे सुकोमल कान हैं, मानो किसी कञ्चनलतिकाके नवोन्मिषित पल्लव हों; और इसके ओष्ठ तो द्विदल जपापुष्पके समान हैं।' किन्तु यह क्या ? मौसी बालिकाकी सुकोमलताको संस्पर्शकर काँपने लग जाती है। कभी वह पुलकित होती है, कभी उसके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे छलक उठते हैं। उसे अपनी भानजी राधाका वदन-सरोज अमृतके समान मधुर मधु-परिपूरित दिखाई देता है।

यद्यपि मौसी कीर्त्तिमतीकी स्वयंकी पुत्री भी विलक्षण सौन्दर्यके साँचेमें ढली प्रतिमा ही है, किन्तु उसे अपनी आत्मजाके प्रति तो सोचने-विचारनेका भी अवकाश कहाँ है ? वह तो राधाको ही अविराम अपने अङ्कमें धारण किये रहना चाहती है। किन्तु .... मौसीके प्रवाहित प्रीति-विचारोंको सहसा एक आघात लगता है – 'यह तो कीर्त्तिदाकी पुत्री है। कीर्त्तिदाका उसपर यह अनोखा स्नेह-विश्वास है कि वह अपनी पुत्रीकी सँभाल उसे देकर महादेवीके पूजन-अर्चनमें निरत हो जाती है। अन्ततः वह भी तो उसका अत्यावश्यक दायित्व है, नहीं तो क्या वह अपनी स्वर्णोपम पुत्रीको अपने अङ्कसे एक क्षण भी पृथक् करेगी ? कदापि नहीं ! तब ..... ?'

मौसीके मनमें एक अभिनव रसमय सङ्कल्प जागृत् हो जाता है। वह अपने विचारोंमें ही पारावार-विहीन अनन्त आनन्द-रसोदधिमें उछलने लगती है - ' कहीं मेरा ऐसा प्रारब्ध हो जाता कि ऐसी ही अतुल सुषमावर्षिणी इसकी ही एक सहोदरा अनुजा भगिनी होती। फिर तो मैं उसे सदैव अङ्कमें धारण किये ही रहती। क्योंकि उस अवस्थामें मेरी बड़ी बहिन कीर्त्तिदाके अङ्कमें सद्योजात होनेसे वह छोटी ही सुशोभित रहती। फिर तो मुझे इस कन्यासे सर्वभावसे ही अपने प्राणोंको जोड़नेकी सुविधा हो जाती। तब, यह कन्या एकान्तिक निशा-दिवस मेरे ही अङ्कका आभूषण हो जाती, मेरे ही पास सोती-जागती, उठती-बैठती।'

मौसीका कलेवर रह-रहकर कम्पित हो उठता, उसके सभी अङ्गोंमें पुलकावलि उदित हो जाती, नेत्रोंमें जल भर आता। रह-रहकर उसे अपने शरीरकी सुधि भी भूल जाती और वह रस-समुद्रकी लहरोंमें न जाने कहाँ-से-कहाँ बहने लगती। मनमें इस अभिलाषाके उदित होते ही मौसी विकल हो जाती। उसकी विकलताको विराम तभी मिलता है जब एक दिवस अनुग्रहमयी आकाशवाणी उसके कानोंमें गूँजती है – 'अरी कीर्त्तिमती ! तुझे त्रिकाल सत्यका सङ्केत हो रहा

है। देखो, इस लाडिली पुत्रीको छूकर जिस किसी मङ्गलमयी वस्तुकी चाह जो भी करता है, तो वह वस्तु उसे मिलती ही है। तुम्हारा परम मङ्गल ही होगा।'

यथाकाल इसी वरदानकी चरितार्थता होती है और सन्धिनी-स्वरूपिणी जगन्माता कीर्त्तिदाकी कोखसे स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन ही संविन्मयी नीली छाया बने द्वितीय पुत्रीके रूपमें व्यक्त हो जाते हैं। अब गोरी और साँवरी – कीर्त्तिदाकी दोनों पुत्रियोंमें से एक तो अवश्य ही मौसीके अङ्कमें रहती ही है।

श्रीराधाकी कीर्त्तिमती मौसी एवं सत्यभानु मौसा ऐसे सौभाग्यशाली हैं कि इनमें बृषभानुपुत्र श्रीदाम एवं पुत्रियाँ – श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामाके प्रति सदैव नित्य-नूतन वत्सलताके अङ्कुर प्रस्फुटित होते रहते हैं। इन राजपुत्र एवं पुत्रियोंके प्रति निर्मल ममत्वसे अभिषिक्त इन युगल दम्पतिके हृदयमें यह वात्सल्य-भाव-वल्लरी प्रतिपल बढ़ती ही जाती है, और ऐसी शीघ्रतासे बढ़ती है कि उसे पुष्पित एवं पल्लवित होनेमें कहीं कोई अवरोध एवं बाधा आ ही नहीं पाती।

युवराज श्रीदाम भैया

परात्पर सच्चिन्मयी लीलामहाशक्ति योगमायाका यह विलक्षण चमत्कार ही है कि वे भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनको उनका ही निजानन्द नवीन-नवीन रूपोंमें आस्वादन करानेके हेतुसे उनके ही स्वरूपभूत आनन्दको घनीभूत करके प्रेम-विग्रहोंके रूपमें प्रकट करती हैं। ये प्रेमविग्रह अपने सर्वस्वके उत्सर्ग और प्रेमास्पद श्रीकृष्णके सुख-तात्पर्य हेतु लीला-रङ्गमञ्चमें ऐसा निर्मल चरित्र प्रस्तुत करते हैं कि इनके चरित्रका अवगाहन करनेवालेको बरबस 'वाह' – कहना ही पड़ता है।

भगवान् श्रीकृष्णके प्रति तत्सुखी प्रेमकी यदि आदर्श मिसाल प्रस्तुत करनेवाला उनका कोई सखा है, तो वह है – बृषभानुपुरका युवराज, श्रीराधारानीका बड़ा भैया श्रीदाम। वस्तुतः श्रीदाम भैया तत्सुखभाव प्रेममें अद्वितीय है और अपनी बहिन श्रीराधाकी प्रतिमूर्त्ति ही है। जहाँ तत्सुखी प्रेमका प्रवाह है, वहाँ मत्सुखका तो सम्पूर्ण त्याग-ही-त्याग है। अतः सखाओंमें इस स्पर्धामें यदि कोई अतुलनीय है तो वह है – श्रीदाम भैया।

श्रीदामका जीवन ही अपने सखा और अपनी छोटी बहिन श्रीराधाको सुख पहुँचाना है। उसका जो कुछ भी मेरापन है, वह अपने सखा श्रीकृष्णके लिये पूर्णतया समर्पित है। उसकी ममताके एकमात्र आधार यदि कोई हैं, तो वे हैं उसके सखा श्रीकृष्ण। श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्राणीसे उसका तनिक भी ममत्व नहीं। न ही वह किसी परिस्थितिके बन्धनमें है, न किसी पदार्थकी उसे चाह है। उसका समग्र प्रेम केन्द्रित है अपने सखा श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेमें। श्रीदाम भैया शङ्का, सङ्कोच, संशय, सम्भ्रम आदिसे सर्वथा शून्य परम आत्मनिवेदनकी पराकाष्ठा है।

श्रीदाम भैयाका जन्म महारानी कीर्त्तिदाकी कोखसे उनके एवं उनके पति बृषभानुजी द्वारा अविराम सत्तर वर्ष, नौ माह एवं दो दिनतक महादेवीकी अर्चनाके पश्चात् हुआ है। महात्रिपुरसुन्दरीके इस अति दीर्घकालीन अर्चना-यज्ञमें 'सहधर्मिणी' शब्दकी गरिमाके अनुरूप महारानीने अक्षरशः अपने पतिका ऐसा साथ दिया है जिसकी तुलना कहीं ढूँढनेपर भी नहीं मिलती।

प्रथम सुहागनिशाके अवसरपर ही जब आर्यपुत्र बृषभानुजीसे नवयौवनका उन्मेष लिये महारानी प्रथम बार मिलती हैं, तभीसे दोनों दम्पतिके मनमें प्रपञ्चके उन्मादी विषय-भोगोंसे सर्वथा विरक्ति हो जाती है। इतना ही नहीं, दोनोंके ही अन्तस्तलमें सहसा ऐसा परम निर्मल ज्योतिर्मय भाव जगता है कि दोनों ही उसी क्षणसे कृपामयी त्रिभुवनजननी अपनी कुलदेवी भगवती त्रिपुरसुन्दरीके किङ्कर एवं किङ्करी हो जाते हैं। दोनों उसी पावन प्रथम मिलनकी वेलामें यह प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि जब त्रिभुवन-जननी प्रत्यक्ष आदेश देंगी तभी वे मात्र एक सन्ततिके जनक-जननी बनेंगे जिससे वह वीर पुत्र राजकुलकी परम्पराका निर्वाह कर दे। इसके पश्चात् तो वे दोनों सदाके लिये ही श्रीमहादेवी भगवती त्रिपुराके चरण-नख-चन्द्रोंमें अर्चना करते-करते देहत्याग कर देंगे।

इसी कठोर व्रतको लेकर युवराज बृषभानु एवं महारानी कीर्तिदा अनवरत सत्तर वर्षतक भगवतीकी पूजा-अर्चनामय तपस्यारत सदाचारी पवित्र जीवनका ऐसा आदर्श अपनी प्रजाके सम्मुख रखते हैं, जैसा आदर्श लोगोंकी कल्पनामें भी नहीं आ सकता।

अनवरत सत्तर वर्षकी पूजाके पश्चात् हरिशयनी एकादशीके नौ मास और कुछ दिन पहले दम्पतिको महादेवीका प्रत्यक्ष दर्शन-सौभाग्य प्राप्त होता है और महादेवी उन्हें राजपुत्रको जन्म देनेकी आज्ञा देती हैं।

इसके पश्चात् श्रावण कृष्ण तीजकी तिथि आती है। उस दिवस बुधवार होता है। अंशुमालीके अस्ताचल जानेमें मात्र पाँच घड़ीका विलम्ब होता है कि उसी समय धौंसेके निनादसे अचानक राजप्रासाद मुखरित हो उठंता है। कुछ क्षण बीतते-न-बीतते राजपुत्र श्रीदामके जन्म लेनेका मङ्गलमय संवाद सभी बृषभानुपुरवासियोंको सुन पड़ता है। राजपुत्रके सुन्दर गोरे मुखकी शोभा भला कोई कैसे कह सकता है। उस शोभाको जो नयन निरखते हैं वे आँखें वाणीयुक्त नहीं होतीं, और वाणीको उस अप्रतिम शोभाको निरखनेका अवसर ही नहीं मिलता। उस बालककी सुन्दरताके विषयमें मात्र इतना कहकर ऋषि-मनीषी सन्तोष कर लेते हैं कि स्वयं भगवान् नारायण ही मानो अपनी संविन्मयी नीलिमाको एवं अपनी दोनों अतिरिक्त भुजाओंको मायासे त्यागकर द्विभुजी गौरवर्णके शिशुका वेष धारणकर महाराज बृषभानु एवं कीर्त्तिदाके गृहमें अवतरित हुए हैं।

राजपुत्रके आगमनपर अविराम बाईस दिवसोंतक सुखकी ऊर्मियाँ राजपुरीको नहलाती हैं। वह आनन्द अतुलनीय ही होता है। बाईस दिवस एवं रात्रिपर्यंत उमड़नेवाला वह आनन्दोल्लास सचमुच ही राजपुत्र श्रीदामके मङ्गलमय भावी विशुद्ध सुयशका द्योतक ही था।

धरणी पल-पलमें नवीन सुषमासे सुसज्जित हो रही होती है। सर-सरिता, निर्झरोंका जल, वर्षा ऋतुका समय होनेपर भी अप्रतिम उज्ज्वलतम मोतीकी भाँति निर्मल बन जाता है। शीतल सुगन्धित मन्थर समीर सभी प्राणियोंको छू-छूकर मानो सभीके कानोंमें एक ही सन्देश दे रहा होता है – 'देखो ! धैर्य रखना भला ! क्रमशः एक-से बढकर-एक उत्तुङ्ग आनन्दरसकी लहरें इस महाभावस्थली बृषभानुपुरमें उठनेवाली हैं । तुम सभीके असीम सौभाग्यका वर्णन क्या कहकर किया जाय ? तुम इसमें अनन्तकालतक अवगाहन करते रहोगे।'

बृषभानुनरेशके इस पुत्रको ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण निरे बालकपनसे ही 'श्रीभैया' ही कहकर पुकारा करते हैं। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाने इन श्रीभैयाके श्रीकृष्ण-सुख-तात्पर्यमय चरित्रके एक अंशका चित्रण अपने प्रियतमकाव्यके चतुर्थ शतकमें किया है। अपूर्व त्यागमय होनेके कारण श्रीदामका चरित्रांश यहाँ उल्लिखित किया जा रहा है।

श्रीभैया अपने सखा श्रीकृष्णके साथ सदैवसे ही गाय चराने वनमें प्रतिदिन जाया करता है। एक दिवस जब वह अपनी गौओंके सङ्ग वनमें जाता है तो दैवयोगसे शिशुओंकी परस्पर विनोद-वार्त्तामें यह बात छिड़ जाती है कि इन समस्त अरण्योंका स्वामी कौन है ? सहसा ही गोपराज नन्दका पुत्र 'कन्नू' बोल उठता है – 'अरे भैयाओं ! तुम सब सुन लो। यहाँ वर्तमानमें जितने भी वन हैं, पहले कभी थे, और आगे होंगे उन सभीका नित्य स्वामी मैं ही हूँ , भला ! ' ब्रजेन्द्रनन्दनकी बात पूरी होते-न -होते ब्राह्मण बालक मधुमङ्गल, जो इन सभी गोपबालकोंको सदैव हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देनेवाला हँसोड़ विदूषक सखा है, तिरस्कारपूर्वक निषेधात्मक रूपसे हँस पड़ता है।

मधुमङ्गलकी व्यङ्ग्यभरी निषेधात्मक हँसी सुनकर सभी सखा उसके पीछे पड़ जाते हैं और बार-बार उसके हँसनेका कारण पूछते हैं। मधुमङ्गलमें एक स्वभावगत दुर्बलता है। जो कोई उसे किञ्चित् मीठी वस्तु खिलादे, फिर तो वह उसके हर प्रस्तावको मान ही लेता है। सभी शिशु इसी उपायका आश्रय लेते हैं तथा उसके सम्मुख चार-पाँच मोदकोंकी भेंट रख देते हैं। मधुमङ्गल मोदक खाते-खाते सारा रहस्य उजागर करने लगता है। वह कहता है -'यह ब्रजेन्दतनय कन्नू तो व्यर्थ ही डींग हाँकता है। इसके इस कथनमें कि मैं ही इन सभी वनोंका राजा हूँ - कोई तथ्य

नहीं है। वस्तुतः तो इसके पिता नन्दरायजी भी कुछ काल पहलेतक श्रीभैयाके पिताके करदाता रहे हैं। श्रीदाम भैयाके दादाजी महीभानु महाराजने ही सर्वप्रथम नन्दबाबासे कर लेना बन्द कर दिया था। इसका कारण इन दोनोंकी अति प्रगाढ मित्रता ही होती है। तभीसे दोनों कुलोंमें ऐसी अभिन्न मित्रता है कि जिसकी तुलना अन्यत्र हो ही नहीं सकती। दोनों राजवंश स्नेहके ऐसे सुदृढ बन्धनमें बँध गये हैं मानों एक ही माताकी सन्तानें हों। इसी कारण इस नन्दपुत्र कन्नूको यह छूट मिली हुई है कि यह जिस काननमें चाहे, अपनी गौएँ चराये। आज भी यदि श्रीभैयाके बाबा चाह लें तो इसकी गौएँ चराना रोकदें। इसके पिता नन्दरायजीके अधिकारमें तो मात्र एक छोटा-सा वन है, जिसमें भले यह चाहे जितना घूम ले, पर इसका भी वार्षिक कर इसे चुकाना ही पड़ेगा। यह वन जिसमें अभी हम बैठे बात कर रहे हैं, यह तो बृषभानुपुरकी कुलदेवी जगज्जननी भगवती महादेवीकी सम्पत्ति है। इसमें तो वे सर्वदा प्रत्यक्ष निवास करती हैं। यह कन्नू जो बिना कुछ सोचे-विचारे ही बोल उठा था कि मैं ही स्वामी हूँ, इसकी इसी बातपर मुझे उस समय हँसी आ गयी थी।'

मधुमङ्गलकी सच्ची उक्ति सुनकर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण प्रतिवाद न करके केवल नीचेकी ओर देखकर मुसकुराने लगते हैं तथा सारे गोपशिशु हँस पड़ते हैं। किन्तु श्रीदाम भैयाका मुख अपने प्राणसखा श्रीकृष्णकी उक्ति सही सिद्ध नहीं हो पानेके फलस्वरूप उदास हो जाता है। वह अनमना होकर वनसे लौट आता है। वह अपनी मैया, मौसी, मौसा एवं अपने बाबा बृषभानुजीके सामने व्याकुल होकर रोने लग जाता है। रोते-रोते उसकी घिघ्घी बँध जाती है। पिता बृषभानुजी उसे मनानेके लिये सामने ही रखे पूजाके जलको हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करते हैं कि वे उसकी माँगको अवश्य पूरा करेंगे। भैया श्रीदाम अपने नेत्रोंमें जल भरकर, अपने पिताके कटिदेशको अपने दोनों हाथोंसे वेष्टितकर अपना मन्तव्य उन्हें सुनाने लग जाता है। वह बनमें उसके बालसखाओंके मध्य हुई सारी चर्चाका विवरण अपने पिताको सुनाकर कह देता है कि 'वह अगले सूर्योदय होनेके पूर्व ही अपने प्राणसखा कन्नूकी बात सच्ची सिद्ध होती देखना चाहता है। उसकी एक ही अन्तरतम इच्छा है कि आज जिन-जिन वनोंपर हमारा अधिकार है, उन सम्पूर्ण अरण्योंका एकछत्र स्वामित्व कलसे ही उसके प्राणसखा नन्दतनय श्रीकृष्णका हो जाय।'

श्रीबृषभानुबाबा अपने पुत्र श्रीदामका उसके सखा नन्दनन्दनके प्रति सच्चा आत्मोत्सर्गका भाव देखकर गद्गद हो जाते हैं। वे अपने पितृत्वको धन्य मानने लगते हैं। वे अपने भाग्यको सराहते हैं कि उन्हें ऐसा त्यागी और सखा-स्नेही पुत्र मिला है।

श्रीदाम भैयाका विलक्षण त्याग देखकर मौसी कीर्त्तिमती, मौसा सत्यभानु, पिता बृषभानुजी एवं मैया कीर्त्तिदा – चारोंकी आँखें बरबस झरने लगती हैं। बारबार सभी अश्रु पौंछते हैं किन्तु अश्रुधाराका विराम ही नहीं हो पाता। उन सभीका कण्ठ अवरुद्ध हो उठता है।

अस्तु, उसी समय महाराज बृषभानु दूतको बुलाते हैं और गुरुदेव महर्षि भागुरि, गोपराज नन्द, नन्दवंशके कुलगुरु महर्षि शाण्डिल्य – सभीकी साक्षीमें अपने पुत्र श्रीभैयाकी इच्छा शत-प्रतिशत पूर्ण कर देते हैं। दोनों धर्मबन्धु - श्रीबृषभानुजी एवं श्रीनन्दरायजी सुन्दरीवाटिका पहुँचते हैं और ब्रजेन्द्रनन्दनके नाम अङ्कित सम्पूर्ण राज्यका दानपत्र दोनों ही कुलगुरुओंकी साक्षीमें सुन्दरीसरोवरमें स्थित श्रीकृष्णकी ही प्रतिमाके नीचे जड़ दिया जाता है। **(इस लीलाका पूर्ण विस्तारमय वर्णन प्रियतम-काव्यके चतुर्थ शतकके छन्द सं ३३४से ३६०तकमें वर्णित है।)**

श्रीदाम भैयाका जीवन श्रीकृष्ण-सुखमय है। वे राजकुलोचित सभी शृङ्गार करते हैं, किन्तु स्वयंको सजानेके लिये नहीं। जैसे ही वनमें उन्हें उनका सखा कन्नू मिलता है, वे उसे सजाने बैठ जाते हैं और अपना सभी शृङ्गार उसे धारण करा देते हैं। अपनी छाकमें जितनी भी सुस्वादु भोजन सामग्री होती है, वे पहले अपने सखा कन्नूको खिलाते हैं। वे अतिशय मधुर सङ्गीतस्वरमें गाते हैं, किन्तु अपने सखाको ही सन्तुष्ट करने। श्रीभैयाका आन्तरिक मनोभाव तो यही रहता

है कि वे मात्र अपने सखाके लिये ही जीवित रहें। वस्तुतः श्रीभैयाके मन-इन्द्रिय, उनकी चित्त-बुद्धि, उनके समस्त अङ्ग-अवयव एवं चेतन-आत्मातक उनके सखाके सुखार्थ ही हैं। उनके मनमें स्वसुखके सङ्कल्पका तो कभी उदय ही नहीं होता।

श्रीराधारानीकी प्रमुख आठ सखियाँ

१. श्रीललिता

श्रीराधारानीकी सखियोंके अनेक भेद हैं। इनकी प्रधान अष्ट सखियाँ हैं। – (१)श्रीललिता, (२)श्रीविशाखा, (३) श्रीचित्रा, (४) श्रीइन्दुलेखा, (५) श्रीचम्पकलता, (६) श्रीरङ्गदेवी, (७) श्रीतुङ्गविद्या, (८) श्रीसुदेवी। श्रीललिताका वर्ण गोरोचन-तुल्य है, ये सदैव मयूरपिच्छाभ वस्त्र पहनती हैं। प्रिया-प्रियतमको ताम्बूल अर्पित करना ही इनकी मुख्य सेवा है। इनका कुञ्ज विद्युद्वर्ण है। निकुञ्जमें इनकी आयु सदैव चौदह वर्ष, तीन मास, बारह दिन रहती है।

श्रीललिता खण्डिता भावकी मूल स्रोत हैं। अतीत, वर्त्तमान एवं भविष्यमें भी प्रवाहित खण्डिता भावकी प्राकृत धारा इनके विशुद्ध रसमय चिदानन्दमय भावकी ही छाया है। अवश्य ही इनमें जो खण्डिता भाव है वह अपने निमित्तसे नहीं व्यक्त होता। भानुकिशोरीकी एवं श्रीकृष्णचन्द्रके निर्दिष्ट सम्मिलनमें विलम्ब होनेपर ही इनमें इस दिव्य भावका उन्मेष होता है। राग भैरव-कालिंगड़ा इन्हें अत्यधिक प्रिय है। इनका प्रिय वाद्य है – वीणा।

प्रिया-प्रियतमकी सेवामें इनकी प्रधान तीन सहायिकाएँ रहती हैं – (१) अनङ्गमञ्जरी (मञ्जुश्यामा), (२) लवङ्गमञ्जरी, एवं (३) रूपमञ्जरी।

इनकी आठ मुख्य सहचरियाँ हैं – (१) रत्नप्रभा, (२) रतिकला, (३) सुभद्रा, (४) भद्ररेखिका, (५) सुमुखी, (६) धनिष्ठा, (७) कलहंसी, (८) कलापिनी।

इनके पिताका नाम विशोक गोप है तथा माता शारदा हैं। इनके पितामें औदार्य गुण कूट-कूटकर भरा है। वह इनमें भी पूर्ण व्यक्त हुआ है। श्रीराधाकी सभी सखियोंमें ये ही सर्वप्रधान हैं। प्रकारान्तरसे राधारानीकी समस्त लीलाओंकी परम अध्यक्ष स्वरूपा ये ही हैं। निरन्तर वाम्य एवं प्रखरताका एक अद्भुत सम्मिश्रण इनकी चेष्टाओंमें परिलक्षित होता है। संधि, विग्रह – जिस भाँतिसे अधिकाधिक रस-पोषण संभव हो, उसी प्रकारकी चेष्टाओंमें संलग्न रहकर ये प्रिया-प्रियतमका आनन्दवर्धन करती हैं। पुष्पवितान, पुष्पमाल, पुष्पछत्र, पुष्पशय्या, पुष्पगृह आदिकी रचनामें ये अत्यन्त निपुण हैं; विविध इन्द्रजालकी ये पण्डिता हैं। निकुञ्जलीलामें पहेलीकी अर्थ-अवधारणामें इनके समान कोई नहीं है।

२. श्रीविशाखा

श्रीराधारानीकी दूसरी मुख्य सखी हैं – श्रीविशाखा जिनकी माताका नाम गुणकला एवं पिताका नाम गुणभानु है। इन्हें सुदक्षिणा एवं पावन गोप भी कहते हैं। जिस क्षण भानुकिशोरीका आविर्भाव हुआ, उसी क्षण इनका भी आविर्भाव हुआ – ऐसी मान्यता गौडीय सम्प्रदायके वैष्णवोंमें है। पुष्टिमार्गीय एवं अन्य वैष्णव इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला सप्तमीके दिवस श्रीराधाके जन्मके एक दिन पूर्व प्रातःकालमें हुआ मानते हैं। इनकी अङ्गकान्ति विद्युत्के समान है और इनका परिधान तारावलीप्रभ है। इनके कुञ्जका वर्ण मेघके समान है। कर्पूर आदि विविध सुगन्धित द्रव्योंसे विलेपन करनेकी विशेष सेवा इनके अधिकारमें है। स्वाधीनभर्तृका भावकी अप्राकृत लीलाजगत्‌में चरम परिणति इनमें हुई है। अतीत एवं अनागत विश्वमें स्वाधीनभर्तृकाभावका उन्मेष इनकी सत्तापर ही अवलम्बित है। सारंग राग इन्हें बहुत प्यारा है। इनका प्रिय वाद्य मृदङ्ग है। निकुञ्जलीलामें इनकी आयु चौदह वर्ष, दो माह, पन्द्रह दिन ही रहती है। प्रिया-प्रियतमकी निकुञ्जसेवामें इनकी प्रधान तीन सहायिकाएँ रहती हैं – (१) मधुमतीमञ्जरी (२) रसमञ्जरी एवं (३) गुणमञ्जरी। इनकी आठ सहचरियाँ हैं –

(१) माधवी, (२) मालती, (३) चन्द्ररेखिका, (४) कुञ्जरी, (५) हरिणी, (६) चपला, (७) सुरभी एवं (८) शुभानना ।

अपने पिताके समान ही ये पूर्ण विदुषी हैं। इनका परामर्श कभी व्यर्थ नहीं होता। ये अत्यन्त परिहासकुशल हैं। प्रिया-प्रियतमके मिलनकी विविध युक्तियाँ, नव-नव रसास्वादनके उपाय – ये सोचती ही रहती हैं। प्रिया-प्रियतमके अङ्गोंपर पत्रावली आदिकी रचना करनेमें, पुष्पमालाओंके संयोगसे विविध शिरोभूषण प्रस्तुत करनेमें, विचित्र सर्वतोभद्र निर्माण करनेमें, मण्डल आदिकी रचना करनेमें, विविध सूत्रोंको लेकर सुईसे वस्त्रोंपर बेलबूँटे निकालनेमें ये अतिशय प्रवीण हैं। वस्त्रोंकी सँभाल रखनेवाली जो सखियाँ एवं दासियाँ हैं, पुष्प, लता, वल्लरी, वृक्षावलीपर वृन्दा सखीकी जिन-जिन सहचरियोंका अधिकार है, वे सभी इनके आदेशसे ही काम करती हैं।

३. *श्रीचित्रा*

इनकी माताका नाम चर्चिका एवं पिताका नाम चतुर गोप है। अन्य मतसे इनकी माताका नाम रुचिकला एवं पिताका नाम रुचिभानु है। इनकी अङ्गकान्ति काश्मीर-केसर सरीखी है। इनके वस्त्रोंका रंग काचप्रभ है। ये किञ्जल्कवर्णके कुञ्जमें निवास करती हैं। इनकी प्रमुख सेवा प्रिया-प्रियतमको विविध वस्त्रालङ्कारोंसे विभूषित करनेकी रहती है।

एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि विशुद्ध निकुञ्जमें तो प्रिया-प्रियतम दोनोंका ही शृङ्गार सखियाँ ही करती हैं किन्तु गोष्ठलीलामिश्रित निकुञ्जलीलामें गोष्ठके समय राधारानीकी सेवा सखियाँ करती हैं तथा श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा उनके गोष्ठके परिकर करते हैं।

श्रीचित्राका दिवाभिसारिका भाव है। संकरा राग इन्हें अतिशय प्रिय है। इनका प्रिय वाद्य सितार है। निकुञ्जमें इनकी आयु सदैव चौदह वर्ष, एक महीना, उन्नीस दिनकी रहती है। इनकी सेवामें इनकी प्रधान सहायिका रहती हैं – (१) विमलामञ्जरी, (२) रतिमञ्जरी एवं (३) भद्रमञ्जरी। इनकी प्रधान आठ सहचरियाँ हैं – (१)रसालिका, (२)तिलकिनी, (३)शौरसेनी, (४)सुगन्धिका, (५)रमिला, (६)कामनागरी, (७)नागरी एवं (८)नागवेलिका।

इनके पिता ज्योतिष शास्त्रमें पारङ्गत हैं। ये भी ज्योतिष शास्त्रकी पूर्ण पण्डिता हैं। सङ्केत भाषाका इन्हें विशिष्ट ज्ञान है। अनेक देशोंकी भाषाओंका भी इन्हें परिज्ञान है। ये देखकर ही बता देती हैं कि मधु, दुग्ध आदि वस्तु कैसी हैं, किस कीटका सञ्चित यह मधु है तथा दूध किस पशुका है। ये काचके बर्तन बनानेमें बड़ी निपुण हैं। वृक्षोपचारशास्त्र, पशुशास्त्रमें इन्हें पूर्ण अधिकार है। ये सर्पमन्त्रोंकी भी विशेषज्ञा हैं, रसीली भोज्य वस्तुओंके निर्माणमें सिद्धहस्ता हैं। वृन्दावनकी कुसुमादिविहीन जो दिव्य औषधियाँ हैं तथा ऐसी जो वनस्पतियाँ हैं उनपर अधिकार रखनेवाली समस्त सखियाँ अथवा वृन्दा-दासियाँ इनके आदेशसे ही काम करती हैं।

४. *श्रीइन्दुलेखा*

इनकी माताका नाम वेला है तथा पिताका नाम है सागर है। एक मतसे माताका नाम वरकला तथा पिताका नाम वरभानु भी है। इनकी अङ्गकान्ति हरताल-सरीखी है। ये दाड़िम-कुसुम-वर्णके वस्त्र धारण करती हैं। ये शुभ्र वर्णके कुञ्जमें निवास करती हैं। इनके पिता प्रसिद्ध गायक हैं। ये भी गानविद्यामें ब्रजकी ख्यातिलब्ध गोपसुन्दरी हैं।

इनकी प्रधान सेवा है प्रिया-प्रियतमको अपने नृत्यकौशलके प्रदर्शनसे प्रसन्न करना। इनका भाव है – प्रोषितभर्तृका । इन्हें राग विहाग अतिशय प्रिय है। इनका प्रिय वाद्य है – मंजीरा। निकुञ्जमें इनकी आयु सदा चौदह वर्ष, दो महीना, बारह दिनकी रहती है।

इनकी तीन प्रधान सहायिकाएँ हैं – (१) श्यामलामञ्जरी (२) लीलामञ्जरी (३) विलासमञ्जरी। इनकी आठ प्रमुख सहचरियाँ हैं - (१) तुङ्गभद्रा, (२) रसतुङ्गा, (३) रङ्गवाटी, (४) सुमङ्गला, (५) चित्रलेखा, (६) विचित्राङ्गी, (७) मोदिनी एवं (८) मदनालसा।

५. श्रीचम्पकलता

इनकी माताका नाम वाटिका तथा पिताका नाम आराम है। मतान्तरसे इनकी माताका नाम चन्द्रकला तथा पिताका नाम चन्द्रभानु है। इनकी अङ्गकान्ति चम्पकपुष्प-सरीखी है तथा ये नीलकण्ठ पक्षीके वर्णके वस्त्र धारण करती हैं। इनके कुञ्जका वर्ण तप्त स्वर्णवर्णका है। ये प्रिया-प्रियतमकी चामर डुलानेकी सेवा करती हैं। इनका भाव वासकसज्जा है। इनका प्रिय वाद्य सारंगी है।

निकुञ्जमें इनकी आयु सदा चौदह वर्ष, दो महीने, चौदह दिनकी रहती है। सेवाकार्यमें इनकी प्रधान सहायिकाएँ हैं – १.पालिकामञ्जरी २. विलासमञ्जरी एवं ३. केलिमञ्जरी। इनकी आठ प्रमुख सहचरियाँ हैं – (१) कुरंगाक्षी (२) सुचरिता (३) मंडली (४) मणिकुण्डला, (५) चन्द्रिका, (६) चन्द्रलतिका, (७) कुन्दकाक्षी एवं (८) सुमन्दिरा।

इनके पिता विविध कलाओंके ज्ञाता हैं तथा ये भी विविध कलाओंकी पण्डिता हैं। ये अन्य गुणोंमें विशाखा सखीके समान हैं । ये द्यूतशास्त्रकी महापण्डिता हैं। प्रतिपक्षयूथकी सखियोंकी इनके सामने एक नहीं चलती। केवल हाथके सहारे मिट्टीके बर्त्तन, पत्र, पुष्प आदि विविध वस्तुएँ बनानेमें अद्वितीय हैं। मिष्ठान्न एवं व्यञ्जन बनानेका भी इनका कौशल अद्वितीय है।

६.श्रीरङ्गदेवी

इनकी माताका नाम करुणा तथा पिताका नाम रङ्गसार है। अन्य मतसे इनकी माताका नाम धर्मकला तथा पिताका नाम धर्मभानु भी है। इनके कलेवरकी कान्ति पद्मकिञ्जल्क-सरीखी है। ये जवाकुसुम वर्णके परिधान धारण करती हैं। इनके कुञ्जका वर्ण श्याम है। इनकी प्रमुख सेवा प्रिया-प्रियतमको अलक्तक लगानेकी है। गोष्ठलीलामें राधारानीको अलक्तक समर्पण करनेकी सेवा नापित कन्यायें करती हैं पर निकुञ्जलीलामें यह सेवा रङ्गदेवीजीके अधिकारमें है।

इनका भाव उत्कण्ठिता है। इनकी आयु निकुञ्जमें सदा चौदह वर्ष, दो महीना, आठ दिनकी रहती है। सेवाकार्यमें इनकी प्रधान सहायिकाओंके नाम हैं – (१) मङ्गलामञ्जरी (२) कुन्दमञ्जरी (३) मदनमञ्जरी। इनकी भी आठ प्रमुख सहचरियाँ हैं – (१) कलकंठी (२) शशिकला (३) कमला (४) मधुरा (५) इन्दिरा (६) कन्दर्पसुन्दरी (७) कामलतिका (८) प्रेममञ्जरी।

इनके पिताकी धर्मपालनमें बड़ी निष्ठा है। इनमें भी स्त्रियोचित ब्रत-त्यौहारादिकमें बड़ी आस्था है। शेष बातोंमें इनका प्रायः श्रीचम्पकलताजीसे साम्य है। प्रियाप्रियतमको धूप खेनेवाली, शिशिर ऋतुमें अग्निरक्षण करनेवाली तथा ग्रीष्मकालमें वीजनकी सेवा करनेवाली सखियाँ-दासियाँ इन्हींके आदेशानुसार कार्य सम्पन्न करती हैं।

७. श्रीतुङ्गविद्या

इनकी माताका नाम मेधा एवं पिताका नाम पौष्कर है। मतान्तरसे इनके माता-पिताके नाम सुष्ठुकला एवं सुभानु भी है। इनके शरीरकी कान्ति चन्द्रकुङ्कुम-जैसी है। ये अपने अङ्गोंपर पीत वर्णके परिधान धारण करती हैं। इनके निकुञ्जका वर्ण अरुण है। इनकी प्रधान सेवा प्रिया-प्रियतमको गीतवाद्यों सहित गायन-वादन करके प्रसन्न करना है। इनका भाव विप्रलब्धा है। निकुञ्जमें इनकी आयु सदैव चौदह वर्ष, दो महीना, बीस दिन रहती है। सेवामें इनकी प्रमुख तीन सहायिकाओंके नाम हैं – (१) धन्यामञ्जरी (२) अशोकमञ्जरी (३) मञ्जुलीला मञ्जरी। इनकी प्रधान आठ सहचरियोंके नाम हैं – (१) मञ्जुमेधा, (२) सुमधुरा, (३) सुमध्या, (४) मधुरेक्षणा, (५) तनुमध्या, (६) मधुस्यन्दा, (७) गुणचूड़ा एवं (८) वराङ्गदा।

इनके पिता स्वाभाविकरूपसे सभीको प्रिय लगते हैं। ये भी स्वाभाविक ही सभीको अत्यन्त प्रिय लगती हैं। समस्त विद्याओंकी ये खान हैं। ऐसी कोई विद्या नहीं जो तुङ्गविद्याजी नहीं जानतीं। रसशास्त्र, नीतिशास्त्र,

नाट्यशास्त्र, समस्त गान्धर्वविद्या – इन सबकी ये आचार्य हैं। सङ्गीतमञ्च, वाद्यमञ्च, रासमञ्च आदिपर जितनी सखियाँ एवं दासियाँ सेवा करती हैं – वे सभी इनके पर्यवेक्षणमें काम करती हैं।

८. श्रीसुदेवी

ये रङ्गदेवीजीकी यमज बहिन हैं। एक मतसे इनके माता-पिताका नाम कमला एवं उदधिभानु भी है। इनके शरीरकी कान्ति स्वर्ण-सदृश है। ये प्रवाल वर्णके परिधान अपने अङ्गोंपर धारण करती हैं। इनके कुञ्जका वर्ण हरा है। प्रिया-प्रियतमकी जलकी सेवा इनके अधिकारमें है। इनका भाव कलहान्तरिता है। निकुञ्जमें इनकी आयु सदैव चौदह वर्ष, दो महीना तथा आठ दिनकी रहती है। सेवामें इनकी प्रमुंख सहायिकाएँ हैं – (१) तारकामञ्जरी, (२) सुधामुखीमञ्जरी एवं (३) पद्ममञ्जरी। इनकी आठ प्रमुख सहचरियोंके नाम हैं – (१) कावेरी, (२) चारुकबरा, (३) सुकेशी, (४) मञ्जुकेशिका, (५) हारहीरा, (६) महाहीरा, (७) हारकण्ठी एवं (८) मनोहरा।

ये दौड़नेमें बड़ी तेज हैं। इनकी आकृति रङ्गदेवीजीसे इतनी मिलती है कि दूरसे देखनेपर कितनी ही बार भ्रान्ति हो जाती है कि रङ्गदेवीजी आ रही हैं। भानुकिशोरीकी वेणी-रचना भी प्रायः ये करती हैं, नेत्रोंमें अञ्जन भी ये लगाती हैं, अङ्गसंवाहनकी सेवा भी अधिकांश कालमें यही करती हैं। सारिका एवं शुकको शिक्षण देनेमें ये बड़ी कुशल हैं। तीतर, बटेर लड़ानेकी कला भी इन्हें बहुत आती है। शकुनशास्त्रकी ये पूर्ण पण्डिता हैं। पक्षीगणकी भाषाका इन्हें पूर्ण ज्ञान है। चन्द्रोदय, मेघावलि, पुष्पों तथा अग्निके सम्बन्धमें इनका ज्ञान अगाध है। दिव्य लीलामें प्रतिपक्षी सखियोंके भाव, उनकी चेष्टाएँ आदि जाननेके लिये जो सखियाँ एवं दासियाँ गुप्तचरकी भाँति घूमती हैं , वे सब-की-सब इनके आदेशानुसार कार्य-सञ्चालन करती हैं।

श्रुतिरूपा गोपियोंके कुछ नाम हैं – उद्गीता, सुगीता, कलगीता, कलसुरा, कलकंठिका, विपञ्ची, क्रमपदा, बहुहुता, बहुलप्रयोगा, अबला, कलावती, क्रियावती आदि।

मुनिरूपा गोपियोंके कुछ नाम हैं – उग्रतपा, बहुगुणा, प्रियव्रता, सुव्रता, सुरेखा, सुपर्वा, बहुप्रदा, रत्नरेखा, मणिग्रीवा, अकल्पा, सुकल्पा, सुपर्णा, रत्नमालिका, सौदामिनी, कामदायिनी, भोगदा, विश्वमता, धारिणी, धात्री, सुमेधा, कान्ति, सुलोचना, सुमना आदि।

यूथेश्वरियाँ – चन्द्रावली, सुशीला, सर्वमङ्गला, अंबिका, कृष्णप्रिया, सावित्री आदि। इनके यूथमें सोलह-सोलह हजार सखियाँ हैं। सावित्रीके यूथमें पन्द्रह हजार सखियाँ हैं।

श्रीराधारानीकी प्रधान अष्ट मञ्जरियाँ

१. रूपमञ्जरी

श्रीराधारानीकी प्रधान अष्ट मञ्जरियोंमें रूपमञ्जरीका स्थान प्रथम है। इनका वर्ण गोरोचन है एवं इनके वस्त्रका वर्ण भी मयूरपिच्छाभ है। श्रीललिता इनकी प्रधान सखी हैं। निकुञ्जमें श्रीललिताजीकी मुख्य सहयोगिनी होनेके कारण ये उनके ही समान वर्णवाली एवं उनके ही समान वर्णका वस्त्र भी पहनती हैं। श्रीललिताकुञ्ज, जो श्रीराधाकुञ्जके उत्तरमें स्थित है, वही इनका भी कुञ्ज है। निकुञ्जमें इनकी वय ललिताजीसे कुछ छोटी है। ये सदा तेरह वर्ष, छः माह वयकी ही रहती हैं। श्रीललिताजी इनसे नौ माह, बारह दिन बड़ी हैं। इनकी मुख्य सेवा भी प्रिया-प्रियतमको ताम्बूल अर्पण करना है।

२. मंजुलीलामञ्जरी

श्रीराधाकुण्डके ईशानकोणमें विशाखाकुञ्जमें श्रीमञ्जुलीलामञ्जरी निवास करती हैं। इनक अङ्गोंसे तप्त स्वर्णवर्णकी छटा प्रद्योतित होती रहती है। ये किंशुकपुष्पवर्णके वस्त्र पहनती हैं और प्रिया-प्रियतमको सुन्दर वस्त्र धारण करवानेकी सेवा करती हैं। निकुञ्जमें इनकी वय तेरह वर्ष, छः माह एवं सात दिनकी ही रहती है।

३. रसमञ्जरी

श्रीराधाकुण्डके पूर्वमें चित्राकुञ्जमें श्रीरसमञ्जरी निवास करती हैं। इनके देहका वर्ण चम्पापुष्पवर्ण है । ये हंसवर्णके शुभ्र वस्त्र पहनती हैं। इनकी निकुञ्जमें वय सदैव तेरह वर्षकी ही रहती है। श्रीराधारानी एवं प्रियतम श्यामसुन्दरके भिन्न-भिन्न लीलाओंके चित्र निर्माण करना और उस सेवासे प्रिया-प्रियतमको रिझाना इनकी मुख्य सेवा है। प्रियाके अङ्गोंमें प्रियतमकी एवं प्रियतमके अङ्गोंमें प्रियाकी मुखादिकी शोभा हू-ब-हू अङ्कित कर देना इनकी कलात्मक चतुराई है।

४. रतिमञ्जरी

श्रीराधाकुण्डके अग्निकोणमें जो श्रीइन्दुलेखाजीका कुञ्ज है उसमें श्रीरतिमञ्जरी सेवारत रहती हैं। इनके अङ्ग विद्युदाभावर्णी हैं और ये तारावर्णके वस्त्र पहनती हैं। इनकी मुख्य सेवा प्रिया-प्रियतमके चरण-संवाहन करनेकी है। इनकी वय निकुञ्जमें सदैव तेरह वर्ष, दो मास मात्र रहती है।

५. गुणमञ्जरी

दक्षिण दिशामें चम्पकलताकुञ्जमें इनका निवास है। इनके अङ्ग भी विद्युद्वर्णके हैं। ये जपापुष्पवर्णके वस्त्र पहनती हैं। निकुञ्जमें इनकी वय नित्य तेरह वर्ष, एक मास, सत्ताईस दिन ही रहती है। ये प्रिया-प्रियतमकी जल-सेवा करती हैं।

६. विलासमञ्जरी

श्रीराधाकुण्डके नैऋत्य कोणमें जो श्रीरङ्गदेवीका कुञ्ज है उसमें विलासमञ्जरी निवास करती हैं। इनके अङ्गोंका वर्ण स्वर्णकेतकी सदृश है। भ्रमरवर्णके ये वस्त्र पहनती हैं। ये अञ्जन-सिन्दूर लगाकर प्रिया-प्रियतमकी नित्य सेवा करती हैं। इनकी वय निकुञ्जमें सदैव तेरह वर्ष, छब्बीस दिन रहती है

७. लवङ्गमञ्जरी

श्रीराधाकृष्णकुण्डके पश्चिम दिशामें स्थित तुङ्गविद्याके कुञ्जमें लवङ्गमञ्जरी निवास करती हैं। इनका वर्ण विद्युद्वर्ण है। ये ताराप्रभ वस्त्र पहनती हैं। इनकी वय निकुञ्जमें सदैव तेरह वर्ष, छः माह, एक दिवसकी रहती है। प्रिया-प्रियतमको सुगन्धित पुष्पमालाएँ समर्पित करनेकी इनकी सेवा रहती है।

८. कस्तूरीमञ्जरी

श्रीराधाकृष्णकुण्डके वायव्य कोणमें स्थित सुदेवीकुञ्जमें कस्तूरीमञ्जरी निवास करती हैं। इनका वर्ण स्वर्ण-सदृश है। ये काचवर्णके शुभ्र वस्त्र धारण करती हैं। इनकी वय निकुञ्जमें सदैव तेरह वर्षकी रहती है। ये प्रिया-प्रियतमको चन्दन समर्पित करनेकी सेवा करती हैं।

सोलह मञ्जरियाँ

इन प्रमुख अष्ट मञ्जरियोंके अतिरिक्त श्रीराधारानीकी अन्य सोलह मञ्जरियाँ हैं। इनके सभीके नाम ललिता-विशाखादि अष्ट सखियोंकी सहायिकाओंके रूपमें पहले दिये जा चुके हैं।

पाँच प्रकारकी सखियाँ

श्रीराधारानीकी पाँच प्रकारकी सखियाँ हैं। इनमें सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, परम प्रेष्ठ सखी – ये भेद हैं। परम प्रेष्ठ सखियों .ललिता, विशाखादिका वर्णन पूर्वतः किया जा चुका है।

श्रीराधारानीकी **सखीवर्गमें** कुसुमिका, विन्ध्या एवं धनिष्ठा आती हैं।

नित्यसखीवर्गमें कस्तूरी, मनोज्ञा, मणिमञ्जरिका, सिन्दूरा, चन्दनवती, कौमुदी, मुदिता आदिके नाम हैं।

प्राणसखीवर्गमें शशिमुखी, चन्द्ररेखा, प्रियम्वदा, मदोन्मदा, मधुमती, वासन्ती, लासिका, कलभाषिणी, रत्नवेणी,

मालवती, कर्पूरलतिका आदि हैं। कादम्बरी, केलिकन्दली, मणिमती – ये सभी सखियाँ श्रीराधाके समान प्रेम, सौन्दर्य एवं सद्गुणशीला हैं।

श्रीराधारानीकी **प्रियसखीवर्गमें** कुरङ्गाक्षी, मण्डली, मानकुण्डला, मालती, चन्द्रलतिका, माधवी, मदनालसा, मञ्जुमेधा, मञ्जुकेशी, शशिकला, सुमध्या, मधुरेक्षणा, कमला, चन्द्रतिलका, गुणचूड़ा, वराङ्गदा, माधुरी, चन्द्रिका, प्रेममञ्जरी, तनुमध्यमा, कन्दर्पसुन्दरी, मञ्जुकेशी आदि हैं।

श्रीराधारानीकी सेविकाएँ

श्रीराधारानीकी अतिशय प्यारी **रजककन्याएँ** हैं – मञ्जिष्ठा एवं रंगवती। इनमें मञ्जिष्ठा तो वस्त्र- धुलाईका कार्य करती है और रङ्गवती वस्त्रोंमें रँगाईका कार्य करती है।

इसी प्रकार श्रीराधाकी सर्वप्रिय **नापित-कन्याएँ** सुगन्धा एवं नलिनी हैं। सुगन्धा उनके अङ्गोंमें उबटन लगाती है एवं नलिनी केशसंस्कार एवं अलक्तक-समर्पण करती है।

मालिन-कन्याओंमें श्रीराधारानीको सुरभित कुसुम एवं पद्म-चयनकर प्रतिदिन प्रातःकाल भेंट देनेवाली, पुष्पहार निर्माणकर पहनानेवाली सखि है नर्मदा। श्रीराधा जैसे ही नर्मदाको देखती हैं, सर्वप्रथम उसे हृदयसे लगाती हैं एवं तब इसकी भेंट स्वीकार करती हैं। इसी प्रकार प्रेमवती फूलोंसे मण्डप, हिंडोला आदि बनानेमें परम चतुरा है।

(रजक, नापित एवं मालिन कन्याओंके अनिर्वचनीय प्रेमभावोंकी विशेष लीलाएँ महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा - प्रथम खण्डमें विस्तारसे दी गयी हैं। उन्हें जिज्ञासु पाठकोंको वहाँ अनुशीलन करना चाहिये।)

सन्धि करानेवाली दूतियाँ – मानप्रसङ्गमें प्रिया-प्रियतमके मध्य संधि करानेवाली(दूतियाँ) सखियाँ हैं - नान्दीमुखी, विन्दुमती आदि।

संगीत सुनानेवाली सखियाँ – श्रीविशाखा सखी प्रिया-प्रियतमकी विविध लीलाओं, इनके रूप–सौन्दर्य आदिके अतिशय ललित एवं पदोंकी रचना करती हैं और तब कलाकण्ठी, सुकण्ठी, पिककण्ठिका आदि सखियाँ, जो वाद्य एवं संगीतमें अतिशय निपुणा हैं, इन पदोंको प्रिया-प्रियतमके सम्मुख यथावसर गा-गाकर सुनाया करती हैं, जिन्हें सुनकर प्रिया-प्रियतम आनन्दमत्त हो जाते हैं।

पालिन्धी सखी श्रीराधारानीकी **सैरन्ध्री सखी** है। मल्ली, भृङ्गी एवं मतल्ली आदि श्रीराधारानीकी **वनवासिनी सखियाँ** हैं। वनसे भिन्न-भिन्न प्रकारका मधु सञ्चित करना, पुष्पोंसे पुष्पसार इत्र, केवड़ा जल, कमल-पराग आदि सञ्चयकर प्रिया-प्रियतमकी सेवामें पुष्कल मात्रामें समुपस्थित करना इनका कार्य है।

प्रिया-प्रियतमके लीलाचित्र रचनाकर उन्हें भेंट करनेवाली **चित्रकार सखी** चित्रिणी है।

दैवज्ञा एवं देवतारिणी **यंत्र-मंत्र-तंत्रक्रियाकी सलाह देनेवाली सखियाँ** हैं।

गार्गी, महीसूर्या, भृङ्गारिका आदि प्रियतमको सन्देश देनेवाली राधारानीकी **मुख्य दूतियाँ** हैं। कात्यायनी इनमें वृद्धा दूती है।

कामदा राधारानीकी धायकी पुत्री है, जो श्रीराधारानीको अतिशय प्रिय है।

लवङ्ग, रूप एवं गुण आदि मञ्जरियाँ राधारानीकी **मुख्य सेविकाएँ** हैं जो श्रीराधारानीको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती हैं।

❑

उद्यानों में, आरामों में बिहगी-सी थी फिरती, प्रियतम!
महलों में चञ्चल-चपला-सी हँसकर खेला करती, प्रियतम!
अपलक सब देखा करते थे क्रीड़ा-शैशव उसकी, प्रियतम!
न्योछावर जो न हुआ उसपर, था नहीं कहीं कोई, प्रियतम॥१५॥

उद्यानोंमें, आरामोंमें, वह विहङ्गिनीकी भाँति घूमती फिरती। महलोंमें वह चञ्चल विद्युल्लहरीके सदृश हँस-हँसकर विभिन्न क्रीड़ाओंमें लगी रहती। नर-नारी अपलक रहकर उसकी बाल्यक्रीड़ा देखा करते । ऐसा कोई नहीं था, जो उसपर न्योछावर नहीं हो गया हो।। १५।।

जिज्ञासा

वृषभानुपुरमें पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, जड़-चेतन, नभ-वायु, जल-स्थल भी थे; क्या वे सभी वृषभानु-राजदुहितापर न्यौछावर हो चुके थे ? यदि प्राकृत जड़ समुदाय भी उस बालिकापर न्यौछावर था, तो उनके न्यौछावर होनेका स्वरूप एवं प्रमाण क्या था ? कृपया बाला श्रीराधाकी तत्कालीन शिशुक्रीड़ापर किञ्चित् विस्तारसे प्रकाश डालें।

समाधान

इस समग्र ग्रन्थका अध्ययन करनेवाले परम भाग्यवान् वैष्णव पाठकोंसे अति विनम्र निवेदन है कि इस ग्रन्थमें जो कुछ भी वर्णित है, वह वर्णन अप्राकृत जगत्का है। उसकी तुलना इस मायामय क्षणभङ्गुर जड़ प्राकृत संसारसे कदापि नहीं हो सकती। यहाँ जिन श्रीराधाकुमारीका वर्णन है, वे साधारण मानवी कन्या कदापि नहीं हैं। वे राधा अनादि हैं, उनका सौन्दर्य भी अनादि-अनन्त है। इन श्रीराधाके सौन्दर्यका उद्भव परात्पर परब्रह्म भगवान्की सच्चिदानन्दमयी स्वरूपाशक्तिसे होता है। भगवती श्रीराधाके सौन्दर्यकी छाया-की-छायाका एक कण ही स्थूल रूपको प्राप्त होकर सम्पूर्ण प्राकृत विश्वके सौन्दर्यका हेतु बनता है। जब भी भगवती श्रीराधा लीलाधाममें, अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रकट होती हैं, अवतीर्ण होती हैं, तब उनके अप्राकृत चिन्मय विग्रहमें उनके अङ्ग-अवयव, हाथ-पैर, मुख-वक्षस्थल आदि सभी सच्चिदानन्दमय भगवत्स्वरूप ही होते हैं। श्रीराधारानीका शिशुरूपमें ही श्रीनारदजीने दर्शन किया था। श्रीनारदजी राधाकुमारीको देखते ही चमत्कृत हो उठे। वे मन-ही-मन विचार करने लगे – 'मैं स्वच्छन्दचारी होकर समस्त लोकोंमें भ्रमण करता रहता हूँ, परन्तु इसके समान अलौकिक सौन्दर्यमयी कन्या मैंने कहीं नहीं देखी।' उनका सोचना सत्य ही था। महामाया भगवती गिरिराजकुमारीके सौन्दर्यको देखकर चराचर जगत् मोहित हो जाता है, परन्तु श्रीराधाका ऐसा विलक्षण सौन्दर्य है कि उसे देखकर चर-अचर मात्र मोहित ही नहीं होते, वे बाला श्रीराधाके चरणोंमें न्यौछावर हो जाते हैं। भगवती महादेवीका सौन्दर्य भी भगवती श्रीराधाके सौन्दर्यके सम्मुख फीका ही ठहरता है। श्रीराधाके विलक्षण सौन्दर्यतत्त्वकी महिमा इतनी असमोर्ध्व है कि शिव-सनकादिकी तो बिसात ही क्या, स्वयं साक्षात् परात्पर परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण भी उनके चरणोंमें ***'धेहि पद-पल्लवमुदारम्'*** कहकर याचना करने लगते हैं। श्रीराधाके सौन्दर्यकी एक झलक-मात्रके दर्शनसे भगवान् श्रीकृष्णको उनके चरणकमलोंमें अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेकी स्पृहा जग उठती है एवं उन चरणारविन्दोंमें भगवान्के प्रेमकी इतनी वृद्धि हो उठती है कि उन्हें फिर उनके सिवा कुछ भी नहीं सुहाता।

श्रीराधाके अङ्ग मोहन एवं दिव्य हैं एवं उनसे मधुरिमाकी वर्षा होती रहती है। उसका रोम-रोम रसानन्दसे पूर्ण छलकता रहता है। ये श्रीराधा किसीके महान् सौभाग्योदयोपरान्त ही नेत्रोंकी अतिथि बनती हैं। अति बाल्यावस्थामें ही वे अपने सुन्दर रूपसे चराचरको मुग्ध किये रहती हैं।

ये श्रीराधाकुमारी अपने अङ्ग-सौन्दर्यसे वृषभानुपुरके अपने प्रासादके उद्यानोंमें, उपवनोंमें विहगी-सी फिरती-चहकती चेतनको जड़ एवं जड़को चेतन बनाती रहती हैं। जिसकी दृष्टि भी इस बालिकापर पड़ती है, आबाल-वृद्ध, पशु-पक्षी, स्थावर-जङ्गम, कण-कण, अणु-अणु प्रेमानन्दमें डूब जाता है। वीणास्वरमें विमोहित मृगोंकी भाँति वे सभी दर्शक रसानन्दमें परिपूरित निमग्न हो उठते हैं। विहङ्ग मधुर काकलीका त्याग करके इस कुमारी बालाके अङ्गोंसे झरते अनिर्वचनीय सौन्दर्यका उपभोग करनेके लिये अपने नेत्रोंको निर्निमेष स्थिर कर लेते हैं, पलकें गिराना बन्दकर वे अपने नेत्र-पात्रोंको इस सौन्दर्य-सुधाके प्रवाहमें लगा देते हैं।

प्रातः होते ही राज्य-सचिवोंकी ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, इन्दुलेखा, रङ्गदेवी, तुङ्गविद्या, सुदेवी आदि अनेकानेक कन्याएँ, मञ्जरियाँ, दासी-पुत्रियाँ जिनका बाला श्रीराधासे प्रेम-गठबन्धन हो चुका होता है, वृषभानु-प्रासादमें एकत्रित हो जाती हैं; ये सभी बालिकाएँ श्रीराधाको घेरकर खड़ी हो जाती हैं, परन्तु अपनी सखी राधाका रूप देखकर ये सभी अपने नेत्रोंमें अतृप्ति-बोध करने लगती हैं। जब इन्हें श्रीराधा अपनी भुजाएँ फैलाकर आलिङ्गन करनेको आतुर होती हैं, उस समय चिन्मय सख्य-रस-सुधा-धारा समस्त धरामण्डलमें प्रवाहित हो चलती है। उद्यानोंमें विकसित कुमुद, कल्हार, कुन्द, मन्दार, चम्पा, चमेली, बेला, मोगरा हँस उठते हैं। पवन उनके मकरन्दको आनन्दमें भर सर्वत्र उड़ाने लगता है।

ये सभी बाल सखियाँ प्रतिदिवस ही नवीन-नवीन उमङ्गें लेकर अपनी सखी राधाके पास आती हैं, और जब इनका अपनी बाल-सखी राधासे मिलन होता है तो उस निराविल प्रेमरसकी धारासे वृक्ष ही नहीं, सूखे काष्ठतक रस बरसाने लगते हैं। ये सभी बालिकाएँ अपने विद्युद्वर्णी अङ्गोंके तेजसे उद्यानों, उनके अन्तर्गत आरामों (विश्रामस्थलियों) को समुद्भासित करती विहङ्गिनी-शावकोंकी भाँति चहकतीं भानु-प्रासादके पिछवाड़े खुले उपवनमें उस स्थलपर पहुँच जाती हैं, जहाँ बृषभानुपुरके पार्श्वमें बहते गिरिस्रोतने छोटे-छोटे अनेक लघु सरोवर निर्माण कर दिये हैं। ये लघु सरोवर बालिकाओंकी कमरतक ही गहरे हैं, और सदैव स्वच्छ जलसे पूर्ण छलकते रहते हैं। इनमें सुन्दर पद्म विकसित रहते हैं, शिरीष एवं मल्लिकाकी लताएँ इनके तटवर्त्ती वृक्षोंसे लिपटी इनके जलमें अपने सुरभित पुष्पोंकी इतनी अधिक वर्षा करती हैं, जिससे इन लघु सरोवरोंमें जलके ऊपर पुष्पसार.(इत्र) तैरता रहता है। इन्हीं सरोवरोंमेंसे किसी एक सरोवरमें एवं कभी दूसरेमें ये बालिकाएँ प्रवेशकर जलकेलि करने लगती हैं। सेविकाएँ महलोंसे नये वस्त्र लेकर इन्हें स्नानोपरान्त पुनः शृङ्गारित करने वृक्षोंके आलबालोंपर आसीन दूरसे अति सावधानीपूर्वक इनपर निगरानी रखती हुईं इन्हें निहारती रहती हैं। ये कभी परस्पर एक दूसरेपर जल उछालती हैं, कभी हंसिनियोंकी तरह डुबकी लगाती हैं, कभी मछलियोंकी तरह तैरती हैं। जब ये स्वच्छ जलमें डुबकी लगाती हैं तो इनकी केशराशि जलके ऊपर पुरइनके पत्तोंकी तरह गोलाकाररूपमें फैल जाती हैं एवं जब ये अपना विकसित रक्तपद्मोंके समान आनन जलसे ऊपर उठाती हैं तो उस समय इनकी घनी प्रसरित केश-राशि इनके कुन्दनद्युति स्कन्धदेश, पृष्ठदेश एवं शरीरके आधे बाहुओंतकके भागको आवृत कर लेती हैं। उस समय इन सभी बालिकाओंकी ऐसी शोभा होती है मानो घने मेघोंसे आवृत आकाशमें सुन्दर चन्द्रमुख प्रकट हो रहा हो।

कभी-कभी ये बालिकाएँ उपवनके उस भागपर पहुँच जाती हैं, जहाँ गिरिस्रोतके तटपर रजतके समान बालुका विस्तृत है। जब इस सैकतराशिपर इन बालिकाओंके चरण पड़ते हैं तो गिरिखण्डके अभिमानी देवगण अपने-अपने भाग्योंकी सराहना कर बैठते हैं। उन्हें राधारानीकी सखियों एवं स्वयं बाला राजनन्दिनी राधाके चरणोंका संस्पर्श तभी तो मिला है, जब इन देवगणोंके अहंकारको गिरिस्रोतने चूर-चूरकर सैकत-कणोंमें प्रकीर्ण कर दिया है।

ये बालिकाएँ कभी अपनी लघु अञ्जलियोंमें इस धूलिको भर-भरकर लाती हैं, गिरिस्रोतके जलसे इसे सिक्त करती हैं और तब इस रजपिण्डसे छोटे-छोटे गृह, आँगन, गौशालाएँ, पाकशालाएँ, पूजन-मन्दिर, उद्यानादि निर्माण करती हैं।

इन बालिकाओंकी यह शिशुक्रीड़ा देखते-देखते अन्तरिक्ष-स्थित देवगणोंके प्राण उत्कण्ठित हो उठते हैं। देवाधिदेव शिव-ब्रह्मादिके कर-युगल प्रार्थनामुद्रामें बद्ध हो जाते हैं। उनके चतुर्मुखों, पञ्चमुखोंसे बरबस ही स्तवनमंत्र झरने लगते हैं।

'हे अनन्तकान्तिमयी महायोगेश्वरियों ! तुम्हारा यह माधुर्य-वैभव आश्चर्यमय है। तुम सभी विशुद्ध सत्त्वमयी हो, विद्यारूपिणी पराशक्ति हो; तुम्हीं इस परमानन्द-सन्दोहमय ब्रज वैष्णवधामको नित्य धारण किये हो। हम सभीके लिये तुम लोगोंके तत्त्व-रहस्यको जानना अगम्य है। महान् योगीश्वरोंके भी ध्यानपथमें तुम्हारा संस्पर्श असंभव है। ईश्वरियों ! निस्संन्देह तुम परात्पर परब्रह्मकी आह्लादिनी शक्तिकी ही कायव्यूहरूपा परिणति हो, अवश्य ही वृन्दावनमें तुम सभीके साथ परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णकी भविष्यमें अनन्त रसमयी अन्तरङ्ग क्रीड़ाएँ होंगी। जब अपनी शिशु अवस्थामें कुमारियोंके रूपमें ही तुम अपने सुन्दर-मधुर रूपसे इस विश्वको और हम सभीको समर्पित एवं न्यौछावर होनेको बाध्य कर दे रही हो, तब यौवन एवं कैशोरके संस्पर्श होनेपर तुम्हारा रूप-लावण्य तथा हास-विलासयुक्त निरीक्षण कैसा विलक्षण होगा ? हे हेतुरहित अनन्त कृपामयि वृषभानुराजतनूजे ! हे वात्सल्यार्णवे ! मात्र एक बार ही सही, सनक-सनन्दन, दुर्वासा-नारदादि महायोगेश्वरोंकी ध्यानवस्तु - तुम्हारे सुकोमलतम चरणकमलोंसे संलग्न एक रजकणिकाका भी संस्पर्श हमें प्राप्त हो जाय, हमारे द्वारा की गयी इस स्तुतिका यह वरदायी विधान सघट्टित हो जाय; देवियों ! हम निहाल-कृतकृत्य हो जावेंगे।'

प्रार्थना करते-करते देवाधिदेवगण व्याकुलताकी उस सीमाको स्पर्श कर लेते हैं, जहाँ भागवती कृपा श्रीराधासे 'तथाऽस्तु' ही उच्चारित कराती है। मानो देवगणोंकी इस प्रार्थनाको ही पूर्ण करने राजदुहिता वृषाभानुकुमारीके मनमें न जाने कैसी संप्रेरणा होती है कि वे अपनी अञ्जलिमें निहित धूलिको अन्तरिक्षकी ओर उड़ाने लगती हैं। दूर खड़ी परिचारिकाएँ जैसे ही श्रीकीर्त्तिदानन्दिनीकी यह चञ्चल क्रीड़ा देखती हैं, अनिष्टाशङ्कासे वे तुरन्त क्रियाशील हो उठती हैं और बालिकाओंको इस क्रीड़ासे वर्जित कर देती हैं। कहीं धूलिका कोई एक लघुतम कण ही राजतनूजाके अम्बुजकोरकोंके तुल्य दीर्घ नयनोंमें निपतित हो जाय तो .... उस क्षति एवं असह्य कष्टकी कल्पनासे ही परिचारिकाओंका हृदय काँप उठता है।

ओह ! इन सभी बालिकाओंके सौन्दर्यका तो कहना ही क्या, वे सभी एक-से-बढ़कर–एक सुन्दर हैं; फिर अपने विद्युद्वर्णी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे शोभाका निर्झर बहानेवाली राजतनूजा कुमारी राधाका तो कहना ही क्या है ? इन्हें कोई-न-कोई क्रीड़ा तो करनी ही होती है। इन सभीका शिशु-सुलभ चञ्चलतासे भरा मन भला शान्त कबतक एवं क्यों रहे ? तत्क्षण ही सभी सखियाँ श्रीराधाको मध्यमें आसीनकर उसके चतुर्दिक् आवृत्ति डालकर बैठ जाती हैं। एक सखी तत्-थेई, तत्-थेई, तत्-तत् थेई – ताल देने लगती है, और दूसरी मधुर स्वरमें गायन। एक सखी मध्यमें बैठी श्रीराधाको नृत्य करनेको उकसाती है, और स्वयं उसके साथ नृत्य करनेको तत्पर हो उठती है। अब तो ज्योंही राधाकुमारी अपने नेत्रोंके मुग्ध-भावसहित नृत्य प्रस्तुत करती है, सभी सखियोंके मन भी नृत्यातुर हो उठते हैं। सखियाँ अपने नूपुरोंकी झङ्कारको अपने हाथोंकी करताली द्वारा सञ्चालित करती हैं और तब उनकी परस्पर एक दूसरेकी मुखमुद्राओंसे अपनी मुखमुद्राओंका एवं उनकी नेत्र-भङ्गिमाओंसे अपनी भङ्गिमाओंका मिलान, फिर हाथोंसे हाव-भावोंकी प्रस्तुति ऐसी कलात्मक होती है कि दर्शक हतप्रभ हो उठता है।

कीर्त्तिदा मैया वट-पूजनार्थ उद्यानमें आयी हैं वटवृक्षके बृहत्काय तनेकी ओटसे वृषभानुमहिषी अपनी पुत्री राधाके संग-संग इन गोपकुमारियोंका नर्त्तन देखती हैं। जननी वट-पूजन ही भूल जाती हैं। अर्घ्यपात्र हाथोंमें ही रह जाता है। कीर्त्तिमती (महारानीकी छोटी बहिन) जो उनके संगमें आयी हैं, एक परिचारिकाको सङ्केतकर महाराजको बुला लानेका आदेश करती हैं। महाराज आते हैं और दूर ओटसे ही निर्निमेष नयनोंसे अपनी पुत्रीका अद्भुत रुनझुन-रुनझुन

नूपुर एवं किङ्किणी-झङ्कार- समन्वित नर्त्तन देखते हैं। वे वहीं काष्ठ-पुत्तलिकाके समान जड़िमाभाव-समन्वित हुए अपने नेत्रोंसे अश्रु बहाने लगते हैं। इधर महारानी वटपूजा ही विस्मृत कर बैठती हैं। उपवनमें सुदूर विचरण करते मृग आदि वनचर एवं वृक्षोंपर काकली करते पक्षीगण सभी अपनेको उस नृत्यशोभा एवं मनोहारी नूपुर-ध्वनिमें विलीन कर देते हैं। यहाँतक कि प्रवालके मणिस्तम्भोंपर अपना भार दिये प्रासादकी अट्टालिकाएँ और आवासगृह भी चिन्मय होनेके कारण दर्पणवत् हो जाते हैं और बालिकाओंके उस अपूर्व क्रीड़ानृत्यकी छविसे अपने अणु-अणुको भरकर उसी छविके ध्यानमें डूब जाते हैं।

सहसा किसी एक बालिकाकी दृष्टि मैया कीर्त्तिदापर पड़ती है, वह बालिका राधाको सचेत करती मैयाके आगमनकी सूचना दे देती है। फिर तो तत्क्षण ही सभी बालिकाएँ 'मैया-मैया'की तुमुल ध्वनि करती, नृत्य करना स्थगितकर मैयासे लिपटने दौड़ पड़ती हैं। श्रीराधा अपनी माँके पास पहुँचे, उसके पूर्व ही तो सभी सखियाँ अपनी-अपनी भुजाओंसे मैया कीर्त्तिदाके कण्ठको आवृत कर लेती हैं। अपनी सखियोंको अपनी मैयासे मिलती वात्सल्यराशिसे राधाको कहीं कुछ भी क्षोभ नहीं होता। वह तो दूर खड़ी भोले मुखसे शान्त मुसकाती रहती है। इस प्रकार एक अद्भुत लीलामृतधाराकी वर्षा इस वृषभानु राजमहलमें क्षण-क्षण होती रहती है एवं चञ्चल चपला-सी कुमारी राधा सर्वत्र अपनी मधुरिमाकी ज्योति छिटकाती रहती है। उसकी बाल्य-भङ्गिमाओंसे सम्पुटित मनोहर मुख-शोभा देख-देखकर पुरवासियोंकी पलकें स्थिर हो जाती हैं।

ओह ! बृषभानुकुमारी राधाकी शैशवधारा क्रमशः गंभीर-गंभीरतम होती जाती है। प्रथमतः उसमें शोभाके बुदबुदे उठते हैं, फिर धारा फेनिल होती है। जब कभी भी नन्दग्रामसे नन्दरानी यशोदा अपने पुत्र नीलमणि श्रीकृष्णको ले आती हैं, और वे यदि इस क्रीड़ाकेलिमें सम्मिलित हो जाते हैं, फिर तो इस शोभाप्रवाहका वेग अकथनीय ऊँची तरङ्गें लेने लगता है। फिर तो इसमें ऐसे गहरे आवर्त्त बन जाते हैं कि जो भी महासौभाग्यवान् इसे देखनेभरका ही अवसर पा जाता है तो इसमें पूरा ही डूब जाता है। यह धारा इतनी दुर्लभ एवं विलक्षण है कि इसके एक कणका भी आस्वाद इन्दिरा-उमा-शारदाको तो स्वप्नमें भी नहीं प्राप्त हो पाता। हाँ ! महा-महासौभाग्यशालिनी बृषभानुपुरकी मातृवर्गकी ब्रजवनिताएँ इसका अञ्जलि भर-भरकर अवश्य ही पान करती हैं। प्रातःसे सायंतक अनवरत इसी रसमें डूबे रहना ही विधाताने उनकी नियति रच दी है। हाँ ! पुरके पितृवर्गके गोप भी यदा-कदा इस सिन्धुमें एकाध डुबकी लगा लेते हैं।

ओह ! इस बाललीलाके तत्त्वरहस्यके स्वरूप-निर्धारणमें तो निगम अनादिकालसे संलग्न हैं, परन्तु अबतक तो कुछ भी संधान प्राप्त कर नहीं सके हैं। महेश विचार-थकित ध्यान लगाते रहते हैं, शेषकी युक्तियाँ समाप्त हो गयी हैं; ब्रह्मा अपने सौभाग्यको सराह रहे हैं, निश्चय, उन्हें ही यह सौभाग्य मिला है कि वे वृषभानुपुरका आधार – ब्रह्मगिरि पर्वत बनें। किन्तु इसका पता तो कोई भी नहीं पा रहा है कि यह लीला-सुधा-धारा इतनी आह्लादवर्षिणी क्यों एवं कैसे है?

रूप एवं यौवन-भारसे दबी देव-किन्नरियाँ जिसे कभी नहीं देख सकीं; अपनी वीणाकी झङ्कारसे विश्वको विमोहित करनेवाली गन्धर्व-कन्यायें जिसे अपने दृष्टिपथमें कदापि न ला सकीं; पातालके देवदुर्लभ वैभवकी अधिकारिणी नाग-तरुणियाँ जिसका कभी अनुसंधान नहीं पा सकीं, वह श्रीराधा एवं उसकी सहेलियोंकी अभूतपूर्व अलौकिक शिशु-स्वभावमयी बालकेलि वृषभानुपुरकी गोबर पाथनेवाली आभीरबालाओंका सौभाग्य-फल बन रही है। उनका रसपान वृषभानुबाबाके घरमें झाड़ू लगानेवाली गोपियाँ अपने नेत्रोंको दोना बनाकर अनवरत पान कर रही हैं।

एक दिवस श्रीराधा एवं उसकी ललिता-विशाखादि सखियोंको मैया कीर्त्तिदा वन-पक्षी दिखाती हैं। कोकिल, कपोत, चातक, चकोर – सभीको देख-देखकर श्रीराधा अत्यन्त हर्षित हो रही है। अचानक मयूर नृत्य करने लगता है। एक सखी, तत्पश्चात् दूसरी, फिर तीसरी, उस मयूरके नृत्यकी असफल अनुकृति करने लगती हैं। अपनी मैयाकी अँगुली पकड़े उसके पार्श्वमें अवस्थित राधाको अपनी सखियोंकी असफल चेष्टाएँ देख-देख दुःख होने लगता है, कुछ

कालतक तो वह मन्द-मन्द मुसकाती एक-एक सखीको साङ्गोपाङ्ग नृत्य करनेका अवसर देती है, प्रोत्साहित करती है, किन्तु जब सभीको उस नर्त्तन करते हुए मयूरके सम्मुख नृत्यकलामें नगण्य समझती हैं, तो स्वयं अपनी दोनों भुजाओंको पीठकी ओर ले जाकर फैला देती हैं, अपनी मनोरम लघु कमर मयूरकी ही तरह झुका लेती हैं। उनकी पीठको ठीक मयूरके समान ही बङ्किम बना लेनेकी कला देखकर सभी दर्शकगण वाह-वाह कर उठते हैं। वे अपनी ग्रीवा भी ठीक मयूरकी ही तरह ऊपर उठा लेती हैं एवं अपने चरणोंमें बँधी छोटी पायलोंके घुँघुरुओंसे ऐसी झनकार करती हैं कि मयूर भी उनके नृत्यको देख अपना नृत्य भूल जाता है। श्रीराधारानीका वह नृत्य इतना स्वाभाविक होता है कि वह मयूर हतप्रभ, चकित एवं विस्फारित-नेत्र, जड़िमा-भावापन्न, स्पन्दनशून्य, मानो चित्रलिखित आकृतिवत् हो जाता है। अब तो श्रीराधा निस्संकोच होकर नृत्य करते-करते उसकी परिक्रमा देने लगती हैं। आश्चर्य ! जो मयूर जड़वत् है, वही यंत्रचालित-सा, जैसे-जैसे राधा उसकी परिक्रमा करती हैं, वैसे-ही-वैसे उन्हींकी ओर मुखकर घूमता जाता है। मैया कीर्त्तिदा एवं मातृपक्षकी सभी गोपियाँ कुछ काल तो श्रीराधाकुमारीका यह नृत्य देखती हैं, फिर अचानक ही उन्हें ध्यान होता है कि श्रीराधाकी अस्वाभाविक रूपमें मोड़ी जानेके कारण कमर कहीं टेढी नहीं हो जाय; बस, तत्क्षण ही मैया दौड़कर उसे अपने अङ्कमें भर लेती हैं। गोपियाँ तो उसका नामकरण ही ब्रज-मयूरी कर देती हैं।

इसी उपवनमें कभी सखियाँ किसी विकसित सरोजपर भ्रमरोंको गुञ्जार करता देखती हैं तो श्रीराधाको विकसित पद्म मानकर उसके चतुर्दिक् गुञ्जारध्वनिकी अनुकृति अपने मुखसे निकालतीं भ्रमरोंकी तरह उड़नेका नाट्य करने लगती हैं।

इन सभी लीलाओंको देखनेवाले गोप एवं गोपियाँ, जलचर, वनचर, पशु-पक्षी आदि इन कन्याओंपर अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेको आकुल हो उठते हैं। गोपियोंकी यह आकुलता लालसाका रूप धारणकर लेती है। वे इन्हें अपना कण्ठहार बनानेको समुत्सुक हो जाती हैं। किन्तु फिर वे सभी सहम जाती हैं कि कहीं इससे उनके क्रीड़ासुखमें किसी भी प्रकारका विघ्न नहीं हो जावे। जिसकी भी दृष्टि इन बालिकाओंपर पड़ जाती है, वह अपना गृह-परिवार, प्रासादमें अपने आगमनका प्रयोजन, यहाँतक कि अपना अस्तित्व भी भूल जाता है। उसके आनन्दका पारावार ही नहीं रहता। सब कुछ विस्मृत करके उन्मादी हुए उसको भले ही कोई उसके घर-परिवारमें पुनः पहुँचा दे, परन्तु फिर उसे जागनेसे सोनेतक इन बालिकाओंकी क्रीड़ा ही दृष्टिगोचर होती रहती है। उसे न तो क्षुधा-पिपासाका ही बोध रहता है, न ही अपने नाम-रूपकी ही सुधि रहती है। श्रीराधारानीके बाल-चरित्रोंसे वृषभानुप्रासादमें मधुरसका निर्झर ही झरता रहता है।

जिज्ञासा

श्रीमद्भागवतमें वर्णन आया है कि भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके समय काल परम शोभन हो उठा था, दिशाएँ स्वच्छ हो गयी थीं। क्या कुमारी राधाकी बाल्यावस्थामें भी कालमें, ऋतुओंमें, दिशाओंमें, देशमें इस प्रकारकी मङ्गलमयताका अभ्युदय हुआ था ? वृषभानुपुरमें श्रीराधाके प्राकट्यकालमें देश-कालमें आयी मङ्गलमयताका एवं लीला-सौन्दर्यकी बाढ़का किञ्चित् वर्णन करें।

समाधान

आगम-ग्रन्थोंमें भगवती महादेवी सर्वकालाधिष्ठातृकी स्तुतिमें उल्लिखित है - ***उन्मेष-निमिषोत्पन्न विपन्नभुवनावली।***

भगवतीके नेत्रोंमें सर्वकालका वास है। महादेवी योगमाया जब अपने नेत्रोंके पलक उघाड़ती हैं तो सृष्टिका सृजन-पालन होता है। और ज्योंही वे पलकें बन्द कर लेती हैं, उसी समय सृष्टिमें महाप्रलय हो जाता है। काल और कुछ भी नहीं, मात्र परमात्माह्लादशक्ति श्रीराधाके नेत्रोंकी दृष्टि है। वे सृष्टको भी अपनी मङ्गलमयी दृष्टिसे देखती हैं और प्रलयको भी उसी प्रकार मुसकाती हुई देखती हैं। इसीलिये कालके भी महाकाल परात्पर परब्रह्म ह्लादात्मा भगवान्

श्रीकृष्ण ही जब भगवतीके नेत्रोंके भीतर कालके अन्तर्गत जन्म लेते हैं, तो अजन्माके जन्मपर भगवती मुसका उठती हैं। यह उनकी मुसकान ही तत्कालीन कालको परम शोभनता, मङ्गलमयतासे लबालब भर देती है। ह्लादात्मासे पृथक् तो ह्लादिनी रह ही नहीं सकती। अतः भगवान् श्रीकृष्णके ठीक पन्द्रह दिवस पश्चात् ही श्रीराधारानीका प्राकट्य होता है। अब तो न ही ह्लादिनीके आनन्दकी सीमा है, न ही अपनी प्रियके आगमनके कारण ह्लादात्माके ही आह्लादका पार है। जब ह्लादिनीशक्ति राधा ही पूर्ण आनन्दमें भरी हैं तो उनकी दृष्टिमें निहित कालके आनन्दकी सीमा ही कहाँ ? वह शोभनको भी शोभित करनेवाला हो जाता है। वह तत्क्षण ही सभी ऋतुओंको आदेश देता है कि ह्लादिनी राधाके स्वागतार्थ विशेषतया चुन-चुनकर सभी सद्गुणोंको अपनेमें भर लो, अपनेको सर्व-विशेषणोंसे पूर्ण कर लो।

वर्षाकाल

श्रीराधारानीके आगमनके समय वर्षा ऋतु थी, इसी ऋतुमें भगवान् श्रीकृष्णका भी जन्म हुआ था, किन्तु कालकी आज्ञानुसार वर्षा वसन्तसे मलय-समीर, कोकिल-कूजन माँग लेती है एवं निजको अलंकृत कर लेती है। अब तो चातककी पिहू-पिहूके साथ कोकिल भी कुहू-कुहू करके स्पर्धा करने लगती है। वर्षामें नदी-नाले सब मटमैले हो जाते हैं, किन्तु जब वर्षा शरद्से स्वच्छता और प्रसन्नता ले लेती है तो उसकी शोभा चमत्कारिकरूपसे और भी निखर उठती है। वर्षामें हेमन्तकी मालती पुष्पित कदम्बानिलसे मिलकर सौरभ-प्रवाहमें चार चाँद लगाने लगती है। शिशिरके कुन्द-कुसुम, दिवसमें कमलिनीसे मिल जाते हैं। अष्टमी निशा भी पूर्णिमाकी तरह प्रकाशमान हो उठती है। वर्षाके आनन्दका क्या कहना ? वह प्रिया श्रीराधाको हर्षित करनेके लिये श्यामघटाका ऐसा विस्तार करती है कि उसे सर्वत्र अपने प्रियतम नीलघनसुन्दर ही भरे दृष्टिगोचर हों। रिमझिम-रिमझिम अपने नूपुरोंका झङ्कार करती वर्षा प्रिया श्रीराधाकी शोभा देखने समुपस्थित हो उठती है। जैसे ही वर्षाके मेघोंकी दृष्टि बालिका राधापर पड़ती है, वे उसकी शोभा देख-देखकर न्यौछावर हो उठते हैं। उनके रोम-रोमसे कृतकृत्यतावश 'वाह-वाह' शब्द गर्जनके रूपमें निकल ही पड़ते हैं। चपला चमकती है परन्तु कुमारी राधाकी द्युतिके सम्मुख अपनी शोभा सर्वथा फीकी जान हतप्रभ हुई लज्जित होकर मेघोंकी ओटमें छिप जाती है । वह परिताप करने लगती है कि व्यर्थ ही उसने अबतक तेजस्वी होनेका अभिमान किया। इस प्रकार यथाकाल प्रतिवर्ष ही वर्षाकुमारी श्रीराधाको विकसित वय एवं नित-नूतन सौन्दर्यशालिनी देखती हुई हर्षित होकर विदा लेती है। वह शरद्सुन्दरीके सम्मुख श्रीराधाकुमारीके अलौकिक रूप-सौन्दर्यका वर्णन सुनाती है और याचना करके उससे ओस-कणोंके रूपमें मात्र निशामें रहने देनेकी अनुमति ले लेती है। प्रतिवर्ष ही यह क्रम चलता है।

शरद् ऋतु

शरद् सुन्दरी वृषभानुपुरकी गवाक्षिकाओंसे झाँक-झाँककर कुमारी राधाका शैशवरूप निहारती। शरद्ने तो ऐसी सौन्दर्यराशिकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। उसे अपने कोषकी समग्र सञ्चित श्री सर्वथा तुच्छ-नगण्य लगने लगती। अपनी अवधि बीतनेतक अपलक कुमारी राधाका मुख-सौन्दर्य देखते रहना ही उसका कार्यकलाप होता।

वर्ष बीतते और बार-बार शरद्का आगमन होता, परन्तु श्रीराधाकुमारीका सौन्दर्य-माधुर्य-सौशील्य प्रतिवर्ष नित-नूतन-सुन्दर, नव-नव मधुर देख-देखकर शरद् अपना सर्वस्व न्यौछावर करती हुई विदा होती। ओह ! अब तो कुमारी राधा गोपकुमारियोंके साथ प्राङ्गणमें मध्याह्नकालमें रिङ्गण करती दृष्टिगोचर होने लगी। देखो, वह घुटुरुन चल रही है, पद्मरागनिर्मितद्वारकी चौखटपर अपनेको चढ़नेमें असमर्थ समझकर वह पुनः लौट पड़ती है। शरद्को किसी संवत्सरमें वह अपने छोटे शिशु हाथोंसे भिन्न-भिन्न मनोहारी मुद्राओंका प्रदर्शन करती हुई नृत्य करती दिखती, फिर उसका उद्यानमें क्रीड़ार्थ आवागमन प्रारम्भ होता। वह मूक दर्शक बनी देखती रहती कि राजतनूजा राधा शिशुसे बाल्यावस्था और फिर पौगण्ड वयको भी पार कर रही है। सुखके अवसर तो क्षणोंके तुल्य व्यतीत होते ही हैं। शरद्की भी कालावधि समाप्त होती ही। अब तो वह मन-ही-मन कुमारी राधासे प्रार्थना कर बैठती है -' हे कृपार्णवे! हेतुरहित

दयानिधे ! अब तुझे छोड़कर कहाँ जाऊँ ? अपने नेत्रोंमें ही, उसकी शीतलताके सिन्धुमें मुझे भी विलीन करलो, न ! जहाँ-जहाँ तेरी दृष्टि पड़ेगी, वहीं मैं तेरे सङ्कल्पपर मूर्त्त होकर सर्वत्र प्रसरित काम-विष-ज्वालाका शमन करने व्यक्त हो जाऊँगी। कृपा कर दो, न ! और श्रीराधाके सम्मुख की गयी प्रार्थना भी कभी व्यर्थ होती है ? श्रीराधाकी वाणीने तो 'तथाऽस्तु'के सिवाय कुछ बोलना मानो जाना ही नहीं है। अतः जब शरद्‌की विदाईकी बेला आयी वह बालिका राधाके प्रति असीम समर्पणभाव लेकर अपनी समग्र सञ्चित श्री सहित उनके नेत्रोंमें समा गयी।

हेमन्त ऋतु

अब हेमन्त आयी। अब सखियाँ दिवस पर्यन्त तो राजतनूजा कुमारी राधाके पास रहती हीं, उनका निशा-शयन भी उसके पास ही होता। एक ही विशाल कक्षमें रत्नजटित पर्यंकोंमें सुखद तूल-पुष्ट गद्दे बिछा दिये जाते, सभी सखियाँ कलधौत-सदृश शुभ्र स्वच्छ उपधानोंमें मस्तक रख मखमली रजाइयोंमें दुबक जातीं। मध्य निशातक तो मैया कीर्त्तिदासे वे कथाएँ सुनतीं। कभी-कभी तो श्रीदामदादा भी उनके ही मध्य सोता। रात्रि तो सबकी श्रीदामदादाके मुखसे श्रीकृष्णके बाल-चरित्र सुननेमें ही व्यतीत हो जाती। किन्तु निद्राकी भी तो सेवा-प्रक्रिया है ही। मध्य-निशा होते-होते तो वह अपना प्रभाव इन सभीपर इस प्रगाढ़तासे प्रकट करती कि इन्हें शयन एवं विश्राम करना ही पड़ता। ये सभी श्रीराधाको चतुर्दिक् आवर्त्त देकर सो जातीं। इनका शयन कोई तमोगुणमें डूबना तो था ही नहीं, वह शयन तो जागरण एवं स्वप्नके ही तुल्य विशुद्ध सत्वमय ही था और जैसे जागरण एवं स्वप्नकालमें ये राधाके साथ चञ्चल रहतीं, ठीक इसी प्रकार शयनकालमें भी ये राधाकी अखण्ड घन-स्मृतिमें अन्य-स्मृति-विहीन हुईं लीन हो जातीं।

जब सूर्यदेव प्रातःकाल पूर्व दिशामें पर्याप्त ऊपर उठ आते, तभी कीर्त्तिदा मैया इनके अङ्गोंसे ओढ़ी रजाइयाँ हटातीं। औषधियोंसे निर्मित मंजनोंसे दन्तधावनकर ये सीधी श्रीराधाके पास पहुँच जातीं। श्रीराधाकुमारीको स्वर्णमयी रत्नखचित स्नानचौकीपर बिठाकर ये उसके अङ्गोंमें फुलेल मर्दन करतीं।

दूर खड़ा हेमन्त उस समय श्रीराधारानी एवं सखियोंकी शोभा देखता, न्यौछावर होता वृषभानु-राजतनूजाकी स्तुतिमें मग्न होकर मानो कहता -

रत्नपीठासनकी वन्दना

स्वस्थानस्थित सखीजनगणवृते बिन्दौ मुदा स्थापितम्।
नानारत्नविराजि हेम विलसत्कान्तिच्छटादुर्दिनम्।
चञ्चत्कौसुमतूलिकासनयुतं श्रीकृष्णसमधिष्ठितम्।
नित्यानन्द निदानमंम्ब ! सततं वन्दे च स्नानासनम्।

भावार्थ

'जो अपनी महिमारूप स्वस्थान (वृषभानुपुर-प्रासादके शृङ्गारकक्ष)में स्थित है; सखी-मञ्जरियों एवं दासियोंसे जो चतुर्दिक् घिरा है, आनन्दविन्दुमें ही जिसकी संस्थापना है, कुन्दनमें रत्नोंको खचित करनेसे जिससे ऐसी स्वच्छ ज्योति उद्भासित हो रही है, मानो दिन उदय हो गया हो, सेमर, एरण्डकी रुईसे जिसे भरा गया है, ऐसा राग-भावमय लाल रंगोंका आसन जिसमें बिछा है, जिसमें अदृश्यरूपमें प्रियतम नीलसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही आविष्ट हैं, जो नित्य निरतिशय आनन्दका कारण (मूल) है, हे अम्बे! राजतनूजे राधाकुमारी ! मैं तुम्हारी स्नानचौकीकी वन्दना करता हूँ।'

हेमन्त परिकल्पना करता – जैसे वह एक हेमछत्र धारण किये श्रीराधाकुमारीके पृष्ठदेशमें खड़ा है। अहा ! कैसा विलक्षण सुन्दर हेमछत्र हेमन्तके हाथोंमें सुशोभित है ! -

प्रान्तस्फुरद्विमलमौक्तिकगुच्छजालं
चञ्चन्महामणिविचित्रित हेमदण्डम्
उद्यत्सहस्रकरमण्डलचारुहेम-
च्छत्रं बकारमहिले विनिवेशयामि।

भावार्थ

'जिसके किनारोंमें निर्मल मुक्तामणियोंके गुच्छोंका जाल लगा है, एवं जो चमचमाती महामणियोंसे विजड़ित स्वर्णके दण्डसे युक्त है, जैसे हजारों किरणोंसे युक्त सूर्य उदय हो रहा हो, ऐसी जिसकी शोभा है, हे बकासुर-विनाशन श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रिये ! मैं ऐसा हेमछत्र आपके पृष्ठदेशमें लिये समुपस्थित हूँ।'

अलक्षित रूपसे स्थित हेमन्तकी वन्दना मानों श्रीराधाकुमारी श्रवणगोचर कर लेती हैं किन्तु सङ्केतसे उसे सखियोंकी स्वच्छन्द सख्यरसमयी पूजामें व्यवधान डालनेकी मनाही कर देती हैं।

सखियाँ प्रथमतया श्रीराधाके अङ्गोंमें फुलेल मर्दन करती हैं। तत्पश्चात् अनेक औषधियोंके विलेपसे श्रीराधाके कुन्दन-विनिन्दक आभान्वित अङ्गोंमें पीठी लगाती हैं।

चुपचाप दूर खड़ा हेमन्त नयन मूँदे ध्यान कर रहा है -

'हे मेरे मन ! तू स्वर्ण एवं रत्नोंके आवरण(दीवारों)से घिरे, बहुत सी सखी-सहचरियोंसे सुसज्जित श्रीराधाकुमारीके स्नानगृहका ध्यान कर।'

'जहाँपर स्वर्णके जल-कलशोंकी पंक्तियाँ रखी हैं, जिन सभीमें परिचारिकाओं द्वारा समशीतोष्ण जल भरा है; स्फटिककी मनोरम चौकी रखी है। जहाँ कृत्रिम फव्वारे लगे हैं, जिन्हें स्पर्श करने मात्रसे समशीतोष्ण जल प्रवाहित होने लगता है। सभी कलशोंमेंसे पुष्पसारों (इत्रों) की तीव्र गन्ध वातावरणको सुरभित कर दे रही है, ऐसे स्नानघरमें हे कुमारी राधे ! आपकी आसीन स्नान करती छवि मेरे हृदयमें सदैव सुविराजित रहे।'

सखियोंकी वन्दना

'जिनका राकाचन्द्रके समान मुख परम शोभामय है, जो हाथोंमें कोई कंघा, कोई तेल, किसीके हाथमें स्नानोपरान्त पहननेके सूक्ष्म स्वर्णतंतु एवं तूल-सूत्रोंसे निर्मित अम्बर हैं, कोई छोटे-छोटे जलपूर्ण स्वर्णकलश उठाकर श्रीराधाकुमारीपर गिरा रही हैं, हे राजतनूजे ! मैं तुम्हारी उन सखियों, सहचरियोंकी वन्दना करता हूँ, जो अभी कौमार्य वयको उल्लङ्घन ही नहीं कर पाई हैं, फिर भी तुम्हारी सेवामें जिनका अदम्य उत्साह है। उन सुकुमारी सखियोंके चरणकमलोंमें हे मेरे मन! तू अनन्त प्रणाम कर !

हेमन्त इस प्रकार उस स्नानकक्षके बाहर खड़ा इन गोपकुमारियोंकी राधा-सेवाका ध्यान कर रहा था; अकस्मात् उसे अपने इस प्रकार खड़े रहनेपर परिताप होने लगता है। वह सोचता है - 'ओह ! अबतक मैंने इसपर ध्यान ही नहीं दिया कि मेरे अङ्गोंकी शीतलता कहीं वृषभानुकुमारी श्रीराधाके लिये कष्टप्रद तो नहीं है ? फिर मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? क्यों नहीं मैं वृषभानुजाके चरणकमलोंमें ही अपनेको विलीन करलूँ ? परन्तु जिन चरणकमलोंके सेवनके लिये परात्पर परब्रह्म स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण लालायित रहते हैं, वहाँ मुझ प्राकृत कालाधीन जड़ ऋतुको निवासका सौभाग्य मिले, यह तो असंभव है तब ..... विचार करता हेमन्त अपनी अवधि व्यतीत हुई मान ब्रजभूमिके शीतल जलसे भरे सरोवरोंमें समा जाता है।

शिशिर

हेमन्तको विदाकर वृषभानुपुरमें शिशिर आता है। हेमन्तने उसे राधाकुमारीकी शोभाका गुणगान इतना अधिक सुना दिया कि उसकी उत्कण्ठा असीम हो उठती है। जननीसे शिशिरके आगमनका पूर्वानुमान करके श्रीराधा एवं उसकी सहचरियोंकी क्रीड़ाकौतुककी सारी व्यवस्था महलके विशाल निर्वात एवं उष्ण कक्षोंमें ही कर दी जाती है। श्रीराधा मध्याह्नसे पूर्व बाहर निकलती ही नहीं। मात्र आठ प्रहरमें एक बार, वह भी मध्याह्नमें ही वह सूर्य–पूजनार्थ बाहर निकलती है, और पूजा सम्पन्नकर मैयाके निर्देशका पालन करती हुई अति शीघ्र महलोंमें प्रवेश कर जाती है। उन सभी महलोंके द्वारोंपर स्वर्णजटित तारोंसे निर्मित क्षौमके तूलपुष्ट परदे झूलते होते हैं। शिशिर उन कक्षोंके बाहर ही भले विचरण कर ले , भीतर तो उसका प्रवेश ही असंभव है। अदर्शन-दुःखसे वह सम्पूर्ण निशा अश्रु बहाता, रुदन करता रहता है। प्रातः वृषभानुपुर-वासियोंको उसके अश्रु ओसकणोंके रूपमें धरामें बिखरे मिलते हैं। कभी-कभी शिशिरका दुःख इतना तीव्र हो उठता है कि वह जड़िमा-भावग्रस्त हुआ व्रजके पर्वत-शिखरोंमें हिमपिण्डोंके रूपमें व्रजवासियोंको परिलक्षित होता है। जब भी उसकी अवधि व्यतीत हो जाती है, वह इन्हीं गिरिशिखरोंपर आसीन हुआ प्रतिदिवस ही श्रीराधा-मुख-दर्शनका व्रत लेकर वहीं निवास करने लगता है।

बसन्त

ज्योंही शिशिरका अवसान होता है, आम्रमञ्जरियोंके अन्तरालसे झाँकता, टोह लगाता अपने हाथपर कोकिलको आसीन किये वसंन्त वृषभानुपुरकी भूमिमें प्रविष्ट हो जाता है। वह सूर्यपूजार्थ सखियोंसे घिरी गमंन करती राधाकुमारीके दर्शन करता है। वसन्त विस्फारित-नेत्र देखता ही रह जाता है।

राजतनूजा राधाके मस्तकपर चन्द्रिका-चूड़ामणि आभूषण विराजित है। उसकी भुजाओंकी ऐसी शोभा है मानो विद्युन्मणियोंकी लताएँ हों। राकाचन्द्रको भी हतप्रभ कर देनेवाले मुखवाली किशोरी मानो पद्मवनकन्या हो। वह सखियोंके मध्य उनसे आवृत गजगामिनीवत् वनपथसे जा रही है। सभी सुकुमारी बालाएँ, जिनकी भौहें कामदेवके धनुषकी तरह बङ्किम हैं, श्रेष्ठ नासिकाएँ हैं, श्रीराधाको आवृत किये धीरे-धीरे पथमें सञ्चरण कर रही हैं। इन सभीके ललाटस्थलोंमें बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नोंकी बेंदी लगी हैं एवं इनकी दीर्घ घनी कबरियाँ मुक्ता एवं माणिक्यकी लड़ोंसे गुँथी हैं। इनके शनैः-शनैः गमनसे गुँथे पुष्प झड़ते रहते हैं।

ओह ! बसन्तने तो रति, पार्वती, रमा, ब्रह्माणी – सभीका रूप देखा है, बसन्तका प्रवेश सर्वत्र है, किन्तु उसे अबतक निरे बालापनके ऐसे त्रिलोकजयी सौन्दर्यका दर्शन कहीं नहीं मिला। " ये बालिकाएँ तो पूर्णतया शोक-दुःख-व्याधिरहित हैं, अपितु इनके ध्यानमात्रसे निरामयत्वकी प्राप्ति होती है। इनमें सभी एक-से-एक बढकर सुन्दर हैं, किसीमें कहीं, कुछ भी न्यूनता नहीं; फिर कुमारी राधा तो ऐसा अनुभव होता है, मानो पराह्लादस्वरूपा ही हैं। विश्वके समस्त लीला-उपक्रमोंकी वे एकछत्र स्वामिनी हैं। ओह ! विद्युन्मणि-सी ज्योतिर्मान्, कोटि-कोटि राकाचन्द्रोंको हतप्रभ कर देनेमें समर्थ, शीतल आभामयी श्रीराधाकुमारीकी जय हो !" वसन्त स्तुति करता हुआ मुग्ध हो उठता है।

'ओह ! श्रीराधाके चरणकमल तो ऐसे सुकोमल हैं मानो लाल-लाल सुकोमल नव पल्लव हों; नहीं, नहीं, विकसित कमलकी दो अतिशय उत्कृष्ट पंखुड़ियाँ ही हों। दोनों चरणोंमें अनमोल रत्नखचित मञ्जीर आभूषण हैं, और इन चरणोंकी अँगुलियोंकी शोभा तो अपराजेय है, इनके नखोंसे अतिशय तेजस्वी प्रभा सर्वत्र प्रकीर्ण हो रही है।'

'अरे ! सद्योजात कदलीके दो लघु स्तम्भ खड़े हों, ऐसी जिसकी जङ्घाएँ हैं, बिम्बफलके सदृश जिसके ओठ हैं, नीलमणिकी मेखला (करधनी) में लगे घुँघुरुओंकी किङ्कण-शब्दावली ऐसी सुमधुर है, मानो दूरस्थ किसी कदम्बके नीचे आसीन नीलसुन्दर ब्रजराजतनय मधुर वंशीनिनाद कर रहे हों। जिनकी गंभीर नाभि है, ऐसी अलक्ष्य-मध्यमा (लघु उदरवाली) परादेवीका मैं ध्यान करता हूँ।"

'जिनकी रोमावलीरूपा लतामें अभी वक्षोजोंके रूपमें फल विकसित ही नहीं हुए हैं, जिनकी ग्रीवामें निर्मल मुक्ताओंका हार सर्वजयी शोभाका विस्तार कर रहा है, ग्रैवेयक आभूषणमें जटित नौ प्रकारके रत्नोंकी प्रभा छिटक रही है, कानोंमें दो परम शोभाशाली रत्नोंसे जटित परम मनोरम आभूषण हैं, ये रत्न कपोलोंकी लालिमाको दमकाकर और अधिक मञ्जुल बना दे रहे हैं। जैसे शनि नक्षत्रका उदय हुआ हो, ऐसी प्रभा जिनकी बेसरकी नीलमणिसे निकलकर अधरोंको रञ्जित कर रही है, उन बाला श्रीराधाके चरणोंमें मेरे अनन्त प्रणाम !'

बसन्तकी वन्दना स्थगित ही नहीं हो रही थी।

'हे जगज्जननी बाले ! आप सर्वतीर्थमयी हैं, आप परम प्रेमस्वरूपा हो, सनातनी नित्या हो, प्रियतम श्रीकृष्णकी सर्वोत्कृष्ट आराधिका हो, साथ ही उनसे नित्य समाराधित हो, आप ही सर्व- शास्त्रमयी हो, सारे आगम एवं निगम आपकी स्तुति करते थक जाते हैं, आपकी महिमा अनन्त है। आप सर्व आम्नायमयी हैं, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, ऊर्ध्व एवं अधः सर्वत्र आप-ही-आपकी व्याप्ति है। सर्व आयतनों (मन्दिरों) में आपकी ही पूजा-सेवा हो रही है। आप सर्वानन्दमयी हो। आप परा संवित्, परा आह्लाद-स्वरूपिणी, नित्य अविचल, अखण्ड सत्य हो। हे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी पराम्बा राधा ! आपकी जय हो।

स्तुति करता बसन्त भूलुण्ठित हो जाता है। उसके मनमें रह-रहकर यही लालसा उमड़ रही है कि कैसे मैं श्रीराधाकुमारीकी सेवाका उपकरण हो जाऊँ। वसन्तकी दृष्टि तो डूबी है बाला राजतनूजाके चरण-सरोरुहोंमें और उसी मकरन्दसे सुवासित होकर वाणीके पथसे व्यक्त हो रही है उसकी प्रार्थना। प्रार्थना करते-करते वसन्तने कुमारी राधाके ललाटपर पुष्प-मकरन्दकी तरह कुछ- एक श्रम-सीकर विजड़ित देखता है; बस, वह अपने करपल्लवपर बैठी कोकिलको तो नभमें उड़ा देता है और अपने दुकूलसे शीतल-मन्द-सुगन्धित बयार करने लगता है। रविमन्दिरसे वृषभानुपुरतकके सभी उद्यानोंको वह नये-नये मुकुलोंसे सज्जित कर देता है। रवि-सरोवरमें भी वह राशि-राशि पद्म विकसित कर देता है, जिससे जहाँ भी राधाकी दृष्टि पड़े, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ शीतलता, सौन्दर्य, सुरभिसे भर जावें। अपनी शक्तिभर यही सेवा वह कर सकता है। अन्ततः वसन्तकी साधना सफल होती ही है। रवि-सरोवरके चतुर्दिक् फूले कदम्ब एवं बहती मलयानिलसे संतृप्त कुमारी राधा मुसका उठती हैं। राधाकुमारीके मुख-कमलपर मन्द मुसकानको देखते ही बसन्त अपनी समस्त शोभा-सम्पदा लेकर उस मुसकानमें मिलकर एकरूप – तन्मय हो जाता है। देवगण धन्य-धन्यकर आकाशसे नन्दनकाननके पुष्प बरसाने लगते हैं।

ग्रीष्म

वसन्तके राधा-मुसकानमें विलय हो जानेकी अपूर्व गति अपने सम्मुख ही घटित होती देखकर ग्रीष्म कृतकृत्य हो उठता है। अन्ततः वसन्त था तो ग्रीष्मका बन्धु ही। उसे सन्तोष होता है। परन्तु ग्रीष्मका तो स्वरूप ही ताप देना एवं तप्त होना है। जब वह स्वयं ही ज्वालारूप है, तब ज्वालाके अतिरिक्त वह किसीको भी शीतलता-सुख भला कैसे दे सकता है ? अब वह इस त्रिताप-शीतल वृषभानुपुरमें प्रवेश ही करनेका साहस कैसे करे ? उसने शिरीष पुष्पोंका मुकुट पहना और अपने ज्वालारूप अङ्गोंको मालती पुष्पोंकी मालाओंसे खूब सुसज्जित किया। उसने सोचा – संभव है, अब उसकी ज्वाला सुखद हो जावे, किन्तु यह सब करनेके उपरान्त भी उसके रोम-रोमसे निकलती ज्वाला वैसी ही बनी रही।

अत्यन्त सङ्कोचपूर्वक सर्वप्रथम वह ब्रजमण्डलसे सटी मथुरामें प्रवेश करता है। तीर्थरूप मानकर ग्रीष्म सर्वप्रथम मथुराप्रदेशको प्रणाम करता है। उसकी शोभा देखकर एक बार तो वह चकित ही हो उठता है, किन्तु वह कुछ ही कालमें अनुभव कर लेता है कि मथुरा भले ही पाटल पुष्पोंसे पूरी सजी हो, यमुना नदी उसे दोनों ओरसे घेरकर शीतल करनेकी पूरी चेष्टा कर रही हो, फिर भी आसुरी तापसे वह पूर्णतया दग्ध ही हो चुकी है। सम्पूर्ण माथुर-मण्डलकी ऐसी दशा

देख वह भी वहाँ अपनी पूरी ज्वाला वितरित करनी प्रारंभ कर देता है। भले ही मथुरावासियोंने अपने घर खसके परदोंके विशाल व्यजन लगाकर गुलाब, केवड़ा आदि पुष्पोंके सुरभित जल छिड़ककर शीतल रखनेकी व्यवस्था कर रखी हो, परन्तु उसके प्रखर तापके सम्मुख उनकी सब व्यवस्थाएँ व्यर्थ ही सिद्ध हो जाती हैं। आबालवृद्ध सभीको उसका आगमन व्याकुउण्वं चातुरीमें एकसे-बढ़कर-एक हैं। कोई वीणादि वाद्य लिये सुमधुर स्वर छेड़ रही हैं। कोई पुष्पमाला निर्माण कर रही हैं। रत्नोंकी दीवारों और स्फटिकके फर्शसे वह कक्ष चमचम कर रहा होता है। बालिकाके अश्रुतपूर्व अद्भुत स्वरूपको देखकर ग्रीष्म मुग्ध हो जाता है। उसे अनुभव होता है कि इस कक्षमें उसे प्रवेश ही तभी मिल पाया है, जब उसका पुरुषरूप परिवर्त्तित होकर वह स्वयं एक मनोहारी सौन्दर्यमयी बालिका हो गया है। एक सखी उसके पास आकर उसके कानोंमें अतिशय मधुर स्वरमें कहती है – 'हमारी महारानी कुमारी राधापर चँवर डुलाओ, न !' ग्रीष्म सकुचाता है, उसे अपने पूर्वस्वरूपके ताप-तप्त होनेके अबतक संस्कार जो शेष हैं !

वह सखी मुसकाती हुई ग्रीष्मके अङ्गोंमें एक ऐसा सुरभित पुष्पसार लगा देती है, जिसकी सुवासित शीतलतासे ग्रीष्म हेमन्तवत् शीतल हो जाता है। बस, अतिशय मधुर मुसकानसे सम्पूर्ण वातावरणको मुखरित करती एक सखी उसके हाथोंमें चँवर थमा देती है, और हाथ पकड़कर राधाकुमारीके मयूरासनके बगलमें खड़ा कर देती है। एक सखी तो उसपर कृपाकी वर्षा ही कर देती है, जब वह राधाकुमारीका अर्धचर्वित ताम्बूल ही उसके मुखमें दे देती है।

कालका अङ्ग होनेसे ग्रीष्म सम्पूर्ण लोकलोकान्तरोंमें भ्रमण कर चुका है। ब्रह्मलोक, कैलास एवं वैकुण्ठमें भी ऋतुओंकी सत्ता होनेसे उसे पदार्पण करना ही पड़ा है। परन्तु जैसा निराविल विशुद्ध प्रेम उसे यहाँ इन राधाकुमारीकी सखियोंसे मिला है, इस कोटिका प्रेम तो कहीं नहीं मिला। प्रेम ही नहीं, इन गोपकुमारियोंका तो सौन्दर्य, इनका माधुर्य एवं रसैश्वर्य भी अप्रतिम ही है। वह हाथमें चँवर लिये परमानन्द-समुद्रमें गोते लगाने लगता है। सहसा एक सखी मुसकाती हुई, उसके कानोंमें मानो मंत्र दे रही हो, निर्देश देती है – 'भावाभिभूत होकर सेवामें त्रुटि मत कर बैठना। सेवा निज आनन्दानुभूतिकी तुलनामें बहुत ही मूल्यवान् है। ग्रीष्म सखी ! तुम्हें सेवा करनी है, सेवा-सुख नहीं लेना है। सावधान ! कहीं भाव-समुद्रमें गोते लगाते-लगाते निश्चेष्ट मत हो जाना।'

सखीकी मंत्रमयी राय ग्रीष्म सुनता है, परन्तु वह करे भी क्या ? श्रीराधाकुमारीके अङ्गोंसे झरता सौरभ-प्रवाह, उसकी सौम्य सरल मुसकान-माधुरी, चमकती दंत-छटा, कानोंमें धारण किये नव किसलय-से सुकोमल कुण्डलोंकी निर्मल आभासे दमकते गुलाबी कपोल, कपोलपर मसिबिन्दु, भौहोंका तीखापन, नयनोंकी दीर्घता, ललाटकी शुभ्रता, इस सबके ऊपर विराजित आननपर मुग्ध सरल प्रीतिकी उमगती ऊर्मियाँ – इस बालिका कुमारी राधाके सौन्दर्यके सम्मुख तो महामाया महादेवी गिरिराजकुमारीका रूप भी नगण्य ही सिद्ध होता है, जिसके रूपसे चराचर जगत् मोहित है। लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति, विद्यादि देवियाँ तो इसकी छाया भी नहीं छू पातीं। ग्रीष्म मन-ही-मन बोल उठता है – 'निश्चय ही राधातत्त्वको जानने-समझनेकी शक्ति मुझमें सर्वथा-सर्वांशमें नहीं है। अरे, अरे, वैकुण्ठका निःश्रेयस वन ही मानो इसकी चिकुर राशि है। एक-एक अलककी सुरभि कोटि-कोटि कल्पलताओंमें विकसित प्रसूनोंकी गंधको हेय कर दे रही है। इसकी मुसकान देखकर त्रैलोक्यलक्ष्मी मुखमें तृण रख लेती है। इससे अधिक क्या कहूँ, क्षीरसागरकी निर्मलता भी इसके नेत्रोंके धवल अंशके सम्मुख तुच्छ है। इसके नेत्रोंकी कृष्णतामें तो स्वयं परात्पर परब्रह्म ब्रजेन्द्रनन्दन ही भरे हैं। इसे वृन्दाकाननकी अभूतपूर्व, माधवी लता ही कहूँ, जो अपनी अपाङ्ग दृष्टिसे प्रीतिभावके कुसुमसमूह सर्वत्र बिखेर रही है। इसकी मधुरातिमधुर कौमार्य-चपल वाणीको सुनकर कोकिल एवं चातक भी हतप्रभ हो उठते हैं, फिर पारावत, हंस, शुक एवं मयूरादिकी तो बिसात ही क्या है।

ग्रीष्म अपनी अवधिपर्यंत तो श्रीराधाकुमारीकी किसी-न-किसी सेवामें तन्मय रहता ही है, कभी व्यजन-सेवा, कभी चँवर-सेवा, कभी महलोंमें रज-मार्जन, कभी वस्त्र सुखानेकी सेवा, वह अनवरत सेवा करता ही जाता है, किन्तु जब उसकी अवधि समाप्त होती है, तो श्रीराधाकी चरण-नख-चन्द्रिकाकी तेजोराशिमें वह विलीन हो जाता है।

ग्रीष्मका अवसान होता है और ब्रजपुरकी धराको अलंकृत करने पुनः वर्षा ऋतु आ जाती है। इस बार यह श्रीराधाकुमारीके सप्तम वर्षकी वर्षगाँठ देखने आयी है। वर्षमें मात्र दो माह ही तो यह ब्रजपुरके आकाशमें अपना वितान तानकर निवास करती है। आजके सात वर्ष पूर्व इसने राधा-जन्म-महोत्सवकी अपूर्व शोभा देखी थी। उस समय इस वर्षा ऋतुने अगणित मनोरथ किये-***तुम जो मनावत सोइ दिन आवत'***।

वर्षा ऋतु जो-जो मनोरथ करती, दूसरे वर्ष उसे वही मङ्गल दृश्य देखनेको मिलता। वर्षा जब दूसरे वर्ष आयी तो उसने देखा - समग्र वृषभानु-प्रासाद ही आनन्द-निनादित है। मातृवर्गकी गोपियाँ कीर्त्तिदा मैयाके संग हँसती-हँसती लोट-पोट हो रही हैं। कुमारी राधा किलकती घुटुरुन चल रही है। उसे एक उड़ते पक्षीकी परछाईं आँगनमें दिख रही है और वह उसे पकड़नेकी असफल चेष्टा कर रही है। उस भोली सरल बालिकाको समझ ही नहीं आता कि परछाईं पकड़ी नहीं जा सकती। उस लीलाको हृदयमें धारणकर वर्षा उस वर्ष प्रस्थान कर जाती है।

तीसरे वर्ष वर्षा फिर बालिका राधाका हाथ नचा-नचाकर नृत्य देखनेमें डूब जाती है। तीसरे वर्ष राधाकी अपनी सखियोंके साथ उद्यानमें क्रीड़ा प्रारंभ होती है। चौथे वर्ष सरोवरोंमें स्नान, सूर्यपूजार्थ रविमन्दिर-गमन, सायंकाल छोटी-सी दोहनी लेकर गोदुग्ध-दोहन, फिर नन्दभवनमें खेलनेके लिये जाना, यशोदा द्वारा शृङ्गार; वनमें पड़ी मुरलीका मिलना, उसे लेकर नन्दभवन पहुँचाने जाना, नन्दनन्दनकी पहुँची (हाथका आभूषण) ढूँढने उनके साथ पुनः वनमें वापस आना, वहाँ ब्रजेन्द्रनन्दनके द्वारा पुष्पशृङ्गार – इस प्रकार पूरे छः वर्षतक वर्षा जब-जब वृषभानुपुरमें आती है, उसे कोई-न-कोई हृदयहारी लीलाके दर्शन होते हैं।

इस प्रकार यहाँ अतिशय संक्षेपमें कुमारी श्रीराधासुन्दरीके बाल्यकालके छः वर्षोंका वर्णन किया गया है।

है बात एक दिनकी, जब वह थी वर्ष सातकी, हे प्रियतम!
मनमें आया, जाऊँ वनमें मैं पुष्प-चयन करने, प्रियतम!
उत्तरकी ओर मनोहर था वन एक विशाल घना, प्रियतम!
कल-कलनिनादिनीके तटपर शोभाका आकर, हे प्रियतम॥१६॥

जब वह सात वर्षकी थी, तब एक दिन एक विचित्र घटना घटी - उसके मनमें आया कि मैं वनमें पुष्प-चयन करने जाऊँ। उसके ग्रामके ठीक उत्तरकी ओर एक बड़ा ही सुन्दर, मनोहर, अत्यन्त घना एवं विशाल वनस्थल था। कलिन्दनन्दिनीके तटपर ही अवस्थित था वह वन। उसकी शोभाकी सीमा नहीं थी।।१६।।

जिज्ञासा

श्रीराधारानीके मनमें सात वर्ष वयकी होनेपर ही पुष्पचयन करने वृन्दा-काम्यकाननमें प्रविष्ट होनेकी लालसा क्यों हुई ? उसके पहले भी वे पुष्पचयन करने तो वनोंमें जाती ही थीं, फिर इस वयके पूर्व उनमें इस वनमें फूल बीनकर लानेका सङ्कल्प क्यों नहीं उठा ? अपनी सखीजनोंकी माताओंसे इस वनका माहात्म्य तो उन्होंने पूर्वमें भी सुना ही होगा। फिर सात वर्ष वयकी होनेपर ही उनमें यह भावोदय क्यों हुआ ?

समाधान

ध्यान रहे, व्रजलीलामें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका किशोररूप ही धर्मी है। उनका बाल्य एवं पौगण्ड रूप तो मात्र धर्म है। धर्मीका अर्थ है - धर्मके द्वारा जिस शाश्वत लक्ष्यको प्राप्त किया जाय। श्रीराधा-माधव नित्य किशोर हैं। किशोर अवस्थाके पश्चात् ये युवा एवं वृद्ध कभी नहीं होते। इसीलिये इस बाल्यावस्था एवं पौगण्डावस्थाकी चरितार्थता ही उन्हें अपने नित्यधर्मी – कैशोर वयमें प्रतिष्ठित कर देना है। इसके पश्चात् ये दोनों बाल्य एवं पौगण्ड अवस्थाएँ इस कैशोरावस्थामें ही विलीन हो जाती हैं।

नारीरूपमें तीन वर्षकी वयतक कौमारावस्था रहती है। इसके पश्चात् तीनसे छः वर्षतक पौगण्ड एवं सातवें वर्षकी वयसे पौगण्ड एवं कैशोरकी वय-सन्धि प्रारंभ हो जाती है। *'अष्टवर्षी भवेत् गौरी'* के विधानानुसार आठवें वर्षमें नारी किशोरी हो जाती है।

कौमारमें जहाँ वात्सल्यरसकी प्रधानता होती है, पौगण्डमें सख्यरसका पूर्ण प्रवाह रहता है। वहीं शास्त्र उज्ज्वल माधुर्यरसके पूर्वरागोदयके लिये कैशोर एवं पौगण्डके सन्धिकालको सर्वोपयुक्त वय मानते हैं।

ब्रजभावकी परमाराध्या श्रीराधा निकुञ्जेश्वरी नित्यकिशोरी हैं एवं प्रियतम श्रीकृष्ण निकुञ्जेश्वर नित्यकिशोर हैं। इनकी बाल्य एवं पौगण्ड अवस्था इन्हें नित्यकिशोर एवं नित्यकिशोरीरूपमें समाविष्ट कर देनेके सोपान मात्र हैं।

श्रीराधाकुमारी जैसे ही इस बृन्दा-काम्यकाननमें प्रवेश करती हैं, उनकी पूर्वराग-लीलाका रङ्गमञ्च प्रस्तुत हो जाता है, इसीलिये सात वर्षकी वयके पूर्व उनके इस मन्दिरमें जानेका निषेध है।

रहते थे मानो सदा वहीं ऋतुराज-शरद् दोनों, प्रियतम!
पर था निषेध उस कानन में सबके जाने का, हे प्रियतम!
अनुमति राजा की लेकर ही कोई जाता था, हे प्रियतम!
नृप को अपनी कुलदेवी के दर्शन होते उसमें, प्रियतम।।१७।।

ऐसा लगता था मानों शरद् और वसंत दोनों ऋतुएँ सदा वहीं उसी उद्यानमें निवास करती थीं। किन्तु उस वनमें कोई जा नहीं सकता था। सबके लिये निषेध था। अत्यन्त अभिलाषा होनेपर कोई व्यक्ति राजाकी अनुमति लेकर ही उसमें प्रविष्ट हो सकता था। बात यह थी- महाराजको उस वनमें अपनी कुलदेवीके प्रत्यक्ष दर्शन हुआ करते थे।।१७।।

अतएव पूर्णिमा जब आती तिथि तथा अमावस की, प्रियतम!
थी उस वन की देती फेरी जो प्रजा राज की थी, प्रियतम!
उनमें जिसकी अतिशय निष्ठा देवी की होती थी, प्रियतम!
उसको दर्शन हो जाता था प्रत्यक्ष दिव्य उनका, प्रियतम।।१८।।

इसीलिए जब भी पूर्णिमा तिथि आती अथवा अमावस्याका पर्व लगता, तब राज्यकी जो प्रजा थी; वह उस वनकी फेरी दिया करती थी। उन फेरी देनेवालोंमें जिस व्यक्तिकी देवीके प्रति अतिशय निष्ठा होती, उसको उस वनमें महादेवीका प्रत्यक्ष दर्शन भी हो जाता था।।१८।।

अतुलित पवित्रता का अनुभव तो सबको ही होता, प्रियतम!
सब आ-आकर अपनी-अपनी बातें कहते वे थे, प्रियतम!
नृपतनया ने थी सुनी वहीं उनसे वन की गाथा, प्रियतम!
उत्कण्ठित अतः हुई वह थी जाने के लिये वहाँ, प्रियतम।।१९।।

अप्रतिम पवित्रताका अनुभव तो जानेवाले सभी व्यक्तियोंको होता ही था। सभी आ-आकर अपने-अपने अनुभवकी बातें कहा करते थे। उस राजतनयाने उन सबके मुखसे ही उस वनकी कथा सुनी थी, अतएव वहाँ जानेके लिए वह उत्कण्ठित हुई थी।।१९।।

जिज्ञासा

कृपया संक्षेपमें 'राधा-काम्यकानन'का वर्णन करें ।

समाधान

विश्वसृष्टिमें या तो वैकुण्ठ धामका नैःश्रेयस नामक उपवन ही है, अथवा भगवती त्रिपुरसुन्दरीका श्रीसुन्दरीवन ही है जहाँ वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त एवं शिशिर – छहों ऋतुएँ सदा हाथ बाँधे सेवोत्सुक समुपस्थित रहती हैं एवं इन वनोंकी वनस्पतियाँ इन छहों ऋतुओंकी समस्त शोभा एवं फलोंसे सुफलीकृत रहती हैं।

इन दोनों अप्राकृत स्थलोंका युगपत् मिलित शोभामय स्वरूप ही इस वृन्दा-काम्यकाननमें नित्य व्यक्त रहता है। यहाँ प्रकृतिकी समग्र वनस्पतियाँ हैं, परन्तु हैं, कल्पतरु एवं कल्पलताओंको हतप्रभ करदेनेवाली शोभा एवं उनसे अनन्त गुने ऐश्वर्यको व्यक्त करनेकी सामर्थ्य लिये। सरोवरोंका निर्मल जल पुष्पित माधवी लताओंसे परिव्याप्त रहता है। उनके जलपर इन लताओंका मकरन्द झरता रहता है। इन पुष्पोंके मकरन्दको अपने दुकूलमें भर-भरकर मन्द समीर सर्वत्र प्रचुर रूपमें विकरित करता रहता है। चतुर्दिक् सब ओर मधुर गुन-गुन रव करती भ्रमरावली विचरण करती रहती है। इन भ्रमरोंका गुञ्जन उच्च स्वरमें अवश्य है, परन्तु सभी सुरीली राग-रागिनियोंका मानो यह गुञ्जन उद्गम – मूलनाद हो। यह अलि-गुञ्जन कानोंके द्वारा चित्तको पूर्ण एकाग्रकर प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी प्रीतिसे सराबोर कर देता है। दूरसे श्रवण करनेवालेको तो यह गुञ्जन शब्दावली 'राधाकृष्ण, राधाकृष्ण'के रूपमें ही श्रवणगोचर होती है। यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण ही इस वनमें दृष्टिगोचर होता है कि पारावत, सारस, चक्रवाक, हंस, शुक, तीतर, मयूर ही नहीं, चातक एवं कोकिलाएँ भी जब इन भ्रमरोंका गुञ्जन प्रारंभ होता है तो पूर्ण एकाग्रचित्त हुए आनन्दमत्त, आत्मविस्मृत हो उठते हैं। ये अपनी बोलियाँ बोलना भूल जाते हैं। इस वनकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवी हैं, अतः यहाँकी यह विलक्षणता ही है कि मन्दार, कुन्द, कुरबक, उत्पल, चम्पक, स्वर्ण, पुन्नाग, नाग, बकुल, अम्बुज एवं पारिजात आदि सभी पुष्प अतिशय सौभाग्यशाली होनेपर भी गर्वरहित होकर सदैव हरिप्रिया तुलसीकी वन्दना करते रहते हैं। महादेवी योगमाया भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी सन्धिनी प्रधानशक्ति होनेसे वृन्दादेवी इस वनकी अधिष्ठात्री हैं और यह वन वृन्दा-काम्यकानन कहलाता है। व्रजप्रदेशमें वर्त्तमानमें भी संभवतः 'कामवन' नामक ग्राम इसी वनस्थलीकी पूर्वसत्ताका प्रतिपादक है।

यद्यपि यह वन अनन्त सिद्धियोंका प्रदायक है परन्तु ब्रजकी गोप-गोपियाँ कुमारी राधा एवं नन्दनन्दनके विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमें इतने तन्मय रहते हैं कि उन्हें इस ऐश्वर्यशाली निधिके अपने समीप ही स्थित होनेका अधिकांशतः ज्ञान ही नहीं रहता है। प्रत्यक्ष दैवी धाम होनेसे ही महाराज वृषभानुने इस वनमें सर्वसमय सर्वजनके प्रवेशका निषेध कर रखा है। उनकी अनुमति लेकर ही कोई श्रद्धालु वहाँ प्रवेश कर सकता है।

हाँ, पुरातन पूर्व पुरुषोंके समयसे ही भानुकुलकी कुलदेवी भगवती योगमाया त्रिपुरसुन्दरीका नित्य निवास इस वनमें होनेसे महाराज जब अपने सामन्तादि एवं प्रजाजनोंके साथ वहाँ जाते हैं तो उन्हें भगवतीके साक्षात् दर्शन होते हैं।

यह नियम ही है कि महाराज प्रत्येक मासकी अमावस्या एवं पूर्णिमा तिथिपर अपनी प्रजाके साथ इस वनकी फेरी देते हैं। इस अवसरपर जिसकी भी भगवती योगमायापर अतिशय निष्ठा होती है, उसे इस वनमें महादेवीके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

जो भी इसमें प्रवेश करता है उसे पदार्पण करते ही ऐसा तो प्रत्यक्ष ही अनुभव होता है मानो उसका समग्र तमोगुण (कल्मष) विलीन हो गया है। उसके तन-मन-प्राण विशुद्ध सत्त्वमें डूबने लग रहे हैं। असीम मङ्गलमयतासे आपूरित हुआ वह अपनेको पूर्ण शुचि अनुभव करने लगता है। उस वनमें प्रवेश पानेवाला वह यात्री यह अनुभव प्रकट किये बिना रह नहीं पाता है। इसीलिये इस वनकी महिमा-सम्बन्धी यह चर्चा वृषभानुपुरमें बाल-युवा, स्त्री-पुरुष सभीके मध्य होती ही रहती है। राजतनया राधाने भी अपनी सखियोंके घरोंमें क्रीड़ार्थ जानेपर उनकी माताओंके मुखसे, अथवा

अपनी वयस्क सेविकाओंके मुखसे इस वनकी महिमा सुनी है। अतः स्वाभाविक ही अनेक दिवसोंसे उसके मनमें भी यह उत्कण्ठा जग उठती है कि मैं भी कभी इस वनमें पुष्पचयन करने जाऊँ। इस वनमें क्रीड़ार्थ सभी जावें एवं वहाँके सुरभित पुष्पोंका चयन कर लावें – इस उत्कण्ठाको एक दिवस वह अपनी सखियोंके सम्मुख प्रकट कर देती है।

नट जननी से आकर बोली पीयूष भरे स्वरमें, प्रियतम!
'कुछ फूल बीन लाऊँ मैं री! उस वनसे' और हँसी, प्रियतम!
भर आँखें रानीकी आयीं, सुनकर फिर जब देखी, प्रियतम!
कैशोर वयसकी लाली-सी नवमुख पर पुत्री के, प्रियतम।।२०।।

वह अपनी माताके समीप आकर पीयूष भरे स्वरमें बोली-''अरी मैया ! मैं उस वनसे कुछ फूल बीनकर ले आना चाहती हूँ।'' इतना कहकर वह हँस पड़ी। पुत्रीकी बात सुनकर रानीकी आँखें भर आयीं। और फिर जब उन्होंने पुत्रीकी ओर दृष्टि डाली तो लाडिलीके मुखपर किशोरावस्थाकी लालिमाको प्रत्यक्ष अभिव्यक्त देखा। लाडिली बड़ी ही सुन्दरी थी, उसका मुख क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन सौन्दर्य धारण करता रहता था।।।२०।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

सखियोंका अनुमोदन पाकर मानो उसकी वाणीमें पीयूष ही भरा हो – ऐसे अतिशय मधुर स्वरमें कुमारी राधा अपनी माताके सम्मुख अपनी इच्छा रख देती है - 'अरी मैया ! मैं उस दैवी काननसे सखियोंके संग कुछ पुष्प बीनकर ले आऊँ ? ' यह कहकर वह मुसका उठती है।

मैया कीर्त्तिदा अपनी पुत्रीकी बात सुनती हैं। उसकी मुसकानमें उसे साक्षात् जगज्जननीकी छवि दृष्टिगोचर हो उठती है। अतिशय श्रद्धासे रानीकी आँखें भर आती हैं। वे पुनः सावधानीपूर्वक नेत्र उठाकर पुत्रीके मुखकी ओर देखती हैं। उन्हें लाडिलीके आननपर, कपोलोंपर कैशोर वयके अभ्युदयके चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर हो उठते हैं। माताने अपने वात्सल्यावेशमें इसे परिलक्षित ही नहीं किया था कि उनकी पुत्री छः वसन्त देख चुकी है, और उसके सातवें वर्षकी वर्षगाँठ व्यतीत होकर अब तो आठवें वर्षकी शरद्का प्रारम्भ हो चुका है। महारानी तो अभीतक अपनी बालिकाको दुधमुँही ही मान रही थीं। किन्तु इस वार महारानीने स्पष्ट परिलक्षित किया कि उनकी पुत्री राधाके अङ्गोंसे बाल्यावस्था तो व्यतीत हो ही गयी, पौगण्ड भी अपनी अवधि समाप्त कर चुका है। राधाकिशोरीके अङ्गोंपर एक अप्रतिम विकास परिलक्षित होने लगा है। राधाके मुख-सरोजका सर्वांश एक अभिनव कान्तिसे दमक उठा है। उसके दृगोंमें मनोहर दीर्घता दृष्टिगोचर हो रही है। उसके नयन-सरोरुह अरुण प्रभासे रञ्जित हो उठे हैं। माता देख रही है कि कैशोर उसकी पुत्रीमें एक अनिर्वचनीय सौन्दर्यका उद्रेक करनेमें क्रियाशील हो उठा है। मानो उनपर कुङ्कुम मण्डित कर दी गई हो, इस भाँति उसके कपोल किञ्चित् रक्ताभाकी झाईं दे रहे हैं। उसके वक्षोज भी मुकुलित होनेकी आकुलता प्रदर्शित कर रहे हैं। मध्यदेशमें परम रमणीय कृशता परिलक्षित होने लगी है। माता चकित है कि उसे ज्ञात ही नहीं हुआ और श्रीराधाके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें एक अद्भुत अनिर्वचनीय सौन्दर्य-सिन्धु उमड़ उठा है। इस सौन्दर्यपूरमें माता कीर्त्तिदाके नेत्र डूब जाते हैं।

मैया कीर्त्तिदाके नेत्र किञ्चित् क्षणोंके लिये यदि कभी ऊपर आते भी हैं तो उसके प्राणोंमें इस प्रकारकी झङ्कार उठती है -'अहा ! कैसी शोभा है मेरी प्राणवत्सलाकी ! मानो वसन्तके दिन हों, नव-विद्युल्लताकी शाखाओंकी प्रत्येक ग्रन्थिमें कुन्दनवर्णमयी नवाङ्कुरश्रेणी फूट पड़ी हो। इन नवाङ्कुरोंसे उस विद्युल्लताका सौन्दर्य प्रस्फुटित हो उठा हो। पर यह शोभा भी मेरी पुत्रीके रोम-रोमसे प्रस्फुटित हुए सौन्दर्य-स्रोतकी तुलनामें सर्वथा सर्वांशमें तिरस्कृत, तुच्छीकृत हो रही है।'

मैया कीर्त्तिदाके नेत्र शोभासिन्धुमें डूबकर कभी निमीलित होते हैं, पुनः उन्मीलित होते हैं –' कैशोरभाव अपनी समस्त मधुरिमा अब श्रीराधाके तनमें उँडेलने जा ही रहा है एवं श्रीराधाके अङ्ग भी उस माधुर्यभारको वहन करनेमें सर्वथा समर्थ दीख रहे हैं। अहा ! अभी तो भरपूर पौगण्ड है; पौगण्डने डेरा उठाया ही नहीं है। कुछ ही काल पूर्व तो इस कुन्दनवर्णी राधाके श्रीअङ्गोंपर कौमारका साम्राज्य था। उसकी समस्त भंगिमाएँ – भावधाराएँ कौमारकी छाप लेकर ही व्यक्त होती थीं। पौगण्डने बहुत प्रयत्न करके कौमारको निस्सारित किया था, उसे हटाकर बहुत कठिनाईसे शासन-सूत्र अपने हाथमें लिया था, परन्तु अब तो कैशोर अपना अधिकार सँभालने आ पहुँचा है। यह लो, उसके आते ही राजतनूजाके अङ्गोंपर कितना मनोहर विकास परिलक्षित होने लगा है। कर्त्तव्यका कितना ज्ञान है इसे ? अपने अस्तित्वकी परम एवं चरम कृतार्थता वृषभानु-तनूजाके श्रीअङ्गोंके स्पर्शसे ही संभव है – कैशोरने यह भी भली भाँति समझ लिया है। देखो, देखो, अभी-अभी, देखते-देखते ही इसने अपना कैसा विस्तार कर लिया है। अब तो पौगण्ड अलक्षित रूपसे अश्रु बहाता स्वयं ही कैशोरमें विलीन हो जाता है।'

'अहा ! राजतनूजा मानो विद्युल्लता नाम्नी लताका एक अनिर्वचनीय सुन्दर फल हो, जो अभी परिपक्व नहीं हुआ हो, फिर भी कसैलेपनेसे रहित हो गया हो, मृदुता धारण करके, मधुर-सुस्वादु रससे पूरित हो उठा हो, सबकी लोभनीय वस्तु बन गया हो।'

इस प्रकार भावावेशमें रानी न जाने क्या-क्या अनुभव करने लगती है।

लोचन के आगे नाच उठी रानी के जीवन की, प्रियतम!
घटना प्राचीन नवीन वधू थी बनी वहीं आयीं, प्रियतम!
वह थी सुहाग की रात, मौन थे आर्यपुत्र बैठे, प्रियतम!
वे थीं बैठी, था झुका हुआ सिर उनके चरणों में, प्रियतम ॥२१॥

.... महारानीकी आँखोंके आगे उनके जीवनकी एक घटना नाच उठती है। घटना अत्यन्त प्राचीन थी। तबकी थी, जब वे वहीं - उसी स्थलपर नयी बहू बनकर आयी थीं। उनकी आँखोंके आगे वह दृश्य भी नाच उठा जब वे सुहागकी रात मनानेके लिये शयनकक्षमें ले जायी गयी थीं। शयनपर्यंकपर आर्यपुत्र पतिदेव मौन बैठे थे। महारानी वहीं उनके समीप ही बैठी थीं। महारानीका सिर महाराजके चरणोंमें झुका हुआ था।।२१।।

जिज्ञासा

प्राकृत विश्वमें तो सुहागरात पूर्ण काममयी ही होती है। पुत्रेषणा ही पति-पत्नीके प्रथम दाम्पत्य-प्रेमका हेतु होता है। इस अप्राकृत दिव्य राज्य वृषभानुपुरके नृपति एवं महारानी कीर्त्तिदाकी दिव्य विशुद्ध सत्त्वमयी मिलन-निशाका कृपया विस्तारसे वर्णन करें। यह भी सुस्पष्ट करें कि उनमें मिलनवेलामें कौनसा ज्योतिर्मय भाव उदय हुआ ?

समाधान

महारानी अपनी पुत्रीको देखती-देखती बह चलीं उस सौन्दर्य-प्रवाहमें और देखने लगीं अपने विगत यौवनकालके चित्र – जब वे नववधू बनकर वृषभानुकुलमें आयी ही थीं।

सुहाग रात थी। सखियाँ महारानीका नववधूचित शृङ्गार करके उन्हें लेकर प्रथम मिलन-कक्षमें लायी थीं। सखियोंने रानीको कक्षमें विजड़ित आरसीमें उनका स्वयंका रूप दिखाया था। ओह ! रानी चमत्कृत हो उठी थीं। यह तो साक्षात् जगन्माता वृषभानुकुलकी महादेवीका ही रूप है। ऐसी सुन्दरी तो वे कभी नहीं थीं। अपने अङ्ग-अङ्गमें

अभिव्यक्त भगवती त्रिपुरसुन्दरीके सौन्दर्यावेशको देखती रानी श्रद्धासे 'माँ, माँ' पुकार उठी थीं। न जाने भगवती महायोगमायाकी क्या इच्छा है? सखियोंने महारानीको पद्म-पर्यंकपर विराजित कर दिया था। अतिशय लज्जासे निम्न मुख किये वे आर्यपुत्र महाराजके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। मन्द-मन्द मुसकाती सखियाँ उन्हें प्रथम पति-मिलनसुखके अतिशय अभिवर्धनकी कलाओंकी शिक्षा एवं यथोचित सेवा-निर्देश देकर विदा हो चुकी थीं। महारानीने विमुख मनसे सखियोंकी सभी शिक्षा सुन तो ली थी, परन्तु उनका चित्त तो आरसीमें अपने ही अन्तरालसे अभिव्यक्त भगवतीके परम अलौकिक, विशुद्ध परासात्विक दिव्य सौन्दर्य-दर्शनसे पूर्ण पवित्र हो चुका था। उनके मनमें तो यही आ रहा था, महाराज भी क्यों नहीं उसी माँके चिन्मय स्वरूपमें ही रम जावें और विषय-विरक्त ही हो जावें। विशुद्ध भक्तिरसकी उत्ताल तरङ्गोंमें रानी बह रही थी।

सहसा द्वार उन्मुक्त हुए। महाराज कक्षमें पधारे। पुष्पपर्यंकपर महाराज विराजित हो गये। महारानीने महाराजमें साक्षात् भगवान् महादेव कामेश्वरके ही दर्शन किये। प्रथम चरणोंमें विनत होकर ही उसने महाराजको अपना पूर्ण समर्पण किया था।

महाराजने प्रथम दर्शनमें ही जान लिया - उनकी जीवनसङ्गिनी सर्वविधि आत्मा एवं शरीर – दोनों प्रकारसे अप्रतिम सुन्दरी है। महाराजने रानीका प्रथम मुख दर्शन किया, वे पवित्रताके अजस्र स्रोतमें जैसे आपाततः डूब गये।

रानीके कुन्दनद्युति मुखारविन्दसे राशि-राशि विशुद्ध माधुर्यकी धारा प्रवाहित हो रही थी। महाराजके नेत्र जैसे उस माधुर्य-मदपानसे छक गये हों, अर्धनिमीलित हो उठे। महाराजके नेत्रोंसे उनके प्राण एवं हृदय सन्नद्ध थे ही। अतः महारानीके उस अपूर्व पवित्र सौन्दर्यकी एक झलकने ही मानो महाराजके अनन्त जन्मोंकी संस्कारजन्य अर्जित कामाग्निको, जो उनके अन्तस्तलके प्रत्येक अंशमें अलक्षितरूपसे अनादिकालसे विद्यमान थी, पूर्णतया प्रशमित कर दी थी। महाराज तो अत्यन्त सङ्कुचित हो उठे थे। मधुकर मानो अत्यधिक मधुपानसे मत्त होकर तन्द्रित होने चले हों, महाराजके नेत्र निमीलित हो उठे थे। महारानीके भी रसपूरित हृदयमें एक विशाल भावलहर आयी। परन्तु सन्नारी-उचित लज्जाने प्रायः सम्पूर्ण द्वार ही रुद्ध कर दिये। महारानीने महाराज वृषभानुका लाज-भरी मन्द सुमधुर मुसकान एवं अतिशय विनम्र भावमुद्रामें स्वागत किया। अवश्य महारानीके नेत्र किञ्चित् चञ्चल हो उठे और उनकी चितवन भी बङ्किम हो गयी। वे भावावेशवश महाराजको अपने अन्तस्तलमें सञ्चित सम्पूर्ण आदरकी भेंट समर्पित करने लग गईं। इस समादरके रूपमें ही महारानीने अपना हृदयद्वार अनावृत कर दिया और उनका सर्वस्व महाराज वृषभानुके चरण-सरोरुहमें पूर्णतया समर्पित हो गया। गुणनिधान महाराज वृषभानुने इसे ही बहुत-बहुत करके मान लिया। महाराजने महारानीके इस उपहारको आन्तरिक परमोल्लाससे मौन रहकर ही स्वीकार कर लिया। महारानी भी महाराजके चरणोंमें मूक, विनम्र सिर झुकाकर बैठी रहीं।

जीवनसङ्गिनी अलौकिक थी सुन्दरी मिली, फिर था, प्रियतम !
दोनों में ही नवयौवन का उन्मेष; किंतु दोनों, प्रियतम !
हो गये विरत उन विषयों के उन्मादी भोगों से, प्रियतम !
जागा अन्तस्तल में सहसा ज्योतिर्मय भाव, अहो ! प्रियतम ।।२२।।

महाराजाको अलौकिक सुन्दरी जीवनसङ्गिनी मिली थी। उस समय महाराजमें, महारानीमें नवयौवनका उन्मेष हो चुका था, किन्तु दोनों ही अचानक प्रपञ्चके उन उन्मादी विषयभोगोंसे सर्वथा विरक्त हो गये। इतना ही नहीं, दोनोंके ही अन्तस्तलमें सहसा एक ज्योतिर्मय परम निर्मल भाव जाग उठा।।२२।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

महारानी कीर्त्तिदा और महाराज वृषभानुका यह मिलन वासनाभिभूत मिलन नहीं था। वहाँ मायिक जगत्‌का भान ही नहीं था। यह उनका आत्मासे आत्माका व्यवधान-रहित मिलन था। महाराजने महारानीका प्रथम दृष्टिमें ही जो रूप देखा था, वह आनन्द-सौन्दर्य-सुधानिधि चिदानन्द रसमय रूप था। वह प्राकृत देहका कामाकर्षणजन्य रूप नहीं था। वह रूप ऐसा था जिसके सम्मुख आनेपर देह-गेह, लज्जा-सङ्कोच, अपना-पराया, लोक-परलोक – सभी उस अनुपम रूप-सरिताकी प्रखर धारामें बह जाते हैं।

कामका अर्थ है, जो शरीर अन्न-जलादि द्वारा संवर्धित है, मल-मूत्र जिसका परिणाम है, उसको तृप्त करनेकी इच्छा। काम-मिलनमें कभी न तो विशुद्ध रसका ही उदय होता है, न वस्तुतः तृप्ति ही होती है। यह बात हम पहले ही कह चुके हैं कि महारानी कीर्त्तिदामें तो परमानन्दमयी भगवत्स्वरूपा पराशक्ति महादेवी ही अभिव्यक्त हो उठी थीं। अतः महाराज-महारानीका मिलन नीच कामोपभोग नहीं था, परस्पर एक दूसरेको सुखदानरूपा प्रीतिका अनुभाव मात्र था। यह दोनों युगल दम्पतिमें जो विशुद्ध प्रीति प्रकट हुई थी, यह भागवती आनन्दका ही परिपाक विशेष था।

इसीलिये इस मिलनने उनमें किसी तृष्णाका उदय नहीं किया। महाराज-महारानी दोनोंमें ही इस मिलनके पश्चात् न ही किसी भोगकी आकाङ्क्षा रही, न ही मोक्षकी। किसी भी कामना-वासनासे वे सर्वथा सर्वांशमें निर्मल होकर ही मिलन-निरत हुए थे। तत्क्षण ही उन दोनोंमें इतना उच्च भाव प्रतिष्ठित हो गया कि 'हमारे जीवनका क्षण-क्षण अब भविष्यमें केवल इसी साधनामें बीते जिससे कृपामयी त्रिभुवन-जननी प्रसन्न हों। बस, इसके सिवा न तो हमें भोग-मोक्ष, सद्गति-परागतिकी चाह हो, न परवाह ही।' दोनोंने ही उसी मिलन-निशामें जड़ शरीरके भोगोंका ही नहीं, सूक्ष्म शरीरसे मिलनेवाले स्वर्ग एवं कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष; और तो क्या, जड़ताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया था। उनके हृदयमें बची थी – पराभट्टारिका महादेवी भगवती योगमायाके चरणोंमें पूर्ण समर्पणमयी भक्ति और स्वयं जगन्माता ही जगन्माता।

हम दोनों अभी इसी क्षणसे हो चुके समर्पित हैं, प्रियतम !
जो कृपामयी त्रिभुवनजननी हैं, उनके श्रीपदमें, प्रियतम !
किङ्करी और किङ्कर हम हैं दोनों विक्रीत हुए, प्रियतम !
केवल उनकी ही सेवा अब जीवन पर्यन्त करें, प्रियतम ॥२३॥

महाराज सहसा बोल उठे - ''महारानी ! सुनो, हम दोनों ही अभी इसी क्षणसे कृपामयी त्रिभुवन-जननीके चरण-सरोरुहमें समर्पित हो चुके हैं। हम दोनों ही अब एकमात्र उनके ही किङ्करी एवं किङ्कर हैं। उनके चरण-सरोरुहमें ही हम दोनों सर्वथा सर्वांशमें विक्रीत हो चुके हैं। अब तो केवल-केवल हम दोनों उनकी सेवा जीवनपर्यंत करते रहेंगे।।२३।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

सहसा महाराज बोल उठे – ' महारानी ! पराभट्टारिका महादेवीकी कृपासे त्रिलोकीको मथनेवाले हृद्रोग – कामविकारका तो हमारे जीवनमें अब प्रश्न ही नहीं रहा, एवं हम दोनों इसी क्षणसे त्रिभुवन-जननीके चरणोंमें समर्पित भी हो चुके हैं, अब इसी क्षणसे हम उनके किङ्कर-किङ्करी भी हो जावें।'

असलमें यह संसार तभीतक बाधक एवं विक्षेपजनक है, जबतक यह भगवान्‌से सम्बद्ध नहीं हो जाता। वस्तुतः

इसे भगवान्का प्रसाद ही समझ एवं मान लेना चाहिये। भगवान्का कोई व्यक्ति किङ्कर-किङ्करी, दास-दासी, सखा-सखी – बस, कुछ भी हो जाय; फिर तो सब बन्धन ही मुक्तिस्वरूप हो जाता है। भगवान्के सम्पर्कमें आयी माया, विशुद्धविद्या बन जाती है। संसार और उसके समस्त कर्म अमृतमय आनन्दरससे परिपूर्ण हो जाते हैं। तब चाहे संसारमें वह व्यक्ति भले ही राजा हो, रानी हो, अनन्त भोगप्रधान राज्यसुखका, त्रिलोकीकी सम्पदाका भी स्वामी हो, उसके सम्पर्कमें आयी माया विशुद्धविद्या बन जाती है, उसका सम्पूर्ण माता-पिता, पुत्र-पुत्री, दास-दासी, जन-परिजन, शत्रु-मित्र, अपने-परायेके रूपमें जो भी आवरण होता है, वह उसे भगवान्के सान्निध्यसे वञ्चित नहीं कर पाता। उसके लिये नरक नरक नहीं रहता और स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ भी वैकुण्ठ नहीं रहता। उसका निवास तो अखण्ड-नित्य भगवल्लोकमें ही होता है। इस स्थितिमें पहुँचे बड़े - उच्च साधक प्राकृत पुरुषके समान आचरण करते-से दीखते हैं।

इसी भावसे महाराज वृषभानु महारानीसे कहते हैं कि एक बार यदि हम अपने सच्चे भावसे जगन्माता भगवती आदिशक्ति योगमायाके किङ्कर-किङ्करी बने नहीं, फिर भले ही लोगोंकी दृष्टिमें हम राजा-रानी, पति-पत्नी रहें, वस्तुतः हमारा सबकुछ भगवती योगमायाकी अपनी सम्पदा बन जायेगा। उसपरसे हमारा चिर सञ्चित अपनत्वका डेरा हट जायगा। फिर तो हमारा सभी संसार, भाई-बहिन, माता-पिता, कुल-लोक, धन-परिजन, धन-संपत्ति, राज-पाट, सम्पूर्ण गोधन – सभी भगवतीका प्रसाद ही बन जावेंगे। ये सभी उनके किङ्करी-किङ्कर हमको उनका पल-पल स्मरण करावेंगे।

यहाँ पुनः ध्यान रखनेकी बात है कि महाराजा वृषभानु एवं मैया कीर्तिदामें इतना अधिक भागवती समर्पण था कि उन्हें वस्तुतः राजपाटका कोई भी मोह, कोई भी बन्धन नहीं था; फिर भी उन्होंने स्वेच्छासे इस पारिवारिक राजकाजके बन्धनकी मर्यादाको मात्र भगवतीके कुलकी वस्तु, उनकी देन मानकर स्वीकारा। उनके लिये राजकाज, अपार गोधन, देव-दुर्लभ अकूत सम्पत्ति भगवती महादेवीका प्रसाद मात्र थी। उनके लिये राज्यसुख पल-पलमें भगवती पराभट्टारिकाकी स्मृति करानेवाला भगवतीका परम सुन्दर प्रतीक था। उन दम्पतिकी भगवती महादेवीके प्रति हृदयगत प्रेममयी स्थिति त्याग-वैराग्यजन्य अहंकारी मर्यादाओंके ऊपर थी। वे तो महादेवीके प्रेममें, उनके आज्ञापालनरूप धर्ममें, उनकी सेवारूप व्रतमें त्यागका भी त्याग कर चुके थे। वे तो वैराग्यके प्रति भी वैरागी हो चुके थे। त्याग एवं वैराग्य होता है मलिन प्राकृत देहमें, अहंकारगत कर्मोपलब्धिरूप फलके भोगमें। भला कोई महादेवीकी सेवा-सामग्री – पराभट्टारिकाके मङ्गलमय विधानरूप कृपादानका भी त्याग करेगा ? महारानी कीर्त्तिदा और महाराजा वृषभानु – दोनों ही राजा-रानी भगवती योगमाया महादेवीके ऐसे कृपापात्र थे कि उन्हें त्यागके भावका भी त्याग, त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करनेमें कहीं कोई कठिनाई नहीं हुई।

साधककी यह दशा होती है कि वह भगवान्को तो चाहता है, परन्तु संसारको भी छोड़ना नहीं चाहता। वह अपने घर-परिवार, राज-पाट, पति-पत्नी, पुत्र-कलत्रको साथ लेकर भगवान्से जुड़ना चाहता है। सूर्यके दर्शन करनेकी चाह भी रक्खे और अन्धकारको भी नहीं छोड़ना चाहे – यह तो बहत ही विकट दुविधाकी स्थिति होती है। ऐसे साधकका संसार भगवान् जोर-जबरदस्ती करके नष्ट कर देते हैं। अपने संसारका समूल नाश होते देख साधक बिलखता है, रोता है। उस समय अन्तर्यामी भगवान् उसे शिक्षा देते हैं – 'अरे मूर्ख ! तुम इस पर्देके मोहमें क्यों पड़े हो ? यह पर्दा ही तो जीव और मेरे मध्यका बहुत बड़ा व्यवधान है। वह हट गया, बहुत बड़ा कल्याण हुआ। अब तुम मेरे पास आओ, तुम्हारी चिरसञ्चित आकाङ्क्षाएँ मैं पूरी करूँगा।' परमात्माका यह आह्वान – आत्माके आत्मा, परम प्रियतम, प्राणोंके मर्म भगवान्का यह मिलन-आमंत्रण भगवत्कृपासे जिस महाभाग्यवान्के अन्तर्देशमें प्रकट हो जाता है, वह प्रेममें निमग्न होकर, सबकुछ छोड़कर, इस छोड़नेको भी भूलकर भगवान्की ओर दौड़ आता है। फिर न उसे अपने घर-द्वार, राज-पाट, धन-सम्पत्तिकी चिन्ता होती है, न पत्नी-पुत्र, सगे-सम्बन्धी एवं भाई-बहिनकी। वह न अपनेको देखता है, न जगत्को। विशुद्ध एवं अनन्य भगवत्प्रेममें ऐसे होता ही है।

महाराजा वृषभानु एवं महारानी कीर्त्तिदा तो भगवती जगदम्बाके ऐसे ही कृपापात्र थे। उन्हें विवाह-मण्डपसे जब महादेवीके दर्शनार्थ मन्दिर ले जाया गया तथा वहाँपर जब उन दोनोंकी दृष्टि महादेवीके मुखमण्डलपर पड़ी, तो उन्होंने महादेवीसे मात्र उनकी चरण-सेवाका ही कृपा-दान माँगा था। वे दोनों ही सर्वस्व त्यागकर, पूर्ण समर्पणकर उच्चतम आत्मविस्मृतिमें भगवतीके चरणोंकी भक्तिभावनामें भर गये थे। वे तो भगवतीके चरणोंके चिन्मय भक्तिरसके अलौकिक अप्राकृत मधुके अनन्त समुद्रमें डूबे सबकुछ भूल जाते हैं, भूलनेवालेको भी भूल जाते हैं। उनकी दृष्टिमें मात्र भगवती ही रहती हैं; इसी सर्वोच्च आत्मसमर्पणके कारण ही महारानीको आरसीमें देखनेपर अपने स्थानपर भगवती जगदम्बाका ही स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ था। महाराज वृषभानुका भी कीर्त्तिदाके प्रथम दर्शनमें ही दुर्जर कामनाश हो गया था और वे उससे मिलन-कालमें दिव्य प्रेमकी ही अनुभूति करने लगे थे।

उनका आदेश भले जब हो, तब एक पुत्र बस, हो, प्रियतम!
जो परम्परा का नृपकुल की निर्वाह वीर करदे, प्रियतम!
पश्चात् सदा के लिये लीन हम हों श्री-पद-नख में, प्रियतम!
आदर्श रखें हम, जिसे प्रजा अपनाकर सुखी बने, प्रियतम।। २४।

देखो, उनका जब प्रत्यक्ष आदेश मिल जाय तब भले हम दोनोंको एक सन्ततिके जनक-जननी बनना पड़े-सो भी इसलिये कि वह वीर पुत्र राजकुलकी परम्पराका निर्वाह कर दे। इसके पश्चात् तो हम दोनों सदाके लिये श्रीमहादेवीके चरण-नखचन्द्रोंमें ही विलीन हो जायँ -ऐसा आदर्श रख जायँ, जिसको आदर्शके रूपमें स्वीकार कर हमारी प्रजा भी सदाके लिये सुखी बन जाय।।२४।।

जिज्ञासा

महाराज वृषभानु कहाँ तो महारानी कीर्त्तिदाके साथ भगवतीके किङ्कर-किङ्करी होकर पूर्ण निवृत्त, त्यागी जीवन व्यतीत करनेकी चाह करते हैं, फिर वे एक पुत्र होनेकी बात कहकर पुनः अपने निश्चयसे क्यों डिग जाते हैं ? भगवती किसीको भी भला पुत्र-पुत्रीरूपी मोह-संसारमें प्रवृत्त करनेकी इच्छा क्यों करने लगीं ? वे तो महाविद्यामयी, मोक्षदायिनी एवं ज्ञानप्रदायिनी ही हैं । कृपया इसपर प्रकाश डालें।

समाधान

ध्यान रहे, महाराजा वृषभानु पूर्वजन्ममें महादानवीर राजा नृगके सुपुत्र परम धर्मात्मा सुचन्द्र थे। इन्होंने गोलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी घोर तपपूर्वक दीर्घकालतक आराधना की थी। इनके घोर तपके प्रभावसे जब भगवान् स्वयं इनके पास वर देने आये, तो इन्होंने उनसे यही वर माँगा कि भगवान् श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया, विशुद्ध आह्लादिनी महाशक्ति गोलोकेश्वरी श्रीराधा ही उनके यहाँ पुत्री रूपमें जन्म लें। भगवान् श्रीकृष्णने उनकी भक्तिभावका आदर करते हुए उन्हें 'तथाऽस्तु' वर दिया था कि आगामी द्वापरयुगमें, वृषभानुपुरमें तुम गोपराज वृषभानुके रूपमें जन्म लोगे, तब मेरी प्रिया राधा तुम्हारी पुत्री होकर तुम्हें कृतार्थ करेंगी। इन वृषभानु महाराजमें भगवान् सूर्यदेवका भी तेज समाविष्ट था, जो भगवती योगमाया महादेवी त्रिपुरसुन्दरीके द्वादश प्रमुख आचार्य भक्तोंमें एक हैं। भगवान् सूर्यदेवने भी 'श्रीराधा'को पुत्री रूपमें पानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना की थी। उन्हें भी भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा यही वर मिला था। अतः संयोग ऐसा हुआ कि भगवान् सूर्यदेवका अंश भी वृषभानु महाराजमें पूर्ण समाविष्ट था। इनका नाम भी वृषभानु इसी लिये हुआ कि इनके कुलपर भगवान् सूर्यदेवकी अपार कृपा थी।

इसी प्रकार महारानी कीर्त्तिदाके रूपमें भी भगवती मानसीकी पुत्री कलावतीने जन्म ग्रहण किया था। भगवती मानसी जो पितरोंकी कन्या थी, उन्होंने घोर तप करके भगवान् वरदराज वैकुण्ठाधिपति नारायणको प्रसन्न किया था एवं उनसे वर माँगा था कि मेरे कुलमें भगवती महादेवी योगमायाका प्राकट्य हो । भगवान्ने इन्हें वर दिया था कि तुम्हारे कुलमें कुलको धन्य करनेवाली तीन सौभाग्यवती पुत्रियाँ होंगी। प्रथम, मेनका होगी जो पर्वतराज हिमालयको विवाही जावेंगी, दूसरी, सुनयना होंगी, जो महाराज जनकजीकी सती पत्नी होंगी। यह सर्वविख्यात है कि मेनकाकी पुत्री पार्वती हुईं, एवं सुनयनाके घरमें सीताजीका प्रादुर्भाव हुआ। तीसरी, महाभागा कलावती होंगी। ये नृगके सुपुत्र सुचन्द्रको व्याही जावेंगी। ये महारानी कलावती एवं महाराज सुचन्द्र ही घोर तप करके भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करेंगे एवं उनसे वररूपमें भगवती राधाको अपनी पुत्रीके रूपमें माँगेंगे। महाभागा कलावती एवं महाराज सुचन्द्रने ही वृषभानु गोप एवं कीर्त्तिदा महारानीके रूपमें जन्म लिया एवं भगवती श्रीराधा इनकी ही भविष्यमें कन्या होंगी।

ये ही सब कारण थे, जिनसे सूर्यवंशमें, साथ ही पराभट्टारिका परात्पर पराशक्ति आदिमहामाया भगवतीके पूर्ण कृपापात्र कुलमें श्रीवृषभानुजीका जन्म हुआ और महारानी कीर्त्तिदा महान् धर्मात्मा राजा बिन्दुके घरमें रावल ग्राममें यज्ञाग्निसे उद्भूत हुईं। महाराज नन्दराय उस यज्ञमें सम्मिलित थे, अतः उन्होंने ही वरेच्छु होनेकी वय प्राप्त होनेपर इनका विवाह अपने धर्मात्मा प्राणोपम मित्र वृषभानुसे कराया था।

भगवती श्रीविद्याके प्रमुख बारह आचार्योंमें क्योंकि भगवान् सूर्यदेव एक हैं, अतः सूर्य-विद्याके रूपमें ही इनके कुलमें महादेवी सनातन कालसे विराजित थीं।

वस्तुतः वही धन्य है, कृतकृत्य है, उसीका कुल पवित्र है, जो जगज्जननी महादेवी पराभट्टारिका आदिशक्ति महामाया त्रिपुरसुन्दरीके श्रीचरणोंमें समर्पित होनेका सङ्कल्प करते हैं। पिताको पुम् नामक नरकसे छुड़ानेवाले पुत्र होने संभव हैं, परन्तु अनादि भवबन्धनसे मुक्त करनेवाली पराश्रीविद्यास्वरूपिणी जगज्जननीको अपनी इष्ट, आराध्या, सर्वस्व मानकर उनके ही श्रीचरणोंमें शेष जीवन न्यौछावर कर देनेका लक्ष्य निर्धारण करनेवाला कोई एक बिरला वीर पुरुष ही होता है। महादेवी पराम्बाके किङ्करीत्वको प्राप्त करनेकी अभिलाषा अनन्तानन्त जन्मोंके पुण्योदयसे ही संभव है।

महाराज वृषभानु एवं कीर्त्तिदाके घर भगवती श्रीराधाका प्रादुर्भाव हो, यह दम्पतिकी अहंकारगत कामना नहीं थी। यह तो पराभट्टारिका भगवतीकी ही महाइच्छा थी। महाराजा सुचन्द्र एवं कलावती, हिमालय एवं मेनका तथा जनक एवं सुनयना, आदि मात्र रङ्गमञ्चके पात्र थे जो कठपुतलीवत् उस महाइच्छामयीकी इच्छा-डोरसे बँधे सङ्कल्प-विकल्प कर रहे थे। उनके सङ्कल्प उनके रजोगुणी अहंकारके परिणाम नहीं थे।

अतः श्रीवृषभानु महाराज एवं कीर्त्तिदा महारानीमें इसी समय चिन्मय धाम – गोलोकके नित्य लीला-परिकर वृषभानु एवं कीर्त्तिदा भी आविष्ट हो जाते हैं।

बस, अब तो रङ्गमञ्च ही दूसरा हो गया। एक क्षण पहले जो वृषभानु गोपराज प्रपञ्चके उन्मादी विषयभोगोंसे पिण्ड छुड़ानेकी एवं निवृत्त जीवन व्यतीत करनेकी सोच रहे थे, उनकी प्रबल इच्छा सोपाधिक परात्पर परब्रह्मशक्ति प्रत्यक् चैतन्यस्वरूपा भगवती त्रिपुरसुन्दरीके चरणोंके किङ्कर होनेकी थी, साथ ही जो अपने इसी लक्ष्यकी ओर अपनी सहधर्मिणीको भी उनकी किङ्करी बनाकर प्रवृत्त करना चाह रहे थे; इस विषयमें जो पूर्ण दृढ़निश्चयी होकर, अटल व्रत लेकर सौभाग्य-मिलनकक्षमें चरण रखे थे; अब उनमें ही विकल्पका उदय हो गया। उनका मन जगत्के मोहसे अभिभूत हो उठा। यद्यपि उनके इस मोहको उत्पन्न करनेवाली जड़ जगत्में व्याप्त अविद्याग्रन्थि नहीं थी, यह मोह तो भगवती महादेवी जगन्मायाका रागरूप पाश-आयुध था, जिसका वे अपने महामङ्गलमय लीला-विधानको चरितार्थ कराने, उनके अपने निज कृपापात्र यंत्र बने पात्रोंपर ही प्रयोग करती हैं। भला उस महाइच्छामयीकी इच्छाका उल्लङ्घन करनेकी सामर्थ्य किसमें है। देव-दानव, ऋषि-मुनि, महासिद्ध योगीश्वरों, सनकादि महज्जनों, नारदादि भगवद्भक्तों,

दुर्वासा-विश्वामित्रादि तपस्वियों, वशिष्ठादि ज्ञानियों, अत्रि-अनुसूया, अगस्त्य-लोपामुद्रादि महासिद्ध सामर्थ्यशाली मानवों, परशुराम, भृगु, दत्तात्रेय जैसे ऋषियों, यहाँतक कि ब्रह्मा, शिव, एवं भगवान् नारायणतककी तो सामर्थ्य नहीं कि वे पराभट्टारिका भगवतीके इस पाश-आयुधके बंधनसे स्वतंत्र हो सकें । भगवान् राम-कृष्णादि अवतारी पुरुषोंकी लीला भी उस महालीलामयीके अङ्कुशके नीचे ही सम्पन्न होती है। वे भी स्वतंत्र आचरण नहीं कर पाते, तो बिचारे वृषभानु नृपतिकी सामर्थ्य ही कहाँ थी कि वे उसके महापाशसे अपनेको मुक्त कर सकते।

उनकी यह एक पुत्र होनेकी कामना भगवती महादेवीकी ही महाइच्छा थी, जो उनके मानसमें सहसा प्रतिबिम्बित हो उठी थी। वे स्वयं तो विषयैषणारूपी ग्राहको मारकर महादेवीके चरणोंके ही नित्य दास थे।

फिर किसीकी यह आशङ्का कि भगवतीने ऐसी महाइच्छा क्यों की - इसका उत्तर तो आजतक न कोई दे सका है, न भविष्यमें भी कभी कोई दे सकेगा।

जो महादेवी ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रादि महेश्वरोंकी भी नियामक है, जो पञ्चकोशातीत हैं, जिनको जाननेवाला, देखनेवाला उनसे अन्य कोई नहीं; जो सबको जानती हैं, देखती हैं, जो सबको परिव्याप्त किये हैं, और जिनको व्याप्त करनेकी सामर्थ्य किसीमें, कहीं भी नहीं है, जिन महादेवीकी अङ्ग-ज्योतिछटाके आभास (छाया) में यह सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर रूपी सृजन भासित हो रहा है; जिन महादेवीकी महाइच्छासे ईश्वरोंकी भी इन्द्रियाँ एवं प्राण चलायमान हैं, जो अनादि हैं, सर्वजननी हैं, जो न जन्मती हैं, न बढती-घटती हैं, न ही जिनका प्रलय होता है, इस अनन्तके उद्भवसे उनका उद्भव नहीं होता, न ही इसके महाप्रलयसे उनको कोई खरौंच लगती है , जो अहं रूपमें सर्वबोधगम्य हैं, सहज सबमें सुव्यक्त रहती हैं, उन महादेवीसे क्यों और कैसे कौन पूछ सके हैं ?

अतः महाराज वृषभानु स्वयं चकित थे कि पूर्वतः जिसकी स्फुरणा ही नहीं थी, यह पुत्रेषणा कहाँसे उनके मनको मथित कर गयी, किन्तु फिर जो महादेवीकी इच्छा; हम दोनों तो उनके यंत्र मात्र बने रहें, वे यंत्री हम दोनोंके मन-प्राणोंमें जागनेवाले सभी सङ्कल्पोंकी नियंत्रिका, सञ्चालिका, सूत्रधारिणी बनी रहें – इस परम ज्योतिर्मय भावसे जैसा मनमें सङ्कल्प आया कह गये।

जिज्ञासा

यहाँ पुनः प्रश्न उठता है कि जब महाराज वृषभानु पूर्वजन्ममें दानवीर राजा नृगके सुपुत्र धर्मात्मा सुचन्द्र थे और उन्होंने पुत्रीके रूपमें श्रीकृष्णप्रिया गोलोकेश्वरी श्रीराधाको चाहा था तो उनके मनमें पुत्रीकी लालसा जागृत् होनी चाहिये थी, यह पुत्रप्राप्तिकी इच्छा उनके मनमें क्यों जागृत् हुई? कृपया इसका समाधान करें।

समाधान

यह बात नित्य ध्यानमें रखनेकी है कि श्रीराधा सच्चिदानन्दघन दिव्य प्रेमरस-विग्रह भगवान् श्रीकृष्णसे अभिन्न स्वरूपा हैं। श्रीराधिका तापनीयोपनिषद् में आया है –

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्। देहो यथा छायया शोभमानः।'

श्रीराधाजी और रससिन्धु श्रीकृष्णका देह एक है। केवल लीलाके लिये ये दो स्वरूपोंमें प्रकट हैं, जैसे शरीर अपनी छायासे सुशोभित हो।

पद्मपुराणमें देवर्षि नारदजीसे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं - ह

'दाहशक्तिर्यथा वह्नेस्तथैषा मम वल्लभा। अनया सह विच्छेदं क्षणमात्रं न विद्यते।।'

'अग्निमें जैसे दाहिका शक्ति है, वैसे ही प्रियतमा श्रीराधा हैं, उनके साथ क्षण मात्रके लिये भी मेरा विछोह संभव नहीं है।'

अतः ब्रजलीलामें श्रीराधाका पदार्पण तो तभी होता है जब पूर्वतया श्रीकृष्ण व्रजमण्डलमें आते हैं। गोलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अकेले इस भूतलपर अवतार ले ही नहीं सकते। उनके नित्य परिकर, नन्द, यशोदा, अग्रज बलराम, श्रीदाम, सुबल, तोष, किङ्कणी, वरूथप, सुदामादि उनके अभिन्न सखागण उनसे पृथक् रह ही नहीं सकते। पद्मपुराण पातालखण्डमें आता है -

'नित्याः सर्वाः इमा रुद्र यथाहं नित्यविग्रहः।
सखायः पितरो गोपा गावो वृन्दावने मम।।
सर्वमेतन्नित्यमेव चिदानन्दरसात्मकम्।
इदमानन्दकन्दाख्यं विद्धि वृन्दावनं मम।।'

तात्पर्य है कि भगवान् श्रीकृष्णके ये सभी अङ्ग हैं, उनके नित्यविग्रहके ये सभी अविभाज्य भाग हैं। अस्तु, जैसे श्रीराधाके भूतलपर आगमनके पूर्व श्रीकृष्णका आगमन परमावश्यक है, ठीक उसी प्रकार श्रीराधाके पूर्व ही उनके अग्रज भ्राता एवं श्रीकृष्णके नित्य सखा श्रीदामदादाका भी भूतलपर आगमन आवश्यक है। इसी हेतुसे श्रीवृषभानुजीमें भगवती योगमाया लीला-महाशक्ति पुत्रेषणा जागृत् कराती हैं। इसी प्रसङ्गको गर्गसंहितामें वर्णित इस लीलाके प्रसङ्गमें भी देखें।

गर्गसंहितामें उल्लेख है कि द्वापर युगके अन्तमें दानव, दैत्य एवं आसुर स्वभावके दुष्ट राजाओंके भारी कर्मभारसे जब पृथ्वी अत्यन्त पीड़ित हो जाती है तो वह अपनी आन्तरिक व्यथा ब्रह्माजीके सम्मुख व्यक्त करती है। उस समय उसका शरीर काँप रहा होता है। ब्रह्माजी उसकी कष्ट-कथा सुनकर उसे देवताओंके साथ चतुर्भुज वैकुण्ठाधिपतिके पास ले जाते हैं और चतुर्भुज वैकुण्ठाधिपति उनको लेकर भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम गोलोक पहुँचते हैं। विशाल गोवर्धन नगराजके प्राङ्गणमें स्थित उस चिन्मय गोलोकमें उस समय वसन्तका उत्सव चल रहा होता है। वहाँ श्यामवर्णवाली यमुना नदी स्वच्छन्द गतिसे बह रही है। इस परम दिव्य निकुञ्जभूमि गोलोकको देखकर सभी देवगण चकित हो जाते हैं, वहाँ उन्हें हजार दलवाला एक कमल एवं उसपर सोलह दल एवं तब अष्टदलका एक कमल दिखता है। उसपर चमचमाते हुए ऊँचे सिंहासनपर जिसमें तीन सीढियाँ होती हैं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी प्रिया श्रीराधिकाजीके सहित विराजित होते हैं। ये युगल-रूप भगवान् श्रीकृष्ण अपनी आठ परम दिव्य सखियों और श्रीदामादि आठ गोपाल सखाओंसे समन्वित होते हैं। जब देवगण उनके सम्मुख अपना सङ्कट निवारण करनेकी प्रार्थना करते हैं तो भगवान् सभी देवताओंके सङ्कट-निवारणार्थ आश्वासन देते हैं और भूतलपर स्वयं अवतार लेनेकी रुचि प्रकटकर देवताओंको विदा कर देते हैं।

देवताओंके जानेके पश्चात् जब भगवान् निकुञ्जभवनमें अपनी प्रिया श्रीराधाके पास जाते हैं तो वे उन्हें वहाँ दावानलसे दग्ध लताकी तरह मूर्च्छित पाते हैं। उनकी क्षण-क्षणमें कभी अश्रु, कभी कम्प, कभी रोमाञ्चादिमयी सात्विक भावोंसे परिपूर्ण विलक्षण भावदशा देखकर भगवान् उन्हें गोदमें लेकर ढाढस दिलानेकी चेष्टा करते हैं। अनेक प्रयत्नोंके पश्चात् श्रीराधा स्वस्थ होती हैं एवं वे भगवान्से अपने हृदयके भाव निम्न प्रकारसे प्रकट करती हैं -

'प्राणवल्लभ ! जैसे कि आप मेरे सम्मुख ही देवसमाजमें पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माण्डमें अवतार लेनेकी बात कह रहे थे, आपकी रुचिका मैं निश्चय ही अनुमोदन करती हूँ। परन्तु जीवनसर्वस्व! इतना निश्चय ही सत्य मान लें कि मैं आपके वियोगमें क्षणभर भी जीवित नहीं रह पाऊँगी। आपके इस निश्चयको सुननेभरसे मेरे प्राण अधरोंतक आगये हैं। आपके किसी भी ब्रह्माण्डमें अवतरित होते ही, साथ ही इस गोलोकधामका त्याग करते ही दूसरे ही क्षण आपके वियोगमें मेरे प्राण इस प्रकार उड़ जावेंगे, जैसे कपूरके कण उड़ जाते हैं।'

अपनी प्राणप्रियाकी ऐसी विषम दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें ढाढस देते हुए कहते हैं - 'प्राणवल्लभे ! तुम विषाद मत करो। मैं अकेला भूमंडलपर अवतरित नहीं होऊँगा। तुम भी मेरे साथ ही वहाँ अवतरित होओगी।'

श्रीराधाजीने कहा -'प्राणवल्लभ ! जहाँ वृन्दावन नहीं है, यमुना नहीं है, गोवर्धन पर्वत नहीं है, मेरे माता-पिता एवं बड़ा भाई श्रीदाम नहीं, जहाँ मेरी सखियाँ और छोटी बहिन मञ्जुश्यामा नहीं होगी, वहाँ भला मेरे मनको कैसे सुख मिल सकता है ?'

अपनी प्रियाकी भोली उक्ति सुनकर रसिक-शिरोमणि प्रियतम मुसकाने लगते हैं। वे तत्क्षण ही अपने गोलोकधामसे चौरासी कोसकी ब्रजभूमि, गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीको, अपने सभी ब्रजमंडलके परिकरों, यहाँतक कि पशु-पक्षियों एवं भृङ्ग-कीट-समुदायतकको भूतलपर भेजनेका सङ्कल्प कर लेते हैं।

तात्पर्य इतना ही है कि भूतलपर सुचन्द्र गोपकी तपस्या, उनकी वरप्राप्ति, ये सभी सूत्रधारिणी भगवती महादेवी लीला-सङ्घटनकर्त्री योगमायाके ही रङ्गमञ्चके परदे हैं, जो अनादि रसमयी श्रीराधामाधवकी इस भूतलपर होनेवाली लीलाके अवतरण हेतु उठाये-गिराये जाते हैं। जब श्रीराधाको वृषभानुराजदुहिताके रूपमें भूतलपर आना ही है तो उनके नित्यलोकके लीला-परिकर - अग्रज भ्राता श्रीदामका भी अवतरण अवश्यंभावी है। जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी ब्रजलीला रोहिणीनन्दन अग्रज बलरामजीके बिना असंभव है, वैसे ही श्रीराधाकी समूची लीलामें श्रीदामदादाका होना भी उतना ही परमावश्यक है। यही कारण है कि श्रीवृषभानुजीके मनमें भगवती योगमाया महाशक्ति पुत्रेषणावृत्ति जागृत् कर देती है। प्रथमतया लीला-सूत्रधारके रूपमें मञ्चपर श्रीदामदादा प्रकट होते हैं, तभी उनकी अनुगामिनी होकर श्रीराधाका पदार्पण होता है।

जिज्ञासा

'आदर्श रखें हम जिसे प्रजा अपनाकर सुखी बने, प्रियतम !'-उक्त पङ्क्तियोंका कृपया खुलासा करें।

समाधान

शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंमें ऐसी उक्तियाँ हैं जैसे, ***'यथा राजा तथा प्रजा'***, ***'महाजनो येन गतः स पन्थाः'*** आदि। सर्वसाधारणकी दृष्टि सदैव अपने राजा एवं राज्यमें रहनेवाले महापुरुषोंकी ओर ही लगी रहती है। अतः प्रजा प्रायः राजाके कार्योंका, उसके आचरणोंका अनुगमन करती है। राजा शासनके द्वारा भी प्रजाको धर्मकार्योंमें प्रवृत्त करता है।

प्रजाजनोंमें राजाका स्थान अन्यतम होता है। प्रजा सदैव सर्वप्रकारसे धर्मात्मा राजासे रक्षित होती है। प्रजा श्रद्धावश सोचती है - राजा पूर्ण है, सर्वज्ञान, सर्वशक्तिसमन्वित है, वह सर्वकर्त्ता है, राजाकी विद्वत्सभामें, धर्मसभामें उच्च कोटिके विद्वान्, धर्मात्मा, धर्मरहस्यविद् भी होते हैं, अतः प्रजा राजाको विज्ञानशक्तिसमन्वित भी मानती है। अतिशय श्रद्धावश प्रजा ऐसा ही मानती है मानो राजा असंभवको भी संभव कर सकता है। फिर यदि राजा पूर्ण धर्माचरण करनेवाला भगवद्भक्तिवान् हो, फिर तो प्रजा राजाकी इच्छासे एकात्मता कर लेती है। वह अपने राजाको सर्वमान्यता देकर सत्कार और पूजा करने लगती है।

राजा प्रजाजनोंमें सत्कर्मशील कर्त्तव्य-परायण लोगोंको पुरस्कृत करता है, एवं अत्याचारपरायण, पापी, आसुरभावापन्न दुष्टोंको दण्ड देकर ***'हतारिगतिदायक'*** स्वभावसे प्रजाकी रक्षा करता है। वह प्रजाका शोषण करनेवाले दूसरे अधार्मिक राजाओंतकको अपने सैन्यबल एवं शौर्यसे परास्तकर धर्मकी शिक्षा देता है; उत्पीड़ित ऋषि-मुनियों एवं भजनवञ्चित सत्पुरुषोंका परित्राण करता है। इस प्रकार राजा ही अधर्मके अभ्युत्थानमें हेतुरूप पापियोंका वधके व्याजसे उद्धार करता है। वह वर्णाश्रमधर्म तथा गो-ब्राह्मण साधुके संरक्षणरूप निर्मल धर्मका संस्थापन करता है, जिससे मर्त्यजगत्का ही नहीं, देवजगत्का भी कल्याण होता है। राजाके कार्य अनेकमुखी होते हैं। वह सभी प्रजाजनोंको उन-उनके क्षेत्रमें सन्मार्गपर लानेका उपाय करता है। वह उच्च शिक्षाके लिये विद्यालय स्थापित करता है, विज्ञानशालाएँ निर्माण कराता है, विदेशोंसे जो भी उन्नत तकनीक होती है, उसे आयात करता है। राजा सर्वभूतसुहृद् होकर प्रजाजनोंकी अनुपालना करता है।

राजा जहाँ जो भी कार्य करता है, पूर्णतम अनुभवी पुरुषके रूपमें ही करता है। वह साहित्य, संगीत, विज्ञान, सद्ज्ञान, धर्म, नीति, आचार, कर्म, योग, भक्तिमें, तथा चौंसठ कलाओंमें अपनी चतुरता एवं विज्ञता सिद्ध करता है। परन्तु वह कला एवं कलाविदोंका उपयोग भोगके लिये नहीं, प्रजाजन-कल्याण और उनके आनन्दाभिवर्धनके लिये करता है। राजा मित्रधर्मका पालन करता है, उत्कृष्ट वाग्मितागुण-सम्पन्न होता है, उसकी राज्यसभामें बड़े-बूढ़े, अनुभवी, ज्ञानी, श्रोत्रिय, पण्डित, विद्वान, सभी रहते हैं, परन्तु वे सभी भी राजाकी सूझ-बूझकी सराहना करते हैं।

राजाके आदर्श गुण हैं – वह न कभी हर्षित हो, न ही विषादित। वह न तो मान-सम्मानमें फूले और न ही अपमानसे घबड़ावे। उसके लिये ऊँच-नीच कार्य कुछ भी नहीं हो। प्रजाके बड़े-बूढे, ज्ञानी-विज्ञानी, ऋषि-मुनि एवं गुरुजन भी उसकी राजाके रूपमें पूजा करें तो वह स्वीकार करे, किन्तु उसे यदि यज्ञादिमें नीच चाण्डालोंतकके चरण धोनेकी भी सेवा करनी पड़े तो भी वह निस्सङ्कोच करे। वह समागत अतिथि-अभ्यागतोंके चरण दबावे, ब्राह्मणोंको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे। वह समरनीतिका कूटनीतिसे पालन करे, किन्तु मैत्रीके समय पूर्ण क्षमाशील हो।

राजाका छोटे-से-छोटा चरित्र भी आदर्श, स्मरणीय, मननीय और जीवनमें उतारने लायक होना चाहिये। राजाको हँसने-बोलने, उठने-बैठने, हँसी-मजाकमें भी सदैव लोकसंग्रहके अनुरूप ही आचरण करनेवाला होना चाहिये।

वृषभानुजी द्वारा अपनी सहधर्मिणीके सम्मुख कही गयी उपरोक्त पङ्क्तियाँ प्रवृत्तिपरायण भगवद्भक्तकी रहनीका अपनी प्रजाके सम्मुख एक आदर्श समुपस्थित रखनेके भावसे कही गयी हैं जिससे राजाकी आदर्श रहनी देख-देखकर प्रजा पूर्ण सुखी, निर्भय हो।

इस निश्चय को लेकर उनने कुछ मास बिताये थे, प्रियतम।
आयी जब रात सदाशिव की उस बार शिशिर ऋतु में, प्रियतम।
आदर से दम्पति ने ली थी दीक्षा सद्गुरु ऋषि से, प्रियतम।।
निगमागमसम्मत ली शिक्षा आराधन-पद्धति की, प्रियतम।।२५।।

इस निश्चयको लिए हुए महाराज-महारानी दोनोंने ही शान्तिपूर्वक कुछ महीने बिता दिए। इसके पश्चात् शिशिर ऋतुमें, जब भगवान् सदाशिवकी महाशिवरात्रिका पर्व लगा, तब उस रात्रिमें ही उन पवित्र दम्पतीने अपने सद्गुरु ऋषिसे विधिवत् दीक्षा ले ली। साथ ही आराधन-पद्धतिकी निगम एवं आगमसम्मत जो शिक्षा होती है, उसे भी गुरुदेवने पूरा-पूरा बतला दिया।।२५।।

जिज्ञासा

कृपया यह स्पष्ट करें कि महाराजके कुलगुरु कौन थें, एवं उन्होंने महाशिवरात्रिके समय ही यह दीक्षा क्यों ली ?

समाधान

महाशिवरात्रिकी पावनतम महानिशा ही वह काल है, जिस कालमें भगवान् शिव परमात्मा एवं अनादिशक्ति जगन्माता मिलित होते हैं, एकत्वयुक्त हो जाते हैं। वस्तुतः भगवान् शिव परमात्मा यदि शक्तिसहित होते हैं, तभी सृजन, पालन एवं संहारादि करनेमें समर्थ होते हैं। यदि ऐसा नहीं हो तो अपने नेत्र हिलानेकी भी सामर्थ्य कहीं भी, किसीमें भी, कदापि नहीं हो।

शिवः शक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्तःप्रभवितुम्।
न चेदेयं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।। (सौन्दर्यलहरी)

अतः आगम शास्त्रोंकी परमाराध्या भगवती महादेवी पराभट्टारिका योगमाया त्रिपुरा शिव-शक्ति-अभेदरूपा हैं, वे अशुद्ध (तमोगुण-रजोगुण), मिश्र (तमोगुण-रजोगुणप्रधान एवं सत्वाभास मिश्र) शुद्धोपासनात्मिका (अप्राकृत विशुद्ध सत्त्वमयी) हैं। वे समरसीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूप निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली हैं। वे सर्वतत्त्वात्मिका हैं, अतः इस महानिशामें ही इनकी दीक्षाका औचित्य भी है।

महाशिवरात्रिको निरुपाधिक पूर्णज्ञाननिशा (केवला निशा) कहें, अथवा सोपाधिक उल्लास-निशा कहें, दोनों ही कथन युक्तिसङ्गत हैं। इस महानिशामें ही भगवती महादेवी पार्वती (कामेश्वरी)के उल्लासरूप सान्निध्यसे ही भगवान् शिवकी शिवता स्फुरित होती है। यह महानिशा ही वह महासंध्या भी है जब ब्रह्मशक्ति महादेवी राजराजेश्वरी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, श्रीराधा,सीता, पार्वती आदि नामोंसे विख्यात हुईं, स्वशक्ति-विलासके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र एवं सदाशिव - पाँच नामोंको प्राप्तकर अपनी वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, इन्द्राणी एवं पार्वती आदि तत्तत् शक्तियोंके सान्निध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, विग्रह एवं अनुग्रहरूप पञ्चकृत्योंका सम्पादन करनेको उन्मिषित होती हैं। यह महानिशा युगपत् विरुद्धधर्मप्रतिपादिका है। क्योंकि इसी निशाको ब्रह्मादि देव अपनी वामादि शक्तियोंसे विरहित भी होते हैं, और सर्व कार्योंमें अक्षम हुए पञ्चप्रेत बन जाते हैं। तब यह निशा महाप्रलयनिशा हो जाती है।

सृष्टि-उद्भव-निशा एवं सृष्टि-प्रलय-निशा दोनों रूपोंकी प्रकाशिका होनेसे यह महानिशा अपूर्व है। सृजनकी आदिनिशा होनेसे इस महारात्रिमें ही निम्न छत्तीस तत्त्व प्रकट होते हैं। इनके नाम क्रमशः दिये जा रहे हैं -(१) शिवतत्त्व, (२) शक्तितत्त्व, (३) सदाशिवतत्त्व, (४) ईश्वरतत्त्व, (५) शुद्धविद्यातत्त्व, (६) माया, (७) काल, (८) कला, (९) विद्या, (१०) नियति, (११) राग, (१२) पुरुष, (१३) प्रकृति, (१४) बुद्धि, (१५) अहंकार, (१६) मन, (१७) श्रोत्र, (१८) त्वक्, (१९)चक्षु, (२०) जिह्वा, (२१)नासिका, (२२) वाक्, (२३) पाणि, (२४) पाद, (२५) पायु, (२६) उपस्थ, (२७) शब्द (२८) स्पर्श, (२९)रूप, (३०) रस, (३१) गन्ध, (३२) आकाश, (३३) वायु, (३४) अग्नि, (३५) जल, एवं (३६) पृथ्वी।

यह महानिशा उन महायोगमायाका स्वरूप ही है जिनके एक हाथमें इन छत्तीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति एवं पालन करनेके लिये रागरूप पाश हैं और इन सबको अपनेमें लीन कर लेनेके लिये उनके ही दूसरे हाथमें द्वेषरूप अङ्कुश है। यह महानिशास्वरूपा महामाया इच्छाशक्तिरूप पाश एवं ज्ञानशक्तिरूप अङ्कुश लेकर सदाशिवकी गोदमें विलास (महाक्रिया) करती रहती हैं।

इसलिये इन महादेवीकी उपासना-दीक्षाके लिये महाशिवरात्रि ही सर्वोत्तम मुहूर्त्त माना गया है।

जिज्ञासाके प्रथम प्रश्नका उत्तर यही है कि महाराज वृषभानु नृपतिको भगवतीकी दीक्षा देनेवाले उनके कुलगुरु महर्षि भागुरि थे। भगवतीके द्वादश आचार्यों द्वारा निर्धारित जो विद्याएँ हैं उनमें महर्षि भागुरिके पास यह विद्या भगवान् सूर्यदेवसे आयी थी। भगवान् सूर्यदेवके आदेशसे ही वृषभानुवंशमें भगवती महामायाकी उपासना प्रारंभ हुई थी और उनके राजमहलमें भगवान् सूर्यदेव द्वारा ही स्वयंभू स्वर्णमयी प्रतिमा पूर्ण जागृत् थी और वृषभानु नृपति ही उनके वंशमें प्रथम ऐसे राजा हुए जिन्होंने इनकी सविधि अर्चनाका जीवनव्यापी व्रत लिया था। उनके पूर्व महर्षि भागुरि आदि ब्राह्मण कुलगुरु ही उनकी पूजा किया करते थे।

हरिशयनी निशा मनोहर थी, अर्चन आरम्भ हुआ, प्रियतम!
थी त्रिपुरसुन्दरी की प्रतिमा प्रासाद कक्ष में ही, प्रियतम!
अद्भुत सुवर्ण से विरचित थी, फिर था प्रभाव ऐसा, प्रियतम!
हो जाता नमित स्वतः सबका सिर मन्दिर-परिसर में, प्रियतम ॥२६॥

इसके अनन्तर अब हरिशयनी निशा आयी और श्रीमहादेवीका अर्चन आरम्भ हुआ। श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीकी एक बड़ी सुन्दर प्रतिमा प्रासाद-कक्षमें ही थी। अद्भुत सुवर्णसे बनी हुई थी वह प्रतिमा। उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव था कि जो व्यक्ति मन्दिर-परिसरमें आ जाता, उसका सिर अपने आप देवीके चरण-सरोजमें नमित हो जाता था।।२६।।

हो कहीं चित्त की वृत्ति, किंतु आते ही सीमा में, प्रियतम !
चाहे कोई कैसा भी हो, भावित होता सहसा, प्रियतम !
विस्मृत सब कुछ होकर समाधि मानो लग जाती थी, प्रियतम !
प्रहरी ही होश कराता यह कहकर 'दर्शन कर लो' प्रियतम ।।२७।।

कोई भी क्यों न हो, उसके चित्तकी वृत्ति कहीं भी क्यों न लगी हो, किन्तु यदि वह मन्दिरकी सीमामें आ जाता तो वह सहसा एक अनिर्वचनीय भावसे भाविल हो ही जाता। उसे सब-कुछकी विस्मृति हो ही जाती, मानो वह एक विचित्र समाधिमें अवस्थित हो गया हो। मन्दिरका प्रहरी ही उसके समीप आकर उसे होश कराता था, यह कहकर-''महाशय ! मन्दिरमें जाइये, दर्शन कर लीजिये।''।।२७।।

लेकर अञ्जलि में पुष्प, तथा पङ्किल लोचन से, हे प्रियतम !
जाकर जब अर्पित कर देता अपने को श्रीपद में, प्रियतम !
होता था भान तभी उसको अग्रिम कर्तव्यों का, प्रियतम !
के अहो ! न जाने कब से थीं राजित देवी कुल की, प्रियतम ।।२८।।

वह व्यक्ति अञ्जलिमें पुष्प भर लेता, उसकी आँख गीली हो जातीं, और वह बरबस मन्दिरमें जाकर अपने आपको महादेवीके चरणोंमें समर्पित कर देता। तब कहीं जाकर उसे ज्ञान होता कि उसे अब आगे क्या करना है। अहो ! वे राजकुलदेवी वहाँ कबसे विराजित थीं, कौन जाने !।।२८।।

जिज्ञासा

कृपया वृषभानुवंशकी कुलदेवी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका विस्तृत परिचय दीजिये। उत्तर भारतमें तो इनकी पूजाका प्रचलन बहुत ही कम है। यहाँ जन-जनमें दुर्गा, काली, कात्यायनी आदिकी ही पूजाका प्रचलन है।

समाधान

यह सत्य है कि वर्त्तमानमें उत्तर भारतमें भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी आगम-शास्त्रीय पूजाका प्रचलन बहुत ही न्यून है। दक्षिण भारतमें इनकी पूजाका प्रचलन वर्त्तमानमें भी है। आदिशंकराचार्य स्वामीको इनका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था और उन्होंने अपने सभी पीठोंमें इनकी पूजा आवश्यक रूपसे करनेका विधान किया हुआ है। ये ब्रह्मशक्तिके रूपमें विख्यात हैं।

भगवतीका स्वरूप और उनके आयुध

भगवती त्रिपुरसुन्दरी जो कामेश्वरी, राजराजेश्वरी, ललिता, भुवनेश्वरी, षोडशी आदि नामोंसे विख्यात हैं, चतुर्भुजा हैं। ये अपनी चारों भुजाओंमें पाश, अङ्कुश, इक्षुधनुष, और पाँच पुष्पबाणोंके आयुध धारण किये रहती हैं। भावोपनिषद्के अनुसार छत्तीस तत्त्वोंमें 'राग' ही इनका पाश-आयुध है। छत्तीस तत्त्वोंके नाम पूर्वतः दिये जा चुके हैं। इन्हीं छत्तीस तत्त्वोंमें से द्वेष, वैराग्य ही इनका अङ्कुश नामक आयुध है। सङ्कल्प-विकल्पात्मिका वृत्तिरूप मन ही भगवतीका इक्षुधनुष

है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक पाँच तन्मात्राएँ ही भगवतीके हाथमें पाँच पुष्पबाण हैं। चतु:शतीमें इन आयुधोंका इस प्रकार वर्णन है -

इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशज्ञानरूपिणम्।
क्रियाशक्तिमयं बाणाः धनुषदधदुज्ज्वलम्।।

पाश - इच्छाशक्ति, अङ्कुश - ज्ञानशक्ति एवं बाण और धनुष – क्रियाशक्तिरूप हैं। तत्त्वरूपमें विचारा जाय तो दोनों ही वर्णन एकार्थक हैं। क्योंकि इच्छाशक्तिमें राग निहित है, ज्ञानशक्तिमें वैराग्य निहित है एवं क्रियाशक्ति ही सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन और पञ्च-तन्मात्रा रूपा है।

वस्तुतः सर्वव्यापक आह्लादमयी चित्शक्ति ही भगवती त्रिपुरसुन्दरीका स्वरूप है। इनकी बाह्य पूजा अनेक विधियोंसे अनेक पद्धतियोंमें वर्णित है, किन्तु इनकी ज्ञानमयी रहस्य-पूजा ही विचारणीय है।

महादेवीकी पूजा

पूर्ण, परिपूर्ण, सर्वव्यापक,सच्चिन्मयाह्लादमयी भगवतीकी स्वमहिमामें प्रतिष्ठा ही भगवतीको आसन प्रदान करना है। वियत्, व्योम, तेज, रस एवं गन्ध - इन स्थूल नाम-रूपात्मक मलोंको, जो चिदाह्लादमयी भगवतीके चरणोंमें संलग्न प्रतीत हो रहे हैं, इन्हें सच्चिदानन्दैक भावनारूप-जलसे प्रक्षालन करना ही इन्हें पाद्यार्पण करना है। भगवती चिच्छक्तिके करोंमें सूक्ष्म नामरूपात्मक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि मलोंका जो अस्तित्व प्रतीत हो रहा है, उसे सच्चिदानन्दैकरूप भावनाजलसे प्रक्षालन करना ही उन्हें अर्घ्य प्रदान करना है। सच्चिदानन्द-भावनाका यह कवलीकरण है।

चिदानन्दमयी भगवतीमें जो अखिल अवयव-अवच्छेद, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियाँ आदि संलग्न प्रतीत हो रहे हैं, इन्हें विशुद्ध सत्त्व, चित्त्व एवं आनन्दत्वरूपी भावना-जलसे सम्पर्कित करना ही भगवतीका स्नान है। उक्त अवयवोंमें प्रसक्त भावनात्मक वृत्ति-विषयताकी वृत्तिका अविषयत्व-भावनारूपी वस्त्रसे प्रोञ्छन ही भगवतीका देहप्रोञ्छन है। निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अजरत्व, अशोकत्व, अमृतत्व आदि अनेक धर्मरूप आभरणोंमें धर्मीसे अभेदभावना करना ही आभरणार्पण है। स्वशरीरघटकोंसे पार्थिव भावोंकी जड़ता हटाते हुए उनमें चिन्मात्रभावना करना ही गन्धविलेपन है। इसी तरह स्वशरीरघटकोंके आकाश भागोंकी चिन्मात्र-भावना करना ही धूपार्पण है। तेजस् भागोंकी चिन्मात्रभावना करना नैवेद्य अर्पण करना है। षोडशान्त•इन्दुमण्डलकी चिन्मात्रताभावना करना ही ताम्बूल अर्पण है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी आदि निखिल वाणीका नादरूपसे परात्पर परब्रह्ममें उपसंहार करनेकी भावना ही भगवतीकी स्तुति करना है। विषयोंकी ओर दौड़नेवाली चित्तवृत्तियोंका विषयजड़ता-निरसनपूर्वक ब्रह्मशक्तिमें विलय करना ही प्रदक्षिणीकरण है। चित्तवृत्तियोंको विषयोंसे परावर्त्तितकर ब्रह्मैकप्रवण करना ही प्रणाम करना है।

यह अत्यन्त संक्षेपमें भगवती पराम्बाकी पूजाका दिग्दर्शन है।

महादेवीके दर्शन

भक्तोंकी उपासनाके फलीभूत होनेपर भगवती अपने स्थूलरूपमें भक्तोंको प्रत्यक्ष होती है। सगुण साकार रूपमें ही भगवान् आदिशंकराचार्यके सम्मुख भगवती कर-चरणादि अवयवोंसे भूषित निरतिशय सुन्दर विग्रह धारणकर प्रकट हुई थीं। वृषभानु-प्रासादान्तर्गत भगवतीके मन्दिरमें भी उनकी स्वर्णमयी जागृत् प्रतिमा निरतिशय सुन्दर कर-चरणादि अङ्ग-अवयव-संयुक्त ही विराजित थी। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं उनके भी गुरुदेव महाप्रभु पोद्दार महाराजको भी इन भगवतीके लोकोत्तर आह्लादक महातेजोराशिसमन्वित रूपका दर्शन-साक्षात्कार हुआ था। यह रहस्य स्वयं श्रीपोद्दार महाराजने अपने मुखसे लेखकके सम्मुख सन् १९६०ई. में स्वीकार किया है।

पू.गुरुदेव जब भगवतीके परम निराविल, सुकोमलतम चरणोंको संस्पर्श करने लगे तो उन्हें अपने शरीरकी पार्थिव अपवित्रताका ध्यान हो आया। वे उसी प्रकार सङ्कोचमें भर उठे जैसे कोई मलिन शूकर परम पवित्र देव-प्रतिमाका

संस्पर्श करे। उनका यह सङ्कोच देखकर भगवती मुसकायीं। तत्पश्चात् पू.गुरुदेवका समग्र शरीर ही परम दिव्य हो गया और तब उस चिन्मय पूजनयोग्य शरीर द्वारा परम दिव्य उपचारोंसे उन्होंने भगवतीका पूजन सम्पन्न किया।

भगवतीके दस अवतार

इन्हीं भगवती त्रिपुरसुन्दरीके कराङ्गुलि-नखोंकी ज्योतिसे ही ये पराम्बा दस महाविद्याओंके रूपमें भी प्रादुर्भूत होती हैं। काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी एवं कमला – ये दस महाविद्याएँ ही भगवान्के दस अवतारोंके रूपमें भी अवतरित हुई हैं, ऐसा आगम शास्त्रोंमें वर्णित है। भगवती कालीसे कृष्णावतार, तारासे रामावतार, छिन्नमस्तासे नृसिंहावतार, भुवनेश्वरीसे वामनावतार, बगलामुखीसे कूर्मावतार, धूमावतीसे मत्स्यावतार, त्रिपुरा षोडशीसे परशुरामावतार, त्रिपुरभैरवीसे बलरामजीका अवतार, कमलासे बुद्धावतार एवं दुर्गासे त्रितापनाशी कल्कि-अवतार होना शास्त्र मानते हैं।

महादेवीका वासनात्मक वर्ण

निरुपाधिक कहनेसे केवलत्व और सदानन्दपूर्ण कहनेसे धर्म-विशिष्टत्वकी प्रतीति होती है। किन्तु गहन विचारसे यह स्पष्ट होता है कि विशिष्ट एवं केवल अवयव-अवयवीके समान अयुतसिद्ध हैं। इनका परस्पर तादात्म्य-सम्बन्ध ही हो सकता है। इनमें भेद-घटित संयोगादि-सम्बन्ध तो संभव ही नहीं। प्रकृतमें भगवान् कामेश्वर एवं भगवती कामेश्वरी अथवा त्रिपुरसुन्दरेश्वर एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरीमें विग्रहात्मक दोनों स्थूल रूपोंका सम्बन्ध, भगवान् कामेश्वरके अङ्कमें कामेश्वरीके विराजमान होनेमें ही पर्यवसित है। स्थूल-दृष्टिसे तो यह भेद-सम्बन्ध ही प्रतीत होता है, परन्तु रहस्य-दृष्टिसे यह सम्बन्ध शिवशक्ति-सामरस्यात्मक ही है। श्रीराधाकृष्ण गोलोकेश्वर एवं गोलोकेश्वरी अथवा नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरी कञ्चनद्युति एवं नीलमेघवर्ण हैं, वैसे ही भगवती कामेश्वर-कामेश्वरीके रक्तवर्णका ध्यान किया जाता है। सभी भगवत्प्राप्त सन्तोंकी एक ही मान्यता है कि सत्य परतत्व एकमेव अद्वितीय है एवं भगवान् कामेश्वर-कामेश्वरी भगवान् राधाकृष्णके ही ऐश्वर स्वरूप हैं। असीम प्रेमका अथवा मदीयात्मक अनुभूतिका असीम प्रकाश जैसा श्रीराधाकृष्णमें है, वैसा ही असीम कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् सामर्थ्यपूर्ण प्रकाश ऐश्वर्यावतार भगवती कामेश्वरीमें है। वैसे तो भगवती त्रिपुरसुन्दरीके तत्वकी गूढ़ रहस्यात्मक अभिसन्धिको उनके सिवाय दूसरा कोई जाने, यह सर्वथा असंभव ही है।

महादेवीका मंत्रात्मक स्वरूप

पराभट्टारिका भगवती महात्रिपुरसुन्दरीका षोडशाक्षरी अथवा पञ्चदशाक्षरी मंत्र भी भगवतीका साक्षात् स्वरूप ही माना जाता है।

षोडशाक्षरी मंत्रके प्रथम कूटके छः वर्ण अथवा पञ्चदशी मंत्रके प्रथम कूटके पाँच वर्ण इनका मुखकमल, द्वितीय मध्यकूट इनका कण्ठके नीचेका कटिपर्यन्त भाग और तृतीय शक्तिकूट इनका कटिसे नीचे चरणतकका भाग है।

श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा।
कण्ठाधःकटिपर्यंत मध्यकूटस्वरूपिणी।।
शक्तिकूटैकतापन्न कट्यधोभागधारिणी।
मूलमंत्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।। (श्रीललितासहस्रनाम स्तोत्रम्)

मंत्रमय देवताके मंत्रवर्णोंमें ही देवताके शरीर एवं अवयवोंकी कल्पना मंत्रद्रष्टा महासिद्ध ऋषियोंने की है। अतः यह मंत्रात्मक स्वरूप मंत्रध्वनिरूपमें श्रवणेन्द्रियसे तथा मंत्रोच्चारणरूपमें वागिन्द्रियसे गोचर होता है। जैसे सगुण साकार स्वरूप नेत्र, मन एवं पञ्चेन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार कर्णेन्द्रियों एवं वागिन्द्रियोंसे गोचर होनेके कारण

मंत्रमय स्वरूपको, देह-अवयवों-सहित रूपसे किसी भी प्रकार न्यून नहीं आँकना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते हैं, वे मंत्रपर अश्रद्धा होनेके फलस्वरूप मंत्रापराधी हो जाते हैं।

इसी प्रकार सर्व मंत्रोंका मूल-मातृका-सरस्वत्यात्मक अथवा भारती-विद्यारूप भी मंत्रात्मक- रूप कहा जाता है। जैसे उदाहरणरूपमें, स्वर एवं व्यञ्जनरूप पचास वर्णोंसे ही विश्वके सभी देवताओंके मंत्र निकले हैं, अतः इन वर्णोंको परदेवता पराम्बाका मंत्रात्मकरूप माना जाता है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा पूजा करते समय इन मातृकाओंसे अपने अङ्गोंमें न्यास करते थे। जैसे -

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं नमः शिरसि।
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः आं नमः मुखवृत्ते।
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः इं नमः दक्ष नेत्रे।
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ईं नमः वाम नेत्रे।

(विस्तारसहित देखें - महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा - तृतीय खण्ड न्यास-प्रकरणमें)

इस प्रकार न्यास करनेसे पू.गुरुदेव सर्वमंत्रमय और सृष्टिके सर्व देवतारूप होकर भगवतीकी पूजा करते थे।

भगवती पराम्बा त्रिपुरसुन्दरीका तीसरा रूप वासनात्मक है, जिसमें महामाया महादेवी नित्य अखण्ड एकरस निवास करती हैं। महापुण्यवान् साधकोंके लिये केवल मन-इन्द्रियोंसे ही यह गृहीत होता है। आगम शास्त्रोंमें कहा गया है - ***'चैतन्यमात्मनो रूपम्'*** – आनन्दोल्लास-स्वरूपिणी जगदम्बाका स्वात्मशक्ति-चैतन्य ही स्वरूप है। आत्मचैतन्यका अनुभव मन ही कर पाता है। अधिकारीभेदसे ये तीनों रूप ही साधकोंकी उपासनाके योग्य हैं। इनसे अतिरिक्त भगवतीका तुरीय रूप भी है जो वाक्, मन, आदि सभी इन्द्रियोंसे अतीत है, उसका केवल महासिद्ध मुक्त लोग ही अखण्ड अहंताके रूपमें अनुभव करते हैं। वह रूप अनन्तानन्त है।

गुरु, उपदेष्टा, मंत्र एवं स्वयं महादेवीमें एकात्मता

आत्मस्वरूपिणी भगवती श्रीविद्या ललिता, उसका मंत्र और उस मंत्रके उपदेष्टा महासिद्ध गुरु – इन तीनोंमें दृढ अभेद भावनाकी पूर्णता होना ही परम सिद्धिलाभ है। श्रीसुन्दरीतापनीयोपनिषद् में कहा गया है –

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः।
तथा मंत्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकाः।।

जैसे घट, कलश, एवं कुम्भ – ये तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं, वैसे ही देवता, मंत्र एवं गुरु – ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थके द्योतक हैं।

श्रीविद्याके बारह आचार्य (उपासक) प्रसिद्ध हैं – (१) भगवान् मनु (२) चन्द्रदेव (३) कुबेर (४) लोपामुद्रा (५) कामदेव (मन्मथ) (६) अगस्त्य (७) अग्नि (८) सूर्यदेव (९) इन्द्रदेव (१०) स्कन्द (११) शिव (१२) दुर्वासा (क्रोधभट्टारक मुनि)। इनमेंसे प्रत्येकका प्रथक्-प्रथक् संप्रदाय है। इस समय भारतवर्षमें मन्मथ कामदेवका कादि एवं भगवती लोपामुद्राका हादि सम्प्रदाय ही प्रचलित हैं। त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्डके अनुसार भगवान् मन्मथानन्दनाथने अपनी निर्व्याज आराधनासे भगवती पराम्बा त्रिपुरसुन्दरीसे अनेक दुर्लभतम वर प्राप्त किये और स्व-उपासित कामराजविद्याके उपासकोंके लिये भी बहुतसी सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। तबसे कामराजविद्याका प्राधान्य रहा।

कामराजविद्या ककारादि पञ्चदश एवं षोडश – दोनों ही वर्णात्मक है। इसीको कादि विद्या भी कहते हैं। तंत्रराज ग्रन्थमें भगवान् शिव महादेवीसे कहते हैं -' हे पार्वती ! कादि विद्या तुम्हारा स्वरूप ही है। ऐसी कोई भी सिद्धि नहीं है जो उससे प्राप्त नहीं की जा सके।' कादिविद्याका उद्धार अथर्वण त्रिपुरोपनिषद्में इस प्रकार है –

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादि विद्या।।ॐ।।

कामः (क) योनिः (ए) कमला (ई) वज्रपाणिः -इन्द्र (ल) गुहा (ह्रीं) (ह) (स) मातरिश्वा - वायु (क) अभ्र (ह) इन्द्र (ल) पुनः गुहा (ह्रीं) (स) (क) (ल) एवं माया (ह्रीं) यह पन्द्रह अक्षरोंकी सर्वात्मिका जगन्माताकी मूलविद्या है और यह ब्रह्मस्वरूपिणी है। इसका भावार्थ नीचे दिया जा रहा है -

भावार्थ

शिवशक्ति अभेदरूपा, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-गौरी-लक्ष्मीस्वरूपा, अशुद्ध-मिश्र- शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्पज्ञान देनेवाली सर्वतत्त्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी।

यह मंत्र सर्वमंत्रोंका मुकुटमणि है। इसका माहात्म्य अवर्णनीय है। मंत्रशास्त्रमें यह मंत्र पञ्चदशी, कादि श्रीविद्याके नामसे प्रसिद्ध है। नित्य षोडशिकार्णव ग्रन्थमें इसके विस्तारसे अनेक भेद बताये हैं। वरिवस्यारहस्य नामक ग्रन्थमें भी इसके विस्तृत अर्थ अवगम्य हैं। श्रुतियोंमें भी ये मंत्र क्वचित् स्वरूपोच्चार, क्वचित् लक्षणा, लक्षित-लक्षणासे और कहीं वर्णके पृथक्-पृथक् अवयव दरसाकर जान-बूझकर विशृङ्खलरूपसे कहे गये हैं। इससे यही सारार्थ निकलता है कि ये मंत्र परम गोपनीय और साधन-जगत्के अतिशय महत्वपूर्ण मंत्र हैं।

षोडशाक्षरी मंत्र इससे भी परम गुह्य है जोकि मात्र गुरुमुखसे परम्परासे प्राप्त होना संभव है।

भगवती लोपामुद्रा हादि विद्या हैं।

हादि विद्या भी पञ्चदश वर्णात्मिका है। भगवती कामेश्वरांकस्थिता महादेवीके पूजामंत्रोंमें हादि विद्या वर्तमानमें भी प्रचलित है। अवशिष्ट मनु चन्द्रादि दस विद्याएँ केवल 'आम्नाय पाठमें ही उल्लिखित हैं। इनका विशेष पूजाक्रम वर्तमानमें उपलब्ध नहीं है, न ही इनका कहीं कोई सम्प्रदाय भी वर्तमानमें शेष है।

श्रीविद्या ही त्रिपुरा हैं।

श्रीकामराजविद्याकी अधिष्ठात्री देवी 'श्रीविद्या'का ही नाम त्रिपुरा है। त्रिमूर्त्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा सरस्वती, लक्ष्मी एवं गौरीसे भी पुरा होनेसे ये त्रिपुरा हैं। ये ही पराद्याशक्ति पराम्बा हैं। ये गुणत्रयातीता हैं, त्रिगुणनियन्त्री शक्ति हैं, इसीलिये ये ब्रह्माणी, लक्ष्मी एवं पार्वतीकी भी आराध्या हैं। गौडपादीय सूत्रमें इन्हें **'तत्वत्रयेण भिदा'** कहा है। त्रिमूर्त्ति - ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशकी जननी होनेसे , त्रयी - ऋक्, यजुः एवं साम – त्रिवेदमयी होनेसे, साथ ही महाप्रलयकालमें त्रिलोकीको अपनेमें लीन कर लेनेसे जगदम्बा पराम्बा महादेवीका नाम त्रिपुरा अथवा त्रिपुरसुन्दरी हुआ है। नामकेश्वरतंत्रमें इनको ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति एवं क्रियाशक्तिस्वरूपिणी बताया है। इच्छाशक्ति इनका शिरोभाग है, ज्ञानशक्ति मध्यभाग एवं क्रियाशक्ति इनका अधोभाग है । शक्तित्रयात्मक होनेसे भी ये त्रिपुरा हैं।

भगवती त्रिपुरसुन्दरीका माहात्म्य

इन पराशक्तिका माहात्म्य अवर्णनीय है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् त्रिलोकेश्वर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी अभीतक इनका न तो पूर्ण रूप ही पहचानते – जानते हैं, न ही इनका धाम कहाँ है – इसका ही इनको ज्ञान हैं।

जैसे महाप्रस्थानके समय भगवान् श्रीकृष्णकी गति ब्रह्मा-ब्रह्माणी, शिव-पार्वती, भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी, इन्द्रादिके लिये भी अगम्य रही; वे भगवान् श्रीकृष्णका महाप्रस्थान देखनेको बहुत ही उत्सुकतासे वहाँ एकत्रित हुए, किन्तु जब भगवान्का स्वधामगमन हुआ तो न तो कोई उनके धामका अनुसंधान पा सका, और न ही उनकी गति ही जान सका। इसी प्रकार भगवती भी अविज्ञातगति हैं। जैसे अग्निकी ज्वाला प्रज्वलित अङ्गाररूपमें समष्टिमें आविर्भूत

होकर जब शान्त होती है, तो वह कहाँ गयी अथवा किसमें अन्तर्भूत है – यह ज्ञात नहीं होता, वैसे ही समस्त मातृमण्डल-संघट्टरूपिणी महाचैतन्यात्मिका श्रीविद्याका क्या स्वरूप है, वे कहाँसे कैसे आविर्भूत होती हैं, और किसमें अन्तर्भूत – यह किसीको ज्ञात नहीं है। युक्ति एवं तर्कका तो उनमें प्रवेश ही वर्जित है। ***'अहमस्मि'*** 'मैं हूँ' – इस प्रतीतिके सिवा उनकी उपलब्धिका दूसरा प्रमाण असंभव है। वेद, शास्त्र, तन्त्र, पुराण सभी इनके वर्णनमें असमर्थ हैं। 'वस्तुतः ये भगवती ऐसी हैं ' इस प्रकार वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसीमें भी संभव नहीं है । प्रत्यक्षादि प्रमाण तो प्रमेय मात्रका ही ग्रहण करते हैं, उन अप्रमेय-शक्तिस्वरूप तक तो उनकी पहुँच हो ही नहीं सकती। 'मैं हूँ' – इसी आह्लादमें वे सदैव निमग्न रहती हैं।

हाँ, शास्त्रोंमें इनके लीला-विग्रहोंका वर्णन है। इनके लीलाविग्रह भी अनन्त हैं और उनका माहात्म्य भी अनन्त ही है।

त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्डमें तथा ब्रह्माण्डपुराण-उत्तरखण्ड आदिमें इनके मुख्य लीलाविग्रहोंकी परिगणना इस प्रकार है।

(१) **कुमारी** – इन्द्रादि देवोंका गर्व-परिहार करनेके लिये भगवती कुमारी रूपमें प्रकट हुई थीं।

(२) **त्रिरूपा** – कारणपुरुष ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशको उनके अधिकृत सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कार्योंमें सहायता करनेके लिये भगवतीने वाणी, लक्ष्मी एवं रुद्राणी आदि शक्तियोंको अपने शरीरसे प्रकटकर उन तीनोंसे इनका विवाह कराया।

(३) **काली, चण्डिका, कात्यायनी एवं दुर्गा** – इन चारों अवतारोंकी कथा सप्तशतीमें आती है।

(४) **भारती एवं भगवती ललिता** – इनकी कथा त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्डमें वर्णित है। विस्तारभयसे यहाँ नहीं दी जा रही है। संक्षेपमें इतना ही जान लें कि भण्ड नामके असुरने भगवान् शिवसे अभय रूप वर प्राप्त कर लिया था। वह त्रिलोकाधिपति हो गया। इन्द्रादि देवताओंसे वह अपनी पालकी कहारोंकी तरह उठवाया करता था। उसने अपनी राजधानी शोणितपुरको मय दानव द्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवायी। उसका नाम उसने शून्यकपुर रक्खा। उसके भयसे इन्द्राणी भगवती गौरीके आश्रयमें कैलास चली गयी । उसने कैलास जाकर भगवती जगदम्बा गौरीसे इन्द्राणीकी माँग की। भगवान् गणेशजी अपने प्रमथ गणों सहित इसपर उससे युद्ध करने लगे। अपने पुत्रके सहायतार्थ भगवती गौरीको भी वृषभके वाहनमें बैठकर उससे युद्धार्थ आना पड़ा । भगवती उसका संहार करने जा ही रही थीं, इसी समय ब्रह्माजीने भगवान् शंकर द्वारा दिये हुए वरदानकी बात भगवतीसे कही, लाचार भगवती गौरीको उसे छोड़ना पड़ा।

अब देवोंने असहाय भगवती त्रिपुराकी शरण ली। देवगण माताकी स्तुति कर ही रहे थे उसी समय् यज्ञ-ज्वालाके मध्यसे महाघोर कराल शब्द-ध्वनि करती तेजस्विनी भगवती प्रकट हुईं। उन्होंने देवताओंसे विशेष तप करनेकी बात कही। देवगण तप करने लगे। इसी समय भण्डासुरने पुनः उनपर आक्रमण कर दिया। देवताओंने प्रार्थना करते-करते ही अपनेको यज्ञकुण्डमें होम दिया। देवोंको भस्मीभूत समझ वह असुर चला गया। इसके पश्चात् उस चिदग्निकुण्डसे तड़ित्प्रभासी भगवती त्रिपुरा प्रकट हुईं। जगन्माताने देवोंकी प्रार्थनापर सुमेरु पर्वत-स्थित श्रीमन्नगरमें रहना स्वीकार कर लिया। भगवान् विश्वकर्माने वहाँ श्रीपुरका निर्माण किया। फिर माता श्रीचक्रात्मक रथपर आरूढ़ हो भस्मासुरको मारने चली। भगवतीकी दो शक्तियाँ – मन्त्रिणी (राजमातङ्गी) एवं दण्डिनी (वाराही) और इतर अनेकों शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमसे दैत्य-सैन्यमें खलबली मचा दी। अन्तमें भगवतीने पाशुपतास्त्रका प्रयोगकर समस्त असुर-सैन्यको निर्दग्ध कर दिया। तब महाकामेश्वरास्त्रसे समस्त शून्यपुर एवं भण्डको उन्होंने उसके पुत्र-पौत्रोंसहित शून्यमें विलीन कर दिया। यह भगवती महादेवीका सामान्य-सा परिचय है। सामान्यतः 'श्री' शब्द लक्ष्मीके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है। परन्तु पुराणेतिहासोंमें वर्णित 'श्री' शब्दका मुख्यार्थ महात्रिपुरसुन्दरी देवी ही है।

महालक्ष्मीने भगवतीकी चिरकाल आराधनाकर जो अनेक वर प्राप्त किये थे, उनमें 'श्री' शब्दसे ख्यात होनेका भी उन्हें एक वर प्राप्त हुआ था। तबसे 'श्री' शब्दका अर्थ महालक्ष्मी होने लगा। मुख्यतया श्री नाम तो भगवती परमाद्याशक्ति महादेवीका ही है। इनकी प्रतिपादिका विद्या अथवा मन्त्र श्रीविद्या है। वाच्य-वाचकको अभेद मानकर इस मंत्रकी अधिष्ठात्री देवीको 'श्रीविद्या' कहा जाता है।

जिज्ञासा

महाराजा वृषभानुने हरिशयिनी निशाके दिनसे ही महादेवीका अर्चन क्यों प्रारंभ किया ? यह पूजा-मुहूर्त्त केवल शुभदिवस मानकर ही चयन किया गया अथवा इसके पीछे भी कोई आगम शास्त्रीय विधान निहित है ?

समाधान

निश्चय ही इस मुहूर्त्त-चयनका आगम शास्त्रीय महत्व है। हरिशयनी निशाके उपरान्त चार मासतक विश्वनियन्ता सभी देवसमुदाय शयन करता है। जिसे हम पृथ्वीके लोग दिन-रातकी गणनानुसार एक वर्ष कहते हैं, देवजगत्का वह काल पूरा एक दिन-रात होता है। वर्षमें आठ मास अर्थात् सोलह घंटे देवसमुदाय जागता रहता है और चार मास अर्थात् आठ घंटे वह सोता है।

वस्तुतः कालप्रवाहके ही दो रूप हैं – आरोहण एवं अवरोहण। जिस कालमें बन्धन क्रमशः क्षीण, क्षीणतर, क्षीणतम होता है, उसे कालका आरोहक्रम कहते हैं, एवं जिस कालमें बन्धन क्रमशः प्रगाढ होता है, उसे अवरोहक्रम कहा जाता है। जबतक देव जागृत् रहते हैं , वे सृष्टिको अवरोहक्रमकी ओर ही धकेलते रहते हैं।

कारण सुस्पष्ट है – देवता ही जीवोंकी इन्द्रियोंके अभिमानी हैं। सृष्टि-समुदायके सभी जीवोंको भोगोंसे मिले सुखको उन-उन इन्द्रियोंके अभिमानी होनेसे देवगण स्वयं भोगकर सुखी होते हैं। इसलिये सृष्टिको बहिर्मुखी बनाये रखनेमें ही देवगणोंकी रुचि रहती है। इस सृष्टिमें जब भी कोई अपनी इन्द्रियोंका समाहार करनेको तत्पर होता है, और उन्हें केन्द्रीभूत आत्मसत्तामें लीन करनेको प्रयत्नशील होता है तो इन्द्रियाभिमानी देवताओंको उसकी इन्द्रियोंके द्वारा मिलनेवाले भोगसुखकी सम्भावना ही समाप्त प्रतीत होने लगती है। अतः देवसमुदाय उस साधककी साधनामें विघ्न डालने और उसे इस प्रवृत्तिसे हटानेके लिये कटिबद्ध हो जाता है।

फिर महाराज वृषभानुजीने तो उन भगवती महादेवीकी दीक्षा ली थी जो तत्त्वातीत, प्रपञ्चातीत एवं व्यवहारपथके भी अतीत हैं। वाणी एवं मनसे अगोचर होनेसे जिन्हें निर्गुण, निराकार, निर्विशेष भी कहते हैं, किन्तु अप्राकृत गुणोंसे युक्त होनेसे एवं अप्राकृत आकारवाली होनेसे वे महादेवी सगुण एवं साकार भी हैं। इन महादेवीको निर्गुण, निराकार निर्विशेष ब्रह्म भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनमें विमर्श अन्तर्लीन है। इन्हें विशुद्ध विमर्श भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें स्वप्रकाशत्वभाव पूर्णरूपेण विद्यमान है। इसीलिये इस तत्वातीत और अनुत्तर वस्तुको आगम शास्त्र 'अ' कहता है। इसके उत्तर अथवा परे कुछ भी नहीं है, इसीलिये वह 'अ' है। 'अ'कार रूप प्रकाशके साथ 'ह'कार रूप विमर्शका सामरस्य ही शिव-शक्तिका साम्य है। 'अ' शिव है और 'ह' शक्ति है। विन्दुरूपमें यही परिपूर्ण 'अहं' है, जिसे पूर्णतम, परिपूर्णतम अहंता भी कहा जा सकता है। शिव-शक्तिका सामरस्य रूप महादेवी भगवती पराभट्टारिका त्रिपुरसुन्दरीका स्वरूप है । इनकी ही अर्चना, उपासना महाराजा वृषभानुजी करने जा रहे हैं।

ये भगवती ऐसी हैं जो ब्रह्मसे, ईश्वरसे, देवी-देवता, ऋषि-मुनि, जीव-समुदाय – सभीसे अतीत, पूर्णतया विलक्षण हैं। इन भगवतीके राज्यमें विराट एवं अल्प, लघु एवं महान्, ईश्वर एवं जीव, देव एवं असुर सबके भेद ही तिरोहित रहते हैं। एक सूक्ष्मतम कीट-भृङ्ग भी जहाँ अपने 'अहं'को अपना परम ममतास्पद, अपनेसे अपना, प्राणोंका मर्म मानता है, और अहंरूपा महादेवी पराभट्टारिका त्रिपुरा द्वारा पूर्णतया अपने वत्सवत् पाल्य है, उसी प्रकार इन 'अहं'रूपा

जगन्माताके वात्सल्यकी छाँहमें जीव-ईश्वर, ज्ञानी-अज्ञानी, महान्-क्षुद्र, रजोगुणी-तमोगुणी-सतोगुणी, विराट-अल्प – सभी भेद तिरोहित हैं । यहाँ दृष्टि एवं सृष्टि भी एकार्थबोधक ही हो जाती है।

इन महादेवीकी अर्चना-उपासना युवराज वृषभानु द्वारा निरापद एवं निर्विघ्न सुदीर्घकालतक चलती रहे एवं उसमें देवगणों द्वारा कोई भी व्यवधान अथवा विक्षेप समुपस्थित नहीं हो पावे, इसीलिये सभी महर्षियोंकी समवेत रायसे हरिशयनी निशामें ही महाराजसे भगवती महादेवीका अर्चनानुष्ठान प्रारंभ कराया गया। इस कालमें देवसमुदाय शयन कर जाता है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि देवसमाज तो मात्र चार माहके अल्पकालके लिये ही सोता है, चार माह पश्चात् कार्त्तिक मासमें तो देवसमुदाय जाग ही जाता है। फिर कालान्तरमें तो उसके द्वारा विक्षेपकी संभावनाएँ हो ही जाती हैं। यह अर्चना-व्रत मात्र माह-दो माहके लिये अल्पकालिक तो था ही नहीं, यह तो जीवनव्यापी अनुष्ठान था। फिर देवशयनीमें इसे प्रारंभ करानेकी सार्थकता कहाँ रहती है ?

इस शंकाका यही समाधान है कि भगवती महादेवीके अर्चनका, उनकी उपासनाका माहात्म्य ही ऐसा है कि एक बार उनकी अर्चना, उपासनामें कोई संलग्न भर हो जाय, उसका पूजन-अर्चन प्रारंभ भर हो जाय, उसके पश्चात् तो महादेवीके शरणागतकी ओर न किसी देवशक्तिको बाधा पहुँचानेका साहस होता है, न ही आसुरीशक्ति ही उसके सम्मुख आ पाती है। स्वयं भगवतीके शरणागतका तेज ही ऐसा प्रखर होता है कि बाधा देनेवाली सभी शक्तियाँ उसके सम्मुख नत हो जाती हैं।

जिज्ञासा

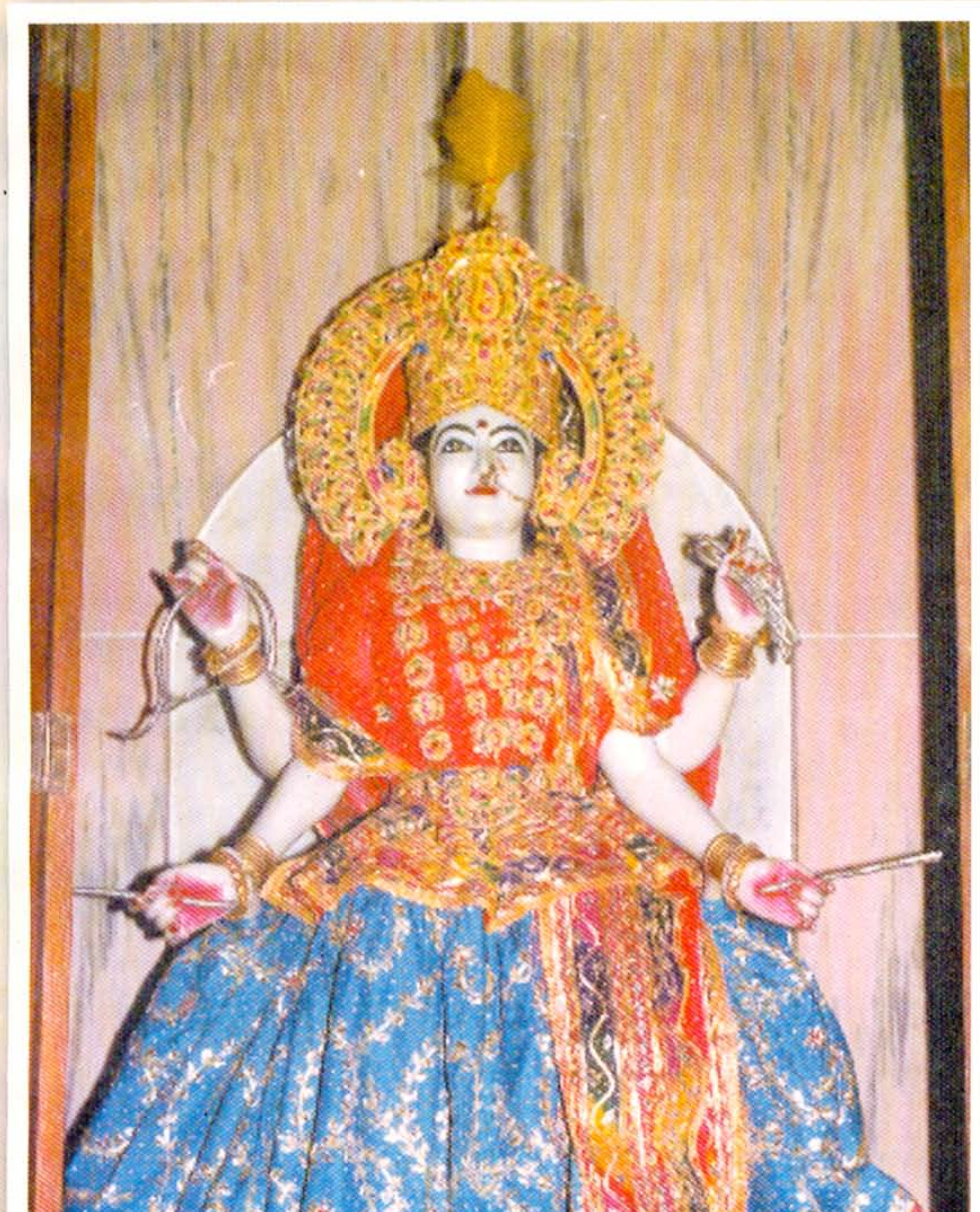
भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी प्रतिमा जो वृषभानु महाराजके प्रसादकक्षमें विराजित थी, वह अद्भुत सुवर्णकी विरचित क्यों थी ? क्या भगवतीकी प्रतिमाका अन्य धातुओंसे निर्माण करनेका शास्त्रीय निषेध है ? देवप्रतिमाओंके अष्टधातुसे निर्माणकी बात तो स्थापत्य शास्त्रोंमें सुननेमें आती है। फिर उसमें ऐसा प्रभाव क्यों था कि कोई मन्दिर परिसरमें ज्योंही प्रवेश भर करता, उसका मस्तक स्वतः ही उस प्रतिमाके सम्मुख झुक जाया करता था ? कृपया छन्द संख्या छब्बीस, सत्ताईस एवं अट्ठाईस- इन तीन छन्दोंपर विस्तारसे प्रकाश डालें।

समाधान

वृषभानुकुलमें भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी श्रीविद्याक्रमकी पूजा एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अद्भुत देवधातु-निर्मित चिन्मय जागृत् प्रतिमाकी स्थापना दोनों ही भगवान् सूर्यदेवकी कृपाके ही फल थे। उन्होंने ही इस कुलको कुलदेवीके रूपमें यह प्रतिमा एवं उसकी पूजा प्रदान की थी। महाराज वृषभानुमें तो भगवान् सूर्यदेवने अपना तेज भी निहित कर दिया था।

आगम शास्त्रोंमें भगवती महादेवीकी उपासना करनेवाले बारह सिद्ध आचार्योंका उल्लेख है। भगवान् सूर्यदेव भी उनमेंसे एक महासिद्ध आचार्य हैं। भगवान् सूर्यका श्रीविद्याक्रमका संप्रदाय है। यद्यपि वर्त्तमानमें सूर्य-विद्याका उल्लेख मात्र आम्नाय-पूजन-क्रममें ही आता है। यह सूर्य-सम्प्रदाय वर्तमान कालमें प्रचलित नहीं है, किन्तु द्वापरमें महाराज वृषभानुके कालमें महर्षि भागुरि आदि इस सम्प्रदायके निष्णात विज्ञ ब्राह्मण थे।

वृषभानुकुलमें जो भगवतीकी सिद्ध प्रतिमा स्थापित थी वह प्राकृत स्वर्णधातुकी नहीं थी, न ही वह किसी स्वर्णकार द्वारा घड़ी ही गयी थी। भगवतीका वर्ण बालरवि – उगते हुए सूर्यके समान शास्त्रोंमें कहा गया है। बालरवितेजकी स्रोतस्विनी होनेसे वह प्रतिमा देवधातु कुन्दनकी हो ऐसी आभासित तो अवश्य होती थी किन्तु वह प्राकृतजगतके स्वर्णसे कदापि नहीं बनी थी, वह तो अलौकिक चिन्मय एवं दिव्य थी। पू.गुरुदेवने मात्र उसकी विलक्षण कान्तिको शब्दावली



भगवती श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी (पृष्ठ १००)

देनेके लिये ही उसे अद्भुत स्वर्णसे निर्मित कहा है। पू.गुरुदेव द्वारा प्रयुक्त 'अद्भुत' शब्द उसकी अलौकिकताको प्रकाशित कर रहा है। जिस पदार्थकी वह प्रतिमा थी, उस धातुका प्राकृत जगत्की किसी भी धातुसे साम्य संभव ही नहीं है। इसीलिये उस अद्भुत पूर्ण जागृत् प्रतिमाकी तेजस्विता ऐसी असमोर्ध्व थी कि जो कोई भी मन्दिर-परिसरमें प्रवेश भर करता, उसका मस्तक वहाँ जाते ही बरबस विनत हो जाता था। यह पराभट्टारिकाका स्वरूप-तेज था जो सबको विनत कर देता था।

यहाँ यह समझनेकी बात है कि जिन पराभट्टारिका महादेवीके तेजके सम्मुख पातालके महान् पराक्रमी असुर, सुतल-वितल, अतल-तलातलके अति तेजस्वी दैत्य, परमोर्ध्व वैकुण्ठलोकतक के ईश्वरकोटिके विष्णु आदि देवगण, सिद्धलोक, जनलोक एवं सत्यलोककी समग्र सृष्टि ही हतप्रभ हुई सदैव मस्तक झुकाये वन्दना करती रहती है, सम्पूर्ण सृजनमें ही उनके असमोर्ध्व तेजसे सब हतप्रभ रहते हैं, रमा, पार्वती ब्रह्माणी एवं इन्द्राणी आदि देवियाँ जिनके एक रोमके चिन्मय तेजकी छाया पाकर तेजोमयी कहला रही हैं, उन महान् तेजोमयीकी सिद्ध प्रतिमाके अप्रतिहत तेजके सम्मुख मन्दिर-परिसरमें प्रवेश पाया एक वृषभानुपुरका गोप यदि नतमस्तक हो जाता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

इसी बातको और आगे बढाते हुए पू.गुरुदेव कहते हैं कि वस्तुतः भगवती पराभट्टारिका महादेवीकी उस अद्भुत प्रतिमासे निःसृत विशुद्ध सत्वपूर्ण तेजोराशिका प्रभाव असमोर्ध्व होनेका कारण यही है, क्योंकि उस अद्भुत चिन्मय विग्रहमें जड़ पदार्थका लेश भी नहीं है। इसीलिये उसका तेज विशुद्ध सत्वभरा अनन्त एवं असीम आत्मरूप है। इस चिन्मय लोहित आत्मतेजके प्रभावक्षेत्रमें मन्दिर-परिसरमें ज्योंही आगन्तुक आता है, चाहे वह कितना ही विषयोन्मुखी चित्तभूमिमें पड़ा हो, वह उस तेजोराशिकी विशुद्ध सात्विकतासे भर उठता है, आलोकित हो उठता है। यहाँ अनिर्वचनीय भावसे भावित हो उठनेका अर्थ यही है कि जहाँ मलिनचित्त प्राणी अपने आपको यहाँ परम शुद्ध अनुभव करता है वहीं मननशील मुनियोंका इस परिसरमें प्रवेश होते ही उनका पूर्ण समाधान हो जाता है, वे विगत-जिज्ञासा हो उठते हैं और उनके सभी प्रश्न स्वतः ही हल हो जाते हैं। यही दशा योगियोंकी होती है, उनकी चित्तवृत्ति पूर्ण निरुद्ध हो जाती है और उन्हें सभी योग-सिद्धियाँ उपलब्ध अनुभव होती हैं। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानमें लहराने लगते हैं।

यहाँ एक बात और ध्यानमें रखनेकी है कि प्रकृतिमें भगवान् सूर्यदेव, चन्द्र, नक्षत्र जितने तेजस्वी तत्व हैं, उन सभीका तेज बहिर्मुख है, वह सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्रोंके बाहरी आवरणको ही प्रकाशित करता है, वे स्वयं सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि ज्योतिर्पिण्ड कैसे हैं, इनको प्रकाशित नहीं करता। भगवती त्रिपुरसुन्दरी महादेवीकी जो प्रतिमा वृषभानुपुरमें स्थापित है, उसका तेज बहिर्मुखी नहीं होकर अन्तर्मुखी है। इस अन्तर्मुखी तेजका ही प्रभाव है कि आगन्तुक सौभाग्यवान् व्यक्तिको मन्दिर-परिसरमें प्रवेश करनेपर कोई चकाचौंध करनेवाली तेजस्विता दृष्टिगोचर नहीं होती, अपितु बाहर सब साधारण ही अनुभव होता है। परन्तु वह परवश-सा अन्तर्मुखी हो उठता है और भगवतीकी प्रत्यक्ष अनुभूतिमें वह लीन हो जाता है। इसके उपरान्त भी एक सत्वमयी तेजकी लहर उसे विषय-पराङ्मुख करती है, तो तत्क्षण ही दूसरी तेजोमयी सत्व-लहर उसके हृदयपटलपर भगवतीकी ध्यानमूर्त्तिको स्पष्ट प्रत्यक्षवत् प्रकट कर देती है। किन्तु क्षणके करोडवें हिस्सेके व्यतीत होते-ही-होते तीसरी लहरके कारण उसे अपनी अहंताका महादेवीकी अहंतामें पूर्ण विलय अनुभव होने लगता है। और तब चौथी लहर, पाँचवी लहर, छठी एवं सातवीं लहरें सत्य-तत्वसागरमें उसे ऐसा झकझोरती जाती हैं कि वह स्वयं कौन है, कहाँसे आया है, अपना अस्तित्व, साथ ही देश-कालका अनुभव, भूत, वर्त्तमान, भविष्य एवं अपने घर-परिवारको पूर्णतया विस्मृत कर जाता है।

यहाँ फिर समझना है कि भगवती पराभट्टारिका महादेवी और उनका तेज दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। उनमें अङ्गाङ्गी भाव नहीं है। चिन्मय वस्तुमें सब कुछ चिन्मय ही होता है। अतः इस भगवतीरूपा चिन्मयतामें जब आगन्तुकका चित्त आपाततः डूब जाता है, तो वह आगन्तुक भगवतीका स्वरूप ही बन जाता है। उसे मन्दिरमें प्रवेशके पूर्व ही भगवतीके स्वयंके तत्त्वमय स्वरूपका साक्षात्कार हो जाता है।

आगन्तुकको भगवती महादेवीके जैसे ही विशुद्ध स्वरूप-दर्शन होते हैं, वे अपने आपमें विलक्षण ही होते हैं। यह नियम ही है कि जब किसी भाग्यवान् व्यक्तिको भगवान् अथवा भगवतीके सगुण साकार रूपका दर्शन-ध्यान होता है, तो सर्वप्रथम यदि वह कृपापात्र अधिकारी है, तो उसे भगवान् अथवा भगवतीके दस चरण-नख एवं उनकी असीम तेजोमयी झलमलाती चन्द्रिकाके ही ध्यानमें दर्शन होते हैं। किन्तु यदि वह व्यक्ति देवी-भक्त नहीं हो, उससे दीर्घावधितक उपासना-अर्चना एवं पूजनादि नहीं हुआ हो और हेतुरहित कृपावश अथवा पूर्वजन्ममें किये किसी अमोघ पुण्य-कर्मोदयके फलस्वरूप किसी सिद्ध देवी-भक्तका कृपाभाजन हो जानेपर अथवा उसके इस मन्दिर-प्रासाद-परिसर जैसे जागृत् सिद्धक्षेत्रमें प्रवेश पा लेनेसे उसपर कृपावर्षा होती है तो सर्वप्रथम उस महाभाग्यवान् व्यक्तिके चित्त-फलकमें अधिदेवताकी केशराशि ही ध्यानमें झलमलाती है। इस असीम सौन्दर्यशालिनी कृष्ण तेजोमयी महादेवीकी सघन चिकुरराशिमें एक विलक्षण प्रभाव है। यह चिकुरराशि जैसे ही किसीके ध्यानपथमें आती है, बस, वह उसके समग्र तमोगुणको अपनी विशुद्ध सत्वमयी कृष्णाभामें आत्मलीन कर लेती है। इन चिकुरोंका यह अपना सिद्ध स्वभाव ही है। इन सघन केशराशिके कृष्ण सौन्दर्यमें यह अलौकिक विलक्षणता है। ये जिस भाग्यवान्‌के ध्यानपथमें एक बार आ जावें, बस, ध्याताके समग्र तमोगुणका अपहरण कर लेनेमें ये सिद्धहस्त हैं।

इनमें एक विशेषता और है, ये इतनी स्वच्छन्द और चञ्चल हैं कि शृङ्गार करनेवाली सेविकाओं द्वारा कसकर चूड़ामें निबद्ध कर दिये जानेके उपरान्त भी ये भगवतीके ललाट और कपोलोंपर मँडराना अपना स्वत्व समझती हैं। महादेवीके ललाट और कपोल इनका विहारक्षेत्र है। अब ये ध्यानकर्त्ताको अपने ध्यानसे तमोगुणविहीन तो करती ही हैं, साथ ही त्वरापूर्वक अपने माध्यमसे उसके ध्यानमें भगवतीका लोहित-तेज-पुञ्ज ललाट भी स्फुरित कर देती हैं। भगवतीके कर्णकुण्डलोंसे दमकते कपोलोंपर ये अपने साथ-ही-साथ ध्यानकर्त्ताके चित्तको भी पहुँचा देती हैं।

अहा ! अब इन अलकावलियोंके ध्यानके प्रतापसे तमोगुण-विशुद्ध ध्याताका चित्त, भगवतीके अनन्त सुन्दर लोहित-तेज-सुमण्डित, कस्तूरी एवं केसरकी अनुपम चित्रकारियोंसे रञ्जित ललाटके सौन्दर्य-झकोरोंमें हिल्लोलित होने लगता है और उसके फलस्वरूप वह समग्र मलिन रजोगुणसे भी विमुक्त हो जाता है।

वस्तुतः भगवती पराभट्टारिका महादेवीके ललाटके सौन्दर्यका वर्णन तो स्वयं वाणीदेवी भी चाहें तो नहीं कर सकतीं। वैसे शास्त्रोंमें यह भगवतीका ललाट बालरविप्रभ, सिन्दूरारुण, कुन्दनप्रभ वर्णित है किन्तु द्रष्टाके सम्मुख जब यह उसकी चित्तभूमिमें प्रकाशित होता है तो ध्याता आत्ममुग्ध हो उठता है।

प्रकृतिमें तो कुल सात ही वर्ण हैं। ये वर्ण प्राकृत विश्वमें भगवान् सूर्यदेवकी सप्तरंगी किरणोंसे ही उत्पन्न होते हैं, किन्तु महादेवीका ललाट तो इतना तेजस्वी है कि उनके मात्र एक रोममें ही अनन्त सूर्योंकी प्रभा छिटकती रहती है। अतः उनके अप्राकृत अद्भुत चिन्मय विग्रहसे अनन्तानन्त वर्ण नित्य प्रकट और प्रविलुप्त होते रहते हैं। ये सभी वर्ण किन्हीं संयोगोंसे नहीं बनते हैं। ये सभी वर्ण अनन्त शोभाके उद्भव-स्थल हैं, स्वप्रकाश हैं, पूर्ण स्वतंत्र तत्व हैं और अपने आपमें पूर्ण अलौकिक हैं। वे न अरुण हैं, न ही पीत, न सिन्दूरी हैं, न ही लोहित हैं। वे सुन्दरातिसुन्दर हैं। अनन्त लक्ष्मी उनके सम्मुख तृण तोड़ती हैं। भगवतीका ललाट सर्वनिरपेक्ष, स्वप्रकाश अदम्य तेजका पुञ्ज है। उसमेंसे असमोर्ध्व शोभाधारा प्रतिपल नवनूतन वेगसे प्रसरित होती रहती है। यह चिन्मय शोभारूप अनन्त तेजोराशि ही भगवतीका आत्मप्रकाश है। बस, आगन्तुकके चित्तमें ज्योंही इस अनन्त तेजस्वी ललाटका ध्यान होता है, वह उस ललाटसे क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन रूपमें उठती आत्ममयी तेजोराशिकी झकोरोंमें डूब जाता है। द्रष्टा बाह्यज्ञानशून्य हो जाता है। इस शोभाक्षेत्रमें आनेवालेकी वाणी गूँगी हो जाती है, नेत्र अपलक स्थिर हो जाते हैं, बुद्धि एवं अहंता उस छविसमुद्रकी उच्छलित लहरोंमें डूबती उतराती, पूर्ण आप्यायित और निमग्न हो जाती है।

भगवतीके ललाटका सौन्दर्य भी तो इदमित्थं नहीं है। अनन्त कोटि कामदेव जिसके एक रोमके सौन्दर्यको देख भूलुण्ठित हो जाते हैं, उन महादेवीके नव-नव-नूतन तरङ्गायमान सुन्दरतासे दिपदिपाते ललाटकी शोभाका क्या वर्णन किया जा सकता है। वह ध्यातापर नित-नूतन विशुद्ध सत्वमयी छविकी सतत एवं घनघोर वर्षा करता रहता है। उस सौन्दर्य-वारिधिका मन्दिर-परिसरमें दूर-दूरतक उच्छलन होता रहता है। जो भी भाग्यवान् आगन्तुक ज्योंही उस परिधि-क्षेत्रमें आता है, उसकी सूक्ष्म तरङ्गें उसे पूरा ही डुबा देती हैं। वह प्राकृत जगत्, प्राकृत देह, प्राकृत परिवेश सभीसे उन्मुक्त हुआ भगवतीके विशुद्ध अप्राकृत सत्वलोकमें ही पहुँच जाता है। भगवती महादेवीका सत्वलोक तो स्वयं महादेवी ही हैं। अतः उस महाभाग्यवान् की चित्तभूमिमें भगवती महादेवी स्वयं ही प्रकाशित हो जाती हैं। पराभट्टारिका महादेवीकी सर्वतम-मल-हारी अलकावलीकी कृपा उसपर हो ही चुकी होती है, भगवती महादेवीके ललाटके दर्शनसे उस भाग्यवान् आगन्तुकका विक्षेपरूप रज विनष्ट हो ही चुका होता है; अब उसके पास रहता है मात्र सत्व, सो इस सत्वगुणका महादेवी जगन्माताके स्वरूपभूत अनन्त महिमाका प्रकाश करता अप्राकृत रत्नोंसे समलंकृत झलमलाता उनका माणिक्य-मुकुट अपहरण कर लेता है। जब इस विशुद्ध सत्वमय माणिक्य-मुकुटकी असमोर्ध्व शोभाराशिमें डूबा द्रष्टाका चित्त गुणातीत अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब इस माणिक्य-मुकुटकी शोभा-झकोरों और दमकके मध्य ही उसे भगवती महादेवीके ललाटके ठीक मध्य भागमें स्थित जो उनका तीसरा नेत्र है, उसके दर्शन होते हैं। यह भगवतीका तीसरा नेत्र सदैव निमीलित ही रहता है। लोहित वर्णकी पलकोंसे आच्छादित रहनेके कारण यह तीसरा नेत्र ललाटके सत्वमय तेज-तरङ्गोंमें डूबा रहनेके कारण सर्वसाधारणके दर्शनमें नहीं ही आता। यह तृतीय नेत्र गुणातीत पदपर आरूढ व्यक्तियोंको ही दृष्टिगोचर होता है। इस तृतीय ज्ञाननेत्रकी महिमा भी सर्वोच्च है। इस नेत्र-महिमासे महिमान्वित भगवती महादेवी सदैव अहम् प्रत्ययके सारस्वरूप विशुद्ध **'अहमस्मि'** 'मैं हूँ' इस गुणातीत आह्लादमें डूबी रहती हैं। सर्व क्रियाओंकी एकमात्र कर्त्ता होते हुए भी यह तृतीय नेत्र उन्हें अकर्त्ता पदपर नित्य प्रतिष्ठित रखता है। भगवतीके युगल नेत्र जहाँ अनन्त सृजन एवं पालनके साक्षी रहते हैं, वहाँ यह तृतीय नेत्र अनन्त उपाधियोंसे भरे लीला-विश्व को सदैव पल-पल बाधितकर उनमें निहित निरुपाधिक परात्पर परब्रह्म भगवान् कामेश्वरको प्रत्यक्ष प्रकाशित करता रहता है। इस तृतीय नेत्रके तनिकसे उन्मिषित होते ही अविद्यारूप अनन्तानन्त अहं-ममूलक गुणमय सृजन बाधित हुआ ऐसा प्रविलुप्त होता है मानो शशके सिरसे सींग। अनन्त कोटि लक्ष्मियों, ब्रह्माणियों द्वारा सतत उपासित रहनेपर भी इस तृतीय नेत्रकी महिमासे भगवती नित्य निरुपाधिक परात्पर परब्रह्म भगवान् कामेश्वरके अङ्कसे एक क्षणके लिये भी च्युत नहीं हो पातीं।

यहाँ एक बात और अतिशय तात्विक एवं समझनेकी है। हमारे पास तृतीय ज्ञान-नेत्रके नहीं होनेसे ही हम अपनी बहिर्मुखी इन्द्रियोंसे बाहर विषय-दृश्यरूपमें स्थित जगत्को तो देखते हैं किन्तु हमारे अपने-आपेसे सदैव पूर्णतया अनभिज्ञ रहते हैं । अपने आपेको जाननेका हमारे पास कोई साधन ही नहीं है। इसीलिये उपनिषद् कहते हैं – ***'विज्ञातारम् अरे केन विजानीयात्'*** अर्थात् जो सबको जाननेवाला है, उसे किस अन्य साधनसे जाना जाय। क्योंकि आत्मा (परमात्मा) के अतिरिक्त सभी साधन बहिर्मुखी हैं। बुद्धि बहिर्मुखी होनेसे मनको देखेगी, मनके विषय – इन्द्रियोंका निर्णय कर लेगी, इन्द्रियोंके दृश्यके उत्तम, अधम, अनुकूल, प्रतिकूल, सुखद-दुखद, सबकी जानकारी कर लेगी, किन्तु बुद्धि अपने परम-प्रकाशक अहंकारको नहीं ढूँढ सकती। अहंकार ही निर्णय करेगा, मेरी बुद्धि अच्छी है, बुरी है, तीक्ष्ण है अथवा मंद है। इसी प्रकार अहंकार अपने पापी, पुण्यात्मा, दोषी-निर्दोष, साधु-असाधु होनेका परिताप अथवा हर्ष अनुभव कर लेगा किन्तु परमात्माको नहीं देख पावेगा। ठीक, हमारी ही तरह भगवती पराभट्टारिका महदेवीकी इन्द्रियाँ भी उन्मिषित होकर बाह्य दृश्यका सृजन एवं पालन करती हैं, किन्तु उनका यह तीसरा नेत्र ऐसा विलक्षण है कि इसके सम्मुख आते ही स्वयं भगवतीकी ही अविद्यामयी स्वरूपभूता माया विलुप्त हो जाती है । इस

विद्यानेत्रके तनिकसे उन्मेष मात्रसे ही उनकी ही स्वरूपभूता माया पलायन ही नहीं करती, वह पूर्णतया भगवती महादेवीसे एकात्म हो जाती है। पराभट्टारिका भगवती महादेवीकी सभामें इन्द्रादि देवता, महाशक्तिशाली असुर, दैत्य, दानव, गन्धर्व, किन्नर, महासिद्ध, महायोगी, भूत, प्रेत, पिशाच – उनके अधिपति भैरव, अनेक विलक्षण शक्तियोंके रूप – सभी विद्यमान रहते हैं। त्रिदेवादि ईश्वरोंका भी वे पालन करती हैं। उनकी शक्तिसे ही सब सृष्ट-असृष्ट जीव-समुदाय सत्ता, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति पाता है।

इतनी वैभवमयी होते हुए भी इस तीसरे नेत्रके कारण ही वे सभीके रूपमें ही अपनेको पूर्ण समरूपमें स्थित देखती हैं। अनन्तानन्त सृजन उन्हें मात्र स्वविलास ही समझमें आता है। तीसरा नेत्र उन्हें यही दिखाता है कि मैं ही सर्वरूप हूँ। उत्थान-पतन, उद्भव-विलय, जय-पराजय, आत्मा- अनात्मा, योग एवं भोगरूपमें उनके द्वारा उनका स्वयंका अपना ही अखण्ड विलास हो रहा है – यह अनुभूति उन्हें अखण्ड बनी रहती है। तृतीय नेत्र इस अनन्तानन्त मायावी सृजन एवं पालनमें, उन्हें स्वयंको कभी परिच्छिन्न नहीं होने देता। वे नित्य अखण्ड एकरस यह अनुभव करती रहती हैं कि वे तो एकमेव अद्वितीय सर्व-उपाधि-सहित निरुपाधिक परात्पर परब्रह्म भगवान् कामेश्वरके अङ्कमें नित्य विलसित हैं।

अस्तु ज्योंही कोई भी आगन्तुक परम चिन्मय, जागृत् एवं सिद्ध उस भगवतीके मन्दिर-परिसरमें प्रवेश करता है, वह भगवतीकी स्वयंकी दृष्टि-परिधिमें आ जाता है। अब महादेवीका स्वयंका जो भी स्वरूपदर्शन है, वह उसे बाध्य कर देता है कि वह अन्तर्मुखी हो उठे। बस, आगन्तुक तत्क्षण ही अन्तर्मुखी हुआ अपने अखण्ड स्वरूपानन्दमें लहराने लगता है। उसे बाह्य सबकुछकी विस्मृति हो ही जाती है, मानो वह एक विचित्र समाधिमें अवस्थित हो गया हो। उस अनिर्वचनीय अवस्थासे मन्दिरका प्रहरी ही उसे पास आकर होश कराता है, यह कहकर कि – 'महाशय ! मन्दिरमें जाइये, दर्शन कर लीजिये।'

यहाँ यह प्रश्न किसीके मनमें उठ सकता है कि जब मन्दिर-परिसरमें प्रवेश करनेवाले आगन्तुककी दशा इतनी अधिक अन्तर्मुखी हो जाती है तो द्वारपाल, जो प्रहरी रूपमें निरन्तर वहाँ स्थित रहता है, वह जागरूक एवं सजग कैसे रह पाता है ? इसका यही उत्तर है कि वह द्वारपाल तो भगवतीका सेवक पार्षद ही है, वह भगवतीका स्वरूप साक्षात्कार कर चुकनेपर भी सेवाभावसे द्वारपाल बना बैठा है, अतः भागवती-महिमा ही उसे यंत्रवत् सजग सेवा-सन्नद्ध किये रखती है।

ज्योंही मन्दिरका प्रहरी उस समाधिस्थ आगन्तुकको मन्दिरकी ओर दर्शनार्थ जानेकी प्रेरणा देता है, आगन्तुक मन्दिरकी ओर चल पड़ता है। परन्तु अबतक उसकी चित्तवृत्ति इतनी प्रगाढ़ भावमयी हो उठती है कि उसे भगवतीकी ध्यानछवि सर्वत्र भरी दृष्टिगोचर होने लगती है। उसे द्वारपालके स्थानपर भी स्वयं महादेवी शशिशेखरा ही खड़ी दृष्टिगोचर होती है। वह दिग्भ्रमित-सा द्वारपालके रूपमें महादेवीको ही देखता, उसके सङ्केतानुसार मन्दिरमें प्रवेश करता है। द्वारपाल ही उसकी अञ्जलिमें वहीं उपवनसे तोड़कर कुछ पुष्प प्रदान कर देता है, वह उन पुष्पोंके रूपमें भी भगवतीको ही देखकर मुसका उठता है। उसके नेत्रोंसे अश्रु झर उठते हैं। वह अनुभव करता है कि उसके अश्रु किसी भी अभाव अथवा परितापके कारण उत्पन्न नहीं हैं, अपितु विलक्षण श्रद्धाभाव-परिपूरित आनन्दके अश्रु हैं। सचमुच ही उसके अश्रु उस कृतकृत्यता-प्राप्तिके उद्रेकसे ही प्रवाहित हैं, जब वह साक्षात् महादेवी जगन्माताको प्रत्यक्ष अपनेपर अनुग्रहकी वर्षा करती देखता है। आनन्दसे डगमगाते पैरोंसे वह भगवतीके मन्दिरमें उनके सच्चिन्मय अलौकिक सुन्दर विग्रहके सम्मुख जाकर खड़ा होता है।

'ओह ! कैसा शोभामय यह मन्दिर-प्रासाद है ! इसका तो अणु-अणु, परमाणु-परमाणु ही लोहित तेजोमय विशुद्ध सत्वका पुञ्ज है ! कहीं भी दृष्टि जाय, सत्वमय लोहित तेजोराशिकी झकोरें उठ रही हैं। और, अरे ! भगवतीका यह विग्रह कितना मनोहर है ! इनका दिव्य तेजोमय वर्ण ही तो इस समग्र लोहित तेज-प्रसारका उद्गम-पिण्ड है। पिसी हुई सिन्दूरके समान सुचिक्कण भगवतीका वर्ण कितना दिपदिपा रहा है ! ओह ! ये सिन्दूरीवर्णवाली महादेवी मात्र सुचिक्कण

ही नहीं, कितनी सुशीतल, सरस, मादक हैं और इनका दर्शन प्राणोंको कैसा आप्यायित करनेवाला है ! लावण्य और मधुरतासे भरी ये कितनी वत्सला हैं ! तेजस्विताकी दृष्टिसे क्या इन्हें मैं विद्युन्मालाकी उपमा दे सकता हूँ ? सरसताकी दृष्टिसे इन्हें रक्त-पद्मतुल्य भी तो कहा जा सकता है ? इन महादेवीके अङ्गोंसे जो कान्तिकी किरणें फूट रही हैं, वे माणिक्य मणिकी आभाको भी हेय बना दे रही हैं। परन्तु इन सभी उपमाओंके गुण परिच्छिन्न हैं, ससीम हैं। जगन्माता तो माधुर्य एवं लावण्यकी भी अपरिसीम सिन्धु हैं। उनके श्रीअङ्गोंमें लाल ओढनी एवं लाल ही लहँगा झलमला रहा है। वक्षस्थलपर रङ्गबिरङ्गी वनमाला झूल रही हैं। इस वनमालामें जो पुष्प गुँथे हैं, ये मात्र साधारण गन्धवाही पुष्प नहीं हैं; ये तो उच्चतम भक्तिभावसे युक्त देवीभक्तोंके विशुद्ध सात्विक मन हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें इन्हें सुमन कहा गया है। आगम-शास्त्रीय तन्त्रोपासनाके अनेक विद्वज्जन ही ये पुष्प हैं, इनमें ही तो महादेवी श्रीविद्या स्फुटित रहती हैं। ये पुष्प बने तन्त्र-विद्याके महासाधक पराभट्टारिका महादेवीके कण्ठविग्रहको श्रीमद्वाग्भवकूट मंत्ररूपमें साक्षात्कारकर सदैव उससे संलग्न रहते हैं। महामंत्रके मध्यकूट स्वरूपकी अखण्ड जपसिद्धिसे ये महादेवीके कण्ठाधः-कटिपर्यंत विग्रहका साक्षात्कार करते हैं तथा महामंत्रके शक्तिकूटके निरन्तर जपसे ये उनके कटिसे अधोभागका साक्षात्कार करते हैं। इस प्रकार ये वनमाला बने मूलमंत्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा भगवतीका साक्षात्कार किये उससे सर्वाङ्गोंसे संलग्न रहते हैं। जो पराभट्टारिका महादेवी सर्वनियमातीत हैं, सर्वबन्धनविनिर्मुक्त सर्वतंत्रस्वतंत्र हैं, वे भी मूलमंत्रके साक्षात्कार किये इन कुसुम बने तंत्राचार्योंके सदैव भक्त्याधीन रहती हैं।'

'ओह ! जगन्माताका रङ्गबिरङ्गे रत्नोंसे दमकते माणिक्य-मुकुटकी शोभा तो सर्वोपरि ही है। तभी न, महादेवीने इसे अपना शिरोभूषण बनाया है। इस माणिक्य-मुकुटकी अरुण शोभाराशि अपनी छवि-झकोरोंसे जगन्माताके मुखमण्डलपर विलक्षण दमक उत्पन्न कर रही है। कोई उपमा देनेवाला कवि यदि अथक प्रयास करेगा तो इसे देखकर इतना ही कह पावेगा, मानो कुन्दनद्युति सुमेरुके शिखरपर असंख्य बालरवि शयन कर रहे हों। और इस मुकुटका एक विशाल शोभाशाली रत्नललाटके मध्यभागमें ऐसी तेज-वर्षा कर रहा है मानो भगवतीके मस्तकपर स्वयं सूर्यदेव ही अपनी मध्याह्नकालीन छटा बिखेर रहे हों। और इस रत्नके ठीक नीचे भगवती महादेवीका तृतीय नेत्र विलक्षण नीलद्युति प्रकाश कर रहा है, और इसकी विचित्रता ऐसी अनोखी है कि पलक झपकते ही यह केसरवर्णी और फिर कुमकुमवर्णी होकर जगन्माताके ललाटकी शोभाराशिमें विलीन हो जाता है। भगवतीका शृङ्गार करनेवाली सेविकाएँ इसे सबके सम्मुख प्रकट करनेके निमित्तसे इसके चतुर्दिक् अनमोल लघु-लघु मुक्ताओंका, कभी माणिक्य, पुखराज, नीलमणि, आदि रत्नोंका शृङ्गार करती हैं, तब भी यह नेत्र किसी भगवतीके कृपापात्र अधिकारीको ही परिलक्षित होता है।

भगवती महादेवीके अङ्गोंका सर्वाधिक सौन्दर्य उनके कपोलोंमें ही निहित है। भगवतीके ललाटपर जो कस्तूरीकी खौर है, एवं शृङ्गार करनेवाली सेविकाएँ उस खौरपर जो उत्तमोत्तम पत्रावलियोंकी रचना करती हैं, यह अतिशय कलापूर्ण पत्रावलि-रचना ललाटको श्रृङ्गारित करती कपोलोंके शृङ्गारके पश्चात् ही पर्यवसित होती है। भगवती पराभट्टारिका महादेवीके नव-किसलयके समान सुकोमल दोनों कानोंमें विजड़ित कुण्डल इस पत्रावलि-रचनाको अपनी समुज्वल रत्नज्योतिसे दमकाते रहते हैं।

ओह ! भगवतीके आननमें कर्णविलम्बी जो दीर्घ कमलोंके समान सुन्दर दो नेत्र हैं, उनकी शोभा सर्वोपरि है। ये नेत्र खञ्जन पक्षीके समान अति चञ्चल हैं और भगवान् कामेश्वरके निराविल निर्गुण विलक्षण आत्म-सौन्दर्यका पानकर ज्ञानाह्लादमें छके रहते हैं। जगन्माताके नेत्रोंका जो श्वेत भाग है,उसे ईषत् लालिमा उसे सदैव आवृत किये रहती है। यह लालिमा सत्वभूमिमें रजस्का आवेश है। यह लालिमा जगन्माताकी इच्छाशक्तिकी द्योतक है, जो उनकी सत्वभूमिको आवृत किये रहती है। जगन्माताके नेत्रोंमें जो कृष्णांश है, वही महाक्रियाशक्ति है। महादेवी सर्वगुण-निकेतन हैं। समग्र गुणोंका दान विश्वको उनकी दृष्टिसे ही होता है। उनके नेत्रोंके उन्मेषसे विश्व उत्पन्न होता है, और निमेषमें वह उन नेत्रोंमें ही लीन हो जाता है। इसीलिये शास्त्रोंने उनके अनेक नामोंमें एक नाम ***'उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनावली'*** भी रखा है। भाग्यवान् द्रष्टाको महादेवी पराभट्टारिकाके दर्शनोंसे ऐसा अनुभव होता है — मानो भगवतीके मुखमें जो दंतपङ्क्तिकी छटा है, वह विशुद्ध सत्वका प्रकाश है। उनके अधरोंकी लालिमा ही विश्वविमोहिनी माया है। यह महामाया सर्वविजयिनी है। महादेवीके नाकमें जो बेसर है, विश्व का अनन्त सौन्दर्य उसीसे उद्भव होता है, और उसीमें निलीन रहता है। यह सौन्दर्य प्रतिक्षण उनके अधरोंको अनुरञ्जित करता रहता है।

द्रष्टा देखकर चकित होता है कि महादेवीके परम सुन्दर कण्ठको महादेव कामेश्वर रुद्राक्षरूप अपने नेत्रोंमें ही बाँधे रखते हैं।

दर्शनानन्दमें डूबे द्रष्टाको शनैः-शनैः अपना स्वरूप ही विस्मृत होने लगता है। वह अनुभव करता है — उसके दाहिने कानमें अनन्त प्रकाशरूप आनन्द भरता जा रहा है, उसके बायें कानमें अनन्त विमर्शरूप आनन्द समाहित होता जा रहा है, उसकी जिह्वारूप रंध्रमें अनन्तानन्द भरता जा रहा है। उसके दाहिने नेत्रमें भगवती महादेवीके अङ्गोंसे ज्ञानानन्द लबालब हो रहा है, उसके वाम नेत्रमें भगवती महादेवी सत्यरूप आनन्द परिपूरित कर रही हैं। उसकी दाहिनी नाकमें महादेवी अपना पूर्ण साम्य स्वभाव भर रही हैं। उसकी बायीं नाकमें महादेवी अपनी समस्त प्रतिभा उँडेल रही हैं, उसके पायुरूप छिद्रसे वह सहजानन्दमयतामें सराबोर हो रहा है।

उसका देह ही उसे श्रीचक्रराज रूप भगवतीका आवास दृष्टिगोचर होता है। उसे अपने मांसादि अवयव महावाराही भागवतीशक्ति दृष्टिगोचर होने लगते हैं। साथ ही अपने अस्थि आदि अवयव बलिदेवता कुरुकुल्लाके रूपमें अनुभूत होने लगते हैं।

वह महाभाग्यवान् द्रष्टा देवीरूप हुआ जगतको महादेवीके रूपमें देखता उनके श्रीचरणोंमें पुष्पार्पण कर देता है। उसके नेत्र भक्तिभावमें भरे अश्रुओंसे छलके होते हैं और वह यंत्रचालित-सा महादेवीके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर देता है। वृषभानुपुरमें किसीको भी पता नहीं कि ये महादेवी कबसे यहाँ सुस्थापित हैं।

जब द्रष्टा महादेवीके श्रीचरणोंमें अपनेको पूर्णतया समर्पित कर देता है तो उसे अपने भविष्य जीवनकी सभी ग्रन्थियाँ सुलझी दृष्टिगोचर होती हैं। उसे अपना लोक-व्यवहार, परमार्थपथ एवं अपना भूत-भविष्य सब भगवती द्वारा मात्र नियंत्रित अनुभव होता है। उसे यह स्पष्ट समझ हो जाती है कि वह व्यष्टि ही नहीं, समस्त भूत-समुदायरूपा प्रकृति ही भगवती महादेवीकी महाइच्छाशक्तिसे नियंत्रित चल रही है। अतः वह पूर्ण समाधानमें डूब जाता है। उसे अपने अग्रिम कर्तव्योंका ठीक अनुभव हो जाता है और मन्दिर-परिसरसे वह पूर्णतया संतुष्ट लौटता है।

युवराज रूप में ही जब थे वे वर्तमान राजा, प्रियतम !
ऋषितुल्य पितृचरणों की ले अनुमति ली थी उनने, प्रियतम !
अपने ऊपर सँभाल पूरी देवी की सेवा की, प्रियतम !
उसके पहले भूदेवों के द्वारा अर्चन होता, प्रियतम ।।२९।।

वर्तमान राजा जब युवराज पदपर प्रतिष्ठित थे, उस समय ही वे अपने ऋषितुल्य पिताके श्रीचरणोंमें जाकर उपस्थित हुए थे और उन्होंने महादेवीकी सम्पूर्ण सेवाका भार - सेवाकी सार-सँभालकी व्यवस्थाका भार पितृचरणोंकी अनुमतिसे ही अपने ऊपर ले लिया था। उसके पहले ब्राह्मणोंके द्वारा महादेवीकी अर्चना होती थी।।२९।।

श्रद्धापूरित मनसे यद्यपि युवराज पूछते थे प्रियतम !
भूदेवों से कुलदेवी का इतिवृत्त पुराना, हे प्रियतम !
हँसकर पर वे कह देते थे, 'हे वत्स बाट देखो, प्रियतम !
वे जगजननी बतलायेंगी जो बतलाना होगा, प्रियतम ।।३०।।

युवराज श्रद्धापूरित मनसे उन भूदेवोंके पास जाकर उनके श्रीमुखसे महादेवीका पुराना इतिवृत्त सुनना चाहते थे। पर वे भूदेव हँसकर केवल इतना ही कह देते-'वत्स ! तुम प्रतीक्षा करो, ये जगन्माता स्वयं ही जो बतलाना होगा, तुम्हें बतला देंगी।'।।३०।।

फिर सभी व्यवस्था सेवा की क्रमशः भूदेवों ने, प्रियतम !
अतिशय विनम्र युवराज कुशल मतिमान धीरको ही, प्रियतम !
दी सौंप, और मङ्गलमय कर सिरपर रखकर उसके, प्रियतम !
'तेरी जय हो !' कहकर सहसा अन्तर्हित सभी हुए, प्रियतम ।।३१।।

इसके अनन्तर युवराजको अत्यन्त विनम्र देखकर, बड़ा ही धैर्यवान्, चतुर एवं बुद्धिमान् अनुभव करके महादेवीकी सेवाकी सम्पूर्ण व्यवस्था उनको ही धीरे-धीरे ब्राह्मणदेवताओंने सौंप दी। और एक दिन अचानक अपना परम मङ्गलमय दक्षिण हस्त युवराजके सिरपर रखते हुए 'तेरी जय हो !' - यह कहकर वे सब-के-सब देखते-ही-देखते अन्तर्धान हो गये।।३१।।

जिज्ञासा

जिन भूदेवोंके द्वारा युवराज वृषभानुजीको महादेवीकी सेवाकी पूरी सँभाल सौंपी गयी, कृपया वे भूदेव कौन थे, उनका किञ्चित् परिचय देनेकी कृपा करें।

समाधान

यह पूर्वतः निवेदित किया जा चुका है, कि वृषभानुकुलमें श्रीविद्याक्रमकी उपासना एवं भगवती महादेवी पराभट्टारिका त्रिपुरसुन्दरीकी प्रतिमा – दोनों ही भगवान् सूर्यदेवकी कृपाका फल था। भगवान् सूर्यदेव भगवती महादेवीकी उपासनाके द्वादश आचार्योंमें एक हैं। अतः उन्होंने ही इस कुलमें सूर्यविद्याकी स्थापना की थी। इसीलिये इस महासिद्ध पूर्ण जागृत् चिन्मयी प्रतिमाकी पूजा-अर्चना करानेके लिये भी सूर्यलोकसे ही आचार्य सिद्ध तेजस्वी ब्राह्मण भूदेव अवतरित हुए थे। ये सिद्ध ब्राह्मण भी इस चिन्मय प्रतिमाके समान ही अप्राकृत देहधारी थे। इन सिद्ध ब्राह्मणोंने ही महर्षि भागुरिको योग्य अधिकारी मानकर सूर्यविद्याका दान दिया था और वृषभानुकुलका पौरोहित्य- पद दिया था।

युवराज वृषभानुको इन अप्राकृत देहधारी भूदेवों द्वारा ही शिवरात्रि'की पावन महानिशामें सूर्यविद्याकी दीक्षा दी गयी थी, और इन परम दिव्य सिद्ध भूदेवों द्वारा ही उन्हें समग्र आगम-शास्त्रीय पूजा-विधान पढ़ाया और समझाया गया था एवं उनसे भगवतीकी पूरी सेवा-पूजाकी विधिका जागरूकतासे पालन कराया गया था। ज्योंही युवराज वृषभानु एवं उनकी सहधर्मिणी कीर्त्तिदा महारानी इस पूजाक्रममें पारङ्गत हो गयीं, त्योंही उन्हें हरिशयनी-निशासे इन भूदेवों द्वारा ही अर्चनक्रमकी दीक्षा देकर उनसे अर्चन कराया गया था।

जब युवराज वृषभानु जिज्ञासावश इन तेजस्वी सिद्ध आचार्योंके आगम-शास्त्रीय अनोखे ज्ञानसे हतप्रभ हुए उनसे उनके कुल-गोत्रका परिचय पूछने लगते थे एवं साथ ही स्वयं महादेवी भगवतीके विग्रहकी वृषभानुकुलमें स्थापनाकी तिथि एवं परम्परा भी जिज्ञासु होकर पूछने लगते थे, तो उसके उत्तरमें ये भूदेव उन्हें यही कह देते थे कि 'वत्स ! प्रतीक्षा करो, उपयुक्त समय आनेपर भगवती पराभट्टारिका ही हमारा सभीका एवं स्वयं अपना भी परिचय तुम्हें पूरा खोलकर समझा देंगी।'

वस्तुतः इष्ट, मंत्रदाता गुरु एवं मंत्र-साधना – आगम-शास्त्रमें ये तीन पृथक् सत्ताएँ हैं ही नहीं। इसीलिये गुरुस्वरूप इन भूदेवोंने जैसे ही युवराजको महादेवीकी रहस्यपूजाकी सब व्यवस्थामें पारङ्गत किया, वे अपना परम मङ्गलमय वरद दक्षिणहस्त युवराजके सिरपर रखते हुए एवं 'तेरी जय हो !' का आशीर्वाद-दान करते हुए उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये।

यह सिद्ध करता है कि गुरु-शिष्य दो पृथक् सत्ताएँ तभीतक रहती हैं, जबतक शिष्य इष्ट- साधनाकी समग्र विधाओंमें पारङ्गत नहीं हो जाता है। ज्यों ही उसे महादेवीकी अर्चनाके सब रहस्य ज्ञात होते हैं, गुरु मुक्त हो जाता है और वस्तुतः शिष्यमें ही समाहित, लीन हो जाता है। शिष्य जैसे ही गुरुसे एकाकार हुआ, वह इष्टसे भी एकात्म होने लगता है। यह इष्टसे एकात्मता ही परमसिद्धि है। इस महासिद्धिको उपलब्ध हुए साधककी सफलता इसीमें है कि इष्ट भी उससे एकाकार हो जाय और फिर इष्टकी पृथक् सत्ता भी उससे एकमेक हो जाय। बस, उस अवस्थामें एकमेव अद्वितीय उपास्य-ही-उपास्य रह जाता है, उपासककी सत्ता उपास्यमें किंवा उपास्यकी सत्ता उपासकमें पूर्णतया आत्मसात् हो जाती है। प्रथमतया गुरु शिष्यमें लीन होता है और तब इष्ट भी उपासकसे एक हो जाता है। शेष कुछ नहीं बचता, मात्र एक अनिर्वचनीय नित्य चिन्मय सत्ता ही शेषी, शेष सब कुछ हो जाती है।

आगम-शास्त्रीय इस परम सत्यका सङ्केत करते हुए ही ये चिन्मय सिद्ध गुरुस्वरूप भूदेव वृषभानुजीको हँसकर इतना ही कहते हैं कि 'वत्स ! धैर्य रखो, प्रतीक्षा करो, ये जगज्जननी स्वयं ही तुम्हारी समग्र द्वैत-जिज्ञासाएँ उपासनाकी सिद्धि होनेपर शान्त कर देंगी, तब तुम अपने भीतर हमको, जगन्माताको, और जगन्माताके समग्र लीला-विधानको एकात्म हुआ देखोगे। उसी समय तुम समझ पाओगे कि जगन्माताका प्रादुर्भाव कालान्तर्गत कभी होता ही नहीं है। वे अनादि, कालातीत कृपामयी हैं। तुम्हारा कुल भी महादेवीका ही कुल है, अतः यह कुल भी महादेवीका स्वरूपभूत ही है। न तो महादेवीसे पृथक् तुम हो, न ही तुम्हारा कुल है, न हम हैं, न ही ये महादेवी जिस प्रकार तुम्हें दृष्टिगोचर हो रही हैं, वैसी हैं। इनका अनिर्वचनीय, अचिन्त्य प्रकाश यथाकाल जब उपासनाद्वारा परिशुद्ध हुई तुम्हारी बुद्धि ग्रहण करने योग्य होगी, तभी ये सभी रहस्य तुम अवगत कर सकोगे।

तब से हो गये वर्ष सत्तर, नौ मास और दिन दो, प्रियतम !
अविराम भाव संवलित हुए, तपने की थी अर्चा, प्रियतम !
सम्बोधन 'सहधर्मिणि' का भी अक्षरशः सत्य घटा, प्रियतम !
रानी के जीवन में भी है तुलना न कहीं जिसकी, प्रियतम ॥३२॥

उस दिनसे आज सत्तर वर्ष, नौ महीना, दो दिन हो चुके हैं। भाव-संवलित हुए वर्त्तमान महाराजने अविराम महादेवीकी अर्चना की है। साथ ही 'सहधर्मिणी' शब्दकी गरिमाके अनुरूप महारानीने जीवनमें अक्षरशः उनका ऐसा साथ दिया जिसकी तुलना ढूँढनेपर कहीं भी नहीं मिलती।।३२।।

अब पुनः हरिशयनी की रजनी थी उजियारी, प्रियतम !
सर्वथा निरभ्र गगन था, सब हँसते-से थे तारे, प्रियतम!
अन्तरसत्वा थी रानी फिर मन्त्री की पत्नी भी, प्रियतम !
थीं हुई त्रिपुरसुन्दरी तुष्ट बहुकाल-अर्चना से, प्रियतम ।।३३।।

अब पुनः हरिशयनीकी शुक्ला रजनी आयी थी। आकाश सर्वथा निरभ्र था। सभी तारे हँस रहे थे। महारानी अन्तःसत्त्वा हो चुकी थीं। उस ओर मन्त्रीकी पत्नी भी उपने उदरमें संतति लिये मङ्गलवेलाकी प्रतीक्षा कर रही थीं - महात्रिपुरसुन्दरी उपर्युक्त दीर्घकालकी अर्चनासे प्रसन्न हो चुकी थीं।।३३।।

नौ मास और कुछ दिन पहले इस देवशयन से ही, प्रियतम !
प्रत्यक्ष महादेवी का था दर्शन-सौभाग्य मिला, प्रियतम !
रानी को, फिर समान शीला मन्त्री की दारा को, प्रियतम !
थीं हँसी महामाया एवं कह गयी स्वयं यह थीं, प्रियतम ।।३४।।

इस देवशयनी एकादशीसे नौ मास और कुछ दिन पहलेकी घटना है - महारानीको एवं समानशीला मन्त्री-पत्नीको महादेवीके प्रत्यक्ष दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय महामाया हँस पड़ी थी। वे स्वयं यह बात कह गयी थीं -।।३४।।

'आये वह राजपुत्र, इससे पहले गृह मन्त्री का'; प्रियतम !
'मेरी क्रीड़ा की भूमि बने, आरम्भ करूँ मैं ही'; प्रियतम !
'जो प्रथम कृत्य रङ्गस्थल का है नटी किया करती'; प्रियतम !
'फिर हो लीला, होती है जो चिन्मयी कदाचित् ही'; प्रियतम ।।३५।।

'पुत्रियों ! सुनो, वह राजपुत्र आये, इससे पहले राजमन्त्रीका भवन मेरी क्रीड़ाकी भूमि बने भला ! मैं यह चाह रही हूँ। और स्वयं मैं ही रङ्गस्थलके उस प्रथम कृत्यका आरंभ करूँ, जिसे नटी किया करती है। फिर ऐसी चिन्मयी लीला हो, जैसी कालके प्रवाहमें कदाचित् ही होती है। अस्तु,।।३५।।

जिज्ञासा

कृपया स्पष्ट करें छन्द संख्या ३५ में वर्णित राजमंत्री कौन हैं ? उसके गृहको भगवती महादेवी राजपुत्रके आनेके पूर्व ही अपनी क्रीड़ाकी भूमि क्यों बनाने जा रहीं हैं ? लीलामहाशक्ति महादेवी अपने रङ्गस्थलका प्रथम कृत्य नटीकी तरह वृषभानुगृहको छोड़कर अन्यत्र निष्पादित क्यों कर रही हैं ? इन सभी रहस्योंका कृपया खुलासा करें।

समाधान

यह ध्यान रहे कि रावलनरेश महाराजा विन्दुके गृहमें कीर्त्तिदा एवं कीर्त्तिमती – दोनों ही कन्याओंका प्राकट्य यज्ञाग्निसे हुआ था। ये दोनों अयोनिजा सन्तानें थीं। महाराजा विन्दुगोपकी ये दोनों ही कन्या-सन्तानें वस्तुतः परमातिपरम सच्चिन्मयी थीं। इन दोनों कन्याओंमें शिशुकालसे ही परस्पर इतना अधिक काया-छायावत् प्रेम था कि महाराज विन्दुने इनका पाणिग्रहण-संस्कार वृषभानुपुरमें एक ही स्थानपर करनेका निश्चय किया। इन दोनों कन्याओंके प्राकट्यका रहस्य गोपेश नन्दराय समुचितरूपमें जानते थे, अतः बड़ी कन्या कीर्त्तिदाका पाणिग्रहण-संस्कार तो वृषभानुपुर-युवराज वृषभानुजीसे उन्होंने ही निश्चय कर दिया एवं दूसरी कन्या कीर्त्तिमतीका भी विवाह वृषभानुके छोटे भाईके समान ही परम मित्र एवं राज्यमें सचिव पदपर आसीन कुशगोपसे कर दिया गया। वृषभानुपुर-युवराज वृषभानुजी एवं कुश(सत्यभानु) गोपमें इतनी प्रगाढ़ मैत्री थी कि वृषभानुपुरवासी इन दोनोंका नामकरण लव-कुश ही कर चुके थे। कुश (सत्यभानु) गोप यथानाम-तथास्वभाव ही थे। रावलनरेशकी दोनों पुत्रियोंको एक ही स्थानपर विवाहित करनेके पीछे भी मुख्य इच्छा यही रही कि छोटी पुत्री यथासाध्य छायाकी तरह रहकर अपनी बड़ी बहिनके गृहकार्यको भी निर्वाह कर लेगी। उनके पवित्रतम तपस्यापूत अन्तर्मनने पूर्वतः ही परिकल्पना करली थी कि कीर्त्तिदाका भविष्य-जीवन असाधारण साधिकाका होगा। उसे अपना राज्य एवं गृहस्थ सँभालनेके लिये एक प्राणोपम सहयोगिनीकी आवश्यकता रहेगी।

रावलनरेश महाराजा विन्दुने जैसा सोचा था, वही हुआ। प्रारब्ध ऐसा ही घटित हुआ कि कीर्त्तिदाके पाणिग्रहण-संस्कारके सम्पन्न होते ही प्रथम मिलनरात्रि – सुहागरातमें ही दोनों वर-वधूने अपनेको भगवती पराभट्टारिका महामाया त्रिपुरसुन्दरी, जो उनकी राज्य-कुलदेवी थीं, के ही चरणोंमें समर्पित कर दिया और अनवरत सत्तर वर्षतक वे दोनों दम्पति रात्रि-दिवस बिना व्यवधानके केवल माताकी उपासनामें ही लीन हो गये। उन्होंने प्रथम मिलनके समय ही प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक भगवती महादेवी स्वयं प्रकट होकर पुत्र उत्पन्न करनेका आदेश नहीं देंगी तबतक पूर्ण नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रतका ही पालन करते हुए दोनों उनकी उपासनामें ही पूर्णकाल लीन रहेंगे एवं पूर्ण सदाचारी तपस्वी-जीवन व्यतीत करेंगे। अपने जीजा एवं जीजीके ही पवित्र जीवनका अनुकरण करती हुई छोटी बहिन कीर्त्तिमतीने भी अपने पतिके सहयोगसे यथाराजा–तथाप्रजाके नियमका पालन करते हुए अपना जीवन अपनी बड़ी बहिन कीर्त्तिदा एवं जीजा वृषभानुजीके पदचिह्नोंपर ही ढालनेका व्रत ले लिया। वृषभानुजी अपने राजकाजका सारा भार अपने मित्र कुश (सत्यभानु), जो उनके सचिव भी थे, पर छोड़ भगवती महादेवीकी अर्चनामें आठों पहर संलग्न हो गये थे, एवं अ.सौ.कीर्त्तिदा भी सच्ची सहधर्मिणीका व्रत-निर्वाह करती उन्हींकी सहयोगिनी हो गयी थी, तब अपनी बड़ी बहिनके गृहस्थोचित सारे दायित्वोंका निर्वाह कीर्त्तिमतीको ही करने होते थे। वृषभानुपुरमें महाराजा महीभानु और महारानी सुषमाकी सेवा-सुश्रूषा, राज्यमें समागत अतिथिगणोंका यथोचित सेवा-सत्कार; राजमहलकी सारी व्यवस्था कीर्त्तिदाके उपासनामें लग जानेसे कीर्त्तिमतीको ही निर्वाह करने होते थे। बहिन कीर्त्तिमतीकी अपनी बड़ी बहिनसे निस्वार्थ एकात्मता और उसकी सेवाभावना इतनी जीवन्त थी कि भगवती महादेवी, ज्योंही सत्तर वर्षकी अनवरत उपासनाके पश्चात् महारानी कीर्त्तिदाको दर्शन देनेके लिये प्रकट हुईं, उन्हें महारानी कीर्त्तिदाकी छोटी बहिन कीर्त्तिमतीको भी बिना किसी अर्चना-उपासनाके ही मात्र सेवा करनेके फलस्वरूप साक्षात् प्रकट होकर दर्शन देने पड़े।

सच्ची सेवाका यही माहात्म्य है। कीर्त्तिमतीकी अपनी कीर्त्तिदाके प्रति सच्ची पूर्ण समर्पण- वृत्ति थी, जिसके फलस्वरूप ज्योंही महारानी कीर्त्तिदाको भगवती पराम्बाके साक्षात् दर्शन हुए, ठीक उसी समय समानशीला – मंत्री कुश (सत्यभानु) की पत्नी कीर्त्तिमतीको भी उनके प्रत्यक्ष दर्शनोंका सौभाग्य मिला। उस दर्शनके समय महायोगमाया लीलामहाशक्ति पराम्बा हँस पड़ीं। वे स्वयं अपने मुखसे दोनों भगिनियोंको सम्बोधितकर उक्त सन्देश कह गयीं -'पुत्रियों

! सुनो ! वह राजपुत्र (श्रीदाम) जन्म ले, इससे पहले सत्यभानु (कुशगोप) का भवन मेरी बालक्रीड़ाकी भूमि बनेगा। मैं यह चाह रही हूँ कि स्वयं मैं ही रङ्गस्थलीके उस प्रथम कृत्यका प्रारंभ करूँ, जिसे नटी सूत्रधारिणीके रूपमें किया करती है। फिर ऐसी चिन्मय रसमयी लीला हो, जैसी कालके प्रवाहमें कदाचित् ही होती है।'

जिज्ञासा

यहाँ एक जिज्ञासा है कि अखिलभुवनेश्वरी स्वयं जगन्माता ही जब एक गोपके घर साधारण गोपकन्या कुन्दवल्ली बनकर जन्म लेती हैं, उनकी विवाह-लीला श्रीकृष्णके बड़े भाई एवं सखा उपनन्द-पुत्र सुबलके साथ सम्पन्न होती है, तब उनका अदम्य तेज, जिसके सम्मुख सभी इन्द्रादि देवगण नतमस्तक रहते हैं, उनका दुर्धर्ष बल, जिसके सम्मुख महाबली असुर-अधिपति भी कीटकी भाँति काँपने लगते हैं, उनकी वह कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् सामर्थ्य कहाँ एवं क्यों लुप्त हो जाती है – इसका क्या रहस्य है ?

समाधान

यह सदैव ध्यान रहे कि यह ब्रजराज्य ऐश्वर्य-प्रकाश-भूमि नहीं है, यह प्रीति-प्रकाश-भूमि है। यहाँ भगवल्लीला ऐश्वर्यमयी नहीं होकर, निरतिशय प्रेममयी है। जैसे समुद्रकी तरङ्गें समुद्रका ही विलास होती हैं, वैसे ही सच्चिदानन्दमयी जगज्जननीका भी प्रकाश यहाँ ऐश्वर्यरूपमें नहीं हो पाता। यहाँ तो प्रेम-घन-सिन्धु ही सर्वत्र लहराता है। अतः भगवती जगज्जननी महादेवी भी यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके लिये सुखदायिनी – उनकी लीलाकी सूत्रधारिणी होकर ही अवतरित होती हैं, ऐश्वर्यमयी होकर नहीं।

यहाँ यह नित्य ध्यान रखनेकी वस्तु है कि ब्रजराज्यकी प्रकट-लीलामें जितने भी लीला-सहचर हैं, चाहे वे वात्सल्यभाव-प्रधान हों, चाहे सख्य एवं मधुरभाव रखनेवाले हों, सभी जगज्जननी भगवती जगदम्बाके ही हृदयकी प्रेमनिधि हैं। सच्चिदानन्दघन-सिन्धु ब्रजकी लीला भगवतीके आनन्द-विलास, आनन्दोच्छलनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह भगवतीकी अचिन्त्य महिमा है कि वे भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेमलीलाकी पार्षद बनी उनको सुख देनेके हेतुसे अनन्त चेष्टामयी, अनन्त स्फुरणामयी हो उठती हैं।

ये महाऐश्वर्यमयी जगज्जननी ही राधा, ललिता, विशाखा, कुन्दवल्ली आदि असंख्य सखियाँ बनकर ठीक प्राकृत बालिकाओंकी तरह ही चेष्टा करती हैं। अप्राकृत पूर्ण चिदानन्दमयी जगन्माताका यह प्राकृतानुकरण देखनेमें अतिशय मनोहारी होता है। जिनके सङ्कल्पसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका सृजन, पालन एवं संहार, सञ्चालन होता है, उनकी प्राकृत लीलाको देखकर सर्वसाधारणको तो क्या, भगवतीके नित्य परिकर, उनके सम्प्रदायके आचार्य – दुर्वासादि भी भ्रमित, विमोहित हो उठते हैं; उन्हें संशय हो जाता है कि ये सर्वेश्वरी हैं या नहीं ? वे उनकी ही चरणोंकी शरण लेकर ही जब अप्राकृतकी प्राकृत लीलाका आस्वादन करते हैं, तभी उनके माधुर्यमें डूब पाते हैं। उन्हें महाशक्ति जगज्जननीकी भक्तवत्सलता, प्रेमाधीनताका तभी पता चलता है। अखिल ब्रह्माण्डकी पालनकर्त्री होकर भी वे महामाया अपने असीम अनन्त ऐश्वर्यका तनिक-सा भी प्रकाश न करके साधारण गोप-बालिकाएँ बनी कैसा मुग्ध खेल खेलती हैं; हँसती हैं, किलकती हैं, नाचती हैं, थिरकती हैं। वे आनन्दस्वरूपको ही आनन्दमें मत्त कर देती हैं; घनआनन्दमयमें आनन्दकी स्पृहा उत्पन्न कर देती हैं। अप्राकृतकी लीला अप्राकृत ही होती है, परन्तु देखनेमें प्राकृत-सी लगती है। यहाँ मायिक जड़ जगत् प्रवेश नहीं कर पाता, किन्तु वह अप्राकृत प्रतीतिमें सर्वथा जड़की ही भाँति दिखता है।

भगवती जगन्मातामें अनन्त शक्तियाँ निहित हैं, सभी एक-से-एक अपूर्व, बढ़कर हैं। उनके ऐश्वर्यकी कहीं कोई सीमा नहीं। अचिन्त्य ऐश्वर्य है उनका, किन्तु भगवतीकी महालीलाशक्ति एवं कृपाशक्ति सभी इतर शक्तियोंमें प्रधान होती हैं। भगवतीकी अन्य शक्तियाँ, चाहे वे कितनी ही असमोर्ध्व क्यों न हों, इन दोनों शक्तियोंके विरोधमें आत्मप्रकाश नहीं

कर सकतीं - यह नियम ही है। जहाँ ये दोनों शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं उस कालमें भगवतीकी सभी अन्य शक्तियाँ इनकी अनुगत होकर ही चलती हैं। भगवतीकी लीलाशक्तिकी इच्छासे उनकी सर्वज्ञताशक्ति एवं ऐश्वर्यशक्ति अवगुण्ठित हुई गोपनभावको ग्रहण कर लेती हैं , यही उनकी प्रेमाधीनता, लीलाधीनता है।

लीलामयीके लीलासिद्धान्तको समझनेके लिये लीलामयीके चरणोंकी शरण लेनी ही होती है, यही एकमात्र उपाय है। जो अपनी विद्या, शास्त्रज्ञान, पुरुषार्थजन्य तर्कशक्तिके बलपर भगवतीको समझना चाहे, वह कदापि नहीं समझ सकता है। भले ही वह अपनी मायिक बुद्धिसे भ्रमित होकर प्राकृत भाव करले। इसीलिये ब्रह्मा, इन्द्रादि देवताओंके भ्रमित होकर परितप्त होनेके अनेक उदाहरण मिलते हैं। जो अचिन्त्य महाशक्तिकी शरण लेते हैं, वे ही विपरीत धारणासे बच पाते हैं। अन्यथा संशयग्रस्त बुद्धि लीलामें रूपक, कल्पना, नाट्य, प्रक्षिप्तता आदि दोषोंको ग्रहण कर लेती हैं। भगवतीकी लीला अत्यन्त गुह्य है।

भगवती लीलामहाशक्ति आदिजननीका ऐश्वर्य तो सर्वत्र व्याप्त है ही, उसे देखनेके लिये प्रयासकी आवश्यकता ही कहाँ है ? जगज्जननी माँका माधुर्य अतिशय गोपनीय है। उसका प्रकाश उनकी कृपाके बिना किसीकी बुद्धिमें स्थिर हो, यह असंभव है। अनन्त ऐश्वर्यमयी माँका माधुर्य उनकी मुग्धतामें ही व्यक्त होता है। वे जब महान्-से-महान् होकर अल्पवयस्का राधा, ललिता, विशाखा, कुन्दवल्ली बनती हैं, श्रीकृष्ण बनकर घुट्टरुन चलती हैं, पूर्णज्ञानकी एकछत्र अधीश्वरी महाविद्या होकर अज्ञ हो जाती हैं, गायोंको बछड़ोंको ढूँढ़ने चलती हैं, मिलन एवं विरहकी लीला करती हैं, उसी समय उन महाशक्तिमें माधुर्यसिन्धु उच्छलित होने लगता है, उस माधुर्यसिन्धुमें एक-से-एक विलक्षण विविध तरङ्गें लहराने लगती हैं। तभी सारा विश्व परमानन्द-सुधासे आप्लावित हो जाता है।

यह त्रिजगन्माता आदिजगज्जननी महायोगमायाका विलक्षण विलास है कि वे माधुर्यकी कल्पलताएँ ब्रजकी गोपीरूपमें आत्मप्रकाश करती हैं, वे ही स्वयं श्रीकृष्णरूपमें कल्पवृक्ष बनकर अपनी ही स्वरूपाशक्तियोंको अपनेसे नित्य लिपटाये रखती हैं।

परस्पर विरुद्ध धर्मोंका युगपत् - एक ही समय साथ-साथ समावेश और समन्वय भगवती जगज्जननीका स्वाभाविक गुण है। जगज्जननी महायोगमायाशक्तिके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी इस विरोधका समन्वय नहीं है। जगज्जननी अनन्त ऐश्वर्य-निकेतन होकर भी ललिता, राधा, कुन्दवल्ली के रूपमें मैया कीर्त्तिदासे, सीताभावमें अपनी सास कौशल्यासे, एक-एक वस्तु माँगती हैं। श्रीकृष्णरूपमें वे सर्वसद्गुणमयी अनन्त गुण-गण-निकेतन होकर भी चोरी करती हैं, अपनी ही स्वरूपाशक्ति राधाकी एक भङ्गिमा मात्रके दर्शनार्थ चञ्चल, आतुर हो जाती हैं।

यह विरुद्धधर्माश्रय ही भगवतीकी भगवत्ता है। इसको समझे बिना लीलामहाशक्तिकी लीलाओंका साम्मञ्जस्य नहीं हो सकता। लीलाकी माधुर्यराशिका आस्वादन संभव ही नहीं। उस अवस्थामें मात्र भगवतीके अचिन्त्य ऐश्वर्यका ज्ञान ही भले समझमें आवे। इस प्रकार भगवतीके पूर्ण स्वरूपज्ञानमें कमी रह जाती है।

ये लीलामहाशक्ति अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया ही हैं जो परात्पर परब्रह्म निर्गुण निराकार निर्विशेष परमात्मतत्वको, जो स्थूल नहीं है, सूक्ष्म नहीं है, सब प्रकारसे वर्णविहीन है – उसे श्यामवर्ण, अरुणलोचन बनाकर लीलामञ्चपर उतार देती हैं ; जो ***'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्'*** को दो हाथ, दो चरण, दो नेत्र, एक मुखवाला – क्षण-क्षण परमानन्द बढ़ानेवाला बनाकर गौ चराने, वंशी बजाने वन-वन भेज देती है। कोई समझेगा कि वह सच्चिदानन्दकन्द भगवान्को क्रोध करके मटका फुड़वानेका अभिनय कराती है, वह उनको अश्रुजल बहाता, रोता, मचलता दिखाकर कोई दम्भाचरण कराती है, छल कराती है – यह बात सर्वथा नहीं है। वह तो परात्पर परब्रह्मसे उसके आन्तरिक बाल्यभावकी मधुर अभिव्यक्ति कराती है। यह परात्पर परब्रह्मका आन्तरिक असली लीलाभाव प्रकट करती है। वह यशोदाके दूध उतारनेको चले जानेपर वस्तुतः एकान्तमें क्रोध करके दहीका मटका फोड़कर भाग जानेके विशुद्ध

बाल्य चापल्यका दिग्दर्शन कराती है। यह मात्र नाट्य नहीं, विशुद्ध आन्तरिक वात्सल्यभावजन्य चापल्यका प्रकाश करती है।

रूपमाधुरी, वेणुमाधुरी, लीलामाधुरी, मुसकानमाधुरी – यह परात्पर परब्रह्मकी बाह्य सज्जामात्र नहीं हैं, यह सब उसका आन्तरिक आनन्दोच्छलन है, जिसका लीलामहाशक्ति द्वारा केवल ब्रजप्रदेशमें ही प्राकट्य किया जाता है।

कीर्त्तिदा मैयाके तथा यशोदा मैयाके हृदयमें राधाकृष्णके सिवा कुछ रहता ही नहीं। उनके हृत्पटलपर बालराधाकृष्ण सदा भरपूर समाये रहते हैं। उनका हृत्पटल ही भावरस-आप्लावित है। इन पवित्र भावरसोद्रेकोंकी सृजन एवं पालनकर्त्री तो भगवती अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया ही हैं। इसी प्रकार मधुर शृङ्गारभावमें श्रीराधाके रूपमें ये भगवती लीलामहाशक्ति ही आह्लादिनी बनी महाभावोंका स्वयंमें अतिशय उद्दाम उच्छलन अवतरित करती हैं। अनन्त सौन्दर्य एवं रसोद्रेककी जब दोनोंमें होड़ लग जाती है तो सच्चिदानन्दकन्द रसराजमें महाभावसिन्धु उछलने लगता है, सच्चिदानन्दकन्दतत्वमें अनन्त रसैश्वर्य उमँड़ने लगता है। उस समय जब समग्र रसैश्वर्यको पूर्णतया पानकर भी महाभाव पुनः अतिशय सतृष्ण हो उठता है, तब रसराजको महाभावके सम्मुख हार ही माननी पड़ती है। यह भगवती लीलामहाशक्तिका ही चमत्कार है जो नित्यविजयी , विजयस्वरूपको पराजित होनेके लिये बाध्य कर देती है – यही भगवतीका अपूर्व सामर्थ्य है।

उत्सव था आज नृपतिपुर में अवनीश भवन में भी, प्रियतम !
थी देर घड़ी आधी की ही होने में मध्यनिशा, प्रियतम !
नीराजन लिये खड़े नृप थे, रानी थीं पास खड़ी, प्रियतम !
थीं महात्रिपुरसुन्दरी अहो ! सचमुच अलसायी सी, प्रियतम ।।३६।।

आज उत्सव था राजपुरीमें। सम्पूर्ण राजभवन ही उत्सवके प्रवाहमें निमग्न हो चुका था। मध्य निशा होनेमें मात्र आधी घड़ीकी देर थी। हाथमें नीराजन लिये महाराज विराजित थे एवं महारानी उनके पास ही खड़ी थीं। अचानक अहो ! ऐसा लग रहा था, जैसे महात्रिपुरसुन्दरीकी आँखोंमें सचमुच आलस्य भरा हो।।३६।।

जिज्ञासा

नीराजनके अवसरपर भगवती महादेवी महात्रिपुरसुन्दरीके नेत्रोंमें आलस्य भरा हो, ऐसा वृषभानुगेहिनी कीर्त्तिदाको क्यों अनुभव हुआ ? उस दिवस तो महादेवीके पूर्ण कृपापात्र वृषभानु महाराजकी अर्चन-साधनाके अवधिके सत्तर वर्ष पूर्ण हुए थे। जब योग्य साधक अपनी साधनामें खरा उत्तीर्ण हो, तो इष्टदेवीका उल्लसित होना चाहिये। महादेवी उस अवसरपर अलसायी दृष्टिगोचर हों, कृपया यह रहस्य खोलकर समझाइये।

समाधान

यह पूर्वतः ही कहा जा चुका है कि भविष्यमें ये महादेवी ही सम्पूर्ण प्रीतिलीलाके खेलका प्रारंभ करेंगी। भविष्यके वर्षोंमें घटनाक्रम इसी प्रकार घटित होना है। सर्वप्रथम ये भगवती स्वयं ही रङ्गमञ्चमें सूत्रधारिणीके रूपमें कुन्दवल्ली सखीके रूपमें प्रकट होने जा रही हैं। तत्पश्चात् मात्र सात दिवस पश्चात् ही राजपुत्रके रूपमें 'श्रीदाम' सखाका प्राकट्य - इनका ही वरदान प्रतिफलित हो रहा है। इसके बाद तेरह मास सत्रह दिवस पश्चात् शारदा नामकी कीर्त्तिदाकी मौसेरी बहिनके गृहमें कीर्त्तिदा एवं कीर्त्तिमतीके सम्मुख इन महादेवी भगवतीकी ही सच्चिन्मयी ज्योतिका प्रकाश सखी ललिताका रूप धारणकर बालिका बनकर क्रीड़ा करने जा रहा है, और सबको चकित करता है। पुनः सभीको अनुभव कराता है, कि मानो भगिनी शारदाने पुत्रीका प्रसव किया है। जन्मोचित सब-के-सब कर्म वैसे ही सम्पन्न होते हैं, जैसे

होने चाहियें। तत्पश्चात् भाद्रपद पूर्णिमातक महारानी कीर्त्तिदा अपनी मौसेरी बहिन शारदाके गृह उच्चग्राममें ही निवास करती हैं। प्रतिपदाके दिवस ही गुप्तचरोंसे समाचार आ जाता है कि संभावना है कि कल ही यह नगर मनुजाद राक्षसोंके आक्रमणसे नष्ट कर दिया जावेगा। महारानी सभी ग्रामवासियोंको लेकर वृषभानुपुर आ जाती हैं। महादेवी भगवतीको ही चमत्कारिक रूपसे इन सभीकी रक्षा करनी है। कीर्त्तिदा अपनी दोनों बहिनें - शारदा, कीर्त्तिमती एवं उनके सम्पूर्ण परिवार, यहाँतक कि सभी ग्रामवासियोंको लेकर सकुशल वृषभानुपुर पहुँच जाती हैं। दो घड़ी बीतते-न-बीतते सबको राजनगर दीखने लग जाता है और सभीको सीमापर ही अगवानी करते महाराज वृषभानु मङ्गल-कलश लिये दिख जाते हैं। पुनः भगवती महादेवीको ही अपनी विभुताका प्रकाश करना है और इन सभी नवीन आगन्तुकोंके लिये सुन्दर-से-सुन्दर पृथक्-पृथक् यथायोग्य आवासकी व्यवस्था करनी है। सभी ग्रामवासियोंको जो सुख-सुविधा अपने ग्राममें स्वप्नमें भी नहीं प्राप्त थी, वह यहाँ राजपुरीमें प्राप्त हो जाती है। वे अपने ग्रामके पुरातन जीवनको ही विस्मृत कर जाते हैं। ये सभी भविष्यकी घटनाएँ भगवती महादेवीको ही लीला-रङ्गमञ्चमें स्वयं ही पात्र, काल एवं देश बनकर संघटित करनी हैं।

इसके पश्चात् शरद् बीतती है, हेमन्तकी सम्पूर्ण सुषमासे धरणी विभूषित हो उठती है। प्रातःकाल ही भगवतीको नये रङ्गस्थलकी सूचना महारानी कीर्त्तिदाको करनी है। कीर्त्तिदा महारानीको ठीक अनुभव होता है -'महादेवी सहसा हँस पड़ती हैं।' कीर्त्तिदा आश्चर्यसे अभिभूत हो उठती हैं। वे महान् आश्चर्यमें भरी देखती हैं कि भगवती महादेवीका उरस्थल द्वारकी तरह खुलने लगता है। उनका हृदयस्थ अञ्चल परदेकी तरह दायें-बायें सरकने लगता है। फिर महारानी कीर्त्तिदाको एक अत्यन्त मनोहारिणी अनिर्वचनीय सुन्दरी गौरवर्णा भोली-भाली छोटी बालिकाके दर्शन होते हैं। वह उनके अत्यन्त समीप आकर उनके कुन्तलोंकी एक लटको हाथमें लेकर मधुस्यन्दी स्वरोंमें अतिशय प्यारसे 'री मैया ! ' कहकर महारानीको प्रेम-मूर्च्छामें सराबोर कर देती है। तत्पश्चात् महारानी देखती हैं - एक परम रमणीय पुष्पित कदम्ब है, उसके नीचे एक नित्यकिशोरी एवं एक नित्यकिशोर विराजित हैं। और फिर त्रिभुवन-जननीका स्वर उन्हें सुनाई पड़ता है -'परम सती ! महारानी ! आज तू मेरे हृदयका प्रत्यक्ष दर्शन करले। जो असमोर्ध्व सच्चिदानन्दमयता एवं भगवत्ताका भी मूल तत्त्व — मधुरिमा है, वह नीली-पीली यह द्युति ही है। जानती हो महारानी ? यह नील-पीतमय मेरा नित्य हृदय है, जो दो रहकर भी नित्य एक है और एक होकर भी नित्य दो है। अभी-अभी यह नित्यकिशोरी ही तेरा दृग-विषय होकर तुझसे 'री मैया-!' कहकर बोली थी। यद्यपि ये सभी भविष्यकी बातें हैं, किन्तु तुझे पूर्वतः ही बतला दे रही हूँ। यह नित्यकिशोर सर्वप्रथम तेरी प्राणसखी गोपरानी यशोदाका जब दुग्धपान कर लेगा, तत्पश्चात् ही यह किशोरी तेरे पयोधरोंका दूध पीने आवेगी। यह नित्यकिशोर तेरी प्राणसखी यशोदाके प्राणोंमें समाया है, एवं यह नित्यकिशोरी तेरे प्राणोंमें।'

और इस भागवती सन्देश और दिव्य दर्शनके पश्चात् ही भगवती स्वयं ही गोपराज ब्रजेन्द्र नन्दके गृहमें यशोदाके पुत्रके रूपमें अवतार लेती हैं। वे परमाद्या ही स्वयं ठीक पन्द्रह दिवस पश्चात् ही कीर्त्तिदाकी कोखसे 'श्रीराधा' रूपमें प्रकट होती हैं। इसके पश्चात् रसिकशेखर श्रीकृष्णके रूपमें वे स्वयं भगवती ही पुनः अपनी छायाको कीर्त्तिदा महारानीके घरमें स्थापित करनेकी इच्छाकर परम रसमयी साँवरी सखी मञ्जुश्यामाके रूपमें पुनः कीर्त्तिदाकी ही कोखसे जन्मग्रहण करती है। ये सभी भविष्यमें घटित होनेवाला घटनाक्रम है।

यह परम एवं अकाट्य सत्य है कि परिपूर्णतम परात्पर परतत्त्व परमात्माका आवरणरूपा मायामें जन्म कदापि संभव नहीं है। जो स्वयं मायातीत, गुणातीत हैं, वे भला माया-बन्धनको क्यों स्वीकार करें ? किन्तु यह अघटन-घटना-पटीयसी भगवान्‌की आत्ममाया योगमाया महादेवी लीलामहाशक्तिका ही चमत्कार है कि वे घन सच्चिदानन्दकन्द अद्वय परतत्वको, साथ ही उसके घनीभूत आह्लाद-ह्लादात्मातत्वको परिस्फुट करनेके लिये एवं

उसका नित्य नवीन-नवीन रूपमें स्वयं उसे ही आस्वादन करानेके लिये प्रेमविग्रहोंके रूपमें प्रकट करती हैं। यही उनका लीला-रङ्गमञ्च है।

जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। यह भगवती लीलामहाशक्तिकी ही इच्छाशक्तिका चमत्कार है कि वे सबके ईक्षणकर्त्ता, अन्तर्यामी, निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, पूर्णकाम, अजन्मा एवं अद्वय परमात्माको एक नहीं, अनेक , एक-से बढकर-एक, अद्वितीय, निरुपम, सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्यनिधि, सच्चिदानन्दसान्द्राङ्ग, अचिन्त्यशक्ति, आत्मारामगणाकर्षी रूपोंमें प्रकट कर देती हैं। जब स्वयं भगवान्को अपनी इस आत्ममाया अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाशक्तिके महाइच्छा-प्रभावको स्वीकारकर अवतरित होना पड़ता है, तो ये स्वयं भगवती महामाया भी अपने संधिनी स्वरूपसे वृन्दावनधाम, अप्राकृतरूपमें सच्चिन्मय चर-अचर अनन्त जीव-समुदाय, अप्राकृत सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, गोप-गोपी, असंख्य लीला-परिकर, गिरि-पर्वत, वन-उपवन, महल-मकान,यमुना, निर्झर, सर-सरोवर एवं सुरम्य रासस्थलियोंके रूपमें प्रकट हो जाती हैं। वे इन सबका सृजन, संवर्धन, पालन, निरीक्षण अपने ही संधिनीस्वरूप वृन्दादेवीके रूपमें करती हैं। वे स्वयं ही महामाया गैरिक वस्त्र धारणकर तपस्विनी पौर्णमासी बनकर सम्पूर्ण चौरासी कोसकी परिधिमें फैले अपने ही ब्रजधाममें त्रिकालज्ञ होकरके पूजित होती हैं और लीला-चक्रका चितिरूपमें प्रवर्त्तन करती हैं। वे स्वयं ही अपनी ह्लादिनी शक्तिके रूपमें श्रीराधा होकर प्रकट होती हैं और अपने ह्लादिनी स्वरूपका महा-विस्तार अपने ही कायव्यूहरूप ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता आदि अष्ट सखियों और इनके यूथोंकी असंख्य मञ्जरियों, दासियों, सखियोंके रूपमें करती हैं। वे स्वयं ही श्रीकृष्णके असंख्य सखा मधुमङ्गल, सुबल, श्रीदाम, वरूथप , किङ्किणी, तोक, सुदाम आदि बनती हैं और लीलामञ्चका अनन्त विस्तार करती हैं।

जब ये भगवती जगज्जननी महादेवी इतना विशाल रङ्गमञ्च प्रारंभ करने जारही हैं और आज हरिशयिनी एकादशीके ही शुभ परम मङ्गल अवसरपर जब आदि पुरुष नारायण शयन करने जा रहे हैं, ये नारायणी सूत्रधारिणी बनकर प्रकट हो रही हैं।

इस अवसरपर यह स्वाभाविक ही है कि रङ्गमञ्चकी मुख्य सञ्चालिका थोड़ेसे समयके लिये विश्रामका मन बनालें। जिसे भविष्यमें प्रतिक्षण जागरूक रहकर खेलके नये-नये प्रसङ्ग प्रस्तुत करने हैं, एक-से-बढकर एक, अनोखे महाभावमय संवेगोंसे भरे घटनाक्रम निर्माण करने हैं, उनके बीज डालकर उन्हें पल्लवित-पुष्पित करने हैं और तब इतनी ऊँचाइयोंतक चिन्मयरसका उच्छलन करना है कि कल्पों-कल्पोंतक इस रस-आप्लावनका कहीं कोई आदि-अन्त भी नहीं खोज पावे, ऐसी अप्रतिम निरुपम लीलाको प्रारंभ करनेके पूर्व यदि प्रमुख लीलाविधात्री थोड़ा-सा विश्रामका मन बनाले, किञ्चित्-सी अलसा ले, कुछ पलोंके लिये ही विश्राममें उस महाक्रियाशक्ति, इच्छाशक्तिके सजग उन्मीलित नेत्र आनन्द एवं विशुद्ध सत्वमय विश्राममें थोड़ेसे निमीलितसे होने लगें, यह परम स्वाभाविक ही है। इसी स्वाभाविकतावश ही उत्सवके मध्य भगवती महादेवीके नेत्रोंमें महारानीको आलस्यका भाव दिखता है।

दौड़ी आयी थी कहने यह दासी मन्दिर में ही, प्रियतम!
हैं प्रसव-वेदना-सी अनुभव कर रही सचिव-गृहणी, प्रियतम!
श्री-प्रतिमा के दृग-कमल अहो! क्षणभर के लिये हिले, प्रियतम!
सङ्केत मिला था रानी को जाने के लिये वहीं, प्रियतम।।३७।।

ठीक उसी समय मन्दिरमें ही दौड़ी हुई दासी आ पहुँची थी। वह आते ही बोल पड़ी थी-'सचिवगृहिणी प्रसववेदनाका अनुभव कर रही हैं, भला !' तत्क्षण श्रीप्रतिमाकी आँखें भी क्षणभरके लिये हिल गयी थीं। स्पष्ट सङ्केत प्राप्त हो गया था महारानीको वहीं चले जानेका।।३७।।

छूकर वे श्रीपद नख को थीं चल पड़ीं तुरन्त तथा, प्रियतम!
पहुँची उस सदन कक्ष में थीं जैसे, बस, भान हुआ, प्रियतम!
है ज्योति अंशुमाली की सच फैली सर्वत्र वहाँ, प्रियतम!
दासीकी आँखें बन्द हुईं, भीतर वह जा न सकी, प्रियतम।।३८।।

महारानी भी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीके चरणनख-चन्द्रको छूकर तुरन्त चल पड़ी थीं। जैसे ही वे उस सदनकक्षमें पहुँची कि उन्हें भान होने लगा - ओह ! यहाँ तो सचमुच सर्वत्र अंशुमालीकी ज्योति फैली हुई है। महारानीके पीछे-पीछे दासी भी लौट आयी थी। दासीकी आँखें तो ज्योतिकी चकाचौंधसे बन्द हो गयीं; वह तो भीतर जा नहीं सकी।।।३८।।

मीलितनयना ध्यानस्थ हुई मन्त्री की जाया की, प्रियतम!
गोदी में प्रगट जगन्माता हो गयी अचानक थीं, प्रियतम!
अप्रतिम सुन्दरी नवजाता कन्या का वेष लिये, प्रियतम!
केवल रानी ही देख सकीं अद्भुत उस घटना को, प्रियतम।।३९।।

उस ओर मन्त्रीपत्नी मीलितनयना रहकर ध्यानस्थ-सी विराजित थी। देखते-न-देखते उसके अङ्कमें साक्षात् जगन्माता अचानक प्रकट हो गयीं। अहा ! कितना सुन्दर वेष था उनका उस समय ! अप्रतिम सुन्दरी नवजात कन्याका वेष धारण किये हुए वे थीं। किन्तु उस अद्भु त घटनाको केवल महारानी ही देख सकीं ।।३९।।

क्षणभर में फिर उसपर निर्मल आवरण एक आया, प्रियतम!
वे नाल आदि वस्तुएँ सभी निर्मित हो गयीं वहाँ, प्रियतम!
रो उठी बालिका भी वह अब इस भाँति उधर मानो, प्रियतम!
नारायण निद्रित हुए, इधर वे नारायणी जगीं, प्रियतम।।४०।।

क्षण बीतते-न-बीतते उस बालिकापर एक निर्मल आवरणका आविर्भाव हो गया। और यह देखो, वे नाल आदि जन्मके समयकी सभी वस्तुएँ अपने आप प्रकट हो गयीं वहाँ। इतना ही नहीं, अब वह बालिका भी रो उठी - ठीक इस भाँति मानों उधर तो भगवान् नारायण निद्रित हो उठे, और इस ओर नारायणी जग उठी हों।।४०।।

कन्या के मुखमण्डल पर थी मोहनता श्री-सी ही, प्रियतम!
अङ्गों में भी वैसी ही थी दुःसह-सी प्रभा भरी, प्रियतम!
रोना उसका उस समय अहो! श्रुति-मधुर तन्त्ररव था, प्रियतम!
दर्शक आनन्दविमूढ हुए, खिल उठी प्रकृति सारी, प्रियतम।।४१।।

उस कन्याके मुखमण्डलपर श्रीदेवीकी भाँति मोहनता परिपूरित थी। सम्पूर्ण अङ्गोंमें भी ठीक-ठीक वैसे ही महादेवीका दुःसह तेज भी व्याप्त हो रहा था। वह रो अवश्य रही थी,पर अहो! उसका वह क्रन्दन मानो एक श्रुतिमधुर अद्भुत तन्त्ररव ही था। दर्शक पर्याप्त मात्रामें एकत्रित हो गये थे। आनन्दविमूढ हो गये थे वे सब-के-सब। प्रकृतिका सम्पूर्ण साम्राज्य ही खिल उठा था।।।४१।।

जिज्ञासा

कृपया सखी कुन्दवल्लीके चरित्रपर प्रकाश डालें। आपने श्रीराधामुख्या सभी सखियोंका-परिचय दिया है किन्तु वहाँ भी कुन्दवल्ली सखीका उल्लेख नहीं है।

अथ श्रीकुन्दवल्ली चरित्रम्

यह ब्रजमण्डल विलक्षण अप्राकृत प्रेमदेश है। यहाँके सभी नर-नारी, आबाल-वयोवृद्ध, पशु-पक्षी, यहाँतक कि चर-अचर कीट-पतङ्गतक सभी एक मात्र सच्चिन्मयी भगवतीके ही प्रकाश हैं। इस सच्चिन्मयतासे छलकते हुए भी ये सभी ह्लादिनीशक्तिसे पूरे जुड़े होनेके कारण एवं उसके ही कायव्यूहरूप होनेसे एक मात्र ह्लादात्मा श्रीकृष्णके सुखसे सम्बद्ध हैं। सभी मात्र श्रीकृष्णकी रुचि-सम्पादनके लिये ही थिरक रहे हैं। वे खाते-पीते हैं – श्रीकृष्णके सुखके लिये, उठते-बैठते, चलते-फिरते हैं – श्रीकृष्णके सुखके लिये; उनके प्राणोंका प्रत्येक स्पन्दन होता है, मात्र श्रीकृष्णके सुखकी साधनाके लिये ही । यही दशा निरे बालपनेसे कुन्दवल्लीकी भी है।

सखी कुन्दवल्ली कीर्त्तिदा मैयाकी छोटी बहिन कीर्त्तिमतीकी पुत्री है। वह अपने निरे शिशुपनेसे ही देखती आयी है कि उसकी माताकी गोदमें उसकी बड़ी मौसी महारानी कीर्त्तिदाकी सन्तानें, पहले श्रीदाम एवं तत्पश्चात् श्रीराधा, और तब साँवली सोहनी कन्या मञ्जुश्यामा सदासे ही पल्लवित होती रही है। कुन्दवल्लीने अपनेको कभी अपनी माताके पास एकाकिनी नहीं पाया है। उसने निरी शिशु अवस्थासे ही यही समझा है कि उसकी समान स्नेहशीला दो माताएँ हैं, एक कीर्त्तिदा और दूसरी कीर्त्तिमती। उसे सदैवसे ही अपनी माता कीर्त्तिमतीसे अधिक अपनी बड़ी मौसी महारानी कीर्त्तिदाका स्नेह मिला है। महारानी कीर्त्तिदा जब कभी भी अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीदामको दूध पिलाती होती हैं तो वह अपना दूसरा स्तन अवश्य ही कुन्दवल्लीके मुखमें दिये बिना नहीं रहतीं। इसी प्रकार कीत्तिमतीके स्तनोंपर भी श्रीदाम एवं उसका दोनोंका ही सदैवसे समान अधिकार रहा है। उसकी माँका एक स्तन वह पीती है, तो दूसरा स्तन श्रीदाम भैया पान करता है। समवयस्क जो हैं दोनों।

श्रीदाममें नीलशिशुका दर्शन

उसके श्रीदाम भैयाके गोरे मुखकी शोभाकी प्रशंसा सम्पूर्ण ग्राममें सर्वत्र होती ही रहती है। किन्तु बहुत ही आश्चर्यकी बात है कि उसको श्रीदाम भैया कभी गोरे नहीं दिखते। उसे तो उस गोरेपनके भीतर एक अनुपम सुन्दर नीलज्योति भरी दृष्टिगोचर होती है। वह जब भी उस शोभाको निहारती है, निहारती ही रह जाती है। बन्धूकवर्ण अधरोंपर हास्य छटा बिखेरता, समस्त अङ्गोंको अलौकिक शोभासे नचाता, अपनी कृष्ण कुन्तल राशिमें मयुरपिच्छ खौंसे एक नवनीरदवर्ण बालक उसे सदैव अपने श्रीदाम भैयाके भीतर ओतप्रोत दिखता रहता है। वह बालक उसे इतना अधिक आकर्षक लगता है कि शिशु बाला कुन्दवल्ली एकटक श्रीदाम भैयाकी ओर ही निहारती रहती है। मौसी कीर्त्तिदा अनुभव करती है, मानो दोनों भाई-बहिनोंके अप्रतिम प्रेमका यह प्रकाश है। परन्तु तथ्य यह है कि कुन्दवल्लीको श्रीदाम श्रीदामके रूपमें दिखता ही नहीं है। हाँ, ऊपरी देह-कलेवर तो श्रीदाम भैयाका ही रहता है। परन्तु उसे सतत अनुभव होता है कि श्रीदामका गोरा कलेवर तो मात्र एक खोल है, उसके भीतर तो भरी है अप्रतिम शत-सहस्र सौन्दर्य-कालिन्दीकी कृष्णधारा। कुन्दवल्लीका स्तनपान उस नील सौन्दर्यपर दृष्टि पड़ते ही रुक जाता है। उसकी माता दुग्धपूरित स्तनकी कर्णिकाको बार-बार उसके मुखमें देती है, परन्तु दुग्धपानमें उसका मन संलग्न ही नहीं हो पाता। वह तो इस नील आभामय शिशुछविपर जो उसे भैया श्रीदाममें परिपूरित दिखती है, अपने कोटि-कोटि प्राण न्यौछावर कर देती है। उसकी कृष्णपूरित दृष्टिमें श्रीदाम भैयाका अस्तित्व ही विलीन हो जाता है।

प्रेमभ्रान्त कुन्दवल्ली इसी मानसिकताको लिये नवजात शिशु-अवस्था से बाल्यावस्थातक पहुँचती है। सर्वत्र उसके नेत्र इस नीलमणि बालकको ढूँढते रहते हैं। रसकी प्रबल लहरोंसे ढँकी उसकी नेत्रेन्द्रियाँ इस बालकके स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं खोज पातीं। बस, उसे वह अपने अग्रज श्रीदामके कलेवरमें ही भरा अनुभव करती रहती हैं।

कभी-कभी ऐसा अवश्य होता है, कि वह नील ज्योति उसके श्रीदाम भैयाके कलेवरको ही पूरा आत्मसात् कर लेती है। उस अवस्थामें उसे श्रीदाम दादा दिखने ही बन्द हो जाते हैं। उस समय वह कृष्ण सौन्दर्य इतना निरुपम होता है कि कुन्दवल्ली मुग्ध हुई अपने होश ही खो बैठती है। उसकी दृष्टि ही स्थिर हो जाती है। उस नील चिज्योतिके अङ्ग-अङ्गपर। 'अहा ! उसकी नख-चन्द्रिकासे उद्भासित होने लगती हैं – नीलकमल सदृश उसकी हथेली एवं अँगुलियाँ। नूपुर आदि आभूषणोंसे उसके चरण पूर्णतया अलंकृत होते हैं। परम सुकोमल अँगुलियोंमें छोटे-छोटे अङ्गुलीयक दमक रहे होते हैं। कुन्दवल्लीके अति निकट वह घुटुरुन चलता आ जाता है। बिम्ब-विडम्बी अरुणिम अधरोंसे वह कुन्दवल्लीपर अपनी ऐसी मुसकान बिखेरता है कि कुन्दवल्ली स्वयंको अपने आसपासके समस्त परिवेशको ही विस्मृत कर जाती है। उस काल अवश्य उसके नेत्र स्थिर हो जाते हैं, और वह बाह्यज्ञानशून्य हो जाती है। यह उसकी दशा अधिकांशतया तभी होती है, जब वह कीर्त्तिदा महारानीके आसपास श्रीदाम भैयाके साथ खेल रही होती है। महारानी तो इसे उसकी मूर्च्छा ही समझती हैं और तब मैया एवं महारानी दोनों ही उसे मातृ-मन्दिरमें महादेवीके चरणोंमें उनकी परम मङ्गलमयी दृष्टिपथपर किसी सचल पालनेमें सुला देतीं हैं।

महादेवीकीकृपा

महारानी एवं कीर्त्तिमती तो यही समझतीं कि किसी अमङ्गल ग्रहका प्रभाव है, अथवा किसी राक्षसी मायाका दृष्टिदोष हो गया है। किन्तु कुन्दवल्लीको जैसे ही मन्दिर-परिसरमें महादेवीके चरणप्रान्तमें डाला जाता है, हठात् उसके सामनेसे वह बालक तो लुप्त हो जाता, और सहस्रों सूर्योंका एक साथ उदय हुआ हो, ऐसा प्रकाश फैल जाता है। वह प्रकाश इतना शीतल होता है मानो सहस्रों चन्द्रोंकी ज्योत्स्ना भी उसके सम्मुख नगण्य है। शिशु कुन्दवल्ली जैसे वयःप्राप्त किशोरी हो जाती है। उसके हृदयके प्रीति-तन्तुद्वार उन्मुक्त हो जाते हैं। वह एक अतिशय दिव्य चिन्मय भावशरीरमें प्रविष्ट हो जाती है, तरुणी किशोरीके सभी चिह्न उसके शरीरमें व्यक्त हो उठते हैं। और वह उस नील चिज्योतिको अपना सम्पूर्ण तन-मन-प्राण समर्पित कर देती है।

तत्क्षण ही दृश्य बदल जाता है। आकाशमें एक रत्नसार निर्मित विमान आ जाता है। दिव्यातिदिव्य सुन्दर तरुणी पार्षदोंके मध्य उस विमानमें उसे तत्क्षण ही शशिशेखरा जगन्माता आरूढ़ दिखाई पड़ती है। उसके रत्नोंकी ज्योतिसे आकाशमण्डल उद्भासित होने लगता है। बरबस वह मानो उन जगन्माताके पार्श्वमें पहुँच जाती है। फिर सुस्फुटित बिम्बफल-से लाल-लाल, पद्म-पंखुडियों-से सुकोमल, साथ ही रत्नज्योतिसे उद्भासित जगन्माताके अधर हिल उठते हैं। वे क्या भाषा बोलती हैं, इसे कोई भी अन्य पार्षदसमूह नहीं सुन पाता, किन्तु कुन्दवल्लीके कर्णविवरोंमें जगन्माताकी शब्दावलीका एक-एक अक्षर अमृत-बूँदोंके समान च्यवित होता है और कुन्दवल्ली प्रफुल्लित हो उठती है। अपनी कृपामयी दृष्टिसे कुन्दवल्लीको रोम-रोमसे आप्यायित करती जगन्माता अन्तर्धान हो जाती है। कुन्दवल्ली जागृत् हो जाती है। उसके रोम-रोममें चञ्चल शिशुसुलभ चेतना सञ्चरित हो उठती है। महारानी कीर्त्तिदा एवं कीर्त्तिमती समझती हैं कि मानो जगन्माताकी कृपासे राक्षसी दोषदृष्टि निवृत्त हो गयी है। वे उसे स्तनपान कराती हैं और कुन्दवल्ली यथावत् शिशुक्रीड़ामें अपने श्रीदाम भैयाके साथ निरत हो जाती हैं। इसी प्रकार कुन्दवल्लीके जीवनके तेरह मास व्यतीत हो जाते हैं।

एक दिवस जब वह तेरह मास एवं बीस दिवसकी ही होती है एवं भाद्रपद शक्ला षष्ठीका अवसर होता है, वह अपनी माता एवं मौसी महारानीके साथ ऊँचेगाँवमें शारदा मौसीके गृहमें गयी होती है। श्रीदाम भैया भी उसके साथ ही होते हैं। वह शारदा मौसीके घर पहुँची ही होती है कि वह देखती है कि यहाँ तो घर जैसी कोई वस्तु है ही नहीं।

उसे तो वहाँ सहस्रों दिवाकरोंकी ज्योति ही उद्भासित होती दृष्टिगोचर होती है। कुन्दवल्लीके सम्मुख तो यह चिज्ज्योति अनेकों ही बार प्रकट हो चुकी होती है, अतः वह इससे न तो भयभीत ही होती है और न चमत्कृत। कुछ ही कालमें वह चिज्ज्योति उनकी समवयस्का कन्या बनकर कुन्दवल्ली एवं श्रीदामके साथ खेलने लग जाती है। कुन्दवल्लीको क्योंकि अनेकों बार ज्योतिदर्शनके पश्चात् जगन्माता ही प्रकट होती दृष्टिगोचर होती हैं, अतः वह उस कन्याको साक्षात् शशिशेखरा ही मान बैठती है। कुन्दवल्ली सकुचाती हुई जैसे ही अपनी मौसी महारानी कीर्त्तिदाके पास पहुँचती है, वह कन्या पहलेसे ही उसकी मौसी महारानीके कण्ठमें झूली उसे दृष्टिगोचर होती है। वह कुन्दवल्लीसे हँसकर कहती है कि 'यह मेरी मैया है।' वह यही बात उसकी मौसी महारानीके मुखसे स्वीकृत भी करा देती है - 'हाँ, मैं तेरी मैया हूँ।' अन्ततः कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम दोनों ही बालक उसे अपनी बहिन मान लेते हैं। किन्तु कुन्दवल्लीको वह कभी अपनी सामान्य बहिन नहीं लगती। कुन्दवल्ली तो यावज्जीवन जब भी उसे देखती है, उसे तो उसके स्थानपर जगन्माता महादेवी ही हँसती दृष्टिगोचर होती हैं।

काल व्यतीत होता जाता है और शनैः-शनैः कुन्दवल्ली दो वर्ष, एक माह, एवं ग्यारह दिनका कालमान पार कर जाती है।

नन्दमहोत्सवका निमन्त्रण

अचानक ही उस दिवस मध्य निशाके पश्चात् गोपेशनगरीसे कोई सन्देश आता है। महारानी कीर्त्तिदा अपनी छोटी बहिन कीर्त्तिमतीके सहित श्रीदाम एवं उसे लेकर तत्क्षण ही जगन्माताको प्रणामकर दिव्य स्वर्णरथमें समारूढ हो गोपेशनगरीकी ओर प्रस्थान कर जाती हैं। 'महाराज वृषभानु भी समस्त भानुपुर-निवासियों एवं राजपरिवारके लोगोंको लेकर शीघ्र गोपेशनगरी पहुँचें' — मैया कीर्त्तिदा परिचारिका द्वारा यह सन्देश भी उन्हें प्रेषित करवा देती हैं। क्षणोंमें ही रथवाहक उन सभीको नन्दभवनके तोरणद्वारपर पहुँचा देता है।

महारानीके आगमनका समाचार मिलते ही श्रीरोहिणी एवं उपनन्दपत्नी तोरणद्वारमें ही उन्हें कण्ठसे लगा लेती हैं। महारानी कीर्त्तिदाको सीधे सूतिकागृह ले जाया जाता है। श्रीदाम एवं कुन्दवल्ली - दोनों बालक अपनी माताओंकी अँगुली पकड़े उनके पार्श्वमें ही होते हैं।

कुन्दवल्ली जैसे ही उस दिवस यशोमतिके सद्योजात पुत्रको देखती है, तो उसके सम्पूर्ण अङ्ग काँपने लगते हैं। उसके ओष्ठ मन-ही-मन बुदबुदाकर बोलने लगते हैं - 'वही श्यामल तेजोलतिकाका नवोन्मिषित पल्लव है जिसे अबतक वह श्रीदाम भैयाके रोम-रोममें भरा नित्य देखती थी। कुन्दवल्लीके हृदयके उमड़ते आनन्द-प्रवाहमें उसका विवेक लुप्त ही हो जाता है। वह मन-ही-मन बारबार ये शब्द बोल रही है -'अहा ! वही है, वही है, सचमुच वही शिशु आया है। प्रसूति-पयङ्कपर उत्तानशायी होकर शिशु अवस्थित है। वह शिशु नहीं, कुन्दवल्लीको तो अपने परम सौभाग्यका तिलक ही दृष्टिगोचर हो रहा है।

नील चिज्ज्योतिमें कुन्दनद्युति विद्युल्लता

आश्चर्य है इस बार भी कुन्दवल्लीको, जैसे पूर्वतः श्रीदाम भैयाके कलेवरकी खोलके अन्तरालमें नीली चिज्ज्योति भरी दृष्टिगोचर हुई थी, ठीक वैसे ही इस नीलमणि बालकके श्याम अङ्गोंमें भी एक अप्रतिम अनिन्द्य सुन्दरी कोई चम्पकवर्णी बालिका भरी दृष्टिगोचर होती है। उस बालिकाका माधुर्य इतना असीम है कि कुन्दवल्ली उस शोभाको देखते-देखते स्वयं ही उस बालिकाके अस्तित्वमें अपना अस्तित्व एकाकार कर देती है। ऐसी अतुलनीय रूपमाधुरी कुन्दवल्लीको अबतक कहीं कभी भी दृष्टिगोचर नहीं हुई थी। कुन्दवल्ली बारबार नयन मीजकर देखती है, यह बालक है या बालिका ? बालकमें बालिका इतनी स्पष्ट भरी परिलक्षित होरही है कि कभी-कभी उसके दृष्टिपथसे बालकका अस्तित्व

ही लुप्त हो जा रहा है, एवं कभी बालिका पूर्णतया बालकमें लीन हो जाती है। कभी नीलमयङ्क चिज्ज्योतिके स्थानपर उसे कुन्दनवर्णी विद्युदाभा दिखने लगती है, और फिर नीलमयङ्क। बालिका संभ्रममें संकुचित हुई मन्दस्वरमें अपने पास ही खड़ी अपनी मौसी महारानी कीर्त्तिदासे प्रश्न कर उठती है-'मौसीजी ! गोपेशमहिषीके अङ्कमें यह पुत्र है,अथवा पुत्री?' बालिकाका भोला प्रश्न सुनकर उसके चतुर्दिक् खड़ी रोहिणी आदि गोपाङ्गनाएँ ठहाका लगाकर हँस पड़ती हैं। महारानी कीर्त्तिदाके मुखसे जगन्माता महादेवी मानो भविष्यवाणी ही कर बैठती हैं -'कुन्दवल्ली बेटी ! यह तेरा दूल्हा है।' कुन्दवल्ली लजा जाती है। सभी गोपाङ्गनाएँ पुनः हँस पड़ती हैं।

उसी क्षण कुन्दवल्लीके अनन्त जन्मार्जित प्रीति-संस्कारों एवं हृदय-सञ्चित स्नेह-रसमें इतना उफान आ जाता है कि यद्यपि वह कुछ भी वाणीसे बोल नहीं पाती, किन्तु अश्रुविन्दुओंके रूपमें उसका उमड़ता भाव-समुद्र झरने लगता है।

सहसा वह अपने मौसा महाराज वृषभानु एवं नन्दरायजी – दोनोंको ही गोपाङ्गनाओंकी भीड़में घिरे प्रसूतिगृहके आँगनमें खड़े देख लेती है। वह अपनी मौसी महारानी कीर्त्तिदाको झकझोरकर महाराज वृषभानुके आगमनका समाचार देती है। मौसीका स्वीकृति-सूचक सङ्केत पाकर वह गोपाङ्गनाओंकी भीड़को एक तरफ करनेमें जुट जाती है, जो गोपेश नन्दराय और वृषभानु महाराजको नीलतनयका मुख देखनेमें कपाटके समान अवरोध बनकर खड़ी है। बालिका कुन्दवल्ली सबको हटाकर राह करती है एवं ब्रजेश तथा महाराज वृषभानु दोनोंको ही इस नीलमयङ्क शिशुकी एक स्पष्ट झाँकी प्राप्त हो जाती है। कुन्दवल्लीको वृषभानु महाराज अपनी गोदमें ले लेते हैं। वह उनकी नेत्रोंसे झरते प्रेम-अश्रु अपने सुकोमल हाथोंसे पौंछने लगती है। फिर धीरेसे उनके कानमें कहती है-'बाबा ! जब यह नन्दतनय बड़ा होगा तो श्रीदाम भैयाके साथ गाय चराने वनमें जायेगा, न ? और बड़ी मैया (मौसी महारानी कीर्त्तिदा) कहती हैं कि यह तेरा दूल्हा होगा। क्या यह सच है ?' बालिकाकी भोली बातें सुनकर स्वीकृति-सूचक सिर हिलाते वृषभानु महाराजके नयन पुनः प्रेमाश्रुओंसे छलक उठते हैं।

कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम हर्षसहित इधर-उधर घूम रहे हैं। उपनन्दजीका पुत्र सुबल जो श्रीदामाका समवयस्क है, वह उन्हें मिल जाता है। तीनों कभी शहनाईवालोंके पास खड़े होकर शहनाई सुनते हैं। कभी नन्द-प्रासादकी छतपर चढ़कर ब्रजकी शोभा देखते हैं। सुबल उन दोनोंको बतलाता है कि महाराज वृषभानुने नन्दतनयके जन्मोपलक्ष्यमें दान देनेके लिये तिलोंके सात पहाड़ निर्माण कराये हैं। उन्हें रत्नोंसे मण्डित किया है। ये पर्वत ब्राह्मणोंको दान दिये जावेंगे।

ब्राह्मण नन्दतनूजका जातक-संस्कार कराने प्रसूतिगृहमें जा रहे हैं। तीनो बालक भी उनके साथ पुनः नन्दतनयको देखने चले आते हैं। यद्यपि उनका मन तो एक क्षणके लिये भी नन्दतनयके पाससे हटनेको नहीं होता किन्तु गोपियोंकी भीड़के कारण मैया कीर्त्तिदा उन्हें बाहर क्रीड़ा करनेका सङ्केत कर देती हैं, अतः उन्हें वहाँसे हटना पड़ता है। कुन्दवल्ली इस नन्दतनूजपर न्यौछावर हो रही है। 'ओह ! इसके कान कैसे सुकोमल, कितने तेजोमय हैं ! इसके होठ कितने पतले और मृदुल हैं!' सहसा कुन्दवल्लीको नन्दतनयके वक्षस्थलपर स्वर्णरेखाका चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। वह अपने श्रीदाम भैयाके कानमें फुसफुसाकर कहती है -'श्रीभैया ! देखो, यह चिह्न तो श्रीनारायण-विग्रहमें होता है, फिर इस नन्दतनयके हृदयमें यह कैसे ? क्या यह साक्षात् नारायणका अवतार है ?'

श्रीदाम कुन्दवल्लीसे हँसकर कहता है -'तू भी तो साक्षात् महादेवी नारायणी ही है। तू जब जन्मी थी तो प्रसूतिगृहमें इतना प्रकाश भर गया था, मानो कोटि-कोटि शीतल भानु जगमगा उठे हों। मैयाने तो मुझे अनेकों बार कहा है- 'इस कुमुदिनीको खेलमें भी मत पीट बैठना, साक्षात् नारायणी ही इसके रूपमें अवतरित हुई है। तभी तो मेरी मैयाने तुझे इसकी दुलहिन कहा है !'

'धत्' - कहकर कुन्दवल्ली श्रीदामको पीटने दौड़ती है और सुबल एवं श्रीदाम दोनों उसके हाथ नहीं आते।

नन्दभवनके तोरणद्वार, राजपथ सर्वत्र दधि-हल्दी,मक्खन-केसर-घृतका कीच मच रहा है। महाराज वृषभानु एवं गोपेश नन्दराय दोनोंको ही गोपोंने मानो दधि-हल्दीसे नहला दिया है। जो आता है, वृषभानुजी एवं नन्दरायजीपर ही दधिमाट उँडेलता है। कुन्दवल्ली ताली बजा-बजाकर अपने बड़े बाबा वृषभानुजीको दधिमें नहाता देख रही है।

महाराज वृषभानु उदारताकी सीमा लाँघ रहे हैं। अबतक उन्होंने ब्राह्मणोंको बीस लाख स्वर्णमण्डित एवं मणिमालाओंसे अलंकृत दुधारू गौएँ दान कर दी हैं। कुन्दवल्ली अपने शिशु मनमें विचार कर रही है – 'सभी गोपाङ्गनाएँ एवं गोप और उसके बड़े बाबा महाराज एवं मौसी महारानी, सभी इस नन्दतनयके जन्मोत्सवपर उपहार बाँट रहे हैं। इस सद्यःप्रसूत बालकको देखने कोई भी आता है तो प्रथमतः कुछ-न-कुछ बहुमूल्य उपहार अवश्य देता है, तब सूतिकागारमें प्रवेश करता है। फिर उसने तो इस नीलमयङ्कको कुछ भी नहीं दिया ! वह मन-ही-मन नीलतनयसे बातें करने लगती है – 'रे ! नन्दतनूज! तू स्त्री है या पुरुष, मैं नहीं जानती। जब मैंने सर्वप्रथम होश सम्हाला, तू मुझे मेरे भैया श्रीदामके अङ्गोंमें भरा दृष्टिगोचर हुआ था। तबसे जब भी मैं श्रीदामकी ओर ताकती,उसके स्थानपर तू ही मेरी ओर कनखियोंसे ताककर मुसकाने लगता था। तेरी उस मुसकान मात्रसे मेरे प्राण मेरे देहको छोड़कर तेरे पास चले आते थे। आज मैं तुझे निरे शिशुरूपमें गोपेशमहिषीकी कोखसे जन्म लिये देख रही हूँ। श्रीदाम भैयाकी देहमें तो तू मुझे मेरी समान वयका दिखता था, और आज तो अभी तेरा जन्म ही हुआ है। परन्तु मुझ छोटी बालिकाकी बुद्धि एक बातको लक्ष्यकर हतप्रभ है कि तेरे भी भीतर मुझे एक कञ्चनवर्णी गोरी भोली बालिका दिख रही है। तेरे रूपमें मुझे कभी तू एवं कभी पूरी वही दिखने लगती है। वह कौन है, इसे मैं नहीं जानती। इतने दिवसों पश्चात् जैसे तू मुझे श्रीदाम भैयाके अङ्गोंमें भरा दृष्टिगोचर होकर, जैसे आज यशोदारानकी कोखसे उत्पन्न दिख रहा है, हो सकता है, यह बालिका भी कुछ काल पश्चात् कहीं जन्म ग्रहण करे ! यह बालिका कौन है, मैं उसी प्रकार नहीं जानती, जैसे पहले तुझे नहीं जानती थी।'

'इतना तो निश्चय है कि मात्र तू ऊपरी खोलसे ही पुरुष-वेषधारी है, तेरे भीतरी खोलपर तो किसी अन्यका ही स्वत्व है। रे, नन्दतनय ! सभी लोग तुझे उपहार रूपमें अपना धन ही प्रदान कर रहे हैं, किन्तु मुझ अकिञ्चनाका तो तू ही एकमात्र धन है, सर्वस्व है। जब तू ही एक मात्र मेरा सर्वस्व है, तो तुझे अपने आपको सौंपनेमें मुझे कठिनाई ही क्या है ? मैं इतना ही चाहती हूँ कि प्रेम-परिभावित मेरे इस समर्पणसे तू सदैव सुखी रहे। तेरा परम कल्याण हो तू मेरे प्रेम-रस-सुधाकी शत-सहस्र धाराओंमें स्नान करता सदैव आनन्दसिन्धुमें निमग्न रह। तेरे रोम-रोममें सदैव सुखसार आनन्द-सम्पदा ही विकसित होती रहे। बस, इतनी मेरे प्राणोंकी लालसा है।'

'मेरे नीलमणि ! मेरे प्राणोंकी अपने चरणोंमें यह तुच्छ भेंट तू स्वीकार करेगा, या नहीं, मैं इसकी भी अपेक्षा नहीं रखती। मैं तो इतना ही कह सकती हूँ, आजके पश्चात् तेरे सिवा मेरा अन्य कोई, कहीं भी नहीं है। मैं अपना सर्वस्व तुझपर एकतरफा न्यौछावर कर दे रही हूँ।'

कुन्दवल्लीका मन हो रहा था, उस सद्योजात बालकको अपने हृदयसे लगाले। वह बालक जो सद्योत्पन्न होनेके कारण नेत्र-निमीलित किये सो रहा है, अपनी कर्ण-सुदीर्घ आँखें खोलकर एक बार उसे निहार ले, किन्तु इसके लिये वह चेष्टा भी कैसे करे ? उसकी बड़ी माँ मौसी महारानी तो नन्दतनयपर अपना समग्र वैभव ही न्यौछावर करनेमें संलग्न है। उसकी मैया कीर्त्तिमती रत्नहारोंकी, स्वर्णाभूषणोंकी एवं अनमोल रेशमी वस्त्रोंकी मञ्जूषाएँ खोले जा रही है और अनमोल-से-अनमोल, एकसे-बढकर-एक अलभ्य रत्नाभूषणोंको महारानी कीर्त्तिदाको सौंपती जा रही है, जिनको वे ले-लेकर प्रथमतः नन्दतनयपर न्यौछावर करती हैं, तत्पश्चात् उन्हें नन्दरायके सभी सम्बन्धीवर्गको सम्मानित कर-करके बधाईके रूपमें देती जा रही हैं। सर्वाधिक सम्मान आज कीर्त्तिदा महारानीने श्रीवसुदेवपत्नी रोहिणीजी एवं बलराम भैयाका किया है। यह कार्य तो महारानी कीर्त्तिदा एवं वृषभानुजीको ही करना है। गोपेशमहिषी यशोदा तो अपने पुत्रको

लिये चुपचाप निस्पन्द मणिखम्भके सहारे पर्यङ्कपर बाह्यज्ञानशून्य लेटी हैं। अन्ततः हारकर कुन्दवल्ली जगन्मातासे ही प्रार्थना कर बैठती हैं। प्रार्थनाके लिये शब्द स्फुटित हों, उसके पूर्व तो दृश्य ही बदल जाता है।

'ओह ! दिव्य वनमाला, मयूरमुकुट, पीत उपधान पहने अङ्गोंमें दिव्य चन्दन चर्चित किये, अपने एक हाथमें मुरली लिये किशोर वेषमें अतिशय मनोहारी मुसकान बिखेरता वही सच्चिन्मय नीलमयङ्क शिशु उसके सम्मुख आ जाता है। कुन्दवल्लीके अङ्ग-संस्थानों एवं वयमें भी अचानक ही एक दिव्य परिवर्त्तन आजाता है। दो वर्षकी बालिका कुन्दवल्ली कैशोर वयकी सुकुमारी हो जाती है। कुन्दवल्ली सलज्ज निम्नमुख किये उसके चरणोंमें झुक जाती है।

सहसा वह किशोर मुरलीमनोहर नन्दतनूज उसके चिबुकको संस्पर्शित करता किशोरी कुन्दवल्लीका मुख ऊपर उठा देता है। कुन्दवल्लीके नयन उस नीलमयङ्कके नयनोंसे उलझ जाते हैं। अहा ! वह श्याम वदनारविन्द कैसा सुधास्रावी मकरन्दयुक्त है, कुन्दवल्लीके नयन-मधुप मधुपान करते अघाते ही नहीं। उस किशोरके मुखमयङ्कको देखती चकोरी कुन्दवल्लीकी पिपासा तृप्त ही नहीं होती, अपितु प्रतिक्षण शत-सहस्रगुनी अभिवर्धित ही होती जाती है।

कुन्दवल्लीको कभी लगता है, यह सद्योजात शिशु इतना शीघ्र किशोर कैसे हो गया ? कुन्दवल्ली अन्ततः इसी निर्णयपर पहुँचती है कि यह जो भी हो, जैसा भी हो, शिशु हो, बाल हो, किशोर हो, पुरुष हो, नारी हो; मैं इसकी ही हूँ एवं रहूँगी। और वह उस किशोरके चरणोंमें अत्मसमर्पण भावसे ढुलक जाती है। उसे उन क्षणोंमें विसर्जित होनेमें इतना आनन्द होता है कि उसका समग्र आन्तरिक एवं बाह्य - दोनों ज्ञान उस आनन्दमें डूब जाते हैं। उसकी समग्र सत्ता ही आनन्दमय हो उठती है।

उसको जब बाह्यज्ञान होता है तो वह अपनेको गोपेश नन्दरायके नारायण-मन्दिरमें श्रीविग्रहके चरणोंमें पाती है। उसकी मौसी महारानी कीर्त्तिदा उसके मस्तकको सहला रही होती है।

कुन्दवल्ली अपने ननिहालमें

कुन्दवल्ली ननिहालमें आ गयी है। वृषभानु-परिवार अनवरत पाँच दिवसतक नन्दभवनमें रहा है। कुन्दवल्लीका देह भले ही रावल ग्राम अपने ननिहालमें आ गया है, किन्तु उसके एवं नन्दतनयके मध्यके देश-कालगत सभी व्यवधान पूर्णतया अन्तर्हित हो चुके हैं। कुन्दवल्ली कहीं भी, किसी भी देशमें रहे, वह अपने स्थानसे ही देखने लगती है - 'ब्रजरानीके वक्षस्थलपर नीलद्युति शिशु विश्राम कर रहा है। ओह ! ब्रजरानीका शरीर तो मानो अपराजिता लता हो और शिशु उसका सुन्दरतम प्रसून। कुन्दवल्लीके प्राण इस चिन्मय प्रसूनको अपना सर्वस्व समर्पण करनेमें ही लय हो जाते हैं।

कुन्दवल्ली अपनी सभी आन्तरिक अनुभूतियाँ अपने छोटे भैया श्रीदामको कह देती हैं।

'श्रीभैया ! तू अपनी बड़ी बहिन – मेरी बातको असत्य तो कभी मान ही नहीं सकता, अतः तुम्हें मेरे हृदयका सब रहस्य खोलकर कह दे रही हूँ। मैं चाहे कुछ भी कार्य करूँ, कहीं भी रहूँ, अभी तो हम लोग नन्दब्रजके अति निकट रावलग्राममें ही हैं। भले ही हम सभी बृषभानुपुर चले जावें, मेरे नेत्र सदैव उस नीलमयङ्क यशोदानन्दनको ही प्रत्यक्षवत् अपने सम्मुख देखा करते हैं। भैया ! इस समय भी मैं ब्रजरानी यशोदाको अपने पुत्रको लाड़ लड़ानेमें संलग्न देख रही हूँ। वे कभी उसे स्तनपान कराती हैं तो कभी उसे घन-घन चुम्बनका दान देकर अपने वात्सल्य-रसास्वादकी चिरवर्धनशील लालसामें नव-नूतन रङ्ग घोल देती हैं। वे कभी उसके घनकृष्णकेश-मण्डित मुखको निहारती ही रह जाती हैं, तो कभी अपने पुत्रके समस्त अङ्गोंसे निःसृत अद्भुत अनुपम सौरभका आघ्राण पाकर आत्मविस्मृत हो जाती हैं।

भैया ! मैं यशोदा मैया द्वारा अपने प्राणधन नीलमणिके आच्छादन वस्त्र एवं अङ्गावरक वस्त्रोंका बदला जाना भी यहाँ बैठे स्पष्ट देख रही हूँ। देखो, वह नन्दशिशु किञ्चित्-किञ्चित् मुख बिगाड़कर अपना विरोध प्रदर्शन कर रहा है एवं उसकी रुचि यही है कि भले ही उसके अङ्गावरक वस्त्र उसके द्वारा गीले एवं गंदे कर दिये गये हों, उन्हें उसके अङ्गोंसे हटाये नहीं जावें। देख भैया! मुझे नन्दतनयकी रुदनध्वनि स्पष्ट श्रवणगोचर हो रही है। ओह ! यह क्रन्दन कितना

मधुर है - मैं तुम्हें कैसे बतलाऊँ ? वीणाकी मधुरातिमधुर झङ्कार तो इसके सम्मुख पूर्णतया कर्णकटु ही प्रतीत होगी। मेरे कर्णपुटोंमें इस क्रन्दन-स्वरलहरीसे ऐसा अमृत-निर्झर झर रहा है, जिसका आस्वादन मात्र मैं ही ले पा रही हूँ। भैया! ब्रजरानी स्तनपानसे तृप्त हुए अपने पुत्रको पालनेमें लिटाकर मन्द-मन्द झुलाती हुई कितने मधुर स्वरमें लोरी गा रही है, क्या तुम सुन रहे हो ?'

कुन्दवल्लीकी ऐसी ही विलक्षण दशा है। उसे निशाकालका आगमन अनुभव ही नहीं होता है। ऊषा, सन्ध्या, निशा आदि तो उसकी सखियाँ हो गयी हैं। निशा, संध्या उसे अपने ही समान वयकी सखियाँ समझमें आतीं, जो नन्दतनयका दर्शन करने उसके पास आती हैं। वह उन्हें सचमुच ही नीलमयङ्कके दर्शनार्थ नन्दभवन ले जाती है। सन्ध्या तो शीघ्र ही चल देती है, किन्तु उसकी निशा सखी तो अनवरत चार प्रहर उसके साथ ही नन्दभवनमें नीलमयङ्कको देखती रहती है। वह निशाको छेड़ती है - 'देख, निशा सखी ! यह मेरा दूल्हा नन्दतनय कितना सुन्दर है ! तेरे दूल्हे-चन्द्रमाको तो क्षय रोग है, वह तारापति होनेसे कलङ्की भी है, किन्तु यह मेरा नीलमयङ्क तो सर्वभवरोगहारी है, एवं सर्वनारीपति होकर भी मेरे हृदयका निष्कलङ्क हार है।' अति लघु वयकी बाला कुन्दवल्लीमें न जाने कहाँसे इतनी वाचालता उद्भव हो उठी है ! यह जगन्माताका ही कृपा-.चमत्कार है।

कृष्ण निशा कुन्दवल्लीको क्या प्रत्युत्तर दे। अतिशय लज्जामें उसके कानमें धीरेसे इतना ही कहती है- 'मेरा पति चन्द्र जैसा भी हो, अपने नामके पीछे चन्द्रको लगाकर धन्य तो इस कृष्णने उसे कर ही दिया है। और बहिन ! अन्ततः इस नन्दतनूजने मेरे कृष्ण वर्णको अपनाकर मुझे यह भी सङ्केत कर दिया है कि तू स्वकीया नहीं, परकीया ही सही, है मेरी, मेरी, सर्वथा मेरी। मैं तो बहिन ! मात्र इतनी-सी ही बातसे धन्य हूँ कि इसने मुझ कृष्ण निशामें जन्म लिया, और अपना नाम भी कृष्ण रखा।' कुन्दवल्ली अपनी सखी निशाकी बात सुनकर हँस-हँसकर लोट पड़ती है।

फिर ऊषा आती। वह अपने सीमन्तके सिन्दूरी प्रकाशसे नन्दव्रजको उद्भासित कर देती। उसकी सुन्दरताको देख निशा उसे अपने गलेका अनमोल मुक्ताहार पहना देती। किन्तु ऊषा तो उस अपने उपहारको भी नन्दनन्दनपर न्यौछावर कर देती। मुक्ताके दाने ब्रजमें सर्वत्र ओसकणोंके रूपमें बिखर जाते।

कुन्दवल्लीके मानसमें तो नन्दभवन उद्भासित रहता ही। ब्रजेन्द्र नन्दराय कुछ औदास्य और कुछ उल्लासमें भरे उसे दीखते। नन्दनन्दनको पूतना राक्षसी अपहृत कर ले गयी, नन्दनन्दन उसके स्तनोंमें संलग्न कालकूटके साथ-साथ उसके प्राण भी पी गये - कुन्दवल्ली सभी घटनाएँ अपनी मौसीके सम्मुख उल्लेख कर चुकी है। वह रावलमें बैठी-बैठी ही अपनी मौसीको बतला रही है कि ब्राह्मण अनिष्ट-निवारणार्थ नन्दनन्दनका अभिषेक कर रहे हैं। यशोदा अपने हृदयधनको अपने पास सकुशल सुरक्षित निहारकर निहाल हो रही है। उपनन्द-पत्नी कपिला गौकी पूँछ नन्दनन्दनपर घुमा रही है। यशोदानन्दनको नेत्रोंमें भरे कुन्दवल्ली इसी प्रकार कालक्षेप कर रही है। एक-एककर दस दिवस व्यतीत हो गये। उसे एक ही जिज्ञासा सदा व्यथित किये रहती है कि इस नीलमयङ्क यशोदातनयके भीतर उसे जो वह विद्युन्मयी तेजोलतिका गोरी भोली बालिका दृष्टिगोचर होती है, वह बालिका कौन है एवं कहाँ है ? कुन्दवल्लीका मन-मानस सदैव इसी अनुसन्धानमें खोया रहता है।

पीतज्योतिका प्रथम दर्शन

भाद्रपद शुक्ला अष्टमीका मध्याह्न हुआ ही है। अचानक ही कुन्दवल्लीको शङ्ख, मृदङ्ग, वीणा, वेणु आदि मङ्गलवाद्योंकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। कुन्दवल्ली जिज्ञासावश तोरणद्वारकी ओर जाती है। वह देखती है कि मङ्गलगान करती हुईं व्रजाङ्गनाएँ रावलकी यज्ञशालाकी ओर बढ़ती जा रही हैं। वह भी यज्ञशालाकी ओर चल पड़ती है। कुन्दवल्ली देखती है कि उसकी मौसीकी बगलमें वही कुन्दनद्युति बालिका नेत्र मूँदे शयित है, जिसे वह अनवरत दस-पन्द्रह दिवसोंसे यशोदानन्दन नीलमयङ्कके देहमें भरी अनुभव कर रही थी। वह अपनी माता कीर्त्तिमतीसे जिज्ञासा करती है - 'मैया

क्या श्रीभैयाके एक छोटी बहिन हुई है ? कीर्त्तिमती हर्षविभोर हुई स्वीकृति-सूचक मस्तक हिलाती हुई उसे गोदमें लेकर चूम लेती है।

इतनेमें ही श्रीभैयाको वह दूर खड़ा देख लेती है। वह दौड़कर उसके पास जाकर उसे बधाई देती है -'भैया! तुम्हारी बड़ी बहिन तो मैं थी ही, अब एक छोटी बहिन और हुई है। देखो! इस कुन्दनद्युति बालिकाकी कितनी निराली सुन्दरता है। मुझे बधाई दो ! श्रीदाम अपने गलेमें पहना नीलमणि-हार उसके कण्ठमें डाल देता है। कुन्दवल्लीको यही अनुभव होता है मानो उसका नीलमयङ्क इस कण्ठहारके रूपमें उसके गलेमें झूल गया है।

इतनेमें ही सभी देखते हैं कि गोपेशमहिषी यशोदा अपने नीलमयङ्क शिशुको लिये उन्मादिनी-सी दौड़ी चली आ रही है। उसके पीछे बलरामको गोदमें उठाये रोहिणी है। पीछे उपनन्दपत्नी प्रभावती भी सुबलको गोदमें लिये चली आ रही है। ये तीनों तत्क्षण ही कीर्त्तिदाके पास प्रसूति-गृहमें पहुँच जाती हैं। कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम दोनों ही नन्दरानीकी गोदमें उसके नीलशिशुको देखकर हर्षमें झूम उठते हैं। कुन्दवल्लीके हृदयमें हर्षके ऐसे आवर्त्त उठ रहे हैं कि उसे यही समझमें आ रहा है मानो वह स्वप्न ही देख रही है।

ओह ! पद्मराग मणिमय पालनेमें स्वप्नसुन्दरी कुन्दनद्युति विद्युल्लतिका कीर्त्तिदा-तनयाके पार्श्वमें ही यशोदा अपने पुत्रको तत्क्षण ही लेटा देती है। पर्यङ्कपर उत्तानशायी लेटे नन्दनन्दनके नेत्र-सरोज अचानक ही खिल उठते हैं। यशोदाने इन पन्द्रह दिवसोंमें अपने लालको आजतक कभी इतना उल्लसित नहीं देखा है। सद्यप्रसूत कन्या भी तत्क्षण ही अपने निमीलित नेत्र-सरोज विकसित कर देती है। यशोदा एवं कीर्त्तिदाके रोम-रोममें अपने लाल एवं लालीके परम मङ्गल परिणयोत्सवके काल्पनिक चित्र उभरकर सम्मुख दृश्यवत् प्रकाशित होने लगते हैं।

कुन्दवल्लीको कुछ भी समझमें नहीं आ रहा है। उसे तो कीर्त्तिदा मौसीके बगलमें लेटी सद्योजात स्वप्नसुन्दरी-सी बालिका पहले यशोदानन्दनमें अनुस्यूत दिखती रही है। और अब तो इस सद्योजात बालिकामें भी उसे यह नीलिमाका पुञ्ज – यशोदाकी गोदका शिशु पूर्णतया ओतप्रोत दिख रहा है।

कुन्दवल्लीका आत्मसमर्पण

कुन्दवल्ली मन-ही-मन निश्चय कर लेती है – 'यह नीलमयङ्क और तेजोमयी कल्पलता - दो स्वतंत्र सत्ताएँ नहीं हैं। ये अग्निमें तेज, जलमें रसकी तरह दो होते हुए भी एक हैं। इनमें किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है। इतना ही नहीं, उसकी बालबुद्धि यह भी निश्चय कर लेती है कि कुन्दवल्ली नामक अस्तित्व भी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। इनका ही अङ्ग-अवयव है। जैसे शरीरका कोई भी अवयव अपनी स्वतंत्र संवेदना रखते हुए अवयव ही है, इसी प्रकार कुन्दवल्ली इनकी ही है, इनसे ही है। कुन्दवल्ली पासमें ही खड़े अपने भैया श्रीदाम और उसके निकट ही खड़े सुबलदादाकी ओर भी देखती है। दोनों ही इन दोनों नील-गौर शिशुओंसे विलक्षण एकाग्रता, निरुपम निस्पन्दता, अपने प्राणोंकी उत्कृष्टतम एकात्मता एवं रागके बढ़ते हुए प्रवाहमें निपतित आनन्दमें प्रवाहित दिखते हैं। कुन्दवल्ली मन-ही-मन सोचे जा रही है -'यह उसकी मौसीके बगलमें सद्योजात बालिका कितनी विलक्षण सुन्दरी है ! अहा ! एक पल तो जब मैं इसे देखती हूँ तो यह नन्दतनयसे अनन्ताधिक सुन्दरी दृष्टिगोचर होती है, किन्तु पुनः जब मैं इस नीलमयङ्कको निहारती हूँ तो यह भी किसी भी तुलनामें इससे हीन दृष्टिगोचर नहीं होता। अहा ! इसके श्रुतियुगल, इसकी भौहें, इसके नयन-सरोरुह – इन सबसे सौन्दर्यकी कैसी उत्कृष्टतम ऊर्मियाँ स्फुटित हो रही हैं! कुन्दवल्ली विचारोंमें न जाने किस सौन्दर्यलोकमें पहुँच जाती है।

कुन्दवल्ली अपने श्रीदाम भैयाके निकट पहुँचती है। श्रीदामके भावलोकमें बहते मनको वह झिंझोड़कर कह उठती है - 'भैया ! तू मुझे नारायणी कह रहा था, न ? सत्यांशमें नारायणी तो यह तेरी अनुजा है। मैं एवं तुम, भैया सुबल – सभी इन नारायण-नारायणीके चरण-किङ्कर एवं किङ्करी हैं।' श्रीदाम कुन्दवल्लीकी ओर निहारता है। उसके भावभरे नयनोंसे अश्रुओंकी लोर प्रवाहित हो उठती है। कुन्दवल्लीकी भी आँखें आर्द्र हैं, फिर भी दोनों दोनोंके अश्रु पौंछ देते हैं।

सहसा कुन्दवल्लीके ध्यान-पथमें कुछ काल पूर्वकी घटना स्मृत हो उठती है। पिछली अक्षयतृतीयाकी ही तो बात थी। वह एवं श्रीदाम दोनों ही रथमें उसकी माता कीर्त्तिमतीकी गोदमें लेटे थे। महर्षि भागुरि एवं गर्गने कोई सम्मिलित यज्ञ किया था। दोनों महर्षियोंने नन्दभवनमें यशोदाके पास सन्देश भेजा था कि दोनों ही सखियाँ - वृषभानुमहिषी कीर्त्तिदा और यशोदा यज्ञमें सम्मिलित हों। ब्रजेशमहिषी यशोदा ही ऋषियोंका आदेश लेकर रोहिणी एवं बलरामके सहित वृषभानुपुरसे कीर्त्तिदाको लेने चली आयी थीं। उसकी कीर्त्तिदा मौसीने हठ कर लिया था कि वे तो यज्ञमण्डपतक पैदल चलकर ही जावेंगी। यद्यपि दोनों ही सखियाँ गर्भवती थीं। इनके लिये पैदल चलना उचित नहीं था। यज्ञस्थल वृषभानुपुरसे नौ कोस दूर था। कीर्त्तिदा जब एक बार कुछ भी निश्चय कर लेती तो उसे जगन्माता पूरा करती ही थीं। यह निश्चय हुआ कि यशोदाके संग आये रथमें रोहिणी एवं बलराम आसीन रहेंगे एवं बृषभानुपुरके रथमें कीर्त्तिमती अपनी पुत्री एवं उनके पुत्र – श्रीदामको लेकर आरूढ़ होकर चलें। बालकोंको इतनी दूर पैदल ले जाना किसी भी प्रकार उचित नहीं समझा गया। यज्ञस्थलसे लौटते समय यशोदा एवं कीर्त्तिदा अपने-अपने रथोंमें आरूढ होकर लौट आवेंगी। इस प्रकार मात्र यज्ञस्थलतक पहुँचनेका ही श्रम होगा एवं यज्ञकी मर्यादाका पालन भी हो जायगा। उस दिन उस मङ्गलमय यज्ञमें नन्दग्राम एवं वृषभानुपुरसे सहस्रों नर-नारी पैदल जा रहे थे। ग्राम-ग्रामसे यज्ञ-सेवार्थ सामग्रियोंसे भरे शताधिक शकट भी जा रहे थे।

यमुनाके तटपर जब सभी पहुँचे तो यमुनास्नान करती-करती नन्दरानी एवं महारानी कीर्त्तिदा परस्पर गले मिल गयीं। हाथमें जल एवं फूल लेकर मौसी महारानी कीर्त्तिदा नन्दरानीसे कह रही थी -" नन्दरानी ! देखो, हम दोनों गर्भवती हैं। मुझे जगदम्बाका सङ्केत है, तुम्हारे इस गर्भमें पुत्ररत्न है और मैं भी किसी शुभ मुहूर्त्तमें पुत्री प्रसव करूँगी। अस्तु, बहिन ! मैं भानुतनयाके तीरपर खड़ी होकर सङ्कल्प कर रही हूँ। यह अतुल पुण्यमयी बेला है। मेरे उदरस्थलमें जो श्रीदामकी बहिन है, वह तुम्हारे उदरस्थ बालकके प्राणोंकी प्राणस्वरूपा हो।"

कुन्दवल्ली रथमें बैठी-बैठी यह सब वार्त्ता सुन रही थी। श्रीदाम तो सो गया था। कुन्दवल्लीका बालमन अपनी मौसी एवं नन्दरानीके मध्य हुई वार्त्ताको अबतक विस्मृत कर चुका था। किन्तु आज अचानक नन्दरानीकी गोदमें प्राणोपम सुन्दर नीलमयङ्कको और मौसी महारानीके अङ्कमें इस सद्योजात स्वर्णलतिकाको निहारनेपर उसकी अन्तश्चेतनामें डूबी स्मृति पुनः जागृत् हो गयी थी।

इस स्मृतिके मानसपटलपर उदय होते ही कुन्दवल्लीके मनने यह दृढ़ निर्णय कर लिया कि वह इन नील-पीत द्युति युगलके प्रति ऐसी अप्रतिम तत्सुख-भावावन्न मैत्रीका प्रकाश करेगी , जिसे देखकर देवजगत् भी स्तब्ध हो जावे एवं स्वयं लीलामहाशक्ति महादेवी भी 'जय !' कह बैठें। एक भगिनीके मनमें दूसरी भगिनीके प्रति कैसी निर्मल, साथ ही सर्वस्व-समर्पणमयी रागजन्य एकात्मता होती है, इसका एक अप्रतिम आदर्श वह विश्वमें समुपस्थित कर देगी। मात्र दो वर्ष एवं दो माहकी अतिशय लघु वयकी बालिका कुन्दवल्लीके पवित्रतम मनने उस क्षण सौहार्दकी उस अभूतपूर्व साधनाको अपने प्राणोंमें आत्मसात् करनेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया, जिसे देखकर भविष्यमें नित्ययुगल नीलमणि नन्दतनय और कुन्दनवर्णी वृषभानुजा दोनों ही भावविह्वल हो उठें। काम-गन्धके लेशात्मक संस्पर्शसे भी शून्य प्रीतिके उस साधन-पथपर कुन्दवल्लीने अपने चरण निविष्ट कर दिये, जिसका दर्शन चन्द्र एवं सूर्यको भी अबतक नहीं हुआ था।

ठीक, यही दशा कुन्दवल्लीके पास खड़े श्रीदाम एवं सुबलकी भी थी। यद्यपि सभी परस्पर मौन थे, किन्तु इन सभीमें ऐसी एकात्मता थी जिससे एक-दूसरेके हृदयोंके भाव परस्पर एक-दूसरेको स्पष्ट अनुभव हो जाते थे। कुन्दवल्लीके भावोंमें जहाँ दास्य एवं विशुद्ध माधुर्यजनित अप्रतिम रागका प्राबल्य था, वहाँ सुबल एवं श्रीदाममें नन्दतनयके प्रति असीम सख्यरस, साथ ही अपनी सद्यःप्रसूत अनुजाकी रुचिकी पूर्त्तिके लिये अपना सर्वोत्सर्ग कर उठनेकी तत्परता भी थी।

कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम दोनों ही प्रसूतिगृहके एक कोनेमें खड़े, एक कलामयी प्रतिमा बने नन्दतनय और उस सद्यःप्रसूत स्वर्णलतिकाको एकटक निहार रहे थे। इस स्वर्णलता राधाने जन्म लेते ही अपने स्वरूपगत महाभावका जाल फैलाकर सर्वप्रथम यदि किसीको भी अपने अटूट बन्धनमें जकड़ा है तो वह महासौभाग्यशालिनी कुन्दवल्ली बाला ही थी, अथवा उसका स्वयंका प्राणोपम भाई श्रीदाम ही था, जो दोनों ही अनवरत दो वर्षोंसे बिम्ब-प्रतिबिम्बवत् साथ-साथ ही पल्लवित-संवर्धित हो रहे थे।

ब्राह्मण आ गये हैं। महाराज वृषभानु स्नान करके, अलंकृत होकर ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि आज ब्राह्मणगण उसी ह्लादिनी महाशक्तिका 'भू स्त्वयि' इत्यादि मंत्रोंके पाठसे जातकर्म-संस्कार करा रहे हैं जो ह्लादिनी महाशक्ति निरन्तर विश्वेश्वरको भी अपने भ्रू- संकेतपर नचाती है। कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम ब्राह्मणोंको वेदोच्चारण करते समय हाथ हिलाकर पाठ करते देख-देखकर हँस रहे हैं।

कुन्दवल्लीको आश्चर्य है कि आजके पन्द्रह दिवस पूर्व नीलमणिके जन्मोत्सवके समय वृषभानुपुर एवं रावलकी एक-एक बूढ़ी औरत भी जैसे नन्दभवन पहुँची थी एवं उसने नीलमणि नन्दतनयको आशीर्वाद दिया था, ठीक वैसे ही आज सम्पूर्ण नन्दव्रज ही रावलमें इस पीतवर्णी कन्याको आशीर्वाद देने उमड़ पड़ा है।

जैसे भाद्रपद कृष्ण अष्टमीसे द्वादशी पर्यन्त मानो नन्दब्रजके राजा नन्दराय नहीं होकर महाराज वृषभानु ही होगये थे, और नन्दराय उनके अनुगत सेवककी तरह पीछे-पीछे हाथ बाँधे फिर रहे थे, ठीक यह क्रम आज उलट गया है। आज ब्रजराज नन्द एवं उनके बड़े भाई उपनन्दजी तो रावलनरेश एवं वृषभानुनरेशके स्थानापन्न होकर कन्या-जन्मोत्सवका सम्पूर्ण दायित्व सँभाल रहे हैं एवं रावलनरेश बिन्दु महाराज एवं वृषभानुजी उनके सेवकवत् अनुगत हो रहे हैं।

राधाजन्मपर रावलमें आनन्द

रावलकी क्या ही शोभा है ! उसका प्रत्येक प्रासाद पूर्णतया सुसज्जित किया गया है। प्रत्येक गृह-द्वार-प्राङ्गण एवं कोना-कोनातक स्वच्छ एवं सुगन्धित द्रव्योंसे महक रहा है। सुकोमलतम पल्लवोंके बन्दनवार बाँधे गये हैं। सर्वत्र चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही हैं। स्थान-स्थानपर पुष्पमालाओंकी लड़ें झूल रही हैं। प्रत्येक द्वारपर आम्रपल्लव-संयुक्त जलपूर्ण मङ्गलघट रखे गये हैं। इन सभीमें सप्त सरोवरों, सप्त नदियों, सप्त तीर्थों, सप्त समुद्रोंका जल परिपूरित किया गया है। हरिद्रा, दूब, अक्षत, कुङ्कुम, दधिसे प्रत्येक द्वार चित्रित किया गया है। मोतियोंके चौक पूर्ण किये गये हें एवं द्वार-द्वारपर गौएँ एवं गोवत्स हल्दी-तेलसे रँगे, गैरिक आदि धातुओंसे चित्रित पुष्पमालाएँ पहने खड़े हैं।

दूर-दूरके ग्रामोंसे गोप मयूरपिच्छ धारण किये, पुष्पमालाएँ पहने, बहुमूल्य अलङ्कारोंसे मण्डित, अँगरखे एवं पगड़ी पहने अपने कंधोंमें घृत-दधि-नवनीतसे पूर्ण घड़ोंकी काँवर रखे रावलग्राम पहुँच रहे हैं। उनके पीछे गोपियाँ मङ्गलगीत गातीं दौड़ी आ रही हैं।

गोपों एवं गोपाङ्गनाओंका सुस्वागत उपनन्द-पत्नी एवं उपनन्दजी कर रहे हैं। नन्दराय एवं वृषभानुजी दोनों ही साथ-साथ देवपूजनमें संलग्न हैं। नन्दमहिषी यशोदा एवं रोहिणी सभी गोपाङ्गनाओं एवं महाराज वृषभानुके सम्बन्धीवर्गको बधाई बाँट रही हैं। नन्दरानी यशोदा इतनी सम्पत्ति दान कर रही हैं कि यदि प्राकृत भण्डार हो तो कभीका रिक्त हो जाय। किन्तु आज तो रावलनरेशकी यज्ञशालामें स्वयं अनन्त लक्ष्मियोंको लक्ष्मीत्व देनेवाली सुप्रकट हैं, अतः उनका कोष असीम अनन्त हो गया है। हाँ, देते समय ब्रजरानीमें वात्सल्य-रसभावित एक ही भावना है कि इस दानसे सभी प्रसन्न होकर मेरे पुत्र नीलमणि एवं कञ्चनद्युति कीर्त्तिदापुत्रीको मङ्गल आशीर्वाद दें। अन्तःपुरमें हरिद्रा दधिकी कीच मची है। गोपाङ्गनाएँ आनन्दमें झूम-झूमकर नृत्य कर रही हैं। देववृन्द अन्तरिक्षसे नन्दनकानन-जात प्रफुल्ल पुष्पोंकी वर्षा कर

रहे हैं। पावसमें शरद्‌का विकास हो गया है। दिशाएँ प्रसन्न एवं कालिन्दी पूर्णतया स्वच्छ हो उठी है। शीतल मन्द पवन अरविन्द-सौरभका विस्तार करता हुआ प्रवाहित हो चला है। मानो वृषभानुसुताके आगमनकी सूचना देता सर्वत्र फिर रहा हो।

संयोगकी ही बात है कि अचानक ही रावलनरेशकी यज्ञशालामें यथासमय करभाजन, शृङ्गी, गर्ग एवं शाण्डिल्यादि चारों ऋषि प्रकट हो जाते हैं। रावलनरेश बिन्दु महाराज एवं वृषभानुजीकी प्रार्थनापर वे सभीको आनन्दमें निमग्न करते हुए श्रीराधाके ग्रह-नक्षत्रका निर्णय कर रहे हैं। लोहित वर्ण एवं विद्युल्लहरीकी अङ्गप्रभा होनेके कारण पूर्वतः वृषभानु एवं कीर्त्तिदाने अपने मनसे ही अपनी कन्याका नाम 'राधिका' रखा था, किन्तु ऋषियों का निर्णय बालिकाका नाम 'राधा' रखनेका होता है तभीसे विश्वमें कन्याका नाम 'राधा' एवं 'राधिका' दोनों ही विख्यात हो गये हैं।

कुन्दवल्ली एवं श्रीदामने जिस कोटिका आनन्द आजके पन्द्रह दिवस पूर्व इस नन्दतनयके जन्मोत्सवके उपलक्षमें नन्दभवनमें प्रवाहित होते देखा था, उससे शताधिक परमानन्द आज वे इस चिन्मयी पीतद्युति सोनजुहीके जन्मोत्सवपर रावलमें अनुभव कर रहे हैं। कुन्दवल्लीने कन्याका नाम सोनजुही ही रखा है।

इस सद्योजात कन्याके दर्शनमात्रसे ही कुन्दवल्लीकी भावदशामें तो मानो ज्वार ही उदित हो उठा हो, एक विलक्षण परिवर्तन आ गया है। अबतक तो वह जब कभी श्रीदाम भैयाको निहारती थी तो उसे उसमें नन्दतनूजकी छवि भरी दृष्टिगोचर होती थी। किन्तु इस नवकन्याके जन्म और दर्शनके पश्चात् तो उसकी ऐसी दशा हो गयी है मानो अन्य किसीकी सत्ता है ही नहीं। वह अपनी मौसी महारानी कीर्त्तिदापर दृष्टिपात करे, अथवा महाराज वृषभानुपर; उसके सम्मुख भले ही उसकी नानी मोक्षदा आवें, चाहे दादी सुखदा; वह अपने पिताको देखे चाहे अन्य किसी गोपको - उसे तो सभीमें केवल नीलद्युति नन्दतनय एवं सद्योजात पीतद्युति कन्या ही उत्तानशायी होकर एक ही पालनेमें किलकते दृष्टिगोचर होते हैं। वह अपने मनकी बात कहे भी तो किसे ? बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि जबसे यह कन्या जन्मी है, कुन्दवल्लीको अपना गौरवर्ण भी कभी श्यामवर्णका एवं कभी कुन्दनवर्णी अनुभव होता है।

कुन्दवल्ली देख रही है कि असंख्य नन्दतनय एवं कीर्त्तिकुमारी पालनेमें किलकते, अपने पदांगुष्ठको मुखमें मेले, उड़ते हुए-से आ रहे हैं। वे रावलनरेशके महलके द्वारपर आकर स्थिर हो जाते हैं, दोनों ही शिशु मुसकानमें विहँसते हैं और हाथ-पैर नचाते हैं।

इधर श्रीदाम कुन्दवल्लीके नेत्रोंको भावमें मुँदते देखकर उसे झकझोरकर कहता है -'बहिन, देख! मेरी सद्योजात बहिनको कैसे-कैसे उपहार ब्रजसुन्दरियाँ दे रही हैं। देख, न !'

कुन्दवल्ली अविलम्ब उत्तर देती है -'श्रीभैया ! मैं तो पूरी अन्धी हो गयी हूँ, अन्य दृश्योंसे पूर्णतया अन्धी ! मुझे तो मात्र सद्योजात कन्या एवं शिशु नन्दतनय ही सर्वत्र दिख रहे हैं। मैं तो केवल-केवल उनको ही देख पा रही हूँ। तुम्हारे स्थानपर भी मैं तो उन्हें ही देख रही हूँ। अवश्य, तुम्हारी बोली मुझे सुनाई पड़ती है।'

श्रीदाम चकित हो उठता है। कुन्दवल्ली बहिनकी ऐसी दशा देखकर उसे अपार सुख हो रहा है। वह कृतकृत्य हो उठता है। वह कुन्दवल्लीसे कहता है-'बहिन ! सचमुच ही तुम धन्य हो ! मैं तो सदैव तुम्हारा भृत्यवत् अनुगत रहूँगा। तुम्हारा चरित्र सचमुच विलक्षण है। जगन्माताकी तुमपर कृपा है। देखो! तुम देख नहीं पाती हो तो मुझसे इस समग्र उत्सवका वर्णन तो सुन लो।'

श्रीदाम कुन्दवल्लीको सभी उत्सवका हाल सुनाता है -'देख, बहिन ! अपने नाना रावलनरेशने तोरणद्वारकी कैसी सुन्दर सज्जा करायी है। एक अतिशय उच्च खंभपर मणिद्वीप प्रज्ज्वलित हो रहा है। सूर्यका प्रखर प्रकाश भी इस दीपकी ज्योतिको मन्द नहीं कर पा रहा है। और इसी द्वीपकी ज्योतिके द्वारा महाराजा महीभानुको वृषभानुपुरमें रावलमें मनाये जाने वाले उत्सवकी सूचना दी जा रही है। दूतको भी द्रुतगामी अश्वमें वृषभानुपुर सूचनार्थ भेज दिया गया है।'

'देख बहिन ! ब्राह्मण आशीर्वादात्मक मङ्गलवचनोंका पाठ कर रहे हैं और उनसे कुछ ही दूरीपर सूत पुराणपाठ कर रहे हैं। अहा ! मेरे पिता और दादाजीकी वंशावलिका कीर्त्तन हो रहा है। इधर बंदीजन स्तुति कर रहे हैं और इधर ब्राह्मणोंके पीछे सङ्गीतज्ञोंका दल सुमधुर रागिनी आलाप रहा है। उनसे कुछ दूरीपर भेरी बजानेवालोंका दल है। इधर कुछ हटकर दुन्दुभियाँ बज रही हैं। इधर बन्दीजनोंके ठीक सामने शहनाई-वादन हो रहा है। चारों ओर रसकी वर्षा हो रही है। मध्यमें राजपथ है, जिसपर गौओं, गोपों और गोपाङ्गनाओंकी भीड़ उमड़ी चली आ रही है।

इस प्रकार रावलमें कीर्त्तिदानन्दिनीके जन्मोत्सवपर रावलमें वहाँकी प्रजामें आनन्दोल्लासजन्य भावोंकी जैसी आँधी उठी, उसका यत्किञ्चित् वर्णन दो वर्षका बालक श्रीदाम जितना सुना सका अपनी बहिन कुन्दवल्लीको सुनाता है।

(पाठकोंको राधाष्टमी महोत्सवके विस्तृत वर्णन जाननेकी जिज्ञासा हो तो महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा - पंचम खण्ड पृष्ठ सं २१०से २४२में देखें।)

त्रयोदशी पर्यंत कुन्दवल्लीको ज्ञान ही नहीं रहता कि कब प्रभात होता है और कब संध्या आती है। उसके चित्तमें तो एक ही दृश्य स्थिर है, नीलमयङ्क नन्दतनूज एवं सद्योजात कुन्दनवर्णी कुमारी राधा पद्मरागमणि पर्यंकमें उत्तानशायी लेटे हुए किलक रहे हैं।

रावलमें संक्रान्ति पर्यंत वास

भावविभोर कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम कीर्त्तिदा मैयाके साथ ही संक्रान्तिपर्यंत रावलमें ही रहते हैं। यद्यपि बाह्य लोकदृष्टिमें तो नन्दतनय यशोदा एवं नन्दरायके सहित दूसरे दिवस ही वृषभानुपुरमें प्रस्थान कर जाते हैं, किन्तु यदि कोई कुन्दवल्ली-सरीखी भावकी आँखें पा जाय तो उसे सत्य ही यह दिखाई देगा कि नन्दतनय कुन्दनवर्णी विद्युल्लता राधाके पार्श्वमें ही उसके ही पालनेमें सदा किलक रहे हैं। यह नवजलधर भला विद्युल्लतासे कभी पृथक् हो सकता है ? हो ही नहीं सकता। विद्युल्लताका शाश्वत निवास तो नीलघन मेघ है और मेघ विद्युल्लताका एक स्वरूप है। मात्र लीलाके लिये ये दो पृथक् दिखतें हैं।

रावलमें महारानी कीर्त्तिदा मकरसंक्रान्तितक रहती है। कुन्दवल्ली रात-दिवस अपने चिन्तनमें ही नेत्र निमीलित किये रहती है। यह अवश्य होता है कि यदि उसकी माता उसे सद्योजात कीर्त्तिदा-कन्याको पालना झुलानेकी सेवा दे देती है तो वह बहुत ही सजग जागरूक रहकर सेवा करती है। उसे आश्चर्य होता है कि यह सद्योजात राधा सदा निमीलित-नेत्र ही क्यों बनी रहती है? दुःखसे कातर हुई वह सद्योजात बालिकासे प्रार्थना कर बैठती है – 'मेरी बहिन ! एक बार मेरे मुखकी ओर देख लो, न ! मैं तुम्हारी बड़ी बहिन हूँ। मैं तुमसे भीख माँगती हूँ। तुम नेत्र खोलकर देख लोगी तो मुझे जीवनका सर्वाधिक सुख मिल जायगा।' किन्तु कुन्दवल्लीकी प्रार्थना व्यर्थ ही जाती है।

हाँ, इतना अवश्य होता है कि उसके सम्मुख उसी समय दिव्य माला, दिव्य वस्त्र, दिव्य चन्दन एवं दिव्य मणिमय आभूषणोंसे सुसज्जित जगन्माता प्रकट हो जाती हैं और मुसकाने लगती हैं। कुन्दवल्लीको वे इस प्रार्थनासे निवृत्त कर देती हैं।

काल तो गतिशील है ही। सच बात तो यह है कि ब्रजपुरके काल एवं देश तो सदैव प्रतीक्षा ही करते रहते हैं कि लीलामहाशक्ति जगन्माता त्रिपुरसुन्दरीके मनमें किस सङ्कल्पका उदय हो और वे तत्क्षण ही वैसे बन जावें। लीलामहाशक्तिके सङ्कल्पके अनुरूप ही इस समग्र ब्रजक्षेत्रके देश-काल अपना रूप धारण कर लेते हैं। वे उसी साँचेमें ढल जाते हैं। और यह भी सत्य है कि चौरासी कोसके इस ब्रजक्षेत्रमें न तो देशमें एवं न ही कालमें कहीं विकार एवं परिणाम परिणमित होता है। क्योंकि यहाँ स्वयं लीलामहाशक्तिका ही प्रकाश काल एवं देशके रूपमें है।

कुन्दवल्लीमें दूरदर्शन-सिद्धि

कुन्दवल्लीकी विलक्षण भावदशा है। उसपर जगन्माताकी ऐसी विलक्षण कृपा है कि रावल ग्राममें नन्दव्रजसे पाँच कोस दूर रहते हुए भी नन्दव्रजका देश, नन्दभवनमें घटित होनेवाली समस्त लीला उसके नयनोंमें प्रकाशित हो उठती है। मानो वह एक स्वरूपसे तो यहाँ कीर्तिदाकन्या राधाके पालनेके पार्श्व में आसीन हुई उसका पालना हिला रही होती है और साथ ही ठीक दूसरे स्वरूपसे नन्दतनय नीलमणिके पास नन्दभवनमें स्थित हो जाती है। उसके समक्ष देशगत दूरी सिमटकर व्यवधानरहित हो जाती है।

हाँ, कृष्ण चतुर्दशीके दिनकी ही तो बात है। त्रयोदशीकी रात्रिमें षष्ठी-पूजन करके चतुर्दशीके द्वितीय प्रहरमें ही तो सभी लोग रावल पहुँचे थे। पहुँचते-पहुँचते ही कीर्त्तिदा मौसीसे कुन्दवल्ली निवेदन कर उठी थी। वह कीर्त्तिदाको सदैव मौसी महारानी ही कहती है। निरे प्रातः ही वह अपनी मौसी महारानीके पास ठुमकती पहुँची थी – 'मौसी महारानी ! नन्दभवनमें राक्षसी मायाविनी एक अति मनोहर रमणीके रूपमें आयी है। उसके शरीरसे सौन्दर्यका स्रोत झर रहा है। मौसीजी ! मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ – सुरपुरवासिनी अप्सराओंका समस्त सौन्दर्य एकत्र होकर उस राक्षसीके शरीरमें आगया है। ऐसे मोहन रूपसे सुसज्जित हुई वह नन्दपुरीके बहिर्द्वारतक पहुँच गयी है। आप नन्दनन्दनकी रक्षाके लिये जगन्मातासे प्रार्थना करें।"

"मौसी महारानी ! प्रहरीगण तो उसे शोभामयी त्रैलाक्यलक्ष्मी ही समझ बैठे हैं। उसकी लहराती हुई सुन्दर वेणीमें मल्लिका पुष्प गुम्फित हैं, हिलते हुए कर्णकुण्डलोंसे उसकी केशराशि दमक रही है। होठोंपर उसके रम्य मुसकान है। स्मित-समन्वित वक्र कटाक्ष-निक्षेपसे वह ब्रजवासियोंका मन हरण कर चुकी है। एक हाथमें वह कमलपुष्प लिये वह सभीको विमुग्ध कर रही है। यहाँ तक कि उसके बाह्य रूपपर मैया यशोदा एवं रोहिणी भी मुग्ध हो गयी हैं।"

'मौसी महारानी ! वह पिशाची सबको मोहितकर मन-ही-मन उल्लसित है। वह अपनेको मथुरावासिनी ब्राह्मणी बतला रही है और नीलमयङ्क यशोदातनयको अपने स्तनोंका दूध पिलाने जा रही है। देखो, देखो, जिन स्तनोंके दूधको वह अमृत बतला रही है, उसमें तो कालकूट विष है। मौसी महारानी ! नीलमणि नन्दतनूजकी रक्षा करो ! हे जगन्माता! त्राहि-त्राहि ! " कहती कुन्दवल्ली मौसी महारानीसे लिपट गयी थी।

पहले तो बच्चीकी बातोंको कीर्त्तिदा एवं गुरुजनोंने मात्र कोई आवेश ही समझा था परन्तु दूसरे ही दिवस जब नन्दभवनसे आये दूतने सारी घटनाकी पुष्टि कर दी तभी लोगोंको विश्वास हो गया कि सचमुच ही कुन्दवल्लीमें दूरदर्शनकी सिद्धि जागृत् हो उठी है।

इसी प्रकार राधाजन्मोत्सवके पन्द्रह दिवस पश्चात् ही कुन्दवल्ली पुनः अपनी मौसीसे कह उठती है–

"मौसी महारानी ! सिरपर कलसी रखकर ब्रजरानी यमुनातटपर जा रही हैं। वे अभ्यागत ब्राह्मणको देवपुरुष मान रही हैं। किन्तु वह तो नीलमयङ्क नन्दतनयको मार डालनेकी अभिसन्धिसे आया है। वह जगत्पूज्य ब्राह्मण नहीं है, उसका कलेवर मात्र ब्राह्मणका है, वस्तुतः तो उसके सम्पूर्ण कर्म राक्षसके हैं।"

" ओह ! भोली यशोदाके जानेके पश्चात् रोहिणी मैया भी भगवान् नारायणका प्रसाद निर्माण करने पाकशालाकी ओर चल पड़ी हैं। नन्दतनय एकाकी ही पालनेमें सो रहे हैं। हतभाग्य ! ब्रजेन्द्र नन्दराय भी गोष्ठमें गायोंकी सम्हाल करने चले गये हैं। दासियाँ भी दधिमन्थन आदि कार्योंमें संलग्न हैं। "

'ओह ! जगन्माता रक्षा करो, त्राहि ! त्राहि !' कहती कुन्दवल्ली अपनी मौसी महारानी कीर्त्तिदासे लिपट जाती है। परन्तु क्षणमें ही वह किलककर ताली बजाती, हँसती अपने पासमें ही खड़े श्रीदाम भैयाके पास आकर नाचने लगती है।

'श्रीभैया ! जगन्माताने विलक्षण तमाशा कर दिया। देखो न ! नन्दतनयका कलेवर ज्यों-का-त्यों रहा, हाथ भी वैसे ही छोटे-छोटे, परम सुकोमल ! किन्तु ज्योंही वह नीच ब्राह्मण लपककर शिशुके पालनेके पास उसे मारने आया, दूसरे ही क्षण उसे जगन्माताने ऐसा करारा झटका दिया कि वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके पैर धरतीसे ऐसे चिपक गये मानो उनमें कीलें जड़ दी गयी हों। वह टस-से-मस नहीं हो सका। जय हो ! अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया की ! उसकी जीभ ऐंठ गयी। अब तो उसके बोलनेकी शक्ति ही जाती रही। फिर अपने आप नवनीतके भाण्ड फूटने लगे। फिर उनका दही एवं मक्खन, श्रीधरके शरीर एवं मुखमें लिप्त हो गया।श्रीभैया! ऐसा तमाशा हुआ ....''

और कुन्दवल्ली ताली बजाकर नाचने लगी थी। फिर नाचती-नाचती अपनी मौसी महारानीसे कहने लगी - 'मौसी ! इधर श्रीधर विप्रका सारा कलेवर दधिसे नहाया और उधर नीलशिशु 'ऊँआ- ऊँआ' करके रोने लगे। वे जोर-जोरसे रोते ही गये। हाथ-पैर पटक-पटककर रोने लगे।'

'पाकशालासे रोहिणी मैया दौड़ी आयीं। इधर नन्दरानी मैया यशोदा भी यमुनासे गगरी भरकर लौट आई। देखते ही देखते गोपाङ्गनाओंकी भीड़ एकत्र हो गयी। यशोदाने अपने नीलमयङ्कको छातीसे चिपका लिया। उसे हृदयसे लगाये यशोदा माखनके टूटे-लुढ़के भाण्ड और श्रीधरके चुपड़े-लिपे हाथ-मुखको देखने लगीं। सभी ब्राह्मणको धिक्कारने लगे। उसने ऐसा कुकृत्य क्यों किया ? नन्दरायजीको बुलाया गया। उपनन्दजी भी आ गये। सबने मिलकर यही निश्चय किया कि ब्राह्मणको ब्रजपुरकी सीमाके बाहर ससम्मान छोड देना उचित होगा। अरे ! अरे ! कैसा आश्चर्य ! नन्दरानी एवं सभी गोप आ गये तो ब्राह्मणके पैर खुल गये।

''मौसी ! तुमने नीलमयङ्कका 'ऊँआ-ऊँआ' रुदन नहीं सुना ? अरी, वह इतना मधुर स्वरमें रोता है, मानो साक्षात वीणाधारिणी सरस्वती ही वीणावादन कर रही हो। श्रीभैया ! मेरे तो कानोंमें इस रुदनने ही अमृत भर दिया, रे !' कहती कुन्दवल्ली पुनः ताली बजाती आँगनमें चारों दिशाओंमें घूमती नाचने लगती है। उसे नाचनेके लिये एक गायन भी मिल गया है -

''बाँभनके मुख बात न आवै ! जीभ होय तो कहि समुझावै।।'

इन दो पंक्तियोंको बोल-बोलकर वह अपने मौसा वृषभानुजी, उसके स्वयंके पिता सत्यभानु एवं सभीके सामने नाच-नाचकर बार-बार घटनाका उल्लेख कर रही है।

इसी प्रकार कुन्दवल्ली नन्दतनूजपर आये आसुरी प्रकोपोंका सभी वर्णन दूर बैठी ही अपनी मौसीसे कह देती है, मानो वह उन सबकी साक्षी हो।

वृषभानुपुर प्रस्थान

महारानी कीर्त्तिदाको भगवती पौर्णमासी देवीका ऐसा ही आदेश था कि कीर्त्तिदा प्रसवोपरान्त सौ दिनोंतक अपने पितृगृह रावलमें ही रहे। यद्यपि सद्योजात कन्या पौष कृष्णमें ही सौ दिवसकी हो गयी थी किन्तु मलमास होनेके कारण रावलनरेशने मकरसंक्रान्ति करके ही अपनी पुत्री एवं दौहित्रीको वृषभानुपुर भेजना उचित समझा।

आज मकर-संक्रान्ति है। महारानी कीर्त्तिदा आज तीसरी बार यमुना-स्नान करने जा रही हैं। प्रथम बार तो तब, जब कन्या दस दिवसकी हो गयी थी एवं प्रसूतिका सूतक उतारने महारानीने यमुनास्नान किया था। दूसरी बार, जब कन्या एक मासकी हो गयी तो कन्याको ही यमुना जल-पान कराने महारानी ले गयी थी। आज संक्रान्तिपर्वपर कन्याको यमुना-स्नान करानेका मन करके कीर्त्तिदा सभी गोपाङ्गनाओं सहित यमुना गयी हैं।

रावलनरेशके महलके पिछवाड़े ही उपवनको संस्पर्श करती हुई यमुना बहती है। उपवनमें यमुना किनारे-किनारे सुदूरतक कल्पवृक्षोंकी पंक्तियाँ लगी हैं। बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त एवं शिशिर - इन छहों ऋतुओंमें समान शोभासे

वृक्षावलि अलंकृत रहती हैं। यमुनाका निर्मल जल किनारेपर लगी फूली हुई माधवी लतासे परिव्याप्त है। उनपर प्रस्फुटित कुसुमसमूहोंसे मकरन्द झर रहा है। उनके मधुगन्धको लेकर मन्द समीर प्रवाहित हो रहा है। गुन-गुन करती भ्रमरावली विचरण कर रही है। भ्रमरोंका गुञ्जन इतना मधुर है कि कोकिल, पारावत, चातक, हंस, शुक, पिक सभी शान्त होकर उनके गुन-गुन शब्दको श्रवण करनेमें शान्त हो जाते हैं। तुलसीकी पंक्तियोंसे उपवन सर्वत्र सुशोभित है।

एक सचल पालनेमें श्रीराधाको कीर्त्तिदा महारानी यमुनाघाटपर ही लेटा देती हैं। वे स्नानके पूर्व यमुना-पूजन करने जा रही हैं। पालनेमें उत्तानशायी होकर कीर्त्तिकुमारी लेटी हैं। धात्रीगण गीत गा-गाकर झुनझुने बजा-बजाकर उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रही हैं। कीर्त्तिदा एवं सभी रावल-परिवारके लोग चिन्तित हैं कि साढ़े तीन मास वयकी हो जानेके पश्चात् भी सद्योजात कन्या सदैव नेत्र निमीलित ही रखती है । वह कभी भी अपने नेत्र उन्मीलित नहीं करती। मात्र जन्मके समय एक बार जब यशोदा अपने नवजात नीलमयङ्क शिशुको लेकर आयी थी, और दोनों शिशुओंको एक पालनेमें ही यशोदाने लिटा दिया था, मात्र उस समय ही कन्याने अपने विशाल नेत्र उन्मीलित किये थे। उसके उस समय नेत्र खोलने एवं चतुर्दिक् निहारनेसे यह तो प्रमाणित हो ही गया था कि बालिकाके विकसित अम्बुजके समान नेत्र स्वस्थ हैं। किन्तु उस शिशुके प्रस्थानके पश्चात् ज्योंही कन्या नेत्र निमीलित करती है, फिर अबतक एक बार भी उसने उन्हें खोले ही नहीं हैं। धात्रीगणोंने नेत्रोंकी पलकें उलट-पुलटकर कितनी ही बार चेष्टा की कि कन्या अपने नेत्र खोल दे परन्तु कन्या न तो किसी अन्यको देखती है, न ही नेत्र खोलती है। कीर्त्तिदा यही सोचकर सन्तोष कर लेती है कि महादेवी जगन्माताके नियन्त्रणमें ही अनादि कालसे सबकुछ नियमित रूपसे यथायोग्य होता आया है, एवं अनन्तकालतक होता रहेगा। उन परम मङ्गलमयीकी जो इच्छा हो, वही हो। फिर भी पुत्रीके मंगलकी चिरवर्धनशील लालसा कीर्त्तिदाको चिन्तित कर ही देती है।

आज प्रथम बार कन्याको यमुना-स्नान करानेका सङ्कल्प किया है। पुर-महिलाओंसे वेष्टित कीर्त्तिदा महारानी सर्वप्रथम पुत्रीके कलेवरको हल्दी-तेलसे उबटती है। कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम पास खड़े हँस रहे हैं। इन दोनोंका भी हल्दी-तेल चुपड़कर उबटन किया गया है। पीले-पीले कलेवर लिये दोनों बालक खूब उल्लासमें उछल रहे हैं। कीर्त्तिमती श्रीदाम एवं कुन्दवल्लीको यमुना-स्नान करा रही है। कीर्त्तिदा किञ्चित् उष्णवारिसे कन्याका सर्वाङ्ग स्नान करा रही है। फिर उसका अपने आँचलसे अङ्ग-सम्मार्जन करती है। पश्चात् गोदमें लेकर कन्याके प्रशस्त भालपर कुंकुम-कस्तूरीसे बिन्दु लगाती है। तदनन्तर अपनी अनामिका अँगुली अच्छी तरहसे प्रक्षालन करके, पौंछकर उससे काजल उठाकर भगवतीका स्मरण करती हुई कन्याके निमीलित नेत्रोंको आँज देती है। नयन आँजते समय कन्या रोने लगती है। महारानी उत्फुल्ल नेत्रोंसे एक बार पुत्रीको निहारकर उसके मुखमें अपना स्तनाग्र दे देती है। उस समय कीर्त्तिकुमारीके विद्युन्मालाके सदृश कुन्दनद्युति-विनिन्दक अङ्गोंकी शोभा देख-देखकर पुर-महिलाएँ सुखातिरेकसे आत्मविस्मृत-सी होने लगती हैं। इधर कीर्त्तिकुमार श्रीभैया एवं कुन्दवल्ली भी पूर्णतया अलंकृत एवं सुसज्जित हो जाते हैं।

ब्राह्मण आते हैं। हाथोंमें कुशपुञ्ज लेकर, उसे शान्ति-कुम्भजलसे आर्द्र बना-बनाकर मंत्रोच्चारण करते हुए श्रीभैया, कुन्दवल्ली एवं नवजात कन्याके अङ्गोंका जलविन्दुओंसे प्रोक्षण करते हैं। प्रोक्षणके समय ही विद्युल्लता-सी सद्योजात कन्याके नेत्रोंमें निद्राका संचार होने लगता है। उसके नेत्र तो निमीलित रहते ही हैं; वह दोनों हाथोंसे जननीका स्तन धारण कियेहुए ही उसका वात्सल्य-प्रेम-पीयूष पान करती-करती निद्रादेवीकी गोदमें चली जाती है।

रावलमहलके तोरणद्वारपर शंखध्वनि हो रही है। वेणु, वीणा, मृदङ्ग बज रहे हैं। ब्रजाङ्गनाएँ मङ्गलगान करती कीर्त्तिदाकी प्रतीक्षा कर रही हैं। द्वारपर रथ सजे खड़े हैं। वृषभानु महाराज भी महारानीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कीर्त्तिदा महारानी निद्रित बालिकाको पालनेमें सुलाकर ब्राह्मणोंको सङ्केत करती हैं। सभी यमुनातटसे दूर चले जाते हैं। ब्रजाङ्गनाएँ अन्तःपट करकें उनका एवं कीर्त्तिमतीका भी उबटनकर उन दोनोंको भी स्नान कराती हैं,

वस्त्रालङ्कार धारण कराती हैं। ब्राह्मणी वयोवृद्ध स्त्रियोंको प्रणामकर दोनों बहिनें उनके हाथोंसे धूप, दीप, नैवेद्य, धान्य, दूर्वा, हरिद्रा, चन्दन, तुलसी आदि माङ्गलिक द्रव्य लेकर यमुना-पूजन करती हैं। वयोवृद्ध ब्राह्मणियोंका चरण-प्रक्षालन करती हैं। सौभाग्यवती ब्राह्मण-दम्पतियोंको काञ्चनपात्रोंमें प्रचुर अन्नराशि, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, बहुमूल्य रत्नाभूषण,, मणिमालाएँ, फिर सभी ब्राह्मणोंको रुचिके अनुसार अगणित गोदान अर्पित करते हुए उनकी पूजा करती हैं। कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम भी अपनी माताओंकी आज्ञानुसार ब्राह्मण-दम्पतिका पूजनकर, उनका आशीर्वाद लेते हैं।

फिर गीत गाती हुई पुर-महिलाओंसे वेष्टित वे महलकी ओर प्रस्थान करती हैं।

महलके यमुनातटवाले द्वारपर ही महाराज वृषभानु महारानीकी प्रतीक्षामें खड़े दृष्टिगोचर हो जाते हैं। महाराज वृषभानुके साथ ही महाराजके सचिव सत्यभानु गोप भी हैं। फिर सभी वृषभानु-परिवार एकत्रित हो रावलनरेश बिन्दुकी यज्ञशालामें जाकर उन्हें प्रणामकर उनसे विदा ग्रहण करते हैं।

प्रासादके मुख्यद्वारपर एक अत्यन्त वृहदाकार शकट विशालकाय बलीवर्दोंसे जुता खड़ा है। शकट स्तंभोंसे सन्नद्ध एक अतिशय सुन्दर दोलिकामञ्च (पालना) टँगा है। पालनेके पाये प्रवाल-निर्मित हैं। पट्टियाँ मरकतमणि-रचित हैं, उसमें अरुण क्षोम (लाल रेशम) की डोरी एवं फीते हैं। तूल (रूई) भरी तोसक है। चारों ओर तूलनिर्मित तकिये लगे हैं। इसी पालनेमें कन्याको महारानी सुला देती हैं। महारानीके पीछे-पीछे श्रीदाम एवं कुन्दवल्ली आ रहे थे। दोनोंको गोदमें लेकर कीर्त्तिमती शकटपर कीर्त्तिकुमारीके पास बैठा देती है। अपनी सोनजुहीके पास बैठनेसे कुन्दवल्ली अतिशय प्रसन्न है। तत्पश्चात् शकटपर कीर्त्तिमती एवं महारानी बैठ जाती हैं।

महारानीके रथके आगे एक और रथ है, जिसपर महाराज आसीन हो जाते हैं। पीछे अनेक दासियोंके रथ हैं। सबसे आगे धनुषधारी रक्षक रथी हैं। पीछे भी भाला लिये सैनिक अश्वोंपर सवार हैं।

वेदज्ञ ब्राह्मण धान्य, दूर्वा, मङ्गलघट लिये स्वस्तिवाचन-पाठ कर रहे हैं। काञ्चनपात्रोंमें सजी अन्न-वस्त्र-आभूषणादि सामग्रीको महाराज स्पर्शकर ब्राह्मणोंको दान दे रहे हैं। इसी मङ्गल वेलामें रथमें महाराज-महारानी वृषभानुपुर-गमन करते हैं।

वृषभानुपुरमें देवर्षि नारदजी

शिशिर एवं बसन्तकी सन्धिका प्रभात हुआ है। क्रमशः सूर्योदय होता है। मुक्ता-जैसे ओसकण सर्वत्र पड़े चमक रहे हैं। ब्रजके वनप्रान्तरकी ओटसे छन-छनकर आती हुई किरणोंके आलोकसे वृषभानुभवन उद्भासित होने लगता है। प्रातः-ही-प्रातः उल्लासभरे महाराज वृषभानु तोरणद्वारपर खड़े गोपूजन करके ब्राह्मणोंका पूजन करनेका उपक्रम बना रहे हैं। नक्षत्र मासकी गणनानुसार कीर्त्तिकुमारी आज छः मासकी हो चुकी हैं।

वृषभानु महाराजको चिन्ता है, कन्या सदैव अपने नेत्र निमीलित ही रखती है। एक क्षणके लिये भी उसके नेत्र उन्मीलित नहीं होते। धात्रीगणोंकी उक्ति है कि कन्याके नेत्रोंमें कहीं कोई दोष नहीं। तब कन्या अपने नेत्रोंसे अपनी मातापर भी दृष्टि क्यों नहीं डालती ? वह अन्य लोगोंकी बातें भी सुनती नहीं; सदैव उन्मादिनी-सी रहती है। अब तो वह छः मासकी हो चुकी है। छःमासकी बालिकाको तो अपने माता-पिता-भाई आदिकी पहचान भी हो जानी चाहिये; परन्तु यह बालिका तो बस, उन्मनी-सी शान्त लेटी रहती है।

इधर तो महाराज बृषभानु एवं उनके परिजन इस चिन्तामें हैं, उधर वीणाकी झङ्कारपर हरिगुणगान करते देवर्षि नारदको भगवती योगमाया ब्रजमें भेज देती हैं। वे नन्दव्रजमें नन्दभवन चले जाते हैं। वहाँ नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके वे दर्शन करते हैं। देखते ही मुनिकी दशा विचित्र हो जाती है।

ब्रह्मवित्-शिरोमणि नारदकी अन्तरात्मामें नन्दतनयको निहारकर एक अभिनव प्रकाशका उदय हो उठता है। उस प्रकाशसे आलोकित ब्रह्मर्षि नारदका मन अनेक उद्भावनाएँ करने लगता है – 'ओह ! मैं यह क्या देख रहा हूँ ? क्या यह अनादि मोहान्धकारको सर्वथा नष्ट करदेनेवाला विशुद्ध ब्रह्मरूप रत्न-प्रदीपका अंकुर है ? अथवा यह ईश्वर-प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंका प्रामाण्य ही शरीर ग्रहणकर मूर्त्त हो गया है ? क्या यह हम सभीके सौभाग्यका प्रसून प्रस्फुटित हुआ है ? ओह ! निश्चय ही जिसे लोग ब्रह्म कहते हैं, कुछ मनीषी जगत्कर्त्ता मानते हैं, कुछ जिसे परमात्मा कहकर संङ्केतित करते हैं, कुछ श्रेष्ठ पुरुष जिन्हें 'भगवान्' प्रतिपादित करते हैं, जिनका प्रभाव देश-काल-परिच्छिन्न नहीं है, वही देव नन्दमहिषीकी गोदमें परिच्छिन्न, सीमाबद्ध बना दृष्टिगोचर हो रहा है। ओह ! यह कितना आश्चर्य है।'

श्रीनारदजी दर्शन करते हैं कि स्वर्णके पालनेपर, जिसपर तूलपुष्ट रेशमका गद्दा बिछा है, छोटे-छोटे लघु उपधान तकिये लगे हैं,नन्दनन्दन किलक रहे हैं। उनकी चितवन अतिशय भोली है। काली-काली अलकें कन्धोंपर बिखर रही हैं। वे मन्द-मन्द मुसका देते हैं, जिससे उनके नीचेके दो दाँत झलक पड़ते हैं। उनकी छविसे नन्दभवन उद्भासित हो रहा है। नग्न बालरूपमें भगवान् अच्युतको देख नारदजीको बहुत ही हर्ष होता है।

नन्दादि सभी गोप नारायण-बुद्धिसे मुनिको प्रणाम करते हैं। सभी गोप मिलकर उनकी अभ्यर्चना करते हैं।

इसके पश्चात् नारदजी विचार करते हैं कि जब स्वयं गोलोकेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र भूतलपर अवतरित हुए हैं, तो गोलोकेश्वरी श्रीराधा भी कहीं-न-कहीं गोपीरूपमें अवश्य आयी हैं।

श्रीराधाको ढूँढते-ढूँढते देवर्षि थक जाते हैं। देवर्षिका दिव्य ज्ञान कुण्ठित हो जाता है। सर्वज्ञ नारदजीको श्रीराधाका अनुसंधान ही नहीं मिलता। देवर्षि ब्रजके प्रत्येक गृहमें जहाँ किसी कन्याका जन्म हुआ है, जा-जाकर अनुसंधान करते हैं किन्तु निराशा ही उनके हाथ लगती है।

श्रीनारदजीका ब्रजमण्डलमें यह भ्रमण कदाचित् इसीलिये है कि भगवती महादेवी योगमाया देवर्षि नारदको निमित्त बनाकर राधा-दर्शनकी यह साधना जगत्को बता रही हों कि पहले श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं। उनके दर्शनोंसे ही श्रीराधाके दर्शनकी इच्छा जागृत् होती है। फिर राधाको पानेके लिये व्याकुल होकर ब्रजकी गलियोंमें भटकना पड़ता है। तब कहीं जाकर श्रीराधाकी किसी सखीकी कृपाप्राप्ति होती है। अन्तमें उस सखीकी कृपासे श्रीराधातक किसी साधककी गति होती है। चाहे कोई कितना ही बड़ा महर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि हो, रसकी परिपाटीका जो पथ निर्धारितं है, उस पथका अनुसरण तो करना ही पड़ता है।

अस्तु, घूमते-घूमते देवर्षि वृषभानु-प्रासादके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। वहाँ उन्हें नन्हे बालकोंमें क्रीड़ा करते कुमार श्रीदाम और उसकी भगिनी कुन्दवल्ली मिल जाती है। संस्कारी बालक श्रीदाम महर्षिको प्रणाम कर अपना गोत्रोच्चार करता है एवं अपनी संक्षिप्त वंशावली बताता है। कुन्दवल्ली तो सीधे देवर्षिका हाथ पकड़कर कहती है -'ऋषिवर ! आप अवश्य नन्दव्रज होकर आये हैं, मैं सब जानती हूँ। जगन्माताने मुझे सूचित कर दिया है। आपने नीलमयङ्क नन्दतनूजके भी दर्शन किये हैं। अब आप हमारी सोनजुहीको देखना चाहते हैं। परन्तु जबतक मेरी एक शर्त्त पूरी नहीं करेंगे, मैं मेरी सोनजुहीतक आपको कदापि नहीं जाने दूँगी।' कुन्दवल्लीकी बातका प्रतिवाद करता श्रीदाम अति विनयपूर्वक कहता है -'देवर्षि ! इसे क्षमा करें, जगन्माताकी लाडिली होनेसे यह ढीठ हो गयी है। चलिये, मैं मेरे पिताजीको बुलाकर लाता हूँ।' श्रीदाम दौड़कर अपने पिता महाराज वृषभानुको ले आता है। वे श्रीनारदजीको उनकी ब्रह्मवीणासे पहचानकर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् गिर जाते हैं।

विधिवत् पाद्य-अर्घ्य-पूजा करके देवर्षिको प्रसन्न अनुभवकर बृषभानु अपने पुत्रसे उन्हें प्रणाम करवाते हैं, फिर मुनिके चरणोंमें ही उसे डाल देते हैं। मुनि तो पहले ही उसे देखकर स्नेहाश्रुसे भरे होते हैं। फिर कुन्दवल्लीको भी प्रणाम

करवाते हैं। मुनि कुन्दवल्लीको भी हृदयसे लगा लेते हैं। फिर वे भविष्य बतलाते हुए कहते हैं -'बृषभानु ! तुम्हारे पुत्रके अतुलनीय प्रभावको इस जगत्में कोई नहीं जानता। यह नन्दनन्दन श्रीकृष्णका प्राणप्रिय सखा होगा। और यह चञ्चल बालिका तो नन्दतनयकी अति मनोरम रसमयी लीलाकी विशेष सूत्रधारिणी ही होगी। इसमें सर्वज्ञताशक्ति सदैव सुप्रकाशित रहेगी और यह जहाँ, जिस समय, जिस किसीको भी अपने दृष्टिबंध एवं सङ्कल्पसे जो दृश्य दिखाना चाहेगी, दिखानेमें समर्थ होगी।'

'तो क्या रासेश्वरी श्रीराधा यहाँ भी नहीं हैं ? बृषभानु उन्हें मेरे सम्मुख लाया क्यों नहीं ?' यह सोचकर निराश-से देवर्षि चलनेको उद्यत होते हैं। उसी समय कुन्दवल्ली बोल उठती है -'देवर्षि ! मेरी एक सोनेकी पुतली-सी बहिन है। सुन्दर वह इतनी है, मानो सौन्दर्यकी खानि हो। परन्तु उसके दर्शन मैं आपको तभी कराऊँगी जब उसकी आँखें उन्मीलित करनेका कोई मंत्र बतावेंगे। वह सदैव अपने नेत्र निमीलित ही रखती है। अपनी माताका दूध भी वह नेत्र बन्दकर ही पीती है। वह किसीकी बोली भी नहीं सुनती। ऐसा लगता है, उसके कानोंमें जगचर्चा प्रवेश ही नहीं कर पाती। इसलिये हे भगवत्तम ! आपसे मैंने पहले ही कहा था, मेरी प्रार्थना है एक बार उसपर अपनी सुप्रसन्न दृष्टि डालकर उसे प्रकृतिस्थ कर दें। बस, इतनी ही मेरी आपसे शर्त्त है।'

यह कहती कुन्दवल्ली नारदजीका हाथ पकड़े-पकड़े उन्हें अन्तःपुरमें ले जाती है। महाराज बृषभानुजी एवं श्रीदाम भी बालिकाकी हठभरी प्रीतियुक्त बातें सुनकर उनके पीछे-पीछे विनीत भावसे चल पड़ते हैं। अन्तःपुरमें प्रवेश करते ही पद्म-पर्यंकमें लेटी स्वर्णनिर्मित सजीव सुन्दरतम प्रतिमा-सी एक बालिकाको देखते ही नारदजीका तो धैर्य ही जाता रहता है। कुन्दवल्ली ताली बजाकर नाच उठती है -'देवर्षि ! यही है मेरी सोनजुही ! यह मात्र ऊपरसे ही कुन्दनवर्णी है, इसकी खोलके भीतर तो नीलमयङ्क पूरा ओतप्रोत है। यह आठों याम उसे ही निमीलित नेत्र निहारती रहती है, उसे ही सुनती है और उसीमें इसके प्राण सदैव समाहित रहते हैं।'

देवर्षि नारद तो बालिकाकी पूरी बात सुन ही नहीं पाते। उनका तो उस कुन्दनद्युति कन्याके दर्शन मात्रसे समग्र धैर्य ही जाता रहता है। अपनेको वे किसी भी प्रकार संवरण नहीं कर पाते हैं। परमानन्द-सिन्धुकी लहरें उन्हें लपेट लेती हैं, उनके प्राणोंमें अननुभूतपूर्व अद्भुत प्रेमका सञ्चार हो जाता है, वे बालिकाको अपने हृदयसे सटाये ही बाह्यज्ञानशून्य हो जाते हैं। दो घड़ीके लिये तो उनकी दशा ऐसी हो जाती है, मानो उनका शरीर मात्र एक शिलाखण्ड हो। दो घड़ीके पश्चात् जाकर कहीं उन्हें बाह्यज्ञान होता है। बालिकाका अप्रतिम सौन्दर्य निहारकर उनके विस्मयकी सीमा नहीं रहती। वे मन-ही-मन सोचने लगते हैं -'ओह ! मैंने स्वच्छन्दचारी होकर समस्त लोकोंमें भ्रमण किया, परन्तु इसके समान अलौकिक सौन्दर्यमयी कन्याके दर्शन तो मुझे कहीं नहीं हुए। मेरी अबाध गति है, ब्रह्मलोक, रुद्रलोक, इन्द्रलोक - इनमें कहीं भी इस शोभासागरका एक बिन्दु भी मैंने नहीं देखा। महामाया भगवती शैलेन्द्रनन्दिनीके भी दर्शन मैंने किये हैं, उनका सौन्दर्य चराचरमोहन है; किन्तु इतनी सुन्दर तो वे भी नहीं हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति एवं विद्या आदि देवियाँ भी इसके सौन्दर्यकी छायाका भी स्पर्श नहीं कर सकतीं। भगवान् विष्णुके हरविमोहन रूपको भी मैंने देखा है, पर इस अतुल रूपकी तुलनामें कोई, कहीं भी नहीं ठहर पाता। इस बालिकाको देखने मात्रसे गोविन्द-चरणाम्बुजमें मेरी जैसी प्रीति उमड़ी, वैसा आजतक कभी नहीं हुआ। बस, बस, यही श्रीराधा हैं; निश्चय ही ये ही रासेश्वरी हैं।' — देवर्षिका अन्तर्हृदय आलोकित हो उठा।

'बृषभानु ! कुछ क्षणके लिये तुम बाहर चले जाओ; बालिकाके सम्बन्धमें मैं कुछ करना चाहता हूँ।'— गद्गद्कण्ठसे देवर्षिने धीरे-धीरे कहा। सरलमति वृषभानु देवर्षिको प्रणामकर बाहर चले आये। एकान्त पाकर नारदने श्रीराधाका स्तवन प्रारंभ किया — 'देवि ! महायोगमयि ! महाप्रभामयि ! महामायेश्वरि ! मेरे महान् सौभाग्यसे, न जाने किन अनन्त शुभ कर्मोंसे रचित सौभाग्यके फलोदय होनेसे तुम मेरे दृष्टिपथमें उतर आयी हो। देवि ! ये तुम्हारे दिव्य अङ्ग अत्यन्त मोहन

हैं। ओह ! इन मधुर अङ्गोंसे माधुर्यका निर्झर झर रहा है। इस मधुरिमाका एक कण ही उस महाद्भुत रसानन्दका सृजन कर रहा है, जिसमें अगणित भक्तगण अनन्त कालतक स्नान करते रहेंगे। देवि ! तुम्हारे इन निमीलित नेत्रोंसे भी सुखकी वर्षा हो रही है, जो नित्य नवीन है। मैं अनुभव कर रहा हूँ, तुम्हारे अन्तर्देशमें सुखका समुद्र लहरा रहा है। उसीकी लहरें तुम्हारे नेत्रोंको निमीलित किये हैं और तुम्हारे इस सौम्य, मधुर मुखमण्डलपर नाच रही हैं।'

देवर्षिकी वाणी काँप रही है, फिर भी वे स्तवन करते ही जा रहे हैं। 'देवि ! तुम्हीं ब्रह्म हो; सच्चिदानन्दब्रह्मके सत्‌अंशमें स्थित संधिनी शक्तिकी चरम परिणति – विशुद्ध तत्व तुम्हीं हो; विशुद्ध सत्त्वमयि ! तुममें ही चिदंशकी संवित्‌शक्ति, संवित्‌की चरम परिणति विद्यात्मिका पराशक्ति – ज्ञानशक्तिका भी निवास है। तुम्हीं आनन्दांशकी ह्लादिनी शक्ति, ह्लादिनीकी भी चरम परिणति महाभावरूपिणी हो; आश्चर्यवैभवमयि ! तुम्हारी एक कलाका भी ज्ञान ब्रह्म, रुद्रतकके लिये कठिन है। फिर योगीन्द्रगणके ध्यानपथमें तो तुम आ ही कैसे सकती हो। मेरी बुद्धिमें तो इतना ही आरहा है कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति – ये सभी तुम महेश्वरिके ही अंशमात्र हैं।'

'मायासे ही विशुद्ध रूप धारण करनेवाले परमेश्वर महाविष्णुकी जो अचिन्त्य विभूतियाँ हैं, वे सभी तुम्हारी अंशांश मात्र हैं। ईश्वरि ! तुम निस्सन्देह आनन्दमयी शक्ति हो, अवश्य ही वृन्दावनमें श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे साथ क्रीड़ा करते हैं। ओह ! देवि ! जब तुम्हारा कौमार रूप ऐसा विश्वविमोहन है, तब वह तरुण रूप न जाने कितना विलक्षण होगा !''

कहते-कहते नारदका कण्ठ रुद्ध होने लगता है। उनके प्राणोंमें राधाके तरुणरूपको देखनेकी प्रबल उत्कण्ठा भर जाती है। वे वहीं पर टँगे मणि-पालनेपर श्रीराधाको लिटा देते हैं और उनकी ओर देखते हुए बारंबार प्रणाम करने लगते हैं।

नारदके अन्तर्हृदयमें मानो कोई कह देता है-'देवर्षे ! श्रीकृष्णकी वन्दना करो, तभी श्रीकृष्ण-प्रियतमाके नेत्र तुम्हारी ओर फिरेंगे।'देवर्षि तत्क्षण ही श्रीकृष्णचन्द्रकी जय-जयकार कर उठते हैं-

जय कृष्ण मनोहारिन् ! जय वृन्दावनप्रिय !!
जय भ्रूभंगललित ! जय वेणुरवाकुल !!
जय बर्हकृतोत्तंस ! जय गोपीविमोहन !!
जय कुंकुमलिप्तांग ! जय रत्नविभूषण !!

बस, इसी समय दृश्य बदल जाता है। मणि-पालनेपर विराजित वृषभानुकुमारी अन्तर्हित हो जाती हैं, तथा नारदके सामने किशोरी राधाका आविर्भाव हो जाता है। इतना ही नहीं, दिव्य भूषण-वसनसे सज्जित अगणित सखियाँ भी वहाँ प्रकट हो जाती हैं, श्रीराधाको घेर लेती हैं। वह रूप, वह सौन्दर्य ! – नारदके नेत्र निमेषशून्य एवं अंग निश्चेष्ट हो जाते हैं, मानो नारद अन्तिम अवस्थामें जा पहुँचे हों।

राधा-चरणाम्बु-कणिकाका स्पर्श कराकर एक सखी देवर्षिको चैतन्य करती है –

'मुनिवर ! अनन्त सौभाग्यसे श्रीराधाके दर्शन तुम्हें हुए हैं। महाभागवतोंको भी इनके दर्शन दुर्लभ हैं। देखो, अब ये तुम्हारे सामनेसे फिर अन्तर्हित हो जावेंगी। प्रदक्षिणाकरके नमस्कार कर लो। जाओ, गिरिराज-परिसरमें कुसुमसरोवरके तटपर एक अशोकलता फूल रही है। उसके सौरभसे समग्र वृन्दावन सुरभित हो रहा है। वहाँ, उसके नीचे हम सभीको अर्धरात्रिमें तुम देख पाओगे।'

श्रीराधाका वह कैशोर रूप अन्तर्हित हो जाता है। बालरूपसे पालनेपर वे पुनः प्रकट हो जाती हैं।

द्वारपर खड़े वृषभानु, श्रीदाम, कुन्दवल्ली सभी प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। अश्रुपूरित रुद्धकण्ठसे देवर्षि उन्हें बुला लेते हैं। वे सभी आ जाते हैं। देवर्षि बोलते हैं -'बृषभानु ! इस बालिकाका ऐसा ही स्वभाव है। देवताओंकी भी सामर्थ्य नहीं है कि इसका स्वभाव बदल पावें। किन्तु तुम्हारे भाग्यकी सीमा नहीं। जिस गृहमें तुम्हारी पुत्रीके चरणचिह्न अङ्कित हैं, वहाँ लक्ष्मीसहित नारायण नित्य निवास करते हैं।'

यह कहते-कहते स्खलितगतिसे नारद चल पड़ते हैं। वीणामें राधा-यशोगानकी लहरी भरते, आँसू बहाते हुए वे अशोकवनकी ओर चले जाते हैं।

वसन्तोत्सवमें कुन्दवल्ली

कुन्दवल्ली तीन वर्ष छःमाह एवं चौबीस दिनकी हो चुकी है। उसकी छोटी बहिन राधा भी सोलह मास सत्ताईस प्रभात देख चुकी है। अभी भी उसके नेत्र सदैव निमीलित ही रहते हैं। हाँ, वीणाधारी देवर्षि नारद जिस दिवस आये थे, उसी दिवस कीर्त्तिदारानीकी गोदमें पुत्रीको देखकर प्रेमविवश हुए वृषभानुजी उसे लड़ाने लगे थे। नारदके गानका इतना-सा अंश वृषभानुबाबाके कानमें प्रवेश कर गया था- ***'जय कृष्ण मनोहारिन् !'*** जानकर नहीं, लाड-लड़ाते समय यों ही उनके मुखसे निकल गया - ***'जय कृष्ण मनोहारिन्'*** - बस, भानुकुमारी श्रीराधा आँखें खोलकर देखने लगती है। वृषभानुके हर्षका पार नहीं। कीर्त्तिदा आनन्दमें निमग्न हो जाती है। उन्हें तो पुत्रीको प्रकृतिस्थ करनेका मंत्र मिल जाता है। अथवा एक अवसर और है, जब उसकी आँखें अपने आप विकसित हो जाती हैं। जब कभी नन्दरानी अपने नीलमणि पुत्रको साथ लेकर वृषभानुपुर आती हैं और उस नीले शिशुका अप्रतिम अङ्ग-सौरभ वृषभानुपुत्रीको प्राप्त होता है। जबतक उस सौरभकी अनुभूति उसे होती रहती है, तबतक उसके दृग-सरोज खुले ही रहते हैं। किन्तु जैसे ही वह नीला शिशु उसके नेत्रोंसे हटता है, राजपुत्रीके नयन अपने आप निमीलित हो जाते हैं।

आज आम्रमञ्जरी-प्राशन-तिथि वसन्तपञ्चमीका आगमन हो गया है। वृषभानुपुर एवं नन्दग्रामके सम्पूर्ण स्त्री-पुरुष आज यमुनाके किनारे ही नन्दग्राममें एकत्रित हुए हैं। जबसे नन्दनन्दनका प्राकट्य हुआ है, तभीसे महामना नन्दराय और महाराज वृषभानु वर्षके सभी उत्सव सम्मिलित होकर साथ-साथ एक ही स्थानपर मनाया करते हैं। अतः आज भी ब्रजेशगेहिनी यशोदा एवं नन्दराय, महाराज वृषभानु एवं महारानी कीर्त्तिदाके सहित विविध उपचारोंसे पञ्चदेवताओंकी एक ही स्थानपर आराधना कर रहे हैं। महर्षि भागुरि एवं शाण्डिल्य दोनों ही ब्राह्मण वैदिक मंत्रोंसे उनसे सविधि देवोपासना करवा रहे हैं। महारानी कीर्त्तिदाने इसीलिये श्रीराधाको सम्हालनेका दायित्व अपनी छोटी बहिन कीर्त्तिमतीपर छोड़ दिया है। कुन्दवल्ली एवं कीर्त्तिमती दोनों ही जब भी श्रीराधाको ***'जय कृष्ण मनोहारिन्'*** उच्चारणकर सुनाती हैं वह अपने नेत्र विकसित कर देती है। एवं जैसे ही यह पंक्ति समाप्त होती है, वह पुनः अपने नेत्र मूँद लेती है। कुन्दवल्लीको अपनी छोटी सत्रह मासकी बहिनके कर्णविलम्बी नेत्रोंका विकसित होना और निमीलित होना बहुत ही प्रिय लगता है। कुन्दवल्ली तो इधर श्रीराधासे खेल रही है और उधर उसकी मैया कीर्त्तिमती विचार-प्रवाहमें डूब जाती है।

'अहो ! यदि ऐसी ही सुषमाशालिनी, अप्रतिम सुन्दरी, इसीकी एक सहोदरा, सुखकी पुञ्ज कन्या और होती तो ? तब या तो मैं इसे अथवा उस कनिष्ठाको सदा अपने अङ्कमें ही रखती। फिर बहिन यदि इसे अङ्कमें लेती तो उसे मुझे सौंप देती और उसे अपना वात्सल्य-रस-दान करती तो यह मेरी गोदमें होती।'

मनमें इस अभिलाषाके उदित होते ही ज्योंही कीर्त्तिमती विकल होती है कि तत्क्षण ही उसे आकाशवाणी सुनाई पड़ती है। 'अरी मैया ! तेरा यह मनोरथ त्रिकालसत्यका सङ्केत मात्र है। शीघ्र ही तुम्हें तुम्हारी मनभायी वस्तु मिलेगी ही। इस कल्पलतिका राधाको स्पर्शकर जो भी मङ्गलमय सङ्कल्प किया जाता है, वह पूर्ण होता ही है। तेरा मङ्गल, परम मङ्गल हो।'

कीर्त्तिमतीके तन-मन आनन्द-परिप्लुत हो उठते हैं। उस ओर पञ्चदेवोंकी विधिपूर्वक अर्चना सम्पन्न हो जाती है। अब ढफ बजने लगते हैं। आकाश अरुणाभ बन जाता है। अंशुमालीका किरणजाल गुलालसे धुँधला हो उठता है। अबीर एवं गुलालसे रचित आटोप क्रमशः घना-से-घना होता चला जाता है। उस दिवसके अतिशय विशाल जन-समारोहमें नीलमयङ्क नन्दतनय तो हैं ही। बस, उस आकर्षणसे खिंची कुन्दवल्लीके संग नयनोंको मींचने-खोलनेकी क्रीड़ा करती कीर्त्तिकुमारी राधा ऐसी भावाविष्ट होती है कि कुन्दवल्लीको छोड़ वैसे ही दृग मूँदे कुछ दूर चली जाती है।

उसके होठोंपर मुसकान तो सदैव ही रहती है। ढफकी तालके साथ वह ताली बजाने लगती है। मन्द-मधुर स्वरमें वह इतनी सुरीली वाणीमें गाने भी लगती है कि कुन्दवल्ली तो उसपर मुग्ध ही हो उठती है। यह मुग्धता मात्र कुन्दवल्लीमें ही नहीं जागती, अपितु लाडिली राधाके मोहक स्वर सभी जन-समुदायको ही उन्मत्ततासे भर देते हैं।

उस होली-क्रीड़ामें प्रायः सभीको 'मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, मुझे क्या करना है – इन बातोंकी विस्मृति हो जाती है। सबकी अञ्जलि तरल गुलालसे परिपूर्ण होती ही है। सभी अनजानेमें ही उस ओर दौड़ पड़ते हैं, जहाँ लाडिली नेत्र बन्द किये खड़ी रसकी सरिताका सृजन कर रही होती है। उस सरितामें नवीन-नवीन लहरोंका सुन्दर आवर्त्त-चित्र स्वतः अङ्कित होने लगता है।

अचानक उस यशोदाके नीलमयङ्क शिशुका, जो मात्र इस बालिकासे पन्द्रह दिवस ही वयस्क है, मधुरातिमधुर स्वर गूँज उठता है – 'अरे ! ठहरो, ठहरो, तुम यह सब क्या कर रहे हो ? वृषभानु महाराजकी बेटी यहीं खड़ी हैं, और यदि मैं यहाँ नहीं होता तो तुम सबके द्वारा आज यह यहाँ पिस ही गयी होती।' यद्यपि कुन्दवल्ली कीर्त्तिदाकुमारीके पास ही खड़ी होती है, किन्तु वह तो किसी अन्य लोकमें ही चली गयी होती है।

आभीर-नरेश महाराज नन्दके लाडिलेकी यह चेतावनीका स्वर आनन्दमें मत्त जन-समुदायके एक-एक जनके कर्णपुटोंमें सहसा ध्वनित हो जाता है। इस स्वरसे जहाँ सभी जनप्रवाह, जो जहाँ था, वहीं थम जाता है, किन्तु कुन्दवल्ली तो रसमयताके महासिन्धुमें ही मानो निपतित हो जाती है।

'क्या इसके समस्त अङ्ग नीलमणिसे ही बने हैं ? किन्तु नीलमणि तो कठोर होती है, वह अचल भी होती है, यह तो चलता-फिरता बोलता जीवन्त है ! यह तो नीलपद्मकी पंखुड़ियोंसे भी सुकुमार है। ओह ! यह कितनी सुधास्रावी मीठी वाणीमें बोलता है। अरे ! मात्र पन्द्रह दिवस ही तो यह मेरी अनुजा राधासे वयस्क है, किन्तु इसपर कैसा अधिकार रखकर इसका अभिभावक हो गया है।'

होली-क्रीड़ामें नन्दग्रामकी सभी रमणियोंसे घिरी कीर्त्तिदा एवं कीर्त्तिमतीको भी यह नन्दतनयकी वाणी सजग कर देती है। नन्दतनय तो तबतक कुन्दवल्लीसहित कीर्त्तिकुमारी राधाको लेकर उनके पास ही स्त्री-समुदायमें पहुँच जाता है।

नन्दतनयके साथ दोनो पुत्रियों – कुन्दवल्ली एवं राधाको देख महारानी मुसका उठती हैं। वे नन्दतनयसे हँसकर कहती हैं – 'अरे मेरे लाल ! मेरी इन बेटियोंकी सँभाल रखनेवाला मेरा नयनतारा तू ही था, तू ही है एवं आगे भी निरवधि तू ही रहेगा। मेरी पुत्री तुम्हारी ही छायामें नित्य सुरक्षित रहेगी।'

नन्दतनय पुनः उसी मधुर स्वरलहरीमें बोल उठता है – 'अब मुझे कुछ पुरस्कार तो दो, भला ! देखो, यहाँ तुरन्त ही कुछ दे देनेपर तो अल्पमें ही मैं राजी हो जाऊँगा, किन्तु यदि घर ले जाकर पुरस्कार दिया तो फिर तो दूने पुरस्कार बिना मैं सन्तोष करनेवाला नहीं हूँ। हाँ, यह अवश्य है कि तेरे घर ले चलनेपर उसके पश्चात् तेरी पुत्रीकी आँखें पुनः कभी निमीलित नहीं होंगी।'

इस आश्वासनके पश्चात् कीर्त्तिदाको और चाहिये भी क्या था ? वह क्षणभरका भी विलम्ब न कर तत्क्षण ही बोल उठती है – 'अरे ! मेरे लाल ! तू मेरे घर चलकर तो देख, मैं तो तुझे अपना सर्वस्व ही सौंप दूँगी और तू चाहे जो मनमानी करना, मैं तुझे रोकूँगी भी नहीं। किन्तु शर्त यही है कि तुझे फिर मेरे घरपर ही रहना पड़ेगा।'

महारानी कीर्त्तिदा इतना कहते-कहते ठठाकर हँस पड़ती हैं, और नीलसुन्दरका कर-सरोज वे अपने हाथमें धारण कर लेती हैं। कुन्दवल्लीके मन-मानसमें तो मानो आनन्द-सिन्धु ही उमड़ पडता है। अब तो वह अनवरत आठों याम ही इस नन्दतनयके पास रहेगी। उसे अपने सुख-वैभवके सम्मुख सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आनन्द भी तुच्छ अनुभव होने लगता है।

और आश्चर्य ! नीलमयङ्क भी कीर्त्तिदा महारानीके साथ-साथ उसके राजमहलमें रहने चल ही पड़ता है।

गोपेशगेहिनी यशोदा तो धर्मसङ्कटमें पड़ जाती है। यद्यपि अपने इस नीलमयङ्क लालकी रुचिकी रक्षाके लिये वह अपना गृह, गोधन, यहाँतक कि अपने पति नन्दरायजी तकको छोड़कर उसके पास बृषभानुपुरमें रहनेको मनसे तत्पर है, फिर भी उसके मुखसे ये शब्द फूट पड़ते हैं – 'अरे साँवरे ! फिर मेरे घरको उद्भासित कौन करेगा रे ? तेरे विहीन तो नन्दभवन सूना ही हो जायगा, रे !'

'अरी मैया ! तू इस रहस्यको समझ ही नहीं पा रही है।' नन्दतनय तत्क्षण ही वहाँ पड़ी एक आरसी उठा लेते हैं, एवं कहने लगते हैं – 'देख मैया ! एक नया खेल मैं कर दे रहा हूँ। तेरे गृहमें तो मैं नित्य रहूँगा ही, देख, इस दर्पणमें मेरी जो प्रतिच्छाया है उसे मैं महारानी कीर्त्तिदाके भवनमें स्थापित कर दूँगा, जिससे इनकी दृगपुतली बेटी राधाके साथ सदा मेरी यह छाया बालक्रीड़ा करती रहे, और मैं तो उसके साथ खेलूँगा ही।'

जिस समय नीलसुन्दर अपनी मैया यशोदासे उक्त संवाद कह रहा होता है, कीर्त्तिदा महारानी, कीर्त्तिमती, कुन्दवल्ली एवं वहाँ उपस्थित श्रीदामादि वृषभानुपरिवारके सभी लोगोंके मनकी ऐसी विचित्र दशा हो जाती है, जिसका वर्णन स्वयं वाणीदेवी भी चाहें तो लेखनीसे होना असंभव ही है।

ओह ! कुञ्चित अलकोंसे मण्डित वह नीला-नीला मुख-सरोज उस समय कितना मनोहर हो उठता है, जब उस सौन्दर्य-सुधाका वृषभानुनन्दिनी राधा अपने नेत्रोंके द्वारा पान कर रही होती है। कुन्दवल्ली तो दोनोंको एक साथ देखकर ही रोम-रोमसे आनन्द-नर्त्तन कर रही है। उसके नेत्र न तो थकते हैं, न ही तृप्त होते हैं। जितना वह इस युगल-माधुरीमें डूबती, उतनी ही उसकी पिपासा असीम हो उठती है। कुन्दवल्लीके नेत्र-भ्रमर कभी इन दोनों युगलके पद्म-पँखुड़ियोंसे भी कहीं अधिक सुकुमार कपोलोंपर मँडराते, कभी अधरोंपर ठहर जाते हैं। उसे यही अनुभव होता है – ओह ! मानो ये अधर नहीं हैं, नील एवं रक्त पद्म-पल्लवोंकी सुकोमलतम आभा धारण किये इनके अधरोंके स्थानपर रक्तरागमणि एवं नील मणियाँ ही विजड़ित हो गयी हैं। वह चकित हुई दोनोंके चरणतल, करतल निहारती है क्योंकि वह अपना आश्रय सदैवके लिये इन चरणकमलोंको ही स्वीकार कर चुकी है। उसे उस समय यही अनुभव होता है, मानो ये पद्म एवं नीलमणियोंसे तो बने हैं, किन्तु मणिवत् कठोरताके स्थानपर इनमें जपाकुसुमोंकी अतिशय सुकोमलता भी भरी है। इस युगलकी करों एवं चरणोंकी नखावली तो पक्व दाड़िमबीजकी आभावाले माणिक्यके समान है। देखते-देखते कुन्दवल्ली कल्पनाके सुमधुर राज्यमें खो जाती है।

कुन्दवल्लीका हृदय इस नीलमयङ्ककी उक्तिको मात्र विनोद नहीं मान रहा है। यही दशा वृषभानुगेहिनीकी और कीर्त्तिमतीकी भी है। तीनोंके मनमें इस लालसाका रूप तीव्रतम हो उठता है कि कदाचित् जगज्जननी इस शिशुकी उक्तिको सत्य कर दें, और इस नीलशिशुका सचमुच ही एक प्रतिबिम्ब मेरे घर आ जाये। फिर तो मेरी बड़ी पुत्रीके नेत्र सचमुच ही सदैव खुले रहें और वह अपनी सलोनी आँखें खोलकर हँस-हँसकर उसके संग खेला करे।

और सचमुच ही महादेवी इन तीनोंको ही तथाऽस्तु कहकर इनकी लालसा पूर्ण कर देती हैं। महामाया एक नयी लीला रच देती हैं। महाराज वृषभानु रसमय भावोंसे भावित हुए क्षणिक चञ्चलताका प्रकाश कर बैठते हैं और उनके अप्रतिम जितेन्द्रिय मनमें तीसरी सन्ततिकी चाह सहसा ही प्रबल हो उठती है।

शरदोत्सवमें मंजुश्यामाका जन्म

शरदोत्सवमें मञ्जुश्यामाका जन्म उसी चाहका फल होता है। नन्दभवनमें कोजागरी (आश्विन पूर्णिमा)का नारायण-पूजन है। कुन्दवल्ली एवं श्रीदाम लगभग चार वर्ष एवं तीन मासके हो चुके हैं। जबसे नन्दतनय नीलमणिका जन्म हुआ है, यह प्रथा ही बन चुकी है कि शरद्, वसन्तादि सभी ऋतुओंमें होनेवाले उत्सव अहीरपुरवासी एवं भानुपुरवासी सम्मिलित ही मनावें। अतः आज वृषभानुपुर- नरेश अपनी सम्पूर्ण प्रजा एवं राजपरिवार-सहित नन्दव्रजके मेहमान हैं। अहीरपुरके नगरवासी भी उनके चरणोंमें नयन बिछाये स्वागत-सत्कार करनेमें उत्साह-सहित लगे हैं।

निर्मल चन्द्रज्योत्स्नासे नन्दप्राङ्गण उद्भासित हो रहा है। रजनीका मध्य होने जा रहा है। नन्दतनय वैसे तो प्रतिदिन सूर्य ढलते ही शयनके लिये जम्हाई लेने लगते हैं, किन्तु आश्चर्य है कि आज अभीतक निद्रा एवं आलस्यका चिह्न भी उनमें दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। निरालस्य पूरे चञ्चल बने वे कभी स्त्री-समुदायके जागरण-समारोहमें नृत्य करते हैं, कभी पुरुषों द्वारा होनेवाली नारायण-पूजामें अपने बाबाके पास मन्दिर चले आते हैं।

लो देखो ! गोपरामाओंके मध्य उनका नर्त्तन प्रारंभ हो चुका है। चञ्चल सुदीर्घ नेत्रोंकी प्रेमभरी भङ्गिमाओं तथा उनके नर्त्तनपर सभी गोपरामाएँ न्यौछावर हो रही हैं। कीर्त्तिमतीकी गोदमें राधा एवं पासमें कुन्दवल्ली बैठी उनके नर्त्तनको देख रही हैं।

गोपाङ्गनाएँ दल-की-दल नन्दभवनमें आ रही हैं। उनका बाह्य उद्देश्य तो यही है कि वे कोजागरी-जागरण सम्पन्न करने ही आयी हैं, परन्तु उनके अन्तरतम हृदयमें जो प्रबल उत्कण्ठा है, वह तो एक ही है कि नन्दभवनमें पहुँचनेपर यदि नन्दतनय एवं कुमारी राधा शयन भी कर गयी होंगी, तब भी उन्हें इन दोनोंकी शयित झाँकी तो मिल ही जायेगी।

सहसा कीर्त्तिदा महारानीको प्रसव-वेदनाका आभास होने लगता है। यशोदा उन्हें उसी मणिमय कक्षमें ले जाती हैं, जहाँ नन्दनन्दनका प्रसव हुआ है। महारानी मणिमय पर्यंकपर निमीलित नेत्र किये मणिमय दीवारका सहारा लेकर निस्पन्द बैठ जाती हैं। यशोदा पासमें ही बैठी हैं। रोहिणी प्रसवधात्रीको बुलाने परिचारिकाको तत्क्षण आदेश देती हैं।

कुछ ही क्षणोंमें कीर्त्तिदाका मुखमण्डल एक अभिनव तेजसे दमकने लगता है। बाह्य प्रकाश तो यही होता है कि प्रसव-वेदनाजन्य मूर्च्छाने उन्हें आक्रान्त कर लिया है, किन्तु उनकी आन्तरिक स्थिति यही है कि वे एक अभिनव सच्चिदानन्दघनरसके संस्पर्शसे भाव-समाधिमें डूब जाती हैं।

महारानी अन्तश्चेतनाके राज्यमें पहुँच जाती हैं। एक अतीत दृश्य उनके मनःपटलपर आ रहा है-'ओह ! वही नीला मुख-सरोज, वही कुञ्चित केशराशि, वही मादक मुसकान, वही नयनोंसे कटाक्ष बरसाती चितवन – सत्रह मासका यशोदातनय उनके सम्मुख खड़ा मुसका रहा है। सहसा उसकी सुधास्रावी सुमधुर वाणी कीर्त्तिदाकी कर्णेन्द्रियोंमें झंकृत हो जाती है – 'महारानी ! तुझे अपनी मैया बनाने तेरे घरमें आ रहा हूँ, किन्तु आऊँगा मात्र छायासे ही। बिम्ब तो मेरा यहाँ नन्दभवनमें ही सदा रहेगा।' कीर्त्तिदाकी अन्तश्चेतनाका तो यही चित्र है। हाँ, बाहर नन्दभवनके प्रसूति-कक्षमें नन्दरानी यशोदा देखती है कि ठीक मध्यनिशाके उपरान्त पाँच पल ही व्यतीत होते हैं कि सम्पूर्ण सूतिकागार एक अभिनव चिन्मय सघन नीलज्योतिसे उद्भासित हो उठता है। उस कक्षका अणु-अणु उस रससे सिक्त होकर मानो पग जाता है। यशोदाको स्पष्ट अनुभव होता है, मानो उसके इष्टदेव साक्षात् नारायण ही एक सुन्दर सद्योजात बालिकाका रूप धारणकर कीर्त्तिदाके पार्श्वमें शयित हुए क्रन्दन करने लग जाते हैं। ठीक वही सौन्दर्य, वही माधुरी, वैसी-की-वैसी असमोर्ध्व अतुलनीय रूप-छटा एक कन्यावेषमें पुनः आविर्भूत हो उठती है।

'धन्य है यह प्रसूतिगृह ! धन्य है कीर्त्तिदा तेरी कोख !' – यशोदामैया उन्मादिनी-सी बाहर आती है और रोहिणी, उपनन्दपत्नी प्रभावती आदि सभीको सूचित कर देती है कि महारानीने पुत्रीरत्नका प्रसव किया है।

यशोदाके नेत्र बार-बार उस रूपको देखते जाते हैं और देखकर आश्चर्य-चकित हो रहे हैं। वह यही समझ रही है कि बिना असीम भागवती कृपाके कोई नारी इस पद्मिनीको प्रसव नहीं कर सकती। इसके अङ्गोंसे जो दिव्य सौरभका स्फोट हो रहा है, ऐसा अभूतपूर्व सुवास तो मेरे नीलमणिके अङ्गोंसे भी कभी स्फुटित नहीं हुआ। धन्य है यह ब्रजभूमि और इसका वायुमण्डल जो अब सदा इस सुवाससे सुवासित रहेगा। बालिकाके दृष्टिदोष-निवारणके लिये यशोमति तुरन्त ही एक काजलकी लीक कन्याके मुखमण्डलपर खींच देती है।

दाई आदिके द्वारा सभी कृत्य सम्पन्न होते हैं।

कुन्दवल्ली इस नवागन्तुका बालिकाको देखकर कृतकृत्य हो उठती है। अब यह नन्दतनयकी ठीक छाया उसके पास ही सोयेगी, बैठेगी, उठेगी एवं खेलेगी। अब राधा, राधानुजा एवं कुन्दवल्ली तीनों मात्र तीन देह और एक प्राण होकर नन्दतनूजको अपना जीवन-समर्पण कर देंगी। कुन्दवल्लीका मन अपने जीवनको इन्हीं तीन तानों-बानों -- नन्दतनय, श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामामें ही बुनना प्रारम्भ कर देता है। कुन्दवल्लीका समग्र जीवन ही बालपनेसे यौवनके शिखरतक राधा एवं मञ्जुश्यामाके सङ्केतपर ही उन्हें पूर्ण समर्पित व्यतीत हुआ है। संक्षेपमें यही सङ्केत किया जा सकता है कि कुन्दवल्लीका शैशव श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामामें गुम्फित रहा। उसका बाल्यकाल, पौगण्ड, कैशोर तथा यौवन सबकुछ श्रीराधाकी रुचिके पालनमें अपना सर्वस्व होमना ही रहा है।

(वैसे तो लीलाएँ अनेकानेक हैं किन्तु विस्तार-भयसे जितनी पू.गुरुदेवने बतायी हैं - वे भी यहाँ पूरी नहीं दी जा सकी हैं। कृपालु पाठकगण यथा-प्रस्तुत सामग्रीसे ही सन्तोष कर लें।)

कुन्दवल्लीका पाणिग्रहण-संस्कार

जैसे बालक अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, उसी प्रकार नन्दतनय श्रीकृष्ण ब्रजमें अपने माता-पिता – श्रीनन्द-यशोदा, ताऊ-ताई – उपनन्द एवं प्रभावती; सास-ससुर – महाराज वृषभानु एवं कीर्त्तिदा, अपने स्वरूपभूत सभी सखाओं एवं राधा-चन्द्रावली-मुख्या सखियों, असंख्य गोपीजनोंसे संभ्रम-संकोचरहित, मनमानी-पूर्ण, स्वच्छन्द, लोक-वेदकी सभी मर्यादाओंसे पूर्णतया मुक्त लीला करते रहते हैं।

इसका मूल कारण यही है कि ब्रजमें उत्पन्न हुए ये सभी ब्रजवासी गोप एवं गोपाङ्गनाएँ – चाहे वे श्रीकृष्णके माता-पिता, नाना-नानी, सास-ससुर, चाचा-चाची, ताऊ-ताई एवं दूरस्थ ग्रामवासी ही क्यों न हों – इन सभी चौरासी कोसमें फैले ब्रजक्षेत्रके निवासियोंका तन,मन,धन, लोक एवं वेद सभी कुछ इन सबके प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णका ही है। इनके योगीन्द्र-दुर्लभ मन और निर्मलतम पवित्र बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवा अपना कुछ है ही नहीं। श्रीकृष्णके लिये ही, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही ये स्वयंको श्रीकृष्णकी ही सामग्री समझते हैं और श्रीकृष्णको देखकर-पूजकर सुखी होते हैं। उनका जागरण श्रीकृष्णमें तथा श्रीकृष्णके लिये ही होता है और निद्रा भी श्रीकृष्णमें ही होती है। स्वप्न और सुषुप्ति – दोनोंमें ही वे श्रीकृष्णकी मधुर एवं शान्त लीला ही देखते-अनुभव करते हैं।

कुन्दवल्ली क्या चाहती है – यह बात तो जबसे वह नन्दतनयको उनके जन्मके अवसरपर प्रथम बार देखती है, तभीसे स्पष्ट है। उसने अपना कुल, परिवार, धर्म, सङ्कोच एवं व्यक्तित्व सभीकुछ श्रीकृष्णके चरणोंमें सर्वथा समर्पण कर दिया है। श्रीकृष्णके साथ वह निरे बालपनसे ही इतनी घुल मिल गयी है कि उसका रोम-रोम, मन-प्राण, सम्पूर्ण आत्मा ही केवल कृष्णमय हो गयी है।

जब वह मात्र सात वर्षकी थी, वह अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनती है। उस समय श्रीकृष्णकी वय मात्र पाँच वर्षकी ही होती है। परन्तु जब भी वह नाद-श्रवण करती, न तो वह अपने तनको सँभाल पाती, न ही मनको। केवल उसीकी ऐसी दशा होती है, सो बात भी नहीं। उसकी सखी-सहेलियाँ – सभी तो इसके जैसी ही दशाको प्राप्त हो उठती हैं। नन्दनन्दनके गलेमें हारकी तरह गुँथ जायँ, यह अवसर तो वे सभी अविलम्ब चाहती हैं। परन्तु यह सब कैसे हो ? लोकमर्यादा तो अनुल्लंघ्य गिरिशिखरकी तरह सम्मुख खड़ी है ही। अन्ततः भगवती पौर्णमासीजीके आदेशसे सभी ब्रजकुमारियाँ एवं वह भी भगवान् नारायणके विभूतिस्वरूप मार्गशीर्ष मासमें भगवती कात्यायनीकी समाराधना प्रारम्भ कर देती हैं। जाड़ेके दिनोंमें काँपती कुन्दवल्ली निरे प्रातःकाल यमुना-स्नान करती। उसे शरीरके कष्टकी परवाह नहीं है। उसमें परस्पर अपनी सखियोंसे ईर्ष्या-द्वेष सर्वथा नहीं है। अतः निश्छलभावसे सभी श्रीकृष्ण-चरणोंकी किङ्करी होना चाहती हैं। उन्हें ग्रामवासियों एवं लोकनिन्दाका भी भय नहीं है। सभी मिलकर उच्च स्वरसे श्रीकृष्णका नाम एवं

गुण-कीर्त्तन भी करती हैं। उस काल वे सभी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी लालसामें इतनी अधिक व्याकुल होती हैं कि उन्हें अपने माता-पितातकका कुछ भी सङ्कोच नहीं रहता है। कुन्दवल्ली एवं वे सभी सखियाँ विधिपूर्वक देवीकी बालुकामयी मूर्त्ति बनाकर पूजा और मंत्रजप करती हैं। वे यही जपती हैं कि एक मात्र नन्दनन्दन ही हमारे पति हों।

नीलमणि ब्रजेन्द्रनन्दनने उनको स्वीकार तो किया ही हुआ है, फिर भी क्योंकि वे सभी निरावरणरूपसे श्रीकृष्णके सामने नहीं जा रही हैं, उनमें थोड़ी झिझक, सङ्कोच, शीलका परदा है, अतः उनका समर्पण पूर्ण करनेके लिये उनका यह आवरणरूप चीर श्रीकृष्ण हर लेते हैं। इसके उपरान्त उसकी यह एक और कठोर परीक्षा होती है कि नन्दभवनसे उपनन्द-पुत्र सुबलसे कुन्दवल्लीके विवाह-संबंधका टीका आ जाता है। उसके पिता सत्यभानुसे विचारकरके भानु-नृपति वृषभानुजी महाराज वह टीका स्वीकार भी कर लेते हैं। यद्यपि सुबल श्रीकृष्णका प्राणोपम सखा है, श्रीदामके साथ अनेकों बार कुन्दवल्ली उसे देख भी चुकी है, परन्तु उसने तो मन-ही-मन श्रीकृष्णके ही चरणोंमें अपना सबकुछ समर्पित कर दिया है। अब सुबलका पाणिग्रहण वह कैसे करे?

अन्ततः कुन्दवल्ली विष खाकर प्राणत्यागको तत्पर हो जाती है। कुन्दवल्ली अपने मनकी सब टेक एवं व्यथा अपनी छोटी बहिन श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामाके सम्मुख रखती है। कुन्दवल्लीका इन दोनोंसे सदैवसे ऐसा ही प्रेम है मानो ये एक प्राण – तीन देह हों।

अतः तीनोंमें पूर्ण मंत्रणा होकर यही निश्चय होता है कि यदि सुबल कुन्दवल्लीका पाणिग्रहण करता है तो तीनों बहनें ही विवाहके एक दिवस पूर्व विष खाकर प्राणत्याग कर देंगी। परन्तु भगवती पौर्णमासी ठीक समयपर इनके पास पहुँच जाती है। वे राधा, राधानुजा एवं कुन्दवल्लीको आश्वस्त कर देती हैं कि कुन्दवल्लीकी पवित्रतापर सर्वथा आँच नहीं आवेगी। अनादि कालसे वह पूर्ण पवित्र है और अनन्त कालतक पवित्रतम ही रहेगी। कुन्दवल्ली प्रेमावेशवश पौर्णमासीजीसे चिपटकर रोने लगती है।

इधर पौर्णमासीजी इस विषयमें किसीको कुछ भी सङ्केत नहीं देतीं कि वे कुन्दवल्लीका विवाह रोकनेकी चेष्टा किस विधिसे करेंगी।

श्रीराधा बारबार पौर्णमासीजीसे प्रार्थना करती हैं कि वे सुबलसे उसका होनेवाला विवाह कैसे रोकेंगी ? किन्तु पौर्णमासीजी यही कहकर राधाके प्रश्नको टाल देती हैं कि सबकुछ जान लेनेपर सारा रस ही फीका हो जायगा।

मञ्जुश्यामा पौर्णमासीजीसे अन्ततः सब रहस्य उगलवा लेती है, किन्तु पौर्णमासीजी उससे वचन ले लेती हैं कि वह यह रहस्य कुन्दवल्लीको तो कदापि नहीं, अपितु मुख्यतया राधाको भी नहीं बतावेगी। मञ्जुश्यामा कुन्दवल्लीकी रहस्य जाननेकी त्वरा समझती है, परन्तु वह उसे यही कहकर संतुष्ट कर देती है कि अन्तिम क्षण तो तू स्वयं देख लेगी कि तेरा प्रेम किस प्रकार सफल होता है। कुन्दवल्लीकी आँखोंसे अश्रु झर-झर बहने लगते हैं। दोनों बहिनें पुनः एक-दूसरेके गले गुँथ जाती हैं।

इधर श्रीदाम भैया द्वारा सुबलको भी यह अच्छी प्रकार ज्ञात होजाता है कि वस्तुतः कुन्दवल्ली उसके सखा एवं अनुज श्रीकृष्णको समर्पिता है। कुन्दवल्लीका भाई श्रीदाम एवं सुबल दोनों परस्पर प्राणोपम सखा हैं। अतः सुबल भी बहुत सङ्कोचमें भरा भगवती पौर्णमासीजीकी शरण जाता है।

पौर्णमासीजी सुबलकी आँखसे आँख मिलाकर उसे समाधिस्थ कर देती हैं एवं समाधिमें ही उसे भविष्यकी सब परिस्थितियोंसे अवगत करा देती हैं। सभी लीला-रहस्योंको जब वह जान लेता है तो पौर्णमासीजी उसे समाधिसे जगा देती हैं। सुबल अतिशय प्रफुल्ल मुद्रामें पूर्ण संतुष्ट हो जाता है। वह अतिशय श्रद्धाभिभूत हो तपस्विनी पौर्णमासीजीके चरणोंमें लोट जाता है। भगवती पौर्णमासीजी सुबलको बार-बार अन्तर्जगत्की इच्छानुसार यथायोग्य सफल नाट्य करनेकी चेतावनी देकर विदा करती हैं।

नन्दभवनमें नाट्यका द्वितीय पटोत्थान

अब ब्रजेश्वर नन्दरायके प्रासादमें इस नाट्यका दूसरा दृश्य खेला जाना प्रारंभ हो जाता है। सुबल मुँह फुलाये अपने माता-पिताके पास बैठा है। ब्रजेन्दनन्दन श्रीकृष्ण हँसते हुए नन्दरानीसे सटकर बैठे हैं। नन्दरानीके पास उपनन्द-पत्नी प्रभावती बैठी है, उपनन्दजी उसीके पास बैठे हँस रहे हैं। श्रीकृष्णका प्रस्ताव है कि एक घोड़ेपर सुबल दादा दूल्हा बनकर चढेगा, और दूसरे घोड़ेपर सुबल दादाके समान ही सम्पूर्ण दूल्हेका शृङ्गार धारण करके वे भी वररूपमें जावेंगे और महाराज वृषभानु एक ही दुलहिन – कुन्दवल्लीके लिये दो वरोंका स्वागत करेंगे।

नन्दराय बड़े ही असमञ्जसमें हैं कि वे यह प्रस्ताव महाराज वृषभानुके पास भेजें भी कैसे। परन्तु सुबलका आग्रह है कि यदि श्रीकृष्णका यह प्रस्ताव नहीं माना जायेगा तो वह विवाह करेगा ही नहीं।

यह ब्रजराज्यकी मूलधारा ही है कि नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी जो भी रुचि हो, वही हो। सुबल यद्यपि श्रीकृष्णके ताऊका पुत्र, उनका बड़ा भाई है, परन्तु उसे अपने वैवाहिक फेरे भी श्रीकृष्णके साथ लेनेमें पूर्ण कृतकृत्यता है। यहाँ ब्रजभूमिमें एक ही दर्शन संचरित है -***'वेदानपि संन्यसति, केवलमविच्छिन्ननुरागं लभते।'*** अर्थात् भगवत्प्रेमाभिलाषी वेदमूलक समस्त धर्म-मर्यादाओंका भलीभाँति त्यागकरके अखण्ड, असीम भगवत्प्रेमको प्राप्त करता है।

यहाँ ब्रजजगत्में सभी रङ्गमञ्चके पात्र चाहे वृषभानु-कीर्त्तिदा हों, चाहे नन्द-यशोदा हों, चाहे सुबल-श्रीदाम हों – इन सभीकी वृत्तियाँ सर्वथा श्रीकृष्णमें ही निमग्न हैं। श्रीकृष्णकी आन्तरिक चाह है– बारात दो वरोंके साथ वृषभानुपुर जावेगी, कुन्दवल्ली श्रीकृष्णसे भी फेरे लेगी, उन्हें भी वरमाला पहनावेगी एवं सुबलको भी। लोकव्यवहारमें यह बात सनातन धर्मकी मर्यादा एवं वेदधर्मके सर्वथा विरुद्ध है, परन्तु क्योंकि श्रीकृष्णकी ऐसी ही इच्छा है, अतः सम्पूर्ण ब्रजजगत्को यह स्वीकार्य है। परम धर्मात्मा बृषभानु भी नन्दराय द्वारा भेजे इस प्रस्तावका हँसकर शत-प्रतिशत अनुमोदन कर देते हैं। इस प्रस्तावका ब्रजजगत्का कोई महर्षि विरोध नहीं करता; चाहे वे गर्ग हों, भागुरि हों, शाण्डिल्य हों, करभाजन हों। कोई ब्राह्मण इस विवाह-कृत्यको करानेका निषेध नहीं करता।

यहाँ ध्यान रहे, सुबल विवाह करके भी सौभाग्यनिशामें अपनी पत्नी कुन्दवल्लीके साथ सगे भ्राताकी तरह निष्पाप, निर्मल रहता है। उसे श्रीकृष्ण-प्रीतिका वह परमोच्च आनन्द प्राप्त है, जिसके सम्मुख नारीभोगका आकर्षण तुच्छातितुच्छ है। सूर्यका प्रखर प्रकाश हो जानेपर जैसे तैल-दीपक स्वतः निष्प्रयोजन हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने सखा श्रीकृष्णके प्रखर प्रेममें सुबलका अपना अहं ही लुप्त हो चुका होता है। उसका अहंकार श्रीकृष्णके अहंकारसे एकात्म हो उठा है।

भगवान् श्रीकृष्ण भी बड़े लीलामय हैं। उन्होंने अपनी स्वरूपभूता कुन्दवल्लीके साथ कैसे-कैसे विचित्र खेल किये हैं, यदि केवल उन्हीं लीलाओंमें से अंशमात्र जो लेखकको पू.गुरुदेव द्वारा सङ्केतित की गयी हैं, लेखक यदि लिपिबद्ध करनेका विचार करे तो वह लीला-चरित्र ही एक स्वतंत्र विशद ग्रन्थका आकार ग्रहण कर लेगा। अतः विस्तारसे बचते हुए यहाँ इतना ही सङ्केतित किया जा रहा है कि कुन्दवल्ली-सरीखी अनुपम समर्पणजीवना गोपीके आन्तरिक भावोंका आस्वादन तो पू.गुरुदेव सरीखे महासिद्ध सन्तोंने ही अपने निर्मलतम मानसमें यथार्थरूपमें आस्वादित किया है। यहाँ तो मात्र स्थूलरूपसे पू.गुरुदेवकी ही कृपा-कणिकाका आश्रय लेकर इसकी यत्किञ्चित् चर्चा मात्र हो सकी है।

श्रीकृष्णकी रुचिके अनुसार ही महाराज वृषभानु दो परम सुन्दर दूल्होंका नीराजन अपने प्रासादके प्रमुख तोरणद्वारपर करते हैं। फिर कीर्त्तिदा महारानी भी दोनों ही दूल्होंका नीराजन करती हैं। हाँ, यह अवश्य है, इस समय नीलमणि नन्दतनयकी आयु सबको बहुत छोटी ही दृष्टिगोचर होती है। यहाँ वय भी तो चिन्मय है। जहाँ नन्दतनूज नीलमयङ्क कुन्दवल्लीकी दृष्टिमें पूर्ण किशोर विवाहोचित वय-प्राप्त हैं, वहाँ अन्य सभी गोपियोंको श्रीकृष्ण शिशु-हठ करते हुए छोटे बालक ही समझमें आते हैं।

अचानक ही श्रीकृष्ण दूल्हा बने हुए वृषभानुबाबासे प्रश्न कर बैठते हैं -'बाबा ! आप सत्य-सत्य बतावें, सुबल दादा और मुझमें - हम दोनोंमें वरोचित गुणसम्पन्नताकी दृष्टिसे श्रेष्ठ वर कौन है ?'

वृषभानुबाबा श्रीकृष्णके प्रश्नका उत्तर देनेमें अतिशय धर्मसङ्कटमें पड़ जाते हैं। जैसी वरोचित सुन्दरता ब्रजेन्द्रतनय श्रीकृष्णमें है, सुबल तो उसके पासङ्गमें भी कहीं नहीं ठहरता। परन्तु कुन्दवल्लीका विवाह सुबलसे होना निश्चित किया जा चुका है। अतः अब वरकी श्रेष्ठताके निर्णयका औचित्य ही कहाँ होता है ? उन्हें तो कुन्दवल्लीको पातिव्रतधर्मानुसार यही दृष्टि देनी है कि उसका पति सुबल ही सर्वसुन्दर है।

उलझनमें पड़े अपने बाबाकी रक्षामें उनका युवराज श्रीदाम बोल उठता है – ' बाबा ! यह निर्णय तो नन्दग्राममें घोड़ी चढ़ते समय ही हो चुका है। मैं उस समय वहीं था जब भैया श्रीकृष्ण और सुबल दोनों घोड़ीपर सवार हो रहे थे। भैया कृष्णने यह बात मुझसे वहाँ भी पूछी थी। मैंने जो उत्तर दिया उसीका सुबल दादाने भी अपनी घोड़ीसे उतरकर समर्थन किया था। मैंने कहा था -भैया कृष्ण ! तुम्हारे समान सुन्दर दूल्हा तो न कभी हुआ है, और न ही कभी आगे चलकर होगा ही।'

सभी लोग विवाह-मण्डपके लिये प्रस्थान करते हैं। कुन्दवल्ली वधूकी चौकीपर आसीन है। उसके पार्श्वमें सुबल बैठा है। सुबलके पार्श्वमें श्रीकृष्ण विराजित हैं। महर्षि शाण्डिल्य एवं भागुरि वैवाहिक-कृत्य सम्पन्न करानेकी मुद्रामें विराजित हैं। आकाशमें सहसा भगवती पौर्णमासीका आविर्भाव होता है। श्रीकृष्ण सभीको उनका प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं। सभी लोग उन्हें सिर टेककर वन्दना करते हैं। भगवती पौर्णमासी आकाशसे ही आदेश देती हैं -'बृषभानु ! भगवती त्रिपुरसुन्दरीका निर्माल्य पुष्प सबसे पहले सुबलके मस्तकसे स्पर्श कराके उसके दुकूलमें बाँध दो।' महाराज भगवतीके निर्देशका यथोक्त पालन करते हैं। तत्क्षण ही एक अद्भुत माया फैल जाती है। ब्रजेन्द्रनन्दन, सुबल एवं कुन्दवल्लीके अतिरिक्त सभी उससे मोहित हो जाते हैं। सुबलके स्थानपर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण आसीन हो जाते हैं। ऋषिगण कुन्दवल्लीके साथ ब्रजेन्द्रनन्दनका ही आदिसे अन्ततक वैवाहिक-कृत्य पूर्ण कराते हैं। कुन्दवल्ली उत्फुल्ल मनसे ढूँढती है – अपनी बहिन बृषभानुनन्दिनी राधाको एवं मञ्जुश्यामाको। सहसा कुन्दवल्लीको अनुभूति होती है कि श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामा दोनों ही उसके पयोधरोंके अन्तरालमें विराजित हैं। दोनों ही मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं। ढाई पल इस अनुभूतिके पश्चात् श्रीराधा हँसती हुई अपनी अनुजा मञ्जुश्यामाको लिये परिणय-वेदीके पास आती हुई दीख जाती है।

सबकी दृष्टिमें तो सुबलके साथ ही कुन्दवल्लीका सम्पूर्ण विवाह-कृत्य सम्पन्न होता है।

इसके पश्चात् श्रीराधा ललितासे कहती है – 'बहिन ! चलो, कोहबरमें चलें।'

विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा आदि सखियोंसे परिवेष्टित ललिता आगे-आगे चलती हैं। श्रीराधा कुन्दवल्लीके बायीं ओर, और श्रीकृष्णके दाहिनी ओर रहती हैं तथा मञ्जुश्यामा वर-वधूका हाथ पकड़े चलती हैं।

इसी समय महारानी कीर्त्तिदा महादेवी त्रिपुरसुन्दरीसे आविष्ट हुईं-सी महाराज वृषभानुसे आदेश करती हैं कि 'अब कोई भी अग्रिम कृत्य न होकर सभी लोग विश्राम करें।'

सभी लोग 'जय महादेवी !' 'जय जगदम्बे !' कहकर यथास्थान विश्रामके लिये चले जाते हैं। कुन्दवल्लीको श्रीराधा अपने शयनागारमें ले जाती हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन एवं सुबल जनवासेके शयनागारमें कीर्त्तिदा, कीर्त्तिमती एवं उनकी अन्य रिश्तेकी बहिनों - शारदा, सुदक्षिणादिके द्वारा संलालित होकर निद्रित हो जाते हैं। कीर्त्तिदा और उनकी बहिनोंको प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि ब्रजगेहिनी यशोदा एवं रोहिणीजी आदि स्त्रियोंके साथ नन्दग्रामकी सभी वात्सल्यवती गोपिकाएँ भी बारातमें सम्मिलित हैं। इस अनुभूतिसे संप्रेरित वे सबको अपने महलमें ले जाती हैं।

दोपहरमें बारात लौटकर आ चुकी है। नन्दरानी यशोदासे संलालित होकर ब्रजेन्द्रनन्दन गहरी निद्रामें एक पर्यंकपर सो रहे हैं। एक घड़ी रात बीत गयी है।

पुष्पोंसे सज्जित कक्षमें एक सुन्दर पर्यंकपर सुबल विराजित है। प्राचीके द्वारसे अतिशय भयभीत मुद्रामें कुन्दवल्ली प्रवेश करती है। बाहरसे सुबलकी एक बहिन द्वार अवरुद्ध कर देती है।

उस समय सर्वथा एकान्तमें सुबल कुन्दवल्लीको आश्वस्त करता है कि वह उसे श्रीदामके समान अपना सगा भाई ही माने। विधिके विचित्र विधानसे ही वे दोनों लोकदृष्टिमें पति-पत्नीकी तरह अभिनय करनेको बाध्य कर दिये गये हैं। अतः उन्हें प्रायः सबकी दृष्टिमें तो साङ्गोपाङ्ग यही अभिनय करना भी है। सुबल समाधि-अवस्थामें भगवती पौर्णमासीके आश्रममें जो भी उसे अनुभव हुआ है - वह सब कुन्दवल्लीको सुना देता है। वह कहता है कि तुम सत्य-सत्य श्रीकृष्णकी ही वस्तु थी, हो, और अनन्तकालतक उन्हींकी रहोगी। मेरा तुम्हारा नित्य भाई-बहिनका पवित्रतम सम्बन्ध ही अक्षुण्ण रहेगा । फिर भी बाह्य दृष्टिमें जन-साधारणको तो यही प्रतीति होगी कि हम दोनों पति-पत्नी हैं। वैसे हम दोनों एक शय्यापर सोकर भी भाई-बहिनके सम्बन्धको नित्य अक्षुण्ण बनाये रखेंगे। ऐसे बहुत-से अवसर भी आ सकते हैं जब तुम्हारे कण्ठसे लगकर अथवा तुमको अपने कण्ठसे सटाकर भी मेरे मन-बुद्धि-चित्त सूर्यके सदृश निर्मलतम ही रहेंगे।

'तुम्हें पता है कि श्रीराधा मुझे श्रीदामके सदृश ही प्रेम करती है। मैं भी तुम्हें श्रीराधाके समान अपनी बहिन ही मानकर जीवन व्यतीत कर दूँगा।'

'कुन्दवल्ली बहिन ! भैया श्रीकृष्णकी रसास्वादनकी एक विशिष्ट शैली है। उसीके लिये बाह्यदृष्टिमें तुम्हारा नाट्य सुबल-पत्नीके रूपमें ही रहेगा।'

सुबल की सभी बातें अतिशय मनोयोगपूर्वक कुन्दवल्ली सुनती है। फिर अतिशय सङ्कोचपूर्वक चिन्ताकी मुद्रामें उससे प्रश्न कर बैठती है।

'भैया सुबल ! किन्तु यौवनके प्रवाहमें कहीं स्वप्नमें भी तुम्हारा भाव अन्यथा हुआ तो ?'

इसके उत्तरमे सुबल कुन्दवल्लीको अपने पीछे-पीछे चलनेका सङ्केत करता है। एक सुगुप्त पथसे दोनों बलराम-विहार-प्रासादके पीछेके उद्यानमें चले जाते हैं। यह स्थान नन्दबाबाने रोहिणीजीके निवासके लिये पूर्वतः बनवाया था। यह इतना सुगुप्त है कि बाहरसे नन्दग्रामके निवासी भी इसे ढूँढ़नेमें असमर्थ रहते हैं। इसकी सुगुप्तता इस कारण अभिप्रेत थी कि कंसके दूत श्रीवसुदेव-पत्नी रोहिणीका निवास नन्दग्राममें ढूँढ नहीं पायें। उद्यांनमें पहुँचनेपर सुबल एवं कुन्दवल्लीको प्रज्ज्वलित अग्नियुक्त यज्ञकुण्ड दिखाई देता है। सुबल उस यज्ञकुण्डको प्रणाम करनेके उपरान्त यज्ञाग्निसे प्रार्थना करने लगता है -'हे हुताशन ! यदि मेरी उक्ति इस कुन्दवल्लीके प्रति अक्षरशः सत्य है तो तुम मेरे तुम्हारे भीतर प्रवेश करनेपर भी मेरे अङ्गों के लिये हिमके समान शीतल बने रहना।' यों कहते हुए सुबल उस कुण्डमें प्रवेश कर जाता है। अग्निकी प्रज्ज्वलित लपटें सुबलके अङ्गोंको तनिक भी क्षति नहीं पहुँचातीं। आधे ही पलके अनन्तर भगवती पौर्णमासी सुबलको अपने अङ्कमें धारण किये उस कुण्डमें से आविर्भूत होती हैं। यज्ञाग्निसे बाहर निकलकर वे कुन्दवल्लीको आश्वस्त करते हुए कहती हैं - 'बेटी कुन्दवल्ली ! तू नित्य निश्चिन्त रह। तुम दोनों मेरी रुचिका पालन करनेके लिये श्रीकृष्ण और बृषभानुनन्दिनीके परस्पर मिलन-रसास्वादनको निरन्तर परिवर्धित करते रहना। इस उद्देश्यसे ही मैंने तुमदोनोंका विवाह करवाया है। यही मेरा परम रसमय विधान है। बेटी ! तू समयपर अपने-आप सबकुछ अनुभव कर लेगी। अभी तो मैं तुम दोनोंको एक वर दे रही हूँ -'तुम दोनों वाणीसे, अपने शरीरकी चेष्टाओंसे जिस समय, जिसको, जितनी भी देरके लिये, जो भी प्रतीत कराना चाहोगे, उस समय, उसको, उतनी देरके लिये, वही अनुभूति होती रहेगी। एक मैं ही तुम्हारे दृष्टिबन्धमें नहीं आ सकूँगी। यह अनिवार्य नियम अबसे अनन्तकालतकके लिये हो गया।'

यह कहकर भगवती पौर्णमासी अन्तर्धान हो जाती हैं। कुन्दवल्ली एवं सुबल दोनों वैसे ही सुगुप्त पथसे सुहागकक्षमें लौट आते हैं। दोनोंका तभीसे एक ही कार्यक्रम रहता है कि ब्रजेन्द्रनन्दन एवं श्रीराधाको उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुख मिले - वे यही योजना बनाते-बनाते रात्रि व्यतीत कर देते हैं। ब्राह्म मुहूर्त्त होते ही कुन्दवल्ली उठकर यशोदा मैयाके

पास उनकी गृहसेवामें योगदान देने लग जाती हैं और सुबल रात्रिमें बनायी योजनाको प्रतिफलित करनेमें निरत हो जाता है।

कुन्दवल्ली और सुबल – दोनोंका यह संक्षिप्त परम मङ्गलमय पवित्र जीवन-चरित्र है।

भावुक पाठकगण पू.गुरुदेवद्वारा रचित अनुपम संक्षिप्त भाव-नाटिका -'**कुन्दवल्ली भावकी लीला**' महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा-पञ्चम खण्डमें अवश्य अवलोकन करें।

यहाँ बार-बार सावधानी रखनेकी आवश्यकता है कि ये सभी लीलाएँ सच्चिदानन्दघन, सर्वान्तर्यामी, प्रेमरसस्वरूप, लीलारसमय, परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने अपने स्वरूपभूत, आनन्द-चिन्मय रस-प्रतिभावित-मति अपनी प्रतिमूर्त्तियोंके साथ की है। सुबल एवं कुन्दवल्ली दोनोंका श्रीकृष्णके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण था। अतः यह उनकी विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी, विशुद्ध निराविल, रसप्रवाहिनी अन्तर आत्मक्रीड़ा मात्र है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वप्रकाश हैं, अतः सर्वविलास करनेमें समर्थ हैं। श्रीकृष्णपर न धर्मका शासन है, न ही वेदका। उनके सङ्केतपर जब अनन्त ब्रह्माण्ड नृत्य कर रहे हैं, प्रकृति ही नटीकी तरह थिरक रही है, यदि उनकी रुचिके लिये एक ब्रजाङ्गना कुन्दवल्ली और एक गोप सुबल गृहस्थधर्ममर्यादाओंका उल्लङ्घनकर परम त्यागपूर्ण, समर्पणमय जीवनका व्रत लेते हैं तो वे परम आदर्श, धन्यभाग्य एवं स्तुत्य तो हैं ही।

आयी श्रावण कृष्णा की थी फिर तीज वार बुध था, प्रियतम!
रवि के अस्ताचल जाने में घटिका थी पाँच बची, प्रियतम!
नादित धौंसे के शुभ रव से प्रासाद हुआ सहसा, प्रियतम!
नृप-तनय-जन्मका मंगलमय संवाद मिला सबको, प्रियतम।।४२।।

...........**इसके पश्चात् श्रावण कृष्णा तीजकी तिथि आयी। उस दिन बुधवार था। अंशुमालीके अस्ताचल जानेमें पाँच घड़ीका विलम्ब था। उसी समय धौंसेके मङ्गलमय रवसे अचानक राजप्रासाद निनादित हो उठा और कुछ क्षण बीतते-न-बीतते राजपुत्रके जन्मका मङ्गलमय संवाद सबके कानोंमें पहुँच गया।। ४२।।**

नृप बालक के गोरे मुख की शोभा किस भाँति कहूँ, प्रियतम!
देखी जिनने, बोले न कभी, बोले वे, लख न सके, प्रियतम!
दो भुजा और नीलिमा मात्र आवृत कर माया से, प्रियतम!
सचमुच वे मधुसूदन ही थे आये शिशु-वेष धरे, प्रियतम।।४३।।

राजपुत्रके गोरे मुखकी शोभा कोई कैसे कहे ! जिन आँखोंने उस शोभाको देखा था, वे तो कभी बोल नहीं सकीं और जो वाणी बोलती है उसे कभी उस अप्रतिम शोभाका दर्शन ही नहीं हुआ। ऐसा लगता था, जैसे अपनी दो भुजाएँ और अपने अप्रतिम सुन्दर संविन्मय नील वर्णको मायासे आवृत करके सचमुच वे भगवान् मधुसूदन ही शिशुका वेश धारण किये पधारे हों।। ४३।।

दो पर्वत की द्रोणी में थी फैली जो राजपुरी, प्रियतम!
बाइस दिन तक कण-कण में था उसके कम्पन सुख का, प्रियतम!
रत्नों की ज्योति रात में थी इङ्गित करती, मानो, प्रियतम!
नृपतनय-अमात्यसुता के शुभ निर्मल भावी यश का, प्रियतम।।४४।।

सम्पूर्ण राजपुरी दो पर्वतोंकी द्रोणीमें विराजित थी। वहाँ उस पुरीमें - पुरीके कण-कणमें अविराम बाईस दिनतक सुखका जो कम्पन परिलक्षित हो रहा था, अतुलनीय था। रात्रिमें रत्नोंकी ज्योतिसे पुरी उद्भासित रहती, - इस भाँति मानों वह ज्योति राजपुत्रके एवं राजमन्त्रीकी पुत्रीके परम मङ्गलमय विशुद्ध भावी सुयशका सङ्केत कर रही हो।।४४।।

महरानी और सचिव गृहणी, दोनों सहोदरा थीं, प्रियतम!
थी चाह बहिन की, हो उत्सव, नृप सुत आजाय तभी, प्रियतम!
नृप-कुल-देवी की भी रुचि थी ऐसी ही, इसीलिये, प्रियतम!
थी उत्समयी वह नित्य सुखद अँधियारी तीज बनी, प्रियतम।।४५।।

महारानी एवं सचिवगृहिणी- दोनों ही सहोदरा बहिन थीं। सचिवगृहिणीकी अभिलाषा थी कि मेरी पुत्रीका जन्मोत्सव तभी हो, जब राजपुत्रका आविर्भाव हो जाय। राजकुलदेवीकी भी ऐसी ही रुचि थी। इसीलिये कृष्ण पक्षकी तीजकी रजनी अत्यन्त सुखमयी, निरन्तर सुखदान करनेवाली बन चुकी थी।।४५।।

बीता फिर वर्ष और आयी भादों शुक्ला षष्ठी, प्रियतम!
रविवासर था, थे भानु उदित दो घड़ी हुए पहले, प्रियतम!
रानी की एक बहिन जो थी मौसेरी नाते में, प्रियतम।
शारदा सती जो थी, उसको कन्या थी एक हुई, प्रियतम।।४६।।

इस प्रकार फिर वह वर्ष बीत गया। अब भाद्रपद शुक्ला षष्ठीकी तिथि आ गयी थी। उस दिन रविवासर था। अभी दो घड़ी पूर्व दिनकर उदित हो चुके थे। महारानीकी एक मौसेरी छोटी बहिन थी। उसका नाम शारदा था। मानो वह सचमुच हंसवाहिनी ही हो, ऐसा अप्रतिम तेज था उसका। उन्हीं शारंदा मैयाको उस दिन एक कन्यारत्नकी प्राप्ति हुई।।४६।।

जो महात्रिपुरसुन्दरी अघटघटनापटीयसी हैं, प्रियतम!
चिन्मयी ज्योति उनकी ही थी कन्या बनकर आयी, प्रियतम!
होने वाली लीला जो थी, जिसमें थीं नटी बनी, प्रियतम।
वे स्वयं, सचिव के गृह उसका सम्विद्-पट उठा वहाँ, प्रियतम।।४७।।

जो अघटन-घटना-पटीयसी महात्रिपुरसुन्दरी देवी हैं, उनकी ही चिन्मयी ज्योति कन्याका रूप धारणकर शारदाके अङ्कको विभूषित कर रही थी। आगे जो संविन्मयी लीला होनेवाली थी, जिसमें महादेवी स्वयं नटी बनी हुई थी, उस चिन्मयी लीलाका संविन्मय पट वहाँ राजसचिवके घर उठा था भला!।।४७।।

जिज्ञासा

कृपया छन्द संख्या ४७ का विस्तारपूर्वक भाव सुस्पष्ट करें। 'आगे जो संविन्मयी लीला होनेवाली थी, जिसमें महादेवी स्वयं नटी बनीं, उस चिन्मयी लीलाका संविन्मय पट वहाँ राजसचिवके घरमें उठा।' - इसका अर्थ खुलासा करें। पद सं.३७ में भी सचिव-गृहिणीकी पुत्रीके रूपमें कुन्दवल्लीके जन्म लेनेका प्रसङ्ग आया है। फिर ये दूसरे राज-सचिव कौन हैं ? इनकी कन्याका भी परिचय दें।

समाधान

यहाँ ध्यान रहे, ब्रजकी यह लीला अप्राकृत क्षेत्रमें अप्राकृत लीला-पात्रोंके मध्य हुई थी। यह सभी सृष्टि चाहे कुन्दवल्ली हो, अथवा श्रीदाम हों, प्राकृत एवं स्वप्रकाश हैं। इनके सभीके देह हमारी तरह प्राकृत नहीं, विशुद्ध सच्चिदानन्दमय हैं। इसीलिये छन्द संख्या ३८ में स्पष्ट उल्लेख है कि जैसे ही महारानी कीर्त्तिदा महात्रिपुरसुन्दरीके चरण-नख-चन्द्रको छूकर अपनी बहिन कीर्त्तिमती, जो सचिव सत्यभानुकी पत्नी थीं, के कक्षमें पहुँची, उन्हें भान होने लगा कि यहाँ तो सर्वत्र अंशुमालीकी ज्योति फैली हुई है। महारानी कीर्त्तिदाकी दासीकी आँखें तो उस ज्योतिकी चकाचौंधसे बन्द हो गयीं थीं। यह ज्योति चन्द्र, सूर्य, अग्नि आदिकी नहीं थी। इन प्राकृत सूर्य—चन्द्रादिकी ज्योतिका तो भगवद्धाममें प्रवेश ही संभव नहीं है।

न तद्भासयते सूर्यो न चन्द्रो न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।। *श्रीमद्भगवद्गीता।।१५।६।।*

श्रुति कहती है - ***तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।***

स्वप्रकाश भगवान्‌की (अङ्ग)-ज्योतिसे ही सूर्य-चन्द्रादि सभी ज्योतिर्मय हैं। उनकी अङ्ग-छटासे ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हो रहा है। इस प्रकार भगवान् सबके प्रकाशक हैं, भगवान्‌का प्रकाशक कोई नहीं। यही स्वप्रकाश होनेका अर्थ है। अतः महारानी कीर्त्तिदाको जिस ज्योतिसे सचिव सत्यभानुकी गृहिणी कीर्त्तिमतीका गृह प्रकाशमान दृष्टिगोचर हुआ था, वह प्राकृत अंशुमालीकी ज्योति नहीं थी, अपितु वह प्रकाश भगवती महादेवी, जो भगवान्‌की स्वप्रकाशिका-शक्ति हैं, उनका ही प्रकाश था। इसे पुनः स्पष्ट कर देता हूँ कि पू.गुरुदेव कुन्दवल्लीके जन्म-प्रसङ्गमें भी यही कहते हैं कि मंत्रीकी पत्नीकी गोदीमें जगन्माता ही अचानक अप्रतिम सुन्दरी नवजाता कन्याका वेष लिये प्रकट हो गयीं। इसी प्रकार राजपुत्र श्रीदामके जन्म-प्रसङ्गमें भी यही कहते हैं कि अपने संविन्मय नीलवर्णको अपनी मायासे आवृतकर भगवान् मधुसूदन ही शिशु वेष धारण किये पधारे। इन सभीका सङ्केत यही है कि वे सभी लीला-पात्र किसी प्राकृत माता-पितासे उत्पन्न नहीं हुए हैं; ये सभी भगवान्‌की सच्चिदानन्दमयी स्वप्रकाशिका शक्ति योगमायाका ही खेल है। भगवान्‌की विशुद्ध सत्वमयी अचिन्त्य लीलामहाशक्ति ही इन पात्रोंके रूपमें अपनेको ही भगवान्‌के आगमनके पूर्व उनके लीलमञ्चकी सूत्रधारिणी एवं नटी आदि बनाकर सुव्यक्त हो रही हैं। छन्द संख्या ४७ में भगवती श्रीराधाकी प्रमुख सखी ललिताके प्राकट्यका वर्णन है। भगवान् श्रीराधामाधवकी आगे जो लीला होनेवाली है, सखी ललिता ही उसकी नटी हैं। ये श्रीराधाकी प्रमुख सखी, अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया महात्रिपुरसुन्दरीकी चिन्मयी ज्योति ही हैं, जो कन्या बनकर ललिता नामसे अब प्रकट हो रही हैं।

इस सिद्धान्तको पुनः समझलें। श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, भगवान् हैं। वे सच्चिदानन्द, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वशक्तिमान् हैं। वे अनन्त शक्तियोंके परमाधार, एकाधार हैं। वे अपने ही सौन्दर्य-माधुर्यरसका समास्वादन करनेके लिये अपनी ह्लादिनी शक्तिको सदा-सर्वदा श्रीराधारूपमें अभिव्यक्त करते हैं । श्रीराधारानी श्रीकृष्णकी ही अभिन्नस्वरूपा हैं। श्रीराधारानी भगवान् श्रीकृष्णकी जैसे ह्लादिनीशक्ति हैं, वैसे ही उनकी सन्धिनीशक्ति ही वृन्दावनधामरूपमें अभिव्यक्त होती हैं। सच्चिदानन्दकन्द भगवान्‌की संविन्मयीशक्ति ही प्रमुख सखी ललिताके रूपमें प्रकट होती हैं और छन्द संख्या ४७ में इसी बातका उल्लेख यह कहकर किया गया है कि सच्चिन्मयी लीलाका संविन्मय पट सचिव श्रीविशोक गोपके गृहमें उठा है।

यहाँ रङ्गमञ्चकी सूत्रधारिणीके रूपमें स्वयं महादेवी ही कुन्दवल्लीके रूपमें प्रकट होती हैं, एवं लीला-नटीके रूपमें स्वयं वे महादेवी ही अपना संविन्मय स्वरूप लेकर ललिताके रूपमें सुव्यक्त हो जाती हैं। नटी पहले मञ्चपर आती है, इसके पश्चात् ही नायक-नायिकाका रङ्गमञ्चपर पदार्पण होता है। इस राधा-माधव रस-भावलीलाकी सूत्रधारिणी जहाँ

कुन्दवल्ली हैं, वहाँ रङ्गमञ्चको सही सञ्चालित करनेवाली नटी श्रीललिता हैं। ध्यान रहे ललिता श्रीराधासे वयमें एक वर्ष एवं तीन दिन बड़ी हैं।

वह था संयोग, महारानी मिलने आयी थीं, हे प्रियतम!
भगिनी से, प्रेरित होकर ही कुलदेवी के द्वारा, प्रियतम!
गोदी में तेरह मास तथा सत्रह दिन का शिशु था, प्रियतम!
मङ्गलमय चरण पड़े जब थे उनके उस पत्तन में, प्रियतम॥४८॥

वह एक संयोगकी बात थी, महारानी अपनी बहिनसे मिलने आयी थीं। उन्हें मिलनेकी प्रेरणा स्वयं कुलदेवी महात्रिपुरसुन्दरीके द्वारा ही प्राप्त हुई थी, जिस दिन महारानीने शारदाअम्बाके पत्तनमें अपने मङ्गलमय चरण रखे थे, उस दिन उनके अङ्कमें तेरह मास, सत्रह दिनका वह शिशु-राजपुत्र भी विराजित था।।४८।।

रानी की अनुजा भी उनके थी साथ लिये पुत्री, प्रियतम!
दोनों के ही समक्ष अभिनव था दृश्य खुला पहला, प्रियतम!
क्रीड़ारत वे दोनों शिशु थे, हाथों में हाथ लिये, प्रियतम!
तीनों बहिनें बैठी प्रमुदित थीं देख रही उनको, प्रियतम॥४९॥

महारानीके साथ, अपने अङ्कमें अपनी उस अप्रतिम सुन्दरी पुत्रीको धारण किये हुए उनकी अनुजा भी आयी थी। इन दोनोंकी आँखोंके सामने ही उस अभिनव क्रीड़ाका - क्रीड़ाके प्रथम दृश्यका आरम्भ हुआ। दोनों शिशु परस्पर हाथोंमें हाथ लिये क्रीड़ारसमें निमग्न थे। तीनों बहिनें उनकी क्रीड़ापर आँख टिकाये आनन्दमें डूबी बैठी थीं।।४९।।

इतने में ही मानो सहस्र उग उठे दिवाकर थे, प्रियतम!
रानी की बहिन तीसरी के उर-उदर-लोचनों में, प्रियतम!
हो गयी प्रभा परिणत तुरन्त बालिका-रूप में थी, प्रियतम!
फिर सरक अङ्क से पड़ी और शिशुओं में जा बैठी, प्रियतम॥५०॥

इतनेमें ही मानो एक साथ सहस्र दिवाकर उदित हो गये - ऐसा प्रकाश फैल गया। वहीं रानीकी तीसरी बहिनके उरस्थलमें, उदरमें तथा लोचनोंमें फिर देखते-न-देखते वह ज्योति तुरन्त एक बालिकाके रूपमें परिणत हो गयी। इसके अनन्तर अविलम्ब वह बालिका शारदाअम्बाके अङ्कसे खिसक पड़ी, और जहाँ वे दोनों शिशु विराजित थे; वहीं जाकर - उनके ही बीच जा बैठी।।५०।।

सीमाविहीन अचरज में थीं डूबी तीनों बहिनें, प्रियतम!
है स्वप्न-घटित घटना, अथवा हो रही सत्य यह है, प्रियतम!
बन गया असम्भव था निर्णय कर लेना यहाँ इसे, प्रियतम!
जड़िमा प्रत्येक रोम में थी तीनों के भर आयी, प्रियतम॥५१॥

तीनों बहिन अपरिसीम आश्चर्यमें डूबी हुई देख रही थीं, सोच रही थीं कि यह हम स्वप्न देख रही हैं अथवा सचमुच ही ऐसी घटना घट रही है। इस सम्बन्धमें कुछ भी निर्णय कर लेना उनके लिये असम्भव बन गया था। इतना ही नहीं, उन तीनोंके प्रत्येक रोममें जड़िमाका विकार परिव्याप्त हो गया था।। ५१।।

यन्त्रित- से हुए उधर शिशु वे थे खेल लगे करने, प्रियतम।
शाखा-चन्द्रमा-न्याय से ही अभिराम दृश्य कह दूँ, प्रियतम!
दृग नचा-नचाकर तीनों ही क्रमशः माताओं के, प्रियतम!
कण्ठों से लगकर झूल उठे हँस-हँसकर मृदुल हँसी, प्रियतम।। ५२।।

उस ओर यन्त्रचालितकी भाँति वे तीनों शिशु उत्तरोत्तर बढते हुए आनन्दसे खेलमें संलग्न होते जा रहे थे। अहा ! उस अभिराम दृश्यका वर्णन् कैसे हो, शाखा-चन्द्र-न्यायसे भले कुछ शब्द वाणीके द्वारा व्यक्त हो जायँ। तीनों शिशु अपनी आँखें नचा-नचाकर क्रमशः तीनों माताओंके कण्ठसे लगकर झूलने लग गये। रह-रहकर उनके होठोंपर मृदुल हँसीकी लहरें नाच उठतीं।। ५२।।

'मेरी मैया है, अहो ! नहीं, मेरी मैया यह है', प्रियतम!
अप्रतिम मधुर वाणी यह थी तुतलायी गूँज उठी, प्रियतम!
केवल अलिन्द में नहीं, भूत- भावी त्रिभुवन जन के, प्रियतम!
प्राणों में जो हैं जुड़े हुए तुम नित्य नील घनसे, प्रियतम।। ५३।।

''यह तो मेरी मैया है,''पहले शिशुकी उक्ति समाप्त होते-न-होते दूसरा शिशु बोल उठता - ''अहो! नहीं,नहीं,नहीं, यह मेरी मैया है!'' - इस प्रकार यह अप्रतिम मधुर तोतली वाणी प्राङ्गणमें गूँज उठी। केवल वह अलिंद झंकृत हुआ हो; इतना ही नहीं। वह वाणी सम्पूर्ण त्रिभुवनके भूत-भविष्यमें होनेवाले व्यक्तियोंके प्राणोंमें झंकृत हो रही थी - अवश्य ही उन्हीं प्राणोंमें जो नित्य नीलसुन्दरसे जुड़े हुए थे, भला !।। ५३।।

आखिर जब बात परस्पर यह तीनों की तीनों ही, प्रियतम!
मैया हैं, तीनों शिशुओं ने ली मान फुल्ल दृगसे, प्रियतम!
मधुमय, अनन्त सुखमय, पावन कौतुक वह बदल गया, प्रियतम!
आँखें बदली माताओं की सुन करके क्रन्दन-सा, प्रियतम।। ५४।।

अंतमें जब तीनों शिशुओंने परस्पर फुल्ल नेत्रोंसे यह बात मान ली कि ये तीनों मातायें तीनोंकी ही मैया हैं, तब उसी क्षण यह मधुरतम, अनन्त आनन्दमय, पवित्र कौतुक सहसा परिवर्तित हो गया। तीनों माताओंकी आँखोंकी अनुभूति बदल गयी - उनके कर्णपुटोंमें एक सुन्दर क्रन्दन-सी ध्वनि जो गूँजने लग गयी थी।। ५४।।

वैसी ही माया फैल गयी, वैसी प्रतीति सबको, प्रियतम!
होने लग गयी, लोकवत् ही मानो वह जन्मी थी, प्रियतम!
आनन्द सिन्धु उमड़ा, सब कुछ जन्मोचित कृत्य हुए, प्रियतम!
विस्मित वे किंतु तीन जननी रह-रहकर हो जातीं, प्रियतम।। ५५।।

...........ठीक वैसी ही माया सहसा फैल गयी। सबको वैसी-की-वैसी प्रतीति होने लग गयी, मानों साधारण प्रपञ्चकी भाँति ही उस बालिकाने जन्मधारण किया हो। एक अद्भुत आनन्द-सिन्धु उमड़ चला। जैसे जो भी जन्मोचित कर्म होते हैं; सब-के-सब वैसे ही सम्पन्न हुए। किन्तु वे तीनों माताएँ रह-रहकर आश्चर्यके स्त्रोतमें बह चलतीं - डूब जातीं।।५५।।

पूनो तक रानी वहीं रही परिवा के दिन सहसा, प्रियतम!
शङ्कित सब हुए, नगर न कहीं हो जाय नष्ट कल ही, प्रियतम!
नर रूप बने मनुजादों का दल था आने वाला, प्रियतम!
अतएव महारानी ने दी यह राय, 'सभी-चल दो', प्रियतम ॥५६॥

........पूर्णिमातक महारानी उस नगरमें ही रहीं। प्रतिपदाके दिन सहसा उस नगरमें एक अद्भुत समाचार प्रसरित हो गया। वहाँके सभी निवासी अत्यधिक शङ्कित हो उठे कि कहीं यह नगर कल ही ध्वस्त न हो जाय, क्योंकि यह सूचना फैली हुई थी कि कल मनुष्यरूपमें राक्षसोंका एक पूरा दल आनेवाला है। महारानी सोच रही थीं - अब इस परिस्थितिमें क्या किया जाये। कुछ सोचनेके अनन्तर महारानीका निर्णय इस रूपमें प्रकट हुआ - देखो, मेरी राय तो यह है कि हम लोग सभी यहाँसे अविलम्ब चल दें।।५६।।

'सर्वथा असम्भव है उनसे भिड़कर हम जयी बनें,' प्रियतम!
'है नगर निरापद केवल वह मेरा ही भूतल में,' प्रियतम!
'अनुकम्पा है जगदम्बा की, साहस न किसी में है,' प्रियतम!
'जो करें अनिष्ट वहाँ के लघु उन कीट-भृङ्ग का भी,' प्रियतम ॥५७॥

''यह बात सर्वथा असम्भव है कि हम उनसे लड़कर उनपर विजय प्राप्त कर सकें। इस स्थितिमें यदि कोई निरापद स्थान है, तो सम्पूर्ण भूतलपर केवल मेरा नगर ही विघ्न-बाधासे शून्य स्थल है। उस नगरपर जगदम्बाकी अत्यधिक अनुकम्पा है। इसीलिये किसीमें भी साहस नहीं है कि मेरे उस नगरके किसी भी प्राणीका किञ्चित् भी अनिष्ट कर सके। मनुष्यकी बात तो दूर, वहाँके लघु-से-लघु कीट, पतङ्ग, भृङ्गको भी कोई स्वल्प मात्र हानि पहुँचा दे, यह असंभव है।।५७।।

'इसलिये तुरन्त वहीं लेकर सबको जाऊँगी मैं,' प्रियतम!
'आबाल-वृद्ध पशु-पक्षी तक कर दें प्रस्थान सभी,' प्रियतम!
'भय करें न तनिक, कहीं पथमें वे ध्वंस करें हमको,' प्रियतम!
'हैं सदय जगन्माता मुझपर, रक्षा कर लेंगी वे,' प्रियतम ॥५८॥

''इसीलिये मैं सबको लेकर तुरन्त वहीं चली जाऊँगी। अविलम्ब बालक, वृद्ध, पशु-पक्षी सबको ही साथ लेकर चलना है भला! साथ ही मैं सुस्पष्ट कर देना चाहती हूँ, यदि ग्रामवासियोंके मनमें तनिक भी ऐसी आशङ्का हो कि वे मनुजाद हमें पथमें ही नष्ट न कर दें, तो ऐसी धारणा सर्वथा मिटा देनी चाहिए। तुम लोग मेरी बातपर विश्वास करो, मुझपर जगन्माताकी अपरिसीम अनुकम्पा है। वे हम सबोंकी रक्षा अवश्य कर लेंगी।''।।५८।।

गोति एकमात्र थी यही-चले वे प्रातः से पहले, प्रियतम!
सामान शकट में भर जितना सम्भव था भर लेना, प्रियतम!
लेंगे सम्भाल आकर फिर यदि सम्भव होगा आना, प्रियतम!
ऐसा निश्चय करके होकर निर्मोही जड़ धन से, प्रियतम!।५९।।

महारानीकी बात ग्रामवासी बड़े ध्यानसे सुनते चले गये। उन सबके मनमें भी यही धारणा स्थिर हो गयी कि महारानीने जो कुछ भी कहा है, वही एकमात्र इस समय अवलम्बन करने योग्य बात बच रही है। इसीलिये वे सब-के-सब प्रातः होनेसे पहले ही ग्राम छोड़कर चल पड़े। गाड़ीमें जितना सामान भर लेना सम्भव था, उन्होंने विभिन्न शकटोंमें भर लिया, तथा सोचा कि यह वस्तुएँ तो पड़ी रह ही सकती हैं। यदि फिरसे लौटनेकी सम्भावना हुई तो उन वस्तुओंको हम लोग सँभाल लेंगे। अस्तु ऐसा निश्चय करके ही जड़ सम्पदासे सर्वथा मोह परित्याग कर वे लोग ग्रामको छोड़ चले जा रहे थे।। ५९।।

इस भाँति विदा करके सबको, सबके पीछे रानी, प्रियतम!
कहकर 'जय देवि दयामयि जय जगदम्बे, जय ललिते' प्रियतम!
सुविशाल एक रथ में दोनों बहिनों को शिशुओं को, प्रियतम!
ले साथ-चलीं निर्भय मानो भगवती जा रही हों, प्रियतम।।६०।।

इस प्रकार सबको विदा कर लेनेके अनन्तर सबके पीछे महारानी 'जय दयामयि देवि! जय जगदम्बे ! जय ललिते !' इस प्रकार उच्चारणकर एक सुविशाल रथमें अपनी अनुजा एवं शारदाको तथा उन छोटे शिशुओंको साथ लेकर निर्भय चल पड़ीं। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो साक्षात् भगवती चली जा रही हैं।। ६०।।

वे अहो! न जाने कैसे थे पहुँचे सब-के-सब ही, प्रियतम!
केवल दो घड़ी लगी एवं दीखी वह राजपुरी, प्रियतम!
सन्मुख जैसे स्वागत सबका हँस-हँसकर थी करती, प्रियतम!
सीमा पर खड़े महाराजा थे मङ्गल कलश लिये, प्रियतम।।६१।।

आश्चर्यकी बात यह कि न जाने कैसे वे सब-के-सब केवल दो घड़ीका समय बीतते-न-बीतते उस घूम-घुमावके लम्बे पथको पार करके राजपुरीके निकट जा पहुँचे। बिल्कुल सामने ही वह राजनगर विराजित दीखने लग गया। मानो राजपुरीकी सीमा समाप्त हो रही थी। वहीं उस विन्दुपर ही महाराज हाथमें मङ्गलकलश लिये खड़े दिखाई पड़ने लग गये।। ६१।।

विभुताका हुआ प्रकाश सत्य अद्भुत उस नृपपुर में, प्रियतम!
सुन्दर-से-सुन्दर पृथक-पृथक सबको आवास मिला, प्रियतम!
सपने में भी उन सबको जो सुख-सुविधा थी न मिली, प्रियतम!
वह मिली, वहाँ वे भूल गये पहले निवासथल को, प्रियतम।।६२।।

उस ओर महाराजके नगरमें सर्वथा एक सत्य एवं अद्भुत विभुताका प्रकाश हो गया था। इतना ही नहीं, इन नवीन आगन्तुकोंके लिये, सुन्दर-से-सुन्दर, पृथक्-पृथक्, यथायोग्य आवासकी व्यवस्था भी हो गयी। इन ग्रामवासियोंको स्वप्नमें भी जो सुख-सुविधा वहाँ अपने नगरमें प्राप्त नहीं थी, वह यहाँ राजपुरीमें उन्हें उपलब्ध हो गयी। वे अपने पहले निवासस्थलको इस सुखके सामने बिल्कुल भूल गये।। ६२।।

अवसान वर्षका हुआ, पुनः आयी पावस ऋतु थी, प्रियतम !
अष्टमी भाद्र शुक्ला की थी, रानी थी पीहर में, प्रियतम !
मध्याह्न हुआ था नहीं अभी, थी देर दण्ड दो की, प्रियतम !
थे अचक महाराजा पहुंचे अपने श्वसुरालय में, प्रियतम।।६३।।

इसके अनन्तर क्रमशः यह वर्ष भी पूरा हो गया। फिरसे पावस ऋतु आयी। भाद्रपद शुक्ला अष्टमी तिथि थी। महारानी इस समय अपने पीहरमें विराजित थीं। अभी मध्याह नहीं हुआ था। उसमें दो दण्डका विलम्ब था। उसी समय महाराजा अचानक अपने ससुरालमें जा पहुँचे।। ६३।।

था उदर महारानी का फिर तेजोमय परम बना, प्रियतम !
हेमन्त-सम्पदा से जब थी भूषित यह धरा हुई, प्रियतम !
नौ मास पूर्व था मार्गशीर्ष, अष्टमी शुक्ल की थी, प्रियतम !
प्रातः की वेला थी, रानी देवी मन्दिर में थीं, प्रियतम।।६४।।

बात यह थी कि महारानीका उदर फिरसे परम तेजोमय बन गया था; यह नौ महीना पूर्वकी बात है, मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमीकी तिथि थी। हेमन्तकी सम्पूर्ण सम्पदासे धरणी विभूषित हो रही थी। प्रातःकालका समय था। महारानी देवीमन्दिरमें उस समय अवस्थित थीं।। ६४।।

श्री-प्रतिमा के पद पर जो थी कुसुमावलि पड़ी उसे, प्रियतम !
कर में ले, दृग से छुला-छुला अपसारित थीं करती, प्रियतम !
थे नहीं अभी राजा आये अर्चन के लिये वहाँ, प्रियतम !
कर रही अकेली रानी थीं पूजा की तैयारी, प्रियतम।।६५।।

महादेवीकी प्रतिमाके चरण-सरोरुहमें जो कुसुमावली बिखरी पड़ी थी, उसे वे अपने हाथमें उठा लेती, फिर आँखोंमें छुआ-छुआकर उसे अलग रखती जा रही थीं। अभी महाराज महादेवीकी अर्चना करनेके लिये मन्दिरमें नहीं पधारे थे। अकेली महारानी पूजाकी तैयारीमें संलग्न थीं।। ६५।।

दीखा यह अकस्मात् उनको, हँस पड़ीं महादेवी, प्रियतम !
फिर अहो ! उरस्थल उनका था क्रमशः खुलता जाता, प्रियतम !
अञ्चल वह परदा-सा होकर बायें-दायें सरका, प्रियतम !
बन गया द्वार उससे निकली मनको हरने वाली, प्रियतम।।६६।।

महारानीको सहसा यह दीख पड़ा कि महादेवी सहसा हँस पड़ी। और अहो ! आश्चर्य! महान् आश्चर्य !! यह देखो, महादेवीका उरस्थल तो धीरे-धीरे द्वारकी भाँति खुलता जा रहा है, मानों उनके वक्षःस्थलपर सुशोभित अञ्चल

तो परदा-सा बनकर कुछ दाहिने, कुछ बायें सरकता जा रहा है। एक द्वार बन गया भला । और फिर देखो एक अत्यन्त मनोहारिणी - ।।६६।।

सुन्दरी अनिर्वचनीय एक कन्या गोरी-भोरी, प्रियतम !
रानी के कुन्तल की लट को कर में लेकर बोली, प्रियतम !
'री मैया!' अहा! सुधास्यन्दी स्वर था कितना मीठा, प्रियतम !
रानी में चेतनता न रही बाहर की किञ्चित् भी, प्रियतम ।।६७।।

अनिर्वचनीय सुन्दरी, गौरवर्णा, भोली-भाली, छोटी बालिका बाहर निकल आयी। महारानीके अत्यन्त समीप आकर उनके उन्मुक्त कुन्तलोंकी एक लटको हाथमें लेकर बोल बैठी - ''री मैया!'' .. अहा ! यह सुधास्यन्दी स्वर कितना मीठा है भला ! महारानीमें तो किञ्चित् भी बाह्य चेतना बची न रह सकी।।६७।।

भीतर की आँख किंतु उनकी थी देख रही घटना, प्रियतम !
देखी उनने जो थी, उसका सङ्केत भले कर दूं, प्रियतम !
द्रुम एक परम रमणीय खड़ा पुष्पित कदम्ब का था, प्रियतम !
थी नित्य किशोरी एक, और था एक किशोर वहाँ, प्रियतम ।।६८।।

अवश्य ही महारानीकी भीतरकी आँखें वहाँ घटनेवाली घटनाओंको ज्यों-की-त्यों देख रही थीं। महारानीने क्या देखा, उसका यत्किञ्चित् सङ्केत भले ही संभव है, पूरा वर्णन कौन करे। अस्तु, महारानीने देखा - सामने एक परम रमणीय पुष्पित कदम्बका वृक्ष विराजित है। उसके नीचे एक नित्यकिशोरी एवं नित्यकिशोर विराजित हैं।।६८।।

उन दोनों की ही ओर दृष्टि करके जगदम्बा थीं, प्रियतम !
कहतीं - 'हे सती! आज कर ले दर्शन मेरे उर का,' प्रियतम !
'सच्चिदानन्द, असमोर्ध्व और जो भगवत्ता का भी,' प्रियतम !
'है सार-मूल मधुरिमा, यही नीली-पीली द्युति है,' प्रियतम ।।६९।।

उन दोनोंकी ओर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित किये वहीं साक्षात् जगदम्बा भी विराजित हैं, भला! और यह लो, वे त्रिभुवन-जननी कह रही हैं - ''सती ! परम सती ! महारानी हे ! आज तू मेरे हृदयका प्रत्यक्ष दर्शन कर ले - परिचय पा ले। जो सच्चिदानन्द, असमोर्ध्व तथा भगवत्ताका भी सार-मूलतत्त्व मधुरिमा है, वह नीली-पीली यह द्युति ही है भला !।।६९।।

'रसमय, सम्विद्, केवल, अद्वय, जो नील-पीतमय है,' प्रियतम !
'यह नित्य हृदय मेरा, जिसमें हूँ लीन हुई रहती,' प्रियतम !
'लीलारस पीता हुआ नित्य जो युग्म रूप में है,' प्रियतम !
'रहकर दो, नित्य एक जो है, दृगविषय हुआ वह है,' प्रियतम ।।७०।।

जानती हो महारानी ! जो रसमय, संविन्मय केवल अद्वयस्वरूप नील-पीतमय यह मेरा नित्य हृदय है, जिसमें ही मैं सदा लीन हुई रहती हूँ और जो लीलारसका पान करता हुआ नित्य युग्मरूपमें विराजित है, जो नित्य दो रहकर भी नित्य एक है भला, - वही, वही तत्त्व आज तुम्हारी आँखोंका विषय बन गया है, भला ! तुम उसे प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे देख रही हो।।७०।।

"यह नित्यकिशोरी ही तुझसे बोली थी, 'री,मैया!', प्रियतम!
"पीयेगी दूध सुधामय यह तेरे पयोधरोंका;" प्रियतम!
"यह नित्यकिशोर किंतु तेरी जो प्राणसखी वह है;" प्रियतम!
"उसका पी लेगा दूध, तभी आयेगी यह पीने;" प्रियतम!!७१!!

अभी-अभी यह नित्य किशोरी ही तुझसे "री मैया !" कहकर बोली थी। तुम भविष्यकी बात सुन लो; यह तेरे पयोधरोंका सुधामय दूध पीयेगी भला ! किन्तु यह घटना तभी घटेगी, जब पहले यह नित्यकिशोर तुम्हारी जो वह प्राणसखी है, उसका दूध पी लेगा। इस किशोरके दूध पी लेनेके अनन्तर ही यह किशोरी दूध पीने आयेगी।।७१।।

"यह नित्य समाया रहता है उसके प्राणों में ही;" प्रियतम!
"यह नित्य समायी रहती है तेरे ही प्राणों में;" प्रियतम!
"तुम दोनों भूल गयी हो यह इनकी ही इच्छा से;" प्रियतम!
"अब याद करा देती हूं मैं, जय हो तुम दोनों की!" प्रियतम!!७२!!

यह नित्यकिशोर तेरी उस नित्य प्राणसखीके प्राणोंमें ही समाया रहता है। इधर यह नित्यकिशोरी तेरे प्राणोंमें समायी रहती है। तुम्हारी वह प्राणसखी एवं तुम - दोनों ही इस बातको भूल गयी हो तथा ऐसा हुआ है इन दोनोंकी इच्छासे ही। अब मैं याद करा देती हूँ, भला ! तुम दोनों सखियोंकी जय हो ! जय,जय,जय,..........!।।७२।।

"दिव्यातिदिव्य सौरभ अनुपम तेरे इन केशों से," प्रियतम!
"हो रहा यहां प्रसरित अब है, आ चुके नृपति भी हैं।" प्रियतम!
"सङ्कल्प पवित्र और उनके मनमें यह जाग उठा;" प्रियतम!
"सन्तति हो एक पुनः ऐसी सुरभित अलकों वाली;" प्रियतम!!७३!!

महारानी ! तू सुन ले, दिव्यातिदिव्य एवं संविन्मय सुगन्ध तुम्हारे इन केशोंमें भर गयी है। सम्पूर्ण मन्दिरके कण-कणमें यह सुगन्ध फैल गयी है। किन्तु तुम्हें बाह्य ज्ञान न होनेके कारण भान नहीं हो रहा है। पर महाराज मन्दिरके भीतर, बिलकुल तुम्हारे समीप आकर खड़े हैं। एक बड़ा ही पवित्र, पवित्रतम सङ्कल्प महाराजके मनमें जग उठा है - 'ऐसी सुरभित अलकोंवाली एक संतति मुझे पुनः प्राप्त हो जाय........।'।।७३।।

"अनुभूति किंतु अपनी यह तुम राजा से मत कहना," प्रियतम!
"रोने जब फूट-फूटकर वे रजनी में आज लगें," प्रियतम!
"कहकर रानी हे पतन हुआ मेरा व्रत नष्ट हुआ;" प्रियतम!
"इतना-सा तब कहना जाकर 'जगजननी से पूछो।'" प्रियतम!!७४!!

किन्तु महारानी ! सावधान ! अपनी इस अनुभूतिको तुम महाराजसे बता मत देना ! आज रात्रिमें जब तुम्हारे सामने ये फूट-फूटकर रोने लगें, बार-बार यह कहकर कि 'रानी हे ! मेरा पतन हो गया, मेरा व्रत नष्ट हो गया,' तब उस समय तुम इतना-सा कह देना ....कि 'जाइये, जगज्जननीके समीप जाकर उनसे सब बातें पूछ लीजिये'।।७४।।

"दूँगी मैं बता दिखा बातें आगे की, पीछे की।" प्रियतम!
"प्रेरित मत किंतु, भला, करना, वे कहें पुनः उनको।" प्रियतम!
"सुखकी प्रतिपल नवीन लहरें प्लावित तेरे, नृपके" प्रियतम!
"प्राणोंको नित्य करें सच है वाणी त्रिकाल मेरी" प्रियतम।।७५।।

'उस समय मैं सब बातें बता दूँगी। इतना ही नहीं, आगेकी-पीछेकी सभी बातोंका प्रत्यक्ष दर्शन भी मैं महाराजको करा दूँगी। किन्तु तुम महाराजको इस बातके लिये प्रेरित मत करना कि वे मेरी कही हुई सब बातें, मेरे द्वारा दिखाई हुई सब बातोंका विवरण तुम्हें भी बता दें। मैं आशीर्वाद दे रही हूँ - आनन्दकी लहरें प्रतिपल नवीन बनकर तुम्हारे एवं महाराजके प्राणोंको नित्य प्लावित करती रहें। देखो, मेरी वाणी त्रिकालसत्य है भला !।। ७५।।

इतने में दृश्य तिरोहित यह हो गया, जगीं रानी, प्रियतम!
अर्चन में योग न दे पायीं; उस दिन पगली-सी थीं, प्रियतम!
था प्रथम पहर जब बीत गया उस दिन की रजनी का, प्रियतम!
रानी-नृपशयन-भवन में थे हो भावमग्न बैठे, प्रियतम।।७६।।

इतनेमें ही महारानीके मानसिक नेत्रोंके सामनेका दृश्य तिरोहित हो गया। वे उस पवित्र समाधिसे जग पड़ीं। किन्तु उस दिन महादेवीकी अर्चनामें वे महाराजके साथ सहयोग न कर पार्यी। सम्पूर्ण दिवस वे पगली-सी दिख रही थीं। निशा आयी और जब उस दिनकी रजनीका प्रथम प्रहर बीत गया, उस समय महारानी एवं महाराज अपने शयनागारमें जा विराजे। दोनों ही भावमग्न बैठे थे।। ७६।।

राजा के तनके कण-कण में ऐसी थी ज्योति भरी, प्रियतम!
वाणी क्या जिसे कहे, मन भी छू पाया नहीं कभी, प्रियतम!
थे नयन निमीलित-उन्मीलित रह-रहकर हो जाते, प्रियतम!
प्राणों में उनके सम्वेदन कैसा था, तुम जानो, प्रियतम।।७७।।

महाराजके शरीरके कण-कणमें कुछ ऐसी विचित्र ज्योति भरी हुई थी, जिसका वर्णन वाणी तो क्या करेगी, किसीका मन भी उसके सम्बन्धमें ठीक-ठीक कल्पनातक नहीं कर सका है। दोनोंकी आँखें निमीलित होतीं और पुनः खुल जातीं। रह-रहकर ऐसा हो जाता। किन्तु उनके प्राणोंकी अनुभूति कैसी थी, इसे तो अन्तर्यामी ही जान सकते हैं।। ७७।।

दक्षिण कर रानी के उर पर, सिर पर, कर वाम तथा, प्रियतम!
भावाभिभूत नृपने जैसे था रखा यन्त्रवत् ही, प्रियतम!
सङ्क्रमित उसी क्षण तेजपुञ्ज रानी के अङ्गों में, प्रियतम!
हो गया, तुरन्त सिमिटकर फिर उदर स्थल में जागा, प्रियतम।।७८।।

महारानी एवं महाराज भावमग्न आमने-सामने बैठे थे। परिचालित यन्त्रकी भाँति अचानक महाराजने अपना दक्षिण हस्त रानीके हृद्देशपर एवं वाम हस्त उनके मस्तकपर रख दिया। क्षण बीतते-न-बीतते यह हुआ कि महाराजके अङ्गोंमें परिव्याप्त वह तेजपुञ्ज उसी क्षण रानीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें संक्रमित हो गया तथा तुरन्त सब जगहसे सिमटकर उदरस्थलमें केन्द्रित होकर जगमग-जगमग करने लग गया।। ७८।।

संज्ञाविहीन अवनीश हुए रानी की गोदी में, प्रियतम!
थे पड़े तीस पल तक, जगकर वैसे ही फिर रोये, प्रियतम!
उन महिमामयी जगत्त्रय की जननी ने तब उनको, प्रियतम!
दिखला दी भूत-भविष्यत् की घटना, वे मुग्ध हुए, प्रियतम।।७९।।

महाराज बाह्यज्ञानशून्य होकर महारानीकी गोदमें ही लुढ़क पड़े। तीस पलतक उनमें चेतना बिलकुल न रही। इसके अनन्तर वे निद्रासे जगे हुए-से होकर, जैसे महादेवीके द्वारा महारानीको अनुभव कराया गया था, ठीक वैसे ही अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लग गये। अचानक त्रिजगज्जननी महा-महिमामयीकी अपरिसीम कृपाने महाराजको आत्मसात् कर लिया। और फिर उस कृपाने ही भूत-भविष्यके सम्पूर्ण घटनाचित्रको उनकी आँखोंके सामने रख दिया। महाराज आनन्दविभोर हो उठे।।७९।।

उसका ही था परिणाम, नृपति थे अकस्मात् आये, प्रियतम!
आया-जन्म स्थल में स्वागत करने के लिये अहा! प्रियतम!
असमोर्ध्व महामहिमामय के प्राणों की देवी का, प्रियतम!
बेटी हो उनकी प्रगट अभी होनेवाली जो थीं, प्रियतम।।८०।।

उसका ही परिणाम था कि महाराज अकस्मात् अपने ससुरालमें आज पधारे थे, स्वागत करने आये थे। किसका स्वागत ? असमोर्ध्व, महामहिमामय स्वयं भगवान्‌के प्राणोंकी अधिदेवीका, जो अहा ! अभी-अभी उनकी पुत्री बनकर आविर्भूत होनेवाली थी।।८०।।

केवल नृप नहीं, धरा के जो मस्तकमणि मुनिगण थे, प्रियतम!
जो स्वर्लोकों के, भुवर्लोक, पन्नगतल तक के थे, प्रियतम!
प्रेरित हो अन्तर्यामी से दौड़े आये सब थे, प्रियतम!
जैसे थे प्रायः वैसे ही, कुछ रूप धरे भी थे, प्रियतम।।८१।।

केवल महाराज ही नहीं, धराके जो मस्तकमणिस्वरूप मुनिगण थे, जो स्वर्लोक, पितृलोक एवं उस ओर नागलोकके अधिवासी थे - अन्तर्यामीके द्वारा प्रेरित होकर सब-के-सब दौड़े हुए आये थे। जो जैसे थे, जिस वेषमें थे, ज्यों-के-त्यों आये थे। हाँ ! कुछ देवगण अपना वेष परिवर्तित किये हुए भी अवश्य थे।।८१।।

थे तपन गगन में चमक रहे, जन-सुखद अतीव बने, प्रियतम!
अवनी प्रतिपल ही थी धारण कर रही नयी सुषमा, प्रियतम!
वर्षाऋतु थी, पर सलिल वहाँ सर-सरित-निर्झरों का, प्रियतम!
दो घड़ी हुई, था बना अतुल उज्ज्वलतम मोती-सा, प्रियतम।।८२।।

अंशुमालीकी किरणें व्योममें चमक रही थीं। सभीके लिये वे किरणें अत्यन्त सुखद थीं। उस ओर धरणी पल-पलमें नवीन सुषमासे सुसज्जित होती जा रही थी। यद्यपि वर्षा ऋतुका समय था, किन्तु वहाँके सर-सरिता, निर्झरोंका जल अभी दो घड़ी पूर्वसे अप्रतिम उज्ज्वलतम मोतीकी भाँति निर्मल बन गया था।।८२।।

शीतल-सुगन्ध-मन्थर समीर छू-छूकर के सबको, प्रियतम!
कानों में था कहता मानो, 'देखो! धीरे-धीरे; प्रियतम!
'रस लहर एक-से-एक बड़ी इस भावसिन्धु में है; प्रियतम!
'आने वाली, तुम अवगाहन निरवधि करते रहना।' प्रियतम॥८३॥

शीतल, सुगन्धित, मन्थर समीर सब प्राणियोंको छू-छूकर मानों सबके कानोंमें धीरे-धीरे कह रहा था - 'देखो! क्रमशः एक-से-एक उत्तुंग रसकी लहरें इस भावसमुद्रमें आने वाली हैं, भला ! तुम सभी उनमें अनन्त कालतक अवगाहन करते रहना।।८३।।

थे अश्व किरणमाली - रथ के जब ठीक मध्य नभ में, प्रियतम!
आये, बस, उसी सन्धि पर थी आयी कन्या नृप की, प्रियतम!
मङ्गलमय परम जुड़े जब थे कालोचित योग सभी, प्रियतम!
रसराज और जब महाभाव दोनों थे एक हुए, प्रियतम॥८४॥

किरणमालीके रथके अश्व जब ठीक मध्य व्योममें आकर अवस्थित हुए, बस, उसी सन्धिपर महाराजकी पुत्रीका आविर्भाव हुआ। कालोचित सभी योग परम मङ्गलमय बनकर जिस समय अवस्थित थे, जिस समय रसराज और महाभाव दोनों ही एक हो गये थे - ठीक उसी क्षण, उसी वेलामें राजपुत्री पधारी।।८४।।

कोई न चितेरा हुआ यहाँ, आगे न कभी होगा, प्रियतम!
जो चित्र सलोनी नृप की उस बेटी का सही लिखे, प्रियतम!
लोचन जिनके हों तुम मेरे प्राणाधिक के पद की, प्रियतम!
नख-चन्द्र-चन्द्रिका से भासित, वे देख भले ही लें, प्रियतम॥८५॥

यहाँ ऐसा कोई चित्रकार नहीं हुआ, और न कभी आगे होगा, जो उस सलोनी राजकुमारीका वास्तविक चित्र अङ्कित कर दे सके। प्राणरमण नीलसुन्दर, सुनो ! जिसके लोचन तुम्हारी चरण-नख-चन्द्रिकासे उद्भासित होंगे, वे देख भले ही लें किन्तु वे उसकी प्रतिच्छविका निर्माण नहीं कर सकेंगे।।८५।।

दो बार अहो! वह मुख-शोभा, फिर वह उमङ्ग-धारा, प्रियतम!
प्राणों में जो थी उमड़-चली, देखी जिनने उनके, प्रियतम!
एवं उसका प्रकाश बाहर कैसे था हुआ वहाँ, प्रियतम!
निर्लज्ज हुई उस ओर, भला, किञ्चित् कह आयी हूँ, प्रियतम॥८६॥

इससे पूर्व अहो ! दो बार उस मुख-शोभाका एवं उस उमङ्ग-धाराका - जो उस समय सबके प्राणोंमें उमड़ चली थी, जिन-जिनने उस दृश्यको देखा था, एवं उसका प्रकाश वहाँ बाहर कैसे हुआ था, - इन सबका चित्रण मैं निर्लज्ज होकर उस वार कर चुकी हूँ। पूर्ण विवरण तो असम्भव है पर, प्राणरमण ! किञ्चित् चित्रण अवश्य कर चुकी हूँ।।८६।।

अब तो इतना-सा कहूँ, अहा ! उन दिव्य अतिथियों ने, प्रियतम !
रानी ने, बहिनों ने, अगणित चर-अचर लोचनों ने, प्रियतम !
कन्या को, रस के प्लावन को देखा, बस, देखा था, प्रियतम !
था काल मकर, रानी लौटीं पीहर से ले पुत्री, प्रियतम ।।८७।।

अब तो अहो ! केवल इतना-सा ही कह दूँ - 'अहा ! उन दिव्य अतिथियोंने, रानीने, उसकी बहनोंने, उन अगणित चर-अचर लोचनोंने उस कन्याको एवं रसके उस महाप्लावनको, बस, देखा था । इतना ही कहना सम्भव है प्राणनाथ ! और आगे इतना-सा और सुन लो। इस वर्ष पुनः जब मकरकी संक्रान्ति लगी थी, उस दिन उस पुण्य पर्वके अनन्तर ही महारानी उस अद्भुत पुत्रीको अपने अङ्कमें लिये पीहरसे लौटी थीं।। ८७।।

जिज्ञासा

छन्द संख्या ६३ से ८७ तक श्रीराधाका जन्म-प्रसङ्ग है। कृपया इन सभी चौबीस छन्दोंका भाव विगतवार इस प्रकार सुस्पष्ट कर दें जिससे इनकी वणर्नशैलीगत दुरूहता सर्वसाधारणके सम्मुख सुस्पष्ट हो जावे।

समाधान

पू.गुरुदेवकी यह शैली ही है कि वे आगेकी बात पहले कहकर पश्चात्‌के छन्दोंमें पीछे हुई घटनाओंको पहले कही बातसे संयुक्त करते हैं। इसी शैलीका पालन करते हुए वे ६३ वें छन्दमें श्रीराधाके जन्मदिन – भाद्रपद शुक्ला अष्टमी तिथिके मध्याह्नमें रावलग्राममें चले आते हैं और उस अवसरपर महाराज वृषभानुके अपने श्वसुरालयमें पहुँच जानेका भी उल्लेख कर दे रहे हैं।

छन्द सं. ६४ में वे ठीक नौ मास पूर्व भूतकालमें मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमीके कालमानपर चले चलते हैं एवं उन परिस्थितियोंका उल्लेख करना प्रारंभ कर देते हैं, जिन परिस्थितियोंमें भगवतीकी प्रेरणासे परम तपस्वी श्रीवृषभानुजीको भी अपना यह व्रत तोड़ना पड़ा था कि महादेवीके आदेशसे एक पुत्र होजानेके पश्चात् वे यावज्जीवन शीलव्रती ही रहेंगे।

छन्द सं. ६५ में उल्लेख है कि रानी कीर्त्तिदा प्रातःकाल महादेवीके मन्दिरमें सेवार्थ प्रवेश करती हैं एवं महादेवीके चरणोंमें समर्पित किये हुए अर्चनाके पुष्पोंको नेत्रोंसे लगा-लगाकर उन्हें किसी सरोवरमें विसर्जित करनेके लिये एक किनारे रख रही हैं।

छन्द सं. ६६ में महारानीको महादेवीके साक्षात् दर्शन होते हैं, वे मुसकाती हैं और सहसा उनका हृदयदेश महारानीके सम्मुख खुल जाता है।

अनन्तविभु महान् ऐश्वर्यमयी अघटन-घटना-पटीयसी भगवती महादेवी अपनी सेविका महारानी कीर्त्तिदाके सम्मुख यह रहस्य प्रकट करती हैं कि जो नित्य रसमय, संविन्मय, अद्वय, नित्यकिशोर-किशोरीका नील-पीतमय स्वरूप है – यही मेरा हृदय है। यह नील-पीतमय महादेवीका हृदय महारानी कीर्त्तिदाको तीन रूपमें दिखता है। 'एक परम रमणीय कदम्बका पुष्पित वृक्ष अवस्थित है, उसके नीचे एक नित्यकिशोरी एवं एक नित्यकिशोर बालिका-बालक खड़े हैं। अनिर्वचनीय सुन्दरी नित्यकिशोरी बालिका वर्णकी गोरी एवं अत्यन्त भोले स्वभावकी है। वह महारानी कीर्त्तिदाके केशोंकी एक लट अपने हाथोंसे छूकर सुधास्यन्दी मधुर स्वरमें कहती है – 'री, मैया !' महारानी इस मधुर स्वरको सुनते ही बाह्य ज्ञान भूल जाती है। महारानीको यद्यपि अपना देहगत बाह्यज्ञान नहीं रहता, किन्तु अन्तश्चेतनाके जगत्‌में वह महादेवीका सुस्पष्ट स्वर सुनती है कि 'हे सती ! आज सच्चिदानन्द एवं असमोर्ध्व भगवत्ताका भी जो मूल-सार – मधुरिमारूप मेरे हृदयका पक्ष है, उसका दर्शन करले। यही मधुरिमाभरा मेरा हृदय ही नील-पीतद्युति नित्यकिशोर एवं

नित्यकिशोरीके रूपमें तुझे दृष्टिगोचर हो रहा है। यह मधुरिमामय रूप नित्य दो रहकर भी नित्य एक है। यह लीलारसका पान करता तेरे सम्मुख नित्य युग्मरूपमें विराजित है। यही तत्व आज तुम्हारी आँखोंका विषय बन गया है। इस समय तुम उसे प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे देख रही हो। यह नित्य किशोरी ही तुझसे 'री, मैया !' कहकर बोली थी। देख ! आगामी दिवसोंमें यह नित्य किशारी तेरी कोखसे जन्म लेगी एवं तेरे पयोधरोंका सुधामय दूध पियेगी। और यह घटना तभी घटेगी जब यह नित्यकिशोर तेरी प्राणसखी नन्दगेहिनी यशोदाकी कोखसे जन्म लेकर उसके पयोधरोंका दूध पी लेगा। हे सती ! ये दोनों नित्यकिशोर एवं नित्यकिशोरी तुम दोनोंके प्राणोंसे एकात्म होकर नित्य मेरे हृदयमें रहते हैं। ये सब बातें भी मैं इन दोनोंकी इच्छासे ही तुम्हें कह रही हूँ।

'महारानी ! सुन ले ! महाराज तेरे समीप ही है। तेरे इन केशोंकी दिव्यातिदिव्य गंधसे आकर्षित होकर उनके मनमें एक तुम्हारे ही समान सुरभित अलकोंवाली सन्ततिकी लालसा अभी जग उठेगी। रात्रिमें फिर वे जब तेरे समीप फूट-फूटकर रोने लगें कि 'हाय ! मैं अपने सङ्कल्पसे गिर गया।' तब तुम उनसे यही निवेदन कर देना कि 'महादेवीके समीप जाकर उनसे ही सब बातें पूछ लीजिये।' जब वे मेरे सम्मुख आवेंगे उस समय मैं उन्हें सभी बातें बता दूँगी।

यह छन्द सं. ६७ से ७६ तकका सारांश विषय है। इसके पश्चात् छन्द सं. ८६ तकका कथन सुस्पष्ट है। उसका शब्दार्थ भी दे दिया गया है।

जिज्ञासा

छन्द सं.६८ में महादेवी जगज्जननी द्वारा महारानीको अद्वयतत्व नील-पीत किशोर-किशोरीके रूपमें दिखाया जाता है - यह तो सुस्पष्ट है, किन्तु जो कदम्बका वृक्ष दिखाया जाता है क्या वह भी परात्परतत्वका सार है ? यह बात सुस्पष्ट करें।

समाधान

शास्त्र मुक्तकण्ठसे उद्घोष करते है कि श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, भगवान् हैं। वे ब्रह्मकी प्रतिष्ठा, आश्रयतत्व हैं। ये भगवान् श्रीकृष्ण अपने असमोर्ध्व, नित्य परिवर्धनशील सौन्दर्य-माधुर्यके द्वारा विश्वविमोहन सर्वचित्ताकर्षक हैं। यहाँ तक कि अपने स्वरूप-सौन्दर्यको देखकर ये स्वयं अपने आपपर ही मुग्ध हो उठते हैं। श्रीकृष्ण ही द्विभुज मुरलीमनोहर नित्यकिशोर नराकृति भुवनमोहन-श्रीविग्रह ह्लादात्मा परतत्व हैं। ये अपने ही नित्य सौन्दर्य-मायुर्यका समास्वादन करनेके लिये स्वयं ही अपनी ह्लादिनी आनन्दशक्तिको नित्यकिशोरी श्रीराधाके रूपमें अभिव्यक्त किये हुए हैं। इन्हीं नित्यकिशोर श्रीकृष्ण एवं नित्यकिशोरी श्रीराधाका, महादेवी जगज्जननी अपनी अनन्त कृपापात्रा महारानी कीर्त्तिदाको, अपना हृदय बतलाती हुई दर्शन कराती हैं। वस्तुतः ये श्रीराधामाधव सभीके दहराकाशमें नित्य विराजित रहनेवाले सभीके हृदय तो हैं ही।

वस्तुतः ये नित्यकिशोर एवं नित्यकिशोरी जो भगवती जगज्जननीका हृदय हैं, दो स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ताएँ नहीं हैं। अपितु इन दोनोंके रूपमें एक ही परम नित्यानन्दतत्व नित्य अखण्ड रहकर आस्वाद्य एवं आस्वादनकर्त्तारूपसे दो दृष्टिगोचर हो रहा है। यहाँ समझनेकी वस्तु यही है कि तत्वमें जो एक है, वही लीलामें परिस्फुट होकर अनेकवत् भासित होता है। तत्व बीज है और लीला उसका स्फुटित स्वरूप – विशद वृक्ष है। तत्व एकमेव अद्वितीय है। किन्तु लीलामें वही कदम्बवृक्षरूपमें वृन्दावनधाम, ब्रजेन्द्रनन्दन नित्यकिशोर श्रीकृष्ण, बृषभानुदुलारी नित्यकिशोरी राधा – तीन रूपोंमें व्यक्त हो जाता है। ये तीन भी अपने-अपने कायव्यूह रूपोंमें अनन्त वृक्ष, लता-द्रुम-वीरुध, कुसुम, यमुना, सरोवर, पर्वत, अनन्त ग्राम, देश, गोप-गोपी, माता-पिता, सखा-सखी, दास-दासी हो जाते हैं।

ये सभी एक ही तत्वकी अनेकानेक दिशाएँ हैं। तत्वमें जो अव्यक्त है, वही लीलामें परिस्फुट होकर अनेक एवं अनन्त हो जाता है।

भगवती जगज्जननी द्वारा यही रहस्य कीर्त्तिदा महारानीको समझानेके लिये अपना हृदय दिखाया जा रहा है। यह लीलामय ब्रज ही उनका हृदय है। इस परम लीलारूप ब्रजको अपना हृदय बनाये वे स्वयं ही ब्रजेन्द्रनन्दन नित्यकिशोर श्रीकृष्ण, बृषभानुदुलारी नित्यकिशोरी श्रीराधा एवं कदम्बवृक्ष – वृन्दावनधाम बनकर लीलारत हो रही हैं। यही इन तीनों रूपोंके दर्शनोंका उद्देश्य मानना चाहिये।

जिज्ञासा

छन्द सं. ७७में 'महाराजाके तनमें विचित्र ज्योति भरी हुई थी' ऐसा वर्णन आता है। यह ज्योति कैसी थी, कृपया इसे सुस्पष्ट करें ।

समाधान

जिन भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें मणियोंके सदृश जिनमें गुँथा हुआ है, जो क्षरसे अतीत एवं अक्षरसे उत्तम, जो सब भूतोंकी उत्पत्तिके बीज हैं, उन श्रीकृष्णकी भी जो आत्मा हैं, उनको भी आनन्द देनेवाली हैं, उनकी भी प्राणोंकी प्राण, जीवनकी जीवन हैं, वे श्रीराधा जिस ज्योतिसे उद्भूत होनेवाली हैं, श्रीबृषभानुजी महाराजके मनमें उस दिव्य ज्योतिका प्रकाश उस क्षण दिपदिपा उठा था।

श्रीबृषभानुजी महाराज एवं महारानी कीर्त्तिदा दोनों ही उस समय उस भगवती जगज्जननी महात्रिपुरसुन्दरीके उस महातेजसे द्युतिमान् थीं, जो तेज सबकी गति है, सबका भरण-पोषण करनेवाला है। यह तेज ही सबका प्रभु है, साक्षी है, निवास है, शरण है, सुहृद् है, उत्पत्ति है, प्रलय है, सबका आधार एवं निधान है, तथा सबका अविनाशी कारण है। यह तेज सर्वलोकोंका महान् ईश्वर है, जिस तेजको परब्रह्म, परमधाम, आदिदेव, विभु कहते हैं, जो सच्चिदानन्दतत्वका भी मूल कन्द है, जो दिव्य तेज योगमाया द्वारा ढका होनेसे सब समय सबके दृष्टिपथमें नही आता, उस ज्योतियोंकी भी मूलज्योतिसे ही श्रीबृषभानु महाराज उस काल द्युतिमान् थे।

इसी प्रकार छन्द सं. ७८में पू.गुरुदेवने स्पष्ट सङ्केत किया है कि प्राकृत जीवोंकी भाँति न तो श्रीराधाकुमारी गर्भमें आयी और न ही उनका विग्रह ही उनसे भिन्न पाञ्चभौतिक था। वे अयोनिजा थीं। वात्सल्य-भाव-सिन्धु श्रीबृषभानुजी एवं कीर्त्तिदा महारानीको पिता-माताके रूपमें श्रीराधाने स्वीकारकर मात्र धन्य ही किया था। श्रीबृषभानुजी एवं कीर्त्तिदा महारानी अनन्य वात्सल्यभावसे श्रीराधाको पुत्रीरूपमें प्राप्त करना चाहते थे, इसीलिये उनके वात्सल्यभावको कृतकृत्य करनेके लिये भगवती श्रीराधाने अपने आविर्भावके पहले ही सर्वप्रथम अपने पिता बृषभानु महाराजको अपनी सच्चिन्मयी ज्योतिसे ज्योतिर्मान् कर दिया। तत्पश्चात् भावमग्न उनके सामने आसीन कीर्त्तिदा महारानीको भी परिचालित यंत्रकी तरह उनके द्वारा दक्षिण हस्त हृद्देशपर एवं वामहस्त उनके मस्तकपर रखवाकर महाराज बृषभानुके अङ्गोंमें परिव्याप्त तेजपुञ्जको महारानी कीर्त्तिदाके सम्पूर्ण अङ्गोंमें से संक्रमित करवा दिया। यह संक्रमित तेजपुञ्ज तुरन्त ही रानीके सभी अङ्गोंसे सिमटकर उनके उदरस्थलमें केन्द्रित होकर जगमग-जगमग करने लगा। यह अवश्य हुआ कि अचिन्त्यशक्ति भगवती योगमायाने महाराज बृषभानु एवं महारानी कीर्त्तिदाके श्रीराधारानीके प्रति वात्सल्यभावको सुदृढ़ करनेके लिये अपनी स्वजन-मन-मोहिनी मायासे महारानी कीर्त्तिदामें यथासमय गर्भलक्षण प्रकट कर दिये । भगवती श्रीराधा गर्भमें आयी नहीं थीं, तथापि महाराज बृषभानु एवं महारानी कीर्त्तिदाने यही समझा कि मेरे गर्भसे ही पुत्री राधा उत्पन्न हुई हैं। इसीसे वे पूर्ण वात्सल्यसे अपनी पुत्री समझ राधाकुमारीका लालन-पालन करती हैं। इस अगाध वात्सल्यभाव-सिन्धुमें श्रीराधारानीकी समग्र अलौकिक भगवत्ता डूब जाती है।

अब गये पच्चीस महीने, शुभ दिन सात, अष्टमी से, प्रियतम!
प्रातः से लेकर जब नूतन होता प्रभात फिर था, प्रियतम!
उन आठों पहरों में प्रतिपल नृप-नगरों में जो थीं, प्रियतम!
भावों की नव तरङ्ग उठती, सम्भव है क्या कहना, प्रियतम ।।८८।।

अस्तु, अब उस अष्टमीके अनन्तर पच्चीस महीने एवं सात दिन बीत चुके थे - प्रातःसे लेकर जब पुनः नूतन प्रभात हँसने लगता था, उन आठों प्रहरोंमें प्रतिपल ही महाराजके अपने पुरमें, श्वसुरपुरमें जो भावोंकी नई-नई तरङ्गें उठती थीं, उसको चित्रित कर देना, सम्भव कहाँ है ?।। ८८।।

जो हो, इतने दिन की जब वह हो चुकी लाड़िली थी, प्रियतम!
थे महीपाल के प्राणोपम जो एक धर्मभाई, प्रियतम!
'गोपेश' अहो! जिनकी पदवी विख्यात भुवन में थी, प्रियतम!
हो रहा शरद् पूनों का था उत्सव उनके गृह में, प्रियतम ।।८९।।

जो हो, जब राजपुत्री इतने दिनोंकी हो चुकी थी, तब महाराजके प्राणोपम जो वे एक धर्मभाई थे, जिनकी पदवी गोपेश नामसे त्रिभुवनमें विख्यात थी, उनके यहाँ - उनके घर आज शारदीय पूर्णिमाका उत्सव हो रहा था भला !।। ८९।।

जिस दिन वह नृपति-तनूजा थी अवनी तल पर आयी, प्रियतम!
उसके ही पन्द्रह दिवस ठीक पहले उस रजनी में, प्रियतम!
उन गोपवर्य को महामहिम ऐसा था पुत्र हुआ, प्रियतम!
जो था अहीर-कुल-उजियारा, सबके दृग का तारा, प्रियतम ।।९०।।

एक बात और सुन लो। जिस दिन वह नृपति-तनूजा अवनीतलपर पधारी थी, उसके ठीक पन्द्रह दिन पहलेकी जो रजनी थी, उस रजनीमें उन गोपेशको एक ऐसा पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था जो सम्पूर्ण आभीरकुलका उजियारा बना हुआ था। सबके दृगोंका तारा था वह।। ९०।।

तब से उन धर्मभाइयों ने निश्चय था किया यही, प्रियतम!
"ये शरद्, बसन्त, सभी ऋतु में होते उत्सव जो हैं," प्रियतम!
"आगे अब हम सर्वदा करें दोनों कुल मिलकर ही," प्रियतम!
"वे भले वनस्थल में हों या नृप भवन किसी में हों," प्रियतम ।।९१।।

तभीसे उन दोनोंने ऐसा निश्चय कर लिया था - 'ये शरद् एवं बसन्त आदि ऋतुओंमें होने वाले जो भी उत्सव हों, उन सबको आजसे हम लोग सदा दोनों कुल मिलकर ही करेंगे - वे उत्सव भले वनस्थलमें मनाये जायँ अथवा दोनों राजकुलके किसी भवनमें मूर्त हों।।। ९१।।

इसलिये ये नृपति थे सपरिवार आये अहीर पुर में, प्रियतम!
आयी थी प्रजा और तो क्या, दस दिन वय का शिशु भी, प्रियतम!
मानो नृपपुर उठ आया था पूरा-का-पूरा ही, प्रियतम!
उन गोप-नगर-नर-नारी का उत्साह निराला था, प्रियतम ।।९२।।

यही कारण था कि आज महाराज सपरिवार उस आभीर-नगरीमें आये हुए थे। समस्त प्रजा भी आयी थी। और तो क्या, दस दिनकी आयुका वह शिशुतक आया था। मानो महाराजकी पूरी-की-पूरी नगरी ही उठकर आ गयी थी - ऐसा लग रहा था। उस आभीरपुरके सम्पूर्ण नरनारियोंका उत्साह भी आज निराला बन गया था।। ९२।।

गोपेश और अवनीश अभी नारायणविग्रह का, प्रियतम!
चौंसठ उपचारों से अर्चन करके कृतकृत्य हुए, प्रियतम!
उद्दाम नृत्य के सहित अहो! थे नाम गान करते, प्रियतम!
स्वर-में-स्वर सभी मिलाकर थे वैसे ही पुरवासी, प्रियतम ।।९३।।

गोपेश और बृषभानुपुरनेश दोनोंने अभी-अभी श्रीनारायण विग्रहकी चौंसठ आचारोंसे अर्चना सम्पन्न की थी और इस आराधनासे अपनेको कृतकृत्य अनुभव कर रहे थे। अब उद्दाम नारायण-नाम-संकीर्त्तनमें ये दोनों संलग्न हो रहे थे। सम्पूर्ण पुरवासी भी वैसे ही स्वर-में-स्वर मिलाकर योगदान कर रहे थे।। ९३।।

बीती ही थी वह अर्धनिशा, पल पाँच हुए, बस, थे, प्रियतम!
गोपेशपुत्र को ले आयीं रानी की बहिन वहाँ, प्रियतम!
चञ्चल बालक वह उतर पड़ा जल्दी से गोदी से, प्रियतम!
भयहीन सदा वह था, झट से घुस पड़ा भीड़ में, हे प्रियतम ।।९४।।

अर्धनिशा बस, अभी-अभी बीती ही थी। केवल पाँच पल हुए थे, अचानक नन्दपुत्रको बृषभानपुरकी महारानीकी बहिन वहाँ उस महासंकीर्त्तन-यज्ञमण्डपमें ले आयीं। वह चञ्चल शिशु उनकी गोदीसे तुरन्त ही उतर पड़ा। वह सदासे ही भयशून्य जो रहता था। इसीलिये वह झटसे भीड़में घुस पड़ा।। ९४।।

वह नृपतिपुत्र को 'श्रीभैया' सम्बोधित था करता, प्रियतम!
गोपेश-वसन को खींच चपल कर से हँसकर बोला, प्रियतम!
"बाबा! भेजा है मैया ने मुझको, तुमसे कह दूँ" प्रियतम!
"श्रीभैया को है एक हुई छोटी फिर बहिन अभी" प्रियतम ।।९५।।

बृषभानुपुरनरेशके पुत्रको वह नीलशिशु 'श्रीभैया' कहकर सम्बोधित करता था। संकीर्तनमें विभोर हुए गोपेशके समीप वह जा पहुँचा और अपने चञ्चल हाथोंसे उनके वस्त्रको खींचते हुए बोल पड़ा - 'ए बाबा ! ए बाबा! मेरी मैयाने मुझको तुम्हारे पास यह कहनेके लिये भेजा है कि अभी-अभी श्रीभैयाको एक छोटी बहिन फिरसे प्राप्त हो गयी है, भला !।। ९५।।

उस बालक की वाणी में था टोना-सा भरा सदा, प्रियतम!
वह भाव-समाधि अहो! सबकी टूटी निमेष में ही, प्रियतम!
नारायण का वह शारदीय उत्सव उन नरपति की, प्रियतम!
कन्या की महा बधाई में परिणत हो गया वहाँ! प्रियतम ।।९६।।

उस नील शिशुकी वाणीमें सदा टोना-सा भरा हुआ रहता था। इसीलिये निमेष पूरा होते-न-होते सबकी वह भावसमाधि ही टूट गयी। अभी-अभी जो भगवान् नारायणका शारदीय उत्सव परम उल्लाससे चल रहा था, वह बृषभानुनरेशकी नवजात कन्याकी महाबधाईमें परिणत हो गया।।। ९६।।

इस भाँति महारानी क्षण में मानो हों घटी अभी, प्रियतम!
इन उपर्युक्त घटनाओं को थीं देख गयी फिर से, प्रियतम!
'मैया! क्या है तू सोच रही?' कहकर जब पुत्री ने, प्रियतम!
उनके अञ्चल को खींचा था, टूटा तब सच, सपना, प्रियतम!।९७।

इस प्रकार उपर्युक्त सम्पूर्ण घटनाओंको महारानी, मानों वे घटनाएँ अभी-अभी घटित हुई हों, प्रत्यक्षकी भाँति फिरसे देख गयीं। उनकी पुत्री उनसे इस समय वनस्थलमें पुष्पचयन करनेकी अनुमति लेने आयी थी और उत्सुकताभरी आँखोंसे अपनी जननीकी ओर देख रही थी। आखिर उससे रहा नहीं गया, वह बोल उठी - ' अरी मैया ! तू क्या सोच रही है री ?' यह कहकर अपनी जननीके अञ्चलको उसने खींच लिया और तब कहीं जाकर उनका यह स्वप्न-दर्शन - यह अभिनव भावसमाधि टूट सकी भला, ! ।। ९७।।

पुत्री के अधर-कपोलों पर वत्सलता के रस से, प्रियतम!
पूरित वह चिह्न अनेक बार अङ्कित कर फिर अपनी, प्रियतम!
छोटी बेटी को, सखियों को, जो वहाँ खड़ी की थीं, प्रियतम!
वैसे ही रस देकर, लेकर सबको थीं वे आयीं, प्रियतम!।९८।

अपनी पुत्रीके अधरोंपर, कपोलोंपर वात्सल्यरससे पूरित अनेकों चिह्न अङ्कित करके फिर अपनी छोटी बेटीको भी वैसे ही वात्सल्यरससे स्नान कराकर - इतना ही नहीं, वहाँ जो भी उसकी सहचरियाँ उसके साथ आयीं थीं, सबको वैसे ही, उसी भाँति रस-सरोवरमें निमग्न करके सबको साथ लिये वे चल पड़ीं।। ९८।।

अर्चन-मन्दिर में राजा थे ध्यानस्थ हुए बैठे, प्रियतम!
रानी ने बतला दी उनको दुहिता की जो रुचि थी, प्रियतम!
झर-झरकर लगे नयन बहने, नरपाल निहाल हुए, प्रियतम!
मानस तल में वह बात जगी देवी की कही हुई, प्रियतम!।९९।

उन सबको लिये वे देवीके अर्चना-मन्दिरमें जा पहुँचीं। महाराज वहीं ध्यानस्थ बैठे हुए थे। उनकी पुत्रीने जो रुचि व्यक्त की थी, उससे महाराजको अवगत कराया महारानीने। रानीकी बात पूरी होते-न-होते महाराजके नयन झर-झर बहने लग गये। निहाल हुए, विह्वल-से हुए महाराज सोचने लग गये और इसी बीच उनके मानस-तलमें देवीकी कही हुई बात स्मरण हो आयी। देवीने प्रत्यक्ष होकर उनसे कहा था - ।। ९९ ।।

'होकर जब सात वर्ष की यह हँसकर इच्छा कर ले; प्रियतम!
'मेरे वन में आने की, तब समझो, यह खेलेगी; प्रियतम!
'वह खेल अनन्तकाल तक जो त्रिभुवन थिर-जङ्गम को; प्रियतम!
'पावनतर, पावनतम कर-कर निधि नित्य बने सबकी;' प्रियतम!।१००।

'वत्स ! देखो, जब तुम्हारी पुत्री सात वर्षकी हो जाय और हँस-हँसकर मेरे उद्यानमें आनेकी अभिलाषा प्रकट करे, तब वह एक अभिनव खेल खेलेगी भला ! ऐसा खेल जो अनन्तकालतक त्रिभुवनके स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंको पावन, पावनतर, पावनतम बनाते हुए सबके प्राणोंकी एक अप्रतिम सुन्दर नित्य निधि बन जाय । अस्तु, ।। १००।।

गद्गद् थी गिरा, नृपति ने थी दी अनुमति जाने की, प्रियतम।
सबको भूषण परिधानों से रानी ने सजा दिया, प्रियतम।
वे चलीं तुरन्त उसी वन में प्रसरित सच हो जैसे, प्रियतम।
हो तरल पुराण नित्य कवि के नव मन की सुन्दरता, प्रियतम।।१०१।।

गद्गद कण्ठसे महाराजाने देवीके उद्यानमें पुत्रियोंको जानेकी अनुमति दे दी। फिर तो तुरन्त ही महारानीने भी सबको भूषण एवं परिधानोंसे सज्जित कर दिया। वे बालिकाएँ तुरन्त ही देवी-उद्यानकी ओर चल भी पड़ीं - ऐसे चली जा रही थीं वे, मानों उन पुराण-पुरुष नित्य कविके अभिनव मनका सौन्दर्य तरल विगलित होकर चञ्चल प्रवाहिणीका रूप धारण करके आगे-से-आगे एक निश्चित दिशाकी ओर प्रसरित हो रहा हो।। १०१।।

तात्त्विक विवेचन विस्तार

ब्रजलीलामें नित्य ध्यान रहे कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका किशोररूप धर्मी है एवं बाल्य तथा पौगण्डरूप इस नित्य किशोरस्वरूपके धर्म हैं। स्त्रीदेहमें तीन वर्षतक कौमार, छः वर्षतक पौगण्ड, और पश्चात् कैशोरका समावेश हो जाता है। पुरुषदेहमें पाँच वर्षतक कौमार, आठ वर्षतक पौगण्ड एवं पश्चात् कैशोरका उदय हो जाता है। कौमारमें जहाँ वात्सल्यरसकी लीला होती है, पौगण्डमें सख्यरसकी प्रधानता हो जाती है, वहीं कैशोरमें उज्ज्वल माधुर्यरसका प्रादुर्भाव हो जाता है। श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा वस्तुतः ब्रजमें नित्यकिशोर एवं नित्यकिशोरी हैं। इनको इस कैशोरस्वरूपमें प्रतिष्ठित कर देनेमें ही इनके बाल्य एवं पौगण्ड स्वरूपकी चरितार्थता एवं कृतकृत्यता है। इसीलिये भगवती योगमाया इस लीलाक्रममें जगन्माता कीर्त्तिदाको सङ्केत करती हैं कि सात वर्ष वयकी हो जानेपर ही राधाको इस वृन्दाकाननमें प्रवेशकी अनुमति दी जावे। जब बालिका राधा सात वर्षकी हो गयीं, उस समय श्रीराधाका सौन्दर्य अनन्त प्रेमकान्तिका आगार हो उठा था। उनके रोम-रोमसे असमोर्ध्व निर्मल भाव-मधुरिमाकी वर्षा होती रहती थी, क्योंकि महान् रसानन्दसे वह परिपूर्ण घट सदैव छलछलाया रहता था। वे आन्तरिक महान् प्रेमानन्दसे पूर्ण परितृप्त हो उठी थीं। वैदग्ध्य, अनुराग, वात्सल्य, कृपा, लावण्य, सौन्दर्य और माधुर्य (केलिरस) – ये सात निर्मलतम रस श्रीराधाके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे निरन्तर झरते रहते थे। इसीलिये पू.गुरुदेव कहते हैं कि उनकी ऐसी शोभा थी मानो पुराण-पुरुष श्रीकृष्ण जो नित्य कवि हैं, सर्व कल्पनाके मूल, सर्वविद् हैं, उनके अभिनव मनका सौन्दर्य तरल होकर चञ्चल प्रवाहिणी (नदी)का रूप रखकर आगे-से-आगे एक निश्चित दिशाकी ओर बह उठा हो।

।।श्रीराधा।।

हँसकर-रोकर नाच सही रे, मेरा मृण्मय चोला!

।।सोरठा।।

बन कर मर्त्य फकीर, धारणकर गैरिक वसन।।
गाती हुई अहीर-बाला श्रीराधा चलीं।।

।।गीत।।

हँसकर-रोकर नाच सही रे, मेरा मृण्मय चोला।
फेरी देते-देते मेरे पदमें पड़ा फफोला।।
ढोल बजाकर गाकर कहकर द्वार-द्वार मैं डोला—।
'मेरा सौदा लो', पर फाटकतक न किसीने खोला।।
शत-शत आढ़तियोंका मैंने छिपकर देखा गोला।
प्याज मिला लाखों मन, लाखों मन गुड़-गोबरघोला।।
इतने पर भी प्रायः सबका मैंने चित्त टटोला।
'साफ करूँगी मैं भरदूँगी मृगमद लाखों तोला'।।
देखो, पर विचित्र लीला यह, नहीं एक भी बोला।
खुला न कहीं नमूनेको भी मेरा सुरभित झोला।।
आया क्या ब्रजेशका साँवर छोरा अतुल अमोला।
देखूँ – फिर केवल हम दो ही झूलें फूल-हिंडोला।।

।।सोरठा।।

तत्क्षण वहीं ब्रजेश-सुत पहुँचे हँसते हुए।
एक वणिक्का वेष धरे, लिये करमें कलम।।

।।श्रीराधा।।

अथ श्रीप्रियतम काव्यम्

द्वितीय शतक

सार-संक्षेप

(१) वृन्दा-कुञ्ज-कानन-वर्णन।

(२) ललिताकुञ्जका वर्णन।

(क) खण्डिता-प्रधान ललिता-कुञ्जका वर्णन।

(ख) प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये महामायारूपमें ललिताकुञ्जका वर्णन।

(ग) प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये जगज्जननीरूपमें ललिताकुञ्जका वर्णन।

(घ) प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये योगमायारूपमें ललिताकुञ्जका वर्णन।

(ङ) जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-भावापन्न ललिताकुञ्जका वर्णन।

(च) जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिसे अतीत तूर्य तत्त्वात्मक ललिताकुञ्जका वर्णन।

(छ) ललिताकुञ्जका गंगा-यमुनात्मक रूप।

(ज) विशुद्ध रस-सम्पुटित प्रच्छन्न नवदुर्गात्मक ललिताकुञ्जका वर्णन।

(झ) विशुद्ध रस-सम्पुटित प्रच्छन्न दशविद्यात्मक ललिताकुञ्जका वर्णन।

(ञ) विशुद्ध रस-सम्पुटित महात्रिपुरसुन्दरीरूप ललिताकुञ्जका वर्णन।

(ट) विशुद्ध रस-सम्पुटित भगवत्तारूप ललिताकुञ्जका वर्णन।

(ठ) ललिताकुञ्जका विशुद्ध रसमय मातृत्वरूप।

(३) विशाखाकुञ्जका वर्णन।

(४) चित्राकुञ्जका वर्णन।

(५) इन्दुलेखाकुञ्जका वर्णन।

(६) चम्पकलताकुञ्जका वर्णन।

(७) रंगदेवीकुञ्जका वर्णन।

(८) तुंगविद्याकुञ्जका वर्णन।

(९) सुदेवीकुञ्जका वर्णन।

(१०) राधाकुण्डका वर्णन।

(११) कृष्णकुण्डका वर्णन।

(१२) जावट ग्रामका वर्णन।

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

द्वितीय शतक

वृन्दा-कुञ्ज-कानन-वर्णन

प्रिया-प्रियतमकी राग-रसमयी आराधनाके नायक-नायिका नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीब्रजेन्द्रनन्दन एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीमती राधारानी मात्र रमण-रमणी नहीं होकर निरुपम, निरुपाधि, परात्पर, सच्चिदानन्द-सान्द्राङ्ग, सौन्दर्य-माधुर्य-रसनिधि हैं, ठीक उसी प्रकार उनका वृन्दा-कुञ्ज-कानन-धाम भी अनिर्वचनीय, अनन्त-विश्व-विमोहन-मोहन, रसैश्वर्यसे परिपूर्ण, चिन्मय है। जिस गिरिराज पर्वतका पू.गुरुदेव इस अध्यायमें वर्णन कर रहे हैं, वह साधारण प्राकृत भूखण्ड मात्र नहीं है, वरं चिन्मय नीलकान्तिधारी, समुज्ज्वल मरकतमणिमय है। वह प्रतिक्षण नव-नवायमान कल्पनातीत अलौकिक-रूप-सौन्दर्य-समन्वित है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी समवेत सौन्दर्य-माधुर्यराशिको भी यदि कहीं एक स्थानपर एकत्रित करके कोई उससे इस गिरिके एक शिलाखण्ड अथवा इसके परिसरमें स्थित काननके एक साधारण तृणमूलसे भी संतुलना कर बैठे, तो उसे अपनी दन्तपङ्क्तिमें तृण दबाकर यही कहना पड़ेगा कि सर्वांशमें यहाँका एक तृण भी, शिलाखण्ड ही नहीं - धूलिका एक लघुतम कण भी, उस समग्र प्राकृत सौन्दर्यराशिका गर्व सतत खर्व कर रहा है।

जगत्में सर्वसुन्दर नायक-नायिका यदि कोई हैं तो शास्त्र कामदेव एवं रतिका नाम ही उल्लिखित करते हैं। इन सर्व-कामकला-निष्णात दम्पति – रति एवं कामदेवके विलासके समय इनके किङ्कर वसन्त द्वारा जो भी विहार-सामग्री सजायी जाती है, उससे भी निःशेष असीम, अनन्त विचित्र रस-सामग्री इन सच्चिन्मय गिरिराज महाराज द्वारा प्रिया-प्रियतम राधा-माधवकी सेवार्थ प्रतिपल प्रस्तुत की जाती है।

इस परम चिन्मय नगराजके परिसरमें स्थित जिस वृन्दाकानन-कुञ्जोंका सजीव वर्णन यहाँ इस रसकाव्यमें पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाने किया है, उनके बाह्य सौन्दर्यके रूपमें जो भी मणिमय अलङ्कारोंका वर्णन है, ये सभी अलङ्कार वस्तुतः प्रिया-प्रियतमके परस्पर प्रेमोज्ज्वल भाव ही हैं। यह सम्पूर्ण वन वस्तुतः प्रिया-प्रियतम राधा-माधवका सर्वांशमें सम्पूर्णतया प्रतिरूप ही है, और इसीलिये यह उनकी नील-पीतवर्ण एवं गौर-श्यामल कान्तिको ही अपने अङ्गोंका शोभामय शृङ्गार बनाये हुए है।

यह कानन जहाँ हरे-भरे वृक्षों एवं लता-जालों, तृण-वीरुधोंसे नील-श्याम-छवियुक्त है, वहीं इसकी भूमि एवं कुञ्जभवन चिन्मय स्वर्णरचित, मणिखचित होनेसे विद्युद्वर्ण, पीत-छवि-समलंकृत भी हैं। इस पावन वनके दर्शनकर रसिकजन यही अनुभव करते हैं कि परस्पर प्रेमलोलुप, अनिर्वचनीय सौन्दर्य-माधुर्य-निकेतन प्रिया-प्रियतम इस वन-काननके अणु-अणुमें बसे हैं और इसके प्राणोंके मर्म हैं।

असंख्य ब्रजसुन्दरियोंसे परिवृत, उनके चरणचिह्नोंसे सुभूषित श्रीराधा-माधवकी गोपनीयतम अन्तरङ्ग रसलीलाका धाम यह वृन्दाकानन बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों और ईश्वरकोटिके देवगणोंके लिये भी अगोचर है। महान् ऐश्वर्यशाली शिव-ब्रह्मादिक देवगण, नारद-दुर्वासादि ऋषिगण, सनकादि ज्ञानीजन, इसकी लेशमात्र झाँकी पाकर ही अपनेको परम कृतकृत्य मानते हैं। भगवती नारायणी रमादेवी जिसके लिये नित्य लालायित रहती हैं, स्वयं ब्रह्मविद्या जिसकी रज पानेको कल्पोंतक तपस्या करती हैं, उस सर्वोपरि मधुर, सुधामय, भगवत्प्रेमसे छलकते, परम चिन्मय लीलाधामका वर्णन इस अध्यायमें है।

वस्तुतः जो साधकगण धन, स्त्री, मान और इनके सङ्गका पूर्णतया परित्याग करनेको कटिबद्ध हों, इन्द्रियसुखकी वासनाका सर्वथा त्याग करनेको कृतसङ्कल्प हों, जन-संसर्गमें पूर्णतया अरतिकर प्रिया-प्रियतमके नाम-गुण-लीलादिके अतिरिक्त कुछ भी श्रवण, मनन एवं कथनके प्रति उपरत हों, निजसुख - यहाँतक कि मोक्षतकका त्याग करनेकी इच्छा किये हों, अपनेको ब्रजकी एक अकिञ्चन किङ्करीके अनुगत होकर सेवाभावका अवलम्बन करनेकी रुचि रखते हों, नाम-कीर्त्तिकी, लोक-परलोककी - किसी भी सद्गतिकी जिनमें चाह नहीं हो, वे ही अपने जीवनमें कभी प्रिया-प्रियतमकी कृपासे इस धामकी झाँकी पानेके अधिकारी हो सकते हैं।

वैष्णव पाठकोंसे परम विनीत प्रार्थना है कि इस भावसे ही इस ग्रन्थके इस अध्यायकी लीलाओंको समझनेका सत्प्रयास करें। यह किसी साधारण भूखण्डके तीर्थका वर्णन नहीं है।

पूरब की शिखरावलि-मण्डित गिरि था सीमा रचता, प्रियतम!
कानन से जुड़ी प्रतीची में प्रसरित नीली सरिता, प्रियतम!
सुविशाल राजपथ उत्तर में द्रुमजालों से छाया, प्रियतम!
चलकर कोसों तक छू लेता उस शैल रत्नमय को, प्रियतम!।।१०२।।

उस वनकी पूर्वी सीमामें मणिरत्नोंसे जटित गिरिराजकी चोटियाँ सुशोभित थीं और पश्चिम दिशामें उससे सटकर यमुनाजी बहती थीं। उत्तरमें घने वृक्षोंसे आच्छादित, सुदीर्घ राजपथ था जो कोसोंतक चलकर रत्नमय गोवर्धनपर्वतसे जा मिलता था।।।१०२।।

निर्झर झरकर पर्वत से लघु था स्रोत एक बहता, प्रियतम!
चञ्चल-सा सङ्गम था उसका श्यामा तरङ्गिणी से, प्रियतम!
उस वन के दक्षिण में रहकर कल-कल करता, हँसता, प्रियतम!
पावस में भी उसकी धारा मुक्ता बिखेरती थी, प्रियतम।।१०३।।

उस पर्वतसे एक छोटा-सा चञ्चल झरना निकला था जो आगे जाकर यमुनामें मिल जाता था। यह झरना उस वनके दक्षिणमें कल-कल करता रहता था और वर्षा ऋतुमें भी उसका जल मोती-सा निर्मल बना रहता था।।।१०३।।

पगडंडी सभी दिशाओं में सीधी-टेढ़ी जाती, प्रियतम!
रमणीय तृणों से, गुल्मों से हो जाती लुप्त कहीं, प्रियतम!
सौरभ के दानी पुष्पों से लोभित होकर भौंरा, प्रियतम!
गा-गाकर था उड़ता, करता गुञ्जित अरण्य को, हे प्रियतम।।१०४।।

उस वनमें सभी दिशाओंमें सीधी-टेढ़ी पगडंडियाँ थीं जो कहीं-कहीं मनोहारी घास तथा लताओंसे अदृश्य-सी हो जाती थीं। इस वनमें भँवरे सुगन्धित पुष्पोंसे मोहित होकर अपने मधुर स्वरसे वनमें गुञ्जार किया करते थे।।।१०४।।

पक्षी- समूह का कलरव था सङ्केत दान करता, प्रियतम!
काननवासिनी तरुणियों को, रस पाठ पढ़ाता था, प्रियतम!
जीवन की धारा किधर मुड़े, भावी क्या है किसकी, प्रियतम!
सच्चा प्रतीक इसका वह था, आदर वे सब करतीं, प्रियतम॥१०५॥

पक्षी उस वनमें रहने वाली युवतियोंको अपने कलरवसे (प्रियतमकी उपस्थितिका) सङ्केत दे देते थे और उन्हें रसका पाठ पढ़ाया करते थे। उस (पक्षीसमूहके) कलरवसे ही उन्हें पता चल जाता था कि आज किस (लीलामें) किस भूमिकाका निर्वाह करना है। उनका यह रव उस दिनकी लीलाका सच्चा प्रतीक हुआ करता था अतः वे सब उसका बहुत आदर करती थीं।

उस वन के किसी चतुष्पद में हिंसा की वृत्ति न थी, प्रियतम!
दिन-रात परस्पर निर्भय वे सुख से घूमा करते, प्रियतम!
उनमें मुनियों की दृष्टि अहो! थी स्वतः उतर आयी, प्रियतम!
मानो एकात्मभाव मनमें वे लिये हुए सब थे, प्रियतम॥१०६॥

उस वनके किसी भी चौपायेमें हिंसाकी वृत्तिका नितान्त अभाव था और सभी पशु एक दूसरेसे निर्भय रहकर सुखसे उस वनमें भ्रमण किया करते थे। उन सभी पशुओंमें अपने आप मुनियोंकी-सी दृष्टि उतर आई थी और सभी एक दूसरेमें अपने आपको ही अनुभव किया करते थे।

जो दरी एक-से-एक बढ़ी शोभा में गिरि की थी, प्रियतम!
उसमें वे जब करने लगते विश्राम आँख मूँदे, प्रियतम!
उनकी नीरवता अचपलता सञ्चारित कर देती, प्रियतम!
पूरी अटवी के प्राणों में मुद्रा समाधि जैसी, प्रियतम॥१०७॥

उस गोवर्धन पर्वतमें एक-से-एक बढ़कर सुन्दर गुफाएँ थीं। उनमें जब वे पशु विश्राम करने लगते थे तो उनकी आँखें मुँद जाती थीं और उनकी निस्तब्धता तथा पवित्रताका अभाव पूरे वनको ही समाधिस्थ कर देता था।

उस ओर शैल के कण-कण में मानो चेतनता थी, प्रियतम!
वह खड़ा सतत देखा करता ऊँचा सिर किये हुए, प्रियतम।
क्या है उस वन में, कहाँ किसे क्या आवश्यकता है, प्रियतम!
फिर वहीं खड़े रहकर ही वह सबको सँभाल लेता, प्रियतम॥१०८॥

दूसरी ओर उस पर्वतका कण-कण मानो सजीव था और ऊँचा सिर किये सतत यह देखा करता था कि वनमें किसे, कहाँ और किस वस्तुकी आवश्यकता है और वह वहीं खड़े-खड़े ही सबको सँभाल लिया करता था।

अक्षत तो एक ओर रहती वह बीरबधूटी भी, प्रियतम!
फिर भी था यथासमय देता सबको आहार, भला, प्रियतम!
जिसकी जिस पर चलती रुचि थी, उसके समीप रखता, प्रियतम।
उसका इच्छित फल और उसे सुख से वह भर देता, प्रियतम।१०९।

उस वनमें निवास करने वाली छोटी-से-छोटी वीरबहूटी तकको भी आघात पहुँचाये बिना यथासमय वह सभीको इच्छित आहार दे दिया करता था। जिसकी जो रुचि हुआ करती थी उसके अनुसार उसकी वाञ्छित वस्तु वह उसके समीप रख देता था और उसे सुखसे भर देता था।।।१०९।।

वह करे प्रौढ़जनगण का ही आदर, यह बात नहीं, प्रियतम!
शिशु तक को नीलम-लाल और पुखराज राशि देता, प्रियतम!
समता, धीरता, प्यार-वितरण निरुपम था शैल लिये, प्रियतम!
उसके दृग में ही आँख मिला वनका वह चित्र लिखूँ, प्रियतम।।११०।।

वह शैलराज केवल बड़ी आयुके लोगोंका आदर करता हो,- यह बात नहीं थी अपितु शिशुओंतकके मनोरञ्जनके लिये उन्हें नीलम, पुखराज और लाल आदि रत्न देता था। उस पर्वतराजकी समता, धीरता और प्यार-वितरणकी कहीं कोई तुलना नहीं थी । और अब उसकी ही आँखोंसे आँखें मिलाकर मैं उस वनका यह वर्णन लिखने चली हूँ।।।११०।।

ललिता-कुञ्जका वर्णन

सभी शास्त्रोंमें एक मतसे परात्पर सच्चिदानन्दघन भगवान्की तीन शक्तियोंका वर्णन है। इनमें प्रथम हैं – संवित्शक्ति, जिसे चित्शक्ति भी कहते हैं; दूसरी हैं - सन्धिनीशक्ति जो चिन्मय भगवद्धामस्वरूपा हैं; एवं तीसरी सर्वप्रधान शक्तिका नाम है – ह्लादिनी । वैसे तीनों शक्तियाँ परस्पर एक दूसरेमें ओतप्रोत हैं, किन्तु इनका पृथक्-पृथक् नामकरण इनके प्रधान भावको लेकर है। उदाहरणस्वरूप संविद्रूपा चिच्छक्तिमें आनन्द एवं सत्ता दोनों ही संयुक्त हैं, क्योंकि संवित्में आनन्द एवं सत्ता नहीं हो तो उसका अस्तित्व ही नहीं रहे। अतः संवित्शक्तिमें भी आनन्द एवं सत्ताके रहनेपर भी प्रधानतया संवित् होनेसे उसे स्वतंत्र संविद्शक्ति – ऐसा नाम दिया गया है। इसी प्रकार सन्धिनी एवं ह्लादिनी शक्तियोंको भी समझना चाहिये।

परात्पर परब्रह्म सर्वोत्कृष्ट माधुर्य-प्रधान ह्लादात्मा भगवान्का पूर्णावतार ह्लादिनी नामक आनन्दमयी प्रेमशक्तिके निमित्तसे ही होता है। ये ह्लादिनीशक्ति श्रीमती नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधारानी हैं और इनके प्रियतम ह्लादात्मा नित्यनिकुञ्जेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं। समस्त गोपीजन इन ह्लादिनीशक्तिकी ही अनन्त विभिन्न कायव्यूहस्वरूपा प्रतिमूर्त्तियाँ हैं। इन गोपीजनोंमें अपने स्वयंका न तो कहीं कोई स्वतंत्र अहंगत सुख होता है, न ही इनकी भगवती राधासे पृथक् कोई सत्ता ही होती है। मात्र भावजन्य भिन्नत्व होनेके कारण ही इनका नाम-रूप राधासे भिन्न है, अन्यथा ये महाभावसिन्धु-स्वरूपा श्रीमती राधारानीकी ही ऊर्मियाँ हैं। इन गोपीजनोंकी प्रत्येक चेष्टा स्वाभाविक ही प्रिया-प्रियतम-सुखसेवार्थ ही होती है और इन युगल दम्पतिके मिलन-सुखकी साधनाके अतिरिक्त इनका अन्य कोई उद्देश्य ही नहीं होता। इन गोपीजनोंमें प्रमुख – अष्ट सखियोंमें प्रधान सिरमौर श्रीललिता हैं। ये ललिता ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाकी प्रधान कायव्यूहरूपा तो हैं ही, इनका एक रूप संवित्शक्ति-प्रधान भी है। जहाँ ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा होनेसे ये खण्डिता भावकी प्रतिनिधि सखी हैं, वहीं संवित्शक्ति-प्रधानरूपा होनेसे ये प्रिया-प्रियतम राधामाधवके समग्र माधुर्यरस-प्रधान लीलाओंकी सूत्रधार भी हैं। इस प्रकार इनका द्विविध तादात्म्य है – प्रथम एवं प्रधानतया महाभावस्वरूपिणी ह्लादिनीशक्ति श्रीमती राधारानीके कायव्यूहत्वसे एवं साथ-ही-साथ प्रासङ्गिकरूपमें सर्व-लीला-संरचना एवं सम्पादनकर्त्री संवित्-प्रधान अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया महादेवी त्रिपुरसुन्दरीसे। श्रीराधा-हृदयसे अखण्डरूपसे जुड़ी हुई अनन्त धमनियोंकी तरह ही ये श्रीललितादेवी राधा-हृत्सरोवरसे निरन्तर प्रेमरस लेती हैं, साथ ही उस रसको सर्वत्र फैलाती हैं, एवं पुनः उसी रसमें अपना विशिष्ट खण्डिता-महाभाव मिश्रणकर उसे राधा-हृदयमें उँडेल भी देती हैं।

खण्डिता-भाव

जैसा कि पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाने अनेक वार उल्लेख किया है कि नित्योच्छलित श्रीराधामहाभाव-सिन्धुमें ऊँची-नीची, छोटी-बड़ी विविध तरंगें उठती रहती हैं। इनमें मुख्यतया आठ दिशाओंसे आठ भावतरंगें सदैव ही ज्वाररूपमें उठती हैं। इन अष्ट तरंगोंमें एक है - खण्डिता महाभावकी ज्वारसदृश उत्तुंग तरंग, जो प्रायः राधाकुण्डके पूर्वी दिशावाले घाटसे उमड़ती है, जहाँ सखी ललिताका निकुञ्ज है। वैष्णवजन सदा ध्यान रखें कि श्रीमती राधारानीमें एवं उनके कुण्डमें स्वरूपतया कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सखी ललिता एवं उनके निकुञ्जमें भी कहीं कोई भेद नहीं है। प्राकृत जगत्में भूमि, वन, निकुञ्ज जड़ होते हैं एवं व्यक्ति चेतन। किन्तु इस अप्राकृत चिन्मय लीलाजगत्में निकुञ्ज एवं निकुञ्जेश्वरी दोनों ही एक भावसमूहकी अभिव्यक्ति होनेसे अभिन्न ही हैं। खण्डिताभावकी मूर्त्तिमान्स्वरूपा श्रीललिता श्रीकृष्णाह्लादिनी श्रीमती राधारानीके सच्चिदानन्दमय दिव्यवपुमें अधरोंकी लालिमाके रूपमें नित्य विराजित रहती हैं। **सङ्केतका अतिक्रमण करनेवाले प्रियतम कान्तको अति विलम्बसे आतेहुए देखकर जो प्रियतमा कान्ता रोषाकुला और कुपित हुई दीर्घ-निःश्वासत्यागिनी होती है, उसे खण्डिता कहते हैं। खण्डिताभावापन्न होनेपर अतिशय रोषाकुला श्रीमती राधाके अधर फड़कने लगते हैं, अधरोंका रोषाकुल होकर फड़कना ही खण्डिताभावापन्न ललितारानीका स्वरूप है, क्योंकि श्रीराधाके अधर ही श्रीललिताकी नित्य स्वरूपस्थिति हैं।**

श्रीललिताकी गोरोचनके समान मनोहर कान्ति है। ये मयूरपिच्छके वर्णकी विचित्र साड़ी पहनती हैं। इनके अधिकारमें प्रिया-प्रियतमकी ताम्बूल-सेवा करना है। ये सब सखियोंकी गुरुरूपा हैं। इन्हें सदैव यही दिव्य आवेश रहता है कि मेरी वय चौदह वर्ष, तीन माह एवं बारह दिनकी है। इनके कुञ्जका वर्ण भी इनके वस्त्रोंके समान ही मयूर-पिच्छाभामय है।

सखी ललिताका विशुद्ध माधुर्यमय खण्डिताभाव-विभूषित रूप

तरु से रूठी-सी लता जहाँ अवनी पर थी फूली, प्रियतम!
द्रुम कर-पल्लव से छू उसकी बाँहें झुककर कहता, प्रियतम!
प्रेमिल आँखों का ही भ्रम है, थी छाया ही उरमें, प्रियतम!
इन शशि सुमनावलिकी झलमल रह-रहकर जो करती, प्रियतम।।१११।।A

वहाँ धरणीपर फूली हुई लता वृक्षसे रूठी हुई-सी प्रतीत होती थी। वृक्ष अपनी छोटी-छोटी डालियोंको झुकाकर अपने हाथोंसे लताकी भुजाओंको छूकर कह रहे थे कि मेरे तनमें तुम्हें जो सुन्दर पुष्प झलमल करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वह तुम्हारी मात्र प्रेममयी दृष्टिका ही भ्रम है, वस्तुतः तुम्हारी छाया ही मेरे हृदयमें प्रतिबिम्बित हो रही है।।१११क।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

ललिताकुञ्जके प्रत्येक वृक्ष एवं उनसे लिपटे लता-जालोंमें भी पवित्रतम खण्डिताभावकी धारा प्रवाहित हो रही है– उपर्लिखित पङ्क्तियाँ यही झलका रही हैं। यहाँका प्रत्येक द्रुम रसिकशेखर ब्रजेन्द्रनन्दनका प्रतीक बना अपने सम्मुख ही रूठी हुई-सी अवनीपर फूली अपनी प्रिया श्रीराधारूपा लताकी बाहें अपनी छोटी-छोटी डालियोंरूपी भुजाओंको झुकाकर उनसे उसे संस्पर्शितकर कह रहा है – 'प्रिये ! मेरे रत्नमय तनेमें (हृदयदेशमें) तुम्हें जो सुन्दर पुष्प (दूसरी नायिकाके रतिचिह्न) झलमल करते (प्रकट) दिखाई दे रहे हैं, वस्तुतः तुम्हारी प्रेममयी आँखोंका (दृष्टिका) यह भ्रम भर है, वस्तुतः मेरे नीलमणिके समान तेजयुक्त हृदयदेशमें तुम्हारे मुखकी छवि (छाया) ही झलमल प्रतिबिम्बित हो रही है, जिसे तुम अपने निरे प्रेमजनित भोलेपनके कारण अन्य नारीके रतिचिह्न मान रही हो।

वस्तुतः यह लीलाजगत्‌का रस-रहस्य है कि श्रीमती राधारानीको आरसीमें भी कभी अपना मुख प्रतिबिम्बित होता दृष्टिगोचर नहीं होता है। सखियाँ श्रीराधारानीका अपूर्व शृंगार सम्पादितकर उनकी उस शृंगार छविपर न्यौछावर होती हुईं जब उन्हें उनकी अपनी ही मुखछवि आरसी (दर्पण) में दिखाती हैं, तो उन्हें उनके प्रियतम नीलमणिकी ही छवि दिखती है – अपनी स्वयंकी नहीं। अतः उनकी स्वयंकी मुखाकृति कितनी सुन्दर है, यह उन्हें कभी अनुभव होता ही नहीं । महाभावगत दैन्यमें वे अपनी सखियोंको तो अपूर्व सुन्दरी समझती ही हैं, एवं स्वयं अपनेको सबसे कुरूपा ही मानती हैं। उन्हें अपने स्वरूपकी वस्तुतः सुन्दर छवि एकमात्र उनके प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयदेशमें ही प्रतिबिम्बित होती दिखती है। अतः वे प्रेमावेशमें उस अपनी ही छविको कभी-कभी भावावेशमें किसी अन्य नायिकाकी छवि मान खण्डिता-भावाभिभूत हो उठती हैं। यह समझनेकी वस्तु है कि ललितारानी खण्डिताभावकी मूर्ति होते हुए भी उनमें सदैव ही यह भावोन्मेष स्वयंको लेकर उत्पन्न नहीं होता, यह भावोन्मेष राधारानीके प्रति रसराज श्रीकृष्णके व्यवहारसे ही उद्भूत होता है।

यह भी ध्यान रहे कि श्रीमती राधारानीके चिन्मय खण्डिताभावके सौन्दर्य, माधुर्य एवं पावित्र्यको प्राकृत शब्दावलीमें व्यक्त करनेकी सामर्थ्य है ही नहीं। प्राकृत शब्दावलीका पाठक प्राकृत अर्थ ही निकालेंगे, अतएव शब्दोंमें निहित चिन्मयत्वको व्यक्त करनेकी सर्वथा सामर्थ्य नहीं होनेके फलस्वरूप वैष्णव पाठकोंसे क्षमा ही माँगी जा सकती है।

वस्तुतः इसके चिन्मयत्वका अनुभव तो मात्र श्रीमती राधारानीकी कृपा एवं अन्याभिलाषा-रहित निरन्तर पवित्रतम प्रीति-साधनासे ही संभव है। बस, इतनी ही वर्जना करना है कि इसे लौकिकावेशसे समझनेकी भूल नहीं करें।

आगे पू.गुरुदेव अपने काव्यमें श्रीमती ललिताके एकादश अन्य स्वरूपोंका भी वर्णन करते हैं।

D ललिता का प्रच्छन्न रससम्पुटित खण्डिता की छाया लिये महामाया रूप

यत्र उज्ज्वल सत्वमयी अमृता निम्बं समाश्लिष्य प्रसरति।।११२।।B

यहाँ गुरुचकी लता नीमके वृक्षसे लिपटी हुई फैली है।।११२।।ख

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यह पूर्वतः ही उल्लेख किया जा चुका है कि श्रीमती ललितासखी संवित्‌शक्ति एवं ह्लादिनीशक्ति-प्रधान होनेके कारण रसात्मक-भावापन्न होनेके साथ-ही-साथ प्रासङ्गिकरूपमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी सर्वलीलाओंकी संरचना एवं सम्पादनकर्त्री भी हैं। पू.गुरुदेव इनके अन्य एकादश रूपोंका भी वर्णन इस कुंजवर्णनमें सङ्केतके रूपमें दे रहे हैं। श्रीललिताकुंजमें जहाँ परमोज्ज्वल सत्वमयी अमृतलता (गुरुचकी बेलि)के नीमके वृक्षसे समालिङ्गित होना दृष्टिगोचर होता है, उनका वह प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिता भावकी छाया लिये महामायारूप है।

ललिताका प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये जगज्जननी रूप

वटं शंखालु इत्याख्या वल्लरी ।।११३।।D

यहाँ वटवृक्षसे लिपटी हुई शङ्खालुकी लता है।।११३।।ग

E ललिता का प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिता की छाया लिये योगमाया रूप

करीराणां मूलदेशे श्यामाकतृणराशिः।।११४।।E

यहाँ कररी (टेंटी) की जड़के पास श्यामक घास उगी हुई है।।११४।।घ

ङ- ललिता का जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-भावापन्न रूप ॥

कामिनी प्रजापति की क्रीड़ा वनदेवी से कहती, प्रियतम!
रजनीगन्धा अपना अनुभव शुचि गन्धवाह से, हे प्रियतम!
थी बात कुमुदिनी बतलाती हिमकर से उस अलि की, प्रियतम!
जो मत्त हुआ बँधकर सुख से था सुप्त कोष में, हे प्रियतम॥ ११५॥ङ

वृन्दादेवीसे कामिनीकी लता प्रजापति(तितली)के (एक पुप्पसे दूसरे पुष्पका रस लेनेके स्वभाव) खेलके विषयमें कह रही है और रजनीगन्धा अपना अनुभव समीरको सुना रही है। कुमुदिनी चंद्रमासे उस भँवरेका वृत्त बता रही है जो उसका रस पीनेके कारण मदमत्त होकर सुखपूर्वक उसके कोषमें सो गया था।।११५।।ङ

ललिताका जागृत्-स्वप्न-सुषुप्तिसे अतीत तूर्य तत्त्वात्मक रूप

सूर्यमुखी स्वात्मवृत्तं अंशुमालिनं प्रति विज्ञापयति ॥ ११६॥AA

यहाँ सूर्यमुखी पुष्प अपनी गाथा सूर्यको सुनाता है।।११६।।च

BB- ललिता का गङ्गा यमुनात्मक रूप ॥

अमला प्रवाहिणी म्लान एक पति को थी खोज रही, प्रियतम!
जब मिला नहीं, तब वह दीना पीछे की ओर मुड़ी, प्रियतम!
पर दरी महीधर की बोली 'री! यहाँ कृष्णवर्णा,' प्रियतम!
'दूती है तुमको जोह रही,' आ मिली अतः उससे, प्रियतम ॥ ११७॥BB

मानसी-गङ्गा खिन्न चित्तसे अपने पतिको खोज रही है । उसके न मिलनेपर वह पीछेकी ओर मुड़ी और उसे गिरिराजकी गुफाने बतलाया कि तुम्हारे प्रियतमकी दूती तुम्हारी बाट देख रही है, यह सुनकर वह यमुनाजीसे जा मिली है।। ११७।।छ

DD-ललिता का विशुद्ध रस सम्पुटित प्रच्छन्न नवदुर्गात्मक रूप ॥

चन्दनादिनवतरुनिर्मितनवनिकुञ्जावलि: ॥११८॥DD

यहाँ चन्दन आदि नवीन नौ वृक्षोंसे निर्मित नव कुञ्ज है।।११८।।ज

GG ललिता का विशुद्ध रस सम्पुटित प्रच्छन्न दशविद्यात्मक रूप ॥

पनसादि दशवृक्षैर्विरचित दशकुञ्जपङ्क्तिः॥ ११९॥GG

यहाँ कटहल आदि दस वृक्षोंसे निर्मित दस निकुञ्जोंकी पङ्क्ति है।। ११9।।झ

ललिताका विशुद्ध रस-सम्पुटित भगवती महात्रिपुरसुन्दरी रूप

यत्र कालरूपो रविरपि कल्पद्रुमस्य छायायां प्रतिष्ठितायाः
देवी प्रतिमायाः पादपीठं उपाश्रितो वर्तते ॥१२०॥A

यहाँ कल्पवृक्षकी छायामें प्रतिष्ठित देवी (राधा)की प्रतिमाकी उपासना कालका नियामक सूर्य करता है।।१२०।।ञ

BB ललिता की विशुद्ध रस सम्पुटित भगवत्ता ।।
तस्य उज्ज्वल नीलमणिवत् प्रकाशदानम् ॥१२१॥BB

इसका युगपत् उज्ज्वल तथा नीलमणि जैसा प्रकाश है।।१२१ट।।

DD ललिता का विशुद्ध रसमय श्रीमातृत्व ।।
श्रीफलकुञ्जं प्रति प्रदक्षिणत्वाचरणं च ॥१२२॥DD

यहाँ बेल (श्रीफल)के वृक्षोंसे निर्मित कुञ्जकी परिक्रमा सूर्य कर रहा है।।१२२ठ।।

विशाखाकुञ्जका वर्णन

विशाखाजी स्वाधीनभर्तृकाभावापन्ना श्रीराधारानीकी कायव्यूहरूपा सखी हैं। **प्रियतम कान्त जिस कान्ताके आधीन होकर कुंजमें वास करते हैं, उस कान्ताको स्वाधीनभर्तृका कहते हैं।** विशाखा इस भावकी मूर्तिमान स्वरूपा हैं।

श्रीराधारानीके केशोंकी स्निग्धताके रूपमें ये उनसे सदा संलग्न रहती हैं। इनका कुंज श्रीराधाकुण्डके ईशानकोणमें हैं। मानो सौदामिनी-समूह एकत्र हो, ऐसा इनकी अंगकान्तिका वर्ण है, तारकाश्रेणीकी सुन्दर कान्ति जिनकी मनोहर साड़ीमें भरी हुई है, सुगन्धित द्रव्य - चन्दन, केसर एवं कस्तूरी अगुरु आदिका लेप प्रिया-प्रियतमको अर्पित करना इनकी प्रधान सेवा है। चरित्र एवं गुणमें ये श्रीराधारानीके समान हैं। निकुंजमें इनकी वय सदैव चौदह वर्ष, दो मास एवं पन्द्रह दिन रहती है। इनके कुंजसे भी तारकाश्रेणीके समान छटा छिटकती रहती है।

कुसुमित कचनार, अगस्त्य तथा सहिजन, अशोक के, हे प्रियतम !
गुच्छों से थे सुन्दर उरोज भूषित थलपद्म के, प्रियतम !
धरणी के वक्षः स्थल पर था वह पारिजात लिखता, प्रियतम !
कुछ चित्र-विचित्र मनोहर, विधु था देख मुग्ध जिसको, प्रियतम ॥१२३

जहाँ स्थलकमलद्वय (वक्षस्थल)पर खिले हुए कचनार, अगस्त्य, सहिजन तथा अशोकके पुष्पोंके गुच्छे सुशोभित हो रहे हैं और जहाँ धरतीपर हरसिङ्गार (पारिजात) के पुष्प एक विचित्र सुषमाका विस्तार कर रहे हैं और जिन्हें देखकर चन्द्रमा भी मोहित हो गया है; वह विशाखाकुञ्ज है।।१२३।।

यत्र वृक्षाणां निसर्गतःएव वल्लीदासत्वाचरणम् ॥१२४॥

जहाँ वृक्षोंका स्वभावतः लताओंके प्रति दास्य भाव है।।१२४।।

आम्रनिकुञ्जावलिः ॥१२५॥

जहाँ आमके निकुञ्ज हैं।।१२५।।

बीजपूरकुञ्जपंक्तिः ॥१२६॥

जहाँ बिजोरेकी पङ्क्तिसे निर्मित कुञ्ज हैं।।१२६।।

कदली वनम् ॥१२७॥

जहाँ केलेका वन है।।१२७।।

दाड़िमनिकुञ्जावलिः॥१२८॥

जहाँ अनारके वृक्षोंसे निर्मित निकुञ्जश्रेणी है।।१२८।।

कन्दुक क्रीड़ास्थली ॥१२९॥

जहाँ (प्रिया-प्रियतम)के गेंद खेलनेका स्थान है।।१२९।।

मणिमय विश्रामगृहं।।१३०॥

जहाँ मणियोंसे निर्मित विश्रामगृह हैं।।१३०।।

चित्राकुञ्जका वर्णन

चित्राकुंज श्रीराधाकुण्डके पूर्व दिशाकी ओर है। महाभावकी जो विलक्षण उत्तुङ्ग लहर पूर्व दिशासे उठकर सारे कुंजमें परिव्याप्त हो उठती है, उस दिवाभिसारिका भावकी मूर्तिमती स्वरूपा हैं – श्रीराधारानीकी कायव्यूहरूपा चित्रारानी। जहाँ चित्रासखी ह्लादिनी-प्रधान-स्वरूपा हैं, वहीं उनका सन्धिनीशक्तिप्रधान-स्वरूप चित्राकुंज है। चित्राकुंज एवं चित्रासखी वैसे लीलामें तो भिन्न आकृति प्रतीत होते हैं, किन्तु दोनोंमें ही भावधाराकी अभिव्यक्ति एक एवं अभिन्न ही रहती है। इसीलिये चित्राकुंज भी सुचिक्कण काचसमूहके समान प्रभाशाली है एवं चित्रासखीकी साड़ीका वर्ण भी सुचिक्कण काचप्रभ है। इनके अङ्ग केशर-जैसी कमनीय शोभायुक्त हैं। निकुंजमें प्रिया श्रीराधारानीको वस्त्र पहनानेकी सेवा इनके ही द्वारा होती है। इनका नित्य निवास राधारानीके कर्णकुण्डलोंमें रहता है। इनकी नित्य वय निकुंजमें चौदह वर्ष, एक मास, उन्नीस दिन रहती है। **कान्त-सुखार्थ जो कान्ता स्वयं अभिसारिका हो अथवा कान्तको अभिसारित करे, उसे अभिसारिका कहते हैं। श्रीचित्रारानी दिवाभिसारिका भावकी मूल स्रोतस्विनी हैं। अभिसारिका भावके प्रमुख दो भेद हैं - दिवाभिसारिका एवं निशाभिसारिका। निशाभिसारिकाके भी दो भेद हैं – १. कृष्णाभिसारिका एवं शुक्लाभिसारिका।**

इसे पुनः स्मरण रखें कि चित्रारानीमें भी ये सब भाव स्वयंको लेकर उत्पन्न नहीं होते अपितु सभी भावोन्मेष प्रिया श्रीराधामें ही उत्पन्न होते हैं और उन्हींकी लहरियोंकी ही ये प्रतिनिधि होती हैं।

दिवाभिसारिकाभावसे भरा भगवती चित्रारानीका निकुंज

लजवन्ती करती थी छिपकर अभिसार तरणि रहते, प्रियतम!
मधुपावलि का उड़ना लखकर थी भ्रमित हुई उससे, प्रियतम!
हैं, एक नहीं, शत लक्ष बने मेरे प्राणाधिक वे, प्रियतम!
मूँदी उसने जब आँख, लगा, वे छोड़ गये मुझको, प्रियतम।।१३१॥

-जहाँ दिन रहते छुईमुई छिपकर अभिसार करती है और भँवरोंका उड़ना देखकर भ्रमित हो जाती है तथा उसे यह भान होने लगता है कि प्राण प्रियतमने करोड़ों रूप धारण कर लिये हैं। पर जब उसने आँख मूँदी तो उसे प्रतीत हुआ कि प्रियतम मुझे छोड़कर अन्यत्र चले गये हैं।।१३१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

लजवन्ती लता छुई-मुईको कहते हैं। किसीके भी संस्पर्श करनेपर यह मुरझा जाती है एवं दूरसे दर्शन करनेमें बहुत ही सुन्दर दृष्टिगोचर होती है। यह दिवस रहते ही भ्रमरोंसे अभिसार करती है क्योंकि इसके चतुर्दिक् भ्रमरोंका गुञ्जन होता रहता है। अपने चतुर्दिक् असंख्य भ्रमरोंको उड़ता देखकर यह भ्रमित होजाती है तथा इसे यह भाव होने लगता है कि मेरे प्राणप्रियतम मेरे प्रेमवश करोड़ों रूपोंमें अभिव्यक्त हुए मेरे चतुर्दिक् सर्वत्र मँडरा रहे हैं।

अपने प्रियतमको प्रेमवश असंख्य रूपमें अभिव्यक्त पाकर यह अपने नेत्र मूँद लेती है। नेत्र मुँदनेसे इसे निशाभ्रम (अन्धकारका अनुभव) होने लगता है। यह सोचने लगती है कि मेरे प्रियतम तो मुझे त्यागकर अन्यत्र चले गये। क्योंकि नियमतः वे इसके पास दिनमें ही आते हैं। इस भाव–विपर्ययसे यह व्याकुल हो उठती है।

शतपत्रवनम् ॥१३२॥

यहाँ सौ दलवाले कमलोंका वन है।।१३२।।

तुलसीकाननम् ॥१३३॥

यहाँ तुलसी वन है।। १३३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

चित्राकुंजमें शतदल (सौ पत्रोंवाले) कमल खिले रहते हैं। यह ध्यान रहे कि कमल सदैव दिनमें रविके प्रकाशमें ही विकसित होते हैं। जैसे ही रवि अस्ताचलगामी हुआ कमल अपने दल संपुटित कर लेते हैं। एवं पुनः रविके उदय होनेपर ही कमल खिलते हैं। इसी प्रकार चित्रारानीका मुखकमल भी दिन होनेपर ही अपने प्रियतमके आगमनकी आशामें प्रसन्नतासे सुविकसित हो उठता है। यही इस कुंजस्थलमें शतपत्रवन होनेका भाव है।

यही भाव 'तुलसीवन' होनेका भी है। तुलसी भी रविके प्रकाशमें ही खिली रहती है। रात्रि होते ही इसके पत्र मुरझा जाते हैं। पुनः दिन होते ही विकसित हो उठते हैं।

दूर्वाक्षेत्रम् ॥१३४॥

जहाँ दूबके मैदान हैं।। १३४।।

पूगपङ्क्तिः ॥१३५॥

सुपारीके वृक्षोंकी पङ्क्ति हैं।। १३५।।

तालावलिः ॥१३६॥

यहाँ तालके वृक्ष हैं।।१३६।।

खर्जूरश्रेणी ॥१३७॥

जहाँ खजूरके पेड़ोंकी पङ्क्ति है।।१३७।।

कर्णिकारवनम् ॥१३८॥

जहाँ कनेरके वन हैं।। १३८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

दूर्वा, सुपारीके वृक्ष, तालके वृक्ष, खजूरके वृक्ष एवं कर्णिकार पुष्प – ये सभी दिनमें ही प्रसन्न रहते हैं। सुपारीके वृक्ष, खजूरके वृक्ष, तालके वृक्ष – सभी उष्ण कटिबन्ध प्रदेशोंमें ही उगने वाली प्रजातियाँ हैं। ताल वृक्षमें तो दिन उगते ही ताड़ी नामक पौष्टिक रसकी उत्पत्ति होती है। यह ज्यों-ज्यों दिन एवं सूर्यका ताप प्रखर होता है, अधिकाधिक मादक होता जाता है। सूर्यतापके प्रखर होनेके पूर्व निरे प्रभातमें निकले रसको 'नीरा' कहते हैं जो सबसे न्यून मात्रामें मादकता लिये होता है।

इन्दुलेखा-भावका प्रकाश

श्रीमती राधारानीके स्वरूपभूत राधाकुण्डके आग्नेय कोणमेंसे जो प्रोषितभर्तृकाभाववाली उत्तुंग तरंगें विशदरूपसे उद्वेलित होती है, उसीकी साकार स्वरूपा हैं -- श्रीमती इन्दुलेखाजी। **जिसका प्रियतम कान्त दूर देशमें हो, उस वियुक्ता कान्ताको प्रोषितभर्तृका कहते हैं।** प्रियतमप्राणा श्रीराधारानीके पयोधरोंपर शोभायमान प्रियतम श्रीकृष्णके नखोंके क्षतचिह्न ही लीलाराज्यमें श्रीमती इन्दुलेखाका स्वरूप हैं।

यहाँ पुनः पाठकोंकी सावधानीके लिये उल्लेख कर देता हूँ – 'पयोधरोंमें नखक्षत' इस शब्दावलीके अर्थरूपमें तो पाठकोंकी यही अवधारणा होगी कि यह नखक्षत नरनारीके परस्पर काम-विलासरमणसे उत्पन्न कुत्सित रतिचिह्न मात्र है। किन्तु यथार्थमें यह सब सर्वथा ही अलौकिक है।

पाठकोंको यहाँ सदैव ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव पञ्चभूतोंसे निर्मित प्राकृत देह सर्वथा नहीं हैं। प्राकृत मानव-मानवीका शरीर त्रिगुणोंका विकार, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधिजन्य अनेक क्लेशों एवं द्वन्द्वोंसे भरा, रक्त-मांस, मल-मूत्र, कफ-पित्त, अस्थि-मज्जा एवं वीर्यकी उत्पत्तिका हेतु होता है। वीर्य-विकारके कारण ही रमण-रमणीजन्य कामेच्छाकी उत्पत्ति होती है। किन्तु प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके विग्रह तो पूर्ण सच्चिदानन्दमय चिन्मय विभु हैं। वे गुणातीत, लोकातीत, नियमातीत अप्राकृत होते हैं। उनकी लीला भी परम चिन्मय विशुद्ध रसमयी होती है। यह रस सच्चिदानन्दतत्त्वका परिपाक कन्द होता है। रसिकेन्द्रशेखर रसराज होनेसे ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको सच्चिदानन्दकन्द कहते हैं।

सभी शास्त्र एकमतसे उद्घोष करते हैं कि जो भी भगवान् श्रीराधा-माधवकी रसलीलामें प्राकृत भाव करते हैं एवं उनकी रस-चेष्टाओंको नर-नारीका मिथुन-विलास समझते हैं, एवं तदनुसार चिन्तन करते हैं वे घोर नारकीय यंत्रणाओंके भागीदार होते हैं।

वस्तुतः सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र-गत-प्राणा श्रीराधारानीके पयोधर स्वयं ही उनके हृदयगत पावनतम प्रगाढ़ कृष्णानुरागके छलकते कुम्भद्वय हैं। इन कुंभोंमें भरा अपार श्रीकृष्ण-प्रेम-सिन्धु ही छलककर नखक्षतोंके रूपमें बाहर उभर आया है। वस्तुतः इसे यथार्थरूपमें समझनेके लिये तो दिव्य भावचक्षु ही अपेक्षित हैं, जो मात्र प्रियतम श्रीकृष्णकी कृपासे ही प्राप्त होने संभव हैं।

श्रीइन्दुलेखाके कुंजकी आभा हरताल-जैसी है और ये दाड़िम पुष्पोंकी कान्तिवाली सुन्दर साड़ीसे सुभूषित हैं। ये सदा इतनी प्रसन्नमुखी रहती हैं कि ये अपनी मुखकान्तिसे चन्द्रकलाको भी पराजित कर देती है। ये प्रिया-प्रियतमको अपने नृत्यके द्वारा रिझाती हैं। इनकी आयु कुंजमें चौदह वर्ष, दो माह, बारह दिवस ही सदैव रहती है।

इन सभी सखियोंका यह शाश्वत स्वभाव है कि इनमें जन्मभाव होता है एवं तब क्रमशः शिशुत्व, बालापन, कौमार एवं पौगण्डवय-भाव होता है। पौगण्ड एवं कैशोरके उपरान्त इनके सभीके वयकी इति हो जाती है। फिर इनमें नित्य यही आवेश रहता है कि हम नित्यकिशोरीरूपमें इदमित्थं निश्चित वयशीला ही हैं। इसके उपरान्त इनकी वयोवृद्धि एवं क्षति दोनों स्थगित ही हो जाती हैं। श्रीमती इन्दुलेखाका कुंज भी दाड़िमप्रभ ही है।

पुनः यह स्मरण रहे कि श्रीमती इन्दुलेखामें श्रीमती राधारानीके भावोंका प्रवाह ही प्रवाहित रहता है, वे स्वयं तो मात्र श्रीराधाभावकी प्रोषितपतिकास्वरूपकी मूर्तिमान् प्रतिनिधि भर हैं। कायव्यूहरूपा होनेका अर्थ भी यही है कि इनमें श्रीमती राधारानीके ही प्राण सञ्चालित रहते हैं। ये मात्र दो देह, एक आत्मा एवं एकप्राणा हैं।

इन्दुलेखाकुञ्जका वर्णन

प्रोषितपतिका भावका प्रतीक

उन कुन्दबहिन के गालों पर थे कण न ओस के वे, प्रियतम!
मैं अङ्ग सजाकर यह अपना ठगती हूँ अपने को, प्रियतम!
वे आयेंगे, है सपना ही; यह टूटेगा क्षणमें, प्रियतम!
'है प्रेम दम्भ मेरा,' वह थी इस चिन्ता से रोती, प्रियतम॥१३६॥

शरद् ऋतुमें कुन्दके सफेद पुष्पोंपर दिखाई देने वाले ओसकण वस्तुतः इन्दुलेखाके अश्रुकण हैं जो यह मानती हैं कि अपना शृंगार करके अपने आपको ठग रही हूँ। मेरी यह धारणा कि प्रियतम आयेंगे केवल सपना मात्र है , जो क्षणभरमें टूट जायगा। मेरा प्रेमका दिखावा एक दम्भ मात्र है। इस चिन्तासे ही वह रोती रहती है।।१३९।।

आम्रातकावलिः।।१४०।।

जहाँ आमड़ेके अनेकों वृक्ष हैं।।१४०।।

तिन्तड़ीवनम्।।१४१।।

जहाँ इमलीका वन है।।१४१।।

करौंदाइत्याख्य द्रुमाः।।१४२।।

जहाँ करौंदे इत्यादिके वन हैं।।१४२।।

दमनकवनम्।।१४३।।

जहाँ सुगन्धित पत्तोंवाले दौनेका वन है।।१४३।।

वैजयन्तीकाननम्।।१४४।।

जहाँ देखनेमें सुन्दर परन्तु गन्धहीन वैजयंती पुष्पका वन है।।१४४।।

शिंशपाश्रेणी।।१४५।।

जहाँ पलाश वृक्षोंकी श्रेणी है।।१४५।।

उत्पलवनम्।।१४६।।

जहाँ रात्रिको खिलनेवाले कमलों (उत्पल)का वन है।।१४६।।

चम्पकलताकुञ्जका वर्णन

चम्पकलताजीका कुंज दक्षिण दिशामें होनेसे यह राधाकृष्ण-युगलकुण्डको संस्पर्शित करता है। श्रीमती चम्पकलताजीका भाव वासकसज्जाका है। **इनके कान्त श्रीकृष्ण ब्रजप्रदेशमें ही हैं, सुदूर विदेशगामी नहीं हैं। ऐसे कान्तकी प्रतीक्षा करती हुई, निजको एवं अपने निकुंजको जो सदैव सुसज्जित रखती हैं, अतः इनको रसिकगण वासकसज्जाकी मूल स्रोतस्विनी भावमूर्ति ही मानते हैं।** ये श्रीमती राधारानीके कण्ठकी सरसतामें से उत्पन्न हुई हैं, और यह सरसता ही इनका नित्य स्वरूप है।

इनके अंगोंकी आभा चम्पाके पुष्प-जैसी है। इनके वस्त्र नीलकण्ठ पक्षीके रंगके समान हैं। इनके हाथमें रत्नजटित चँवर रहता है और उसे प्रिया-प्रियतमपर डुलानेकी ही सेवा ये करती रहती हैं। सभी अन्य गुणोंमें ये विशाखाके समान ही हैं।

चम्पा पीले फूलों की थी साड़ी पहने गाती, प्रियतम !
वह राग, सुना था नहीं वहाँ जो कभी किसीने भी, प्रियतम !
मोहिनी शक्ति उसमें अवश्य कुछ भरी अनोखी थी, प्रियतम !
प्रणयी मिलिन्द था एक हुआ मिटकर विधान विधि का, प्रियतम।।१४७।।

चम्पकलता सखी जहाँ चम्पाके पीले फूलोंकी साड़ी पहने हुए आजतक कभी किसीको सुनाई न देनेवाला राग अलापती रहती है। इसमें अवश्य ही अनुपम मोहिनी शक्ति है जिसके कारण प्रकृतिके नियमका उल्लङ्घन करके भी एक भँवरा उससे प्रेम करने लगा था ; वही चम्पकलताका कुञ्ज है।।१४७।।

मधुकपङ्क्तिः ॥१४८॥

जहाँ महुएके वृक्षोंकी पङ्क्ति है।।१४८।।

गन्धराजवनम् ॥१४९॥

जहाँ गन्धराजका वन है।।१४९।।

किंशुकश्रेणी: ॥१५०॥

जहाँ किंसुक (गुलमोहर)की पङ्क्तियाँ हैं।।१५०।।

इङ्गुदीनिकुञ्जावलि: ॥१५१॥

जहाँ सुगंधित पत्तोंवाले इङ्गुदी वृक्षके बनेहुए कई निकुञ्ज हैं।।१५१।।

पाटलजम्बुद्रुमा: ॥१५२॥

जहाँ गुलाब तथा जामुन अथवा गुलाबजामुनके वृक्ष है।।१५२।।

मन्दारावलि: ॥१५३॥

जहाँ मदारके अनेकों वृक्ष हैं।।१५३।।

बर्बरीवनम् ॥१५४॥

जहाँ बर्बरीका वन है।।१५४।।

रंगदेवीकुञ्जका वर्णन

राधाकृष्ण-युगलकुण्डके नैऋत्य कोणसे जो उत्कण्ठिता भावकी उत्तुङ्ग लहर आती है और समूचे कुण्डको परिव्याप्त कर लेती है, उसकी मूर्तिमान् स्वरूपा श्रीरंगदेवीजी हैं। श्रीरंगदेवीजी श्रीमती राधारानीकी नीवीकी डोरमें एवं ग्रन्थिमें नित्य निवास करती हैं। इनके अंगोंकी छवि पद्मरागके समान है। ये विकसित जवाकुसुम-जैसी साड़ी पहनती हैं। ये अत्यधिक शील-सम्पन्न हैं। गुणीजनोंमें इनका वैशिष्ट्य है और चम्पकलताजीको भी गुणदृष्टिसे पराजित कर देती हैं। किसी विवशतावश कान्तके सङ्केतस्थलपर न आनेपर जो अत्यधिक उत्कण्ठित हो जावे उस भावको उत्कण्ठिता कहते हैं। इनके पिता शास्त्रोंमें धुरीण हैं और ये भी सर्वशास्त्रोंकी निष्णात पण्डिता हैं। बड़े-बड़े वेदान्तियों एवं महासिद्ध वेदान्त-परिनिष्ठोंकी बुद्धि भी इनके सम्मुख चकरा जाती है। इनकी वय निकुंजमें चौदह वर्ष, दो मास, आठ दिनकी ही रहती है। श्रीराधारानीकी लालान ये सदैव अनुस्यूत रहती हैं। इनका अपना स्वयंका भाव कुछ नहीं है, श्रीराधाके निमित्तसे ही इनमें असीम उत्कण्ठा होती है।

थी रंग बिरंगे वर्णों में मल्लिका खिली ऐसी, प्रियतम !
जो लुप्त बुद्धि कर देती थी नभमें उड़ते मुनि की, प्रियतम !
उनकी तो बात दूर, मोहित पालक वह था। उनका, प्रियतम !
ऐसा कि आज तक हाल नहीं कोई बतला पाया, प्रियतम ॥

जहाँ *रङ्ग बिरङ्गे* चमेली पुष्पोंकी शोभा ऐसी अनुपम है कि आकाशमें विचरण करनेवाले मुनियों (वेदान्तियों) की बुद्धिको भी कुण्ठित कर देती है। उनकी तो कौन कहे, जहाँ महासिद्ध वेदान्त-परिनिष्ठोंकी बुद्धि भी इतनी मोहित हो जाती है कि वे आजतक उसका हाल नहीं बतला पाये।।१५५।।

शमीसमूह:।।१५६।।

जहाँ शमी वृक्षोंका झुण्ड है।।१५६।।

आमलकद्रुमा:।।१५७।।

जहाँ आँवलेके वृक्ष हैं।।१५७।।

अर्कवनम्।।१५८।।

जहाँ आकके पेड़ोंका वन है।।१५८।।

नीपपङ्क्ति:।।१५९।।

जहाँ नीप वृक्षोंकी पङ्क्ति है।।१५९।।

शिरीषश्रेणी:।।१६०।।

जहाँ अत्यन्त कोमल शिरीष पुष्पोंके वृक्षोंकी पङ्क्ति है।।१६०।।

कपित्थकुञ्जावलि:।।१६१।।

जहाँ कैथेके कई कुञ्ज हैं।।१६१।।

जम्बीरवनम्।।१६२।।

जहाँ जम्बीरका वन है।।१६२।।

तुंगविद्याकुञ्जका वर्णन

श्रीराधाकृष्ण-युगलकुण्डके पश्चिमी भागसे जो उत्तुङ्ग एवं विशद लहर विप्रलब्धाभावकी उठती है उसकी मूर्तिमान्‌स्वरूपा श्रीतुङ्गविद्याजी हैं। **सङ्केत प्रदान किये जानेके पश्चात् भी कान्तके दैवात् नहीं आनेपर जो आन्तरिक अत्यधिक व्यथा एवं सन्ताप होता है, उस सन्तापभावको विप्रलंभ कहा जाता है।** श्रीमती राधारानीके करके कङ्कणोंमें इनका नित्य निवास है।

कर्पूर-चन्दननिर्मित कुङ्कुमके समान इनका वर्ण है। इनके कुंजका वर्ण कान्तिमान् पीत है। इनके पिता एवं ये दोनों ब्रजमें पाण्डित्यको लेकर सर्व प्रसिद्ध हैं। इनकी बुद्धिमत्ताका लोहा सभी सखियाँ एवं स्वयं प्रिया-प्रियतम भी मानते हैं। ब्रजमें इनका सर्वत्र सुयश है। प्रिया-प्रियतमको वीणावादन करके प्रसन्न करना इनकी कुञ्जमें प्रमुख सेवा रहती है। इनकी निकुंजमें नित्य वय चौदह वर्ष, दो मास, एवं बीस दिन रहती है। सत्य यही है कि जो भी महाभाग्यवान् महत्कृपावश श्रीराधाभावसिन्धुका कोई-सा एक कण पा लेता है, वही इन सभी सखियोंके दिव्य भुवन-पावन चरित्रके सम्बन्धमें यत्किञ्चित् ज्ञान कर पाता है। उसे भी उसके पात्रानुसार ही यह ज्ञान उपलब्ध होता है।

मालती-लता सद्योंपर थी फूली इठलाती- सी, प्रियतम!
सुनकर समीर की साँय-साँय उत्कंठित थी होती, प्रियतम!
वे ही होंगे, प्यारा जब पर था नहीं दीखता, हे प्रियतम!
वह बात झूमकर यूथी से करती रह-रहकर थी, प्रियतम।।१६३।।

जिस कुञ्जमें मालती लता फूलोंसे लदी हुई गर्वसे इठलाती रहती है और पवनकी साँय-साँय ध्वनि सुनकर उसे प्रियतमके आगमनका भ्रम हो जाता है। परन्तु जब उसे वे दृष्टिगोचर नहीं होते तो वह झूर-झूरकर जूहीसे बातें करने लगती है।।१६३।।

अश्वत्थश्रेणी:।।१६४।।

जहाँ पीपलके वृक्ष हैं।।१६४।।

प्लक्षवनम् ।।१६५।।

जहाँ प्लक्षके वन हैं।।१६५।।

तगर इत्याख्यद्रुमा:।।१६६।।

जहाँ तगर आदिके वृक्ष हैं।।१६६।।

सालावलि:।।१६७।।

जहाँ सालके वृक्षोंके झुण्ड हैं।।१६७।।

देवदारुवनम् ।।१६८।।

जहाँ देवदारका वन है।।१६८।।

भूर्जवनम् ।।१६९।।

जहाँ भोजपत्रके वृक्षोंका वन है।।१६९।।

जालकावलि:।।१७०।।

जहाँ जालके वृक्षोंका समूह है।।१७०।।

सुदेवीकुञ्जका वर्णन

श्रीराधाकृष्ण-युगलकुण्डके वायव्य कोणमें जो उत्तुङ्ग एवं विशद कलहान्तरिताभावकी लहर उठती है एवं जिससे दोनों युगलकुण्ड परिव्याप्त हो उठते हैं - उस भावकी मूर्तिमान् प्रतीक श्रीसुदेवी सखी हैं। **जो अनुनय-विनयरत कान्तका रोषवशात् सम्मान नहीं करती और फिर कान्तवियुक्ता होनेपर अत्यन्त अनुतापसे संतप्त होती है, कान्तविहीन जिसका पल-पल अत्यन्त व्यथासे भरा व्यतीत होता है - उसे कलहान्तरिता नायिका कहते हैं।** श्रीसुदेवीजी श्रीराधारानीकी अरुण कंचुकीस्वरूपा हैं। विशुद्ध स्वर्ण–जैसी इनकी सुन्दर देह है। इनके कुंजका वर्ण चमकते हुए मूँगेके समान है। ये अपने निकुंजमें इसी रंगका वस्त्र धारण करती हैं। ये प्रिया–प्रियतमकी जल पिलानेकी सेवा करती हैं। निकुंजमें इनकी नित्य वय चौदह वर्ष, दो माह, आठ दिनकी रहती है।

थी जपा खड़ी अवनत-मुख हो, आँखों में थी लाली, प्रियतम!
था पास खड़ा नीला तमाल दीनता-व्यथा कहता, प्रियतम!
पुरवैया से परिचालित हो, वह पुन:-पुन: झुकता, प्रियतम!
जाती थी पश्चिम में पर, वह संध्या होते रोती, प्रियतम।।१७१।।

जहाँ जपा नीचा मुख किये हुए थी और उसकी आँखोंमें लालिमा थी। पास ही खड़ा हुआ नील तमाल अपनी दीनता और व्यथा व्यक्त कर रहा था और पुरवैया हवाके झोंकोंसे पुन:-पुन: वह झुक जाता था। परन्तु जपा रोती हुई पश्चिमकी ओर झुक-झुक जाती है; वही सुदेवी-कुञ्ज है।।१७१।।

उदुम्बरपङ्क्तिः॥१७२॥

जहाँ गूलरके वृक्षोंकी पङ्क्ति है।।१७२।।

बदरीवनम् ॥१७३॥

जहाँ बेरके वन हैं।।१७३।।

वानीरनिकुञ्जावलिः॥१७४॥

जहाँ बेंतके वृक्षोंसे बने कुञ्ज हैं।।१७४।।

वेणुवनम् ॥१७५॥

जहाँ बाँसका वन है।।१७५।।

अर्जुनसमूहः॥१७६॥

जहाँ अर्जुन वृक्षोंका झुण्ड है।।१७६।।

यत्र अशेषोद्भिज्जजातीय प्राणिनां सन्निवेशः॥१७७॥

जहाँ उद्भिज जातिके अनेक प्राणियोंका निवास है।।१७७।।

यथावसरं यथास्थानं आविर्भावः तिरोभावश्च ॥१७८॥

जहाँ लीलाके अनुसार अवसर तथा स्थानके अनुरूप वस्तुओंका आविर्भाव तथा तिरोभाव होता रहता है।।१७८।।

राधाकुण्डका वर्णन

वस्तुतः श्रीराधाकुण्ड श्रीराधामहाभावस्वरूप है। इसमें सभी दिशाओंसे अनन्त भावोंकी उत्ताल लहरें उठती रहती हैं, और इन लहरोंसे यह सतत आलोड़ित रहता है।

लहरें सरमें धारा सी थीं क्रमशः उठती-गिरती, प्रियतम!
चञ्चल मराल होकर उनसे भामिनी मराली से, प्रियतम!
कहता 'प्यारी! देखो, ये हैं दे रही पाद्य तुमको;' प्रियतम!
फिर अर्घ्य-आचमन भी, पूजा स्वीकार करो इनकी' प्रियतम॥१७९॥

राधाकुण्डमें क्रमशः उड़ने वाली ऊँची-नीची बड़ी-बड़ी धाराके समान लहरोंको देखकर उसमें कल्लोल करनेवाली हंसिनीसे चंचल हंस कह रहा है कि प्यारी, देखो यह लहरें तुम्हारे चरणोंका प्रक्षालन करके तुम्हें पाद्य दे रही हैं तथा साथ ही इनका अर्घ्य तथा आचमन भी स्वीकार करो।।१७९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

वस्तुतः यह राधाकुण्ड प्राकृत जलका सरोवर नहीं है। यह तो सच्चिन्मय आनन्द-रस प्रेमका जो परम सार – महाभाव है, उसका सिन्धु है। इसीलिये इसका नामकरण ही श्रीराधा(महाभाव) कुण्ड रखा है। इस कुण्डमें एक चञ्चल मराल (रसिकेन्द्रशेखर रसराज श्रीकृष्ण) एवं एक भावमुग्धा मराली (महाभाव-स्वरूपिणी प्रिया श्रीराधा) सङ्ग-सङ्ग विहर रहे हैं। अपने प्रियतम मरालकी सर्वेच्छापूर्ति करना ही मरालीके जीवनका मात्र प्रयोजन है। वैसे ये मराल एवं मराली कोई दो पृथक् सत्ता नहीं हैं, दोनों ही सच्चिदानन्दघन-स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण मरालकी अर्धाङ्गसम्भूता होनेसे मराली उसकी मात्र ह्लादिनीशक्ति है एवं दोनों ही चिन्मय आनन्दरसरूप हैं, फिर भी वह मराली स्वेच्छाविलासिनी है। अपने प्रियतमकी

प्रेमार्चनामें यह अपना तन-मन-धन-प्राण, कुल-शील-मान एवं अहं सभीकुछ अपने प्राणाराध्यको समर्पितकर सर्वथा निष्किञ्चना है। इस मराली(राधा) के पास मात्र प्रेमाश्रु-जल-रूपी ही एक धन शेष है, जिसे भी यह अपने प्रियतम मराल (श्रीकृष्ण) को समर्पित करती रहती है। इसीके मोलमें इसका प्रियतम मराल (श्रीकृष्ण) इसका पूर्णतया विक्रीत दास है।

इस मराली (राधा) का कामलेशशून्य अगाध सर्वोत्कृष्ट प्रेम ही इस कुण्डका थाहहीन जल है। वस्तुतः तो इस कुण्डका कोई तट, सीमा अथवा देशकी ऐसी अन्य सत्ता ही नहीं है, किन्तु इसकी लहरें ही इसमें आठ दिशाओंका भ्रम कराती हैं। इन आठ दिशाओंमें इसकी लहरें उद्दामरूपसे प्रवाहित होती हैं और पुनः इन दिशाओंमें उत्थित लहरोंसे टकराकर धारावत् उठती-गिरती हैं। यह परस्पर टकराहट एवं प्रवाह ही खण्डितादि अष्ट महाभावोंकी उत्पत्ति करता है। इन अष्ट दिशाओंसे धारावत् उठती-गिरती लहरोंमें विहार करता चंचल मराल (श्रीकृष्ण) अपनी प्रेयसी मराली (श्रीमती राधारानी) से कहता है - 'प्रिये ! देखो, जो सरमें विभिन्न तटोंसे ये धाराओंके समान खण्डिता, स्वाधीनभर्तृका आदि भावोंकी लहरें तुम्हें पाद्य, अर्घ्य, आचमनादि समर्पितकर तुम्हारी अर्चना कर रही हैं इन्हींकी प्रतिमूर्तियाँ तुम्हारी ललिता–विशाखादि सखियाँ हैं, इनकी अर्चना स्वीकार करो।'

'प्रिये ! ये सर्वप्रथम तुम्हें कारुण्यामृतरूपी भावजलका तीन बार पाद्य निवेदन करती हैं। फिर तारुण्यामृत भावजलसे ये अर्घ्यदान करती हैं। इसके पश्चात् ये लावण्यामृतमें सौन्दर्य एवं माधुर्यकी कंकोल एवं लवङ्ग मिलाकर उससे तुम्हें तीन बार आचमन करा रही हैं। इनकी यह पूजार्चना प्रिये ! स्वीकार करो।'

'अपने प्राणों के रससे ये तुमको नहलाती हैं; प्रियतम !
'अपने प्राणों की सत्ता का परिधान धराती हैं; प्रियतम !
'चारों कूलों के द्रुम से जो हैं गुच्छ सुमन अति; प्रियतम !
'इनमें उनका ही आभूषण तुमको पहनाती हैं; प्रियतम ॥१८०॥

'यह लहरें अपने प्राणोंके रससे तुम्हें स्नान करा रही हैं और यह लहरियाँ ही अपने प्राणोंकी सत्ताके वस्त्र भी पहना रही हैं। कुण्डके चारों किनारोंपर अवस्थित वृक्षोंसे झरनेवाले पुष्पोंके गुच्छोंके आभूषण तुम्हें पहना रही हैं।' ।।१८०।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

'देखो प्रिये ! अब ये अष्ट भाव-लहरों रूपी अष्ट दिशाओंसे उठी लहरें तुम्हें अपने रति,स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव , रूढ़ एवं अधिरूढ महाभाव तथा उसके परमोच्च मादनाख्य भाव – इस प्रकार दस प्राणोंके रससे स्नान कराती हैं।'

'स्नानके उपरान्त तुम्हारी लज्जा-निवारणके लिये अपने प्राणोंकी सत्ता – मुझ रसराज रसिकेन्द्रशेखर ब्रजेन्द्रनन्दनको ही तुम्हारा श्याम परिधान बनाकर तुम्हें नील वस्त्रके रूपमें पहना दे रही हैं। इसके पश्चात् मेरे प्रति इनका जो प्रगाढ़ राग है, उस प्रियतम-रागकी ये कसूँभी ओढ़नी तुम्हें पहना-उढ़ा दे रही हैं। मेरे प्रति प्रणयको ही ये कञ्चुकीके रूपमें तुम्हें धारण कराती हैं।'

'प्रिये ! इस महाभावसिन्धुकी लहरें ही जो चार कूलोंका निर्माण करती हैं, उनमें 'सखी-प्रणय' नामक पूर्व दिशाका कूल है, प्रेम-कौटिल्य एवं तज्जन्य माधुर्य दक्षिणी कूल है, अधिरूढ महाभावगत पुलक, रोमाञ्च, हर्ष आदि सात्विक भावोंकी विशिष्ट दशा पश्चिमी कूल है एवं इन चारों कूलोंसे जो सुन्दर सुमनगुच्छ आकर इस सरोवरको समाच्छादित कर रहे हैं, उनसे ही तुम्हारे अंगोंको श्रृंगारित एवं उन्हें आभूषित कर रही हैं।'

'प्रिये ! ये सखी-प्रणयरूप पूर्वतटसे झरे पुष्पगुच्छोंसे तो तेरे अंगोंमें मृगमद, चन्दन एवं कुङ्कुमके मिश्रणको लेपन करती हैं, फिर प्रेम–कौटिल्य एवं तज्जन्य माधुर्यरूप दक्षिणतटके पुष्पोंसे तेरे नेत्रोंमें अञ्जन लगाती हैं। इस माधुर्यसे उत्पन्न हुआ मेरा जो राग है, उससे ये तेरे अधरोंमें लालिमा करती हैं। फिर अधिरूढ़ महाभावगत हर्ष, पुलक आदि विशिष्ट दशारूप पश्चिमी तटसे झरे पुष्पोंसे ये तुझे अनमोल आभूषण सज्जा-सज्जित कर दे रही हैं। साथ ही हावभाव-लीलादि उत्तरी तटसे झरे रमणी गुणरूप पुष्पोंसे तुझे विविध पुष्पमालायें पहनाती हैं।'

'उर पर बिखरे पराग की हैं अर्पित सुगन्ध करती,' प्रियतम !
'उर पर विकसित सरोज लेकर ये फूल चढ़ाती हैं,' प्रियतम !
'अतिशय उमङ्ग की किरणों से आकर्षित हो, इनका,' प्रियतम !
'उर भाफ-सदृश उड़कर जो है बनता है धूप बत्ती,' प्रियतम।।१८१।।

'इन पुष्पोंसे झरनेवाले लहरोंके हृदयपर बिखरे हुए परागसे निःसृत सुगन्ध भी तुम्हें समर्पित करती हैं और इनके उरपर खिलनेवाले कमलपुष्प तुमपर चढा रही हैं। तुमसे मिलनेकी उमंगकी किरणोंसे भाफके समान उड़ता हुआ, जो इनका हृदय है उसका ही हे प्रिये ! तुम धूप स्वीकार करो।'।।१८१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अनन्य निष्ठा, प्राणोंकी नित्य नव-नवायमान उमंगसे सेवा, पूर्ण सङ्कोचराहित्य, अपार ममत्व एवं पूर्ण आत्मसमर्पण - ये पाँच प्रकारकी पराग इन महाभावमयी लहरोंपर नित्य बिखरती रहती है, एवं इस परागकी सुगन्ध ये लहरें प्रिया श्रीराधाको अर्पित करती रहती हैं। स्नेहकी विशेष मधुरताके रसास्वादनके लिये दक्षिणभाव त्यागकर जो वामभावका सरोज खिलता है, वह रसका ही उत्कर्ष है, किसी पङ्कसे उत्पन्न सरोज नहीं - फूल चढ़ानेका यही भाव यहाँ दर्शाया गया है। इसीलिये यह आश्चर्यकारी सुन्दर सरोज है।

'प्रणयकी ललकमें जो अतिशय मिलनकी उमंग होती है, मिलनके लिये जो श्रम होता है, एवं प्रियतम-रतिजन्य भी जो श्रम होता है उस श्रमके कारण प्रिया-प्रियतमके अंगोंसे मिलन-सौरभका प्रादुर्भाव होता है, उस अंग–प्रत्यंगसे झरती मिलनजन्य सौरभकी हे प्रिये ! ये लहरें तुम्हें धूपार्पण कर रही हैं।'

'इनके भीतर दिन में जो है दिनकर की परछाँही;' प्रियतम !
'रजनी में तारक-शशधर की, वे ही हैं दीप भला;' प्रियतम !
'हृत्पद्मकर्णिका के भीतर उज्ज्वल रस-वर्ण लिये,' प्रियतम !
'जो वस्तु सुसञ्चित है, उससे नैवेद्य निवेदन है।' प्रियतम।।१८२।।

दिनके समय इस कुण्डके ऊपर पड़ने वाली सूर्यकी परछाईं तथा रात्रिके समय चन्द्रमा एवं तारागणोंका प्रतिबिंब ही दीप है और इस कुण्डके हृद्देशपर खिलनेवाले कमलकी कलियोंके भीतर जो उजले रंगका उजला रस है (अथवा मेरे वक्षस्थलमें सञ्चित जो उजले वर्णका उज्ज्वल रस है) उसका नैवेद्य स्वीकार करो।।१८२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

दिवाभिसारके समय दिनकरकी पड़नेवाली परछाईं अर्थात् दिनकरकी साक्षी एवं निशाभिसारके समय रजनीमें तारकावलि एवं शशधरकी उपस्थिति ही प्रज्वलित दीप हैं जिनसे ये सखियाँ तुम्हारी दीपार्चना किये जा रही हैं।

'मादनोऽयं परात्परः' इस श्रुतिके अनुसार श्रीराधाप्रेमके सदृश श्रेष्ठ सुस्वादु वस्तु कोई नहीं। इतना गौरवमय होनेपर भी यह श्रीराधाप्रेम मदीयतामय स्नेहसे युक्त होनेके कारण ऐश्वर्य-तम-लेश-शून्य है। यह न तो गौरव चाहता है, न मानता है, अतः पूर्ण अभिमान-तम-रहित परमोज्ज्वल है। यह राधा अथवा श्रीकृष्ण-सरोजके हृदयका परमोज्ज्वल रसवर्ण लिये मकरन्द है। इसका ये सखियाँ तुम्हें भोग अर्पित कर रही हैं।

'उज्ज्वल जल लेकर पुनः अहो! आचमन कराती हैं,' प्रियतम!
'उन अरुण उत्पलों के दल से रचती तमोल ये हैं,' प्रियतम!
'उज्ज्वल रस नित्य उरस्थल का है तर्पणीय उनका,' प्रियतम!
'जो रागभरा स्वर है उरका, मधुर स्तव है इनका,' प्रियतम॥१८३॥

यह लहरें अपने निर्मल जलसे तुम्हें आचमन करा रही हैं और लाल रंगके कमलोंका ताम्बूल तुम्हें समर्पित कर रही हैं। इनके हृदयमें स्थित उज्ज्वल रस ही इनकी तर्पणकी सामग्री है और इन लहरोंका मधुर-मधुर स्वर ही तुम्हारा स्तवन है।।१८३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

ये लहरें (सखियाँ) तुम्हें अपने सच्चिदानन्दमय तत्त्ववस्तु ज्ञान-योग-कर्म-विरहित उज्ज्वल चिन्मय रसरूप प्रेमजलसे आचमन कराती हैं तथा अपना रागरूप अरुण उत्पलों (कमलों)का ताम्बूल अर्पित कर रही हैं। इनका काम-लेश-गन्ध-शून्य परमोज्ज्वल प्रेम ही इनकी तर्पण-सामग्री है और हम दोनों प्रिया-प्रियतमके नाम-गुण-यश-श्रवण-कीर्तन ही इन लहरों(सखियों)का मधुर-मधुर वाणी-प्रवाह स्वर है, इससे ये तुम्हारा पावन स्तवन कर रही हैं।

'अपने स्वरूप में नित्य अहो! ये सभी दिशाओं में,' प्रियतम!
'जो घूम रही हैं, इनका शत शत है प्रणाम ही तो,' प्रियतम!
इनके रहस्यमय अर्चन के उपचार मनोहर हैं,' प्रियतम!
यों था प्रतिदिन वरटानायक मनुहार-गीत गाता, प्रियतम॥१८४

यह लहरें नित्य ही अपने स्वरूपमें स्थित होकर सभी दिशाओंमें घूम रही हैं; यही इनका शत-शत प्रणाम है। तुम्हारी रहस्यमयी पूजाके लिये प्रयुक्त इनके सभी उपचार अत्यन्त मनोहर हैं - इस प्रकार प्रतिदिन हंस (श्रीकृष्ण) अपनी प्रियतमाकी मनुहारके गीत गाता रहता था।।१८४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीकृष्ण मराल अपनी प्रिया मरालीसे कह रहा है – 'हे प्रिये ! अपने तन-मन-धन-रूप-यौवन-लोक-परलोक - सबको मुझ श्रीकृष्णकी सुख-सामग्री समझकर मेरे सुखके लिये जो शुद्ध अनुराग किया जाता है, वही इनका भाव है। मैं स्वयं सुख-सन्दोह हूँ। मुझ सुख-सन्दोह, ज्ञान-विज्ञानानन्दघनको भी ये गोपियाँ सुख देती हैं। ये मेरी ह्लादिनी शक्तियाँ हैं। जैसे समुद्रमें अनन्त लहरें स्वाभाविक ही सर्व दिशाओंमें उमड़ती हैं और समुद्रमें सब ओर लहराती हैं, उसी प्रकार ये ह्लादिनी गोपियाँ भी अपनी अनन्त दिव्य प्रेमभावोंरूपी अनुगामिनी अङ्गशक्तियों सहित सर्व दिशाओंसे मुझ अपने प्रियतमकी ओर धावित होती हैं और इनके अनन्त भावाह्लादसे आह्लादित हुआ मैं उस आह्लादको इनमें ही अनन्त गुना करके लौटा देता हूँ। यही इन गोपीरूपा लहरोंका सर्व दिशाओंसे आना और पुनः लहराकर सर्व दिशाओंकी ओर प्रवाहित होना है।'

'हे प्रिये ! यही तुम्हें इनका शत-शत प्रणामार्पण है। वस्तुतः ये तुझ राधाकी जो भावरहस्यमयी पूजा कर रही हैं, इनके उपचार भी परम मनोहर हैं। क्योंकि इनमें किसी भी लौकिक कामनाकी लेशात्मक गन्ध भी नहीं है। वस्तुतः दर्पणमें अपनी शोभा भरकर दर्पणको शोभायुक्त बनानेवाला पुरुष उस शोभाको स्वयं ही पा जाता है। इसी प्रकार विविध भावोंसे अर्चना करनेवाली ये गोपियाँ तुझसे अपनी भावावलियाँ अपरिचित रूपमें बढी हुई पुनः पा जाती हैं।'

सुनकर यह गीत भामिनी थी उसकी विमुग्ध होती, प्रियतम !
देकर अपनी नीरव सम्मति नायक पर झुक पड़ती, प्रियतम!
दोनों ही कण्ठ मिलाकर थे लहरों में धँस पड़ते, प्रियतम!
आनन्दमत्त होकर लहरें कूलों से टकरातीं, प्रियतम॥१८५॥

हंस (श्रीकृष्ण)के यह गीत सुनकर हंसिनी(राधा) मोहित हो जाती थी और अपनी मूक सम्मति देकर हंसपर झुक पड़ती थी। दोनों हंस-हंसिनी(राधा-कृष्ण) कण्ठसे कण्ठ मिलाकर सरोवरकी लहरोंमें अवगाहन करने लगते थे और लहरें आनन्दमें मतवाली होकर तटोंसे टकराने लगतीं।।१८५।।

भीतर-ही-भीतर उनके थे दोनों चलते रहते, प्रियतम !
ले टोह, नीर-बिहगी-दल था ऊपर-ऊपर चलता, प्रियतम !
वह दाँव-पेँच दोनों दलमें सुन्दर जो चल पड़ता, प्रियतम!
उसके चित्रण की तूली बह जा पड़ी नील सरमें, प्रियतम।।१८६

जलके भीतर ही दोनों चलते रहते और पक्षी-समूह उनकी टोह लेता हुआ ऊपर-ऊपर उनकी गतिका अनुसरण करता रहता था। हंस-हंसिनी तथा पक्षी-समूहमें जो मनोहर दाँव-पेंच चलते उसके वर्णनकी सामर्थ्य किसमें है। अतः कवि विथकित होकर कृष्णकुण्डका वर्णन करने लगता है।।१८६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

इन मराल-मरालीका दर्शन एवं इनका गुण-यश-गान इनके पूर्ण कृपापात्र रसिकजन खग जो इस निर्मल एवं विशुद्ध प्रेमरसभरे कुण्डके प्रेमाकाशमें उड़ते रहते हैं, कलरवरूपमें करते रहते हैं। ये रसिकजन अपने प्राकृतावेशके कारण सर्वथा अप्राकृत महाभाव-सरोवरमें अवगाहन तो नहीं ही कर पाते किन्तु ऊपर-ऊपरसे इनकी गतिका अनुसरण अवश्य करते हैं। इन हंस-हंसिनियों और उनके ऊपर उड़नेवाले इन प्रेमाकाशचारी विहङ्गमोंमें परस्पर जो प्रेमलीलाओंके दाव-पेंच चलते हैं, वे स्वसंवेद्य, अनिर्वचनीय एवं अचिन्त्य हैं, उनका वर्णन करनेकी सामर्थ्य भला किसमें है ? अतः कवि पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा आगे श्रीकृष्णकुण्डका वर्णन करने लगते हैं। वे कहते हैं कि मेरी तूलिका इनके दाव-पेंचका अनुभव करते-करते लेखनमें असमर्थ होकर लीलमणि-रससे भरे कृष्णकुण्डमें मेरे हाथसे छूटकर गिर जाती है।

श्री ष्णकुण्डका विवेचन

जैसे राधाकुण्ड महाभावसिन्धु-स्वरूप है, वैसे ही श्रीकृष्णकुण्ड भी भगवान् पूर्ण-परात्पर श्रीकृष्ण रसराजका निज स्वरूप है। वस्तुतः यह समग्र विश्व-संरचना इस कुण्डके अथाह जलमें मृगमरीचिकावत् प्रतिभासित होती है, सत्यांशमें इसके अतिरिक्त कहीं भी अन्य कोई भी वस्तु परमार्थसत्ताके रूपमें है ही नहीं। यह चिन्मय कुण्ड सब भूतोंकी उत्पत्तिका बीज है, और संबकी गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, सबका आधार, निधान तथा अविनाशी कारण है। यह अप्राकृत कुण्ड अविनाशी ब्रह्मकी, अमृतकी, नित्य धर्मकी एवं एकान्तिक सुखकी पूर्ण प्रतिष्ठा है। सबकुछ

इससे ही, इसमें ही प्रवर्तित है। यह परमधाम, परब्रह्म, परम पवित्र, सनातन, दिव्य, अनादि, अजन्मा एवं विभु है। यह सर्वभवनसमर्थ होनेसे ही जलके कुण्डकी तरह सीमित दृष्टिगोचर होता है, वैसे यह असीम, अनन्त है। योगमायाशक्तिसे आवृत होनेके कारण ही यह समस्त भूतोंमें प्रकाशित नहीं होता एवं प्राकृत कुण्डवत् प्रतीत होता है, वस्तुतः यह दिव्य सच्चिदानन्दघन प्रेमानन्द-रस-विग्रह है। इसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान तो मात्र इसीको है। दूसरा कोई कह ही नहीं सकता कि इसका यथार्थ रूप ऐसा ही है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने भी जो वर्णन इस कुण्डका किया है, वह भी शाब्दिक होनेसे सीमित ही है। यह कुण्ड और राधाकुण्ड दोनों ही सदा पूर्ण हैं, सब ओरसे पूर्ण हैं, सर्वलीलाओंमें पूर्ण हैं। लेखक तो इसका विवेचन पू.गुरुदेवके मुखसे जो भी सुन चुका है उसका सार इतना ही है कि यह कुण्ड विज्ञानानन्दघन, निराकार, निर्विकार, सगुण, साकार, मायातीत, ब्रह्म, अक्षर, आत्मा, परमात्मा, पुरुषोत्तम, देवता, जीवात्मा, प्रकृति, पुरुष, जगत् - सबकुछ है। जो कुछ नहीं है, वह भी यही है। इतना ही नहीं, है एवं नहींसे जिसका वर्णन नहीं होता, वह भी यह कुण्ड है। यदि किसीने कुछ भी इसका वर्णन किया है तो मात्र अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये ही किया है। ये दोनों राधा एवं कृष्णकुण्ड परस्पर भीतर आनन्दरससे आप्लावित हैं। कृष्णकुण्ड रसिकेन्द्रशेखर रसराज रसनिकेतन है तो श्रीराधाकुण्ड महाभावसिन्धु है। दोनों ही आनन्दरसके महासिन्धु हैं, मात्र लीलार्थ दो नाम–रूप धारण किये हैं। इन दोनोंका परस्पर मिलन ही महारास है।

ष्णकुण्डका वर्णन

था श्यामनीर से भरा एक गम्भीर सरोवर, हे प्रियतम!
पा सका न कोई थाह, थके करके प्रयास योगी, प्रियतम!
जो श्वास रोक सकते थे युग-युग तक बूड़े उसमें, प्रियतम
वे भी हारे, निकले उदास, इतना अगाध जल था, प्रियतम।।१८५

वहींपर उसीसे सटकर एक दूसरा कुण्ड था जिसका जल नीले रंगका था। योगीजन अनेक प्रयत्न करनेपर भी उसकी गहराईका पता न लगा पाये थे। जो सिद्ध युग-युगान्तरतक अपना प्रश्वास रोक सकनेमें समर्थ थे, वे भी उसमें डूबे, पर थाह न पा सके। इतना अगाध जल उस सरोवरमें था, अतः वे भी उदास होकर बाहर निकल आये।।१८७।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यहाँ गम्भीरका अर्थ है, जिसमें सभी शक्तियाँ अन्तर्निहित हों। यह कुण्ड अचिन्त्य एवं अतर्क्य शक्तियाँ लिये है। इसमें पूर्ण सच्चिन्मयी नीलिमा भरी है। इसका अर्थ है कि यह निर्गुण-निराकार ब्रह्मरूपसे तो सर्वत्र, सर्वदा है, और सबमें है, किन्तु अपने सगुण-साकार-सौन्दर्य-माधुर्यरूपमें प्रेमधाम इस गोवर्धनगिरि-परिसरमें ही प्रकट है, विहित है। यह राधाभावका आसक्त, उससे सदैव संलग्न रहता है, उसे छोड़कर एक पद भी अन्यत्र नहीं रह सकता। जहाँ तदेकप्राण राधाकुण्ड नहीं है, तन-मन-प्राण समर्पित करनेवाली राधाकुण्डकी प्रेमोन्मत्त लहरें नहीं हैं, वहाँ प्रेमपरवश प्रेम-नीलनीरसे भरा यह कुण्ड नहीं रह सकता।

चक्षुष्मन्तोऽनुपश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः।।

जिनके पास मात्र विशुद्ध श्रीराधाकी, गोपियोंकी आँख है, वे ही इसकी झाँकी (दर्शन) पा सकते हैं, कोई अनन्तकालतक श्वास रोककर दीर्घ जीवन भले ही प्राप्त करले, मनकी समाधिसे अनन्त दिव्य योगशक्तियोंका स्वामी भले ही हो ले, योगकी ऊँची-से-ऊँची सिद्धियोंका अधिपति भले ही हो जाय, इस प्रेम-सरोवरकी थाह युग-युगतक (बूड़ने) खोजनेसे भी उसे नहीं मिल सकती।

इसी आधारपर रसिककवि रसखानिजीने कहा है: –

ब्रह्म मैं ढूँढ़्यौ पुरानन गानन वेदरिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितै वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।।
हेरत-हेरत हारि पर्यौ रसखानि बतायौ न लोग-लुगायन।
देख्यौ दुर्‍यौ वह कुंजकुटीरमें बैठ्यौ पलोटत राधिका-पायन।।

इतना अगाध, साथ ही सहज-युगपत् विरुद्ध-गुण-धर्मरूप इसका स्वभाव है।

वह पुञ्ज समग्र ईशता का जो, धर्म और यश का, प्रियतम!
श्री- ज्ञान-विराग-सत्य का है उसके कण-कण में था, प्रियतम!
उसके जल से वल्लरियाँ थीं जनकी सींची जाती, प्रियतम!
लगते थे फूल और उनमें निरुपम सौरभ वाले, प्रियतम।।१८८।।

उसके कण-कणमें भगवत्ताके सूचक छहों भाग - ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, विराग तथा सत्य परिपूरित थे। उसके जलसे जिन लताओंको सींचा जाता था उनमें दिव्य सुगन्धसे युक्त अनोखे पुष्प लगते थे।।१८८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

पूर्ण-परिपूर्ण सच्चिन्मय भगवत्स्वरूप होनेसे इसके जलके कण-कणमें समग्र ईश्वरता (ऐश्वर्य), समग्र ज्ञान एवं वैराग्य निहित है। जो भी महज्जन कृपापात्र इस वृन्दाकानन (श्रीराधा-गोपीजन-चरणाङ्कित प्रदेश) में लता-पत्र-पुष्प-वीरुधादिभावमें इस कृष्ण-प्रेमरस-जलके कण मात्रसे भी सिञ्चित (पालित-पोषित अथवा संवीजित) हो जाता है, उसमें अशेष मङ्गलकारी दिव्य सच्चिन्मयी प्रीति-गन्धसे भरे अलौकिक भावपुष्प लगने और विकसित होने लगते हैं।

उसका जल छूते ही तन का सब रंग बदल जाता, प्रियतम!
पीनेवाली कण एक इतर सब राग भूल जाती, प्रियतम!
उसको निहारते ही आँखें होती थीं श्याममयी, प्रियतम!
जो भी फिर कहीं कभी दीखे, नीला-नीला लगता, प्रियतम।।१८९।।

उस श्याम कुण्डके जलका स्पर्श होते ही तनका रंग तो बदल ही जाता था परन्तु इसका एक कण सेवन कर लेने वालेकी अन्य सब आसक्तियाँ समाप्त हो जाती थीं। उसके दर्शन करते ही सर्वत्र श्याम-ही-श्याम दिखाई देने लगते थे और संसारकी प्रत्येक वस्तुमें श्रीकृष्णका ही भान होने लगता था।।।१८९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

इस नवीन श्याममेघके सदृश वर्णवाले जलके स्पर्शमात्रका प्रभाव ऐसा है कि इसको छूते ही उसका वर्ण बदल जाता है, अर्थात् प्राकृत देहाध्यास सर्वांशमें सदैवके लिये छूट जाता है और वह पुरुष–भाव त्यागकर श्रीमती राधारानीकी कायव्यूहरूपा गोपीभावापन्न हो उठता है। और फिर कहीं इसका एक कण भी पान करले तब तो उसके इतर अन्य सब राग ही विस्मृत हो जाते हैं। वह उसी क्षण प्रेमोन्मत्त हो उठता है। यह सत्य है कि जैसे गङ्गाजीके निर्मल प्रवाहमें पड़कर गन्दे पानीके नालेका जल भी गङ्गाजल हो जाता है, वैसे ही इसका कणमात्र जल पीते ही प्राणी स्वयं भगवत्स्वरूप ही हो जाता है। वह फिर प्रेममें इतना तल्लीन हो जाता है कि आधे क्षणके लिये भी अन्य किसी पदार्थमें उसका मन नहीं रमता। उसका मन उसके स्वयंके पास रहता ही नहीं। तब वह अन्य रागमें रमे भी तो कैसे ? यह

विलक्षण सुन्दर कुण्ड है। इसको निहारते ही आँखें अन्य दर्शनमें सर्वथा अन्धी हो जाती हैं। फिर तो सर्वत्र नवीन मेघ-सदृश श्यामकान्तिवाले श्रीकृष्ण ही उसके मात्र दृश्य बन जाते हैं। वे श्रीकृष्ण फिर अपनी मन्द मुसकानसे उसे मोहित करके उसका अपना आपा ही मिटा देते हैं। फिर उसका संसार नाम-रूपात्मक नहीं रहकर मात्र श्यामरूपात्मक हो जाता है। सौन्दर्यसुधामयी मुसकान मात्र फिर अकेली वह श्याममयी सत्ता ही शेष रहती है, अन्य सब सत्ताएँ उसमें घुलमिलकर उसका ही रूप हो जाती हैं।

जिसके कानों में भी उसकी चर्चा थी पड़ जाती, प्रियतम!
उसको उसके अतिरिक्त बात कोई न सुहाती थी, प्रियतम!
लेकर समीर सौरभ उसका जाता था जहाँ-जहाँ, प्रियतम!
सब जीव वहाँ के उसपर थे न्योछावर होजाते, प्रियतम।।१९०।।

जो भी उसकी चर्चा सुन लेता उसे उसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी बात सुहाती न थी और उसके यशकी सुगन्ध कानों-कान जहाँ-जहाँ और जिस-जिसके पास पहुँचती थी वह उसपर न्योछावर होने लगता था।।१९०।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

कानोंमें कहीं उसकी वार्त्तारूप रसायन गिर जाय तो वह वार्त्तारूप रसायन कानोंके द्वारा श्रोताके हृदयमें प्रवेश कर जाता है। फिर तो उसे पृथ्वीके साम्राज्य, इन्द्रके राज्य अथवा इन दोनोंके निष्कण्टक निरापद भाग, यहाँतक कि अणिमा-महिमादि सिद्धियोंका ऐश्वर्य, ब्रह्माका पद, मोक्ष या वैकुण्ठकी भी चाह नहीं होती। ये सभी वैभवपद उसे तीखे नमक-से कटु लगते हैं, सारी लोक-वेदकी मर्यादा छोड़कर वह एकमात्र उसपर ही आसक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, उसके सौरभको लेकर भी वायु जहाँ-जहाँ जिसे स्पर्श करता है, उस सौरभको पानेवाले जीव भी उसपर न्यौछावर हो जाते हैं।

वैसे तो यह कृष्णकुण्ड अनन्त एवं असीम है, इसको कूल देनेकी, सीमा देनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है, फिर भी इसे यदि किसीने कूल दिया है तो श्रीराधारानीके मात्र श्रीकृष्णसुखाकांक्षामय प्रेमने। पीत मणियोंका विशुद्ध वांछाहीन उज्ज्वल प्रेमप्रकाशपूर्ण तट ही इसे घेरे है। इसके चार कूल हैं । पूर्वका कूल है - श्रीमती राधाका अधिरूढ़ महाभाव, दक्षिणका कूल है उनका अपूर्व प्रेमवैचित्य; पश्चिमका तट है श्रीराधाका उन्मादी प्रिय-विरह तथा उत्तरका कूल है पूर्ण मदीयतात्मक स्नेहके होते हुए भी श्रीराधाकी परकीयाभावमें प्रतिष्ठा। ये इसके चार तट हैं जो इस कुण्डकी सीमायें निहित कर देते हैं।

निर्माण पीतमणि से उसके चारों कूलों का था, प्रियतम!
प्रतिदिन जल बढ़ धारा बनकर था चारबार बहता, प्रियतम!
पहले उत्तर की ओर वेग उसका ऐसा होता, प्रियतम!
मानो श्रीफल की कुञ्जों को खण्डित कर छोड़ेगा, प्रियतम।।१९१।।

उसके चारों तटोंका निर्माण पीले रंगकी मणियोंसे हुआ था। प्रतिदिन उस कुण्डका जल चार बार बढ़ जाया करता था। पहले तो उसका वेग उत्तरकी ओर बढ़ जाता, मानो बेलके वृक्षोंसे निर्मित कुञ्जोंको वह खण्डित करके रख देगा (ललिता जी)।।१९१।।

तात्त्विक विवेचन–विरत्तार

पहले यह उत्तरकी ओर प्रवाहित होता है। वहाँ इसे तटके ऊपर स्थित कुंजमें खण्डिताभावकी प्रतिमूर्त्ति बेलवृक्षोंकी छायामें खड़ी श्रीराधारानीकी कायव्यूहरूपा उनकी बिम्बाधर-निवासिनी ललितारानी आलिङ्गन करनेकी मुद्रामें बाहु उठाये दृष्टिगोचर होती हैं। इसका वेग उस समय इतना उद्दाम होता है कि ऐसा अनुमान होता है कि यह उनकी बाहु-सीमाओंमें नहीं बँध पावेगा, किन्तु आश्चर्य है कि उस कुंजको स्पर्श करते-करते ही इसकी लहरें वेगसे पीछे लौट आती हैं और इस महाभावतटको ध्वंस नहीं कर पातीं। इसका अनन्त उद्दाम वेग प्रीतिजन्य महाभावसे स्पर्धामें शिथिल हो जाता है।

पूरब में, अग्निकोण में फिर चलता प्रवाह जब था, प्रियतम !
होती उसकी गति यों, जैसे जाता हो सुख देने, प्रियतम !
कोई आयी हो दिन में ही करके अभिसार, उसे, प्रियतम !
या उध्धर बिलखती हो कोई प्रोषितपतिका, उसको, प्रियतम ।।१९२

पूरब और अग्निकोणमें जब उसका धाराप्रवाह बढ़ने लगता तो उस(श्रीकृष्ण)की गति देखकर यही प्रतीत होता था कि वह किसीको सुखदान करने जा रहा है और दिनमें जो कोई भी तरुणी (चित्रा) अभिसार करके आयी हो अथवा ऐसी कोई तरुणी (इन्दुलेखा) जिसका पति परदेश चला गया हो उसे सुखी करना ही इसका प्रयोजन है।।१९२।।

तात्त्विक विवेचन–विरत्तार

तब यह ईशानकोणमें धाराप्रवाह गतिसे बढ़ने लगता है। उसकी गति देखकर यही लगता है कि स्वाधीनभर्तृका भावमयी विशाखाको यह सुखदान करने उमड़ रहा है, परन्तु इसकी गति पूर्व दिशा एवं अग्निकोणकी ओर मुड़ जाती हैं। दिनमें ही अभिसारोन्मुखी चित्रासखीके इसे दर्शन होते हैं, उसे मिलन-दान करता हुआ यह अग्निकोणकी ओर बह जाता है। अग्निकोणमें इसे अथाह प्रियविरहिणी इन्दुलेखाके निर्झरकी भाँति झरते अश्रुप्रवाहकी धारा ही मिलती है। उसके प्रियतम कान्त तो उसे छोड़ दूर-सुदूर विदेश चले गये हैं और उसे उनसे इस जीवनमें मिलनकी कोई आशा नहीं है। इस विरहिणीकी अश्रुधाराको अपनेमें मिलाये यह दक्षिण दिशाकी ओर लौट पड़ता है।

दक्षिण में जब चलता, लगता, कोई मधूक-मधु पी, प्रियतम !
अपने तन का सब भान भुला, चल रहा भटकता हो, प्रियतम !
टकराकर उन-उन तरुओं से किञ्चित् रुक-सा जाता, प्रियतम !
अन्तश्चेतनावृत्ति फिर भी पथ थी दिखला देती, प्रियतम ।।१९३

जब वह(श्रीकृष्ण) दक्षिणकी ओर जाने लगता तो यही दिखायी देता कि कोई मद्यसे निर्मित मदिरा पीकर और अपने शरीरकी सुधि भूलकर डगमगाते कदमोंसे चल रहा है और वह उसके तीरपर खड़े वृक्षोंसे टकराकर किञ्चित् रुकता-सा प्रतीत होता परन्तु उसकी अन्तश्चेतनवृत्ति उसके गन्तव्यका निर्देश दे देती थी।।१९३।।

तात्त्विक विवेचन–विरत्तार

दक्षिण दिशामें इसे वासकसज्जाभावमयी श्रीचम्पकलताजी रसविलास-भावसज्जासे पूरी सजी-धजी, साथ ही अपने निकुंजको भी तदनुरूप पूर्ण रससाज-सज्जित किये दृष्टिगोचर होती हैं। यह उनके प्रेममें जैसे मधूक मधु पिये हो , इस

प्रकार मतवाला हुआ अपने तनका सब भान ही भूल जाता है। यह नैऋत्यकोणके वृक्षोंसे टकराता है। वहाँ इन वृक्षोंमें इसे उत्कण्ठिता नारी -रंगदेवीकी सिसकियाँ सुननेको मिलती हैं। इन सिसकियोंमें असीम व्यथाका अनुभव करता यह इन वृक्षोंकी छाँहमें कुछ रुकता-सा प्रतीत होता है, परन्तु इसकी अन्तःश्चेतनावृत्ति इसे आगेका पथ दिखा देती है।

पश्चिम में बढ़ते ही होता अतिशय बेहाल, भला, प्रियतम !
पीले मणियों की किरणें थीं उसको समझाती-सी, प्रियतम !
'मैं तो उरमें ही हूँ' धीरज आता न किंतु तब भी, प्रियतम !
यों घूम-घूम वन में भरता पल-पल नव-नव सुषमा, प्रियतम।।१९४

जब वह (श्रीकृष्ण) पश्चिमकी ओर बढ़ने लगता तो अत्यन्त बेहाल हो जाता। पीत मणियोंकी किरणें (राधाजी) उसे समझाने लगती कि मैं तो तुम्हारे हृदयमें ही हूँ फिर भी उसे धीरज नहीं होता था और वह (श्रीकृष्ण) वनमें घूम-घूमकर प्रतिक्षण नयी-नयी शोभाका विस्तार करता रहता।।१९४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यह पश्चिम दिशाकी ओर चल पड़ता है। पश्चिम दिशामें भी इसे विप्रलब्धाभावमयी आन्तरिक विरह-व्यथा ही देखनेको मिलती है। यद्यपि पीले मणियोंसे झरती किरणरूपी राधारानीका प्रेम इसे आश्वस्त करता है कि 'प्राण-प्राण! मैं तो तेरे उरमें ही नित्य विराजित हूँ' किन्तु फिर भी इसे इन सभी दिशाओंसे निर्गत विरह-व्यथामयी आहें और विरह-तप्त अश्रुओंका प्रवाह धैर्य धरने ही नहीं देता। यों सब ओर सब दिशाओंमें घूम-घूमकर इसका प्रवाह वनकी नव-नव सुषमाको अभिवर्धित करता जाता है। प्रेमरससे लबालब भरा वृन्दाकानन तो इसकी जलधाराओंसे ही सिञ्चित होता है। इसके जलका कण-कण इस वनप्रदेशमें अपूर्व मङ्गलमयी सच्चिन्मयी प्रीति-शोभाके विस्तारमें हेतु होता रहता है।

थे मूर्त हुए अन्यत्र वहाँ वे पुनः किरणमाली, प्रियतम !
हीरकमय विग्रह बनकर थे पूजित अरण्यजन से, प्रियतम !
मन्दिर के आगे कुण्ड एक था भरा हुआ जल से, प्रियतम !
विकसित-सरोज से बना रम्य रहता सब ऋतुओं में, प्रियतम।।१९५।

वहीं निकट ही हीरक प्रतिमा बनकर सूर्यदेव मानों मूर्त हो गये थे जिनकी पूजा उस वनके वासी(तरुणी युवतियाँ) किया करती थीं। मन्दिरके सामने जलसे भरा एक कुण्ड था जो सभी ऋतुओंमें खिले हुए कमलोंसे सुशोभित रहता था।।१९५।।

ऐसे कुछ कौशल से रचना मन्दिर की थी, जिससे, प्रियतम !
होतीं उपलब्ध सदा ऋतुएँ सब उसके कक्षों में, प्रियतम !
एवं कोई भी क्यों न, भला, कितना ही सजग रहे, प्रियतम !
आते ही कोई मोड़, उसे दिग्भ्रम हो ही जाता, प्रियतम।।१९६।।

उस मन्दिरकी कलात्मक रचना ऐसी कुशलतासे हुई थी कि उसके कक्षोंमें सभी समय सब ऋतुएँ बनी रहती थीं और उसकी सीमामें प्रविष्ट होनेवाला कोई व्यक्ति कितना ही सजग क्यों न हो, परिसरमें बने मार्गोंका मोड़ आते ही उसे दिग्भ्रम हो जाता था।।१९६।।

रवि-विग्रह की विशेषता यह सबको लक्षित होती, प्रियतम !
प्रतिदिन जबतक दिनकर नभ में ऊपर उठते रहते, प्रियतम !
तबतक पुरव राज राशि उसके नख से झरती रहती, प्रियतम !
ज्यों ढले उधर रवि, रत्न इधर पानी बनने लगते, प्रियतम।।१९७।।

उस सूर्यविग्रहकी यह विशेषता सभीके ध्यानमें आ जाती थी कि प्रतिदिन जबतक सूर्य आकाशमें ऊपर उठते रहते तबतक उस प्रतिमाके नखोंसे पुखराजकी राशि झरती रहती थी और ज्यों ही सूर्य अस्ताचलमें जाने लगते थे, वे रत्न पानी बनकर गलने लगते थे।।१९७।।

आराधन के भी समय तथा यह-चमत्कार होता, प्रियतम !
अर्चक के प्राण-देह-मन थे तेजोमय बन जाते, प्रियतम !
सत्ता उतने क्षण बच रहती उस तुर्य नित्य रस की, प्रियतम !
पूजा जिसने जिसने की थी, सबका अनुभव यह था, प्रियतम।।१९८।।

आराधनाके समय भी एक चमत्कार यह हुआ करता था कि अर्चना करने वालेके प्राण, देह और मन सभी तेजोमय बन जाते थे। उतने क्षणके लिये पूजा करने वालोंको प्रकृतिसे अतीत सच्चिन्मय तुर्यरसकी अनुभूति होने लगती थी और विग्रहकी पूजा करने वाले(वाली) प्रत्येकका यही अनुभव था।।१९८।।

सूर्यकुण्डका स्वरूप

वैष्णवाचार्योंने इस चिन्मय भावराज्य राधा-निकुंजकाननका वर्णन करते हुए उल्लेख किया है –

प्राकृतेभ्यो ग्रहेभ्योऽन्ये चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।।(श्रीभागवतामृतम्)

अर्थात् इस लीला-भावराज्यमें ये सूर्य, चन्द्रादि ग्रहगण प्राकृत नहीं, सच्चिन्मय हैं। ये वस्तुतः भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी स्वयंकी स्वरूपशक्तिकी चिन्मय प्रीति-परिणतियाँ ही हैं। किसीको भी इनके रूप, रंग आकार, प्रकार, स्थिति, गुण, चेष्टा, भाव आदिको जड़ वस्तुकी भाँति नहीं समझना चाहिये।

प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी प्रीतिकी अनन्तता ही यहाँ इस प्रीतिराज्यका सीमारहित आकाश है। प्रेमकी प्रखरता ही यहाँ सूर्यवत् चमक रही है। प्रिया-प्रियतमकी चिन्मय लीला-सम्पादन हेतु यहाँ सूर्योदय होता है, सूर्यास्त होता है, निशा आती है, चन्द्रोदय होता है, तारकावलि छिटकती है। ये ग्रह-नक्षत्र सब प्रिया-प्रियतमकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिका निरन्तर अनुसरण करते रहते हैं। प्रिया श्रीराधाको जब, जैसे, जहाँ, जितने रसोत्कर्षके लिये जो-जो भी उपकरण चाहियें, उसीके अनुसार यहाँकी प्रकृति सदैव जागरूक हुई तदनुरूप सज्जासे सजती रहती है। लीला-परिकरोंकी सुख-सुविधाके लिये ही उन्हें भाँति-भाँतिके उपकरण दे-देकर उनका प्रीतिविधान करनेके लिये, प्रिया-प्रियतमकी लीलाको मधुरातिमधुर बनानेके लिये एवं उसका रसपान करके क्षण-क्षणमें स्वयं भी आनन्दसिन्धुमें डूबनेके लिये ही यहाँ श्रीराधामाधवका प्रेम सभी प्राकृत-अप्राकृत सृष्टिमें परिणत हुआ है।

प्रीति-महासमुद्रके अतिरिक्त न यहाँ कोई सूर्य है, न सूर्यमन्दिर है; न चन्द्र है, न चन्द्रिका है, न निशा है, न तारकावलि है। यहाँका तो समग्र ब्रह्माण्ड ही प्रीति-घन-विग्रह-पिण्ड है।

कोई प्रश्न कर सकता है कि क्या यह श्रीकृष्णकी ऐश्वर्यशक्ति है ? तो इसका भी उत्तर निषेधात्मक ही होगा। यदि इस प्रेमराज्यमें ऐश्वर्यका प्रवेश हो जाय, तब तो अनाविल मधुरिमामय लीला-रसपानका उद्देश्य ही अपूर्ण रह जायगा। अतः ऐश्वर्य तो यहाँ पास ही नहीं फटक सकता। अतः यहाँकी प्रीतिलीलामें तनिक भी अस्वाभाविकताका

प्रकाश नहीं करते हुए अचिन्त्य लीलामहाशक्ति ही यहाँ अपने वात्सल्यरससे एक घड़ीमें ही जैसा, जो प्रकृतिवत् विधान करना होता है, सूर्य-चन्द्र, दिवस-रात, वन-गिरि, ग्राम-गृह, देवी-देवता, तम-प्रकाश, देश-काल, देशगत दूरी एवं निकटता उत्पन्न कर देती है।

यही चिन्मय श्रीराधा-प्रीति-भावरूपा लीला-महाशक्ति अपनी सन्धिनी-स्वरूपा परिणतिसे यह सूर्यकुण्ड भी बन गयी है।

सच्चिदानन्दकन्द रसराज श्रीकृष्णका प्रीतिरस ही सिन्धुरूप हुआ जैसे कृष्णकुण्डके रूपमें व्यक्त हुआ है, वैसे ही महाभाव-स्वरूपमें राधासिन्धु (कुण्ड) हो गया है, वैसे ही पूर्ण प्रीति-परतत्व खण्डिता, स्वधीनभर्तृका भावादिमें इनको चतुर्दिक् घेरे परम शोभासम्पन्न ललिता, विशाखा, चित्रादिके कुंज बन गया है, उसी प्रकार वही प्रखर पूर्ण रसमय प्रीतितेज ही यह सच्चिन्मय सूर्य-देवता-आवास सूर्यकुण्डके रूपमें परिलक्षित हो रहा है। परमार्थतः सत्ता मात्र तो सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी ही है।

परात्पर सच्चिदानन्दमयी प्रीति ही जब सूर्यदेवकी प्रतिमा बन गयी है तो उसका तेज तो विलक्षण होना ही है। वज्रमणिकी प्रतिमाके रूपमें तेजोमय भगवान् सूर्यदेवका यह विग्रह इतना महिमामण्डित है कि उसके सामने समकालीन धर्मशील तपस्वी वयोवृद्ध गोपराज, ऋषि-महर्षि, वीर-पराक्रमी गोप-सेनापति सभी श्रद्धाभिभूत हो उठते हैं एवं उनके लोकातीत चमत्कारोंसे चकित एवं नतमस्तक हो जाते हैं। ब्रजमण्डलके विभिन्न भावों तथा विचित्र स्वभावोंसे युक्त सभी युवा, वृद्ध, नर-नारी एवं बालक-बालिकाएँ सूर्यकुण्डमें आकर इसमें विराजित सूर्यप्रतिमाके ईश्वरबुद्धिसे दर्शनकर अपनेको कृतार्थ ही मानते है।

वस्तुतः सत्य तो यह है कि ये धर्मशील वयोवृद्ध तपस्वी गोप, ऋषि-महर्षि, गोप-सेनापति, सभी युवा-वृद्ध नर-नारी भी वस्तुतः वही प्रेम-परतत्व हैं, जो प्रीति-परतत्त्व ये सूर्यभगवान् हैं। इनमें-उनमें कहीं कोई भेद नहीं है। लीलारसास्वादनके लिये ही ये साधारण नारी-पुरुष बने हैं एवं सूर्यभगवान् महाकल्याणकारी ईश्वर बने हैं। यह तथ्य समझते हुए ही सूर्यमन्दिरका वृत्तान्त पढ़ना चाहिये।

जावट ग्रामका वर्णनः

छोटा- सा ग्राम एक अद्भुत का सार-तीर पर था, प्रियतम।
थे रत्न जटित सब गृह उसमें बसने वालों के है, प्रियतम!
देवी के कृपापात्र वे थे, निर्भय थे सभी सदा, प्रियतम!
राजा- सा जीवन था उनका, पर शीलवान वे थे, प्रियतम ॥१-६-६॥

एक सरोवरके तीरपर एक छोटा-सा अद्भुत ग्राम था जहाँ रहनेवालोंके सभी घर रत्नोंसे जड़े हुए थे। सब ग्रामवासी देवीके कृपापात्र थे तथा सभी सदैव निर्भय थे, उनका जीवन राजा-जैसा था पर सभी अत्यन्त शीलवान् थे।।।१99।।

जो सिद्धि पवित्र तन्त्र एवं मन्त्रों से मिलती है, प्रियतम!
भूषित उससे प्रायः तरुणी थीं सभी गाँववाली, प्रियतम!
जीवन भर का यह किन्तु अहो! उनके व्रत निश्चल था, प्रियतम!
मैं कभी स्वसुख के लिये नहीं उपयोग करूँ इसका, प्रियतम॥२००।

उस ग्राममें रहनेवाली सभी तरुणियोंकी स्थिति यह थी कि जो सिद्धि पवित्र तंत्र एवं मंत्रोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे मिलती है, वह उन्हें सहज ही प्राप्त थी। परन्तु उनके जीवनभरका यह व्रत था कि वे अपने सुखके लिये कभी उस सिद्धिका उपयोग नहीं करेंगी।।२००।।

ऐसी थी प्रीति परस्पर जो, वे एक दूसरी के, प्रियतम!
सुख के निमित्त मर मिटने को प्रस्तुत हरदम रहतीं, प्रियतम!
सब के ही प्राण सभी में, सच, रहते थे स्यूत हुए, प्रियतम!
अन्यत्र न था वह सखीपना, है नहीं, न होगा ही! प्रियतम ।।२०१।।

उनका परस्पर एक दूसरेसे इतना अधिक प्रेम था कि वे एक दूसरेके सुखके लिये मर मिटनेको प्रस्तुत रहती थीं। उन सभीके प्राण एक दूसरेके साथ गुथेहुए (मिले हुए) से लगते थे। और कहीं भी न तो इस प्रकारका घनिष्ठ सखीपना था, न है और न होगा ही।।२०१।।

जावटग्रामका वर्णन

वस्तुतः जावटग्रामका किसी लीलास्थलीके रूपमें कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। श्रीजावटग्राम मात्र श्रीराधाके मनका एक भाव-विलास या दिवास्वप्न है। यह उनके अपूर्व उद्दीप्त महाभावकी मात्र एक लहर है। पू.गुरुदेव जैसा कि कहा करते थे कि श्रीमती.यशोदा मैयाके आमंत्रणपर कुन्दवल्ली सखी श्रीराधारानीको रसोई बनानेको बृषभानु-महलमें बुलाने आती है। यों तो कुन्दवल्ली श्रीराधारानीकी मौसी कीर्त्तिमतीकी पुत्री है, परन्तु उसका विवाह श्रीकृष्णके ताऊके पुत्र सखा सुबलके साथ होनेके कारण, नन्दरानीकी बहू होनेके नाते वह उनकी ओरसे भेजी जाकर श्रीराधाको लेने आती है। जैसाकि महादेवी पौर्णमासीजीका विधान एवं आदेश होता है, कीर्तिदा मैया उन्हें सस्नेह कुन्दवल्ली एवं धन्यादि सखियोंके सहित नन्दमहल रसोई बनाने भेज देती हैं। श्रीराधाके साथ उनकी प्राणसखी ललिता एवं उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा भी नन्दमहलमें पाकरचना करने प्रस्थान करती हैं। वृषभानुपुरसे विदा होते ही श्रीराधारानीमें एक विलक्षण भावलहर आती है। दिवास्वप्नकी तरह इस भावलहरमें ही उन्हें अनुभव होता है कि उनका विवाह उनके प्रियतम श्रीकृष्णके साथ हो गया है। साथमें ही सभी अष्ट सखियाँ एवं उनकी सभी मञ्जरियाँ उनके साथ दहेजमें दासीरूपमें आती हैं। छोटी बहिन मञ्जुश्यामाका भी परिणय श्रीकृष्णके साथ हो जाता है। उन्हें विवाहोपरान्त ससुराल विदा कराने उनका देवर दुर्मद गोप वृषभानुपुर आ जाता है। सभी सखियाँ चकित होती हैं कि उनका पाणिग्रहण तो श्रीकृष्णसे हुआ था, किन्तु यह माया कैसे होती है कि वे जटिला सासके पास चली आई हैं। अब यह विलक्षण भावलीला श्रीमती राधारानीके मानसमें तबतक घूमती है जबतक कि वे नन्दमहल पहुँच नहीं जातीं। नन्दमहलमें भी उन्हें भावकी प्रगाढ़तावश यही अनुभव होता रहता है कि पाकरचना करके उन्हें पुनः लौटकर जावट ग्राम ही जाना है, जहाँ उनका श्वसुरालय है। नन्दमहलसे लौटते समय भी वृषभानुपुर तो विस्मृत हो जाता है एवं जावट ग्रामकी ही स्फूर्ति होती रहती है। इस प्रकार यह भावलीला इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि उनके प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनमें एक अवरोधोंका पहाड़ खड़ा हो जाता है। यहाँ रसिकजन ध्यान रखें कि यह भावात्मक अवरोध भी उद्दाम रसोद्दीपन मात्रके लिये है। यह भावगत है। परन्तु क्योंकि श्रीराधाका भाव भी पूर्ण सत्य, सत्यका भी सत्य है - अतः यह सत्यवत् ही मूर्त्त हो उठता है। वैसे विश्वमें न राधाका कोई पति रायण है, न ही उनकी बहिन मञ्जुश्यामाका दुर्मद गोपसे परिणय हुआ है। वे तो अनादिकालसे श्रीकृष्णकी ही पूर्ण स्वकीया हैं। और होता भी यही है कि इन्हें न दुर्मद दिखता है एवं न ही रायण। इन्हें तो उनमें भी श्रीकृष्ण ही पूर्णतया भरे दृष्टिपथमें आते हैं परन्तु मात्र भावको असीम रूपमें अभिवर्द्धित करनेके लिये तथा उसमें संयोगका असंख्यगुना सुख परिवृद्ध कर देनेके लिये यह अपूर्व रसात्मक परकीया-भावनागत

विरह-तापमयी जावटग्रामलीला एवं उसके लीलापात्र निर्मित हो जाते हैं। जावटग्रामकी लीलाका रसास्वादन करते समय यह तथ्य सदैव पाठकोंके ध्यानमें रहे।

कानन की उन कुञ्जों में वे दिन में घूमा करतीं, प्रियतम!
नीली-सरिता-तट पर उनका रजनी-बिहार होता, प्रियतम!
ऐसी माया थी देवी की, कोई न जान पाता, प्रियतम!
है गाँव-सरोवर किधर कहाँ, वे नाम धरे क्या हैं, प्रियतम।।२०२।।

वे तरुणी युवतियाँ दिनमें उस वनकी कुञ्जोंमें घूमा करतीं और यमुनाके किनारे उनका रात्रि-विहार होता। यह वर्णन श्रीराधा एवं उनकी सखियों, साथ ही चन्द्रावली एवं उनकी सखियोंके निम्रित्तसे भी है। देवीकी ऐसी विलक्षण माया थी कि कोई भी इसे जान ही नहीं पाता था कि वह गाँव कहाँ है, सरोवर किधर है और उनके क्या नाम हैं।।।२०२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

देवीकी ऐसी मायावाली पूरी पंक्तिका अर्थ यही है कि न तो नन्दरानीको इस ग्रामका कुछ, कहीं, कोई अनुसन्धान है, न ही वृषभानुपुरमें माता कीर्त्तिदादिको भी इसके अस्तित्वका कोई पता है। इनके ग्रामनिवासियोंका भी पता तब हो जब कहीं किसी ग्रामकी सत्ता और उसका अनुसन्धान हो। यह तो मात्र श्रीराधारानीकी भावलहर है और उस भावलहरकी संग्राहक – उनकी सखियाँ, उनके प्रियतम श्रीकृष्ण और उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा अवश्य हैं। हाँ, लीला–सूत्रधारिणी भगवती योगमायास्वरूपा पौर्णमासीजी इस सारी भावलहरको महाप्रलय-विन्दुतक पहुँचनेसे बचानेको अवश्य क्रियाशील होती हैं। अतः उन्हें इस लीलाका पूर्ण ज्ञान है। इस रहस्यको अवगत रखकर ही इस लीलाका आनन्द पाठकगण ले सकते हैं।

नयनन ध्यान नंदकुमार।
सीस मुकुट सिखंड राजत नहिन उपमा पार।।
कुटिल केश सुदेश भ्राजत मनो मधुकर जाल।
रचिर केशर तिलक दीनों परम शोभा भाल।।
भृकुटि बंक सुचारु लोचन रही युवती देख।
मनो खंजन चाप डरतें उड़त नाहिं निमेष।।
मकर कुंडल गंड झलकत निरख लज्जित काम।
नासिका छबि कीर लज्जित कविन वरणित नाम।।
अधर विद्रुम दसन दाडिम चिबुक हैं चित चोर।
सूर प्रभु मुख चंद पूरण नारि नयन चकोर।।

।।श्रीराधा।।

अथ श्रीप्रियतम काव्यम्
तृतीय शतक
सार–संक्षेप

(१) पूर्वरागका विवेचन
(२) श्रीराधाकिशोरीका सखियों सहित श्रीसुन्दरीवनमें पदार्पण।
(३) वन-विहङ्गमोंका स्वागत
(४) नित्य निकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीके पालित विचक्षण शुकसे वार्त्तालाप।
(५) शुक विचक्षण द्वारा वनके मानचित्रका वर्णन।
(६) शुक द्वारा वन-पथ-प्रदर्शन।
(७) रसमय श्रीयंत्रका वर्णन।
(८) यंत्रका रहस्योद्घाटन।
(क) शिवयुवती त्रिकोण एवं बिन्दुका रहस्योद्घाटन।
(ख) अरुण पद्मोंके अष्टकोणका रहस्योद्घाटन।
(ग) अन्तर्दशारचक्रका रहस्योद्घाटन।
(घ) बृहद् अन्तर्दशारचक्रका रहस्योद्घाटन।
(ङ) चतुवर्गारचक्रका रहस्योद्घाटन।
(च) श्वेतवर्णके अष्टदल अम्भोजका रहस्योद्घाटन।
(छ) चन्द्रज्योत्स्नाप्रभ षोडशदल अम्भोजका रहस्योद्घाटन।
(ज) चतुरस्रका रहस्योद्घाटन।
(झ) मध्याह्नमें भ्रमरोंके आगमनका रहस्य।
(9) वृन्दादेवी द्वारा स्वागत।
(१०)हंस-हंसिनीकी गूढ़ वार्त्ता।
(क) प्रिया-प्रियतमकी परस्पर शृङ्गार-सज्जाका रहस्योद्घाटन।
(ख) प्रियाके नेत्रोंके कज्जलका भाव।
(ग) रसाद्वैत-रूप मदका भाव।
(घ) दैन्यस्वरूपा कस्तूरीकी बिन्दीका भाव।
(ङ) प्रणय-रोष-रूप लाल महावरका भाव।
(च) नुकीली कँगही, आरसी, पानकी बीड़ी, नीले-पीले वस्त्र, अरुणिम चोलीके सात बन्द, पुष्पसार एवं नीलकमलका भाव।
(११) प्रिया-प्रियतमकी शिव-शिवाभावमें सज्जा।
(१२) रस-सम्प्लावन ही रस-सम्प्लावन।
(१३) उत्तर निकुञ्जकी बात।
(१४) पश्चिम वनस्थलका भाव।
(१५) पूर्व निकुञ्जका भाव।
(१६) चिन्मय दम्पतिके पास पहुँचनेकी जिज्ञासा।
(१७) दो शाश्वत पथ – ज्ञान एवं प्रेम ।
(१८) किशोरी असमञ्जसकी स्थितिमें।

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

तृतीय शतक

पूर्वरागका विवेचन

काम प्राकृत चित्तकी एक वृत्ति है। यह मात्र विषयासक्त लोगोंके मनमें प्रकट होती है। यह सदैव निजसुख-वांछा-रूप ही होती है। इसमें त्यागरूप पवित्रताका लेश भी नहीं होता। इसके ठीक विपरीत प्रेम अत्यन्त निर्मल, विशुद्ध, सरल, प्रियतम-सुखैक-तात्पर्यमय, प्रियतम-सुखरूप होता है। प्रेममें प्रेमास्पदको मन, प्राण - सबकुछ देकर सर्वतोभावेन उसके सुखविधानकी ही सहज चेष्टा होती है। जिस प्रकार विश्वमें जहाँ भी प्रकाश है, उसका उद्गमस्थल मात्र एक सूर्य है; इसी प्रकार विशुद्ध प्रेमकी उद्गमस्थली श्रीराधा हैं। *'राधायामेव यः सदा'* – यह प्रेम श्रीराधासे ही सबको मिलता है। उन्हींमें इसका पूर्ण प्रकाश है। श्रीराधारानीकी सबसे बड़ी विशेषता, उपलब्धि यही है कि वे श्रीकृष्णमयी हैं, श्रीकृष्णमना हैं, श्रीकृष्णजीवना हैं, श्रीकृष्णके अतिरिक्त उनमें कुछ है ही नहीं। यदि उनमें पूर्ण रसात्मक कुछ भी पृथक्ता दृष्टिगोचर होती है तो इतनी ही होती है कि वे सदैव अपने प्रेमका आश्रय बनी रहती हैं और अपने प्रियतमको अपने प्रेमका विषय बनाये रखती हैं। श्रीराधाके श्रीकृष्ण सर्वथा अपने-के-अपने हैं, वे मन-के-मन हैं, प्राणोंके-प्राण हैं, उनकी आत्मा हैं, उनका सबकुछ हैं, परन्तु श्रीराधा अपने प्रियतमसे इतनी बँधी होकर भी उनमें कहीं कुछ भी ऐश्वर्यकी गन्ध नहीं पाती। श्रीकृष्ण मात्र उनके 'मदीय', 'मेरे-के-मेरे', 'अपने-के-अपने' हैं। उनमें न तो अपने प्रियतमके प्रति कहीं भी गौरव-बुद्धि है, न स्वयंमें भी इस अपने प्रेमके कारण कुछ भी अहङ्कार, अभिमानका लेशमात्र भी है।

श्रीराधाका प्रेम चिच्छक्तिकी वृत्ति है। अतः वह स्वरूपतः ही असीम है, सर्वव्यापक है, विभु है। जो कम होता है, वही बढ़कर पूर्ण होता है। अल्पमें ही प्रारंभ, वृद्धि एवं तरतमताकी प्रतीति होती है, परन्तु जो पूर्ण है, उसमें कभी वृद्धि एवं प्रारंभ होता ही नहीं। फिर भी यह राधा-प्रेमकी विलक्षणता ही समझनी चाहिये कि वह उदय होता है और प्रतिक्षण बढ़ता है। श्रीराधाकी विलक्षणता यही है कि अधिरूढ़ मादनाख्यभावमें जिसे शास्त्र *'मादनोऽयं परात्परः'* कहते हैं, नित्य प्रतिष्ठित रहनेपर भी श्रीराधा प्रतिक्षण ही रागके प्रारंभ होनेके पूर्वकी दशाका अनुभव करने लगती हैं। अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे नित्य पूर्ण मिलित रहनेके उपरान्त भी उनमें 'पूर्वराग' भावका ऐसा प्रकाश होता है कि आजतक मैं उनसे कभी मिली नहीं; सर्वप्रथम आज ही, अभी ही उन्हें प्रथम बार देख रही हूँ।

पूर्वरागका अर्थ ही है कि प्रथमबार ही अपने 'विषय' – प्रियतमको देखना और देखते ही प्रथम दर्शनमें ही चित्तका द्रवित होकर उनकी ओर उद्दाम वेगसे प्रवाहित हो उठना। दीपकमें तो जब घृत पूर्ण होता है तब उसमें ज्योति एवं उष्णता बढ़ती है, परन्तु श्रीराधामें तो प्रथम दर्शनमें ही श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसा इतनी बढ़ जाती है कि वे अपने आपको ही भूल जाती हैं। उन्हें अपने प्राण, मन, बुद्धि, शरीरकी तो विस्मृति हो ही उठती है, उनका खान-पान, वस्त्राभूषण-धारण – सबकुछ छूट जाता है। अमिलनमें सभी सुख दुःखमय दिखाई देने लगते हैं, पल-पल मात्र उन्हें ही देखनेकी लालसा रहती है और उनसे अब कैसे मिला जाय और उनके बिना जीवन निस्सार है - ऐसा अनुभव होने लगता है।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाने अपनी आत्मस्वरूपा श्रीराधारानीके इसी अचिन्त्यानन्त भावका इस अध्यायमें पूर्ण प्रकाश किया है। श्रीनारदजी अपने भक्तिसूत्रोंमें पूर्वरागका वर्णन करते हुए कहते हैं – *'तदर्पिताखिलाचारता, तद्विस्मरणे*

परमव्याकुलता' अर्थात् प्रेमोदयके समय ही प्रेमास्पदके चरणोंमें अपना सर्वस्व सहज ही समर्पित हो जाता है, अपने पास कुछ भी नहीं रहता, सभी प्रकारसे परम अकिञ्चनताका उदय हो जाता है। बस, परम प्रियतम श्रीकृष्णकी मधुर मनोहर दिव्य सुधामयी स्मृति ही जीवनकी आधार रहती है। इस भुक्ति-मुक्तिकी सहज विस्मृतिसे समन्वित प्रियतम-स्मृतिकी प्रगाढ़तामें पल-पल मिलनकी व्याकुलताका उत्पन्न होना, साथ ही मिलन असंभव प्रतीत होना – ये सब पूर्वरागके लक्षण हैं।

जब अपना उत्तम-मन्द कुछ भी नहीं बचे; शरीर, मन, प्राण, इन्द्रियाँ, अहंता, ममता, लोक-वेदधर्म, कुटुम्बकी मान-मर्यादा सब सहज ही प्रियतम-चरणोंमें प्रथम दर्शनमें ही समर्पित हो जाय, यहाँ तक कि जागृत् , स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय; भूत-भविष्य-वर्तमान – ये तीनों काल बिना किसी अहङ्कारके समर्पित हो जावें और तब सबको पवित्र करनेवाला विलक्षण दैन्य प्रकट हो, एवं प्रियतमका अनन्य स्मरण होने लगे – उनके बिना पल-पल कोटि युगोंसे भी अधिक सुदीर्घ हो उठे – इसे प्रेमकी 'पूर्वराग' अवस्था कहा जाता है। श्रीराधारानीके इसी पूर्वरागमें अब सुधीजन अवगाहन करें।

श्रीराधाकिशोरीका सुन्दरीवनमें प्रवेश

मन्थर गति से चलती, हँसती आयी नृपकी पुत्री, प्रियतम !
सोने की पुतली-सी सब थीं घेरे सहचरियाँ, हे प्रियतम !
किरणें बिखेर सुन्दरता की, सब ओर खड़ी वह थी, प्रियतम !
वनके समक्ष उत्तर मुख हो, भोली चितवन वाली, प्रियतम॥ २०३॥

मन्द-मन्थर गतिसे चलकर महाराज वृषभानुकी पुत्री राधाकिशोरी उत्तराभिमुख होकर सुन्दरी-वनस्थलके सामने आकर खड़ी हो गयी और वह मनोहर हँसी हँस रही थी। स्वर्णप्रतिमाके सदृश उसकी सहचरियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं। सब ओर सौन्दर्यकी किरणें बिखेरती हुई किशोरीकी आँखोंसे सरलताका स्रोत प्रसरित हो रहा था। एक और विशेषता थी किशोरीमें - जो सहचरी उसे देखती, उसे अनुभव होता कि किशोरी मेरी ही ओर मुख किये खड़ी है।।। २०३।।

थे गाल-भाल पर रहे व्यक्त हो श्रमकण मोती-से, प्रियतम !
शीतल बयार झुर-झुर करती थी व्यस्त पोंछने में, प्रियतम !
मखमल-सी कोमल दूब हरी लहराती थी हिलती, प्रियतम !
मनुहार धरा मानो करती 'री! नेक बैठ जा तू, प्रियतम॥ २०४॥

उसके कपोलपर, भालपर मोतीके समान श्रमकण व्यक्त हो रहे थे। झुर-झुर करती शीतल बयारका झौंका उसके श्रीअङ्गोंको छू जाता, मानो बयार उसके श्रीमुखका स्वेद पोंछनेमें व्यस्त थी। मखमल-सी कोमल हरी दूर्वा सामने लहरा रही थी। उसका स्पन्दन देखकर ऐसा लगता था, मानो वनस्थलकी धरा किशोरीका मनुहार करके कह रही हो- 'अरी ! तनिक बैठ जा सही'।।२०४।।

थी त्वरा नृपतिकन्या में पर, कैसे विश्राम करे, प्रियतम !
आकर्षित था करता वह वन कमनीय दूर से ही, प्रियतम !
तितली-सी उड़ती जा पहुँची भीतर वह सीमा के, प्रियतम !
मिँहदी की झाड़ी के पथ से उन सबको साथ लिये, प्रियतम॥२०५॥

किन्तु राजतनूजामें अत्यन्त शीघ्रता भरी थी; वह किस भाँति विश्राम करे; क्योंकि समक्षका कमनीय वनस्थल - वनस्थलकी धरा उसे आकर्षित जो कर रही थी - अरी ! तू नेक बैठ जा' - मानो इस प्रकार किशोरीकी अभ्यर्थना कर रही थी वह। अतएव तितली-सी उड़ती हुई वह शीघ्र-से-शीघ्र वनस्थलकी सीमामें प्रविष्ट हो गयी। मेंहदीकी झाड़ीका पथ आगे फैला हुआ था। सबको साथ लिये वह उसी पथसे ही आगे चल पड़ी।।२०५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

संक्षेपमें इन उपरोक्त छन्दोंमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा बालिका बृषभानु-नृपनन्दिनी श्रीराधाके सात वर्ष वयकी हो जानेपर श्रीसुन्दरीसरोवरके चतुर्दिक् स्थित काम्यवनका दर्शन करने एवं वहाँसे पुष्पचयन करके लानेकी लीलाका उल्लेख कर रहे हैं। सात वर्षकी बालिका राधा अपने माता-पिताकी आज्ञा लेकर अपनी ललिता आदि सखियों एवं सहोदरा छोटी बहिन मञ्जुश्यामा (अनंगमञ्जरी) के साथ तितलीकी तरह उड़ती-फुदकती मेंहदीकी झाड़ीके पथसे उस परम दिव्य वनमें प्रवेश कर जाती है।

वन-पक्षियों द्वारा स्वागत

शुभ शकुन बताते खञ्ज को पहले उसने देखा, प्रियतम !
जो सबसे अधिक सयानी थी सखियोंमें, वह बोली, प्रियतम।
'अप्रतिम यहाँ कोई मङ्गल निश्चय होगा, सखि री,' प्रियतम !
मनमें नृपकन्याके इससे उत्कण्ठा और बढ़ी, प्रियतम।।२०६।।

इतनेमें शुभ शकुनका संकेत करते हुए कुछ खञ्जनोंपर ही अब सर्वप्रथम उसकी दृष्टि जा पड़ी। उस ओर सबसे अधिक चतुरा सहचरी बोल उठी-'अरी सखि ! यहाँ निश्चय ही कोई अप्रतिम मङ्गलका अनुभव हम सबोंको होगा। इस शकुनका निश्चय ही यही संकेत है'। सहचरीकी यह उक्ति सुनते ही किशोरीकी उत्कण्ठा अतिशय परिवर्धित हो गयी।।२०६।।

इतनेमें उड़ आया कपोत अभिनन्दन करने, हे प्रियतम !
वह कण्ठ फुलाकर लगा नृत्य अपना दिखलाने, हे प्रियतम !
'पीहू' करके आया मयूर, उसने तानी छतरी, प्रियतम !
सुन्दर अत्यन्त एक शुक था, प्रणिपात किया उसने, प्रियतम।।२०७।।

तत्क्षण उस ओरसे, मानो किशोरीका अभिनन्दन करने आया हो इस भाँति शीघ्रतासे उड़कर एक कपोत सामने आया। कपोत अपना पङ्ख फैलाकर, कण्ठ फुलाकर नृत्यकी मुद्रामें अवस्थित हो गया - नृत्यकी भङ्गिमाका प्रदर्शन करने लगा। अब क्या था, 'पीहू' बोलता हुआ मयूर भी वहाँ आ पहुँचा और उसने छतरी तान दी। एक मनोहर तरुवरकी डालीपर - किशोरीके दक्षिणकी ओर - एक शुक पक्षी बैठा दीख गया। उसकी दृष्टि पड़ते ही शुकने प्रणिपात किया, अपना सिर डालीसे सटा दिया।।२०७।।

आया वह नीलकण्ठ, अपनी ग्रीवा नीची करके, प्रियतम !
मुख नृपदुहिता की ओर किये चल पड़ा गुड़क-गुड़के, प्रियतम।
आयी बट-तीतर की टोली, रचनाकर मण्डल की, प्रियतम !
आगत उन सभी अतिथियों की करती प्रदक्षिणा थी, प्रियतम।।२०८।।

अब उड़कर नीलकण्ठ आया; अपनी ग्रीवा झुकाकर, मुख किशोरीकी ओर किये गुड़क-गुड़ककर चलने

लगा। नीलकण्ठके साथ ही बटेर, तीतरकी पंक्तियाँ भी उड़कर आयीं और किशोरीके समक्ष मण्डलकी रचना करके, फिर तत्क्षण मण्डलका विघटन करके उन आगन्तुक अतिथियोंकी वह विहंगम-समूह प्रदक्षिणा करने लगा।।२०८।।

वे रंग-बिरंगे कितने थे क्रमशः विहङ्ग आये, प्रियतम !
उनकी गणना करके कैसे, क्या बतलाऊँ तुमको, प्रियतम !
नानापन अहो! प्रकृति में जो है नित्य सृष्ट होता, प्रियतम !
मानो वह सभी विहग बनकर आया स्वागत करने, प्रियतम।।२०९।।

इस प्रकार रंग-बिरंगे कितने विहंगम क्रमशः आये,उनकी गणना करके मैं कैसे बताऊँ ? 'नीलसुन्दर देवता! देखो, प्रकृति नित्य नूतन रूप धारण करती ही रहती है और उससे प्रतिक्षण नानापन सृष्ट होता रहता है। मानो यही विविधता विहंगम बनकर किशोरीका स्वागत करने आयी हो-इतना ही कह सकूँगी मैं।'।।२०९।।

हँस-हँसकर नृपतिनन्दिनी थी उनको निहार लेती, प्रियतम !
कहती सहेलियों से फिर थी, 'री ! क्या दूँ मैं इनको?' प्रियतम!
'जो प्यार लिये ये आये हैं, वह इनकी ही निधि है', प्रियतम !
'मेरा भी रोम-रोम इन पर है न्योछावर अब तो', प्रियतम।।२१०।।

नृपतिनन्दिनी हँस-हँसकर उनको निहार लेती और सहचरियोंसे कहने लगती- 'अरी ! इन्हें मैं क्या दूँ ? जो अनुराग अपने उरस्थलमें लिये ये आये हैं, यह तो इनकी ही निधि है। बस, मेरा भी रोम-रोम इनपर न्योछावर है, इतनी ही उक्तिसे अनुभूतिका संकेत कर सकती हूँ।'।।२१०।।

'भाषा मैं नहीं जानती हूँ इनकी, क्या बात करूँ', प्रियतम!
'कोई तुममें से भले मुझे बतलाओ तनिक भला?' प्रियतम!
इतना कहते ही कीर वही उड़कर सन्मुख आया, प्रियतम !
सुस्पष्ट मानवी-सी सुमधुर बोली में बोल उठा, प्रियतम।।२११।।

'देखो बहनों ! मैं इनकी भाषा नहीं जानती। मैं क्या बात करूँ इनसे, कोई तुममेंसे मुझे बतला सके तो तनिक बतला दो भला !' किशोरीकी उक्ति पूरी होते-न-होते वही कीर - जिसने पहले प्रणाम किया था - उड़कर किशोरीके समक्ष आ गया; और मानवकी भाँति सुमधुर बोलीमें सुस्पष्ट वह बोल उठा-।।२११।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

वहाँ वनमें श्रीराधाकिशोरीको सर्वप्रथम खञ्जन पक्षीका दर्शन होता है। इस पक्षीका दर्शन शुभ शकुनका संकेत माना जाता है, अतः बालिका श्रीराधा अपनी सखियोंसे कहती हैं कि निश्चय ही आज कोई परम शुभ - मंगल घटित होगा। इस खञ्जन पक्षीके प्रथम दर्शनसे नृपनन्दिनीके मनमें वन-दर्शनकी उत्कण्ठा और तीव्र हो उठती है।

इतनेमें ही उसे कपोत, मयूर और तब एक शुकके दर्शन होते हैं। ये बालिका राधाका अभिनन्दन करते हैं, उन्हें अपना नृत्य दिखाते हैं एवं शुक (तोता) पक्षी आकर उसे प्रणाम करता है। इसके पश्चात् नीलकण्ठ, बक-तीतरोंकी टोली और रंग-बिरंगे क्रमशः कितने ही अगणित विहंग उसका स्वागत करने आ जाते हैं। यह नृपदुहिता उन्हें हँस-हँसकर निहारती है एवं अपनी सहेलियोंसे कहती है कि -'री सखियों ! ये सभी पक्षी जो इतना प्यार लेकर मेरे सम्मुख आये हैं, यह

तो इनकी ही निधि है। मेरा भी रोम-रोम स्वभावतः ही इनपर न्यौछावर हो रहा है। मैं इनकी भाषा जानती नहीं, क्या तुममेंसे कोई इनकी भाषा समझनेकी कला जानती हो ? यदि जानती हो तो मुझे भी वह सिखादो।' इतनेमें ही वह कीर, जिसने किशोरीको प्रणाम किया था, उड़कर उसके सम्मुख आ जाता है, और मानवकी-सी सुमधुर बोलीमें बोल उठता है।

'तुम कहो, राजनन्दिनि ! जो भी चाहो कहना हमसे,' प्रियतम !
'हम तो निहाल सब होंगे ही, भर सुधा श्रवणपुट में;' प्रियतम !
'अविछिन्न काल से सुखमय यह वनवास हमारा है;' प्रियतम !
'कानों में भरा अमिय-रस यह सागर बन उमड़ेगा;' प्रियतम ॥२१२॥

'राजनन्दिनि ! तुम जो भी कहना चाहती हो, हमसे कह दो। तुम्हारी वाणी सुनकर हमारे श्रवणपुटोंमें सुधाकी धारा प्रवाहित होने लगेगी; हम सभी निहाल हो जायँगे। और सुनो, हमारा इस वनस्थलका निवास सब ओरसे सुखसे परिपूर्ण है; कालसे अविच्छिन्न है, और सच तो यह है कि तुम्हारे स्वरसे निस्सृत अमृतरस जो मेरे कर्णपुटोंमें समाया हुआ है, रसका समुद्र बनकर अविलम्ब उमड़ चलेगा, सही !।।२१२।।

अद्भुत तोता - विचक्षण शक

विस्मय से कुछ पल नृपपुत्री अपलक चुपचाप रही, प्रियतम !
देखा फिर बड़ी सहेली को, अद्भुत उस तोते को, प्रियतम !
कुछ सोच सखी बोली, 'शुक है प्रतिपालित कहीं हुआ,' प्रियतम !
'अनुकरणशील यह जाति सदा खग की होती ही है;' प्रियतम ॥२१३॥

राजपुत्री कुछ पल अपलक रहकर, विस्मयमें डूबी हुई चुपचाप खड़ी रही। एक बार उसने फिरसे उस अद्भुत तोतेपर अपनी दृष्टि डाली और अपनी ज्येष्ठा सहेलीको देखने लगी। ज्येष्ठा सहचरीने कुछ सोचकर कहा-'बहन री! यह शुक कहीं प्रतिपालित हो चुका है। यह विहंगम स्वभावसे ही अनुकरणशील होता है, इसकी जातिमें ही यह गुण अनादिसिद्ध है।'।।२१३।।

उत्तर से नृपति-तनूजा को सन्तोष न किंतु हुआ, प्रियतम !
बोली, 'री ! फिर इसने कैसे मेरा परिचय जाना?' प्रियतम !
'तू पता लगा किसके घर यह है पला और इसकी;' प्रियतम !
'प्रतिभा स्वभावगत है या यह है रटी हुई विद्या,' प्रियतम ॥२१४॥

किन्तु इस उत्तरसे नृपतितनूजाको संतोष नहीं हुआ। वह तत्क्षण बोल उठी-'अच्छा बहन ! तू यह बतला - इसने मेरा परिचय कैसे प्राप्त कर लिया ? देख, तू पता लगानेकी चेष्टा कर, यह किसके घर प्रतिपालित हुआ है। इसकी यह प्रतिभा स्वाभाविक है, अथवा यह मात्र इसकी रटी हुई विद्या है।'।।२१४।।

सहचरी सोचती रही, कीर फिर से वह बोल उठा, प्रियतम !
अवनी को अरुण चञ्चु से छू, दृग घुमा-घुमा रस से, प्रियतम !
'हे राजकुमारी ! नित्य दास-दासी हैं हम उनके;' प्रियतम !
'कालिमा-गौरपन निरुपम है निरवधि तन में जिनके;' प्रियतम ॥२१५॥

लाडिलीकी बात सुनकर सहचरी सोचने लग गयी। इतनेमें कीर बोल उठा। बोलनेसे पहले उसने अपने अरुण चञ्चुसे धराका स्पर्श किया। आनन्दसे उसके दृग घूमने लग गये तथा वह बोलता जा रहा था-'राजकुमारी हे ! हम सभी उनके नित्य दास-दासी हैं, जिनके तनकी-कालिमा एवं गौरपन-निरुपम ही मात्र नहीं, अपितु उनके तनसे यह निरवधि संलग्न भी है भला !'।।२१५।।

'जब जितना हमें पढ़ाते हैं वे, तब उतना-सा ही; प्रियतम!
'होता है ज्ञान उदय, हम तो हैं यन्त्र सभी उनके; प्रियतम!
'यह देवि! पाँवड़ा बिछा हुआ दृगका है स्वागत में; प्रियतम!
'हैं भाग बड़े हम सबके, जो तुम यहाँ पधारी हो।' प्रियतम।।२१६।।

'और सुनो, वे ही जब जितनी शिक्षा देते हैं- हमें पढ़ाते हैं भला,- उतना-सा ही ज्ञान हममें उदित हो जाता है। हम तो उनके ही यन्त्रमात्र हैं। देवि ! जय हो, जय-जय-जय हो तुम्हारी ! देखो, हमारे दृगका पाँवड़ा तुम्हारे स्वागतके लिये तुम्हारे सामने आस्तृत है...... हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो तुम यहाँ आज पधार ही गयीं।'।।२१६।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

राजपुत्री उस शुककी बातें सुनकर अपनी सखी ललितासे कहती है - 'बहिन ! तनिक पता कर कि यह किसका पालतू शुक है एवं इसने मेरा परिचय कैसे जाना ? वह शुक पुनः बोल उठता है- 'राजकुमारी ! हम तो श्याम-गौर शरीर नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीके नित्य दास हैं और वे जितना हमें पढ़ाते हैं, उतना-सा ही ज्ञान हममें स्वतः उदित हो जाता है। हम तुम्हारा स्वागत करते हैं, हमारा धन्य भाग्य है जो आज आप इस वनमें पधारीं।'

अब रही न विस्मय की सीमा राजा की बेटी के, प्रियतम!
शुक को निहार कर पुनः-पुनः उत्तर की ओर बढ़ी, प्रियतम!
प्राकृतिक एक-से-एक बड़ा रमणीय दृश्य आता, प्रियतम!
आँखें उसकी टिक जाती थीं, रह-रहकर वह रुकती, प्रियतम।।२१७।।

अब तो राजनन्दिनीके विस्मयकी सीमा न रही......शुककी ओर बार-बार निहारती हुई वह उत्तरकी ओर अग्रसर हुई। एक-से-एक रमणीय सुन्दर प्राकृत दृश्य उसके सम्मुख आ जाते, उन दृश्योंपर उसकी दृष्टि टिक जाती और किशोरी चलते-चलते रुककर इस अनुपम सौन्दर्यको निहारने लग जाती।।।२१७।।

बाहर-बाहर से इस वनकी जिनने दी थी फेरी, प्रियतम!
उनका वर्णन सुन्दरता का इसकी शतगुणित हुआ, प्रियतम!
उस राजकुमारी के मनमें अब था पछतावा-सा, प्रियतम!
खेली मैं और, और वनमें क्यों यहाँ नहीं आयी, प्रियतम।।२१८।।

जिन-जिनने इस वनकी प्रदक्षिणा बाहर-बाहरसे की थी और जिन्होंने भी इस वनके सौन्दर्यका वर्णन किया था, उनका वह वर्णन - वर्णनका सौन्दर्य - किशोरीको ऐसा लगा मानो इस क्षण शतगुणित होकर उसके समक्ष आ गया है। पश्चात्तापकी एक लहरी-सी किशोरीके मनको आत्मसात् करने लगी। मन-ही-मन वह सोच रही थी - 'हाय रे ! मैं दूसरे-दूसरे वनस्थलोंमें खेलती रही, यहाँ अबसे पहले ही क्यों नहीं आयी.........'।।।२१८।।

सुकुमारी अब वह थकी हुई दीखी सहचरियों को, प्रियतम !
चलती-चलती अविराम फँसी बातों में, शोभा में, प्रियतम !
कर सकीं उसे यद्यपि सखियाँ सम्मत कठिनाई से, प्रियतम !
आकर पर वह फिर बैठ गयी वट-तरु की छाया में, प्रियतम ॥२१९॥

किन्तु सुकुमारी राजपुत्री अब सहचरियोंको अत्यधिक थकी-सी दीखने लगी-अविराम वह चलती जो रही है। सहचरियोंकी बातमें, उस वनस्थलके सौन्दर्यमें, उसकी आँखें, मन फँस जो चुका था। यद्यपि अत्यन्त कठिनाईसे सहचरियाँ उसे विश्रामके लिये सम्मत कर सकीं, राजनन्दिनी कुछ पग आगे चलकर एक वटतरुकी छायामें बैठ गयी।।।२१९।।

तोतेके द्वारा वनके मानचित्रका वर्णन

था शुक भी साथ-साथ आया, डाली पर जा बैठा, प्रियतम !
बतलाने लगा रहस्यभरा वह मानचित्र वनका, प्रियतम !
क्या-क्या वस्तुएँ अवश्य यहाँ हैं दर्शनीय-इसका, प्रियतम !
नृपपुत्री के समक्ष वर्णन आकर्षक कर बैठा, प्रियतम ॥२२०॥

उस ओर वह तोता भी साथ-साथ उड़ता आया था। वह भी उस वटतरुकी एक डालीपर जा बैठा। पर वह क्षणभर भी चुपचाप न रह सका। वनस्थलके मानचित्रका चित्रण करनेमें संलग्न हो गया वह। वनका मानचित्र अत्यन्त रहस्यभरा था भला ! शुक उसकी ओर संकेत करता हुआ बोल रहा था। यहाँ क्या-क्या वस्तुएँ अवश्य-अवश्य दर्शनीय हैं-इसका आकर्षक वर्णन वह किशोरीके समक्ष कर ही बैठा।।।२२०।।

सुन रही ध्यान देकर वह थी प्रत्येक बात शुक की, प्रियतम !
सुनते-सुनते तोते के प्रति बढ़ गयी प्रीति उसकी, प्रियतम !
बोली, रे कीर ! बैठ जा तू आकर समीप मेरे; प्रियतम !
दोनों हाथों से छू-छूकर मैं प्यार करूँ तुझको, प्रियतम ॥२२१॥

राजनन्दिनी शुककी कही हुई बातोंको पूरे मनोयोगसे सुन रही थी। जैसे-जैसे सुनती जाती थी, तोतेके प्रति उसका अनुराग बढ़ता जाता था। और अब तो अत्यधिक बढ़ चुका था। वह बरबस बोल उठी-'कीर रे ! तू आकर मेरे समीप बैठ जा । मैं अपने दोनों हाथोंसे छू-छूकर तुझे प्यार करूँ, यह मेरी अभिलाषा है, तू सुन ले।'।।२२१।।

पड़ते न पलक पड़ते तोता बड़भागी उड़ आया, प्रियतम !
कर-पल्लव पर आसीन हुआ उस नृपतिनन्दिनी के, प्रियतम !
प्राणों के रस से वह उसको अभिषिक्त लगी करने, प्रियतम !
आँखें पल-पल शुक की मुँदतीं, मानो समाधि लगती, प्रियतम ॥२२२॥

पलक पड़ते-न-पड़ते वह सौभाग्यशाली तोता किशोरीके सम्मुख आ गया। सम्मुख ही नहीं, किशोरीके कर-पल्लवपर आकर बैठ गया। किशोरीने अपने प्राणोंके रससे उसका अभिषेक किया, वह करती ही जा रही थी एवं उस ओर शुककी ऐसी दशा हुई, वह आनन्दमें ऐसे विभोर होता जा रहा था मानो उसकी समाधि लगने जा रही हो।।।२२२।।

अनुजा सहोदरा दौड़ी, तरु था एक पास में ही, प्रियतम!
'टप-टप' कर चूते थे मीठे फल पके हुए उससे, प्रियतम!
अञ्जलि में भरकर ले आयी फल चार-पाँच पल में, प्रियतम!
दे दिया बहिन को, बहिन लगी रखने शुक के मुख में, प्रियतम॥२२३॥

उस ओर किशोरीकी सहोदरा बहन मञ्जुश्यामा दौड़ पड़ी। समीप ही एक वृक्ष था। उस वृक्षसे पके हुए फल टप-टपकर गिर रहे थे। क्षण बीतते-न-बीतते उसकी अञ्जलि सुपक्व-सुमिष्ट फलोंसे भर गयी और वह आकर किशोरीके हाथोंपर फल रखकर उसकी ओर देखने लगी, तथा बहन किशोरी एक-एक फल उठाकर शुकके मुँहमें डालने भी लग गयी।।।२२३।।

तोतेके द्वारा वन-पथका निर्देश

इतना आदर पाकर बोला वह कीर नम्रता से, प्रियतम!
'हे देवि! चलो पथ दिखलाऊँ मैं इस वन का तुमको, प्रियतम!
'कोने-कोने से परिचित हूँ, इसमें ही रमा हुआ, प्रियतम!
'स्वीकार करो अतिशय नगण्य सेवा तुम यह मेरी, प्रियतम॥२२४॥

किशोरीसे इतना आदर-सम्मान पाकर अतिशय नम्रता-परिपूरित वाणीसे शुक बोलने लगा-'हे देवि! मैं इस वनका पथ तुम्हें दिखलाऊँ। मैं इसके कोने-कोनेसे परिचित हूँ। इसी वनमें मैं रमा हुआ हूँ। देवि ! अतिशय नगण्य सेवा है यह मेरे द्वारा तुम्हारी। तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो और मेरे पीछे चली चलो।।।२२४।।

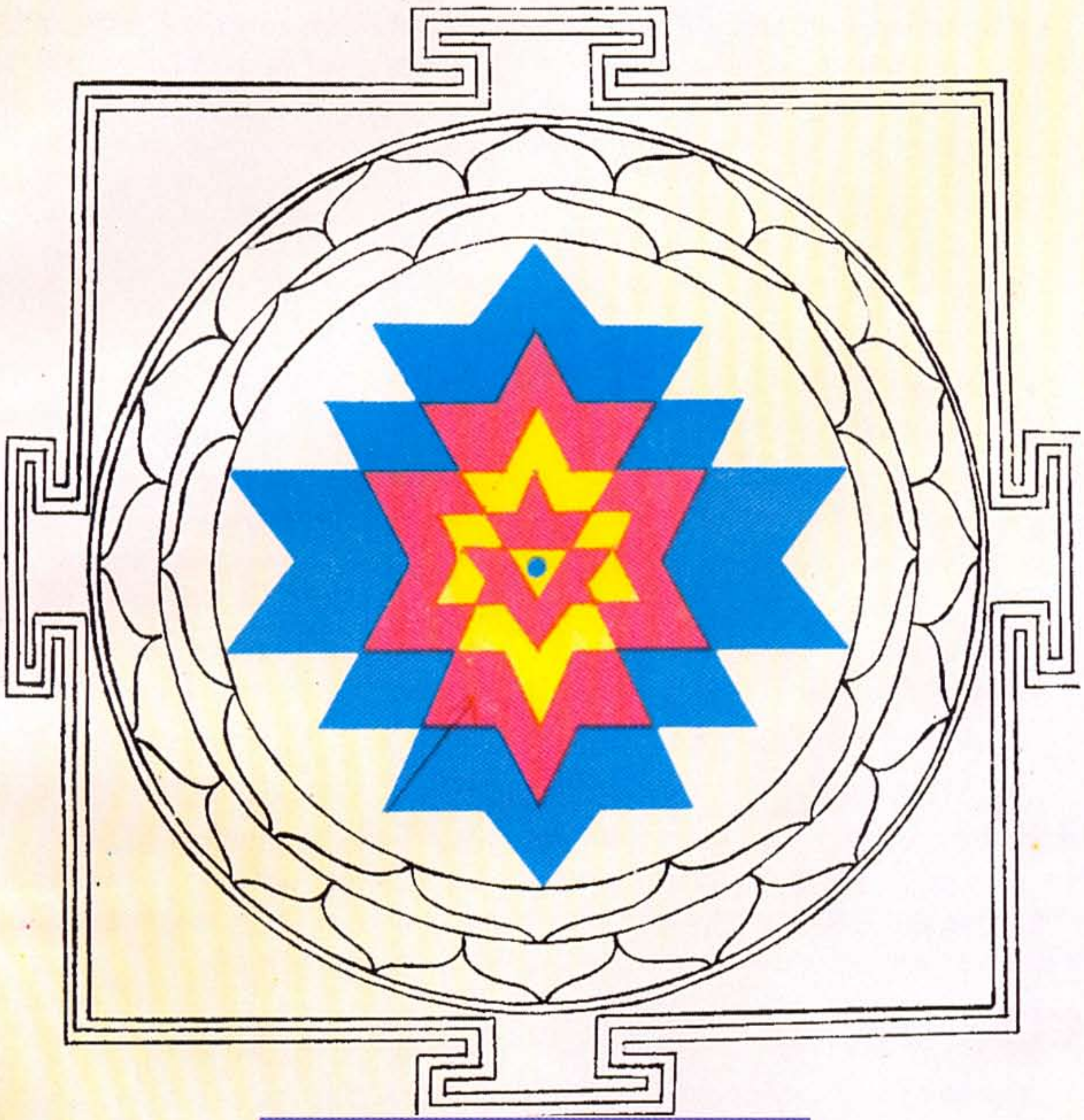
'पहले, महीपनन्दिनि! चलकर इस वायुकोण-पथ से, प्रियतम!
'देखो उस दिव्य-सरोवर को, अनुपम सुमिष्ट जल है, प्रियतम!
'प्रत्यक्ष महामाया की है कुछ शक्ति भरी जल में, प्रियतम!
'पीते ही आँख बदल कर है दर्शन विचित्र होते, प्रियतम॥२२५॥

'देखो किशोरी ! सर्वप्रथम इस वायुकोणके पथसे चलकर उस दिव्य सरोवरको देख लो। इस सरोवरका जल अनुपम सुमिष्ट है। इस जलमें महामायाकी कुछ शक्ति प्रत्यक्ष भरी हुई प्रतीत होती है, क्योंकि जल पीते ही आँखें तत्क्षण बदल जाती हैं, जल पीनेवालेको विचित्र दर्शन होने लगते हैं।।।२२५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीराधाकिशोरीको पछतावा होता है कि पहले वह इतने सुन्दर इस वनमें क्यों नहीं आयी ? सखियोंको अब वह राजकुमारी कुछ चलते-चलते थकी-सी दिखाई पड़ने लगी थी। वे उससे विश्राम करनेका आग्रह कर रही थीं, परन्तु राजकुमारी वनदर्शनसे मुग्ध बढ़ती ही जा रही थी। अन्ततः बहुत चेष्टा करनेपर ही वे उसे मना पायीं और एक वटवृक्षके नीचे अन्ततः वह सखियोंके कहनेसे बैठ गयी।

वह शुक तो राजकुमारीके साथ ही आया था, वह भी उस सुन्दर वटवृक्षकी डालीपर बैठ गया। राजकुमारीका उस शुकपर इतना स्नेह उमड़ता है कि वह उसे स्नेह करने अपने पास बुलाती है। शुक राजकुमारीके आदेशका पालन करता हुआ उसके वाम कर-पल्लवपर बैठ जाता है। राजकुमारी दक्षिण हाथसे सुकुमार संस्पर्शकर उस शुकपक्षीपर अपने प्राणोंका प्रीतिरस उँडेलने लगती हैं और शुक भी अपने प्राणोंको आप्यायित करनेवाले उस संस्पर्शको पाकर



रसमय श्रीयन्त्र (पृष्ठ २०५)

समाधिस्थ-सा हो जाता है। राजकुमारीकी सहोदरा अनुजा पासहीके एक वृक्षसे पके मीठे फल चयन कर लाती है और अपनी बहिनको दे देती है। राजकुमारी राधा अतिशय प्यारसे वे फल शुककी चञ्चुमें देने लगती है।

राजकुमारी राधासे इतना आदर पाकर शुक कृतज्ञतामें भरकर कह उठता है - 'हे नृपनन्दिनी ! मैं इस वनके कोने-कोनेसे परिचित हूँ। मैं तुम्हें पथ-निर्देश करता हूँ - मेरी इस तुच्छ सेवाको तुम स्वीकार कर लो। हे राजकुमारी! यहाँसे वायव्यकोणके पथसे चलकर पहले इस सरोवरके दर्शन करो। इस सरोवरके जलमें महादेवीकी ऐसी विलक्षण शक्तिभरी है कि जो भी इस जलको पीता है, तत्क्षण ही उसकी आँख ही बदल जाती है और उसे अलौकिक विचित्र दर्शन होने लगते हैं।

रसमय श्रीयंत्रका वर्णन

'फूले सरोज का चित्र नित्य है एक लिखा उसमें ; प्रियतम !
'है मध्यदेश में बिन्दु एक नीले अरविन्दों का ; प्रियतम !
'उसको पिङ्गल नीरज-निर्मित घेरे त्रिकोण फिर है ; प्रियतम !
'है अरुण कञ्जका अष्टकोण डाले उस पर घेरा ; प्रियतम ।।२२६।।

'राजनन्दिनि ! इस सरोवरके वक्षःस्थल - जलपर फूले हुए सरोजकी सहायतासे एक नित्य चित्र अङ्कित है और इसी सरोजके चित्रमें नीले अरविन्द पुष्पोंसे ठीक बीचमें एक विन्दु निर्मित हुआ है। उस विन्दु बने हुए पुष्पको घेरकर पीतवर्णके नीरज सुमनोंसे निर्मित एक त्रिकोणका अङ्कन हुआ है। और उस त्रिकोणपर घेरा डाले अरुण सरोरुहोंसे एक अष्टकोण बना हुआ है।।।२२६।।

'पीतारुण अरविन्दों के हैं दो फिर दशकोण बने ; प्रियतम !
'क्रमशः आकृति में बड़े, सतत नव-नव शोभा वाले ; प्रियतम !
'उनको घेरे है एक बड़ा श्यामल सरोरुहों का ; प्रियतम !
'नव नित्य चतुर्दश कोण अहो! सौरभ से भरा हुआ ; प्रियतम ।।२२७।।

'उसको घेरे हुए पीतारुण कमलोंसे फिर दो दशकोण निर्मित हुए है। क्रमशः दोनों ही आकृतिमें बड़े होते गये हैं और देखो भला ! सतत नव-नव शोभा ये दोनों दशकोण धारण करते रहते हैं। उन दोनोंको आवृत करते हुए एक विशाल-श्यामल नव सरोरुहोंसे निर्मित नित्य नवीन-नवीन शोभा धारण करनेवाला- चतुर्दशकोण निर्मित हुआ है। अहो ! यह चतुर्दशकोण नित्य अद्भुत सौरभसे परिपूरित रहता है और क्षण-क्षण एक नवीन शोभा इसमें दीखती है।।।२२७।।

'स्वदलों की अनुकृति धरते अब सित नवल अम्बुरुह के ; प्रियतम !
'हैं बने अष्टदल दिनकर की किरणें बिखेरते-से ; प्रियतम !
'उनको भी लिये हुए उरमें उज्ज्वल कमलों के वे ; प्रियतम !
'सोलह दल हैं अद्भुत शशि की शोभा हरने वाले ; प्रियतम ।।२२८।।

'इनको घेरे हुए अब समुज्ज्वल नवल अम्भोरुहके अष्टदल परिशोभित हैं और आश्चर्य यह है कि वे सचमुच मानो सूर्यकी किरणों-जैसी आभा बिखेर रहे हैं। इनको भी अपने उरस्थलमें लिये हुए श्वेत कमलोंके षोडश दल हैं। वे अद्भुत चन्द्रज्योत्स्नाकी शोभाका अपहरण कर रहे हैं।।।२२८।।

'चतुरस्र मनोहर पद्मोंका विरचित है अब ऐसा,' प्रियतम!
'जो सात रंग पल-पलमें है क्रमशः धारण करता,' प्रियतम!
'आँखें उससे जुड़ते ही यह विभ्रम-सा होता है,' प्रियतम!
'पावस, बसन्त ऋतु, शरद, शिशिर, आतप, हिममें क्या है,' प्रियतम॥२२६॥

'उनके चारों ओर मनोहर पद्मोंका चतुरस्र निर्मित है, जो पल-पलमें क्रमशः सात रंगोंका प्रकाश करता है। इतना ही नहीं, उनपर दृष्टि पड़ते ही ऐसा विभ्रम-सा होने लगता है- न जाने कौन-सी ऋतु है? पावस, बसन्त, शरद, शिशिर, ग्रीष्म, हेमन्त- क्या है ?।।२२९।।

'उस नील सरोज-बिन्दु पर जब पड़ती रवि-किरणें हैं,' प्रियतम!
'ऊपर से मध्यगगन से, तब घटती यह घटना है,' प्रियतम!
'भौंरे सब इस वनके तत्क्षण उड़कर आ जाते हैं,' प्रियतम!
'मिलकर असंख्य वे रचते हैं सुन्दर वितान काला,' प्रियतम॥२३०॥

'और सुनो किशोरी ! जिस समय उपर्युक्त उस नील सरोजविन्दुपर आकाशसे-मध्यगगनसे- अंशुमालीकी किरणें पड़ने लगती हैं, तब अहो ! एक अतिशय आश्चर्यजनक घटना घटती है- इस वनस्थलमें जितने भ्रमर हैं, वे सब-के-सब उड़कर यहाँ आ ही जाते हैं। सबकी अद्भुत एकता-सी होकर असंख्य भोंरे मिलकर एक सुन्दर कृष्णवर्णके वितानकी रचना कर देते हैं।'।।२३०।।

'अचरज है, सब मँडराते हैं ऊपर वे नभमें ही,' प्रियतम!
'नीचे क्षणभर भी उतर नहीं आते फूलों पर हैं,' प्रियतम!
'यह तीस पलों का दृश्य अहो! प्रतिदिन ही होता है,' प्रियतम!
'मध्याह्न बीतते ही फिर हैं सब-के-सब उड़ जाते,' प्रियतम॥२३१॥

'यह आश्चर्यकी ही बात है कि वे ऊपर आकाशमें ही मँडराते रहते हैं। क्षणभरके लिये भी उतरकर फूलोंपर नहीं बैठते। प्रतिदिन ही तीस पलतक यह दृश्य दिखाई देता है और मध्याह बीतते ही सब-के-सब फिरसे उड़ जाते हैं।'।।२३१।।

'ज्यों तथा उतरने लगता है यह तरणि अस्तगिरि में,' प्रियतम!
'गूँ-गूँ करता दक्षिण पथसे है एक मधुप आता,' प्रियतम!
'कुछ पल उन नलिनों की फेरी देकर ढल पड़ता है,' प्रियतम!
'पीले जलरुह के उरपर फिर रहता प्रभात तक है।' प्रियतम॥२३२॥

तथा जिस समय तरणिकी किरणें अस्तगिरिमें प्रविष्ट होने लगती हैं, ठीक इसी समय गूँ-गूँका स्वर भरता हुआ एक भ्रमर दक्षिणके पथसे यहाँ आ जाता है। कुछ पल उन ऊपर-वर्णित नलिनोंकी फेरी देकर वह नीचेकी ओर ढल पड़ता है, पीत जलरुहके उरस्थलपर। और प्रभाततक वह वहीं रहता है भला !।।२३२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अप्राकृत लीला-राज्यके श्रीयंत्रका वर्णन एवं रहस्योद्घाटन

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने उपरोक्त छन्दोंमें जो कुछ वर्णन किया है, वह आदिलीलामहाशक्ति भगवती महात्रिपुरसुन्दरीके श्रीयंत्रका वर्णन है। यह 'श्रीचक्रराज' महायंत्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका प्रतीक है। आदिलीलामहाशक्ति

श्रीविद्या त्रिपुरसुन्दरीका यह यंत्र ही निवास एवं रथ है। प्राकृत विश्वमें ये भगवती ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र, त्रिदेवोंसहित सभी देवजगत्की एकमात्र उपास्या एवं शरण्य हैं। इनकी ही अंशकला लक्ष्मी, सरस्वती एवं रुद्राणी हैं। इन्हें ही शास्त्रोंमें 'श्री' नामसे अभिहित किया गया है। ये भगवती प्राकृत विश्वमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष - चारों पुरुषार्थोंकी प्रदाता हैं। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने इनकी वर्षों उपासना की है और इन्होंने प्रकट होकर साक्षात् उन्हें दर्शन दिये हैं।

(जिज्ञासु पाठक विस्तृत विवरण पढ़ना चाहें तो 'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा' नामक ग्रन्थके तृतीय खण्डमें यह प्रसंग पढ़ें।)

इस चक्रराज श्रीयंत्रका विचित्र विन्यास है। श्रीयंत्रके मध्यमें जो मूलविन्दु है, वही यहाँ नीले अरविन्दोंका विन्दु कहा गया है। इस चक्रराजके मध्यविन्दुके रूपमें निरुपाधिक संविन्मात्र भगवान् कामेश्वरके अंकमें भगवती महात्रिपुरसुन्दरी सोपाधिक परमानन्दस्वरूपमें नित्य विराजित रहती हैं। अप्राकृत चिन्मय राज्यमें ये भगवान् कामेश्वर-कामेश्वरी ही नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाके रूपमें परिणत होते हैं। यह विन्दु शिवयुवती नामक अधोमुखी त्रिकोणके मध्यमें स्थित है। प्राकृत जगत्में इस त्रिकोणके (१) अव्यक्ताधिष्ठात्री कामेश्वरी, (२) महत्तत्वाधिष्ठात्री वज्रेश्वरी एवं (३) अहङ्काराधिष्ठात्री भगमालिनीदेवी - ये तीन देवता हैं। किन्तु जैसा कि पू.गुरुदेवने कृपाकर मुझ जड़मतिके सम्मुख इस त्रिकोणका निकुञ्जभावात्मक रहस्योद्घाटन किया है -' यह त्रिकोण जो पीले नीरजोंसे निर्मित होता है, इसके ऊपरकी सीधी रेखा बनाते दो बिन्दुओंकी तो सच्चिदानन्दमयी महासन्धिनीशक्ति वृन्दा, एवं चिति-शक्तिस्वरूपा पौर्णमासीदेवी मुख्य देवता हैं और जो इनका निम्न आधारविन्दु है उसमें विशुद्ध आह्लादिनी महाशक्ति श्रीराधारानीकी नित्य प्रतिष्ठा है। ये त्रिकोणस्वरूपा वृन्दावनधामात्मक बनी वृन्दादेवी, चिच्छक्तिस्वरूपिणी योगमाया-महाशक्ति लीलाविधात्री पौर्णमासीदेवी एवं ह्लादिनीशक्ति श्रीराधा अपने ठीक मध्यमें नित्यनिकुञ्जेश्वरी ह्लादिनी-परिरंभित ह्लादात्मा युगनद्ध युगल प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवको आप्यायित कर रही हैं। यही इस विन्दु एवं त्रिकोणका रहस्य है।

अब आगे वर्णन आता है कि इस श्रीयंत्रराजान्तर्गत शिवयोगिनीरूप मध्यत्रिकोणको एक अरुण पद्मोंका अष्टकोण घेरे है। जहाँ प्राकृत श्रीयंत्रमें इस अष्टकोणमें शीत, उष्ण, सुख, दुःख, इच्छा, सत्व, रज एवं तम - इन आठों गुणोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ - वशिनी, कामेश्वरी, मादिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी आदि आठ वाग्देवता निवास करती हैं, वहीं इसी चक्रराजके निकुञ्जभावमूलक अष्टदलके रहस्योद्घाटनमें इस अष्टकोणके विन्दुओंमें खण्डिता, स्वाधीनभर्तृका, दिवाभिसारिका, प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा, उत्कण्ठिता, विप्रलब्धा एवं कलहान्तरिता - ये अष्ट महाभावोंकी क्रमशः अधिष्ठात्री - ललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या एवं सुदेवी - अधिष्ठात्री सखियाँ निवास कर रही हैं।

अब इस अष्टकोणात्मक चक्रराजकी एक अन्तर्दशारचक्रकी प्रकृतिमें तो सर्वज्ञा, सर्वशक्तिप्रदा, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा - ये दस अधिष्ठात्री देवियाँ हैं, किन्तु नित्यनिकुञ्जमें इन दस त्रिकोणोंमें दस मुख्य भाव नित्य उच्छलित रहते हैं। ये दस भाव हैं - १. पूर्वराग २. रति ३. स्नेह ४. मान ५. प्रणय ६. राग ७. अनुराग ८. भाव ९. रूढ़महाभाव एवं १०. अधिरूढ़महाभाव। प्रेमके ये दस अनुभाव अष्ट सखियों एवं ह्लादात्मा-ह्लादिनीस्वरूप प्रिया-प्रियतम - सभीमें उदित होते हैं। इसीलिये ये इन सबको आवृत किये हैं, घेरे हैं। यह अन्तर्दशारचक्र पीतारुण अरविन्दोंसे निर्मित है।

इस अन्तर्दशारचक्रको पुनः इससे आकृतिमें बृहद् बहिर्दशारचक्र घेरे है। इस बहिर्दशारचक्रमें दस त्रिकोण, गुणश्रवण, रूपाकृतिदर्शन (प्रत्यक्ष दर्शन एवं चित्रदर्शन), वंशीनादश्रवण, तीव्र मिलनोत्कण्ठा, दूती-पत्र-संवाद, संकेत-मिलन, पूर्ण आत्मनिवेदन, निकुञ्जमिलन, महारास एवं शयनान्तर्गत परस्पर रसराजका महाभावमें एवं महाभावका

रसराजमें स्वरूप-परिवर्तन - इन दस भावोंके पूर्ण आवास हैं। पूर्वरागादि भावोंका भी अभ्युदय इन दस भावस्थितियोंके पश्चात् ही क्रमशः होता है अतः ये बहिर्दशारचक्रान्तर्गत हैं। इस चक्रका निर्माण भी पीतारुण नीरजोंसे हुआ है। इस मायाप्रकृतिमें इस बहिर्दशारचक्रकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं : १. सर्वसिद्धिप्रदादेवी २. सर्वसंपत्प्रदादेवी ३.सर्वप्रियङ्करीदेवी ४.सर्वमंगलकारिणीदेवी ५. सर्वकामप्रदादेवी ६.सर्वदुःखविमोचिनीदेवी ७. सर्वमृत्युप्रशमिनीदेवी ८. सर्वविघ्नविनाशिनीदेवी ९.सर्वाङ्गसुन्दरीदेवी १०. सर्वसौभाग्यदायिनीदेवी हैं।

इस बहिर्दशारचक्रको एक चतुर्दशारचक्र घेरे है। यह निकुञ्जलीलाभावमें श्यामवर्णके अरविन्दोंसे निर्मित है। मायाप्रकृतिमें इसकी अधिष्ठात्री देवियाँ - १. सर्वसंक्षोभिणीशक्ति २. सर्वविद्राविणीशक्ति ३. सर्वाकर्षिणीशक्ति ४. सर्वाह्लादिनीशक्ति ५. सर्वसम्मोहिनीशक्ति ६. सर्वस्तंभिनीशक्ति ७. सर्वजृंभिणीशक्ति ८. सर्ववशङ्करीशक्ति ९. सर्वरंजनीशक्ति १० सर्वोन्मादिनीशक्ति ११. सर्वार्थसाधिनीशक्ति १२. सर्वसंपत्तिपूरिणीशक्ति १३ सर्वमंत्रमयीशक्ति १४ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्ति - ये चौदह शक्तियाँ हैं।

निकुञ्जलीलामें इन चौदह बिन्दुओंमें चौदह निम्न भाव हैं - १. प्रियमिलनमें अवरोधात्मक सर्वक्लेशका नाश २. ब्रह्मानन्द-तिरस्कारी प्रियतमस्मृति एवं प्रेमसुखकी प्राप्ति ३. मोक्षलघुताकृत् अर्थात् सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सार्ष्टि, और सायुज्य - इन पाँचों प्रकारकी मुक्तिजन्यसुखके प्रति तुच्छ हेयबुद्धि एवं प्रिया-प्रियतमकी सेवामें प्रगाढ़ अनुराग ४. सुदुर्लभ प्रीतिकी प्राप्ति ५. सान्द्रानन्दविशेषात्मा (अनन्तकोटिगुना ब्रह्मानन्दका भी प्रेमसुखके सम्मुख फीका लगना ६. श्रीकृष्णाकर्षिणी; प्रियतम श्रीकृष्णको आकर्षित कर लेनेकी योग्यताकी प्राप्ति ७. क्षान्ति (स्वमानके नाश होनेपर एवं घोर लोकनिन्दाकी प्राप्ति होनेपर साथ ही विरहजन्य मूर्च्छादि व्याधियोंकी प्राप्ति होनेपर एवं तत्पश्चात् प्रियतमके द्वारा मिलन एवं प्रेममें अरुचि प्रकट करनेपर भी चित्तका तनिक भी प्रियसे विमुख नहीं होना, एवं अचञ्चल सतत प्रेमोत्कर्ष ८. अव्यर्थकालत्व अर्थात् क्षणमात्र भी मन, वाणी एवं शरीरसे सेवामें श्रमानुभव न कर निरन्तर सेवारत रहना। ९. विरक्ति - प्रेमास्पदके सिवा अन्याश्रयका चित्तमें लेश-संस्पर्श भी नहीं होना १०. अभिमानशून्यता - सर्वोत्तम प्रेम, सर्वोच्च शील एवं उत्तमोत्तम आचरणसे सम्पन्न होनेपर भी अपनेमें महाभावगत दैन्यवश निजको प्रेमाचरणशून्य, दुःशील, अधम, पापाचारिणी, दुर्गुणोंकी खान मानना ११. आशाबन्ध अर्थात् प्रियतम श्रीकृष्णके मथुरा-द्वारकागमन, अनेकानेक विवाहादिके समाचार प्राप्त होनेपर सुदीर्घकालतक प्रेमपत्रादिके द्वारा कोई संवाद स्थापित नहीं होनेपर भी उत्तरोत्तर प्रेमका नित्य अभिवर्धित होना एवं मिलनकी सुदृढ़ एवं बद्धमूल आशा १२. समुत्कण्ठा अर्थात् अनन्य एवं प्रतिक्षण बढ़नेवाली प्रियमिलनकी लालसा १३. अखण्ड स्मृति १४. जहाँ प्रियसे क्षणभर भी मिलन हुआ उसी स्थलमें प्राणविसर्जित करनेकी अनन्य इच्छा। इन उपर्युक्तचौदह विलक्षण प्रेमभावोंको यह श्यामवर्णका चतुर्दशारचक्र इन दोनों बहिर्दशार एवं अन्तर्दशारचक्रोंको समावृत किये है।

इस चतुर्दशारचक्रको घेरे श्वेतवर्णका अष्टदलका नवल विस्तृत अम्भोज है। प्राकृत जगत्में तो श्रीयंत्रमें इस अष्टदलमें उत्तर दिशासे क्रमशः अनंगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, अनंगरेखा, अनंगवेगा, अनंगांकुशा, अनंगमालिनी - ये अष्ट देवी-शक्तियाँ सुविराजित हैं किन्तु इस नित्यनिकुञ्जमें इस अष्टदलकमलमें उत्तर दिशामें गोरोचनवर्ण, मयूरपिच्छाभायुक्त वस्त्रधारिणी तेरह वर्ष एवं छः मासकी वयःप्राप्ता श्रीरूपमञ्जरी, जो ताम्बूल--सेवापरायणा हैं, सुविराजित है। ईशान कोणके दलमें श्रीमञ्जुलीलामञ्जरी तप्तस्वर्णवर्णा किंशुकपुष्पसे वस्त्र धारण किये तेरह वर्ष, छः मास एवं सात दिवसकी वयःप्राप्ता प्रिया-प्रियतमकी वस्त्रसेवामें समुत्सुका हुई सुविराजित हैं। पूर्व दिशावाले दलमें श्रीरसमञ्जरी, जो चम्पापुष्पवर्णाभा हैं एवं हंसवर्णका वस्त्र धारण करती हैं एवं जिनकी वय मात्र तेरह वर्षकी है, चित्र रचनाकर प्रिया-प्रियतमकी सेवा करती हैं, विराजित हैं। अग्निकोणवाले दलमें श्रीरतिमञ्जरी विराजित हैं। ये

विद्युद्वर्णी हैं, तारावर्णका वस्त्र पहनती हैं। इनकी नित्य वय तेरह वर्ष, दो माहकी है। ये प्रिया-प्रियतमकी निकुञ्जमें चरणसेवा करती हैं। दक्षिण दिशावाले दलमें श्रीगुणमञ्जरी निवास करती हैं। इनका विद्युद्वर्ण है, जपापुष्पके वर्णकी साड़ी पहनती हैं। इनकी नित्य वय तेरह वर्ष, एक माह, सत्ताईस दिन है। ये प्रिया-प्रियतमकी जलसेवा करती हैं। नैऋत्यकोणके कमलदलमें श्रीविलासमञ्जरी निवास करती हैं। ये स्वर्ण केतकी वर्णकी हैं। भ्रमरके समान वर्णका श्यामवस्त्र पहनती हैं। इनकी नित्यवय तेरह वर्ष, छब्बीस दिनोंकी ही रहती है। ये प्रिया-प्रियतमकी अञ्जन एवं सिन्दूरकी सेवा करती हैं। पश्चिम दिशावाले दलमें श्रीलवङ्गमञ्जरीका निवास है। ये तेरह वर्ष, छःमाह, एक दिनकी नित्यवय सम्प्राप्त किये रहती हैं। ये विद्युद्वर्णकी अङ्गशोभावाली हैं एवं ताम्रवर्णके वस्त्र पहनती हैं। ये प्रिया-प्रियतमकी पुष्पमालासमर्पणकी सेवा करती है। वायव्यकोणके कमलदलमें श्रीकस्तूरीमञ्जरीका नित्य निवास है। ये स्वर्ण वर्णाभावाली हैं एवं काचप्रभ वर्णके वस्त्र पहनती हैं। इनकी भी वय तेरह वर्षकी नित्य रहती है तथा ये चन्दनसेवाकर प्रिया-प्रियतमको प्रसन्न रखती हैं इस प्रकार इस अष्टदल कमलकी निकुञ्जभावना है।

दिनकरकी किरणें बिखेरनेसे अष्टदलोंवाले श्वेतवर्णके कमलको एक और सोलहदलवाला चन्द्रमाकी शोभाको हतप्रभ कर देनेवाला अद्भुत कमल घेरे है। प्राकृत श्रीयंत्रके सोलह दलोंमें तो भगवतीकी षोडश कला -शक्तियाँ निवास करती हैं। ये षोडश कलाएँ हैं - १. कामाकर्षिणी नित्याकला २. बुद्ध्याकर्षिणी नित्याकला ३. अहङ्काराकर्षिणी नित्याकला ४. शब्दाकर्षिणी नित्याकला ५. स्पर्शाकर्षिणी नित्याकला ६ रूपाकर्षिणी नित्याकला ७. रसाकर्षिणी नित्याकला ८.गन्धाकर्षिणी नित्याकला ९.चित्ताकर्षिणी नित्याकला १०. धैर्याकर्षिणी नित्याकला ११ स्मृत्याकर्षिणी नित्याकला १२. नामाकर्षिणी नित्याकला १३. बीजाकर्षिणी नित्याकला १४.आत्माकर्षिणी नित्याकला १५. अमृताकर्षिणी नित्याकला १६. शरीराकर्षिणी नित्याकला। किन्तु निकुञ्जराज्यान्तर्गत इन षोडश कमलदलोंमें उपरोक्त अष्टमञ्जरियाँ निवास करती हैं। इन मञ्जरियोंके नाम हैं - १. अनंगमञ्जरी २. मधुमतीमञ्जरी ३. विमलामञ्जरी ४. श्यामलामञ्जरी ५. पालिकामञ्जरी ६. मंजुलामञ्जरी ७. धन्यामञ्जरी ८. तारकामञ्जरी ९. भद्रमञ्जरी १०. श्रीलीलामञ्जरी ११. केलिमञ्जरी १२ कुन्दमञ्जरी १३. मदनमञ्जरी १४. अशोकमञ्जरी १५. सुधामुखीमञ्जरी १६ पद्ममञ्जरी। ये सभी मञ्जरियाँ उत्तर दिशासे प्रत्येक दिशामें स्थित दो-दो कमलोंमें क्रमशः निवास करती हैं। जैसे उत्तर दिशामें स्थित दो कमलोंमें अनंग एवं मधुमतीका वास है; ईशानकोणके दो कमलोंमें क्रमशः विमला एवं श्यामला मञ्जरियोंका वास है; पूर्वदिशावाले दो कमलोंमें क्रमशः पालिका एवं मंगला मञ्जरियोंका वास है; अग्निकोणके दो कमलोंमें क्रमशः धन्या एवं तारका मञ्जरियोंका वास है; दक्षिणदिशावाले दो कमलोंमें क्रमशः भद्र एवं श्रीलीला मञ्जरियोंका वास है; नैऋत्यकोणके दो कमलोंमें क्रमशः केलि एवं कुन्द मञ्जरियोंका वास है; पश्चिम दिशावाले दो कमलोंमें क्रमशः मदन एवं अशोक मञ्जरियोंका वास है; वायव्यकोणवाले दो कमलोंमें क्रमशः सुधामुखी एवं पद्ममञ्जरीका वास है। इन सभी मञ्जरियोंकी नित्य वय तेरह वर्ष एवं छःमासके मध्यकी ही रहती है।

इन अपूर्व सुन्दर षोडशदलोंको एक मनोहर पद्मोंका चतुरस्र घेरे है। प्राकृत जगत्के श्रीयंत्रमें तो इस चतुरस्रकी आदिरेखामें प्रकृतिमें शृंगारादि जो नवरस हैं इनकी अधिष्ठात्री सिद्धियाँ अवस्थित हैं। शान्तरसकी अणिमा, अद्भुतरसकी लघिमा, करुणरसकी महिमा, वीररसकी ईशित्व, हास्यरसकी वशित्व, वीभत्सरसकी प्राकाम्य, रौद्ररसकी भुक्ति भयानकरसकी इच्छा, शृंगाररसकी प्राप्ति एवं प्रकृत्यात्मक नियतिकी सर्वकामसिद्धि नामक नौ सिद्धियाँ निवास करती हैं। मध्यरेखामें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पुण्य एवं पापात्मक ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी आदि क्रमशः निवास करती हैं। अन्त्यरेखामें सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वयोनि, सर्वविखण्डा - क्रमशः मुद्राशक्तियोंका वास है, किन्तु यही चतुरस्रकी तीन रेखायें ही चिन्मयसत्व, चिन्मयरज एवं चिन्मयतम रूप होकर नित्यनिकुञ्जमें वृन्दावनधाम हैं।

ये सभी प्राकृत सिद्धियाँ जो प्राकृत श्रीयंत्रमें यहाँ वर्णित हैं, चिन्मय रसरूप होकर इस धाममें नित्य निवास करती हैं और ऐश्वर्यभावको त्यागकर रसरूप होकर प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके सेवार्थ सदैव हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। लीलाशक्तिको जब जहाँ इनकी रस-अभिवर्धनके लिये आवश्यकता होती है, वे इनका प्रयोग कर लेती हैं। यह पू. गुरुदेव द्वारा वर्णित नित्यनिकुञ्जके भावमय श्रीयंत्रका सम्पूर्ण रहस्य है, जो यहाँ दिया गया है। यह मात्र अनुभूतिगम्य है। इसका शास्त्रोल्लेख तो मेरी दृष्टिमें नहीं आया है, किन्तु पू. गुरुदेव द्वारा वर्णित होनेसे यह परम सत्य है, सत्यका भी सत्य है।

इस मनोहर पद्मोंसे निर्मित वृन्दावनरूप चतुरस्रसे नेत्र जुड़ते ही ऐसा विभ्रम होता है मानो यहाँ छहों ऋतुएँ - पावस, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त एवं आतप सभी नित्य हाथ जोड़े सेवामें उपस्थित रहती हैं। अतः यह पता ही नहीं चलता कि इस समय कौन ऋतु है।

इस विस्तृत क्षेत्रमें मध्यस्थित नीलकमलोंसे निर्मित विन्दुपर जब तत्त्वज्ञानके अधिष्ठात्री देवता सूर्यकी किरणें ठीक मध्यगगनसे प्रखररूपमें पड़ने लगती हैं, उस समय इस नील विन्दुरूप प्रिया-प्रियतमके युगनद्ध स्वरूपको पूर्ण रसमय बनाये रखनेके लिये इस वनक्षेत्रमें सर्वत्र निवास करनेवाले असंख्य भ्रमर (अनन्त रूप बनाकर रसराज श्रीकृष्ण) नभमें उमड़ आते हैं। ये इस क्षेत्रके नभमें ऊपर-ही-ऊपर उड़कर ज्ञानरविकी किरणोंके आतपसे इस भावलीलाजगत्को सुरक्षित रखनेके लिये एक श्याम वितान तान देते हैं। ये भ्रमर आकाशसे नीचे नहीं उतरते, हाँ, तीस पल पश्चात् जैसे ही रवि मध्य गगनसे हटता है और इस क्षेत्रके ठीक मध्यसे पश्चिमोन्मुखी हो जाता है, ये भ्रमर पुनः वनमें यत्र-तत्र-सर्वत्र चले जाते हैं। प्रति दिवस ही निर्बाध यह घटना ठीक मध्याह्नमें तीस पलके लिये घटित होती है। ठीक इसी तरह जब रवि अस्ताचलगामी होता है और संध्याका पदार्पण होने लगता है, एक भ्रमर (श्रीकृष्ण) गूँ-गूँ करता दक्षिणपथसे आता है। वह कुछ पलोंतक इन सभी नलिनोंकी फेरी देता है। एक-एक त्रिकोणमें स्थित भावमयी गोपीको अपने वंशीनादसे अतिशय रस प्रदान करता यह पीले पद्मोंके त्रिकोणरूप श्रीराधा महाभावपर ढल पड़ता है। वह इन पीले कमलोंसे बने इस त्रिकोणके ऊपर पूर्ण निशापर्यन्त संपुटित कमलकोषोंमें बँधा रहता है और जब पुनः प्रभात होता है, तो वनमें उड़ जाता है।

'हे राजतनूजे ! कह-कहकर कैसे समझाऊँ मैं;' प्रियतम !
'कितना है चमत्कारकारी, प्रत्यक्ष इसे कर लो।' प्रियतम !
'देखो द्रुम-अवली कूलों की हिलती वह दीख रही;' प्रियतम !
'दो-ढाई सौ पद चलते ही तटपर पद रख दोगी।' प्रियतम ।।२३३।।

'राजनन्दिनि ! कह-कहकर मैं कैसे समझाऊँ तुम्हें ? वह कमलोंका बना हुआ चित्र कितना चमत्कारपूर्ण है, इसे प्रत्यक्ष देख लो। देख रही हो, वह जो द्रुमोंकी पंक्तियाँ उस ओर हिलती दीख रही हैं, वे सरोवरके कूलोंपर ही तो हैं। बस, दो-अढाईसौ पद चलने भरकी देर है, तुम उसके तटपर अपने श्रीचरण रख दोगी।'।।२३३।।

तोता इतना कहकर, उड़कर उस ओर लगा चलने, प्रियतम !
सखियों को लिये तुरंत चली अवनीशनन्दिनी भी, प्रियतम !
मिल गया पाँच पल में सर का तट अग्निकोण वाला, प्रियतम !
बातें सर्वथा सत्य निकलीं, जो कही कीर ने थीं, प्रियतम ।।२३४।।

इतना ही कहकर तोता उसी ओर उड़कर चलने लगा। राजनन्दिनी किशोरी भी सखियोंको साथ लिये उसी ओर चल पड़ी। पाँच पल पूरा होते-न-होते सरोवरका अग्निकोणवाला तट आ गया। अत्यन्त आश्चर्यमें डूबी किशोरी अनुभव करने लग गयी कि कीरने जो बातें कही थीं वे सर्वथा सर्वांशमें सत्य हैं।।।२३४।।

कम हो या अधिक, किंतु सबको लग गयी प्यास अब थी, प्रियतम!
था भरा स्वच्छ जल से पूरा कासार सामने ही, प्रियतम!
छू रहा नीर था पहली ही सीढ़ी के आधे को, प्रियतम!
अञ्जलि में जल भर कर सब वे पीने लग गयीं भला, प्रियतम।।२३५।।

उधर कम या अधिक मात्रामें किशोरी एवं सहचरियोंको प्यास लग चुकी थी तथा सामने ही स्वच्छ जलसे भरा कासार भी मानो उनका ही स्वागत कर रहा था। और तो क्या, पहली ही सीढ़ीके आधे अंशको कासारका जल समीरके वेगसे हिल-हिलकर बार-बार छू रहा था। बस, सब-की-सब अञ्जलिमें जल भर-भरकर उस अमृतकी भाँति सुमिष्ट नीरका पान करने लगीं।।२३५।।

वो घूँट कण्ठ के भीतर, बस, जाते ही उन सबके, प्रियतम!
हो गये प्राण शीतल, सुखमें तन का कण-कण डूबा, प्रियतम!
आँखों में भरी और अभिनव रसमयी खुमारी-सी, प्रियतम!
निस्पन्द गात्र होकर सब वे ढल पड़ीं वहीं क्षण में, प्रियतम।।२३६।।

और देखो, अहो ! आश्चर्य, महा आश्चर्य ! केवल मात्र दो घूँट जल कण्ठके भीतर जाते ही सबके प्राण शीतल हो गये। एक अद्भुत सुखानुभवमें सबका कलेवर-कलेवरका कण-कण निमग्न हो गया। साथ ही सबकी आँखोंमें एक अभिनव रसमयी खुमारी-सी भर आयी। सबके गात्र निस्पन्द हो गये। सब-की-सब क्षणभरमें वहीं धरापर ढल पड़ीं।।२३६।।

अनुभव अब राजनन्दिनी को होने लग गया वहाँ, प्रियतम!
मानो हूँ खड़ी अकेली मैं अनुजा को साथ लिये, प्रियतम!
बातें आगे-पीछे की थीं विस्मृत हो गयीं सभी, प्रियतम!
आनन्द हिलोरों में बहकर सर को निहारती थी, प्रियतम।।२३७।।

उस ओर राजनन्दिनी बृषभानुकिशोरीको वहाँ अनुभव होने लग गया कि मैं अनुजाको साथ लिये यहाँ अकेली खड़ी हूँ और कोई नहीं है मेरे साथ। आगे-पीछेकी सभी बातें उसे विस्मृत हो गयीं। वह आनन्दकी हिलोरोंमें इधर-से-उधर बहकर सरोवरको निहारने लगी।।।२३७।।

बोलीं, री! बहिन! घूमकर अब पूरे सर को देखें, प्रियतम!
पश्चिम की ओर चली तट को पकड़े धीरे-धीरे, प्रियतम!
पद बीस-तीस ही चलने पर मिल गयी एक रमणी, प्रियतम!
गोरी, सुन्दरी अनोखी थी, यौवन से वह माती, प्रियतम।।२३८।।

अचानक किशोरी अपनी अनुजासे बोल उठी-'अरी बहन ! चल, अब हम पूरे सरोवरको घूमकर देखें।' वाक्य पूरा होते-न-होते अनुजाका दाहिना हाथ पकड़कर किशोरी तटके मार्गका अनुसरण करती हुई प्रतीचीकी ओर धीरे-धीरे चल पड़ी। बीस-तीस पग आगे गयी होगी कि एक गौरवर्णा अत्यन्त सुन्दरी अनोखी रमणी सामने आती हुई मिली। यौवनके पदसे वह मत्त-सी दीख रही थी।।२३८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यह सब वर्णन करता शुक कहता है कि हे राजकुमारी ! मैं इस सब मनोहर रहस्यको वाणी द्वारा समझा ही नहीं सकता, क्योंकि यह सब अचिन्त्य, अनिर्वचनीय है। तुम इसे वहाँ चलकर प्रत्यक्ष करलो। राजकुमारी शुकके कथनानुसार उसके पीछे-पीछे अनुगमन करती है एवं सखियोंके साथ पाँच पल बीतते-न-बीतते सरोवरके अग्निकोणवाले तटपर पहुँच जाती है। सभीको वहाँ प्यासका अनुभव होता है और अञ्जलिमें जल भरकर सभी सखियाँ जल पीने लग जाती हैं। उस जलके दो घूँट कण्ठके नीचे जाते ही सभीके प्राणोंमें शीतलता भर आती है और आँखोंमें अभिनव खुमारी पैदा हो जाती है। सभी सखियोंके तनका कण-कण सुखसिन्धुमें डूब जाता है और सभी वहाँ निस्पन्द होकर भाव-समाधिमें डूब जाती हैं। मात्र राजकुमारीको यह अनुभव रहता है कि मैं अपनी छोटी बहिनको लिये उसके साथ अकेली खड़ी हूँ। वह भी आगे-पीछेकी सभी बातें विस्मृत कर जाती है और आनन्द-हिलोरोंमें बहती सरोवरको निहारने लगती है। वह पश्चिमकी ओर चलती है और वहाँ उसे एक रमणी वृन्दादेवी मिलती हैं।

यह कहा तथा उस रमणी ने उन नृपदुहिताओं से, प्रियतम !
तुम चलो, पधारो मेरे घर, शशिमुखि ! न विलम्ब करो, प्रियतम !
अतिकाल हो चुका है, पहले किञ्चित् भोजन कर लो, प्रियतम !
मैं ही हूँ नित्यसेविका इस वन की अधिदेवी की, प्रियतम ।।२३९।।

वह रमणी कुछ भी प्रतीक्षा किये बिना दोनों नृपदुहिताओंसे बोल उठी-'शशिमुखी दोनों भगिनियों। चलो, तुम मेरे घर पधारो। तनिक भी विलम्ब मत करो, अतिकाल हो चुका है; पहले चलकर किंचित् भोजन कर लो। मैं ही इस वनकी अधिदेवी-तुम्हारी नित्यसेविका हूँ।।२३९।।

फँसकर मीठे आकर्षण में दासी की वाणी के, प्रियतम !
पहुँची वे उसके घर पर जो पश्चिम सरतटपर था, प्रियतम !
सुन्दर विशाल था, पद उसमें रखते ही दोनों को, प्रियतम !
ऐसा प्रतिभात हुआ, मानो अपना ही वह घर हो, प्रियतम ।।२४०।।

उस रमणीकी वाणीमें सुमधुर आकर्षण परिपूरित था। राजनन्दिनी अपनी अनुजाको साथ लिये, सरोवरके पश्चिम तटपर अवस्थित उसके आवासमें अपना पैर रख ही बैठी। वह भवन बड़ा ही विशाल था। उसमें पैर रखते ही दोनों बहनोंको ऐसा प्रतिभात होने लगा, मानो वह सचमुच अपना ही घर हो।।२४०।।

छोटी चञ्चला पहुँचते ही लग गयी खेल करने, प्रियतम !
गृह के जो प्रतिपालित सुन्दर पक्षी थे, उन सबसे, प्रियतम !
वह बड़ी राजनन्दिनी किंतु चुपचाप सोचती थी, प्रियतम !
'आयी तो मैं अवश्य ही हूँ पहले भी कभी यहाँ !' प्रियतम ।।२४१।।

छोटी बहन अत्यन्त चञ्चला थी ही। वहाँ पहुँचते ही खेलमें तन्मय हो गयी। गृहमें प्रतिपालित जो सुन्दर-सुन्दर पक्षी थे, वे ही किशोरीकी छोटी बहनके क्रीड़ोपकरण बन गये। किन्तु बड़ी राजनन्दिनी चुपचाप सोच रही थी-'मैं पहले इस गृहमें आ तो कभी अवश्य चुकी हूँ।'।।२४१।।

कोई मानो कानोंमें यह कह उठा, 'सदा जय हो !' प्रियतम !
'कानन की अहो ! स्वामिनी की रसमयी मुग्धताकी,' प्रियतम !
'अपना वासस्थल यह उनका सच्चिदानन्दमय है,' प्रियतम !
'वे भूल रही हैं पर इसको, अपने को, मुझको भी।' प्रियतम।।२४२।।

उसी क्षण किशोरीके कानोंमें मानो कोई कह रहा हो-'अहो, जय हो ! सदा जय हो ! काननकी स्वामिनीकी इस रसमयी मुग्धताकी जय हो ! सदा ही जय हो ! यह उन्हींका अपना ही सच्चिदानन्दमय आवासस्थल है, किन्तु वह उसे भी भूल रही हैं भला, अपनेको भी भूल रही हैं, मुझको भी भूल रही हैं।'।।२४२।।

जिज्ञासा

चिन्मय समाधिभाषामें वर्णित इन छन्दोंमें ऐसा उल्लेख है कि श्रीराधा अपने सच्चिदानन्दमय वासस्थलको ही भूल गयी हैं। एक ओर ऐसा भी उल्लेख है कि श्रीराधारानी साक्षात् परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा, श्रीकृष्णार्द्धाङ्गसम्भूता, उनकी ह्लादिनीशक्ति हैं। फिर क्या भगवान्‌की शक्तियोंमें भी विस्मरण होना संभव है ? कृपया इसपर प्रकाश डालें।

समाधान

यह सत्य है कि श्रुतियाँ 'सर्वज्ञ, सर्ववित्' आदि शब्दों द्वारा भगवान्‌के अनन्तैश्वर्यका बखान करती हैं। किन्तु लीलाक्षेत्रमें यदिं ये ही सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वसौहार्द, सार्वत्रिकता आदि श्रुति-प्रतिपादित ऐश्वर्य-गुण भगवान् एवं उनके विभिन्न लीलापात्रोंमें व्यक्त होने लगें, फिर तो लीलाक्रम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पावे।

यशोदा तो भगवान्‌की जन्मदात्री माता हैं। वे यदि जानलें कि उनकी क्रोड़से संलग्न शिशु उनका पुत्र नहीं,, सच्चिदानन्दकन्द भगवान् है, तो श्रीबाल्यलीलाविहारी श्रीकृष्णकी शिशुलीला ही नहीं हो। भगवान् श्रीकृष्णको स्वयंको ही यह ज्ञान हो जाय कि यह मायाविनी पूतना ही सुन्दरी स्त्री बनकर मेरी माताको छलकर मुझे दूध पिलाने आयी है, तो भी लीलाकी मुग्धता न बने। मायाको निरस्त करदेनेकी भगवान्‌की शक्तिसे यदि पूतना उसी क्षण अपनी भयंकर आकृतिमें प्रकट हो जाती, उसकी आसुरी माया विनष्ट हो जाती तो अत्यन्त बलिष्ठ गोप जो ब्रजपुरके नगर-प्रहरीका कार्य कर रहे थे, एवं जो अतिशय सजग थे, वे ही पूतनासे युद्ध करने लग जाते और वात्सल्य-रस-भावित लीलाक्षेत्र युद्धभूमि होजाता। फिर तो गोपियोंका वात्सल्य-रस-भावित चित्तसे पूतनाके पीछे दौड़कर श्रीकृष्णको उसके मृत शरीरपरसे उठाकर लाना आदि पीतिलीला होती ही नहीं।

भगवान् श्रीकृष्णमें यदि सर्वज्ञताशक्तिका उदय हो जाय तो चन्द्र-खिलौना वाली लीला होगी ? गगरीमें गगनस्थ चन्द्रके प्रतिबिम्बको देखकर क्या वे उसे शीघ्र निकालकर अपने हाथोंमें लेलेनेके लिये मचलेंगे ? क्या फिर वे दूध पीनेसे चोटी लम्बी हो जायगी, - माताके इस भुलावेमें आवेंगे ? भगवान्‌की सर्वशक्तिमत्ता यदि लीलामें प्रकट हो जाय तो फिर क्या वे यशोदाजी द्वारा ऊखलमें बँधेंगे ? फिर तो लीलाका प्रतिपाद्य-तत्त्व माधुर्य एवं सरसता ही नहीं रह पावेगी । लीलाक्षेत्रमें आकर तो स्वयं जगत्स्रष्टा ब्रह्मापर भी अज्ञानका आवरण पड़ जाता है। उन्हें ही यदि यह ज्ञान नित्य रहे कि ब्रजेन्द्रनन्दन साक्षात् परात्पर परब्रह्म हैं तो वे उनके सखाओं और ग्वालबालोंको मोहित करनेका दुस्साहस ही नहीं करें। एक क्षण तो अघासुर-मोक्षसे वे आनन्दमत्त होकर ब्रह्मलोकसे दर्शनेच्छुक होकर ब्रजभूमिमें आते हैं, एवं दूसरे ही क्षण भगवान्‌की अपने सखाओंके साथ वन-भोजनकी लीला देख मोहित हो उठते हैं - यह लीलामहाशक्तिका खेल है।

भगवान्‌की लीलामहाशक्ति भगवान्‌की लीलाके असमोर्ध्व माधुर्यकी संघटना करनेके लिये सब बातोंका यथार्थ ज्ञान स्वयं भगवान्‌को भी सब समय नहीं होने देती। फिर उनके लीलापात्रोंमें सर्वज्ञताशक्तिका अभ्युदय होनेका तो प्रश्न ही नहीं है।

लीलामहाशक्तिद्वारा उत्पन्न की गयी इसी रसमुग्धताके आवेशमें राजनन्दिनी श्रीराधा यहाँ अपनी ही निकुञ्जभूमिमें सन्धिनीशक्तिस्वरूपा अपनी ही सखी वृन्दा, अपनी ही दिव्य निकुञ्जनिवासभूमि और इस सभी निकुञ्जक्षेत्रको अपने किशोरावेशकी मधुरतामें विस्मृत कर गयी हैं। उन्हें ऐसी संस्कारगत स्फुरणा तो होती है कि मानो यह अपना ही घर हो, किन्तु 'यह उनकी नित्य रमणस्थली है' ऐसा स्पष्ट ज्ञान उस समय उन्हें इस किशोर-लीलावेशमें नहीं हो पाता। यह ज्ञान विस्मृत हो जाता है। यदि यह ज्ञान विस्मृत नहीं हो, और उन्हें स्मरण रहे कि वे नित्य निकुञ्जेश्वरी हैं फिर तो उनकी यह किशोरलीला एवं पूर्वरागजनित प्रीतिकी नव-नवायमान मधुरताका प्रकाश ही नहीं हो।

जिज्ञासा

श्रीराधारानीके कानोंमें जो ये शब्द आते हैं कि *'वे भूल रही हैं, पर इसको, अपनेको, मुझको भी प्रियतम!'* ये शब्द किसके हैं ? यहाँ ऐसा भ्रम होता है कि हंसके द्वारा मानवी भाषामें ये शब्द हंसिनीको सम्बोधितकर बोले गये हैं।

समाधान

ये शब्द तो श्रीराधारानीके अन्तःकरणमें उनके प्रियतम श्रीकृष्ण ही अपनी चिन्मय प्रीतिभरी वाणीमें बोलते हैं। इसीलिये उनको वह ध्वनि चिर-परिचित प्रतीत होती है। हाँ ! यह अवश्य ध्यानमें रहे कि यह सम्पूर्ण रसलीला-क्षेत्र सच्चिदानन्दमय होनेसे सन्धिनी, चिन्मयी, ह्लादात्मा एवं ह्लादिनी शक्तियोंका ही रस-विलास है। इसके सभी पात्र - पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, भ्रमर-भ्रमरी, कीट-पतंग, जितने भी पुल्लिङ्ग पात्र हैं, सब प्रियतम श्रीकृष्णके ही कायव्यूहरूप हैं और जितने भी नारी पात्र हैं, सभी प्रिया श्रीराधाके कायव्यूहरूप हैं। यहाँ हंसको हंसिनीके रोम-रोममें सच्चिन्मयी श्रीराधा ही भरी दृष्टिगोचर होती है और हंसिनीको हंसके रोम-रोममें उसके प्रियतम सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्ण ही भरे दिखाई पड़ते हैं। हंसिनी हंससे जो भी प्रणयरूप भाव व्यक्त करती है उसमें उसका देहजन्य कामभाव सर्वथा सर्वांशमें नहीं है, अपितु विशुद्ध चिन्मय श्रीकृष्ण-भाव-भावित उच्छलित प्रीतिभाव है। इसी प्रकार हंसमें भी हंसिनीके प्रति दैहिक आकर्षण लेशमात्र भी नहीं है। इस अप्राकृत चिन्मय भूमिमें प्राकृत देहजन्य कामको तो प्रवेश ही नहीं है। यहाँ तो ह्लादिनी चिन्मय महाशक्ति एवं ह्लादात्मा सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रका ही रसविलास अणु-अणु एवं कण-कणसे स्फुटित हो रहा है।

हंस-हंसिनीकी गूढ़ वार्ता

यह भान उसे होते ही वह अकचक-सी हुई उठी, प्रियतम!
स्वर था परिचित, पर किसका है, इस समय न जान सकी, प्रियतम!
सन्मुख वह हंस हंसिनी से कह रहा झूमकर था, प्रियतम!
'प्रियतमे! कथा मैं कहता हूँ, तुम सुनो एक मन से' प्रियतम।।२४३।।

ऐसा भान होते ही भानुकिशोरी अकचक-सी हुई सावधान हो उठी। बोलनेवालेका-कानमें संकेत करनेवालेका-स्वर तो सर्वथा परिचित-सा लगा। यह स्वर किसका है, इसे वे इस समय जान न पायीं। सामने हंस-हंसिनी-युगलदम्पति बैठे हुए झूम-झूमकर तन्मय हो रहे थे। सहसा हंस बोल उठा मानवी भाषामें-''प्रियतमे! मैं एक कथा कह रहा हूँ, एकाग्र चित्तसे सुनो भला ! ।।२४३।।

'है वन अनादि, इसमें पुष्पित जो वे अशोकतरु हैं;' प्रियतम !
'उत्तर में उन से ही निर्मित जो वह निकुञ्जस्थल है;' प्रियतम !
'उसमें ही नित्य सनातन अज वे दम्पति रहते हैं;' प्रियतम !
'अतिशय ऊँचे हों भाग, तभी कोई ले देख भले।' प्रियतम ।।२४४।।

''उस ओर देखो ! देख रही हो न वनस्थलको ! उसमें जो वह पुष्पित अशोकश्रेणी है, वह अनादि है भला ! और देखो, उसके उत्तरकी ओर जो वह निकुञ्ज-स्थल है, जिसका निर्माण अशोकतरुओंने ही किया है-हाँ ! उसी निकुञ्जमें नित्य, सनातन, अज वे सच्चिदानन्दमय दम्पति निवास करते हैं भला ! जिसका भाग्य अत्यन्त ऊँचा है, वही उनको देख सकता है।।।२४४।।

जिज्ञासा

यहाँ हंस हंसिनीको सम्बोधितकर जो कथा सुनाता है उसमें अशोकके कुंजोंमें जो सनातन, अज, दम्पतिका नित्य निवास वर्णित है - वे अज दम्पति कौन हैं ? यदि वे अज युगलदम्पति राधाकृष्ण ही हैं तो हंसके सम्मुख वार्त्ता सुन रही यह राजकुमारी राधा उनसे पृथक् कैसे है ?

समाधान

यहाँ यह सदा ध्यान रखें कि प्राकृत बुद्धिसे विशुद्ध अप्राकृत चिन्मय लीलाराज्यको समझना कठिन होता है। प्राकृत बुद्धि जहाँ जड़, प्रतिपल मृत्युग्रस्त, क्षणभंगुर जगत्को देखती है जिसमें जो आज है, वह कल नहीं; जो एक है वह अनेक नहीं ; वह इसी क्षणभंगुरता एवं परिच्छिन्नताके नियमोंको अप्राकृत चिन्मय जगत्में भी आरोपित करना चाहती है। यहाँ एवं उनकी लीलाके सभी विग्रह चाहे वे पशु, पक्षी, कीट-पतंग ही क्यों न हों, सभी मायातीत, गुणातीत, नित्य शाश्वत और चिन्मय हैं। प्राकृत जगत्में यदि कोई बाल्यावस्थामें है तो वह किशोर नहीं हो सकता। किन्तु अप्राकृत लीला ऐसी विलक्षण है कि श्रीराधारानीकी यदि कहीं रावलग्राममें जन्मलीला हो रही है तो वह भी नित्य ही होती है। वहाँ कालक्रमानुसार अनित्यता संभव ही नहीं है। प्राकृत जगत्में तो जो जन्मोत्सव हो गया वह उसी क्षण कालके ग्रासमें समा जाता है। किन्तु अप्राकृत जगत्में कालकी सत्ता नहीं होनेसे वह जन्मोत्सव प्रतिपल प्रतिक्षण नवनवायमान उत्साह एवं आनन्दसे शाश्वतकालतक मनाया जाता है। नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण नित्यनिकुञ्जेश्वरी अपनी प्रिया श्रीराधाको कभी भी यह जन्मलीला दर्शन करा सकते हैं। वे कह सकते हैं - 'प्रिये ! रावलग्राममें चलें एवं देखें, तेरे जन्मके समय वहाँ कितने उत्साह एवं आनन्दपूर्वक तेरा जन्मोत्सव मनाया जारहा है। अब प्राकृत बुद्धि यह समझ ही नहीं सकती कि एक ओर जहाँ श्रीराधाकिशोरी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ इस उत्सवकी द्रष्टा हैं तो फिर कीर्त्तिदा मैया प्रसूतिगृहमें किस श्रीराधारानीका प्रसव कर रही हैं ?

प्राकृत बुद्धिकी इस शंकाका समाधान करना इसलिये कठिन होता है क्योंकि प्राकृत जगत्में जो काल भूतके गर्भमें समा जाता है, वह कभी वर्तमान नहीं हो सकता। जो एक है, वह अनेक नहीं हो सकता। किन्तु अप्राकृत राज्यमें सबकुछ सदैव नित्य होनेके फलस्वरूप जहाँ जन्मलीला नित्य है, वहीं बाललीला, पौगण्डलीला, एवं कैशोरजनित सारी लीलाएँ सब समय सत्य होती हैं और किसी भी अधिकारीके सम्मुख वे नित्य सत्य होनेसे कभी भी प्रत्यक्ष हो सकती हैं। यहाँ हंस नामक पक्षी लीलापात्र अपनी प्रेयसी हंसिनीके सम्मुख यही सत्य प्रकट कर रहा है। वह हंसिनीके मिससे श्रीराधाकिशोरीको ही संकेत कर रहा है कि जिस वनमें तू पुष्पचयन करने आयी है, वह अनादि चिन्मय प्रीतिवन है। इस प्रीतिनिकुञ्जवनमें सम्मुख जो अशोकके पुष्पित तरु हैं, उस निकुञ्जमें प्रेमके दो देवता निवास करते हैं। जिनके बहुत ऊँचे भाग्य होते हैं अर्थात् जो रसमार्गके अधिकारी साधक होते हैं , उन्हें ही वे दर्शन देते हैं।

'वल्लभे! कहूँ कैसे घटना कबकी वह थी या है,' प्रियतम!
'जब काल नहीं इस वनमें है शासन करने वाला;' प्रियतम!
'है अहो! त्रिकाल सत्य, फिर है सच परे काल से भी;' प्रियतम!
'इतना-सा ही सङ्केत गिरा उसका कर सकती है।' प्रियतम।।२४५।।

''प्राणप्यारी ! कैसे बताऊँ, वह कबकी घटना थी या है। जब इस वनस्थलपर शासन करनेवाला 'काल' ही वहाँ नहीं है, तब कब बना था, कैसे बना है-कैसे निर्णय हो ? बस, अहो ! इतना-सा ही कह सकता हूँ कि यह निकुञ्जस्थल त्रिकालसत्य है, कालसे परे रहकर नित्य सत्य है यह ! वाणी मात्र इतना-सा ही इस निकुञ्जस्थलके सम्बन्धमें संकेत कर सकती है।।२४५।।

'वैसे ही तुम 'निकुञ्ज है वह,' ये शब्द भले सुन लो;' प्रियतम!
'पर 'देश' नाम से कथित नहीं कोई है वस्तु वहाँ;' प्रियतम!
'है कहाँ, अहो!' 'फिर इसका है उत्तर इतना बनता;' प्रियतम!
'वह अपनी ही महिमा में है परिनिष्ठित नित्य, भला!' प्रियतम।।२४६।।

''इसी भाँति ही 'वह निकुञ्जस्थल है'- इन शब्दोंको तुम सुन भले लो, किन्तु 'देश' नामसे कथित वहाँ कोई वस्तु ही नहीं है भला ! अहो ! 'तब वह कहाँ है ?'-इसका उत्तर देने जाकर इतना ही कहना बनता है-'वह अपनी ही महिमामें नित्य परिनिष्ठित है भला !।।२४६।।

'अच्छा तो, प्राणाधिके! सुनो, दम्पति के जीवन में;' प्रियतम!
'कैसी थी प्रीति परस्पर की लहरें लेती रहती;' प्रियतम!
'दोनों ही एक दूसरे को रहते निहारते ही;' प्रियतम!
'फिर भी अतृप्ति रहती, मानो दर्शन का सुख न मिला;' प्रियतम।।२४७।।

''अच्छा, तो...............प्राणाधिके ! सुनो,अहो ! उन निकुञ्जदम्पतिके जीवनमें परस्परकी प्रीति अहा! कैसी लहराती रहती है, दोनों ही परस्पर एक-दूसरेको निरन्तर कैसे निहारते ही, रहते हैं, तथापि निरन्तर अतृप्ति भी बढ़ती ही जाती है; ऐसा भान हो होता रहता है-'हाय रे, दर्शनका सुख तो मिला ही नहीं'-बस, इतना-सा ही कह सकता हूँ - ।।२४७।।

'दोनों के प्राण एक होकर ऐसी गति धर लेते;' प्रियतम!
'होने लगती प्रतीति उनको, मानो मैं हूँ न अहो!;' प्रियतम!
'स्वीकार काल का वे करते कहने के लिये तभी;' प्रियतम!
'वह था उनका स्वरूप ही, फिर आरम्भ खेल होता;' प्रियतम।।२४८।।

''..................अच्छा, आगे सुनो ! दोनोंके प्राण सर्वथा एकरूप हो जाते, एक अभिनव/विचित्र गति उनकी हो जाती। उन्हें ऐसी प्रतीति होने लगती-'अहो ! 'मैं', 'मेरा' इन दो शब्दोंका उच्चारण भले ही कर लूँ, पर 'मैं', 'मेरा'-इनका अस्तित्व ही कहाँ है ? अस्तु, कहनेके लिये वे इसी विन्दुपर कालको स्वीकार करते हैं। काल उन दोनोंका स्वरूप ही है। अस्तु, ...फिर खेल आरम्भ होता है।।२४८।।

'उनकी पलकें खुलतीं,' सुस्मित अधरोंपर भर आता,' प्रियतम!
'सुस्थिर वे नयन-पुतरियाँ भी चञ्चल कुछ हो जातीं,' प्रियतम!
'गलबाँही दिये हुए ही वे धीरे-धीरे उठते,' प्रियतम!
'चलते धीरे, सुखसे धरणी जड़िमा धारण करतीं,' प्रियतम।।२४९।।

''उनकी पलकें खुल जातीं। दोनोंके अधरोंपर सुस्मित भर आता। वे नयन-पुतरियाँ भी जो सुस्थिर थीं, अब कुछ चञ्चल हो जातीं। वे गलबाहीं दिये धीरे-धीरे उठ पड़ते, धीरे-धीरे चलने लग जाते। अहा ! उनका स्पर्श पाकर धरा जड़िमासे विभूषित हो जाती ......।।२४९।।

'आगे प्रवाह बढ़ता क्रमशः उन दोनोंके रसका,' प्रियतम!
'वे अहो! कहाँ-से-कहाँ जुड़े उसमें बहते रहते,' प्रियतम!
'पीछे आने का प्रश्न नहीं उस धारामें बनता,' प्रियतम!
'वे सृजन और संहारजनित परिणाम न उसमें हैं,' प्रियतम।।२५०।।

''................. क्रमशः उनके आनन्दका प्रवाह आगेकी ओर चलता। और अहा हा! वे परस्पर जुड़े हुए उसीमें न जाने कहाँ-से-कहाँ बहते रहते। उस धारामें पीछे लौटनेका प्रश्न तो कभी बनता ही नहीं, सृजन और संहारजनित परिणाम तो उस प्रवाहमें किसीने क्षणभरके लिये कभी देखा जो नहीं।।२५०।।

जिज्ञासा

इन छन्दोंमें वनके एक साधारण पक्षी हंसको तो समग्र रस-रहस्योंका ज्ञाता बताया गया है, वह सनातन, अजन्मा दम्पतिके सर्वरूपों एवं लीलाओंका द्रष्टा, मर्मज्ञ है एवं स्वयं श्रीराधाकिशोरी मूढ़, भोली, अज्ञ बतायी गयी है, इसका क्या कारण है ?

समाधान

यहाँ यह ध्यान रहे कि इस अध्यायमें पूर्वरागकी परम मधुर रसमयी लीलाका वर्णन है। पूर्वरागके अभ्युदयमें दूती अथवा दूतका विशेष स्थान होता है। दूत एवं दूती ही नायकके प्रति नायिकाकी रुचिको अभिप्रेरित करते हैं। वह नायकका नायिकाके सम्मुख गुण-वर्णन करती है, चित्र-दर्शन कराती है, किसी-न-किसी साधनसे वह नायिकामें नायकके प्रति लगाव (रति) उत्पन्न करनेकी चेष्टा करती है। यहाँ हंस एवं हंसिनी साधारण वनान्तर्गत सरोवरमें विहाररत जलपक्षी मात्र नहीं हैं, वे नित्यनिकुञ्जेश्वर एव नित्यनिकुञ्जेश्वरी सनातन प्रिया-प्रियतमके प्राणस्वरूप श्वासोंसे प्रकट हैं, अर्थात् वे इन दोनों सनातन अजन्मा प्रिया-प्रियतमके प्राण-सार-स्वरूप हैं। इन दोनोंके प्राण ही अपनी नित्यस्वरूपा श्रीराधाकुमारीको अपनी ओर उन्मुख करनेके लिये हंस एवं हंसिनीके रूपमें दूत बनकर क्रियाशील हो रहे हैं।

जिज्ञासा

कृपया *'वैसे ही तुम 'निकुञ्ज है वह' - ये शब्द भले सुनलो प्रियतम !'* इस पूरे छन्दका रहस्य खुलासा करें। जब यह देश ही नहीं है , तो श्रीराधारानीने अपने माता-पितासे आज्ञा लेकर सखियोंके साथ यहाँ कैसे पदार्पण किया ? यहाँ स्पष्ट उल्लेख है कि वे मेंहदीकी झाड़ीके पथसे चलकर आयी हैं। देशके बिना उन्हें दिशाबोध कैसे हो सकता है ? वे पहले अग्निकोणवाले सरोवरके किनारेपर पहुँचती हैं, तब पश्चिमकी ओर चलती हैं। इस प्रकार दिशाओंका उल्लेख तो स्पष्ट देशका ही निर्देश करता है। दूसरे बृषभानुपुरकी जनता भी इस वनकी फेरी करती है, तो बिना देश हुए यह स्थल सभी जनताके सम्मुख कैसे दृष्टि-पथमें आता है ?

समाधान

सचमुच यह प्रीतिका पथ अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, प्राकृत मन-बुद्धिसे अगोचर तर्कातीत है। यह पूर्वतः ही उल्लेख किया जा चुका है कि यह प्राकृत देश-कालको देखनेवाली बुद्धिके द्वारा समझा जानेवाला जड़ राज्य नहीं है। जैसे सच्चिदानन्दकन्द प्रिया-प्रियतमका निकुञ्ज विलक्षण अलौकिक रसरूप है, ठीक उसी तरह उनका वृषभानुपुर, उनका नन्दग्राम, वहाँकी प्रजा, वहाँ रहनेवाले गोप-गोपी, पशुपक्षी, कीट-पतंग, दास-दासी सभी महाभाव रससिन्धुकी लहरें हैं। वहाँ महाभाव-रससिन्धुकी लहरें ही पृथ्वी एवं गिरिराजके उत्पलके रूपमें परिणत हैं, वे ही तरुओं, लतिकाओं, सरोवरों, वन, गिरि, नद-नदी, महल-मकान, दास-दासीके रूपमें परिणत हैं। ये सच्चिन्मयी महाभाव-रससिन्धुकी लहरें ही यहाँ काल. देश, जल, स्थल, नभ, वायु, तेज, सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र, वायु, प्राणके रूपमें भासित हो रही हैं।

इसको समझनेकी परिपाटी यही है कि सर्वप्रथम साधकको भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनके रसराजस्वरूपमें दर्शन हों। इस दर्शनके पश्चात् ही साधककी बुद्धि चिन्मयाविष्ट होकर वृन्दावन, वंशी, कदम्ब, यमुनादि चिन्मय लीला-भूमिको अनुभव कर पाती है। तभी उसका पांचभौतिक देह एवं जगत्का अध्यास निवृत्त होता है। जबतक पांचभौतिक देह एवं पंचभूतात्मक जगत्के अध्याससे मन-बुद्धि लेशात्मक रूपमें भी आक्रान्त है, उसे भगवान्का स्वरूप भी उनके हाथ-पैर, मुख एवं इन्द्रियाँ भी जड़-प्राकृत जैसी ही अनुभव होती हैं। पांचभौतिक जड़ देहाध्यासकी आत्यन्तिक निवृत्ति होनेपर ही साधकको भावदेहकी प्राप्ति होती है और उसे चिन्मय मन-बुद्धि, इन्द्रियाँ मिलती हैं, जिनसे वह चिन्मय भगवद्धाम - रसभूमिमें पैर रखता है। तभी उसे सच्ची यमुना, दिव्य वृन्दावन,निकुञ्जों, परम दिव्य गिरिराज आदिका दर्शन होकर उनकी सच्चिन्मयताकी प्रतीति होती है। तभी साधक जान पाता है कि रससिन्धु-स्वरूपमें काल एवं देश कैसा होता है। तभी उसे पता लगता है - यहाँकी जड़ निशा और वहाँकी चिन्मय रससिन्धुस्वरूपिणी निशामें कितना धरा-आसमानका अन्तर होता है। वहाँका दिन-रातरूप काल यहाँके कालसे सर्वथा ही अलौकिक है।

यह अवश्य है कि वहाँ भी निशा आती है और दिवसका अवसान होता है। फिर महारसमयी यह निशा भी अपने सम्पूर्ण राज्यका भार अपनी प्राणसखी ऊषाको सौंपकर सीकरोंके रूपमें अपने प्रेममय विदाईके अश्रुकण बिखेरती चली जाती है। यहाँ भी ब्राह्ममुहूर्त्त होता है, यमुनाके किनारे पूर्वमें सूर्योदय होता है और पश्चिममें गिरि- पर्वतश्रेणीमें उसका अस्त हो जाता है। यहाँ भी निशाका अन्त होनेपर शुक, सारिका, मयूर, कोकिल, आदि असंख्य पक्षी कलरव करते हैं। इस कलरवके मध्य ही बृषभानुपुर एवं ब्रजप्रदेशके लोग जागते हैं। परन्तु यहाँके संविन्मय पक्षियोंकी काकलीमें सच्चिदानन्दसिन्धु समाहित होता है, जड़ता नहीं। यहाँकी यमुना एवं यहाँके सरोवरोंमें महाभाव-रस-सागर प्रियतम नीलमणि ही भरे होते हैं। यहाँके पद्मोंमें, अरविन्दोंके प्रस्फुटनमें प्रिया-प्रियतमकी चिन्मय रसभरी मुसकान प्रतिबिम्बित होती है। यहाँके हंस-हंसिनियाँ उन अनादि सनातन दम्पतिके श्वास-प्रश्वाससे उत्पन्न होते हैं। वे मल-मूत्रमय, जन्म-मरणशील जीव नहीं होते। तभी यह बात भी अवगत हो पाती है कि कहनेको ही प्राकृत वाणी 'निकुञ्ज है वह' पढ़ती है, कहती है, सुनती है, परन्तु वह निकुञ्ज जड़ भूतात्मक देश नहीं, वह किसी देशमें व्यक्त नहीं, वह तो सच्चिदानन्दकन्द राधामाधवकी तरह अपनी महिमामें ही व्यक्त है। वह निकुञ्ज ही नहीं समग्र ब्रजप्रदेश ही - नन्दग्राम, गोकुल, वृहद्वन, महावन, गिरिराज, यमुना, वृषभानुपुर - सब भूखण्ड अपनी महिमामें ही स्थित हैं और मात्र सच्चिन्मय रसरूप हैं -कहीं किसी प्राकृत देशके भूखण्डमें उनकी स्थिति परिलक्षित नहीं की जा सकती।

'जो हो, वह घटना है तब की, दोनों जब उत्सुक थे; प्रियतम !
'शृङ्गार धराने की इच्छा ले गौर-नील तनमें; प्रियतम !
'दोनों में होड़ लगी थी यह, है कला किसे कहते; प्रियतम !
'दिखलायें आज परस्पर की पहली इस रचना में; प्रियतम।।२५१।।

''जो हो, वह घटना तबकी है, जब दम्पति परस्पर अपने गौर-नील तनमें शृङ्गार धरानेकी इच्छा लेकर बड़े ही उत्सुक हो रहे थे। दोनोंमें इस बातकी होड़ लगी थी कि हम दोनोंकी परस्पर शृङ्गार-रचनाकी इस पहली घटनामें - मैं जीतती हूँ कि तुम, मैं जीतता हूँ कि तुम - इसकी आज परीक्षा हो जाय। अस्तु,''।।।२५१।।

'प्यारी को देख-देखकर ही प्यारे रचना करते; प्रियतम!
'प्यारे को देख-देखकर ही प्यारी रचना करती; प्रियतम!
'अपने ही आप अँगुलियों में उनकी वे आ जाते; प्रियतम!
'उपकरण सभी, आवश्यक जो जितने जब थे होते; प्रियतम।।२५२।।

शृङ्गार आरम्भ हुआ ! प्यारीको देख-देखकर ही प्यारे रचना करते थे और प्यारेको देख-देखकर ही प्यारी रचना करती थी। अचरज यह था कि अपने-आप ही उनकी अँगुलियोंमें शृङ्गारके वे उपकरण आ जाते - सभी उपकरण आ जाते - जब, जितने, जो आवश्यक होते।।२५२।।

'प्राणों-की अभिलाषा ही वह माला बन कर आती; प्रियतम!
'प्राणों-का ही उल्लास सुमन सुरभित होकर आता; प्रियतम!
'प्राणों-का स्नेह विमल नीला-पीला फुलेल बनता; प्रियतम!
'प्राणों-का ही अनुराग तरल शीतल विलेप होता; प्रियतम।।२५३।।

ग्रीवामें धारण करानेकी माला अपने आप आ जाती, वास्तवमें तो प्राणोंकी अभिलाषा ही माला बनती थी। प्राणोंका ही उल्लास सुरभित सुमन बनकर आता था। प्राणोंका स्नेह ही निर्मल नीला-पीला फुलेल बनता था। प्राणोंका अनुराग ही तरल-शीतल विलेपनका रूप धारण करता।।२५३।।

जिज्ञासा

कृपया यहाँ जो सनातन दम्पति नित्यनिकुंजेश्वर एवं नित्यनिकुंजेश्वरी परस्पर एक दूसरेका शृङ्गार करते हैं, उस परम रसमय शृङ्गारका खुलासा करें।

समाधान

वस्तुतः श्रीराधारानी न तो जड़ देहधारी रमणी हैं, न ही उनके प्रियतम श्रीकृष्ण ही कोई प्राकृत नर-देहधारी रमण हैं। महाभावरूप सच्चिदानन्दमय प्रेम परतत्त्व ही आश्रयभावनिष्ठ होकर नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी परम सच्चिन्मयी आकृति ग्रहण कर लेता है एवं विषयभावनिष्ठ होकर नित्यनिकुञ्जेश्वर-स्वरूप हो जाता है। आश्रय-विषय भावनिष्ठ यह प्रेम-परतत्व कैसे प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीका स्वरूप ग्रहण करता है - इसका पू.गुरुदेवके मुखसे कथित विवरणका अवगाहन करें।

सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रका निरुपाधिक आह्लादरूप प्रेम ही नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीकी आत्मा है, और श्रीराधाकी सोपाधिक सदानन्दरूपा प्रीति ही नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णका आत्मा है। निरुपाधिक आह्लादरूपा होनेसे ही नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रियामें आश्रयनिष्ठा प्रधान है एवं सोपाधिक सदानन्दरूप होनेसे ही नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण विषयालंबन-प्रधान हैं। वैसे श्रीराधारानीके प्रेमी होनेके कारण वे यदा-कदा आश्रयालंबनको भी स्वीकार कर लेते हैं। उस समय वे निरुपाधिक प्रेमके संग्राहक बन जाते हैं एवं श्रीराधा विषयालंबनयुक्त हो जाती हैं। अधिकांशतः आश्रयालंबनकी प्रधानता नित्यनिकुंजेश्वरी श्रीराधारानीमें ही रहती है, एवं विषयालंबनकी प्रधानता प्रियतम श्रीकृष्णमें। यह निरुपाधिकता एवं सोपाधिकता ही दोनोंकी भिन्नता है, अन्यथा तो दोनों ही पूर्ण परात्पर परतत्त्व प्रीतिभावरूप ही हैं।

यह निरुपाधिक प्रेम ही श्रीराधारानीका सत्तात्मक अहङ्कार 'मैं' हो जाता है और सोपाधिक प्रेम ही श्रीकृष्णचन्द्रके सच्चिदानन्दात्मक अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित होकर उनका सत्तात्मक अहङ्कार 'मैं' होगया है।

श्रीप्रिया-प्रियतमका अहङ्कार 'मैं' ही आश्रय एवं विषयालम्बन ग्रहणकर ह्लादिनी एवं ह्लादात्मा द्विधा परस्पर समालिङ्गित शक्तिस्वरूप है। इन दोनोंकी संधिनीशक्ति भगवती वृन्दा हैं और महादेवी योगमाया ही इनकी चिच्छक्तिहैं।

ये संधिनीशक्तिस्वरूपा भगवती वृन्दा ही प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वरी एवं नित्यनिकुञ्जेश्वर दोनोंकी अव्यक्त प्रकृति, देहस्वरूपा हैं और महादेवी योगमाया ही इन दोनोंका महत्तत्व हैं।

अपने प्रियतम श्रीकृष्णको सदा-सर्वदा निरतिशय सुखी करनेकी संकल्प-विकल्पात्मक स्फुरणा ही श्रीराधारानीका मन है और अपनी प्रियाको सदैव सुखी करनेका संकल्प ही प्रियतम श्रीकृष्णका मन है। लीलामहाशक्ति ही दोनोंकी बुद्धि हैं और प्रिया श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी चित्तस्वरूपा जीवन्त चेतना हैं और प्रियतम श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके चित्त, उनकी सचेतनता हैं।

सन्धिनीशक्तिकी परिणति वृन्दानिकुञ्जकानन ही प्रिया-प्रियतमकी केशराशि है। जहाँ प्रिया श्रीराधारानीकी केशराशिमें सम्पूर्ण स्त्रीजातिके वनचर, जलचर, पक्षियों एवं भ्रमरोंका नित्य आवास है, समग्र पुरुष जातिके पशु-पक्षियों एवं भ्रमरोंका आवास श्रीकृष्णकी केशराशिमें है।

इन नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीके मस्तकपर धारण किया हुआ जो मयूरमुकुट एवं चन्द्रिका है, वही गिरिराज गोवर्धन है। एवं प्रियतम श्रीकृष्ण एवं प्रिया श्रीराधारानीकी धम्मिल्ल (चोटी) ही रसरूप होकर यमुनाके रूपमें लहरा रही है।

ईशान क़ोणसे उठी स्वाधीनभर्तृकाभावकी प्रथम लहर ही, जिसकी प्रतिनिधि विखाखा सखी हैं एवं प्रियतम श्रीकृष्णका धीरोदात्त नायक–स्वभाव ही उनके केशोंका सान्निध्य स्वरूप है। यह स्वाधीनभर्तृकाभाव ही अति सुगन्धित तैलरूप उपकरण है जो प्रियतमके करोंमें स्वतः ही आ जाता है और इससे वे प्रिया राधाके केशोंको स्निग्ध करते जाते हैं। इसी प्रकार धीरोदात्त नायकका स्वभाव ही वह तैल है जिससे प्रिया प्रियतमके केशोंको स्निग्ध कर देती हैं। ये प्रिया-प्रियतम परस्पर सर्वप्रथम एक दूसरेको प्राणोंकी अभिलाषासे भरकर निहारते हैं और इस स्नेहभरे निहारनेसे उनके उद्दाम स्नेहभरे मनमें जो अभिलाषारूपमें भाव उठते हैं, वे भाव ही इनका शृंगार बनते जाते हैं।

इसी प्रकार प्रियतमके प्राणोंकी अभिलाषारूप इसी ईशानकोणसे उठी स्वाधीनभर्तृकाभावकी तीसरी उत्तुंग लहर ही इन केशोंमें सुवासार्थ प्रियतमके हाथोंमें पुष्पसार इत्र बनकर आजाती है जिससे प्रियतम प्रियाके केशोंको अनुपम सुवाससे सुवासित कर देते हैं। इसी प्रकार प्रियाके प्राणोंकी अभिलाषा ही इत्र बनकर प्रियतमके केशोंको सुवासित करती है। यह केशोंकी सुवासकी प्रतिनिधि सखी चन्दनमञ्जरी हैं। इसी प्रकार श्रीराधारानीके केशोंका कुञ्चितपना भी उनके दिवाभिसारिकाभावकी पाँचवीं उद्दाम लहर है जिसका प्रतिनिधित्व सखी सुकेशी करती हैं।

प्रिया-प्रियतम एक दूसरेको परस्पर अपने प्राणोंके स्नेहरूप कारुण्यामृतसे प्रथम स्नान कराते हैं, तत्पश्चात् दूसरा स्नान इनका प्राणोंके उल्लासरूप तारुण्यामृतसे होता है जिसकी प्रतिनिधि श्रीरूपमञ्जरी सखी है। इसी प्रकार प्रियतम श्रीकृष्ण प्रिया श्रीराधारानीकी लज्जाके निवारणार्थ स्वयं ही उनका नीलवसन बनकर उनके अङ्गों में धृत हो जाते हैं और श्रीराधारानी ही उनका पीताम्बर बनकर उनके अङ्गोंको आच्छादित कर लेती हैं। इसी प्रकार प्रियतमका अनुराग ही उनकी रक्त कंचुकी बन जाता है एवं प्रियतमका प्रणयी मन ही उनकी हरे रंगकी ओढ़नी हो जाता है। इसी प्रकार प्रियाका प्रणयी मन ही प्रियतमका उपरैना वस्त्र हो जाता है।

प्रियतम श्रीकृष्णके प्राणोंका प्रेमाभिलाषारूप परम निर्मल उज्ज्वल भाव ही मृगमद है जिसका विलेपन प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्रियाके अङ्गोंमें करते हैं और अपने अधिरूढ महाभावरूप उत्तमोत्तम मादक गन्धयुक्त मृगमदको प्रिया अपने प्रियतमके अङ्गोंमें विलिप्त करती हैं।

उन दोनों प्रिया-प्रियतमके प्राणोंकी अभिलाषारूप स्वाधीनभर्तृकाभावकी उन्मत्त छठी सर्वोपरि लहर ही हारहीरा सखीके रूपमें उनके कण्ठकी पाँच प्रकारकी हारावली बन उनकी ग्रीवाको सुशोभित कर रही है। श्रीराधारानी कनकहार, मुक्ताहार, हीरकहार, रत्नहार एवं पुष्पहार - इस प्रकार पाँच हार पहनती हैं। पुष्पहारोंमें श्रीराधारानीके कण्ठमें नीलकमलोंका हार एवं उनके प्रियतम श्रीकण्ठके कण्ठमें रक्त पद्मोंका हार शोभा पाता है। इसी प्रकार श्रीराधारानीके कण्ठदेशमें रत्नहारके रूपमें नीलमकी मणियोंका हार रहता है एवं श्रीकृष्ण पीताभ मणियोंका हार धारण करते हैं।

प्रियतम श्यामसुन्दरके प्राणोंका उल्लास ही उन्हें अपनी प्रियाके हाथोंमें नीलकमल बनाकर सौंप देता है, जिसे वे नित्य धारण किये रहती हैं। और इसी प्रकार प्रियतम श्रीकृष्ण भी प्रिया राधारूप पीत वर्णका कमल अपने हाथोंमें नित्य ही धारण किये रहते हैं। श्रीराधारानी सदैव ही अपने अङ्गोंमें अपने प्रियतमके प्राणोंके स्नेहका प्रतीक नील फुलेल लगाती हैं एवं प्रियतम श्रीकृष्ण पीतवर्णके फुलेलका प्रयोग करते हैं।

स्वाधीनभर्तृकाभावकी चौथी उद्दाम एवं विशद लहर जिसकी मूर्त्तिमती स्वरूपा कर्पूरमञ्जरी हैं प्रियतमका तरल अनुरागरूप होकर प्रिया श्रीराधारानीके अङ्गविलेपनका शीतल सुवास बन जाती हैं। इसमें इसी स्वाधीनभर्तृकाभावकी पाँचवीं उद्दाम लहर मन्दस्मिति और उनकी काञ्चनाभा कान्ति जो दिवाभिसारिका भावकी दूसरी लहर है कर्पूर बनकर मिल जाती है। ये दोनों लहरें क्रमशः सखी शशिरेखा एवं विमलाका मूर्त्तिमान् स्वरूप हैं। इसमें प्रियतम श्रीकृष्णका अपने सखाओंके प्रति प्रेमभाव एवं प्रिया श्रीराधारानीका अपनी सखियोंके प्रति प्रणयरूप चन्दन ही मिश्रित कर दिया जाता है।

'प्राणों'-की वृत्ति सदा नव सुख देने-ही-देने की;' प्रियतम !
'प्राणों'-की आशा नित्य नये रसमें सन जाने की;' प्रियतम !
'प्राणों'-की वह अभिसंधि मिले रहने की आपस में;' प्रियतम !
'प्राणों'-से झर ये सब बनतीं तूली छवि लिखनेकी;' प्रियतम ॥२५४॥

प्राणोंको सदा नवीन सुख देने-ही-देनेकी जो परस्पर वृत्ति थी उनमें, प्राणोंकी नित्य नये रसमें सन जानेकी आशा, परस्पर मिले रहनेकी नित्य अभिसन्धि - ये ही प्राणोंसे झर-झरकर चित्राङ्कनकी तूलि बन जाते।।।२५४।।

'प्राणों'-की ममता ही काली कबरी-डोरी बनती;' प्रियतम !
'प्राणों'-का मोह परस्पर वह काजल बन जाता था;' प्रियतम !
'प्राणों'-का अद्वयपन-मद चू भ्रूमध्य-बिन्दु बनता;' प्रियतम !
'प्राणों'-का प्रणय-रोष होता वह लाल महावर था;' प्रियतम ॥२५५॥

***प्राणोंकी ममता ही काली-कबरी डोरी बनती, परस्परका प्राणोन्मादी मोह ही काजल बन जाता। प्राणोंमें जो* अद्वयपनका मद था, वही चू-चूकर भ्रू-मध्यका विन्दु बनता। प्राणोंका प्रणय-रोष ही लाल महावर बनता।।।२५५।।**

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

परस्पर एक दूसरेको नव-नवायमान् सुख देने-ही-देनेकी वृत्ति, नित्य नव-नवायमान रस-सिन्धुकी एक-से-एक बढकर उमड़ती लहरोंमें घुलमिलकर चूर्ण-चूर्ण होकर सन जानेकी आशा एवं परस्पर नित्य मिले ही रहनेकी अभिसन्धि - ये सभी प्राणोंसे झरकर एक-दूसरेका शृंगार करनेका उपकरण - तूलिका बन जाती हैं। इस तूलिकासे ही दोनों प्रिया-प्रियतम परस्पर अपना शृंगार करते हैं।

इन प्रेमी युगलके प्राणोंकी ममता ही काली डोरी बनकर प्रियाके उन्मुक्त घने काले कुञ्चित केशोंका बन्धन बन जाती है। वस्तुतः श्रीराधारानीके केश तो सच्चिन्मय वृन्दाकुंजकानन प्रियतम श्रीकृष्णका धाम हैं। यह धाम यमुनाजी द्वारा पूर्णतया परिरंभित एवं ग्रथित है अतः जब वेणी रूपमें निबद्ध होता है तो यमुनाका रसमय रूप ग्रहण कर लेता है। इसको ग्रंथन करनेकी रज्जु तो प्रियतम श्रीकृष्णकी प्रीति ही है। यह रज्जु स्वर्ण एवं रजतके तारोंसे निर्मित होनेके कारण परम निर्मल श्रीराधारानीके वर्णकी है। प्रीतिरज्जुका वर्ण तो श्रीराधारानीके समान ही होगा। इसमें असंख्य अनमोल ज्योतिर्मान् भावरत्न जगमग करते खचित हैं। यह रज्जु निश्चय ही प्रियतम श्रीकृष्णके प्राणोंकी अनन्त ममतासे सनी है। यही इस छन्दका भाव है।

'प्राणों'-में बढ़ी प्रीति टेढ़ी चलकर कँगही बनती; प्रियतम !
'प्राणों'-की रति परिणत होती उज्ज्वलतम दर्पण में; प्रियतम!
'प्राणों'-में बढ़ी हुई पल-पल आसक्ति पान होती; प्रियतम !
'प्राणों' की ही रुचि बन जाती अम्बर नीला-पीला; प्रियतम॥ २५६॥

प्राणोंमें बढ़ी हुई प्रीति बङ्किम गतिसे चलकर कंघीका रूप धारण कर लेती। परस्परकी प्राणोंकी रति ही उज्ज्वलतम दर्पणके रूपमें परिणत हो जाती। प्राणोंमें बढ़ी हुई पल-पलकी उनकी पारस्परिक आसक्ति ताम्बूलका रूप धारण कर लेती। प्राणोंकी रुचि ही उनका नीला-पीला अम्बर-परिधान बन जाती।।।२५६।।

'प्राणों'- का सञ्चालन बनता आवरण पयोधर का; प्रियतम !
'प्राणों'- के स्वर वे सात बंद-चोली के हो जाते; प्रियतम !
'प्राणों'- का ही विश्वास अचल वह पुष्पसार बनता; प्रियतम !
'प्राणों'- की सुन्दरता होती लीला-नीरज कर का; प्रियतम॥ २५७॥

प्राणोंका स्पन्दन-सञ्चालन ही पयोधरका आवरण बनता था; प्राणोंके स्वर ही किशोरीकी सात बंदवाली चोली बनते। प्राणोंका विश्वास ही उनके लिये अचल-कभी नष्ट न होनेवाला- पुष्पसार बनता। प्राणोंका सौन्दर्य ही हाथको विभूषित करनेवाला लीलाकमल बनता।।२५७।।

'यों स्वतः हुई प्रस्तुत चिन्मय सामग्री लेकर वे; प्रियतम !
'तल्लीन हुए निरुपम रचना करने लग गये वहाँ; प्रियतम !
'भावों से कर हिल-हिल कर था कुछ-का-कुछ बन जाता; प्रियतम!
'दो-तीन बार में ही पूरा शृङ्गार एक होता; प्रियतम ॥ २५८॥

इस प्रकार अपने आप प्रस्तुत हुई चिन्मय सामग्रियोंको लेकर, उसमें तल्लीन हुए वे निरुपम वेश-रचना करने लगे। भावोंके आवर्तसे दोनोंके कर-सरोज रह-रहकर हिल जाते और कुछ-के-कुछ चित्र बन जाते; दो-तीन बारमें ही एक शृंगार पूरा होता।।२५८।।

'हो गयी वेश-रचना, तब वे कहने इस भाँति लगे; प्रियतम !
'किसने बाजी जीती, बोलो, पहले तुम, तुम पहले; प्रियतम !
'कोई सम्मत न हुआ, निर्णय जो पहले बतलाये; प्रियतम !
'बस, झूल-झूलकर हँसते वे, गलबाँही दिये हुए; प्रियतम ॥२५९॥

इस प्रकार जब वेश-रचना पूरी हो गयी, तब वे कहने लगे - 'बोलो, किसने बाजी जीती ? पहले किसका शृंगार पूरा हुआ ?' नीलसुन्दर कहते-'बाजी तुमने जीती, प्राणेश्वरी राधे ! पहले तुम्हारा शृंगार पूरा हुआ है, अतः तुमने बाजी जीती'। कोई भी 'पहले'का निर्णय देनेके लिये प्रस्तुत न हुआ। बस, वे परस्पर गलबाहीं दिये हुए झूल-झूलकर हँसने लगे।।२५९।।

'आखिर बोली प्यारी, 'प्यारे! तुम अहो! विजेता हो' प्रियतम !
'बोला प्यारा,' सच है प्यारी! श्री-कर में ही जय है।' प्रियतम!
'दोनों ही दुहराते जाते अपनी ही उक्ति, भला!' प्रियतम!
'मुखरित निकुञ्जवनका कण-कण होता उस मधुरव से' प्रियतम।।२६०।।

आखिर बड़ी गम्भीर-सी मुद्रा बनाकर किशोरी बोल उठी - 'प्रियतम ! विजेता तुम्हीं सचमुच हो भला !' और क्षणभरका विलम्ब न करके नीलसुन्दर भी उसी स्वरमें बोल उठे-'प्रियतमे ! सच मान लो, जय तो तुम्हारे ही कर-सरोजमें है। और फिर दोनों अपनी-अपनी उक्ति दुहराते जाते तथा उनके रवसे सचमुच मधु-सा झरता रहता। निकुञ्ज-वनका कण-कण मुखरित होता रहता उनके मधुमय स्वरसे।।२६०।।

नेत्रोंमें रंजित काजलका भाव

श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णन है -***'प्रेमकौटिल्ये नेत्र युगले काजल''*** अर्थात् प्रियतम श्रीकृष्णमें जो प्रेमजन्य कुटिलता है, अपनी उस अतिशय रसमयी कुटिलतासे ही वे अपनी प्रियाके नेत्र आँजते हैं। पू.गुरुदेव इसी काजलकी उत्पत्तिका हेतु प्रिया-प्रियतमके प्राणोंमें जो परस्पर एक दूसरेके प्रति मोह है, उसे बतला रहे हैं। यह ध्यान रहे कि कुटिलता, कपट आदि पूरी कालिमाएँ तो मोहमें ही संभव हैं। प्रीति तो सदैव परमोज्वल, निर्मल, स्वच्छ प्रकाशमय ही होती है। यहाँ यह आश्चर्य ही है कि प्रिया-प्रियतमका यह मोह मात्र कृष्णाभा तो अवश्य लिये है, परन्तु है प्रियाके नेत्रोंको आभूषित करनेवाला, परम रसमयी। इसका कारण यही हो सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णसे जो भी भाव संलग्न हो जाते हैं वे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि प्राकृत जगत्के गर्हित भाव भी भगवान्के सम्बन्धसे विशुद्ध रसमय हो उठते हैं। भगवान्से संलग्न होने मात्रसे 'काम' प्रेमके निर्मलरूपमें परिणत होकर सर्व भक्तजन-वन्दनीय हो उठता है, क्रोध भी भगवत्संस्पर्शको पाकर दिव्य 'मान'में परिणत हो उठता है, लोभ भी भगवत्संस्पर्शसे उत्तरोत्तर बढनेवाली भगवत्प्रीतिजन्य मिलनकी लालसा अथवा प्रतिपल तीव्र-तीव्रतर होनेवाली उत्कण्ठामें परिणत हो जाता है, और यह मोह प्रियाके नयनोंमें अंजित होने योग्य कज्जलकी पात्रता पाकर सुविभूषित हो उठता है। प्रियतमकी अखण्ड दर्शनकी वृत्तिरूप यह मोह ऐसा विलक्षण कार्य करता है कि प्रियाको ***'जित देखूँ तित श्याममयी'*** के स्वरूपमें प्रतिष्ठित कर देता है। ज्योंही इस मोहरूपी कज्जलसे प्रियतम प्रियाके नेत्र आँजते हैं, त्योंही प्रियाकी नेत्रपुतरी ही बदल जाती है। वे बोल उठती हैं -

अति आश्चर्य बदल दी तुमने मेरी दृग-पुतली, प्राणेश!
दीख रहे अब मुझको तुम सर्वत्र सभीमें हे हृदयेश!!
मानवकी क्या बात, सुरासुर, पशु-पक्षी, सब कीट-पतंग।
जल - थल - अनल - अनिल नभ सब ही एक तुम्हारे ही श्रीअंग।।
वृक्ष - लता - गिरि - कूट - नद - नदी, दिशा - सूर्य - शशधर - नक्षत्र।
मुझे दीखते तुम प्रियतम, जीवनके जीवन, नित सर्वत्र।।

'अहो, प्राणवल्लभ ! तुमने यह मेरे नेत्रोंमें अञ्जन अञ्जितकर कैसा जादू कर दिया ? हाय, हाय ! मेरी तो नेत्रोंकी दोनों दृगपुतलियाँ ही इस अञ्जनके आँजते ही सर्वथा परिवर्त्तित हो गयीं। अब तो मुझे हे हृदयेश्वर ! तुम्हीं सर्वत्र सभीमें

पूरे छकाछक, लबालब भरे दृष्टिगोचर हो रहे हो। अरे, अरे, मानवकी तो बात ही क्या कहूँ, सभी देवी-देवता, पापी आसुरीवृत्तियुक्त जीव भी मुझे तुम्हारे ही अंग (भाग) प्रतीत हो रहे हैं। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, तो फिर भी चेतन तो हैं, मुझे तो जड़ पदार्थ - जल-स्थल, अग्नि-वायु एवं आकाश भी तुम्हींमें ओतप्रोत समझमें आ रहे हैं। अरे, अरे, ये वृक्ष, वृन्दावनकी सुरम्य लताएँ - ये रत्नजटित उन्नत मस्तक किये पर्वत-शिखर, ये नदियाँ, बृहद् सरोवर, दसों दिशायें, सूर्य-चन्द्र एवं नक्षत्रमण्डल -सर्वत्र सभीमें हे मेरे जीवनके जीवन ! तुम्हीं तो पूरे भरे हो।'

देखा, इस मोहरूप काजलका चमत्कार ! कैसा विलक्षण है यह प्रियाका कृष्ण-मोह-जाल ! प्रियाको यह उनका प्रियतम-मोह तो उन्मत्त ही बना देता है। वे अपनी सखि ललिताको सम्बोधितकर कह रही हैं - 'सखि ललिते ! मुझे यह क्या होगया है, मेरे लिये तो समग्र देश-काल, रात-दिवस, जन्म-मरण, पालन एवं संहार, दुःख-सुख, तम एवं प्रकाश, हानि-लाभ, विलय एवं विकास सभी मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके रूपमें ही परिवर्तित होगये हैं।'

देश कृष्ण, काल कृष्ण, दिवस कृष्ण, रात कृष्ण।
जन्म कृष्ण, मरण कृष्ण, संरक्षण-घात कृष्ण।।
दुःख कृष्ण, सुख कृष्ण, तम औ प्रकाश कृष्ण।
हानि कृष्ण, लाभ कृष्ण, विलय औ विकास कृष्ण।।

काम कृष्ण, क्रोध कृष्ण, लोभ कृष्ण, मोह कृष्ण।
हर्ष कृष्ण, शोक कृष्ण, दम्भ-दर्प-द्रोह कृष्ण।।

लेन कृष्ण, देन कृष्ण, ग्रहण कृष्ण, दान कृष्ण।
स्तुति कृष्ण, निन्दा कृष्ण, मान - अपमान कृष्ण।।

ऐसे मोहमय-काजलसे प्रिया अपने नेत्र आँजती हैं। यही दशा प्रियतम नीलसुन्दरकी भी होती है। ज्यों ही प्रिया श्रीराधारानी अपनी सुकोमल मध्यमा अँगुलीमें काजलकी रेखा लगा अपने प्रियतमके नेत्रोंमें यह कज्जल संलग्न करनेको उत्सुक होती हैं, उस कज्जलके स्पर्शमात्रसे प्रियतमको भी सर्वत्र अपनी प्रियाके ही दर्शन होने लगते हैं। वे भी अपने सखा सुबलसे अपनी ऐसी ही अनुभूतिका प्रकाश कर बैठते हैं -

राधा घर, काननमें राधा, राधा नित यमुनाके तीर।
राधा मोद, प्रमोद राधिका, राधा बहे नयन बन नीर।।

राधा प्राण, बुद्धि-मन राधा, राधा नयनोंकी तारा।
राधा तन-इन्द्रियमें, राधा प्रेमानन्द-सुधा-धारा।।

राधा मन है, राधा धन है, नाम-धाम सब है राधा।
राधा भजन, ध्यान राधा ही, जप-तप-यजन सभी राधा।।

राधा जगते, सोते राधा, खान-पानमें है राधा।
राधा उठने और बैठनेमें भी, हँसनेमें राधा।।

राधा नव बसन्त, मलयानिल, राधा हरे सभी बाधा।
राधा सदा स्वामिनी मेरी, परमाराध्या है राधा।।

प्रियाके प्रति प्रियतमके प्राणोंका मोह एवं प्रियतमके प्रति प्रियाके प्राणोंका मोह बना यह कज्जल सम्पूर्ण दृश्यको ही प्रिया-प्रियतममय बना देता है।

रसाद्वैतरूप मदका भाव

इसी प्रकार प्रिया-प्रियतमके प्राणोंमें, जो परस्पर विलक्षण रसाद्वैत है जिसमें गुम्फित उनके प्राण एक होकर भी दो प्रतीत होते हैं, यह रसाद्वैत-मद ही चूकर उनके ललाटपर भ्रूमध्यमें लगाया जानेवाला लाल गोल विन्दु बन जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखसे कहते हैं -

यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि संततम्।। (ब्रह्मवैवर्त्तकृष्णखण्ड१४।५८-५९)

'हे प्रिये ! जो तुम हो, वही मैं हूँ; हम दोनोंमें किंचित् भी भेद नहीं है। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिकाशक्ति और पृथ्वीमें गन्ध रहती है, उसी प्रकार मैं सदैव तुममें रहता हूँ। ' इससे सिद्ध होता है कि श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण एक आत्मा एवं एक ही प्राण हैं। इस रहस्यको जाननेवाले धर्मज्ञ सन्त इन श्रीराधाके साथ 'रमण'करनेके कारण ही भगवान् श्रीकृष्णको आत्माराम कहते हैं।

नारद पांचरात्रमें भी श्रीराधाके सम्बन्धमें कहा गया है :

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
प्राणाधिष्ठातृ देवी या राधारूपा च सा मुने।।

जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं, वैसे ही श्रीराधारानी भी ब्रह्मस्वरूपा, मायालेपसे रहित विशुद्ध एवं प्रकृतिसे परे हैं। श्रीकृष्णके प्राणोंकी जो अधिष्ठात्री हैं, वे ही श्रीराधा हैं।

श्रीब्रह्माजी श्रीराधारानीकी स्तुति करते हुए कहते हैं -

त्वं श्रीकृष्णार्द्धांगसम्भूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः।
श्रीकृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा च हरिः स्वयम्।।

'हे श्रीराधे ! तुम श्रीकृष्णके आधे अंगसे उत्पन्न हुई हो, अतः सब प्रकारसे उनके ही समान हो। श्रीकृष्ण तुम्हारे ही स्वरूप हैं, वे राधा ही हैं और तुम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हो।'

सामरहस्योपनिषद्में कहा गया है :**अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति। तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति।**'वह अनादि पुरुष एक ही है, परन्तु अनादिकालसे ही वह अपनेको दो रूपोंमें बनाकर अपनी ही आराधनाके लिये तत्पर है। इसलिये वेदज्ञ पुरुष श्रीराधाको रसिकानन्दरूपा बतलाते हैं।

श्रीराधातापनीय उपनिषद्में कहा है -**'येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत।** 'जो ये राधा और जो ये श्रीकृष्ण रसके सागर हैं, वे एक ही हैं परन्तु खेलके लिये दो रूप बने हैं।

ब्रह्माण्डपुराणमें कहा गया है —

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णः राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया।।

'राधाकी आत्मा सदा श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्णकी आत्मा निश्चय ही राधा हैं।श्रीराधा वृन्दावनकी ईश्वरी हैं, इस कारण मैं राधाकी ही आराधना करता हूँ ।'

वस्तुतः इन शास्त्रोक्तवाणियोंसे यही तथ्य प्रकट होता है कि प्रिया श्रीराधा एवं प्रियतम श्रीकृष्ण- इन दोनोंमें कभी 'तू' और 'मैं' का किसी भी प्रकार कोई भेद सूचित हो, यह उचित नहीं है।

इन दोनों प्रिया-प्रियतममें कभी कोई भेद सम्भव ही नहीं है। फिर भी आश्चर्य है कि प्रिया श्रीराधाको यह अद्वैतका 'मद' स्पर्श ही नहीं कर पाता। अद्वैत जो सत्य है, वह असत्य तो हो नहीं सकता किन्तु प्रिया श्रीमती राधाकी भावभूमिको वह संस्पर्श ही नहीं कर पाता। उनके पास फटककर उनके श्रीअंगसे तत्क्षण ही लयकर च्युत हो जाता है। वहाँ वह कोई महत्वपूर्ण स्थान, कोई महिमामयी स्थिति बना ही नहीं सकता। जैसे किसी अतिशय चिकनी ढलानसे जल स्पर्शकर तत्क्षण ही चू जाता है, उसी प्रकार यह अद्वैत 'मद' श्रीराधाभावको स्पर्श करते ही चू पड़ता है।

ध्यान रहे कि पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस प्रिया-प्रियतमके परस्परके अद्वैत भावको 'मद' संज्ञा दे रहे हैं। प्राकृत भावमें जितना मोह निकृष्ट उतना ही 'मद' भी गर्हित भाव है। 'मोह' तो प्रिया-प्रियतमके नेत्रोंमें कज्जल रूप होकर किस प्रकार कृतकृत्य हो चुका है इसका उल्लेख पूर्व पृष्ठोंमें किया जा चुका ही है। अब यह 'मद' जैसे ही प्रिया-प्रियतमके अंगसे संलग्न होता है, यह उनके अंगोंमें टिक नहीं पाता, तत्क्षण ही चू पड़ता है। उन अच्युत अंगोंसे वह च्युत हो जाता है। करुणामय प्रिया-प्रियतम इसे ललाटमें लगी चन्दनखौरके मध्य बड़ी सी लाल बेंदी बनाकर सुभूषित कर देते है। ओह ! प्रिया इस अद्वैतमदको भी कैसा सौभाग्य देती हैं ! वे अपने अंगसे च्युत सत्यको भी तत्क्षण उठाकर उसे अपने अत्युत्कृष्ट प्रेमरागसे सानकर कस्तूरीकी परम सुगन्धित बेंदी बनाकर अपने ललाटपर लगा लेती हैं। यद्यपि इस 'मदमें कस्तूरीनिहित कालापन दर्शाता है कि यह प्रकृतिमें महागर्हित भाव है, किन्तु प्रियाप्रियतमके अंगोंसे लगकर यह विलक्षण गंधयुक्त होकर उनके ललाटमें समलंकृत हो उठता है।

दैन्यरूपा कस्तूरीकी बिन्दीका भाव

राधा-माधवके ललाटमें लगी कस्तूरीकी बेंदीकी भावशोभा निहारें। मैं 'साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूपा हूँ' इस अभिमानरूप मदके च्युत होते ही प्रियामें कैसा विलक्षण दैन्य उदय हो उठता है ! यह महाभावगत दैन्य ही उनके ललाटका प्रीति-आभूषण है। प्रिया विनम्र हृदयसे अपने प्रियतमसे प्रार्थना करते हुए कहती हैं -

त्वत्पादाब्जे मन्मनोऽलिः सततं भ्रमतु प्रभो !
पातु प्रीतिरसे पद्मे मधुपश्च यथा मधुः।।
मदीय प्राणनाथस्त्वं भव जन्मनि जन्मनि।
त्वदीय चरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम्।।
तव स्मृतौ गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्।
भवेन्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषितम्।। (ब्रह्मवै.कृष्णखण्ड २७।२३०।३२)

'प्रभो ! तुम्हारे द्वय चरण-सरोजोंमें मेरा मनरूपी भ्रमर निरन्तर भ्रमण करता रहे और मधुप जैसे कमलका मधुपान करता है, वैसे ही प्रेमरसका पान करता रहे। जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरे प्राणनाथ होओ और मुझे अपनी सुदुर्लभ प्रेमभक्ति प्रदान करो। प्रभो ! मेरे मनकी एक मात्र यही चाह है कि मेरा चित्त स्वप्न एवं जागरण - सभी अवस्थाओंमें दिन-रात केवल आपकी ही स्मृति करता रहे एवं गुणगानमें डूबा रहे।'

इसी प्रकार जो सर्वलोकोंके उत्पत्तिस्थान हैं, जो **'तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्'** हैं, जो स्वयं अपने मुखसे अर्जुनको अपनी महिमाके अनेकानेक वचन कहते हैं -' **मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।' ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।**'वे ही श्रीकृष्ण प्रियाके सम्मुख उनकी प्रेमडोरसे बँधे हुए दीपकपर जैसे पतंग चक्कर लगाता है, वैसे ही सदा इनके चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं।

मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण बद्धः।
पतंगो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः।।

श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीमहादेवजीसे कहते हैं -

यो मामेव प्रपन्नश्च मत्प्रियां न महेश्वर।
न कदापि स चाप्नोति मामेवं ते मयोदितम्।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मत्प्रियां शरणं व्रजेत्।
आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र मां वशीकर्तुमर्हसि।।

'हे महादेव! जो मेरे शरण होते हैं, पर मेरी प्रिया श्रीराधाकी शरण नहीं होते, वे वस्तुतः मुझे प्राप्त नहीं कर पाते। अतएव सब प्रकारसे मेरी प्रिया श्रीराधाके शरणापन्न होकर उनकी आराधना करनी चाहिये।'

श्रीकृष्ण कहते हैं :

भजामि राधामरविन्दनेत्रां स्मरामि राधां मधुरस्मितास्याम्।
वदामि राधां करुणाभरार्द्रां ततो ममान्यास्ति गतिर्न कापि।।

'मैं कमल जैसे नेत्रोंवाली मेरी प्रियाका ही भजन करता हूँ, मैं उसके मधुर मुसकानयुक्त मुखारविन्दका स्मरण करता हूँ। मैं भरे हुए द्रवित कण्ठसे प्रिया राधाका नामोच्चारण करता हूँ। श्रीराधाके सिवा मेरी अन्य कहीं कोई गति नहीं।'

इन दोनों प्रिया-प्रियतमको अपने महिमा-मदको सर्वथा विस्मृतकर जो परस्पर एक दूसरेकी आराधनामें ही अपने जीवनकी सफलता दृष्टिगोचर होती है - यही इनका ललाटकी बिन्दी नामक विलक्षण श्रृंगार है।

प्रणय-रोषरूप लाल महावरका भाव

इस छन्दके अन्तिम पदमें पू.गुरुदेव कहते हैं कि प्राणोंका प्रणय-रोष ही प्रिया-प्रियतमके चरणोंको सज्जित करनेवाला लाल महावर हो जाता है। यहाँ यह समझनेकी बात है कि श्रीराधारानीमें प्रणय-रोष तो 'मान'के रूपमें ही प्रकट होता है। प्रियतम तो सदैव प्रियाके उरस्थलमें ही अनुराग-रज्जुसे बँधे रहते हैं। वे ही तो प्रियाके अतुलनीय निस्सीम प्रेमकोष हैं। इस प्रियतमरूप प्रेमकोषको प्रिया नित्य निरन्तर सहज अपनी सखियोंमें लुटाती-बाँटती रहती हैं। किन्तु जब श्रीकृष्ण ऐसी गोपियोंके पास चले जाते हैं, जिनमें स्वसुख-वासनारूप मिलनेच्छाका भाव रहता है, तो प्रिया अपने प्रियतमको उनके यहाँ जानेसे निवृत्त करनेके लिये मानवती होती हैं ।

शास्त्रोंमें रतिके तीन भेद माने गये हैं – साधारणी, समञ्जसा एवं समर्था रति। द्वारकालीलामें रुक्मिणी आदि महाभागा महिषियोंमें जो श्रीकृष्णके प्रति प्रेम है वह साधारणी रति है क्योंकि उनमें स्वाभाविक ही गृहस्थधर्मके अनुसार आत्मसुख तथा संतान आदिके पालनकी लालसा रहती है। जहाँ समरस विलास है, वहाँ समञ्जसा रति है। इसमें स्वसुखसे किंचित् सामञ्जस्य रहता ही है। श्रीचन्द्रावली-यूथकी सखियाँ समञ्जसा रतिप्रधान गोपियाँ हैं।

प्रिया श्रीराधामें अपने प्रियतमके प्रति समर्था रति है। समर्था रति एकमात्र प्रियतम-सुखेच्छामयी होती है। उसमें स्वसुख-वासनाका कहीं गन्ध-लेश भी नहीं रहता। जैसे अत्यन्त कठोर लोहखण्डमें सुईकी नोक भी प्रवेश नहीं कर सकती, वैसे ही समर्था रतिमें एकमात्र श्रीकृष्ण-सुख-वासनाके अतिरिक्तअन्य किसी भी वासनाका तनिक-सा उदय भी नहीं हो सकता। इसीलिये यह प्रगाढ़तम रति कही जाती है।

अचिन्त्यानन्त सौभाग्यशालिनी, परमोज्ज्वल त्यागकी सजीव मूर्त्तियाँ – श्रीब्रजसुन्दरियोंमें जो श्रीराधाव्यूहकी हैं एवं जो श्रीराधारानीकी ही कायव्यूहरूपा हैं, उन सभीमें समर्था रतिका पूर्ण प्रकाश है।

श्रीराधारानी अपने प्राण-प्रियतमका सुख देखकर ही उन्हें उन गोपियोंके पास जानेसे रोकना चाहती हैं, जिनमें प्रियतमसे सुख लेनेकी आकांक्षा प्रधान रहती है, एवं सुख देनेकी भावना न्यून होती है। यहाँ उदाहरणस्वरूप एक लीलाका उल्लेख किया जा रहा है -

'एक बार सुदूर वनमें स्थित श्रीचन्द्रावली सखिके कुञ्जमें प्रियतम ब्रजेन्दनन्दन निशामें पहुँच जाते हैं। उनका कुञ्जमें आगमन देखकर सखियाँ चन्द्रावलीसखीका शृंगार करने लगती हैं। बिना शृंगार किये भला प्रियतमके सम्मुख सखियाँ उन्हें भेजें भी तो कैसे ?

प्रियतम स्वभावतः ही थके होते हैं, फिर चन्द्रावलीके शृंगारमें भी किंचित् समय लग जाता है, अतः शय्यामें लेटते ही उन्हें निद्रा घेर लेती है।

प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनके समीप ज्योंही शृंगार करके चन्द्रावलीसखी पहुँचती है, तबतक तो प्रियतमकी निद्रा अतिशय प्रगाढ़ हो उठती है। अवश्य उनके नेत्र अधखुले होते हैं, किन्तु चन्द्रावली एवं सखियोंके आगमन एवं मधुर वार्त्तालापका उन्हें किंचित् भी आभास नहीं होता। विवश चन्द्रावली उनपर धीरे-धीरे बयार करने लगती है। सखियाँ शनैः-शनैः वहाँसे खिसक जाती हैं एवं कुञ्जकक्षमें प्रिया चन्द्रावली एवं प्रियतम श्रीकृष्णके अलावा कोई नहीं रहता।

सखी चन्द्रावली अतीव सुन्दरी तो थी ही, उसके मनमें रह-रहकर यह भाव भी उमड़ रहा होता है कि आज अपनी शृंगार-सज्जा एवं रूपसे वह प्रियतमको मुग्ध कर देगी एवं इतना सुख देगी कि वे फिर कभी राधा आदि अन्य सखियोंके पास फटकें ही नहीं। किन्तु उसके प्रियतम नीलचन्द्र तो इतनी गहरी नींदमें सो गये होते हैं कि वे पलक ही नहीं खोल पाते। चन्द्रावलीकी सारी शृंगारसज्जा व्यर्थ ही हो जा रही है। प्रियतम इतनी गहरी सुख-निद्रामें सो रहे हैं कि ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो अब वे रात्रिपर्यन्त सोये ही रहेंगे। पंखा करते-करते चन्द्रावली भग्न-मनोरथ उन्मनी होने लगती हैं। रह-रहकर वह यही सोच रही होती है कि कोई पल-भर भी इन्हें जगा देता तो बस, ये एक दृष्टि मेरे रूपपर डाल देते।

शनैः शनैः उसकी यह अधीरता बेचैनीका रूप लेने लगती है। अपने चरणोंकी पायल, कटि-करधनी खनकाकर ध्वनि करना प्रारंभ करती है, परन्तु उसकी समग्र चेष्टाएँ प्रियतमकी प्रगाढ़ निद्राको शिथिल करनेमें असफल ही रहती हैं। वह अपने हाथमें नीलपद्म धारण किये हुए है। यद्यपि वह पद्म संपुटित है, फिर भी वह उस पद्मकी किंचित् किञ्जल्क अपनी हथेलीमें ले लेती है एवं उस किञ्जल्कको अपनी हथेलीमें रखकर इस प्रकार फूँक लगाती है कि वह उसके प्रियतम नीलमणिके अधखुले नेत्रोंमें सन्निविष्ठ हो जाय। यद्यपि प्रियतमके नेत्रोंमें इससे जलन होना स्वाभाविक ही है, फिर भी वह प्रियतमको जगानेका अन्य कोई उपाय न पाकर बेचैनीवश यह कर उपाय कर लेती है। उस किञ्जल्कके नेत्रोंमें पड़ते ही प्रियतम नीलमणि जलनवश नेत्र मलते उठ खड़े होते हैं।

प्रियतम नीलमणिके निद्रासुखमें व्याघात तो अवश्य होता है एवं उन्हें क्षणांशके लिये नेत्रोंमें जलन-कष्ट भी होता है परन्तु चन्द्रावलीका मनोरथ पूर्ण हो जाता है। प्रियतम चन्द्रावलीको शृंगार किये सम्मुख पाकर प्रेम-विवश हो उठते हैं और उसका समादर करने लगते हैं।

सखी चन्द्रावलीकी इस सम्पूर्ण क्रियाको कुञ्जछिद्रोंसे एक भृंगी कीट देख रही होती है। उसे चन्द्रावलीका यह कृत्य अति नृशंस, प्रेमधर्मके सर्वथा विपरीत एवं अनुचित लगता है। वह प्रियतम प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरके प्रति हुए इस अत्याचारसे प्रपीड़ित हो उठती है। वह लघु कीट अपनी प्रतिक्रिया प्रकट तो नहीं ही कर पाती है किन्तु वह यह सब घटना प्रिया श्रीराधाके समक्ष निवेदन कर देती है। साथ ही प्रणय-रोषभरी मुद्रामें श्रीराधारानीके सम्मुख चन्द्रावलीके प्रति यह दण्ड-विधान भी कर देती है कि प्रियतम श्रीकृष्ण रमणसुन्दरको साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी नीतिसे चन्द्रावलीके कुञ्जमें जानेसे वर्जित करना ही चाहिये। सखी-प्रणयवश प्रिया राधारानीको उस भृंगीकी बात माननी ही पड़ती है।

प्रिया राधा भी चन्द्रावलीके इस व्यवहारको जानकर मर्माहत हो उठती हैं। जो युवती अपने रूप-शृंगारके प्रदर्शनके लिये अपने प्रियतम प्राणवल्लभके सुख-शयनमें व्याघात डालकर अपनी शृंगारसज्जित शोभाको दर्शित करानेके अभिप्रायसे उनके नेत्रोंमें पद्म-किंजल्क डालकर उन्हें नींदसे जगा दे, ऐसी सखीके यहाँ प्रियतम जायें ही क्यों ?

प्रियतमके इस मोहका तो प्रिया श्रीराधाको नाश करना ही चाहिये – ऐसा अपना कर्तव्य मानकर श्रीराधा अपनी भृंगी सखीकी प्रणय-शिक्षा मानकर कठोर मानवती हो उठती हैं। प्रिया श्रीराधामें स्वयंमें तो कोई भोग-वासना है ही नहीं स्वसुख-स्पृहा तो उन्हें लेश मात्र भी स्पर्श ही नहीं कर सकती है। उनमें तो एक ही भाव-लहर सब समय नये-नये रूपोंमें नित्य-नूतन वेग लिये उत्थित होती रहती है जिससे सहज समर्पण द्वारा वे अनवरत प्रिय-सुख-साधनामें डूबी रहती हैं – यही उनका जीवन-क्रम है। अस्तु,

प्रिया श्रीराधारानी दूषणरहित मान कर बैठती हैं। वे अपनी सखी ललिताको निर्देश दे देती हैं -

सखि, नँदलाल न आवन पावैं।
भीतर चरन धरन जिन दीजो, चाहे जिते ललचावैं।।
ऐसनको विश्वास कहा री, कपट- बैन बतरावैं।
'नारायण' इक मेरे भवन तजि भले अनत चलि जावैं।।

'सखि ललिते ! भविष्यमें ब्रजतनूज चन्द्रावलीके ही कुञ्जमें रहें, मेरे भवनमें प्रवेश नहीं पा सकें। तू उन्हें कदापि यहाँ चरण मत रखने देना, भले ही वे चाहे जितनी ललचाकर विनती करें। जिसकी वाणीमें ही कपट भरा हो , उसपर भला क्या विश्वास किया जाय ? नारायणस्वामी कहते हैं कि श्रीराधाका अनुशासन होता है कि वे अन्य सखियोंके भवनमें भले ही जावें मेरे यहाँ प्रवेश नहीं कर पावें।'

प्रिया श्रीराधाके इस अत्यन्त नवीन प्रेमाचरणमें निहित लबालब भरे उत्कृष्ट माधुर्यको देखकर प्रियतम श्यामसुन्दर तो मुग्ध हो उठते है। 'ओह ! अपने अतिशय प्रगाढ़ अनुरागको छिपाकर प्रिया ऐसी वक्र भी हो सकती हैं - प्रियतम श्रीकृष्ण कल्पना ही नहीं कर पाते।

श्रीकृष्ण सखियोंके चरणोंमें गिरकर उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे प्रियाको मनावें। किन्तु प्रियाका हृदय तो पाषाणवत् बन जाता है। यह पाषाणवत् कठोरता भी घन-प्रिय-स्मृतिमयी है। वे सखियोंसे कहती हैं –

'मिलौं न तिनसौं भूल, अब जौलौं जीवन जियौं।
सहौं विरहकौ सूल, बरु ताकी ज्वाला जरौं।।
मैं अपने मन अब यह ठानी। उनके पंथ पिऊँ नहिं पानी।।
कबहूँ नैन न अंजन लाऊँ । मृगमद भूलि न अंग चढाऊँ ।।
सुनौं न श्रवनन अलि पिकबानी। नीलजलज परसौं नहिं पानी।।

तनिक ध्यान दें, इस खीझमें कितनी रीझ भरी है। अब सखियाँ भला, उन्हें कैसे मनावें। प्रिया श्रीराधारानीके इस कठोर 'मान'में भी सखियोंको वे इतनी सुन्दरी लगती हैं कि उस सौन्दर्यका आस्वादन-पान अपने प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरको करानेके लिये वे सभी व्याकुल हो उठती हैं। वे निवेदन करती हैं –

'उन पहले तो निहारो लाल, मानिनीकी मान-शोभा,
पाछैं तो मनाय लीजे प्यारे हो गोविन्दा।
कर पर धरि कपोल बैठी री, नयन मूँद,
कमल बिछाय मानो सोयो सुख चन्दा।।
रिस भरी भौंह मानो भ्रमर बैठे अरबराय,
इन्दुतर आयो अरविन्द मकरन्दा।
नन्ददास प्रभु प्यारी काहे कौं रिसैये बलि,
जाके मुख देखेंते मिटत दुख-द्वंदा।।

हे प्राणप्यारे ! पहले चलकर अपनी प्राणप्रियाकी मानयुक्त मुखशोभापर तो दृष्टि डाल दीजिये, उसे मनानेकी बात

तो पश्चात् विचारी जायगी। वह अपने कपोलोंको अपनी हथेलीपर टिकाये नयन-मूँदे विराजित है। उसके मुखकी शोभा ऐसी विलक्षण रीतिसे निखर उठी है मानो कमलोंकी शय्या बिछाकर चन्द्रमा सुखपूर्वक शयन कर रहा हो। उसके करतल कमलोंकी शोभाको लज्जित कर रहे हैं एवं मुख चन्द्रमाकी छविको पराजित कर रहा है। उसके सुन्दरतम आननपर क्रोधसे भरी टेढ़ी भौहें खिंची हैं। हे प्रियतम ! ठीक ऐसा अनुभव हो रहा है मानो चन्द्रमा नभका त्यागकर धरतीपर अवतरण कर चुका है एवं अरविन्दसे चू रही मकरन्दकी बूँदोंसे तर होकर भीग गया हो।

राधाका हृदय अपने प्रियतम श्यामसुन्दरका क्षणभरके लिये भी वियोग सहनेको तय्यार नहीं है। यदि उनकी क्षणांशके लिये भी विस्मृति हो जाय, तो उनके प्राण ही अलग हो जावें, ऐसी वे श्रीराधा आज अपने प्रियके दर्शन न होने पावें इसलिये नयन मूँदकर बैठी हैं। परन्तु बाह्य अदर्शनकी कठोरतापूर्वक सब व्यवस्था कर दिये जानेपर भी क्या राधाका हृदय अपने प्रियतमकी विस्मृति कर पाया है ? प्रियतम श्रीकृष्ण प्रिया राधाके बाह्य कुञ्जभवनमें तो प्रवेश नहीं ही कर पाते किन्तु क्या राधाके हृदय-मन्दिरसे भी वे बाहर निकाल दिये गये हैं? नहीं, वहाँसे तो वे निकाले जा ही नहीं सकते। तब इस बाह्य निष्कासनका अर्थ केवल रसमय केलि-कलह ही तो है, वस्तुतः विरक्तिएवं निषेध यहाँ कहाँ संभव है ?

इसीलिये प्रियतम श्रीकृष्ण कह बैठते हैं -

इतौ श्रम नाहिन तबहिं भयौ।
सुनि राधिके ! जितौ श्रम मोकौं तैं इहि मान दयौ।।
धरनी धरि विधि वेद उधारयौ मधु सौ शत्रु हयौ।
द्विज नृप कियौ दुसह दुख मेट्यौ बलिकौ राज लयौ।।
तोरयौ धनुष स्वयंबर कीन्हौ रावन अजित जयौ।
अघ बक बच्छ अरिष्ट केशि मथि, दावानल अँचयौ।।
गुरुसुत मृतक ज्यायवे कारन सागर सोध लयौ।
तिय बपु धरयौ, असुर सुर मोहे, को जग जो न द्रयौ।।
जानौं नहीं कहा या रसमें, सहजहिं होत नयौ।
सूर सो बल अब तोहि मनावत मोहि सब विसर गयौ।।

सचमुच ही धन्य है यह प्रिया श्रीराधाका मान ! प्रियतम श्रीकृष्णने बड़े-बड़े काम किये - सम्पूर्ण पृथ्वीको पातालमें हिरण्याक्ष ले गया था, उसे सूकर रूप धारणकर अपनी दाढ़के अग्रभागपर उठा लाये; मत्स्यावतार लेकर चारों वेदोंका उद्धार किया; मधु-कैटभ जैसे शत्रुओंको पराजित कर दिया; रामावतारमें सीता-स्वयंवर किया, भगवान् शिवका पिनाक धनुष तोड़ डाला; किसीसे भी पराजित नहीं होनेवाले रावणके दस सिर एवं बीस भुजाएँ काटकर उसपर विजय प्राप्त करली; अघासुर, बकासुर, वत्सासुर, अरिष्टासुर, केशी आदि राक्षसोंका दर्प चूर कर दिया; दावानल पान कर गये; मृतक गुरुपुत्रकी खोजमें सम्पूर्ण सागरकी ही शोध कर डाली; मोहिनी अवतारके समय स्त्री-शरीर धारण किया एवं देव-असुर -सबको अपने रूपके जादूसे मुग्ध कर दिया; ऐसे अद्भुतकर्मा श्रीकृष्ण श्रीराधारानीसे कहते हैं - 'संसारमें ऐसी कौन-सी वस्तु है जो मेरे तेजके सम्मुख द्रवीभूत होकर पिघल नहीं गयी हो; किन्तु मेरा वह सब पराक्रम आज तुझे मनानेमें व्यर्थ सिद्ध हुआ। दुरूह-से-दुरूह कार्योंमें भी मैंने कभी हार नहीं मानी, कहीं भी मुझे श्रम, थकावटका अनुभव नहीं हुआ। किन्तु सचमुच ही आज मैं तेरे इस कठोर मानके सम्मुख हार मान गया। इस तेरी मानलीलामें न जाने कैसा नव-नवायमान प्रेमरस है कि यह सहज ही नित्य नवीन-नवीन आकर्षक रूप रखकर सम्मुख होता है।'

इसी प्रणय-रोषको पू.गुरुदेव श्रीराधारानीके चरणोंमें लगी 'लाल अलक्तक' महावरका नाम देते हैं क्योंकि

मानलीलामें ही प्रियाकी दृष्टि प्रियतमके मुखकी ओर नहीं उठती। निम्न दृष्टि किये प्रिया चरणोंमें ही अपने नेत्र संलग्न रखती हैं एवं प्रियतम भी क्षमायाचनाकी ग्लानिमें अपने पैरोंके अँगूठोंसे धरणी कुरेदते हुए सदैव प्रियाके चरणोंपर ही दृष्टि संलग्न किये खड़े रहते हैं। यह विलक्षण प्रणय-रोष-लीला है। प्रियतमसे हृदयके भीतर पूर्ण प्रगाढ़ मिलन होते रहनेपर भी उन्हें बाह्य दृश्यसे अदर्शित रखनेका रोष ही इस लीलामें हेतु है। यह पवित्रतम प्रेमका एक वक्र रसास्वादन भर ही तो है। यहाँका प्रियतम-त्याग भी मिलनकी पराकाष्ठा है। यह अविधि ही यहाँ प्रेमकी सर्वोपरि विधि है।

नुकीली कँगही एवं आरसीका भाव

यह प्राणोंमें अतिशय बढ़ी प्रीति सीधी ही रहे यह आवश्यक नहीं है, अतः यह पूर्ण परिपूर्णतम प्रीति ही आड़ी -टेढ़ी होकर कलहान्तरिताभाव ग्रहणकर प्रियतमसे कलहकर उन्हें केशरूपमें अपनेसे उलझाकर तोड़ देती है। अतः काली तीखी नुकीली कँगहीका रूप ग्रहण कर लेती है। कभी यह उज्ज्वल स्वच्छ दर्पण बनकर अपने ही हृदयमें उनकी पूर्ण प्रेममयी छवि प्रतिबिम्बित कर देती है। कभी यह इतनी आसक्तियुक्त हो उठती है कि मुखमें पानकी बीड़ी तुल्य रसमयी सुगन्ध भर देती है, कभी यही प्रीति प्राणोंकी रुचि बनकर परस्पर एक दूसरेका नीला-पीला वस्त्र बनकर प्रिया-प्रियतमके अंगोंसे लिपट जाती है।

कभी प्रिया-प्रियतमके प्रेममय प्राणोंकी ऊर्मियोंका यह संचालन ही उनके हृदयका आच्छादन - अरुणिम चोली (कंचुकी) बन जाता है, कभी प्रिया-प्रियतमके प्राणोंमें प्रवाहित होते मधुरतम प्रेम–संगीतके सात स्वर चोलीके सात बन्द बन जाते हैं, कभी यह प्राणोंका प्रेम-निश्वास पुष्पसार इत्र बन जाता है और कभी यही प्राणोंकी प्रेम-सुन्दरता उनके करका नील-कमल बन जाता है।

कहनेका इतना ही अर्थ है कि इस प्रेमराज्यमें न तो प्रिया-प्रियतम स्वयं ही कोई प्राकृत नर-नारी-विग्रह हैं, न ही यहाँका उनका श्रृंगार ही प्राकृतवत् जड़ परिच्छिन्न इदमित्थं पदार्थोंसे है। यहाँ तो सबकुछ प्राणोंमें तरंगायित होनेवाली प्रीतिके नित-नूतन भाव ही हैं, जो उपकरणों और श्रृंगार-सामग्रीका रूप ग्रहण कर लेते हैं एवं जिनसे प्रिया-प्रियतम परस्पर अपनी श्रृंगार-सज्जा करते रहते हैं।

इस प्रकार चिन्मय प्रेम-भावोंकी स्वतः प्रस्तुत चिन्मय सज्जा-सामग्रीसे, वे दोनों प्रिया-प्रियतम वहाँ अतुलनीय प्रेम-सज्जा करनेमें संलग्न हो जाते हैं। भावोंके उद्दीपनसे उनके हाथ हिल जाते थे और वे जो भाव रचना करना चाहते वह कुछ-का-कुछ हो जाता, वे पुनः उसे मिटाकर यथारुचि निर्माण करनेका प्रयास करते हैं, किन्तु भाव-तरलतावश एवं स्नेहरसकी स्निग्धतावश दो-तीन बार चेष्टा करनेपर ही वह श्रृंगार-सज्जा उनके मनोनुरूप हो पाती है।

वे इसके पश्चात् परस्पर एक दूसरेको श्रेष्ठ श्रृंगार करनेके कारण विजेता घोषित करने लगते हैं। प्रिया कहती है कि प्रियतमने बाजी जीतली एवं प्रियतम यह श्रेय प्रियाको देत हैं, इस प्रकार उनकी परस्पर परम रसीली बतकही होने लगती है । दोनों ही अपनी उक्तियोंके पीछे प्रबल तर्क रखते हैं; इस प्रकार दोनोंके रसमय वार्तालापके सुमधुर रवसे कुंज मुखरित हो उठता है

यहाँ यह ध्यान रहे कि इस प्रकार एक दूसरेको श्रेष्ठ सिद्ध करनेमें वस्तुतः उनका हेतु न तो परस्पर किसी अपनी अहङ्कारगत कामनावश एक दूसरेकी चाटुकारिता करना है, न ही उन्हें ऐसा परस्पर एक दूसरेकी श्रेष्ठताका मिथ्या भ्रम ही होता है; वस्तुतः यह भाव-श्रृंगारका चिन्मय सौन्दर्य ही है जो प्रतिक्षण वर्धमान होनेके कारण प्रतिपल उत्कृष्ट, उत्कृष्टतर स्वभावतः ही होता जाता है। इसकी शोभाकी प्रतिक्षण वर्धनशीलता ही इन प्रिया-प्रियतमको परस्पर एक दूसरेके द्वारा किये श्रृंगारकी उत्कृष्टता प्रतीत होती है। और सचमुचका यह उत्कृष्टतम अनुभव ही उन्हें परस्पर एक दूसरेको प्रमाणपत्र देनेमें हेतु होता है कि 'प्रिये ! तू विजेता है' अथवा ' प्रियतम ! तुम विजेता हो।'

प्रिया-प्रियतमका शिव-शिवाभावमें शृंगार

'क्या सत्य कभी है दो होता? है नित्य एक वह तो;'प्रियतम !
'प्यारी विचार कर तुम देखो, है उक्ति सही मेरी;'प्रियतम !
'हे प्यारे! है स्वीकार मुझे यह, सत्य एक ही है।'प्रियतम !
'सोचो तुम बार-बार अब भी, मेरा कहना सच है।'प्रियतम।।२६१।।

'अच्छा, प्राणेश्वरि ! विचारकर देखो, सच कभी दो होता है क्या ? तुम सोचो और निर्णय दो, मेरी बात सत्य gSfd ughaA* vk§ fd 'k§hmÙkjearR{k.kckg mBrh 'प्रियतम ! मुझे सर्वथा स्वीकार है कि सत्य एक ही होता है; अतः तुम भी बार-बार विचार कर देखो कि मेरा कहना सत्य है कि नहीं।'।।२६१।।

'ऐसी बतकही रसीली शुचि उनमें पल साठ-चली;'प्रियतम !
'यह कहा अन्तमें प्यारी ने, 'प्यारे! देखो अब तो;'प्रियतम !
'अपने-ही-आप सजाऊँगी मैं अपने इस तन को;'प्रियतम !
'तुम किंतु घड़ी आधी अपने लोचन मूँदे रहना।'प्रियतम।।२६२।।

इस प्रकारकी मनोरम बतकही-पवित्र-से-पवित्र रससे भरी हठमूलक यह चर्चा-परस्पर लगभग साठ पल (चौबीस मिनट) चलती रही अन्तमें राधाकिशोरीने कहा-'अच्छा, छोड़ो इसे, एक बात कहती हूँ, बड़े ध्यानसे सुनो भला ! अब मैं चाहती हूँ कि अपने आप अपने तनका शृंगार करूँ; किन्तु तुम्हें आधी घड़ीके लिये अपनी आँखें बन्द रखनी ही होंगी।'।।२६२।।

'प्यारे ने हँस-हँस कर ऐसा करना स्वीकार किया;'प्रियतम!
'शर्तें दो रखी, किंतु उसने कुछ बात सोच करके;'प्रियतम !
'छूता मैं रहूँ निरन्तर ये दस नख पीले पद के;'प्रियतम !
'फिर मैं भी अङ्ग सँवारूँ, तब मीलित-दृग तुम रहना।'प्रियतम।।२६३।।

प्रियतमने हँसकर ऐसा करना स्वीकार कर लिया...........। और कुछ सोचकर उन्होंने दो शर्तें रखीं-'प्राणवल्लभे ! सुनो ! नयनोंको निमीलित मैं रख लूँगा, किन्तु तुम्हारे चरणोंके दस नखचन्द्रोंको मैं निरन्तर स्पर्श करता रहूँ। फिर जब मैं भी अपने अंगोंको सँवारने लगूँगा, तब तुम भी आँखें बन्द किये रखना।।२६३।।

'प्यारी ने मुसका-मुसका कर हामी भरली इसकी;'प्रियतम !
'कौतुक नवीन आरम्भ हुआ अब वह निमेष में ही;'प्रियतम !
'मुट्ठी में पद-नख-मणि धारण करके प्यारे बैठे;'प्रियतम !
'प्यारी विचित्र अपने तन की रचना करने बैठी;'प्रियतम।।२६४।।

मन्द-मधुर स्मितके साथ प्यारीने शर्त स्वीकार कर ली और निमेष बीतते-न-बीतते नवीन कौतुक प्रारम्भ हो गया। प्रियतमाके पद-नखचन्द्रको अपने मुट्ठीमें धारण करके नील देवता शान्त बैठे रहे और प्रियतमा राधा अपने तनका शृङ्गार करने बैठी- उनका अभिनव अद्भुत शृंगार आरम्भ हुआ।।२६४।।



(श्रीराधाकिशोरी का अपना स्वयंका महादेवरूपमें शृंगार) (पृष्ठ २३३)

'बोली मन में,' 'प्यारे को मैं अबतक सुख दे न सकी;' प्रियतम
'ये सदा पूछते रहते हैं बातें अनेक मुझसे;' प्रियतम !
'लज्जा में भरी किंतु मैं तो कुछ बोल नहीं पाती;' प्रियतम !
अतएव रूप अपना निरवधि मैं एक और कर लूँ' प्रियतम।।२६५।।

मन-ही-मन किशोरी राधा बोल उठी-'हाय रे! मैं अबतक प्रियतमको सुख न दे सकी। ये सदा मुझसे अनेक बातें पूछते रहते हैं और मैं लज्जामें डूबकर कुछ भी बोल नहीं पाती। अतएव अपना एक रूप मैं और निर्मित कर लूँ निरवधि, अनन्त कालतकके लिये।।।२६५।।

'कर्पूर-गौर वह रूप बने करुणा से नित्य भरा;' प्रियतम !
'अलकें उसकी कमनीय अहो ! बन जायँ जटा नीली;' प्रियतम !
'आवरण-हीन वह नित्य रहे, भूषित फिर नित्य रहे;' प्रियतम !
'प्यारे के पद-सरोरुहों की रज की परछाँही सा' प्रियतम।।२६६।।

मन-ही-मन किशोरी राधा बोल उठी-'हाय रे ! मैं अबतक प्रियतमको सुख न दे सकी। ये सदा मुझसे अनेक बातें पूछते रहते हैं और मैं लज्जामें डूबकर कुछ भी बोल नहीं पाती। अतएव अपना एक रूप मैं और निर्मित कर लूँ, निरवधि, अनन्तकालके लिये।।२६६।।

'देवी के बदले प्यारे को वह महादेव दीखे,' प्रियतम !
'प्यारे की प्रियता भी उसमें पल-पल परिवर्धित हो;' प्रियतम !
'मैं युगपत् अपने इस तन को, उस महादेव-तन को;' प्रियतम !
'देखूँ, मेरी मुग्धता किंतु यह भी अक्षुण्ण रहे' प्रियतम।।२६७।।

'मेरा वह रूप देवीके बदले प्यारेको नित्य महादेव ही दीखे। प्यारेकी प्रियता भी उसमें पल-पल परिवर्द्धित होती रहे। और मैं युगपत् अपने इस तनको और महादेव-तनको देखती रहूँ, किन्तु मेरी यह मुग्धता भी अक्षुण्ण रहे भला !।।२६७।।

'इसके पश्चात् अहो! जब भी जो भी ये प्रश्न करें;' प्रियतम !
'तत्क्षण ही समाधान उसका सुन्दरतर पाऊँ मैं;' प्रियतम !
'प्यारे को सुख ही दूँ, मेरा जीवन है इसीलिये;' प्रियतम !
'है सच्च यह, तो प्यारे देखें वह रूप आँख खुलते,' प्रियतम।।२६८।।

'और इसके अनन्तर अहो ! जब भी, जो भी प्रश्न ये करें, उस समय तत्क्षण ही उसका सुन्दर समाधान मैं कर पाऊँ, ऐसी योग्यता मुझमें निरन्तर विद्यमान रहे। 'मैं प्रियतमको सुख-ही-सुख दूँ, इसीलिये मेरा जीवन है'-यदि यह बात सत्य है तो मैं अपना जो रूप बनाना चाह रही हूँ, वह रूप प्रियतमकी आँख खुलते ही उनको दीख जाय।'।।२६८।।

'प्यारे के लोचन उन्मीलित हो गये निपल में ही;' प्रियतम !
'प्यारी का अद्भुत रूप निरख करके वह मुसकाया;' प्रियतम !
'जय-जय हे! महादेव! जय!' फिर कहकर नतमस्तक हो;' प्रियतम !
'वह भी अब चलावेश-रचना करने नूतन अपनी;' प्रियतम।।२६९।।

विपल बीतते-न-बीतते प्रियतमके नयन-सरोरुह उन्मीलित हो गये। प्रियतमाका यह अद्भुत रूप निरखकर उनके होठोंपर मुसकान भर आयी और फिर वे तत्क्षण बोल उठे-'जय जय हे महादेव! जय जय जय !' इतना कहकर वे नतमस्तक हो गये..........। तथा तुरन्त अपने नये वेषकी रचना करनेमें संलग्न हो गये।।।२६९।।

'प्यारी के चिन्तन में ही थी प्यारे की वृत्ति लगी, प्रियतम !
'ऐसी अखण्ड तन्मयता थी पल तीस बनी उसकी, प्रियतम!
'जो प्रायः उसको परिणत थी प्यारी में कर बैठी, प्रियतम!
'अतएव ढक गया साँवरपन पहले गोरेपन से, प्रियतम।।२७०।।

अस्तु, नीलसुन्दरकी वृत्ति प्रियतमाके चिन्तनमें ही लगी थी- अबसे लगभग तीस पल पहलेतक। और ऐसी अखण्ड तन्मयता थी, जो प्रियतमको प्रियतमामें ही प्रायः परिणत कर बैठी। इसलिये पहले तो उनका साँवरपना गौरवर्णसे आवृत हो गया।।।२७०।।

'हो गये व्यक्त फिर उसमें वे तरुणी के चिह्न सभी; प्रियतम !
'वह बना रमण से अब रमणी सुन्दरी अतुल गोरी; प्रियतम !
'सम्मिश्रित भावों का बोझा इतना गुरु-गुरुतर था; प्रियतम !
'जिससे दबकर दृग ने धर ली अचपल गँभीर मुद्रा, प्रियतम।।२७१।।

क्षण बीतते-न-बीतते तरुणीके सभी चिह्न उस नये रूपमें अभिव्यक्त हो गये। वे अप्रतिम सुन्दरी गौरवर्णा रमणीके रूपमें परिणत हो गये-नीलसुन्दर रमणसे रमणी हो गये। सम्मिश्रित भावोंका बोझा इतना गुरु, गुरुतर था, जिसके भारसे दबकर आँखोंने गम्भीर- चाञ्चल्यहीन मुद्रा धारण कर ली।।२७१।।

'प्यारे में प्यारेपन की कुछ अब भी थी गन्ध बची; प्रियतम !
'इसलिये सोचता था यों वह रमणी-तन में बैठा; प्रियतम !
'प्यारी के सभी मनोरथ हों पूरे अनुराग भरे; प्रियतम !
'इन महादेव की मैं भी अब हूँ नित्य महादेवी; प्रियतम ।। २७२।

प्रियतममें अब भी प्यारेपनकी किञ्चित्-सी गन्ध बची अवश्य थी। इसलिये रमणी-तनमें बैठे-बैठे वे इस भाँति सोचने लग गये-'प्रियतमाके अनुरागभरे सभी मनोरथ पूर्ण हो जायँ,-पूर्ण होते रहें अनन्त कालतक।....... और मैं तो अब इन महादेवकी नित्य महादेवी हूँ ही।।२७२।।

'चारों में ही स्वरूपतः है यद्यपि न भेद कोई; प्रियतम !
'चारों ये रूप सर्वथा हैं सच्चिदानन्दमय ही; प्रियतम !
'लीलाप्रिय अहो! किंतु निरवधि हम चार हुए खेलें; प्रियतम!
'युगपत मुग्धता, नित्य संविद मुझमें भी व्यक्त रहे।' प्रियतम।।२७३

'यद्यपि हम चारोंमें ही स्वरूपतः कोई भेद नहीं है- ये चारों-के-चारों सर्वथा सच्चिदानन्दमय हैं ही; किन्तु हम चारों-चार पृथक्-पृथक् सत्ता रखते हुए ही अनन्त कालतक लीलाप्रिय बने रहकर खेलते रहें भला ! साथ ही मुझमें युगपत् एक कालमें नित्य मुग्धता एवं नित्य संविद् भी अभिव्यक्त रहे।'।।२७३।।



इन महादेवकी मैं भी अब हूँ नित्य महादेवी, प्रियतम!
(श्रीश्यामसुन्दरका अपना स्वयंका महादेवीरूपमें शृंगार)(पृष्ठ २३४)

जिज्ञासा

उपरोक्त छन्दोंमें प्रिया-प्रियतम अपना श्रृंगार महादेव एवं महादेवी (शिव-शिवा) के रूपमें ही क्यों करते हैं? ईश्वरकोटिके देव तो लक्ष्मी-नारायण भी हैं।

समाधान

यह सदैव ध्यान रहे कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव पूर्ण परात्पर परतत्त्व विशुद्ध प्रेममूर्त्ति हैं। ये किसी भी ईश्वरकोटिके प्राकृत ईश्वर अथवा देवजगत्के अवतार होना संभव ही नहीं हैं। इन पंक्तियोंमें जिन महादेव एवं महादेवीके रूपमें प्रिया-प्रियतमके सज्जित होनेका वर्णन है, ये महादेव निरुपाधिक प्रत्यगात्मा भगवान् कामेश्वर हैं एवं सोपाधिक सच्चिदानन्दमयी लीलामहाशक्ति योगमाया भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही महादेवी हैं। कीर्तिदामैयाको ये महादेवी ही प्रत्यक्ष दर्शन देकर यह रहस्य उद्घाटित करती हैं कि उनके उन्मुक्त कुन्तलोंकी लटको हाथमें लेकर सुधास्यन्दी स्वरमें 'री, मैया !' कहकर बोलनेवाली पीत प्रभामयी जो बालिका उन्हें उनके हृदय-मन्दिरमें एक नीलसुन्दर किशोरके सहित कदम्ब वृक्षके नीचे दृष्टिगोचर हो रही है; यह बालिका वर्तमानमें उनका गर्भस्थ शिशु ही है। यह मधुरिमाकी मूल-सार पीताभविग्रह बालिका एवं नीलज्योतिपुञ्ज किशोर दोनों असमोर्ध्व भगवत्ता एवं सच्चिदानन्दतत्वका मूल सार हैं। इन युगलके महादेवीके हृदय-गुहामें विराजित दृष्टिगोचर होनेका अर्थ ही है कि ये दोनों किशोर-किशोरी पीत-नीलद्युति निरुपाधिक एवं सोपाधिक सच्चिदानन्द प्रत्यक् आत्मतत्त्वका भी मूलहृदय हैं। **(विस्तारके लिये देखें प्रथम शतक छन्द संख्या ६६से ७०तक)**

इस उपरोक्त तत्त्वको पुनः प्रकट करनेके लिये प्रिया महादेवके रूपमें सज्जित होती हैं; क्योंकि प्रिया प्रेमकी आश्रय-आलंबन होनेके कारण निरुपाधिक प्रत्यक् आत्मस्वरूपा हैं एवं प्रियतम महादेवीके रूपमें अपनी सज्जा करते हैं। प्रियतम इस श्रृंगारसे यही प्रकट करते हैं कि सोपाधिक होनेसे ही वे भगवत्ता उपाधिसे भूषित हैं और इसीलिये प्रियतमके साथ-साथ भगवान् भी हैं। प्रियामें निरुपाधिकता होनेसे वे मात्र निरीह अधिरूढ़ महाभावमयी हैं। वे भगवत्ता-ऐश्वर्य-गन्ध-शून्य मात्र महाभावैश्वर्यमयी हैं।

वस्तुतः अनन्त एवं अगाध सच्चिदानन्द-मूल-सार परात्पर परतत्त्व विशुद्ध प्रेमसिन्धुके पूर्ण आस्वादनमय होनेसे आस्वाद्य एवं आस्वादक दो तट बन जाते हैं। यह आस्वादक प्रेमका विषय हो जाता है, और आस्वाद्य प्रेमका आश्रय कहलाता है। इस आस्वाद्य नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया श्रीराधाके प्रेमका आस्वादन करते हुए आस्वादक नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण सदैव नित्य नव-नवायमान आनन्दको प्राप्तकर उसमें डूबे रहते हैं। जहाँ प्रिया श्रीराधा देती-रहनेकी प्रतीक हैं वहीं प्रियतम श्रीकृष्ण लेते-रहेंकी भूमिका निभाते रहते हैं। वस्तुतः न कोई लेता है, न ही कोई देता है, मात्र प्रेमसिन्धु स्वयं ही अपने आनन्दका आस्वादक-आस्वाद्य हो, प्रिया-प्रियतम - दो नाम-रूप धारणकर विलक्षण नव-नवायमान ऊर्ध्व तरंगोंमें लहराता रहता है। यह प्रेम परतत्त्व ही जैसे प्रिया-प्रियतम बना प्रेम-क्रीड़ारत रहता है, ठीक इसी तरह यह प्रेम-परतत्त्व ही प्रेमधाम वृन्दाकानन बन जाता है, जिसकी उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम दिशाओंका वर्णन महादेवीके जिज्ञासा करनेपर महादेव करते हैं।

वस्तुतः नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण, नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया श्रीराधा एवं उनके सच्चित् स्वरूप इन महादेव एवं महादेवी - चारोंमें ही स्वरूपतः कोई भेद नहीं है। ये चारों रूप सच्चिदानन्दमय पूर्ण परात्पर परतत्त्व ही हैं। किन्तु ये चारों लीलाके लिये भिन्न-भिन्न चार नाम एवं रूप रखकर लीला-प्रिय हुए खेल कर रहे हैं। इन चारोंमें ही लीला-प्रयोजनके लिये नित्य मुग्धता एवं नित्य ज्ञान युगपत् एक साथ प्रकाशित होता रहता है। नित्य मुग्धताके बिना तो रसमयी लीला संभव नहीं और नित्यज्ञान पूर्ण सत्य होनेसे स्वाभाविक ही इनमें रहना परमावश्यक है ही।

रस-सम्प्लावन ही रस-सम्प्लावन

'उन महादेव के इतने में लोचन खुल गये, तथा;'प्रियतम !
'शोभा निहार कर मुग्ध हुए वे उन नवदेवी की;'प्रियतम !
'वे पार्श्ववर्तिनी क्षणमें ही चिर-परिचित हो बैठीं;'प्रियतम !
'उमड़ा रस-सिन्धु, देव डूबे देवी को साथ लिये;'प्रियतम।।२७४

उपर्युक्त वाक्य पूरा होते-न-होते उन महादेवकी आँखें खुल गयीं...। उन नव देवीकी शोभा निहारकर वे मुग्ध हो गये। साथ ही वे पार्श्ववर्त्तिनी नवदेवी क्षणमें ही उन महादेवसे चिरपरिचित हो बैठीं। फिर तो रस-सिन्धु उमड़ पड़ा और देवीको साथ लिये हुए वे महादेव उस महासमुद्रमें निमग्न हो गये।।।२७४।।

'पहलीतरङ्ग से ही प्लावित उत्तर की कुञ्ज हुई;'प्रियतम !
'फिर लहर दूसरी में कानन पश्चिम का डूब गया;'प्रियतम !
'ऊँची अत्यन्त तीसरी में दक्षिण का वन डूबा;'प्रियतम !
'चौथे प्रवाह में मग्न हुआ प्राची-अरण्य पूरा;'प्रियतम।।२७५।।

उस महासमुद्रमें तरङ्गें उठने लगीं। पहली लहरमें ही उत्तरकी कुञ्ज परिपूर्णतया प्लावित हो गयी। दूसरी लहरमें काननका प्रतीची अंश सर्वथा डूब गया। अत्यन्त ऊँची तीसरी लहरमें दक्षिणका वन विलीन हो गया। प्राचीका पूरा-का-पूरा अरण्य चौथे प्रवाहमें-उस प्लावनमें- रसमग्न हो गया।।।२७५।।

'प्लावन जाकर तब कहीं थमा, जब युग असंख्य बीते;'प्रियतम !
'देवी वे, महादेव उससे बाहर अब निकल सके;'प्रियतम !
'डूबे रहने का सुख अनुपम उन-चारों लहरों में;'प्रियतम !
'जो था उनको अनुभूत हुआ, उसकी ही बात छिड़ी;'प्रियतम।। २७६।।

इतना होनेपर- अबतक असंख्य युग-युगान्त बीत चुके थे भला-तब कहीं जाकर इस प्लावनका विराम हुआ। वे महादेव, वे महादेवी इतने कालके अनन्तर उससे बाहर निकल पड़े। उन चारों प्लावनमें निमग्न रहनेका निरुपम आनन्द, जो उन्हें अनुभूत हुआ था, उसकी ही चर्चा छिड़ गयी।।।२७६।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

क्योंकि ये चारों स्वरूप एक मात्र घन रसरूप हैं; इनका धाम भी सच्चिदानन्दकन्द पूर्ण रसमय है, अतः महादेव एवं महादेवीके रूपमें शृङ्गारित होकर नवीन रूपमें अपनेको देखते ही प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीमें अनन्त रसोदधिका आप्लावन हो उठता है। इस रसाप्लावनमें महादेवीके साथ महादेव भी रसनिमग्न हो उठते हैं। यहाँ ध्यान रहे - सिन्धुका कोई आकार नहीं होता। उसमें मात्र जल-ही-जल जब लहरोंके रूपमें उमड़ता है तो उन लहरोंके कुछ भी नाम रखलें, उन्हें प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर-नित्यनिकुञ्जेश्वरी कहलें अथवा महादेव-महादेवी कहदें स्वरूपतः तो वे जलरूप सिन्धु ही हैं। इसी प्रकार जहाँ अतल अगाध सिन्धु है, उसमें लहरोंकी लीलास्थली विहारस्थली भी जलसे भिन्न पृथ्वी नहीं होती, समुद्रका अथाह शान्त जल ही उसके उच्छलनकी आधार विहारभूमि भी होती है। संविद्‌की प्रधानता होनेसे ही इन नित्यनिकुञ्जेश्वरकी स्वरूपगत महादेवीमें परिणति हो जाती है

और नित्यनिकुञ्जेश्वरी महादेवके रूपमें सज्जित हो जाती हैं। वही रसमुग्धताकी प्रधानतासे ये महादेव-महादेवी ही प्रिया-प्रियतमरूप हो उठते हैं। हैं वस्तुतः चारों एक ही सच्चिदानन्द महारससिन्धु। इसीलिये वे शृंगार धारणकर ज्योंही एक दूसरेके रूपको दृष्टिगत करते हैं , इनका स्वरूपगत रससिन्धु उमड़ उठता है और युगपत् दोनोंको तो परिस्नात कराता ही है, धामगत सभी दिशाओंको भी अपने आनन्दमें आप्लावित कर बैठता है। वहाँ कालकी सत्ता ही नहीं है। अतः इस आप्लावनके विराम लेनेकी कोई अवधि बतायी ही नहीं जा सकती। केवल संकेत भर करनेको पू.गुरुदेव असंख्य युगोंकी बात भर कहते हैं; किन्तु सत्यांशमें असंख्य युग कोई अवधिकारक सीमा निर्धारित नहीं करते, जिसे काल-गणनाका नाम दिया जा सके।

जिज्ञासा

आगेकी पंक्तियोंमें चारों दिशाओंसे रससिन्धुके आप्लावनका वर्णन है। प्रथम लहरने उत्तरदिशाके कुञ्जको डुबोया, फिर क्रमशः द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ लहरने पश्चिम, दक्षिण एवं पूर्वके कुञ्जोंको डुबोया है इसका भाव तनिक और विस्तारसे समझावें ।

समाधान

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके पूर्ववर्त्ती रसानुभवज्ञ वैष्णव महानुभावोंने शास्त्र-निर्णय तथा अपने अनुभवके आधारपर पाँच प्रकारके रस बतलाये हैं। रसिकोंके भाव-भेदसे ही ये रस-भेद भी हैं। यह आवश्यक नहीं है कि इनका विकास रसिक साधकके मनमें क्रमशः हो। किन्तु यह निश्चय है कि अगले-अगले रसमें पिछले रसोंकी निष्ठा अवश्य रहती है। जैसे आकाशादि पञ्चभूतोंके गुण अगले-अगले भूतोंमें वर्त्तमान रहते हैं, वैसे ही रस-साधन-प्रणालीमें भी रसोंका समावेश मान लेना चाहिये। जैसे पृथ्वीतत्वमें पाँच भूतोंके गुणोंका समावेश है वैसे ही शान्त दास्यादि रसोंका माधुर्यमें पर्यवसान है। जरा समझ लीजिये - आकाश या व्योम शब्द तन्मात्रक है। वायु या मरुत्में अपनी स्पर्शतन्मात्राके साथ ही साथ आकाशकी शब्दतन्मात्रा भी निहित रहती है। आगे जाकर अग्नि या तेजमें अपनी रूपतन्मात्राके साथ वायुकी स्पर्श एवं आकाशकी शब्दतन्मात्रा भी रहती है। अतः तेजतत्त्व रूप, स्पर्श एवं शब्द तीनों तन्मात्रायुक्त है। इसी प्रकार जलमें अपनी रसतन्मात्राके साथ ही रूप, स्पर्श एवं शब्द तीनों तन्मात्राओंका भी समावेश होनेसे यह रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द चारों तन्मात्राओं सहित है। क्षिति या पृथ्वीमें अपनी गन्धके साथ अन्य चारों रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द भी रहनेसे वह पाँचों तन्मात्राओंसे युक्त मानी जाती है।

इसी प्रकार शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्यको समझना चाहिये। शान्तरस जहाँ अडिग निष्ठामय है, वहाँ दास्यभावमें अडिग निष्ठाके साथ ही सेवा भी जुड़ जाती है। सख्यमें निष्ठाके साथ सेवा और तब सङ्कोचराहित्य (विश्रम्भ) भी मिला रहता है। वात्सल्यमें निष्ठा, सेवा, विश्रम्भ एवं ममताका योग रहता है। अग्रिम पंक्तियोंमें विशुद्ध वात्सल्य, सख्यमिश्रित वात्सल्य, स्वकीयामाधुर्य एवं परकीयामाधुर्य - इन चार तटोंका वर्णन है। यहाँ एक पश्चिम दिशाकी कुञ्ज तो विशुद्ध वात्सल्यरसकी प्रतिनिधि है। रसराज नित्यनिकुञ्जेश्वर नित्य नीला शिशु बना यशोदोत्संगलालित रूपमें खेल रहा है; तथा दक्षिणकी कुञ्जमें नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीमती राधा भी अवनीशनन्दिनी भानुराजदुहिता बनी वात्सल्यरसपानोत्सुका हैं। यहाँ यह ध्यान रहे कि पश्चिम निकुञ्जकी लीलामें रसराज श्रीकृष्णके शिशु होनेसे जहाँ विशुद्ध वात्सल्यरसमयी लीला है, वहीं दक्षिण निकुञ्जकी लीलामें अवनीशनन्दिनी बनी श्रीमती राधाकुमारी किंचित् वयस्का होनेसे सखी-प्रणय-रस-सेविता भी हैं । दक्षिण निकुञ्जमें वात्सल्य एवं सख्य दोनोंका युगपत् आस्वादन है। वहाँ अवनीशनन्दिनी राधा शिशु नहीं होकर बाललीलारत हैं एवं उनके संग उनकी सखियाँ भी लीलारत हैं।

उत्तर निकुञ्जकी बात

'देवी बोली, स्वर था उनका मानो रस का सोता, प्रियतम !
'हे नाथ ! बात कुछ बतलाओ उत्तरनिकुञ्जवाली'; प्रियतम !
'सुनते ही महादेव गद-गद होकर यों बोल पड़े'; प्रियतम !
'हे सती ! सुनो द्रुमडालों पर हिमकरके न्यायक हूँ'; प्रियतम ॥२७७॥

मानो रसका स्रोत उमड़ पड़ा हो, ऐसे मधुरिम स्वरमें देवी बोली-'नाथ हे! उत्तर निकुञ्जवाली कुछ बातें बताओ सही !' यह सुनना था कि महादेव गद्गद् हो गये और तत्क्षण बोल पड़े-'हे सती ! सुनो, शाखाचन्द्र-न्यायसे किञ्चित् बात कहता हूँ'- ।।२७७।।

'युगपत् निस्पन्द नित्य एवं उच्छलित नित्य रस है'; प्रियतम !
'वह देश-काल से परे जहाँ अपने स्वरूप में है'; प्रियतम !
'है किंतु कूल पर जो, उसकी आँखों के अनुभव में'; प्रियतम !
'उसके स्वभाव ये नित्य अहो ! आते हैं क्रमशः ही'; प्रियतम ॥२७८॥

'युगपत् नित्य निस्पन्द एवं नित्य उच्छलित रहना ही नित्य रसका स्वरूप ही है। शब्दोंमें तो मात्र इतना ही कहना बनता है कि जहाँ वे अपने स्वरूपमें देश-कालसे परे हैं, वहाँकी ही यह चर्चा है। किन्तु जो तटपर अवस्थित है, उसकी आँखोंके अनुभवमें नित्य रसका यह स्वभाव, अहो ! क्रमशः ही व्यक्त होता है भला !।।२७८।।

'आस्वादन, आस्वादक, एवं आस्वाद्य नाम वाला, प्रियतम !
'सच तो यह है, दयिते ! किंचित् कोई है भेद नहीं'; प्रियतम !
'फिर भी है वह रसराज, वहाँ वह महाभाव भी है'; प्रियतम !
'इन दो की ही क्रीड़ा चलती उत्तरनिकुञ्ज में है, प्रियतम ॥२७९॥

'प्रियतमे ! देखो, वस्तुतः आस्वादन, आस्वादक एवं आस्वाद्य नामवाली वस्तु- इन तीनोंमें कोई भेद नहीं है। फिर भी जहाँ वह रसराज है, वहाँ वह महाभाव भी है ही ! इन दोकी ही क्रीड़ा उत्तर निकुञ्जमें चलती रहती है।''।।२७९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

उत्तर निकुञ्जमें श्रीराधाजीका स्वरूप-विलास अवनीशनन्दिनी नहीं होकर श्रीकृष्णार्द्धांगसम्भूता होनेसे वे श्रीकृष्णस्वरूपा ही हैं। यहाँ श्रीराधाकृष्ण युगल दम्पति दोनों ही आस्वादक-आस्वाद्य एवं आस्वादन; ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयकी त्रिपुटीसे सर्वथा सर्वांशमें विमुक्त सच्चिदानन्दमय एकमात्र प्रेमतत्त्ववस्तु हैं। इनमें लीला रसास्वादनके लिये ही एक प्रेमतत्ववस्तुका द्विविध प्रकाश है। उनमें न स्त्री है, न पुरुष है, केवल लीला-विलास है। दोनों ही सच्चिदानन्दघन भगवद्विग्रह हैं। इनका सबकुछ सच्चिद्घन है। एक प्रकाश-ही-प्रकाश, विशुद्ध चिन्मय रस प्रीति परतत्त्व विषयालम्बन एवं आश्रयालम्बनरूप हुआ रसराज एवं महाभाव दो रूपोंमें लीलारत है, तटमें स्थित साधकका क्रमशः यही अनुभव होता है। उत्तर निकुञ्जमें इन नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीकी निर्बाध मिलन-लीला चलती रहती है। इनमें उत्तरोत्तर निरन्तर रसवृद्धिकी होड़ लगी रहती है। रूपमें, सौन्दर्यमें, लीलामें, प्रेममें, आनन्दमें, परस्पर एक दूसरेको दिये जानेवाले सुखदानमें, इनमें सर्वत्र, सर्वथा होड़ लगी है। इन युगल-प्रेम-रस-दम्पतिमें प्रेमकी पूर्णता नित्य विद्यमान होते हुए भी नित्य अतृप्ति ही रहती है। यह अतृप्ति इस रूपमें कि हम परस्पर एक दूसरेको आजतक सुखी, पूर्ण सुखी नहीं कर

पाये। यद्यपि हेमकान्तमणि श्रीराधामें नीलकान्तमणि श्रीकृष्णको अनवरत सुखदान करनेकी अभिलाषा हिलोरें लेती रहती है, इसी प्रकार नीलकान्तमणि प्रियतममें अपनी प्रियाको सुख देनेकी लालसा निरन्तर उछाल लेती रहती है, एवं इस लालसाके रहनेपर उसके अनुरूप ही उनका दैनिक जीवन और लीला भी ढलती है, फिर भी प्रियाके मनमें निरन्तर यही अनुभव होता रहता है कि 'हाय रे, मैं अबतक अपने प्रियतमको सुख नहीं दे सकी' एवं प्रियतमके मनमें यह विचार निरन्तर ही तरंगायित रहता है कि 'ओह ! प्रिया मुझे इतना प्रेम करती है, किन्तु मैं अबतक उसे कभी सुखी नहीं कर पाया।' यह अतृप्त एवं अपूर्ण सुखदानकी वृत्ति ही उन दोनोंमें नित्य नये-नये वेगसे नवीन लीलोत्साह, मिलनोत्साह जगाती रहती है। इस प्रकार प्रतिदिवस ही नव-नवायमान प्रेमोत्साहसे ये युगल दम्पति इस उत्तर निकुञ्जमें नित्य निर्बाध मिलनरत रहते हैं।

जिज्ञासा

सभी जानते हैं कि क्षुधा निवृत्त हो जानेपर भोजनमें अरुचि या प्रीति नहीं रहती। फिर प्रिया-प्रियतम जब अनादि अनन्तकालतक नित्य मिलित रहते हैं, तो उनकी प्रीति उत्तरोत्तर कैसे बढ़ सकती है। प्रीतिकी उत्कण्ठा तो तभी वृद्धिको प्राप्त होती है जब अबाध मिलन न हो, उसमें बाधा आती रहे। भूख पूरी मिटनेके पहले ही भोज्य वस्तु समाप्त हो जाय। यहाँ तो भोज्य वस्तु - मिलन निर्बाध है, अनन्तकालीन है तब उत्कण्ठा कैसे बनी रहेगी ?

समाधान

यह विलक्षण प्रेमराज्य है। यहाँ प्राकृत नियम सभी निरस्त हो जाते हैं। यहाँ न तो प्रिया श्रीराधारानी नित्यनिकुञ्जेश्वरीकी मादनाख्य महाभावमयी माधुर्यास्वादनमयी स्पृहा ही कभी निवृत्त होती है एवं न ही श्रीकृष्णका माधुर्य कभी सम्पूर्णरूपसे आस्वादित होता है। प्रिया श्रीराधारानीकी प्रेमोत्कण्ठा यहाँ विभु है, वह स्वभावतः **'प्रतिक्षण वर्द्धमानम्'** होनेसे बढ़ता ही रहता है। प्रतिक्षण ही उसमें माधुर्यास्वादनकी नित्य नूतन स्पृहा उत्तरोत्तर अधिक ही होती जाती है। इधर ज्यों-ज्यों प्रिया नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधामें आस्वादनकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती है, उनका प्रेमसिन्धु नित्य-नूतन वेगशील तरङ्गोंमें उच्छलित होता है, त्यों ही प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णका माधुर्य भी उत्तरोत्तर अभिवृद्ध होता जाता है। जैसे श्रीराधारानीकी उत्कण्ठा विभु है, उस उत्कण्ठाको तृप्त करनेवाला प्रियतमका माधुर्य भी विभु होनेसे उसमें भी पल-पल नित्य नये-नये माधुर्यका, माधुर्यगत नयी-नयी विचित्रताओंका विकास होता रहता है। यों श्रीकृष्णके माधुर्यकी अभिवृद्धिसे श्रीराधाका प्रेम बढ़ता है और श्रीराधाके प्रेमसे श्रीकृष्णका माधुर्य बढ़ता है। दोनों ही मानों होड़ लगाकर एक दूसरेको परास्त करनेके लिये उत्तरोत्तर प्रबल शक्ति होते रहते हैं।

इसी प्रकार आनन्दको लेकर भी दोनोंमें परस्पर होड़ लगी रहती है। अपनी सेवासे जब श्रीराधाजी प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी देखती हैं, तब उनका आनन्द श्रीकृष्णको मिलनेवाले आनन्दसे करोड़ों गुना अधिक बढ़ जाता है और श्रीकृष्ण जब प्रियतम श्रीराधाको इतने महान् आनन्दसे परिपूर्ण देखते हैं, तब उनके अनन्त अगाध आनन्द-समुद्रमें बाढ़ आ जाती है। किन्तु श्रीराधारानीके इस सुखानुभवमें उनकी अपनी सुख-कामना-कल्पनाका लेश भी नहीं है। श्रीराधारानीका यह आनन्दानुभव केवल और केवल अपने प्रियतमको आनन्दित-आह्लादित देखकर ही है। उत्तर निकुञ्जमें इस एकमात्र परम त्यागमय, परम समर्पणमय, परम रसमय, परम प्रियतम-सुख-तात्पर्यमय, विशुद्ध प्रेमका उच्छलित सिन्धु अनादि अनन्तकालसे बह रहा है।

यहाँ यह नित्य ध्यान रखें कि जैसे स्वयं नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण भगवान् हैं, उसी प्रकार श्रीराधारानी नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया भी स्वयं भगवत्स्वरूपाशक्ति हैं अतः इस निकुञ्जमें इन दोनों ह्लादात्मा प्रियतम एवं उनकी ह्लादिनीशक्ति प्रियाका ही अचिन्त्यानन्त पूर्ण प्रकाश है।

इस उत्तर निकुञ्जमें प्रिया-प्रियतम परस्पर एक-दूसरेको अपने प्राणोंसे भी बढकर प्यार करते हैं। परस्पर अगाध अनन्त प्रेम ही उनका मन बहलानेका साधन है। वे दोनों परस्पर एक दूसरेके अंगोंके सौन्दर्यको ही देख-देखकर मुग्ध होते रहते हैं। परस्पर एक-दूसरेका ध्यान ही उनकी सर्वश्रेष्ठ गति है। सर्वाधिक स्वरूप वे दोनों ही दोनोंको भली भाँति मोहित किये रहते हैं। वे अविनाशी हैं एवं परस्पर एक दूसरेके आनन्दको अपना आनन्द मानते हैं, एवं दोनों केलिसुखके आधारभूत हुए परस्पर प्रेमरूपी विहारके पारावारमें उन्मत्त एवं परस्पर एक दूसरेसे बढ़कर तरंगायमान होते रहते हैं।

दोनोंके वदन-सरोज सदैव हास्यसे मुकुलित एवं प्रफुल्लित रहते हैं, दोनों नित्यकिशोर-किशोरी एक दूसरेके वल्लभ-वल्लभा हैं। परस्पर एक-दूसरेके अनुरागसे परिपूर्ण होनेके कारण दोनों धन्यातिधन्य हैं। दोनों एक दूसरेके प्रेमके जीते-जागते पुतले हैं, अनन्त कल्याण-निकेतन हैं तथा माधुर्यके मूर्त्तस्वरूप हैं। दोनों ही लीलारसके मुकुट-मणि हैं, परस्पर एक दूसरेका हृदय ही इनका निकुञ्ज है। दोनों एक दूसरेके प्रेम-नशेमें मतवाले हुए झूमते रहते हैं एवं रस-विलासके पूर्ण कलाविद् हैं। प्रेमके आश्रयभूत विधाता दोनों भगवान् एवं भगवती कामेश्वर -कामेश्वरीके हृदय-धन हैं। दोनों ही एक दूसरेके द्वारा एक दूसरेमें सज्जित होते हैं और मूर्त्तिमान् केलिरस हैं।

पश्चिम निकुञ्जकी बात

'प्राणाधिक! कहो वनस्थल की पश्चिम के क्या गति है?' प्रियतम।
'देवी की आँख लगी बहने झर-झर कहकर इतना'; प्रियतम!
'विह्वल वे देव जटावाले उस ओर हुए ऐसे'; प्रियतम!
'मानो प्रवाहिणी भावों की ले डूबेगी उनको'; प्रियतम।।२८०।।

'प्राणाधिक ! अच्छा, पश्चिमके वनस्थलकी क्या गति है ?'- यह कहते-कहते देवीकी आँखें झर-झरकर बहने लग गयीं। तथा उन जटावाले महादेवकी भी ऐसी दशा हुई, मानो भावोंकी प्रवाहिणी उनको ले डूबेगी।'।।२८०।।

'जैसे-तैसे अपने को वे किंचित् सँभाल पाये'; प्रियतम!
'हो जाता कण्ठ रुद्ध फिर भी, ज्यों कुछ कहने चलते'; प्रियतम!
'आखिर वे बोल सके इतना, 'प्रियतमे! वहाँ देखो'; प्रियतम!
'रसराज नित्य लीला निरुपम शिशु बन है खेल रहा'; प्रियतम।।२८१।।

जैसे-तैसे महादेवने अपनेको संयत किया। तथापि ज्योंही वे कुछ कहने चलते कि कण्ठ रुद्ध हो ही जाता। आखिर वे इतना ही बोल सके-'प्रियतमे ! देखो, वहाँ देखो ! नित्य रसराज निरुपम शिशु बनकर वहाँ खेल रहा है भला !।।२८१।।

दक्षिण वनकी बात

'स्वामिन्! दक्षिण वनमें क्या है?' देवी ने अब पूछा'; प्रियतम!
'करते-करते ही प्रश्न किंतु ढल पड़ी देव पर वे'; प्रियतम।
'उत्तर का उनको पहले ही मानो आभास मिला'; प्रियतम!
'उस सुख में ही वह चेतनता सत्तर पल डूब गयी'; प्रियतम।।२८२।।

'स्वामिन् ! दक्षिणके वनमें क्या है ?'- देवीने यह प्रश्न किया; किन्तु प्रश्नकी शब्दावलि पूरी होते-न-होते वे महादेवके अङ्गपर ढल पड़ीं। उनके श्रीमुखकी मुद्रा ऐसी थी, मानो बिना कहे ही महादेवके उत्तरका आभास उन्हें प्राप्त हो गया हो। साथ ही उस आनन्दानुभूतिमें ही उनकी चेतना सवा घटिकाके लिये विलीन जो हो गयी !।।२८२।।

'अनुरागभरे शीतल करसे दयिता के अङ्गों को,' प्रियतम !
'सहला-सहला कर देव लगे करने प्रबुद्ध उनको,' प्रियतम !
'आकुल बूँदें टप-टप दृग से गिर रही अनर्गल भी,' प्रियतम !
'अभिषेक हो रहा था उनसे देवी के श्रीमुख का,' प्रियतम ।। २८३।।

अनुरागभरे अपने शीतल करसे अपनी प्राण-प्रियतमाके अङ्गोंको सहला-सहलाकर महादेव उनको प्रबुद्ध करने लगे। महादेवके श्रीअङ्गोंका उन अश्रुकी विन्दुओंसे अभिषेक हो रहा था।।।२८३।।

'वे जगीं देव ने बात कही दक्षिण अरण्यथल की,' प्रियतम !
'वह महाभाव ही नित्य बना अवनीशानन्दिनी है,' प्रियतम !
'रसराज बना ताना उसमें, है महाभाव बाना,' प्रियतम !
'निर्मित वितान उस पट से है नभ में उन दोवन का,' प्रियतम ।। २८४।।

इस अश्रु-वारिसे स्नान करके ही महादेवी प्रकृतिस्थ हो सकी। और तब कहीं महादेवने पुनः चर्चा आरम्भ की-'प्रियतमे ! देखो, उस दक्षिणके अरण्यस्थलमें ही तो महाभाव नित्य अवनीशनन्दिनी बना हुआ है। देखो, रसराज तो ताना बना है और महाभाव बना है बाना। इनसे ही एक विशाल वितानका आकाशमें निर्माण हुआ है। -इसीसे ये दोनों वन-प्रान्तर आच्छादित हैं।'।।२८४।।

पूरबके वनकी बात

'देवी के मृदुल कलेवर में चल पड़ी गुदगुदी-सी,' प्रियतम !
'मानो ऊपर तक रस भरकर हिल गया बाँध उरका,' प्रियतम !
'ऊँचे स्वर से रह-रहकर वे हँसने अब लगीं, तथा,' प्रियतम !
'पूरब-पूरब' केवल इतना मुख से था निकल रहा,' प्रियतम।।२८५।।

महादेवीके मृदुल कलेवरमें गुदगुदी-सी चल पड़ी। मानो महारस भरते-भरते ऊपरतक भर गया, और तो क्या, उरका -हृदयस्थलका बाँधतक स्पन्दित हो उठा। महादेवी रह-रहकर हँसने लगीं और उनके मुखारविन्दसे मात्र'पूरब, पूरब'-केवल यह शब्द ही निसृत हो रहा था।।२८५।।

'अच्छा तो, पूरब वन की भी अब बात रहस्यमयी,' प्रियतम !
'जीवन सङ्गिनि ! सुन लो,' बोले वे महादेवता भी,' प्रियतम !
'अभिनव सुन्दर शुचि रङ्गस्थल वह मधुरभाव का है,' प्रियतम !
'है जहाँ प्रीतिका आश्रय भी फिर विषय परस्पर वे,' प्रियतम।।२८६।।

'अच्छा, तो अब जीवनसङ्गिनि ! सुन लो,-प्राचीके वनकी रहस्यमयी चर्चा भी कर ही दूँ।' वे महादेव बोलते जा रहे थे-'अभिनव सुन्दर मधुरभावका पवित्र रंगस्थल यही वनस्थल है भला ! यहीं प्रीतिका आश्रय और विषय परस्पर वे दोनों ही तो बने हुए हैं।।२८६।।

'है प्रीति ढली वह किंतु वहाँ अद्भुत उस साँचे में,' प्रियतम !
'आवरण दोष का लिये अहो ! जो नित्य निराविल है,' प्रियतम !
'पावनतम है, पल-पल में है नव-नव होने वाला,' प्रियतम !
'हो सकी, न है तुलना जिसकी, होगी भी नहीं कभी,' प्रियतम।। २८७।।

'किन्तु वहाँ प्रीति अद्भुत साँचेमें जो ढली हुई है। सुनो, उस साँचेपर दोषका आवरण तो निर्मित है, किन्तु वास्तवमें वह नित्य निराविल है, पावनतम है, पल-पलमें नवीन-नवीन रूप धारण करनेवाला है। इसकी कहीं भी तुलना न है, न हो सकी है और न आगे कभी होगी ही।'।।२८७।।

पूर्वनिकुञ्जकी बात

पूर्वनिकुञ्जकी लीलाका वर्णन करते हुए पू.गुरुदेव कहते हैं कि यहाँ प्रीति किंचित् दोषका आवरण लिये है। यह दोषका आवरण अन्य कुछ नहीं, मात्र युगल दम्पतिमें प्रकाशित परकीयाभाव है। वस्तुतः प्रिया श्रीराधा अपने प्रियतम माधवकी स्वकीया हैं, या परकीया हैं, यह प्रश्न वस्तुतः वहीं उठता है जहाँ उन्हें भगवान् ह्लादात्माकी ह्लादिनीशक्ति नहीं मानकर मात्र एक विलासरत रमणी माना जाता है। यह ध्यान रहे कि श्रीकृष्ण पूर्ण परात्पर भगवान् हैं। इन अनन्तकोटि विश्वब्रह्माण्डोंमें जो कुछ भी कभी अनादि भूतकालमें था, वर्त्तमानमें है एवं आगे कालके अनन्त प्रवाहमें कभी कुछ भी होगा, उस सबके एकमात्र पति - स्वामी श्रीकृष्ण ही थे, हैं, एवं रहेंगे। जगत्‌में जितने प्राणी हैं, थे एवं रहेंगे, समस्त प्राणियोंके हृदयमें आह्लाद, सत्ता, एवं चेतनताके रूपमें जो प्रभु स्थित हैं, वे ही सबके स्वामी, सबके प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। कोई भ्रमवश भले ही उन्हें किसी अन्यका, पराया, समझले - वे तो सभीके नित्य स्वकीय, अपने-के-अपने स्वामी, पति थे, हैं एवं रहेंगे। वस्तुतः जितने भी दोष हैं, वे सभी हमारी भ्रम-दृष्टि मात्रके परिणाम हैं। प्रियतम श्रीकृष्णकी दृष्टिसे, जोकि सत्यकी सत्य है, वास्तविक है, जिसमें सभी भ्रम (माया) निरस्त है, कोई परकीया है ही नहीं। श्रीकृष्णकी जितनी भी नारीशक्तियाँ हैं, सब स्वकीया हैं क्योंकि विश्वमें अनादि कालसे अनन्तकालतक जितना भी लीलाविलास है, सभी उनका एवं उनकी स्वरूपभूता आत्मस्वरूपा शक्तियोंके संग ही है। ऐसी स्थितिमें जारभाव एवं औपपत्यका कोई लौकिक अर्थ ही नहीं रह जाता।

जहाँ काम नहीं, अंग–संग नहीं, वहाँ जारभाव अथवा औपपत्यकी कल्पना ही कैसे संभव हो सकती है। ह्लादात्मा श्रीकृष्णकी अपनी ह्लादिनीशक्ति श्रीराधा कभी परकीया हो ही नहीं सकती। श्रीराधारानी उनकी नित्य स्वकीया थीं, हैं एवं रहेंगी।

यह अवश्य है कि इस पूर्व निकुञ्जमें नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा परकीयाभाव-भावित हो उठती हैं। परकीया होनेमें, एवं परकीया भाव-भावित होनेमें आकाश-पातालका अन्तर है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्वकी होती हैं - प्रथम - अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, द्वितीय - मिलनकी उत्कट उत्कण्ठा, एवं तृतीय - दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। पूर्व–निकुञ्जमें श्रीराधारानीमें परकीया भावकी प्रधानता है, इसका इतना ही अर्थ है कि उन्हें अपने प्रियतमका अनवरत प्रगाढ़ चिन्तन होता रहता है, मिलनकी असीम उत्कण्ठा रहती है और वे अपने प्रियतमके प्रत्येक व्यवहारको अपार प्रेमकी दृष्टिसे देखती रहती हैं। वे अपने प्रियतमसे अपने लिये कुछ भी नहीं चाहतीं, कुछ भी आशा नहीं रखतीं, वे अनवरत अपना सर्वस्व देकर उन्हें सुखी करना चाहती हैं। इसी विशेष प्रेमके भावका प्राबल्य इस पूर्वकुञ्जमें है।

यह सदैव ध्यानमें रखनेकी बात है कि जिसके जीवनमें साधारण धर्मकी हलकी-सी प्रकाश-रेखा आ जाती है, उसीका जीवन परम पवित्र और दूसरोंके लिये आदर्शस्वरूप बन जाता है। फिर श्रीराधाजी जो भगवान्‌की नित्यसिद्धा स्वरूपभूता शक्ति हैं एवं समस्त धर्ममर्यादाओंकी प्रतिष्ठा (संस्थापक) स्वयं भगवान् श्रीकृष्णपर धर्मोल्लङ्घनका लांछन कैसे लगाया जा सकता है ? अतः यदि कोई भगवान् ह्लादात्मा स्वयं श्रीकृष्ण एवं उनकी ह्लादिनीशक्तिपर दोष लगाता है, अथवा उन्हें दोषी समझता है तो वह निश्चय ही उनके दिव्य भगवत्स्वरूप एवं लीलाकी चिन्मयताके प्रति अनभिज्ञता ही प्रकट करता है।

पू.गुरुदेव यहाँ जब कहते हैं कि पूर्व निकुञ्जकी लीला दोषका आवरण लिये है, उसका अर्थ यही है कि इस निकुञ्जमें सर्वथा अनाविल, पावनतम लीलारस प्रवाहित होता है, किन्तु उसकी आकृति मात्र अत्यन्त कड़ुवे इन्द्रायण

(तूँबे) सरीखी है। आकृति यदि कड़ुए तूँबे सरीखी हो, किन्तु वह मीठी मिश्रीसे निर्मित हो तो आकृति की कड़ुए तूँबेसे साम्यता मात्र होनेसे मिश्रीका तूँबा कड़ुआ थोड़े ही हो जाता है। उसमें स्वाद तो सर्वत्र, सर्वदा एवं सर्वथा मिश्रीका ही आवेगा। हाँ, उसमें लीलाके विलक्षण चमत्कारकी बात ही अधिक दृष्टिगोचर होगी। अज्ञानी लोग भले ही उसे कड़ुआ तूँबा समझ लें, परन्तु खानेवाले ज्ञानी उसमें मिश्री ही पावेंगे। इसी प्रकार अखिल रसामृत-सिन्धु सच्चिदानन्दघनविग्रह प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं उनकी अन्तरंग अभिन्नस्वरूपा नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया श्रीराधाकी लीला कैसी ही क्यों न दिखे, वस्तुतः वह है पूर्ण सच्चिदानन्दमयी ही।

'इतना कहते-सुनते ही वे दोनों ध्यानस्थ हुए,' प्रियतम!
'पुष्पित अशोक डाली वह ऊपर से एक झुकी;' प्रियतम!
'उन दोनों पर ही झूल, लगी सुरभित बयार करने;' प्रियतम!
'हम दो भी तत्क्षण उनकी ही झर पड़े साँस से हैं।' प्रियतम।। २८८।।

-इतना कहते-कहते ही महादेवी-महादेव - दोनों ही ध्यानस्थ हो गये। ऊपरसे पुष्पित अशोककी एक डाली झुक पड़ी उन दोनोंपर ही। उन महादेव-महादेवीपर ही डाली सुरभित बयार करने लगी भला ! इसके दूसरे क्षण ही हंस-हंसिनीसे यह भी बोल गया-'प्रियतमे हंसिनि ! हम दोनों भी उसी क्षण उन दम्पतिके साँससे ही तो झर पड़े हैं - अभिव्यक्त हो गये हैं !'।।२८८।।

यह उपर्युक्त इतिहास हंस कह गया हंसिनी से, प्रियतम!
तन्मय होकर सुन गयी इसे वह राजनन्दिनी भी, प्रियतम!
अब लिये मराल-मराली को धीरे-धीरे आया, प्रियतम!
छूने स्वचञ्चु से लगा धरा नृप-दुहिता के आगे, प्रियतम।। २८९।।

अस्तु, यह उपर्युक्त इतिहास हंस हसिनीसे कह गया। राजनन्दिनी राधाकिशोरी भी तन्मय होकर इस इतिहास को सुन रही थी। इतनेमें ही मराल मरालीको साथ लिये धीरे-धीरे राधाकिशोरीकी ओर चला आया। आकर वे वृषभानुराजनन्दिनीके आगेकी धराको बार-बार स्पर्श करने लगे।।।२८९।।

कर रही याद-सी अपनी ही भूली कुछ बातों को, प्रियतम!
थी खड़ी नृपति-दुहिता नीरव गुत्थी सुलझाती-सी, प्रियतम!
'है जुड़ा अवश्य अहो! मुझसे इतिवृत्त हंस वाला।' प्रियतम!
कुछ पल के लिये चित्त उसका भावित इस भाँति हुआ, प्रियतम।। २९०।।

नीरव निस्पन्द भानुकिशोरी खड़ी रह गयीं। वे कुछ अपनी भूली बातोंको स्मरण-सी कर रहीं थीं- नीरव रहकर उस पहेलीकी गुत्थी सुलझाता-सी थीं। कुछ पलोंके लिये उनका चित्त इस भावनासे भावित हो उठा-'यह हंसके द्वारा कथित इतिवृत्त तो मुझसे अवश्य जुड़ा हुआ है अहो !।।२९०।।

चिन्मय दम्पतिके पास पहुँचनेकी जिज्ञासा

मन में आया, मराल से ही क्यों मैं न पूछ यह लूँ, प्रियतम!
संकोच हो गया किंतु, पुरुष आखिर विहङ्ग यह है, प्रियतम!
अतएव तनिक चतुराई का पथ अपनाया उसने, प्रियतम!
बोली, 'हे हंस! जहाँ वे हैं, मैं जा सकती हूँ क्या?' प्रियतम।। २९१।।

राजनन्दिनी यह भी सोचने लगी-'क्यों नहीं मैं मरालसे ही जाकर निर्णय करा लूँ इसका ?' किन्तु सङ्कोचसे किशोरीका कण-कण सहसा परिपूर्ण हो गया। मनमें आने लगा-'आखिर यह हंस विहङ्ग-पुरुष है।' इसीलिये किशोरीने तनिक चतुराईका पथ अपनाया। वे बोल उठीं-'हंस हे ! जहाँ वे दम्पति हैं, मैं जा सकती हूँ क्या ?'।।२९१।।

'निर्बाध, अवश्य-अवश्य अहो! नृप-नन्दिनि, जब चाहो, प्रियतम।
'श्रीपद का ही तो नित्य, भला, कर रहे ध्यान वे हैं;' प्रियतम!
'जा-जाकर ही रस-वारिधि में सब पथिक नहाते हैं;' प्रियतम!
'आ जाय उमड़कर पास वही; यह भाग सुदुर्लभ है।' प्रियतम।।२९२।।

राजनन्दिनीको उत्तर देता हुआ हंस अविलम्ब बोल उठा-'निर्बाध, अवश्य ! अवश्य ! ....अहो ! राजनन्दिनि ! जब चाहो, तभी जा सकती हो। तुम्हारे श्रीचरणोंका ही तो वे नित्य-निरन्तर ध्यान कर रहे हैं। सभी पथिक इसी रस-समुद्रमें ही तो जा-जाकर स्नान करते हैं। किन्तु कहीं अपने आप रस-वारिधि स्वयं उमड़कर समीप आ जाये !............तो यह सौभाग्य कितना दुर्लभ है राजनन्दिनि ?'।।२९२।।

ऐसे कह उठा हंस, फेरी देकर नृपपुत्री की, प्रियतम!
गुत्थी खुलती-सी दीखी, पर उसका मन उलझ गया, प्रियतम!
उस नेह जाल में, विधिगति से जो अकस्मात् फैला, प्रियतम!
लेकर मरालकी ओट सरस चालित अलक्ष्य करसे, प्रियतम।।२९३।।

इतना कहकर हंस राजपुत्रीकी फेरी देकर उनकी ओर देखने लगा। राजपुत्रीको गुत्थी सुलझती-सी दीखी। किन्तु उसका मन तो क्रमशः उलझता जा रहा था उस नेहके जालमें, जो दैवयोगसे हठात् मरालकी ओट लेकर सामने किसी अलक्षित करने विस्तारित किया था। ।।२९३।।

लज्जा का भान हुआ, फिर भी बोली वह धीरे से, प्रियतम!
'जाऊँ, मराल! मैं किस पथ से इतना-सा और कहो,' प्रियतम!
'विस्मृत-सी हुई मुझे बातें लगती निकुञ्ज की हैं;' प्रियतम!
'तुम सहृदय हो, इससे साहस हो गया पूछने का;' प्रियतम।।२९४।।

लज्जाका भान हो रहा था राजकिशोरीको; कुछ क्षण रुककर वह धीरेसे बोल उठी-'मराल ! इतना-सा और बता दो, मैं वहाँ किस पथसे जाऊँ ? मुझे निकुञ्जकी बातें भूली-सी लग रही हैं। तुम सहृदय हो, इसीलिये तुमसे पूछनेका साहस हो रहा है।'।।२९४।।

दो शाश्वत पथ - ज्ञान एवं प्रीति

'दो पथ, महीपनन्दिनि! हैं, तुम चाहो जिससे, जाओ;' प्रियतम!
'पहले में दोनों ओर लगे उज्ज्वल फूले तरु हैं;' प्रियतम!
'पथरीला है, वह ठंढापन-सूनापन लिये हुए;' प्रियतम!
'अव्यक्त और हो जाते हैं पदचिह्न सभी उसमें।' प्रियतम।।२९५।।

उत्तरमें तत्क्षण मराल बोल उठा-'महीपनन्दिनि ! दो पथ हैं। तुम जिस पथसे जाना चाहो, जाओ। पहले पथमें दोनों ओर खिले हुए उज्ज्वल सुमनोंसे परिशोभित वृक्षावलि लगी है। हाँ, वह पथ पथरीला अवश्य है,

ठंडापन, सूनापन भी लिये हुए है। इतना ही नहीं, आगे चलकर इस पथमें सभी पदचिह्न भी व्यक्त हो जाते हैं।।।२९५।।

'है लता दूसरे में पीली लिपटी नीले द्रुम से, प्रियतम !
'वह नवल बारहों मास बनी नौ भाँति फूलती है; प्रियतम !
'आगे वह लाल कुसुम पथ को करता परागमय है; प्रियतम
'अङ्कित सुस्पष्ट चिह्न उसपर होते पद-पदपर हैं।' प्रियतम॥ २९६

'दूसरे पथमें पीली लता नीले द्रुमसे लिपटी हुई है। वह पथ बारहों मास नवीन बना रहता है। उसके वृक्ष नौ प्रकारसे फूलते रहते हैं। पुष्प भर-भरकर उस पथको परागमय बना देता है। यह पथ लालिमासे परिपूर्ण रहता है। यह पथ अरुणिम वर्णका है। इसपर चलनेवालेके सुस्पष्ट पदचिह्न पद-पदपर उपलब्ध होते हैं।।२९६।।

'पहला पथ है उनका, जिनका धीरज न छूटता है; प्रियतम !
'बाहर न आँख जाती जिनकी, मति सहस्त्रार में है; प्रियतम !
'करते न विराम कभी जो हैं, रखते न पास कुछ हैं; प्रियतम !
'है अहम् निकल जाता जिनका चलने से पहले ही।' प्रियतम।।२९७

'वृषभानुनृपनन्दिनि ! सुनो, पहला पथ तो उनका है, जिनका धीरज कभी नहीं छूटता, जिनकी आँखें कभी बाहर नहीं जाती और जिनकी मति सहस्त्रारमें लगी रहती है। उस पथके पथिक कभी विश्राम नहीं लेते, अपने पास वे कुछ भी नहीं रखते और यात्रा आरम्भ करनेके पहले ही उनका अहं सर्वथा निकल जाता है।।२९७।।

'फूली लतिका पथ है उनका आकुल जो पल-पल हैं; प्रियतम !
'आँखें फँसती हैं जिनकी, रति उर के भावों में है; प्रियतम !
'हैं भ्रमित चरण जिनके, जो हैं अञ्चल में फूल लिये; प्रियतम !
'छाया रसमयी अहंता की जिनको न छोड़ती है।' प्रियतम।।२९८

'फूली लताओंका पथ उनका है, जो पल-पलमें व्याकुल होते रहते हैं, जिनकी आँखें सौन्दर्यको देखकर फँस जाती हैं, वे अपने अञ्चलमें फूल लिये रहते हैं; उनकी रसमयी अहंताकी छाया क्षणभरके लिये भी उनका परित्याग नहीं करती।।।२९८।।

जिज्ञासा

आगे छन्द संख्या २९५ में हंस पक्षी अवनीशनन्दिनी प्रिया श्रीराधाकुमारीको उसके जिज्ञासा करनेपर कि मैं किस पथसे इन सनातन अज दम्पतिसे मिलने जाऊँ - उत्तरस्वरूप दो पथोंका निर्देश देता है। कृपया इन दो पथोंके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक समझाइये।

समाधान

वस्तुतः ये सनातन अज-दम्पति नित्यनिकुञ्जेश्वर-निकुञ्जेश्वरी हैं तो अनादि, सबसे परे, सबमें अनुस्यूत, सब कारणोंके परम कारण, सर्वगत, सर्वस्वरूप, सर्वातीत, सच्चिदानन्द-विग्रह परतत्त्व परब्रह्म परमात्मा ही।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।। ।।ब्रह्मसंहिता।।

इस दृश्यमान् अनन्त विश्व तथा इससे सर्वथा अतीत जो कुछ है, या हो सकता है, उस सबका मूल, उस सबको जिसने अपनेमें ले रखा है, वह सच्चिदानन्दतत्त्व ही तो ये अज दम्पति हैं। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि वह सच्चिदानन्दतत्त्व 'अद्वितीय' होकर दो कैसे हो सकता है - इसका उत्तर यही है कि उस **'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति'** ब्रह्ममें **'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते'**(श्वेताश्वतर) इस उपनिषद् वाक्यानुसार विविध अनन्त शक्तियाँ हैं।

श्रुतियाँ जब ब्रह्मको **'अनन्तं ब्रह्म'** कहती हैं तो ब्रह्मकी वह अनन्तता निश्चय ही उसे शक्ति-प्रकाशनकी अनेक विचित्रताओंसे युक्त तो सिद्ध करती ही हैं। अतः **'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति।'** वस्तुका स्वरूपगत्त धर्म उसके अणु-परमाणुमें उसी प्रकार विद्यमान रहता है, जैसे अग्निका प्रत्येक स्फुलिङ्ग दाहिका-शक्ति समन्वित होता है। अतः यह सिद्ध हो ही जाता है कि सच्चिदानन्द ब्रह्म , सत्, चित् आनन्द शक्तियोंसे ओतप्रोत एवं समन्वित है। आनन्दस्वरूप होनेसे ही वह **'रसो वै सः'** रसस्वरूप है, एवं रस शब्दके दो प्रकारके अर्थ होनेसे वह आस्वाद्य मधुरूप भी है और आस्वादक भ्रमररूप भी है ही। यहाँ परात्पर परब्रह्मके इन एक होते हुए भी दो रूपोंको आस्वाद्य रसकी प्रतीक नित्यनिकुंजेश्वरी प्रिया श्रीराधा एवं आस्वादक रसके प्रतीक नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण - इन दो नामोंसे उल्लिखित किया गया है। अतः इन नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीके परमधामस्वरूप परम सत्यकी उपलब्धिके लिये निश्चय ही साधनाके दो मार्ग बन जाते हैं - एक निजकी मङ्गलसाधना, ज्ञानका मार्ग और दूसरा निजके आत्मसमर्पणरूप प्रीतिका मार्ग। ये साधनाकी दो धाराएँ अनादि कालसे हैं। प्रथम धारा जिसमें 'अहं' के परिणामकी चिन्ता, उसके मङ्गलकी भावना है। संक्षेपमें इसमें कर्मकी एवं ज्ञानकी प्रधानता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके अन्तिम उपदेशमें कहा गया है:

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच।।

यह भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश है। परन्तु इस उपदेशमें भी 'पापनाशका प्रलोभन ' है। भगवान् कहते हैं तुम्हारे पापनाशका प्रबंध मैं कर दूँगा और जीव अपने अहंकी चिन्तासे आश्वस्त होता है। इसमें भी अहंके परिणामकी चिन्ता है।

जो-जो भी साधक इस संसारमें **'क्षणभंगुरमशाश्वतम्' 'दुःखदोषानुदर्शनम्'** दुःख एवं मृत्यु, पीड़ा एवं अभावसे भरा देखकर इनसे छुटकारा पानेके लिये चिन्तित होते हैं, उन्हें ही दुःखोंसे, मृत्युसे, गर्भादिजन्य कष्टोंसे , रोग-शोककी पीड़ासे, दरिद्रता-अभावकी मारसे मुक्त होनेकी इच्छा होती है। 'देहबन्धनमें ही तो सब कष्ट हैं, अतः मैं बन्धनमें हूँ, मुझे मुक्ति मिले' - यह मोक्षकी इच्छा जिसे मुमुक्षा कहते हैं - स्वाभाविक ही सबमें हैं इससे भी ऊपरकी स्थितिके - जो साधनाके शिखरतक पहुँचते हैं ऐसे ऊँचे साधकोंकी स्थिति होती है कि वे ब्रह्मभूत हो जाते हैं।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

इस स्थितिको प्राप्त पुरुष पापनाशकी परिधिसे परे चले जाते हैं, वे ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा साधक आत्म-संतुष्ट हैं। उनके पास अपने-आप स्वयं भगवान् आते हैं, जैसे प्रह्लादजी, सुतीक्ष्णजी आदि भक्तोंके पास आये। ये भगवान्‌की पराभक्ति प्राप्त करते हैं। किन्तु इन्हें भी 'भक्तिलाभ' की आकांक्षा रहती है। इन्हें लौकिक कोई चिन्ता नहीं होती, किन्तु भगवान्‌से भक्तिलाभकी, उसके उत्तरोत्तर अभिवृद्धिकी इन्हें भी आकांक्षा, कामना रहती ही है। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस 'अहंके

मङ्गल'की आकांक्षावाली साधनाको प्रथम मार्ग बतलाते हैं। वे कहते हैं इस प्रथम साधनामें पथके दोनों ओर उज्ज्वल पुष्पों, सुमनोंसे परिशोभित वृक्षावलि लगी हैं। पू.गुरुदेवके इस कथनका यही तात्पर्य है कि ज्ञानकी साधना आलोक एवं प्रकाशका पथ है। इसमें न तो रजोगुणजनित झंझावात एवं नेत्रोंको धूलसे भर देनेवाली धुन्ध है, न ही तमोगुणजन्य घोर अज्ञानान्धकार है। अपितु सत्वका निर्मल प्रकाश चित्तभूमिको आलोकित किये रहता है। यह पथ साधनाजन्य कठोरता लिये अवश्य है, इसलिये पथरीला है। इसमें जो आराध्य ब्रह्म है वह भी निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, निष्क्रिय, निष्कल, निर्लेप है, अतः उसमें शीतलता तो है किन्तु आराध्यके सगुण-साकार नहीं होनेसे उसका आत्मीयतापूर्ण संग नहीं है। निर्गुण, निराकार आराध्यके होनेसे स्वाभाविक चित्तको निष्कल शून्य घन चेतनमें ही केन्द्रित करना पड़ता है। इस साधनामें अपना अहङ्कार एवं सभी साधन-प्रयास अव्यक्तमें विलीन हो जाते हैं। अर्थात् इसमें अव्यक्त अपरिच्छिन्न चेतनमें ही लीन होना होता है।

हाँ, दूसरा पथ विलक्षण है। इसमें कोई आकांक्षा नहीं, इसमें कोई वासना नहीं, यहाँ अहंका सर्वथा विस्मरण है। अहं पूरे का पूरा अपने प्रियतम प्राणवल्लभको समर्पित हैं इसमें केवल अपने प्रेमास्पदके सुखकी स्मृति है, और कुछ भी नहीं। यह एक विचित्र धारा है जिसमें अपने स्वयंके 'कर्मसे कोई प्रयोजन ही नही है। सब कर्म प्रियतमके लिये हैं। यहाँ तत्त्वज्ञानका कोई आदेश नहीं। इस पथमें विधिसंगत भक्तिसाधना भी नहीं, कोई अष्टांग योग-विशेष नहीं। मुक्तिकी यहाँ स्पृहा ही नहीं, बन्धनके भयका लेश नहीं। यहाँ सबकुछ प्रेमसागरमें लव-लीन है, अपना कुछ शेष बचा ही नहीं।

इसमें अहङ्कार श्रीराधारानीकी पीत अंगाभामें एकमेक होकर राधारूप हो जाता है। क्योंकि यहाँ राधाके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है, वह सभी राधाका कायव्यूहरूप भर होकर ही है। श्रीमती नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया श्रीराधा ही इस द्वितीय पथकी मूल आदर्श हैं। राधाका जीवन यहाँ ब्रह्मविद्याके लिये भी आकांक्षित, स्पृहणीय है। पद्मपुराणके पाताल खण्डमें यह कथा आती है - 'ब्रह्मविद्या स्वयं तप कर रही हैं। उनको तप करते देखकर ऋषि पूछते हैं कि 'आप कौन हैं ? आप क्यों तप कर रही हैं ?' ब्रह्मविद्याने कहा -'मैं ब्रह्मविद्या हूँ।' ऋषियोंने पूछा -'आपका कर्म क्या है ?' ब्रह्मविद्याने कहा कि सम्पूर्ण जगत्को अज्ञानसे मुक्त करके ब्रह्ममें प्रतिष्ठित कर देना ही मेरा कर्म है। सारे जगत्के माया-तिमिरको सदा-सर्वदाके लिये हर लेना और ज्ञानको प्रकाशित करना - यही मात्र मेरे अस्तित्वका प्रयोजन है। ऋषियोंने पूछा -'फिर आप तपस्या क्यों कर रही हैं ?' ब्रह्मविद्या यह तो नहीं कह सकी कि राधाभावकी प्राप्तिके लिये। यह कहनेका तो उसका साहस ही नहीं हुआ। वह इतना ही उत्तर दे सकीं -'गोपीभावकी प्राप्तिके लिये।'

कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि यह दूसरा पथ (प्रीतिमार्ग) गोपीभावका है। इस पथमें जगत्की स्मृति नहीं, ब्रह्मकी परवाह नहीं, ज्ञानका प्रलोभन नहीं, मुक्तितक इस पथमें नमकके समान खारी अनुभव होती है। बन्धन मात्र श्यामसुन्दरसे आसक्तिका है, अज्ञान-तिमिर होनेका तो प्रश्न ही नहीं। यहाँ इस पथमें तो जीवनका एक ही प्रयोजन है कि राधारूपा पीली विद्युल्लता आह्लादमें उन्मत्त हुई नीलकान्तद्युति रसकदम्ब श्रीकृष्णसे नित्य लिपटी रहे। जो नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णका स्वरूपानन्द है, इस स्वरूपानन्दको ही वैष्णव शास्त्र आह्लादिनीशक्ति कहते हैं। इस आह्लादका जो सार है वह प्रेम है। इस प्रेमके परम फलको भाव कहते हैं एवं इस भावकी जहाँ चरम सीमा है, जहाँ उसके परिपूर्णतम विकासकी इति होती है, उसे कहते हैं - महाभाव। यहाँ महाभाव ही श्रीराधा हैं। वे ही इस पथकी मंजिल हैं। अतः पू.गुरुदेव कहते हैं कि इस पथमें विद्युल्लता प्रिया, अपने प्रियतम नीलद्युति कदम्बसे बारहों मास लिपटी नयी-नयी कोंपलोंसे युक्त हुई सदैव पुष्पित ही रहती हैं। इस पथमें रति, मान, प्रणय, राग, अनुराग आदि भावोंके लाल पुष्पोंकी सुगन्धित पराग सर्वत्र बिखरी रहती है। और इस पथमें कदम-कदमपर प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरीके पदचिह्न चिह्नित मिलते हैं, जो पथिकको अपनी गन्तव्य मंजिल दिखाते रहते हैं।

हंस अवनीशनन्दिनी श्रीराधाकुमारीसे कहता है - ' वृषभानुनृपनन्दिनी सुनो ! प्रथम पथमें वे ही चल पाते हैं जिनका भव-प्रवाहके थपेडोंमें धैर्य नहीं छूटे, वे दृश्यजन्य समग्र आकर्षणोंमें लिप्त नहीं हों एवं सदैव यही उनका एवं अडिग दृढ़ निश्चय रहे कि सब मृगमरीचिकावत् माया है।'

यहाँ एक पौराणिक कथाका उल्लेख कर दे रहा हूँ। ऋषि विश्वामित्रने ब्रह्मविद् वरिष्ठ ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीके सौ पुत्रोंपर अभिचारका प्रयोग किया एवं उनमेंसे निन्यानवे पुत्र मारे गये। किन्तु ब्रह्मज्ञानी वशिष्ठजीने विश्वामित्रके लिये अपने चित्तमें कभी द्वेषभाव नहीं उत्पन्न होने दिया। एक बार वे निर्जन वनमें एकान्तमें एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहे थे। चाँदनी रात थी और चन्द्रमा सर्वत्र अपनी शीतल ज्योत्स्नासे वनको उद्भासित कर रहा था। ऋषि वशिष्ठके चरण उनकी पत्नी अरुन्धती दबा रही थी। विश्वामित्रजी जो सदैव उनपर घात लगाये रहते थे, मौका देखकर ऋषि वशिष्ठकी हत्या करनेके उद्देश्यसे उसी वृक्षकी डालपर छिपकर बैठे थे, एवं उचित अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा अरुन्धती निरभ्र आकाशपर फैले चन्द्रमाके प्रकाशकी शोभा वर्णन करने लगी। वशिष्ठजीने कहा –'चन्द्रमाका प्रकाश इतना निर्मल है जैसा विश्वामित्रका तप।' अरुन्धती अपने पतिके मुखसे अपने निन्यानवे पुत्रोंके हत्यारे व्यक्तिकी प्रशंसा सुनकर ग्लानिसे भर गयी। उसने कहा - 'आर्य ! आप उस निर्मम बधिककी प्रशस्ति कर रहे हैं ?' वशिष्ठजीने अतिशय धैर्यपूर्वक कहा - 'प्रिये ! अपने पुत्रोंकी मृत्यु तो उनके प्रारब्धवश ही हुई है। अवश्य ही उनके दुष्प्रारब्धने ही विश्वामित्र जैसे निर्मल तपस्वीको उनकी हत्यामें निमित्त, हेतु बना दिया, अतः विश्वामित्र तो निश्चय ही दयाके पात्र, क्षम्य हैं। फिर पुत्र-कलत्रादि, शत्रु-मित्र, राग-द्वेषके रूपमें तो मृग-मरीचिकावत् यह माया ही अनुभवमें आ रही है। यदि मिथ्या स्वप्नमें कोई किसीके हजार पुत्रोंकी हत्या करदे तो वह हत्यारा थोड़े ही होता है। इसी प्रकार वस्तुतः सत्य तो एक मात्र परब्रह्म, परमात्मतत्त्व ही है, जो सर्वत्र ठसाठस घन विराजित है। शेष मैं, तू, तेरा-मेरा, अपना-पराया, शत्रु-मित्र, जन्म-मृत्यु तो मात्र प्रातीतिक मिथ्या स्वप्न हैं, मायिक दृश्य हैं।'

इस प्रकार जिनका चित्त दृश्यजनित जन्म-मृत्यु, हानि-लाभ, यश-अपयशके घोर थपेड़ोंमें धैर्य नहीं खोता, जिनकी चित्तवृत्ति (आँख) कभी बहिर्मुखी नहीं होती , मन अन्तर्मुखी आत्मानन्दमें डूबा रहता है, और जो बुद्धि-विचारसे सहस्रारमें रमते रहते हैं, जो संसारकी दृष्टिसे सर्वथा अकिंचन होते हैं, और अनवरत ब्रह्मविचारमें संलग्न रहते हैं, विचार-विवेकमें कभी विराम नहीं लेते, जिनका साधनाके प्रारंभमें ही ऐसा निर्णय होता है कि अहङ्कार मात्र मायासे भासित होता है और वस्तुतः वह परात्पर परब्रह्म (परमात्मा) ही है। उन साधकोंके लिये यह प्रथम पथ है।

इसी प्रकार दूसरे पथका उल्लेख करता हुआ हंस कहता है -'हे बृषभानुनन्दिनी ! दूसरे पथके साधक वे हैं जो पल-पल प्रिय-मिलनके लिये आकुल होते रहते हैं, जिनके प्रिय-विरहमें अश्रु अविरल बहते ही रहते हैं, कभी नहीं थमते। जिनकी आँखें प्रियतमकी रूपमाधुरीमें सदैव आठोंयाम फँसी रहती हैं, जिनके भावोंमें रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभाव आदि क्रमशः प्रेमके सर्वोच्च भाव व्यक्त होते रहते हैं। जिनके चरण अपने प्रियतमके संग वन-विहार करते-करते सदैव श्रमित रहते हैं और जिनके अंचलमें प्रेमभावोंके कुसुम भरे रहते हैं, जिनको यह रसमयी अहंता कि मैं मेरे प्रियतमकी अनन्य प्रेयसी हूँ - कभी नहीं छोड़ती।

'यह नृपति-तनूजे! बिनती इस किङ्कर मराल की है; प्रियतम!
'तुम तो दोनों पथ को हँसकर केवल छू भर लेना; प्रियतम!
अग्रिम इस उपवन से ही वे चलते हैं सटे-सटे; प्रियतम!
इतने में वह हंसिनी उड़ी, उड़ गया हंस पीछे, प्रियतम।। २६६।

'नृपतितनूजे ! अपने इस किङ्कर मरालकी इस विनतीको तुम सुन लो ! तुम तो तनिक हँसकर केवल अपने चरण-सरोरुहसे दोनों पथको छू भर लेना भला ! इस अग्रिम उपवनसे वे दोनों पथ आरम्भ होते हैं और सटे-सटे

ही वे अग्रसर होते हैं।' - हंसके इतना कहते-न-कहते हंसिनी उड़ पड़ी और उसके पीछे हंस भी उड़ गया।।।२९९।।

किशोरी असमंजसकी स्थितिमें

नृपपुत्री बारह-चौदह पल खोयी-सी खड़ी रही, प्रियतम !
उस ओर देखती, उड़कर थे वे जिधर विहङ्ग गये, प्रियतम !
सहसा उसकी फिर चित्तवृत्ति अनुजा की ओर गयी, प्रियतम !
देखा वह तो सोयी सुखसे गहरी निद्रामें है, प्रियतम।। ३००।।

राजनन्दिनी राधाकिशोरी बारह-चौदह पलतक खोई हुई-सी वहीं खड़ी रही। जिधर वे हंस-दम्पति उड़े थे, उसी ओर देख रही थीं वे। सहसा किशोरीकी चित्तवृत्ति अपनी अनुजाकी ओर चली गयी। किशोरीने देखा- वह तो गहरी निद्रामें सुखसे सोयी हुई है।।३००।।

'क्या करूँ? जगाऊँ इसको या मैं ही किंचित् ठहरूँ?' प्रियतम !
यों रही सोचती, किंतु ठीक निर्णय कुछ कर न सकी, प्रियतम !
थी भरी अनोखी निर्भयता सर्वत्र वहाँ गृहमें, प्रियतम !
आयी न अतः उसके मनमें कोई अनिष्ट-शङ्का, प्रियतम।।३०१।।

'क्या करूँ'-राजनन्दिनी सोचने लगी-'क्या मैं इसे जगा दूँ ? या मैं ही किञ्चित् ठहर जाऊँ?' किन्तु वे कर्त्तव्यका निर्णय न कर सकीं। उस स्थलपर अनोखी निर्भयता परिपूर्ण थी। गृहका कण-कण भयशून्य था। अतः राधाकिशोरीके मनमें अपनी अनुजाके लिये किसी भी अंनिष्टाशङ्काकी बात आयी ही नहीं।।३०१।।

घूमूँ मैं इस उपवनमें यह तब तक जग सकती है, प्रियतम !
जगकर यह मुझे ढूँढ़ लेगी, मैं दूर न जाऊँगी, प्रियतम !
ऐसा विचार कर चली तथा उपवन में जा पैठी, प्रियतम !
लगभग सौ पद पर रही दीखी ऊँची-सी एक शिला, प्रियतम।।३०२।।

किशोरी सोचने लगी-'मैं इसी उपवनमें किञ्चित् घूम लूँ, तबतक अनुजा अपने आप जग सकती है। जगनेपर यह मुझे खोज ही लेगी। मैं दूर जाऊँगी ही नहीं।' इस प्रकार निश्चयकर राजनन्दिनी उपवनमें प्रविष्ट हो गयी। लगभग सौ पग चलनेपर ही एक ऊँची-सी शिला उन्हें दिखाई दी।।३०२।।

उस पर चढ़कर उसने डाली सब ओर दृष्टि अपनी, प्रियतम !
जीवन का पहला अवसर था, सर्वथा अकेली थी, प्रियतम !
यह हुई प्रतीति उसे, मानो कोई पुकारता हो, प्रियतम !
'आओ, प्रियतमे! इधर आओ, पथ देख रहा हूँ मैं' प्रियतम।। ३०३।।

राजनन्दिनी अविलम्ब उस शिलापर चढ़ गयी और चारों ओर उन्होंने अपनी दृष्टि डाली। किशोरीके जीवनका यह पहला अवसर था कि वे सर्वथा अकेली खड़ी थीं। सहसा उन्हें अनुभव होने लगा कि कोई उन्हें पुकार रहा हो-'प्रियतमे ! इधर आओ ! मैं तुम्हारा ही पथ देख रहा हूँ।' ।।३०३।।

अथ श्रीप्रियतम काव्यम्
चतुर्थ शतक
सार–संक्षेप

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

चतुर्थ शतक

प्रारंभिकी

यह ध्यान रहे - 'सुन्दरीवनके कामोद्यान'की जिस लीलाका वर्णन चतुर्थ शतकमें किया गया है, उसमें श्रीकृष्ण परात्पर परब्रह्म परमात्मा, भगवान् नहीं हैं, पूर्णतया मानव नर हैं। वे पूर्णैश्वर्यमय भगवान् नहीं, नृपनन्दिनी राधाकिशोरीके 'निज जन' प्रियतम हैं। यद्यपि यह भी सत्य है कि नृपनन्दिनी किशोरी एवं उनके प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनके मध्य यह प्रेमलीला प्राकृत - पाञ्चभौतिक जड-देह-सम्पन्न जीव नर-नारीके मध्यकी 'कामलीला' सर्वथा सर्वांशमें नहीं है, फिर भी ये दोनों प्रेमी-युगल नित्य सत्य सच्चिदानन्द परब्रह्मके ही नित्य किशोर-किशोरी-स्वरूप हैं। यहाँ जिस धाममें यह लीला हो रही है, यह धाम भी जड़ मायाका राज्य नहीं है, इसका उल्लेख पूर्व प्रसङ्गोंमें किया जा चुका है। भगवत्स्वरूप चिच्छक्ति योगमायाका साम्राज्य होते हुए भी सामान्यतया वर्णन करते समय इस बिम्बको भी शब्द साधारण प्राकृत प्रतिबिम्बकी तरह ही दरसा जाते हैं। शब्द तो प्राकृत ही हैं, उनमें जब अप्राकृत वस्तुका वर्णन करनेकी सामर्थ्य ही नहीं है तो यह उनकी विवशता ही माननी चाहिये। फिर भी प्राकृत शब्दोंके द्वारा इतना ही कहा जा सकता है कि इस धाममें सर्वत्र विशुद्ध प्रेम, अनन्य प्रीति, एकमात्र शुद्ध माधुर्यका ही प्रवाह सर्वत्र प्रवहमान है। यहाँ प्रिया-प्रियतम नित्यकिशोर ब्रजेन्द्रनन्दन एवं उनकी प्रिया नित्यकिशोरी वृषभानुनृपनन्दिनी राधाके मध्य किशोर-किशोरीभावकी मधुरतम लीलाका प्रकाश हो रहा है। सच्चिदानन्दघन परब्रह्मका यह किशोर-किशोरी भाव-स्वभाव 'स्व'रूप प्रेम-वितरणके उद्देश्यको लेकर ही है। परमात्मामें परमात्मीयता - प्रेम तो कूट-कूटकर घन भरा हुआ है ही। यहाँ प्रेमी-प्रेमास्पदमें निर्बाध, निस्सङ्कोच मिलन है। दोनों ही प्रिया-प्रियतम परस्पर रसास्वादन करते-कराते दिव्य रसका प्रवाह बहाते हैं।

यह विलक्षण बात है कि इस धाममें स्त्री-पुरुष हैं, पशु-पक्षी हैं, उद्भिज-अण्डज-जरायुज प्राणी हैं, उनकी सन्तति भी होती हैं, फिर भी यह सृष्टि, यहाँका प्राणिवर्ग सच्चिदानन्दघन परब्रह्मसे अभिन्न - उसका ही स्वरूपभूत है। यहाँ सब जीव समुदाय अप्राकृत, देह-देही-भेदसे शून्य हैं। ये न तो अस्थि-मांस-रक्तमय स्थूल हैं, न सांख्यप्रोक्त कारणदेह हैं, न ही दिव्य देवलोकके तेजप्रधान विग्रह हैं, न ही मंत्राधीन नादसृष्टि ही हैं। यहाँकी चर-अचर समग्र सृष्टि ही आनन्द-चिन्मय-रस-प्रतिभावित नित्य, विशुद्ध, सुचारु, समुज्ज्वल, परम सुन्दरतम भाव-विग्रह है। यह सृष्टि भानु-नृपनन्दिनी किशोरी एवं उनके प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनकी सेवा-सृष्टि है। इस सृष्टिपर देश-कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यहाँके तृण-गुल्म, कीट-पतङ्गतक सभी ब्रजेन्द्रनन्दन एवं उनकी प्रिया राधाके प्रति प्रेम-प्रतिभावित, स्वयंस्फूर्त्तिसे नित्य सेवा-संलग्न रहते हैं।

माधुर्यका स्वरूप ही है कि प्रिया-प्रियतममें निस्सङ्कोच प्रेमलीला हो। चतुर्थ शतककी सम्पूर्ण लीलामें ही अभी प्रियाके सम्मुख प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनका स्वयं प्रकाश नहीं हुआ है। यहाँ प्रियाका समग्र आकर्षण, उनकी रतिका हेतु ही प्रियतमकी नीलमणि-विरचित प्रतिमा भर है। फिर भी प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन इन्द्रनीलमणि-विरचित अपनी प्रतिमाके माध्यमसे अपना ऐसा अचिन्त्य, अतुल, सौन्दर्य-लालित्य-सौशील्ययुक्त प्रेम अपनी भोली, चपल, अबोध, पौगण्डसे कैशोरका स्पर्श करतीहुई प्रियापर प्रकट करते हैं कि नृपनन्दिनी राधा उनके परमोत्कर्षयुक्त प्रेम-गुण-समूहपर न्यौछावर हो जाती है। इस प्रतिमाके प्रथम दर्शन मात्रसे ही नृपनन्दिनी बाला राधाके चित्तमें इस प्रतिमाको अपना सर्वस्व समर्पण कर देनेका भाव इतना प्रबल हो उठता है कि वह आगे-पीछेका कुछ भी विचार नहीं करती; अथाह प्रेमसिन्धुकी उत्ताल ऊर्मियोंमें कूद पड़ती है। इस प्रथम दर्शनमात्रसे ही किशोरीका जीवन कितना प्रेममय हो उठता है, इसका आस्वादन

तो पाठक इस अध्यायके पठनपर ही कर पावेंगे। प्रेमकी कैसी विलक्षण तरङ्गें किशोरीके जीवनमें आती हैं, इसका उल्लेख भूमिकाके इन दो-चार शब्दोंमें कैसे किया जा सकता है। पाठक स्वयं अवगाहनकरके इसका रसास्वादन करें।

उद्यान एक उस वनमें था सुषमा की खानि बना, प्रियतम !
आकर्षण कण-कणमें उसके ऐसा था भरा हुआ, प्रियतम !
कोई प्राणी सपने में भी क्षणभर यदि देख सके, प्रियतम !
खोकर सब कुछ भी वह अपना-चाहेगा जाना ही, प्रियतम ।।३०४।।

बृषभानुराजनन्दिनी जिस शिलापर खड़ी थी, उसके ठीक सामने प्रतीचीकी ओर सुषमाका आकर एक उद्यान परिशोभित था। उद्यानके कण-कणमें एक ऐसा अप्रतिम पवित्र आकर्षण भरा था कि उसे चित्रित कर देना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा ही है। और तो क्या, कोई प्राणी क्षणभरके लिये - स्वप्नमें भी - उद्यानके उस सौन्दर्यको यदि देख लेता तो उसकी प्रवृत्ति केवल मात्र इतनी बच रहती - 'चाहे मेरा सर्वस्व स्वाहा हो जाय, पर मुझे इस उद्यानमें प्रवेश करनेका अधिकार मिले' ।।३०४।।

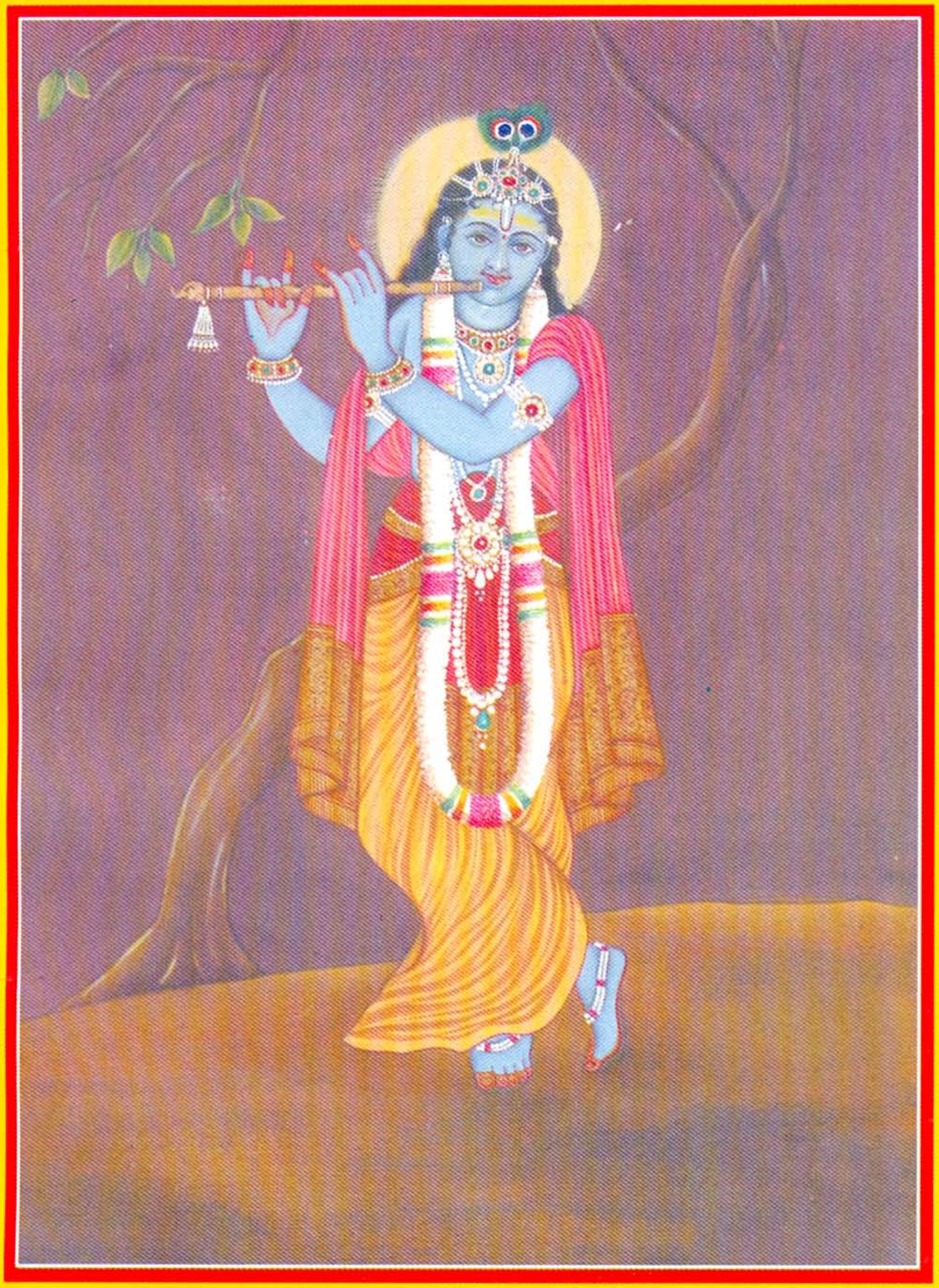
प्राची की ओर लता मण्डित शोभित तमाल तरु थे, प्रियतम !
दक्षिण-पश्चिम-उत्तर में थी श्रेणी कदम्ब की, हे प्रियतम !
थी भूमि वाटिका की अनुपम सर्वत्र लालमणि की, प्रियतम !
विरचित वेदी थी एक वहाँ कुसुमों की क्यारी में, प्रियतम ।।३०५।।

उस उद्यानमें पूर्वकी ओर लताओंसे मण्डित राशि-राशि तमालके वृक्ष सुशोभित थे। दक्षिणमें, प्रतीचीमें, उत्तर दिशामें कदम्बोंकी मनोहर श्रेणी समीरसे स्पन्दित हो रही थी। वाटिकाकी भूमि सर्वत्र अनुपम पद्मरागमणिसे विरचित थी; और भानुनन्दिनी जिस शिलापर अवस्थित थी, उसके ठीक सामने पुष्पोंसे आच्छादित एक क्यारीमें एक वेदी थी। वह वेदी भी पद्मरागसे ही बनी हुई थी।।३०५।।

उस पद्मराग की वेदी पर फूलों के बीच खड़ी, प्रियतम !
नीलम-निर्मित थी मूर्ति एक, मानो, बस बोल-चली, प्रियतम !
अभिनव बालक की, जो अपने करमें था वेणु लिये, प्रियतम !
स्वर भरने की तैयारी में, कुछ बात सोचता-सा, प्रियतम ।।३०६।।

उसी लालमणिकी वेदीपर पुष्पित लताओंके बीच नीलम-निर्मित एक मूर्ति थी। मानो, बस ! वह बोल ही उठी, ऐसा लगता था। मूर्ति एक अभिनव सुन्दर बालककी थी, जो अपने हाथोंमें वेणु लिये थी, और वेणुके छिद्रोंमें जैसे वह स्वर भरने ही जा रही हो; किन्तु मुद्रासे ऐसी भी प्रतीति हो रही थी कि अब वह कुछ विचारमें पड़ गयी हो।।३०६।।

इस नीली-प्रतिमा से हटकर, बस, ठीक सामने ही, प्रियतम !
थी प्रस्तर-शिला, खड़ी जिस पर वह राजकुमारी थी, प्रियतम !
दोनों में थी दूरी केवल पद तीन-चार सौ की, प्रियतम !
वे विटप तमाल वाटिका के छू रहे शिला को थे, प्रियतम ।।३०७।।



नीलम निर्मित थी मूर्त्ति एक मानो बस, बोल चली, प्रियतम ! (पृष्ठ २५२)

राजनन्दिनी राधाकिशोरी इस प्रतिमाके ठीक सामने ही प्राचीमें उस शिलाखण्डपर अवस्थित थी। प्रतिमामें और किशोरीमें केवल तीन-चार-सौ पदका ही अन्तर था। वह तमालकी वृक्षावलि उस शिलाका स्पर्श कर रही थी।।३०७।।

जिज्ञासा

चतुर्थ शतकके प्रारंभमें ही जिस उद्यानका वर्णन है, ऐसा लगता है, वह उद्यान स्वयं ही प्रीति-प्रकाशक तत्वोंसे परिपूर्ण है। यह साधारण उद्यान नहीं लगता। कृपया इस उद्यानमें निहित प्रेमतत्वोंका खुलासा करें।

समाधान

जिस उद्यानका वर्णन पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने चतुर्थ शतकके प्रारंभमें किया है, वह उद्यान निश्चय ही प्रेम-सुषमाकी खान है। जिस महासौभाग्यशाली धाममें प्रिया राधाकिशोरीमें पूर्वरागका प्रकाश होता है, वह अवश्यमेव विलक्षण प्रेमतीर्थ है। यह काम्यवनके अन्तर्गत उस वनका हृदयरूप उद्यान है जहाँ सप्तवर्षीया राधाकिशोरी जीवनमें प्रथमबार एकाकिनी प्रविष्ट होती हैं। अबतक तो वे अपनी सखियोंके साथ ही क्रीड़ा करती रही थीं। उनकी अनुजा भगिनी मञ्जुश्यामा तो सदैव छायाकी तरह उनके साथ ही रहती थी। किन्तु आज ही दैववश ऐसा संयोग घटित हुआ है कि उनकी अनुजा भी सुखसे गहरी निद्रामें सो गयी हैं और सखियाँ भी उस सरोवरका दो घूँट जल पीते ही अद्भुत सुखानुभवमें भरकर एक अभिनव रसमयी निद्रामें निस्पन्द गात्र हो धरापर ढल गयी हैं।

प्रीति-उद्यानमें प्रवेशकी यही विधि है कि उसमें कोई भी क्यों न हो, सर्वथा एकाकी ही प्रवेश कर पाता है। भीड़में रासनृत्य तो संभव है, परन्तु सुगुप्त प्रीतिका प्रथम अनुभव तो सदैव एकाकी ही किया जाता है।

यह श्रीराधा-कामोद्यान है। गौतमीयतंत्रमें आया है-

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः।।

गोपियोंके प्रेमका अन्य शास्त्रोंमें काम कहकर वर्णन किये जानेपर भी वह वस्तुतः काम नहीं है, अपितु विशुद्ध प्रेम है। महान् भगवद्भक्त उद्धव सरीखे महात्मा भी इसी 'काम' नामक प्रेमकी अभिलाषा करते हैं।

ऐसे ही कामोद्यानमें श्रीराधाकिशोरी सप्तवर्षीय वय प्राप्तकर गौरीरूपमें प्रतिष्ठित हुई, प्रवेश करती हैं। **'अष्टवर्षे भवेद् गौरी'** – प्रत्येक कन्या अष्टवर्षीया होते ही गौरीभावमें प्रतिष्ठित हो जाती है – उसमें प्रीति-कली विकासोन्मुख हो उठती है।

काम एवं प्रेममें बड़ा अन्तर है। यदि यह कामोद्यान ही होता तो इसकी 'सुषमा' आकर्षक नहीं होती। काम मात्र दूरसे ही इन्द्रियगत सुहावना लगता है, उसमें वस्तुतः सुषमा, शोभा होती ही नहीं। कामकी सुन्दरता थोड़े ही कालमें अतिशय कुरूपतामें परिणत हो जाती है। प्रेमोद्यान होनेसे ही यहाँ नित्य-नूतन सुषमा क्षण-क्षणमें प्रकट होती है, और पुनः और अधिक शोभामें उसका पर्यवसान होता जाता है। इसीलिये यह सुषमाकी खान है। प्रेमका आस्वाद यदि किसीको स्वप्नमें भी मिल जाता है तो वह उसे सर्वस्व लुटाकर भी पाना चाहता है। काममें तो इन्द्रियतृप्ति होते ही वह थोड़ी ही देरमें दुःखदायी हो उठता है। इसीलिये इस प्रेमोद्यानमें जैसे ही कोई प्रवेश पाता है, सुखसुधाका स्वाद पाकर तन्मय हो जाता है। काम खण्डरूप है, इस प्रेमोद्यानकी शोभा अखण्ड है। कामगत सौन्दर्य क्षयशील है, इस प्रेमोद्यानकी शोभा नित्यवर्धनशील है। काममें विषय-तृष्णा है, इस प्रेमोद्यानमें प्रवेश करते ही आत्मविस्मरण एवं प्रियतम-स्मरण होता है। कामोद्यानकी शोभामें तृषाभर होती है, वहाँ प्रेमोद्यानमें प्रिया राधा पूर्ण आत्मत्यागकर आत्म-विस्मृतिमें डूब जाती है।

इस प्रेमोद्यानमें मात्र प्राची दिशामें ही तमाल-तरुओंकी पंक्तियाँ हैं, जो लता-मण्डित हैं, शेष तीनों– दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओंमें कदम्बके वृक्ष हैं। अर्थात् इसमें मात्र एक दिशामें ही प्रियतम-संयोग है, शेष तीनों दिशाओंमें विरह-ही-विरह है। लताओंसे लिपटे तमाल-वृक्ष संयोगके प्रतीक हैं, जहाँ कदम्ब विरहके द्योतक हैं। किन्तु ध्यान रहे यहाँ विरह है, किन्तु बिछोह नहीं है; अनन्त क्रन्दन है, परन्तु दुःख नहीं है। कदम्ब वृक्ष विरहके प्रतीक हैं, किन्तु वेदना, दुःखके नहीं। मात्र एक दिशामें तमाल एवं शेष तीनों दिशाओंमें कदम्ब-वृक्षावलियाँ यही प्रकट कर रही हैं कि इस प्रेमोद्यानमें प्रवेश करनेवालेको अपने प्रेमास्पदके द्वारा शृङ्गार तो मिलेगा, परन्तु राग नहीं मिलेगा। यहाँ प्रियतम प्राणवल्लभका भोग तो उपलब्ध होगा, किन्तु अङ्ग-संयोग नहीं मिलेगा। यहाँ प्रेमास्पदके प्रति घोर अनुरक्ति तो मिलेगी, परन्तु अज्ञानजन्य आसक्ति नहीं। यहाँ विरह है, परन्तु वेदना नहीं; यहाँ सेवा तो उपलब्ध होगी, किन्तु अभिमान नहीं होगा; यहाँ प्रलाप होगा, परन्तु बेहोशी नहीं होगी। यहाँ मूर्च्छा भी चैतन्य प्रगाढ़ स्मृतिमयी ही होगी। यहाँ 'मान' होगा किन्तु धैर्य नहीं होगा। यहाँ प्रगाढ़ ममता होगी, परन्तु मोह नहीं होगा। यहाँ अनुराग होगा, किन्तु कामना नहीं होगी; तृप्ति होगी, किन्तु अनिच्छा नहीं। यहाँ सुख होगा, किन्तु स्पृहा नहीं होगी; देह होगा किन्तु अहं नहीं होगा। यहाँ लीलार्थ जगत् होगा, किन्तु माया नहीं होगी। यहाँ ज्ञान है, ज्ञानी नहीं हैं; ब्रह्म है किन्तु निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, निष्कल, निरीह नहीं है। यहाँ मुक्ति है, परन्तु 'लय' 'प्रलय' 'महालय' 'महाप्रलय' सर्वथा नहीं है।

यहाँ .तीनों दिशाओंमें जो कदम्ब-वृक्षावलियाँ हैं वे सभी कदम्ब लीलामहाशक्ति भगवती कामेश्वरीके प्रतीक हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरी कल्पनातीत अलौकिक एवं अप्राकृत हैं। ये योगमाया ब्रजमें श्रीराधाकिशोरी एवं नित्यनिकुञ्जेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलामें योग देनेके लिये प्रकट हुई हैं। इसीलिये इस सच्चिन्मय प्रेमोद्यानमें तिर्यक् योनि धारणकर जन्म लेनेके लिये ब्रह्माजी भी तरसते हैं। इस प्रेमोद्यानमें प्रवेश पानेको ब्रह्मविद्या 'तप' करती हैं। इस वनमें निरन्तर प्रवाहित रहनेवाले अचिन्त्य अनिर्वचनीय प्रेमार्णवकी एक विन्दु प्राप्त करनेके लिये साक्षात् भगवान् शिव,जगद्विधाता ब्रह्मा, देवराज इन्द्र, भगवान् नारायणके हृदयमें सदैव निवास करनेवाली महालक्ष्मी, श्वेतपद्मकी-सी कान्तिवाली हंसवाहिनी एवं कैलाशवासिनी भगवती पार्वती भी ललचाती हैं।

इस प्रेमोद्यानकी भूमि पूर्ण रागमयी है, इसीलिये यह भूमि लाल मणियोंसे निर्मित है। पुष्पोंसे आच्छादित एक क्यारीमें जो वेदी है, वह भी पद्मरागमणियोंसे ही निर्मित है। इसी लाल मणिकी वेदीपर पुष्पित लताओंके मध्य एक नीलम-निर्मित अभिनव सुन्दर बालककी मूर्त्ति है, जो अपने हाथोंमें वेणु लिये है और स्वर भरनेकी मानो तय्यारीमें ही खड़ी है। वह मूर्त्ति इतनी जीवन्त है, मानो बस, बोल ही पड़ने वाली हो।

उपरोक्त वृत्तान्त प्रकट कर रहा है कि इस प्रेमोद्यानमें राग-ही-रागका पूर्ण उत्कर्ष है। यह राग प्रगाढ़, प्रगाढ़तर एवं प्रगाढ़तम होता हुआ भुक्ति-मुक्तिके सम्पूर्ण दुर्लंघ्य प्रलोभनों – लता-जालोंको चीरता हुआ ब्रजेन्द्रनन्दन मुरलीमनोहर श्रीकृष्णमें अर्पण हो गया है। इस प्रेमोद्यानमें सर्वप्रथम श्रीराधाकिशोरी ही प्रवेश पा सकती हैं। वे भी इस प्रेमोद्यानमें स्थित नीलमणिमयी मूर्त्तिके दर्शन करते ही अपने मन-प्राण-सर्वस्व इस प्रेम-प्रतिमाको समर्पित कर देती हैं। वे इसे देखते ही अपना लोक-परलोक सभी भुला बैठती हैं। बस, इस प्रतिमाके प्रथम दर्शन मात्रसे उनका जगना-सोना, खाना-पीना, चलना-फिरना, शृंगार-सज्जा करना, बातचीत करना, सब मात्र श्रीकृष्णमय हो जाता है। वे सम्पूर्ण कामनाओंसे सर्वथा शून्य हुई मात्र श्रीकृष्णमयी, निजप्रियतममयी हो उठती हैं। यह इस प्रेमोद्यानका प्रत्यक्ष प्रभाव है।

इस प्रेमोद्यानका यही माहात्म्य है कि यहाँ सुख-सन्दोह-सुख-सिन्धु विज्ञानानन्दघन भगवान् भी सुखकामी होकर अपनी प्रिया श्रीराधाकिशोरीका आह्वान करने लगते हैं। वे अपनी आह्वान-ध्वनि द्वारा अपनी ह्लादिनीशक्ति प्रियाको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। प्रिया श्रीराधा अपने प्रियतम नीलमणिका आह्वान सुनकर सर्वबाधा-विनिर्मुक्त हुई प्रेम-प्रमत्त होकर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती हैं। यह प्रेमोद्यान काम-कालिमा-शून्य है, निर्मल भास्करवत् प्रकाशवान् है। यहाँ

इस प्रेमोद्यानमें प्रवेश पानेवालेकी समस्त इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि स्वभावतः ही प्रेंममुखी हो उठती हैं। विशुद्ध श्रीकृष्णानुरागसे ही यहाँकी भूमि लाल है। इस प्रेमोद्यानमें मधुर रस ही सर्व प्रधान है। यहाँ श्रीकृष्ण भगवान् नहीं, ऐश्वर्यशाली नहीं, अधिकाधिक निजजन हैं, अपने प्यारे प्रियतम हैं। उनका सबकुछ उनकी प्रियाका है। यहाँ इन्द्रियतृप्तिकी आकांक्षाका लेश भी नहीं, किन्तु उनसे मिलनेकी अतृप्त उत्कण्ठा, उनका निरन्तर चिन्तन एवं उनमें अतिशय प्रेमदृष्टि है। प्रियतमके अदर्शनमें एक-एक पल युगोंके समान दीर्घकालिक हो उठता है। यहाँकी प्राणवायुमें श्वासलेने भरसे सर्वतोभावसे दोषदर्शनविमुक्त हुआ प्राणी अपने प्रेमास्पदको आत्मसमर्पण कर बैठता है। लोक, वेद – सबकी मर्यादाओंको तृणवत् तुच्छ मानकर, एवं उनका त्यागकर कृष्णानुरागी बना देना ही इस प्रेमोद्यानकी सुषमा है। इससे अधिक इस प्रेमोद्यानके माहात्म्यका क्या बखान किया जाये ?

सुस्पष्ट शिला पर से ही थी सहसा वह दीख गयी, प्रियतम !
प्रतिमा, अवनीशनन्दिनी को सुन पड़ा और वह था, प्रियतम !
मीठा स्वर उसे बुलाने का उस दिशा प्रतीची से, प्रियतम !
दोनों ही एक काल में ही बातें ये हुईं वहाँ, प्रियतम ।।३०८।।

किशोरीने शिलापरसे ही प्रतिमाको सुस्पष्ट देखा था। अवनीशनन्दिनीको वहींसे – उस प्रतीची दिशासे ही – उन्हें बुलानेका स्वर सुन पड़ा। नीलम-निर्मित प्रतिमाका दर्शन एवं उस आह्वानके स्वरका श्रवण, – दोनों एक साथ, एक ही कालमें किशोरीको हुए थे भला ! ।।३०८।।

जिज्ञासा

छन्द सं. ३०८में उल्लेख है कि राधाकिशोरीने शिलापरसे ही प्रतिमाको सुस्पष्ट देखा और वहींसे उन्हें बुलानेका आह्वान-स्वर भी सुनाई पडा। उस आह्वानके स्वरका श्रवण और प्रतिमाका दर्शन दोनों एक साथ एक ही कालमें किशोरीको हुए थे। कृपया यह सुस्पष्ट करें कि क्या प्रतिमाएँ बोलती भी हैं ?

समाधान

यहाँ ध्यान रहे कि जैसे सत्यसङ्कल्प भगवान्के नाम एवं स्वयं भगवान्में कोई भी अन्तर नहीं होता, उसी तरह सत्मूर्त्ति भगवान्के रूप, लीला, एवं धाम भी पूर्ण सत्य एवं भगवत्स्वरूप चिन्मय ही होते हैं। इस अप्रतिम प्रतिमाका निर्माण किसी प्रस्तर एवं रत्नखण्डकी कलाकृतिके रूपमें किसी कलाकारने नहीं किया है। यह प्रतिमा महर्षि भागुरिको कृष्णकुण्ड (नीलसरोवर) में भगवान् सूर्यदेवके सङ्केतसे प्राप्त हुई है। भगवान सूर्यदेवने महर्षि भागुरिको आदेश दिया था कि वे कृष्णकुण्ड (नीलसरोवर)की ओर जावें, रास्तेमें विकसित सुरभित सुमन-समूहोंसे अपनी अञ्जलि परिपूरित करलें, सरोवरके पूर्वोत्तरके कोणसे जलमें पुष्प-अञ्जलि लिये ही प्रविष्ट करें एवं शनैः-शनैः आगे बढ़ें। जहाँ स्वतः ही अञ्जलि-बन्धन शिथिल होकर पुष्प च्युत हो जावें, वहीं रुक जावें। यों तो कृष्णकुण्डका जल अगाध है किन्तु कुछ दूर चलनेपर उन्हें जलका तल अनुभव होगा। वहाँ टटोलनेपर उन्हें दो वस्तुओंकी प्राप्ति होगी। इन दो वस्तुओंमें एक तो वह प्रतिमा होगी एवं दूसरी स्वर्णनिर्मित पद्मपुरैनकी आकृतिका एक पत्ता होगा, जिसमें दहेजवाला दानपत्र पहलेसे ही अङ्कित होगा।

इस सब वर्णनसे यही प्रतीत होता है कि यह प्रतिमा कोई साधारण रत्नखण्ड-निर्मित कलाकृति मात्र नहीं थी। यहाँ वस्तुतः जलके साधारण सरोवर मात्र नहीं हैं, वरं स्वयं नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीके ही प्रेमरसमय छलकते रस-विग्रहोंकी परिणति हैं। अतः इस कृष्णकुण्डमें स्वयंभू प्रकट हुई रत्नमयी

प्रतिमा भी पूर्णतया चिन्मयरसस्वरूपा मूर्त्ति ही थी। अस्तु इस प्रतिमाके द्वारा निस्सृत प्रिया श्रीराधाकिशोरीको जो प्रेममयी आह्वानध्वनि श्रवणगोचर होती है, उसमें आश्चर्य माननेका कोई कारण नहीं है। यह आह्वानध्वनि अन्य किसीकी नहीं, स्वयं नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णकी ही थी, जो अपनी प्रियामें पूर्व-रागोदयकी हेतु बन रही थी।

सुन्दर नव वह अनुभूति सुखद नरपालनन्दिनीकी, प्रियतम !
कैसे बतलाऊँ, वाणीके वशकी है बात नहीं, प्रियतम !
ऐसे सब अवसर पर रहता है रिक्त कोश उसका, प्रियतम !
मिलनेकी युक्ति मिली न उसे श्रवणोंसे, लोचनसे, प्रियतम ।।३०९।।

किशोरीकी उस सुखद-सुन्दर नवीन अनुभूतिका चित्रण कैसे हो ? वाणीके वशकी बात ही यह जो नहीं है। ऐसे सभी अवसरोंपर वाणीका कोष सबको रिक्त ही मिलता है। किसीकी गिराको भी उसे व्यक्त करनेकी समुचित शक्ति आजतक श्रवणोंके द्वारा, लोचनोंके माध्यमसे भी नहीं मिली।।३०९।।

जिज्ञासा

छन्द सं.३०९में प्रिया श्रीराधाकिशोरीको जिस सुखद अनुभूतिके होनेका वर्णन किया गया है एवं साथ ही यह भी लिखा गया है कि उसे बतलानेकी सामर्थ्य वाणीके वशकी बात नहीं है, इस रहस्यपर किञ्चित् प्रकाश डालें।

समाधान

भावकी परिपक्व अवस्थाका नाम प्रेम है। चित्तके सम्पूर्ण रूपसे निर्मल और अपने अभीष्ट प्रियतममें अतिशय ममता होनेपर प्रेमका उदय होता है। किसी भी विघ्नके द्वारा रञ्चमात्र भी न घटना या नहीं बदलना यही प्रेमका चिह्न है। प्रेम दो प्रकारका होता है। विधिमार्गसे भक्तका भगवानके प्रति प्रेम महिमा-ज्ञानयुक्त होता है। किन्तु यहाँ श्रीराधारानी भक्त नहीं, प्रिया हैं। वे विशुद्ध माधुर्यमय पथकी पथिक हैं अतः उनमें उस प्रतिमाको देखकर वंशीविमोहन प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति ममताकी विलक्षण वृद्धि हो उठती है। यह ममत्व-वृद्धि इतनी वेगसे होती है कि उनका चित्त पूर्णतया विगलित हो जाता है, और अपने प्रियतममें एकमेक हो जानेके लिये द्रवित होकर उनके प्रेम-सिन्धुमें मिल जानेको अतिशय वेगसे प्रवाहित हो उठता है। उसे कोई ऐसा पथ नहीं मिलता जो उसे सीधे अपने प्रियतमके चरणोंमें विसर्जित होजानेके लिये, उनके पास पहुँचा दे। गलियाँ वहाँ रहती ही नहीं। उनके प्रियतमकी प्रतिमा उन्हें स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है, किन्तु सघन उपवनकी लताएँ जुड़कर जाल बनाकर उसके पथको रोके हैं।

वस्तुतः प्रेम एवं परमात्मामें कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार वाणीसे परमात्माका वर्णन होना असंभव है, उसी प्रकार प्रेम-वर्णनमें भी वाणीका कोष सदैव रिक्त ही रहता है। प्रेमका अनुभव होता है मनमें और प्रेमीका मन सदैव रहता है अपने प्रेमास्पदके निकट। अब वाणीको कुछ भी वर्णन करनेका विषय कहाँसे मिले ? प्रेमका अनुभव न तो लोचनोंको होता है, न ही श्रवणेन्द्रियको। अतः उनके द्वारा वाणीको प्रेमवर्णन करनेकी सामग्री भला कैसे मिलती। अवश्य नेत्रोंने उस नीलमणिकी प्रतिमाका रूप देखा था, श्रवणोंने उसकी आह्वान-ध्वनि सुनी थी। वाणी नीलमणिकी प्रतिमाका रूप-वर्णन नेत्रोंके द्वारा दिये गये सङ्केतानुसार कर सकती थी। इसी प्रकार श्रवणेन्द्रियों द्वारा सुने गये वचनोंको वाणी बोल सकती थी। परन्तु प्रतिमाका रूप एवं श्रवणेन्द्रियों द्वारा सुने उसके आह्वान-शब्द ही तो प्रेम नहीं थे। प्रेम तो वह अनिर्वचनीय अनुभव था जो प्रिया श्रीराधाकिशोरीके मनमें स्पन्दित हुआ था। उस प्रेमानुभवने प्रिया श्रीराधाकिशोरीके मनको प्रेम-समुद्रके अतल तलमें डुबो दिया था। अब प्रेम-समुद्रमें डूबा, लीन हुआ मन क्या कहे ?

जैसे गूँगा गुड़ खाकर प्रसन्न होता है, हँसता है, परन्तु गुड़का स्वाद बतला नहीं सकता, इसी प्रकार राधा अपने प्रियतमका प्रेमानुभव करके प्रेमनिमग्न हो जाती हैं। श्रीराधाकिशोरी प्रेममें इतनी तन्मय हो उठती हैं कि वे कुछ बोल ही नहीं सकतीं। यही इस छन्दमें कथित पंक्तियोंका तात्पर्य है।

जिज्ञासा

छन्द सं.३१०से ३२८तक पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने इस काव्यमें जो भी वर्णन किया है, उसमें प्रिया श्रीराधाकिशोरीके प्रेमके निगूढ़ अन्तर्भावोंका ही वर्णन किया गया है। कृपया यहाँतकके सभी छन्दोंपर एक विस्तृत समीक्षा करें।

जो हो, तत्काल उतर आयी नृपपुत्री; किंतु उसे, प्रियतम!
कोई न मिली पगडंडी, जो सीधे उस ओर चले, प्रियतम!
वे सघन लताएँ उपवन की जुड़कर थीं जाल बनी, प्रियतम!
उत्तर का तो पथ मिलता था, पर नहीं प्रतीची का, प्रियतम॥ ३१०॥

जो हो, यन्त्रवत् नृपनन्दिनी तत्क्षण उस शिलाखण्डसे नीचे उतर आयी। आस-पास किशोरीको कोई भी पगड़ंडी न मिली, जो नीलम-मूर्तिके पास उसे सीधी पहुँचा दे। वे सघन लताएँ परस्पर जुड़कर जाल-सी बन गयी थीं। उत्तरकी ओरका पथ तो मिलता था, पर प्रतीचीकी ओर अग्रसर होनेवाली कोई क्षीणतम पगडंडी भी उसे दीख नहीं रही थी।।३१०।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

प्रेमके पथिकोंको कभी भी सीधे सपाट राजमार्गकी उपलब्धि नहीं होती, किन्तु प्रेमके पथिक कण्टकाकीर्ण पथहीन देशमें भी मार्ग बना लेते हैं।

प्रियतमसे मिलनेको जिसके प्राण कर उठे हाहाकार।
गिना नहीं उसने पथकी दूरीको भयको किसी प्रकार।।

प्रेमके पथिक सब कठिनाइयोंका समाधान, अनायास बिना किसी कष्टके निकाल लेते हैं। कोई भी पार्थिव पदार्थ, कोई भी विपरीत विचार, कोई भी अनुभव उनके मार्गमें बाधक नहीं हो सकते।

धीरज न बचा उसमें अब था, जो सोच-विचार करे, प्रियतम!
अपना सिर डाल दिया उसने वल्ली के छिद्रों में, प्रियतम!
जैसे-तैसे निर्माण लगी करने पथ उनमें ही, प्रियतम!
वे टूट न जायँ, किंतु इतना था ध्यान बना उसमें, प्रियतम॥ ३११॥

उस ओर किशोरीको इन बातोंपर विचार करनेका अवकाश भी कहाँ था ! उसका धैर्य छूट जो चुका था। देखते-देखते उसने उस लता-वल्लरियोंके छिद्रमें अपना सिर डाल दिया। जैसे-तैसे वह स्वयं ही पथका निर्माण करने लगी। हाँ, वह पूर्ण सजग थी कि कोई वल्लरी उसके इस प्रयासमें तनिक-सी भी खण्डित न हो जाय।।३११।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

प्रिया श्रीराधाकिशोरीको भी शरीरका मोह तो रहा ही नहीं था। उनका समग्र अनुराग, ममत्व, आसक्तियाँ, एवं क्रियाएँ एक ही केन्द्रमें मिल गयी थीं और वह केन्द्र था उनके प्रियतम प्राणवल्लभकी वह नीलम प्रतिमा। अतः पथमें जो सघन लताएँ जाल बनाकर बाधा प्रस्तुत कर रही थीं, किशोरी उन लता-वल्लरियोंके छिद्रमें ही अपना मुख डाल देती हैं। गोविन्द-पदारविन्द-मकरन्द-मधुकरी राधामें धैर्य कहाँ था कि लता-जालके निवारणका कोई उपाय सोचती। फिर अनन्त प्रेम-रस-सुधा-समुद्र श्यामसुन्दर तो सभी जीवोंके अन्तेवासी हैं ही। चाहे उद्भिज योनिमें ही कोई क्यों न उत्पन्न हो, भगवान्ने जीवको प्रेम देकर ही जगत्में भेजा है। अतः वे सघन लता-वल्लरियाँ भी जो किशोरीका पथ जाल बनाकर घेरे थीं स्वयं सचेत होकर पथ देनेको उन्मुख हो उठती हैं।

परम प्रेमके दिव्य रसमें डूबी किशोरीको तो सर्वत्र अपने परम रसमय प्रियतम ही दिख रहे थे। उन्हें तो कानोंसे जो कुछ सुनाई पड़ रहा था, वह सब मात्र उस प्रतिमाकी परम प्रेमभरी आह्वानध्वनि ही थी। उनके चित्तमें दूसरेके लिये स्थान ही कहाँ बचा था। वे तो उस प्रेमाह्वानकी मिठासमें ही मस्त थीं। उनके चित्तमें अन्य दूसरेका स्थान ही नहीं शेष था। वहाँ तो उस नीलम प्रियतमका अखण्ड साम्राज्य था, पूर्ण अधिकार था। ऐसा थोड़ासा भी स्थान नहीं, जहाँ किसी दूसरेकी कल्पनाकी स्मृति छायारूपमें भी आ सके। प्रिया राधाकिशोरीका चित्त साक्षात् प्रियतमके प्रेमका स्वरूप ही बन गया था। अतः स्वाभाविक ही था कि किशोरी उन वल्लरियोंके जालको भी प्रेममय, रसमय, प्रियतममय आनन्द और सौन्दर्यसे भरा देखने लगी।

सत्य ही तो है – उस परमानन्द-रस-सुधामय मधुराधिपतिका सभीकुछ पूर्ण मधुर है। उसके पथमें बिछा बाधा-ज़ाल भी मधुर है। **'मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।** – (महाप्रभु आचार्यवल्लभ) । **'मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्तोषधीः ..... मधुमत् पार्थिवं रजः '** प्रिया श्रीराधाकिशोरीका पथ सर्वत्र मधु-ही-मधु हो गया था। अतः उन्हें पथ बनानेकी अपेक्षा कहीं वे लताएँ टूट न जावें इसकी अधिक चिन्ता थी।

जैसी भावना निकलती है, वैसी ही आती है, प्रियतम !
वल्लरियों के मन में आया, तोड़ें न हृदय इसका, प्रियतम !
अपने ही आप लगीं होने अपसारित वे पल में, प्रियतम !
छोटा-सा द्वार बना, नृप की पुत्री उस पार हुई, प्रियतम॥ ३१२॥

निसर्गका नियम है कि मानव बाहर जैसी भावनाका दान करता है, उसके अन्तर्हृदयमें तदनुरूप भावना हो आती है; और इसीलिये मानो वल्लरियोंके हृत्तलमें यह भाव जाग ही उठा कि हम इस किशोरी बालिकाका हृदय न तोड़ें। इसीलिये वे लता-वल्लरियाँ अपने आप बायें-दाहिने, ऊपर-नीचे अपसरित होने लगीं। सचमुच एक छोटा-सा द्वार बन ही गया। देखते-न-देखते राजनन्दिनी उस पार जा ही पहुँची।।३१२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

निसर्गका तो नियम ही है – किसीके भी हृदयसे जैसी भावना निकलती है, वैसी ही उसे दूसरेसे भी लौटकर मिलती है। उन वल्लरियोंके रूपमें सत्यांशमें थे तो उसके परम प्रियतम प्राणधन ही। उनके सिवा अन्यकी सत्ता तो कहीं थी ही नहीं, चाहे वह मायावी प्राकृत जगत् हो, चाहे अप्राकृत लीलाजगत् हो। सत्य सदैव सर्वत्र एकमेव ही है। वह तो लीलारसास्वादनार्थ ही अनेक रूपमें प्रतिभात होता है। अतः किशोरीके विच्छेदरहित सत्य प्रेमको देखते ही लता-वल्लरियोंका रूप धारण किये उसके प्राणधनको उसे राह देनेके लिये विवश हो जाना पड़ा।

किशोरीके प्रेममें स्वसुख-कामनाका तो लेश भी नहीं था। उसका तो स्वार्थ-परमार्थ सब प्रेमास्पद ही था, अतः स्वभावतः ही लता-वल्लरियोंके मनमें भी किशोरीको सुख देनेकी, राह दे देनेकी स्पृहाका स्फोट हो उठा।

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' की प्रतिज्ञानुसार किशोरीके अन्तर्हृदयके अनुरूप ही वल्लरियोंके हृत्तलमें भी यह भाव जाग ही गया कि हम इस किशोरी बालिकाका हृदय न तोड़ें। उन लता-वल्लरियोंका रूप धारण किये, परमात्माको किशोरीके उन्मत्त प्रेमने बाध्य कर दिया कि वह परमात्मा स्वयं ही अपने आप बिना किसी दूसरेके द्वारा हटाये, बायें-दाहिने, ऊपर-नीचे अपसरित होने लगे। सचमुच किशोरीको एक छोटा-सा पथ मिल ही गया औरं किशोरी उस पार जा ही पहुँची।

भावों से थी विभोर, दिग् भ्रम हो गया अतः उसको, प्रियतम !
सीधे पश्चिम चलना था, पर उत्तर की ओर चली, प्रियतम !
गूँजी कानों में इतने में वैसी ही मधुर गिरा, प्रियतम !
बायें, प्राणोंकी रानी हे ! तुम तो मुड़ चलो अभी ! प्रियतम ॥३१३॥

किशोरी भावोंसे विभोर हो चुकी थी, इसलिये वास्तवमें उसे दिग्भ्रम हो गया। उसे सीधे प्रतीचीकी ओर चलना था, किन्तु वह उत्तरकी ओर चल पड़ी। बस, इतनेमें ही उसके कानोंमें वैसी ही मधुस्यन्दी गिरा झंकृत हो उठी – 'प्राणोंकी रानी हे ! तुम तो अपनी बायीं ओर अभी तुरन्त मुड़ ही चलो भला !'।।३१३।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

यह तो निश्चित है कि वाणीके द्वारा प्रेमका स्वरूप नहीं बतलाया जा सकता; किन्तु प्रेम-मदसे छकी किशोरी जब तन-मनकी सुधि भुलाकर दिव्य उन्मत्तवत् लता-जालों द्वारा दिये पथपर बढ़ चली तो प्रेम-प्रकाशसे समग्र वन मुखरित हो उठा। जिसे दिव्य प्रेम रसामृतका अनुपम स्वाद मिलता है, वही ऐसे भाग्यवान् प्रेमीकी महिमाको जान पाता है। उस समय किशोरी भूल ही गयी कि उसका गन्तव्यस्थल कौन सा है ? उसे तो सब दिशाओंमें वह प्रतिमा ही खडी वेणुमें स्वर भरनेकी तत्परतामें उत्सुक दिखाई पड़ रही थी। उसे तो सब दिशाओंसे प्रेममयके आह्वानका प्रेम-सङ्गीत ही सुनाई पड़ रहा था। किशोरीके चित्तमें प्रेमका प्राकट्य साक्षात् उसके प्रियतमका प्रकाश ही तो था। अतः उसे दिग्भ्रम हो जाना स्वाभाविक ही था। उसे सीधे प्रतीचीकी ओर चलना था, किन्तु वह कुछ उत्तरकी ओर बढ़ चली। किशोरी तो अपनी तन्मयतामें भूल ही गयी थी कि वह स्वयं कौन है और उसे कहाँ जाना है। किशोरीके लिये तो आकाशमें उसके प्रियतम, प्राणोंमें उसके प्रियतम, रविकी किरणोंमें उसके प्रियतम, जलमें वे ही प्रियतम और सभी दिशाओंमें वे-ही-वे भरे थे। अतः वह प्रेमान्ध थी। उसकी इस दशाका रसास्वादन सतत जागरूक हुए उसके प्राणपति तो कर ही रहे थे। अतः उन्होंने ही उसे आदेश दिया कि 'प्राणोंकी रानी हे ! तत्क्षण ही अपनी बायीं ओर मुड़ चलो।'

उसके दृग खुले, भान हुआ, प्रतिमा बायें ही है, प्रियतम !
झङ्कृत उर-तार हुए छूकर उस लहर वैखरी को, प्रियतम !
क्या मूर्ति वही है बोल रही, भ्रम होने लगा उसे, प्रियतम !
कैसे सुन पायी स्वर धीमा इतना इस दूरी से, प्रियतम ॥३१४॥

किशोरीके नेत्रोंका आवरण हट गया; उसे अनुभव हआ कि सचमुच प्रतिमा तो बायीं ओर ही है ! उसके हृत्तन्त्रीके तार उस वैखरी ऊर्मिको स्पर्शकर झंकृत हो उठे। उसे भ्रम होने लगा – 'क्या वास्तवमें वही मूर्ति बोल रही है? अन्यथा मैं इतनी दूरीसे इतना धीमा स्वर कैसे सुन पायी।'।।३१४।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

अमृत चाहे विषका कार्य कर दे; शीतल जल चाहे जगत्को भस्म कर दे, परन्तु श्रीकृष्ण-प्रेमी कभी पथसे विचलित नहीं हो सकता। जिसके हृदयमें केवल कृष्ण-ही-कृष्ण भर गये हों, उसके दृष्टिपथमें यदि प्रेमावरण आ जानेसे कोई कर्त्तव्यच्युति भी हो जाती है, तो सर्वज्ञ, सर्वविद् उसके प्रियतम उसे सावधान कर ही देते हैं। अपने प्रियतमकी वाणीके स्वकर्ण-विवरोंमें जाते ही किशोरी सचेत हो उठती है। तत्क्षण ही उसे अनुभव हो जाता है कि उसके प्रियतमकी प्रतिमा तो बायीं ओर रह गयी है और वह उत्तरके पथकी ओर बढ़ चली है।

वस्तुतः उत्तरका पथ जाता है उस ओर जहाँ भगवत्ताकी परिपूर्णतम परिणति है, जहाँ श्रीकृष्ण तत्वज्ञानविग्रह हैं, सहज वैराग्यरूप हैं, जहाँ वे अनन्त साधुहृदय पुरुषोंके परमाराध्य हैं, जहाँ वे भक्त-भक्तिमान् हैं, जहाँ वे **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** हैं। किन्तु राधा तो उस पथकी पथिक नहीं है। उसे तो पश्चिमके मार्गपर चलना है। उसे तो अपने प्रियतमके प्रेमकी चाह है, उसे मोक्ष, ज्ञान, ऐश्वर्य, ऋद्धि, सिद्धि या महान् कीर्त्ति कुछ भी नहीं चाहिये। श्रीराधाके लिये तो भोग किंवा मोक्षका मार्ग दोनों ही पिशाची मार्ग हैं। राधाकिशोरीको ध्यानके अभ्याससे वशमें किये चित्त द्वारा किसी निर्गुण, निष्क्रिय परम ज्योतिका साक्षात्कार नहीं करना है, उसे तो अपने प्राण-सार-सर्वस्व अनिर्वचनीय साँवरे सलोने वंशी-विमोहनसे प्रेमकी पेंगें बढ़ानी हैं। जिनके दोनों हाथ बाँसुरीसे शोभा पा रहे हैं, जिनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति नूतन मेघके समान है, जिनके साँवले अङ्गोंपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है, लाल-लाल होंठ पके हुए बिम्बफलकी सुषमा छीन लेते हैं, जिसका सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा है, जिसके प्रफुल्ल नेत्र कमलके समान मनोहर प्रतीत होते हैं, श्रीराधाको तो ऐसे प्रियतमके अतिरिक्त किसी भी अन्य परमतत्वकी खोज ही नहीं है।

यह प्रेमराज्य कोई कल्पनालोक नहीं है परात्पर सत्यका दिव्य लोक है। जिनका इस भावराज्यमें प्रवेश है, वे ही इसका आनन्द जानते हैं; इस आनन्दको मायिक वाणी किसी भी अंशमें व्यक्त नहीं कर सकती। राधाकिशोरी तो उस परम-आनन्दमें मग्न है, वह दूसरे मार्गपर जो उत्तरकी पगडण्डीसे प्राप्त हो सकता है, कदम बढ़ा ही नहीं सकती। श्रीराधाकिशोरीके लिये अनन्त साधु-हृदय पुरुषोंका परमाराध्य वह मार्ग भी हेय है, त्याज्य है, तुच्छ है, अपथ है।

अतः किशोरीके नेत्रोंमें जो उत्तरके पथकी ओर बढ़ जानेका आवरण आ गया था, वह तत्क्षण ही अपने प्रियतमके सङ्केतपर हट जाता है। समग्र आवरण तो योगमायाके द्वारा उत्पन्न होते हैं। लीला-सन्दोहमें प्रवेश करनेके लिये योगमायाके सभी अवरोधात्मक आवरण हट जाने आवश्यक हैं। समग्र अवरोध वहीं तक हैं, जहाँतक वासनाका अन्धकार है। वासना चाहे वह मोक्षकी भी क्यों न हो, रस-रासके अधिकारपर आवरण डाल देती है। जिसकी मोक्षसे भी परम उपरति हो जाती है वही रासमें प्रियतमका आह्वान सुननेकी यत्किञ्चित् योग्यता प्राप्त कर पाता है। राधाकिशोरी तो सर्व-वासना-लेशसे भी शून्य है। अतः वह व्यवधानरहित हो अपने प्रियतमका सङ्केत सुन पाती है। उसे अनुभव हो जाता है कि उसके प्रियतमका पथ बायीं ओर है। उसके हृत्तन्त्रीके तार उस वैखरी ऊर्मिको संस्पर्शितकर झंकृत हो उठते हैं।

किशोरी देखती है – क्या वास्तवमें मूर्त्ति बोलती है ? वह इतनी दूरसे क्षीण स्वर कैसे सुन पायी?

जड मूर्त्ति और चैतन्य जीवका भेद हम प्राकृत मानवोंके समझने भरके लिये है। जड़ताकी कल्पना मायाके राज्यमें है। जहाँ सर्वावरणयुक्त अप्राकृत चिन्मय जगत् है, वहाँ तो दिव्य चिन्मय प्रेमलीलाके ही सभी पात्र हैं। वहाँ जड़ताकी कैदमें कुछ भी नहीं है। वहाँ सबकुछ चिन्मय प्रेम-लीला है। हम मायामें बैठकर अमायिककी गुत्थियाँ सुलझाना चाहते हैं। मानवलोकमें उस लोककी कल्पना भी नहीं हो सकती। जिसकी मुसकानसे अनन्तानन्त सृष्टिका प्रसार हो जाता है, और उस मुसकानके रुकते ही सृष्टि विलय हो जाती है, उस पूर्ण परात्पर प्रियतम श्रीकृष्णकी कैसी मूर्त्ति और कैसा स्वयंका स्वरूपगत देह ? इस प्रेमराज्यका सबकुछ – मूर्त्त-अमूर्त्त सभी बस एकमेव प्रेमसृष्टि है। इस प्रेमसृष्टिके

हंस-हंसिनी, शुक-सारिका सब प्रेमकी बात करते हैं, मानवी भाषामें बोलते हैं। यहाँ सभी मूर्त्त पूरा अमूर्त्त है और अमूर्त्त पूर्णतया मूर्त्त है। यहाँ सब जड़ चेतन हैं और चेतन जड़ हैं। इस प्रेम-लीला-राज्यमें परिच्छिन्न मानवी कर्म-चेष्टाका लेश भी नहीं है। यहाँ सब मानवोत्तर हैं, सभी प्रेमसृष्ट हैं। यहाँ सब-के-सब भावदेह हैं। चिन्मय अलौकिक भावदेहमें मूर्त्तिका बोलना, मुसकाना, चलना, सब संभव है। यहाँ न जड़ मायाकी मूर्त्ति है, न जड़ मायाके मनुष्य, न ही यहाँ जड़ मायामें रमण ही है। यहाँ मायासे पूर्णतया विरहित, योगमायाके भी पर्देको हटाकर **'आत्मारामोऽप्यरीरमत्'** आत्माराम प्रियतमका अपनी प्रियाके साथ स्वरूपरमण है। यहाँ पृथ्वीरूपसे स्वयं श्रीकृष्ण हैं, जलरूपसे भी यहाँ स्वयं श्रीकृष्ण हैं, तेज, वायु एवं आकाशरूपमें भी वे ही वे हैं। श्रीराधाकिशोरी भी वे स्वयं हैं, मूर्त्ति भी स्वयं वे ही हैं। अतः यहाँ सबकुछके द्वारा सभीकुछ होना संभव है। यहाँ न प्राकृत तर्कोंका समावेश है, न ही प्राकृत नियमोंकी सीमा।

प्रतिमाको कोई यदि जड़तायुक्त अनुभव भी करेगा, तो मात्र पृथ्वीतत्वका परिणाम ही तो मानेगा? जिस लोकमें पृथ्वी भी श्रीकृष्ण है, वहाँ प्रतिमा साक्षात् चिन्मय स्वरूपा ही तो होगी। लीलाके प्रतिपादनार्थ ही जिस लोकमें स्वयं श्रीकृष्णने पृथ्वीका रूप धारण किया है, अन्यथा है सर्वथा सच्चिन्मय परमात्मतत्व ही। यहाँ पृथ्वीका परिणाम प्रतिमा प्रेम-वार्त्ता कर उठे, इसमें आश्चर्य कहाँ है ? यहाँ तो आवश्यकता होनेपर स्वयं पृथ्वी भी मूर्त्त होकर श्रीराधाकिशोरीको नमन करने प्रकट हो सकती है।

दौड़ी वह भान भुलाकर अब, नीचे क्या है इसका, प्रियतम !
कैसे न अहो! टकरायी, वह तरु से अचरज यह था, प्रियतम !
दो-तीन पलोंमें पद्मराग-वेदी पर जा पहुँची, प्रियतम !
थे खड़े सभी द्रुम हरे-हरे, वे पत्र-छत्र ताने, प्रियतम ॥ ३१५॥

.............वह सब सुध-बुध खोकर, नीचे पथ कैसा है – इसकी भी विस्मृति करके, उस ओर ही दौड़ चली। आश्चर्यका विषय यह था – अरे! वह वृक्षोंसे टकरायी कैसे नहीं ?.............दो-तीन पलोंमें ही वह पद्मराग-निर्मित वेदीपर जा पहुँची। वहाँकी हरीतिमासे पूर्ण द्रुमावलि, अपने पत्रोंसे निर्मित छत्र ताने, खड़ी-खड़ी मानो उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।।३१५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

सच्ची चाहका स्वरूप ही यह है कि फिर चाही हुई वस्तुके बिना जीना कठिन हो जाय। प्रेष्ठके अदर्शनकी वेदना-ज्वालाका जिसे अनुभव हो जाता है, और प्रेमास्पद भी उस वेदनासे अभिभूत होकर जब किसीके सामने मूर्त्त हो उठते हैं, उस समय गहन रसानुभूतिकी अप्रतिम निधि सँजोये प्रेमी अपनी पूरी शक्ति एवं वेगसे अपने प्रियतमकी ओर दौड़ पड़ता है। अन्य कामना एवं इच्छाका तो उसके जीवनमें लेशात्मक अंश भी नहीं रह पाता। उस समय न तो उसे मार्गकी दूरीका ध्यान रहता है, न ही बीहड़ वन-पथका। अवरोधोंका कोई भी जाल उसका मार्ग रुद्ध नहीं कर पाता। उसका सम्पूर्ण अपनापन तो एकत्रित हो उठता है, उस नीलसुन्दरकी प्रतिमाकी पद-नख-मणियोंमें। अतः वह समग्र सुध-बुध भुलाकर, उसके चरणोंकी आधार-धरा कितने अवरोधों, गड्ढों, एवं कंटकोंसे भरी है – इस सबको विस्मृतकर अपनी दृष्टिको एकमात्र प्रेमास्पदपर ही केन्द्रितकर, अन्य कहीं भी दृष्टि नहीं डालती, वह एकमात्र उनको ही लक्षितकर दौड़ पड़ती है। भयशून्य होकर बीहड़ वृक्षोंके अवरोधोंसे भरे वनपथपर वह एकाकिनी चल पड़ती है। उसके रोम-रोममें मिलन-त्वराकी आकुलताका वह विन्दु सृजन हो जाता है जिससे प्रकृति उसके अनुकूल हो उठती है। प्राकृत प्राणी आश्चर्य करेगा कि वह वृक्षोंसे टकरायी कैसे नहीं ? कण्टकोंसे उसके सुकोमल चरण क्षत क्यों नहीं हुए ? सर्वत्र प्रसरित

लता-जालोंसे वह उलझकर निपतित क्यों नहीं हुई ? यहाँ सदैव ध्यान रहे कि यह अप्राकृत राज्य है। यहाँका प्रत्येक पादप चाहे शाल, तमाल, अश्वत्थ, देवदारु, चन्दन, कदम्ब दृष्टिगोचर भले ही होता हो, है सब स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन ही। यहाँकी भूमि चाहे कितनी ही कठोर, कँकरीली ऊबड़-खाबड़ हो, है वह चिन्मय नन्दनन्दनके स्वरूपभूत धामके चिन्मय तत्वकी परिणति ही। यहाँकी लताएँ, चाहे वे कितनी ही कण्टकाकीर्ण प्रतीत होती हों, अपने चतुर्दिक् प्रसारसे वे भले ही सम्पूर्ण भूमिको ही अपने जञ्जालमें आवृत किये हों, हैं वे स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी स्वरूपाशक्तिकी परिणति ही। अतः जड़ वस्तुकी तरह इनकी स्थिति सर्वथा नहीं माननी चाहिये।

जड़ वस्तुमें जिस प्रकारसे रूपे, रङ्ग, आकार, प्रकार, स्थिति, गुण, चेष्टा, भाव आदिकी इयत्ता होती है, इस अप्राकृत चिन्मय धामके वृक्ष, लता, कङ्कर, पत्थरोंमें इस प्रकारकी इयत्ता सर्वथा नहीं है। ये सब तो प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिका निरन्तर अनुसरण करते हैं। प्रिया-प्रियतमकी जब-जैसी लीलाका प्रकाश होता है, उसके लिये जो-जैसी बाधा किंवा सुविधा चाहिये, उसी रूपमें उसका प्रकाश इनमें हो जाता है। प्रिया-प्रियतमके परस्पर रस-विस्तार एवं प्रेमके विस्तारके लिये ये अनेकों बार कभी अपना विस्तार कर लेते हैं, कभी सङ्कोच कर लेते हैं, कभी पूरा ही रूप-परिवर्त्तन कर लेते हैं, कभी अपने अस्तित्वको अदर्शित कर बैठते हैं। इस प्रकार इनसे स्वभावतः अपने आप ही अतिशय चमत्कृत कर देनेवाली घटनाएँ घटित होती रहती हैं।

उदाहरणस्वरूप जैसा कि पू.गुरुदेवने इन छन्दोंमें उल्लेख किया है – राजनन्दिनी राधाकिशोरीको पूर्वके शिलाखण्डपर चढ़नेसे जब उस प्रतिमाके प्रथम दर्शन होते हैं, उस क्षण वह प्रतिमा उनसे केवल तीन-चार सौ पदोंकी ही दूरीपर थी। इस दूरीको भी कविने मात्र लीलाप्रकाशके लिये आवश्यक मानकर ही अपने काव्यमें दर्शाया है। किन्तु लीलामें जैसे ही आवश्यकता होती है कि दो-तीन क्षणोंमें ही किशोरीका मिलन उसकी प्राणहारी प्रियतम-प्रतिमासे हो जाय, तो उसी क्षण यह तीन-चार सौ कदमकी दूरी, ठीक उसी समयके अनुरूप अपनेको दो-तीन क्षणोंकी यात्राके योग्य ही सृजन कर लेती है। वह तत्क्षण सङ्कुचित हो जाती है। इसी प्रकार प्रतिमाके प्रथम दर्शनके समय इस तीन-चार सौ पदके स्थानमें भी असंख्य लताओं और वृक्षोंने अवरोध खड़े कर रखे थे – ऐसा वर्णन आता है। किन्तु जैसे ही किशोरी बीहड़ लता-जाल-समावृत वृक्षोंके अवरोधभरे पथपर मिलनाकुलताके चरम विन्दुपर समारूढ़ हुई, नेत्रोंमें अपने प्रेमास्पदको पूरा भरे, अन्य सब भान भुलाकर दौड़ पड़ती है, उसी क्षण उस तीन-चार सौ पदकी दूरीकी भूमिको अवरुद्ध कर देनेवाले सभी वृक्ष और लता-जञ्जाल अपने अस्तित्वको ही उसके लिये लुप्त कर लेते हैं। यहाँ इन सघन वृक्षोंके अस्तित्वका ही अदर्शन अथवा इनकी सत्ताका ही न रहना प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी किसी ऐश्वर्यमयी चमत्कारशक्तिका परिणाम नहीं मानना चाहिये। लीलाजगत्में गोपियोंके प्रियतम श्रीकृष्ण यदि भगवान् होकर ऐसे ऐश्वर्य-चमत्कार करने लगेंगे तब तो वे गोपियोंके अनाविल प्रियतम नहीं रहकर भगवान् एवं देवता हो जावेंगे। फिर तो लीलाका माधुर्य ही जाता रहेगा। फिर तो अनाविल लीला-रस-पानका एवं रसदानका उनका उद्देश्य ही अपूर्ण रह जायगा। इसीलिये चमत्कारकी तनिक भी गन्ध नहीं देकर ही, किसी अस्वाभाविकताका किञ्चित् भी प्रकाश न करके अचिन्त्य लीलाशक्तिकी प्रेरणा पाकर भूमिगत वृक्षों एवं लताओंके अवरोध एक क्षणमें ही – ज्योंही श्रीराधाकिशोरी सबकुछ भूलकर प्रियतम-स्मृतिमें अतिशय तल्लीन हुई दौड़ पड़ती हैं, यात्राके योग्य ही रूप धारण कर लेते हैं। उनका स्वतः स्वाभाविक ही बिना किसी प्रयास एवं सङ्कल्पके राधाकिशोरीके अनुकूल वैसा ही रूप बन जाता है। न तो इस बातका भान स्वयं किशोरीरानीको ही हो पाता है कि सारे अवरोध चमत्कारवत् विलीन होगये, न स्वयं उस भूमिको ही यह भान होता है कि उसने अपना रूप सङ्कुचित कर लिया एवं उसमें अवरोध बने वृक्ष एवं लता-जाल विलीन होकर सपाट रास्ता बन गये। यहाँ तो यह वन-भूमि स्वयं सच्चिन्मयी है, वह किशोरीकी प्रीतिलीलाके इस पूर्वानुराग-प्रकरणकी लीलाका रसपान करनेमें दत्तचित्त है। यहाँ उसको यही आवेश है कि मैं सङ्कुचित ही हूँ और सब पथ-अवरोधोंसे शून्य

हूँ। लीलाका अङ्ग बनी भूमि प्रिया श्रीराधाकिशोरीके अपने प्रियतमसे मिलनसुखकी परिपुष्टिके लिये जहाँ सीधी-सपाट राहवाली बन जाती है, वहीं वह वियोग-रसको परम आस्वाद्य बनानेके लिये लता-जालमयी , वृक्षोंके अवरोधोंसे युक्त भी हो जाती है। उसमें ऐसे होनेकी प्रेरणा एवं सङ्कल्पकी स्फुरणा या तो लीला-महाशक्ति द्वारा स्वतः हो जाती है, अन्यथा वह जहाँ जिस रस-पानमें निमग्न है, डूबी है, उस रसकी तरङ्गें ही उसे वैसा करनेके लिये बाध्य कर देती हैं। रसोर्मियाँ उसे वैसे ही प्रवाहमें बहा ले जाती हैं, जहाँ उसका स्वतः स्वरूप ही वैसा हो उठता है।

अवश्य ही इन बातोंकी ठीक-ठीक समझ उसे ही होती है, जिसे प्रियतम श्रीकृष्णकी कृपा भीतर-बाहरसे अत्यन्त परिशुद्ध बना देती है; जो भगवत्कृपाकी अथाह मन्दाकिनीमें अवगाहनकर अपने नेत्रोंका पूरा मैल धो डालता है; जो श्रीकृष्णचन्द्रके नख-चन्द्रकी ज्योतिमें समग्र वस्तुतत्वको देखता है, एवं जितना देखता है, अनुभव करता है, उसे भी वाणी द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर पाता। प्राकृत धरातलपर अप्राकृतको ठीक-ठीक क्या, किसी अंशमें भी उतार पाना प्राकृत शक्तिके लिये तो असंभव ही है। प्राकृत मन-वाणीके द्वारा तो यह संभव है ही नहीं। अनन्तैश्वर्यनिकेतन, अनन्तशक्ति, सर्वभवनसमर्थ श्रीकृष्णचन्द्र चाहें तो सबकुछ भले ही संभव कर सकते हैं।

छू गये मृदुल पद जाते ही उसके अजान में ही, प्रियतम !
फूलों के सुरभित गजरे से, जो पड़ा सामने था, प्रियतम !
यों जान-बूझकर ही जैसे रख दिया किसीने हो, प्रियतम !
सुन्दर सरोज के पत्तेपर, बस, अभी सजा करके, प्रियतम ।। ३१६ ।।

उस वेदीपर - सर्वथा सामने ही – सुरभित पुष्पोंसे निर्मित एक गजरा पड़ा था। किशोरीके मृदुल पग उससे अनजानमें ही छू गये। ऐसा लगता था, जैसे किसीने जान-बूझकर एक अत्यन्त सुन्दर सरोजके पत्तेपर सजाकर उसे पथके बीचमें रख दिया हो।।३१६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अरे, देखो, देखो तो सही, क्या स्थिति हो गयी है, बाला राधाकिशोरीकी। सर्वथा विस्मृत कर गयी वह अपनी देहको, मनकी मनन वृत्तिको। सखी, स्वजन-परिजन सभीसे पूर्णतया निर्मुक्त हुई, इनसे सम्पूर्णतया एकाकी हुई वह बाला किशोरी अपने प्रियतमके सान्निध्यमें आ पहुँची है। उस वेदीपर – सर्वथा सम्मुख ही लीला-महाशक्ति योगमाया ब्रह्मविद्या स्वयं ही एक गजरा बनकर उसके मृदुलतम चरणोंका सर्वप्रथम संस्पर्श करती है। किशोरीके चरणोंका संस्पर्श जैसे ही उस गजरेसे होता है, उसका पूर्णतया प्रिय-स्मृतिमें तल्लीन मन जो अबतक प्रेम-जड़िमासे ग्रस्त एवं स्पन्दनशून्य-सा हो रहा था, स्पन्दित हो उठता है। अन्य वहाँ था ही कौन जो सुन्दर सरोजके पत्तेपर तत्क्षण ही सजाकर उस पथके मध्य जहाँसे किशोरी बालाको अपने प्रियतमके पार्श्वमें पहुँचना है, सुरभित पुष्पोंका गजरा रखदे। बाला किशोरीके ये चरण ही तो परमाराध्य हैं, साक्षात् भगवती योगमाया ब्रह्मविद्या जिन्हें संपूजित करनेके लिये कल्पोंसे तपस्यारत थीं। आज उन्हें यथायोग्य सेवा करनेका सुअवसर मिल जाता है और वे ही यह वनमाला (गजरा) बनकर बाला किशोरीके चरणनखोंका प्रथम संस्पर्श पाकर कृतकृत्य होती हैं।

प्रियतम-प्रेमोन्मादिनी, पूर्वरागके प्रेमपथपर प्रथम सीढ़ीमें चढ़नेका उपक्रम करती, अपने प्रियतमकी प्रेम-प्रतिमाको अपना सर्वस्व समर्पणकर उठनेको समुत्सुका बाला किशोरीकी चरण-नख-ज्योतिसे कोई अपनेको संस्पर्शित कराले, भले ही फूलोंके गजरेके रूपमें ही सही, किसीके लिये यह सौभाग्य निर्धारित मात्र हो जाय, इससे समुत्तर उसके लिये कृतकृत्यताका अवसर ही क्या हो सकता है ? ब्रजेन्द्रनन्दन प्रियतम प्राणवल्लभकी कृपाशक्ति शत-सहस्र युग-समूहोंके

अनन्तर ही सही, ऐसे सुदुर्लभ संयोगका विधान मात्र करदे तो इससे अधिक किसीके भी अस्तित्वकी सार्थकता ही क्या हो सकती है ? ऐसी है श्रीप्रिया नृपदुहिता राधाकिशोरीके चरणोंकी महिमा।

इतने समीप से प्रतिमा की शोभा निहारते ही, प्रियतम !
भावों की एक उठी आँधी, उड़ गया चित्त उसका, प्रियतम !
उसके प्रवाह में पीछे अब सम्भव न लौटना था, प्रियतम !
जीवन का मानचित्र बदला दस-बारह पल में ही, प्रियतम ॥३१७॥

किशोरी इतने निकटसे प्रतिमाकी शोभाको आज प्रथम वार निहार सकी। दर्शन होते ही भावोंकी एक आँधी-सी चल पड़ी, और समीरके उस उद्वेलनमें मानो उसका चित्त उड़ गया। अब वातके उस चञ्चल प्रवाहमें किशोरीके लिये पीछे लौटना सम्भव नहीं रह गया। और तो क्या, जीवनका सम्पूर्ण मानचित्र ही दस-बारह पलोंमें परियर्तित जो हो चुका था।।३१७।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अन्ततः किशोरी बालाके प्रेम-वैकल्यका अन्त आ ही जाता है। यद्यपि प्रियतमकी मधुस्यन्दिनी गिरा उसके कर्णपुटोंको पूर्वतः ही रससिक्त करने लगी थी, किन्तु उसने अपने प्रियतमको इतनी एकान्तावस्थामें अतिशय निकटतासे प्रथम बार आज ही देखा था। अपरिसीम, गम्भीर, उच्छलित आनन्दोदधिकी अमित, अमाप, उत्ताल तरङ्गोंमें डूबने-उतराने लगती है वह। उसकी अमिलनकी सम्पूर्ण वेदना-ज्वाला एक बार समाप्त हो जाती है।

अपने प्रियतमके प्रेम-भावोंकी एक आँधी किशोरी बालाके चित्तमें उठ आती है और वह उसमें इतने वेगसे बह चलती है कि कुल-मर्यादाजनित सङ्कोच एवं लज्जा, कुछ भी उसका साथ नहीं दे पातीं। उसका चित्त उड़कर दूर-सुदूर चला जाता है । लोक-नीतिका, कुल-परम्पराके सम्पूर्ण बन्धनोंका एवं अपनी गतिविधिका भी उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। किशोरीका अन्तर्देश इस श्याम-प्रेम-प्रवाहिणी आँधीमें ऐसा बह उठता है कि उसे पुनः अपने कुल-परिजनोंका मर्यादा-बन्धनमें बाँधे रखना उसके लिये संभव ही नहीं रहता। वह विस्मृत कर जाती है अपने आपको, सम्पूर्ण विश्वको ही, तब मर्यादा, कुल-परम्परा, धर्माचरण एवं धर्मकी कौन सँभाल करे। उस प्रेम-प्रवाहिनी तीव्र वेगवती आँधीमें वे टिक ही कैसे सकते हैं, अपने स्वरूपकी रक्षा ही कैसे कर सकते हैं। अब तो वह अपने प्रियतमसे सर्वथा, सर्वांशमें पूरा तादात्म्य लाभ कर चुकी है। कहाँ रहा किञ्चित्-सा भी अलगाव उसके एवं उसके प्रियतमके मध्य ? दस-बारह पलमें ही उसके सम्पूर्ण जीवनका मानचित्र ही बदल जाता है। उसमें अपनी स्वयंकी अहंताका स्पन्दन ही जैसे सदैव-सदैवके लिये विलुप्त हो जाता है, अपने प्रियतमके हाथोंकी कठपुतलीवत् उसका जीवन हो जाता है। अपना सर्वस्वत्याग उसके जीवनका स्वाभाविक रूप हो उठता है। ज्ञान-मञ्जूषाके कपाट जैसे उसकी बुद्धिके लिये सदैव-सदैवके लिये बन्द कर दिये जाते हैं। उसका चित्त अपने प्रियतमके प्रति ममताकी ऐसी घन ठोस चट्टान बन जाता है कि उसमें परत्वका संश्लेष भी प्रवेश नहीं पा सकता। वह क्या करे, क्या नहीं करे – उसकी बुद्धि भला क्या निर्णय करे ? उसके देह, इन्द्रिय, प्राण, मन एवं बुद्धिका तो तथाकथित अस्तित्व ही उस झंझावातमें बह जाता है। उसमें यदि कहीं कोई सत्ता, संविद् उसे दृष्टिगोचर होता है, तो वह भी मात्र उस प्रतिमाका जो मधुरिमाका आकर बनी, उसके सम्पूर्ण कलेवरको झंकृत कर रही होती है। वह नीलकलेवरा प्रतिमा उसके नेत्रोंके सम्मुख सौन्दर्य-समुद्र बनी लहरा रही है।

ओह ! इन्द्र-नीलद्युति अङ्ग-संस्थानोंपर धृत पीत-परिधान, ललित त्रिभङ्ग गात्र, किशोरी अब उस अपने प्राणसार-सर्वस्वको छोड़कर, पीछे मुड़ जाय, अथवा पराङ्मुख हो सके, यह भला कैसे संभव हो पावे।

भोलापन-पूरित शिशुता के अन्तर्हित भाव हुए, प्रियतम!
आये प्राणों के विनिमय के उद्दीपन वाले वे, प्रियतम!
बदली चितवन की रीति, रंग बदला वारिज-मुख का, प्रियतम!
अङ्गों की संचालन-शैली पूरी बदल गयी, प्रियतम ॥३१८॥

भोलेपनसे परिपूर्ण शिशुताका भाव जो राजनन्दिनीमें था, वह क्षण बीतते-न-बीतते अन्तर्हित हो गया। उसके स्थानपर, प्राणोंके विनिमयको उद्दीप्त करने वाले भाव जाग्रत हो उठे। किशोरीके चितवनकी रीति बदल गयी; उसके वारिज-मुखका रंग भी बदल गया; वह अङ्गोंकी संचालन-शैली भी पूरी-की-पूरी परिवर्तित हो गयी।।३१८।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

अबतक तो राजनन्दिनी राधाकिशोरीमें भोलेपनसे परिपूर्ण शिशुताके भाव भरे थे। ऐसा तो अनेक बार हो चुका था कि यशोदा मैयाके साथ उनका पुत्र यह नीलमणि बृषभानुपुर आया है। मैयाकी अनुमति पाकर घण्टों राजनन्दिनी राधा इसके साथ बाल-चपल क्रीड़ा कर चुकी है, खेल चुकी है। अनेकों बार राजनन्दिनी स्वयं भी सखियोंके साथ नन्दगेहिनीके घर खेलने गयी है। किन्तु उन दिनों वह मिलन, वे खेल, वे चपल क्रीड़ाएँ सब सङ्कोच-शून्य मनसे घटित हो जाती थीं। राधा नन्दनन्दनके साथ निस्सङ्कोच खेलने लगती थी, और नन्दनन्दन भी इन सब सखियोंके साथ बिना हिचक खेलते थे।

उन दिनों भी ब्रजेन्द्रनन्दनकी शोभा भानुनन्दिनी राधाको सुन्दर लगती थी। उस समय भी बालकृष्णके कपोलोंपर, ललाटके कुछ अंशोंपर घुँघराली अलकें झूलती रहती थीं, बिखरे धूलिकण उड़-उड़कर उन अलकोंपर पड़े होते थे। उन दिनों भी नन्दतनयके कुन्तलमण्डित मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट सुशोभित होता और उसके केशोंमें वन्यप्रसून ग्रथित होते। उन दिनों भी यशोदातनयके नेत्रोंकी मनोहर चितवन एवं अधरोंपर व्यक्त हुए मृदुस्मितकी शोभा देखते ही बनती थी। किन्तु तब नृपनन्दिनीको नन्दतनयको देखनेमें, उससे मिलनेमें, उसके संग–संग खेलनेमें, उसके हाथसे हाथ मिलाकर नृत्य करनेमें कहीं कोई हिचक-सङ्कोच कदापि नहीं होता था।

किन्तु आज सहसा यह क्या हुआ ? यह प्रतिमा भी तो उसी नन्दतनूजकी ही थी, फिर आज उसके सम्मुख आते ही, उसे नखसे शिखातक निहारते ही न जाने क्यों एवं कैसे किशोरीका वह बाल्यावेशजन्य भोलापन विदा हो जाता है, और उसके स्थानपर आ जाती है कैशोर्यकी सघन लज्जा, एक विलक्षण माधुर्यभरा सङ्कोच एवं अपूर्व सघन ममता। आज किशोरीको ऐसा न जाने क्यों अनुभव हो रहा है। उसके प्राणोंमें एक अपूर्व वेदना हो रही है, किशोरीके प्राण उसके वशमें ही जैसे नहीं हैं। राशि-राशि प्रीतिभावोंकी मधु-धारामें वे प्रवाहित हो रहे हैं एवं किशोरीके रोकनेपर भी नहीं रुक रहे हैं। वह उन्हें ज्यों-ज्यों रोकती है, वे और उमड़ उठते हैं, अपना सर्वस्व उस नील प्रतिमाके चरणोंमें समर्पित कर देनेको। इस क्षण यदि कोई व्यवधान पैदा कर रही है, तो वह है नारीसुलभ लज्जा। इसीलिये किशोरी मात्र समर्पित कर रही है – अपने प्रियतमको हास्य एवं विनयसे पूरित अपनी बंकिम चितवनकी स्निग्ध भेंट। ब्रजेन्दनन्दनकी इस नीलमणि-निर्मित प्रतिमाको देखते ही कितनी भाव-विह्वल हो उठी हैं श्रीराधाकिशोरी, इसे अचिन्त्य सौभाग्यवश कोई भाग्यवान् राधा-कृपापात्र अनुभव भले ही कर ले, वाग्वादिनी तो इसका स्वल्प-सा भी चित्रण करनेमें समर्थ नहीं है। किशोरीके मुखपर जो भाव-विह्वलताकी तरङ्गें उठ रही हैं, यद्यपि नारीसुलभ लज्जा उन्हें नियंत्रित करनेकी भरसक चेष्टा कर रही है, फिर भी वह लज्जा मात्र दो-तीन निमेष ही उसे रोक पाती है। दो-तीन निमेषका काल व्यतीत होते-न-होते किशोरीके मुखको मिलनकी नवीन उमङ्गकी लहरें आत्मसात् कर लेती हैं और किशोरीका कुन्दनवर्णी मुख रक्तपद्मके समान लाल हो उठता है। किशोरीके हृदयमें उठते भाव उसके बिम्ब-विडम्बी अधरोंकी अरुणिम शोभाको

अनन्त गुनी अभिवर्धित कर देते हैं। वे अधर अपने हृदयस्थ भावोंके उफानके कारण कुछ अस्फुट शब्दोच्चारण करना चाह रहे हैं, परन्तु लज्जा उन्हें मौन रहनेको विवश जो कर दे रही है, अस्तु इस संघर्षके फलस्वरूप वे मात्र बुदबुदा रहे हैं। आओ, अब किशोरीके नेत्रोंकी दशा देखें। अपलक निरवधि अपने प्रियतमको निहारनेकी उद्दाम लालसा किशोरीके नेत्रोंको विस्फारित अवश्य करती है, परन्तु अपने प्रियतमको अतिशय निकट देख लज्जा इन नेत्रोंको मुँद जानेके लिये विवश कर देती है। इस संघर्षमें किशोरीके नेत्र अधमुँदे ही रह जाते हैं। इसी प्रकार किशोरीके समस्त अङ्गोंकी ही सञ्चालन-शैली बदल जाती है। देखो, किशोरीका कुन्दनद्युति पीत कलेवर रोमाञ्चित हो उठा है। रह-रहकर रोमाञ्चकी लहरें उठ रही हैं, जिससे उसके अङ्गोंमें कम्पोदय हो रहा है। इससे सुस्पष्ट अनुभव हो रहा है कि उसके हृदयकी रसधारा गंभीर, गंभीरतर, गंभीरतम हो रही है।

नृपपुत्री के निहारने पर आधे मीलित दृग से, प्रियतम !
प्रतिमा सजीव-सी ऐसी भी रह-रहकर बन जाती, प्रियतम !
मानो हो अतुल नील सुन्दर कोई किशोर वय का, प्रियतम !
प्राणों को रोके सत्य अहो! ठग रहा उसी को हो, प्रियतम ।।३१९।।

राजनन्दिनीकी दृष्टि ज्योंही प्रतिमाकी ओर जाती – प्रतीत होता, मानो प्रतिमा अर्द्धनिमीलित नेत्रोंसे उसकी ओर निहारती हुई सजीव-सी हो उठी हो ! रह-रहकर उसे बार-बार ऐसा ही अनुभव होने लगा, मानो सचमुच अनुपम नीलसुन्दर एक किशोर वयका बालक अपनी साँसोंको रोककर किशोरीको ही ठग रहा हो ! ।।३१९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यह किशोरी राधाके अप्रतिम प्रेमका ही एक विलक्षण प्रभाव है कि उसके सामने भगवान् अपनेको किसी भी प्रकार अप्रकट नहीं रख सकते। यहाँ भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन हैं नहीं, मात्र उनकी नीलमणि-निर्मित स्थापित मूर्त्ति है। भले ही इसकी ऋषि भागुरि जैसे महात्माजन द्वारा अन्तर्जगत्के निर्देशसे स्थापना की गयी है, किन्तु है तो यह मूर्त्ति ही। किन्तु किशोरी राधाका भाव इतना प्रबल एवं सर्वातिशायी है कि जैसे सूर्यके उदय होनेपर तारकावलियोंका पता ही नहीं लगता, वैसे ही किशोरी राधाकी प्रेममयी चैतन्यभावनाकी प्रखरताके कारण जड़मूर्त्तिका जड़त्व अस्तमान हो रहा है।

नृपदुहिता किशोरी पूर्ण विकसित नेत्रोंसे तो कौमार्य-सुलभ लज्जावश उस मूर्त्तिको निहार ही नहीं पा रही है। मात्र अर्धनिमीलित नेत्रोंसे ही उस मूर्त्तिके अर्धाङ्गपर दृष्टि डालती है। मूर्त्तिकी ऐसी दशा हो रही है कि वह रह-रहकर सजीव सी बन जा रही है। सत्य ही तो है, प्रेम-सुधा-रसकी उत्ताल तरङ्गोंमें डूबने-उतरानेवाला प्राणी जब सम्पूर्ण जड़ मायावी विश्वको ही सच्चिन्मय स्वप्रकट श्रीकृष्ण देखने लगता है, तो मूर्त्तिका जड़त्व उसके सम्मुख भला टिक ही कैसे सकता है। चिन्मय प्रेम जड़ताके अवलम्बनको ही विलुप्त कर देता है। अतः वह प्रतिमा रह-रहकर किशोरीके सम्मुख चेतनताका प्रकाश कर दे इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

किशोरीको उस प्रतिमामें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है – 'अहा ! यह तो नवीन मेघके सदृश नीलाभवर्णका श्यामल-कलेवर किशोर वयका बालक है जो पीत परिधान पहने उसके सम्मुख अपनी मनमोहक छटा बिखेर रहा है। कैशोर विभूषित तनकी कमनीय कान्ति जड़ राज्यकी वस्तु संभव ही नहीं। यह सच्चिन्मय वपु सर्वथा, सर्वांशमें वर्णनातीत सुन्दर है। क्या कहूँ , कैसे कहूँ, मधुरिमाका निर्झर झर रहा है इससे। इसके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे मादक सौरभ चतुर्दिक् प्रसरित हो रहा है। हाँ, यह सत्य है कि इसके नासारंध्रोंसे प्राणोंके सञ्चालन-स्वरूप, श्वास-प्रश्वास नहीं हो रहा है, किन्तु यह इसके जड़ होनेका हेतु कदापि नहीं है। अवश्य ही इसने अपने प्राणोंका सञ्चार मुझे ठगनेके लिये, वञ्चना देनेके लिये ही रोक रखा है।'

क्यों हो विलम्ब, फिर काल कहीं कुछ हेरफेर करदे, प्रियतम !
स्वर्णिम वेला चल देती है पल-आधे पलमें ही, प्रियतम !
ले माल-चली नृपसुता वहाँ निरवधि निमग्न होने, प्रियतम !
प्राणोंकी दो सरिता मिलकर होती है एक जहाँ, प्रियतम ॥ ३२०॥

किशोरी भावोंकी आँधीमें बहने लगी – उड़ चली। वह सोचने लगी – फिर अब विलम्ब क्यों हो ? क्षणोंमें ही कहीं काल कुछ हेरफेर कर दे तो.....? यह नियम है, स्वर्णिम वेला पल-आधे पलमें ही चल देती है ! इस चिन्तनका प्रवाह थमते-न-थमते राजपुत्री पुष्पमालाको अपने कर-सरोजमें उठाकर उस ओर चल पड़ी, जहाँ प्राणोंकी दो सरिताएँ मिलकर एक हो जाती हैं........ एक होकर, महाभाव-समुद्रमें अनन्तकालके लिये निमग्न हो जाती हैं ! अस्तु, ।।३२०।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

किशोरी सोच रही है – 'जब इस शोभा-समुच्चयकी मात्र एक कणिकासे निसर्गके असंख्य कामदेव श्रीसम्पन्न हो रहे हैं, तो मेरे सम्मुख विराजित ये त्रिभङ्गदेव जड़ मूर्त्ति कैसे संभव हैं ?'

'अहा, हा ! जब मेरे प्राणनाथके अरुण सरसिज-लोचन दृश्य-प्रपञ्चकी सम्पूर्ण मायिक सत्ताको ही विलुप्त कर देते हैं; एवं इनके सम्मुख माया-नटीका सम्पूर्ण नाट्य-कौशल ही अस्तित्वविहीन बन जाता है, तो ये मात्र जड़ प्रतिमा भर होने कैसे संभव हैं ?'

'सुन्दर मयूरपिच्छसे मस्तककी कुञ्चित अलकावली विभूषित है। उन्नत चमकते ललाटपर मृगमदमिश्रित चन्दनकी खौर अत्यन्त शोभा पा रही है। शङ्खके समान कमनीय कंठदेशमें मणिमुक्ताका हार सुशोभित है; साथ ही वन्य प्रसून-गुम्फित तुलसीकी माला भी झूल रही है। ओह ! सम्पूर्ण सुषमाका आकर यह मेरा प्रियतम जड़ कैसे है ?'

नृपदुहिता विचारने लगती है – 'फिर मैं विलम्ब क्यों करूँ ? क्षणभङ्गुर कालका क्या भरोसा ? स्वर्णिम सुख-संयोगके अवसर दो-चार क्षणोंमें ही चल देते हैं। मुझे जब यह क्षणार्धके लिये ही सही, अवसर मिला है तो इस संयोग-क्षणका सर्वोत्तम उपयोग क्यों नहीं कर लूँ ? 'प्रियतम' – अहा ! कितना प्रिय शब्द है ! प्रियतम तो कभी चित्तसे बिसारा ही नहीं जा सकता ! ये तो मेरे प्रियतम हैं। फिर मैं इन्हें इसी क्षण अपना सर्वस्व समर्पित कर देती हूँ। दूसरे क्षणकी प्रतीक्षा ही कौन करे ? अब मेरे लिये सम्पूर्ण जगत्का और अपना भी मूल्य ही क्या है ? राज-पाट, धन-दौलत, जीवन-मरण, लोक-परलोक, स्वर्ग-मोक्ष, जन-परिजन, कुल-शील, यश-अपयश – सभीकुछ इसी क्षण इसके प्रेम–प्रवाहमें प्रवाहित हो जावें।'

बस, नृपनन्दिनी बालाने अपने चरणोंसे संस्पर्शित, लीलामहाशक्तिकी परिणतिस्वरूपा वह वनमाला अपने करोंमें उठा ली और प्रगाढ़ एवं गहन समर्पण भावोंमें डूबते-उतराते हुए उस प्रेमदेशकी राहमें चरण बढ़ा दिये, जहाँ दो प्राणोंकी सरिताएँ एक होकर मिलित हो जाती हैं, और फिर उनका प्रवाह उद्दाम वेगसे सब तटोंको पूर्णतया आप्लावित करता उफन चलता है – उस महाभावसिन्धुमें विलीन होने जिसमें सदैव केवल उत्तुङ्ग, उत्तुङ्गतर नीली-पीली दो ऊर्मियाँ ही उमड़ती रहती हैं, जिसमें गहन, गंभीर, अथाह और अमाप अनुराग-ज़ल ही लहराता रहता है, जिसका ओर-छोर अनादिकालसे आजतक तो किसीको मिल नहीं पाया है, जो रस-पीयूषका पावनतम अगाध सिन्धु है ।

चञ्चल हरिणी-सी आँख बड़ी क्षण एक हुई उसकी, प्रियतम !
देखा जब उसने, दर्शक था कोई भी नहीं वहाँ, प्रियतम !
वह सुमनहार मानो प्रतीक जीवन-यौवन, सबका, प्रियतम !
ग्रीवा में प्रतिमा के पहना, चरणों में लुढ़क पड़ी, प्रियतम।।३२१।।

अचानक राधाकिशोरीकी बड़ी-बड़ी आँखें क्षणभरके लिये चञ्चल हो उठीं। जब उसने देखा कि वहाँ कोई अन्य दर्शक नहीं है, तब तत्क्षण उसने सुमन-हारको अपनी अञ्जलिमें ले लिया। मानो वह हार उसके जीवनका-यौवनका, सब-कुछका प्रतीक हो – ऐसी भावनासे भावित हुई किशोरीने अविलम्ब उसको प्रतिमाकी ग्रीवामें डाल दिया और दूसरे ही क्षण वह उसके चरणोंमें लुढक पड़ी।।३२१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अलङ्कारिक एवं भावमयी भाषामें तो ऊपर वर्णन कर दिया गया कि नृपनन्दिनीने लीलामहाशक्तिकी परिणतिस्वरूपा वनमाला अपने करोंमें उठा ली और प्रेमदेशकी ओर अपने चरण अग्रसर कर दिये, किन्तु पाठक चाहेंगे कि उस प्रेमदेशका कुछ विस्तृत चित्र तो उनके सम्मुख आवे। श्रीराधाने जिस प्रेम-प्रदेशकी ओर अपने चरण बढ़ाये, हम सब भी क्या उस प्रेमदेशके पथिक हो सकते हैं ? उस देशमें उसीको प्रवेश मिल सकता है, जो अपनेमें कहीं भी, कभी भी, किसी भी प्रकारकी निजकी कामना नहीं रखे। इस देशमें कामना-गन्धका लेश भी रह नहीं सकता। श्रीराधाने उस पथपर अग्रसर होनेका निश्चय किया है जहाँ स्वतंत्र अहंका कहीं अस्तित्व ही नहीं है। इसीसे उन्हें अपनी पूरी विस्मृति हो चुकी है। उनमें अपने अहंके परिणामकी या अपनी मङ्गलचिन्ताकी लेशात्मक कल्पना भी नहीं है। श्रीराधाने उस प्रेम-पथकी ओर अपने चरण अग्रसर कर दिये हैं, जहाँ उन्हें अपने प्रियतम प्राणनाथसे सर्वथा अविच्छिन्न, सर्वथा संलग्न हो जाना है। चित्तमें प्रियतम प्राणवल्लभके सिवा अन्य किसी विषयकी जब जरा-सी भी चाह नहीं रहे, तभी अपने प्रियतममें पूर्णतया निरत हुआ जा सकता है। जब कोई अपने प्रियतममें अतिशय प्रगाढ़रूपसे निरत हो जाता है तभी वह प्रेममें प्रवेश करता है। उसने अपनी चञ्चल हरिणीके समान कर्णविलम्बी दृष्टिसे अपने चतुर्दिक निहारा तो पाया कि चतुर्दिक् केवल उसके प्रियतमकी नीली प्रतिमा ही अवस्थित है। उस प्रतिमाकी तीनों दिशाओंमें कदम्बके वृक्ष थे और आश्चर्य था कि श्रीराधाको प्रत्येक कदम्बके मूलमें निर्निमेष दृष्टिसे अपनी ओर निहारती वह नीली प्रतिमा ही दृष्टिगोचर हो रही थी। कैसी विलक्षण प्रेम-माधुरीका प्रकाश वह नीली प्रतिमा कर रही थी, इसका साक्षी तो राधाका हृदय ही था। नृपनन्दिनीको तो आकाश, पृथ्वी, वायु, एवं अन्तरिक्षमें सर्वत्र वही नीली प्रतिमा ही भरी दृष्टिगोचर हो रही थी, जिसके नेत्र उसके मुखको कमल समझकर भ्रमरवत् उसका मकरन्दपान करनेको आतुरताका प्रकाश कर रहे थे। राधाके प्रियतम अपनी प्रिया के प्रति विलक्षण प्रेमका प्रकाश कर रहे थे। जब नृपनन्दिनीने सर्वत्र दृष्टि डालकर यह निश्चय कर लिया कि यहाँ मात्र उसके प्रियतम और केवल उसीकी सत्ता है, अन्य कोई नहीं है, बस, तत्क्षण ही उसने लीलामहाशक्तिकी परिणति उस सुमनहारको अपनी अञ्जलिमें उठा लिया और अविलम्ब ही उसे उस प्रतिमाकी ग्रीवामें डाल दिया। अगले ही क्षण नृपनन्दिनी उस प्रतिमाके चरणोंमें लुढ़क गयी।

वह चली अनर्गल अब धारा नयनों से, छू नखको, प्रियतम !
उस इन्द्रनील-विरचित शिशु के, आकुल थी हृदय दुहिता, प्रियतम !
'कैसे मेरे ये प्राण अभी इनमें प्रविष्ट होवें, ' प्रियतम !
'फिर काल अन्त-विरहित तक मैं केवल देखूँ मुखको' प्रियतम।।३२२।।

............किशोरीके नेत्रोंसे अनर्गल अश्रुधारा बह चली। उन बूँदोंसे इन्द्रनीलमणिसे विरचित प्रतिमाके पद-नखोंका अभिषेक होने लगा। अब नृपदुहिता व्याकुल थी केवल इस बातके लिये — अरे हाय ! किस उपायसे मेरे प्राण अभी, इनमें ही प्रविष्ट हो जायँ ! और फिर अनन्तकालतक मैं इनको, केवल इनको ही देखती रह जाऊँ ! ।।३२२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

राधाके पास अब बचा ही क्या था। लीलामहाशक्ति योगमाया ही तो विश्व-सृष्टिमें तन, मन, प्राण, धन, जन, कुल, गृह, शील, लोक, परलोक, मान, धर्म, गति, मति, जाति, वैभव, सिद्धि, असिद्धिके रूपमें सबको जकड़े हैं। वे ही बन्धनरूप द्वेष हैं और मुक्तिरूप राग हैं। नृपनन्दिनीने जब उस योगमाया महाशक्तिको ही अपने प्रियतमके कण्ठमें वरमालाके रूपमें अर्पित कर दिया, तब उसे अकिञ्चन तो होना ही था। नृपनन्दिनीकी समग्र चिति अपने प्रियतमके गलेमें हार बन ही गयी थी, शेष रही उसकी सत्ता— सो उस सत्तामें भी उसे केवल अपने प्राण-प्रियतम भरे दृष्टिगोचर हो रहे थे।

नृपनन्दिनी विचार करने लगी — 'यह प्रतिमा मेरी प्रियतम है, और मैं प्रियतमा हूँ — यह कहना भी नहीं बनता। क्योंकि मेरी इस देहके अणु-अणुमें तो मुझे यह प्रतिमा-ही-प्रतिमा झलमलाती दृष्टिगोचर हो रही है। मेरा तो रोम-रोम माँग कर रहा है — 'यह प्रतिमा 'तू ' नहीं रहे और इससे पृथक् मैं राधा 'मैं' नहीं रहूँ।' जो कुछ मैं एवं मेरा है, वह सभी तो राधाने वरमालाके रूपमें अपने प्रियतमको समर्पित कर दिया था। जीवन, यौवन — सभीकी प्रतीक ही तो वह वरमाला थी। जब अपना सर्वस्व ही नृपनन्दिनी अपने प्रियतमको समर्पित कर चुकी तो अब उसके पास मात्र प्रेमाश्रुधारा ही बहानेको बची थी, सो अनवरत वह प्रेमाश्रुधारा उसके नेत्रोंसे बहने लगी। बाला किशोरीमें अपने प्रियतमको अपना सर्वस्व देनेकी अदम्य लालसा उफन रही थी, और उस अकिञ्चनाके पास अब देनेको कुछ बचा ही नहीं था, यही उसके आँसू बहानेका हेतु था।

यहाँ ध्यान रहे — हम जब किसीके लिये रोते हैं, किसीके चरणोंमें हमारे एकाध अश्रु बहते हैं, तो अश्रुओंके उस प्रवाहमें हमारा अपना दैन्य-प्रदर्शन, हमारा अपना अभाव-प्रदर्शन ही कारण होता है। वस्तुतः हमारे पास अभाव होता नहीं, किन्तु हम जिसके सम्मुख रोते हैं, उसके सम्मुख अपना अभाव प्रदर्शन करना चाहते हैं। हम उसे अपना एक बाल भर भी समर्पण करनेको तत्पर नहीं होते। हम मात्र लेनेके लिये रोते हैं। इसी प्रकार हम जिसके सम्मुख रोते हैं, उसे अपना सर्वस्व मानना तो दूर, अपना निज भी नहीं मानते। हम जिसके सम्मुख रोते हैं वह सदैव हमसे पराया ही होता है। किन्तु यहाँ भगवती राधाका रुदन अपने किसी अभावकी पूर्त्तिके लिये है ही नहीं। राधा लेनेके लिये नहीं, देनेके लिये अश्रु बहा रही है। वह अपना सबकुछ अपने प्रियतमको देकर, और भी अधिक देनेके लिये अपनेको रिक्त, असमर्थ, अभावग्रस्त मानकर अश्रु बहा रही है। इसीलिये ये कामनाके, अभावके, दैन्यके, दारिद्र्यके आँसू नहीं हैं; ये प्रेमके अश्रु हैं, जो अपने प्रियतमको अपना सबकुछ समझते हुए, उन्हींके प्रेममें उन्हींके लिये नृपनन्दिनीके नेत्रोंसे निर्झरकी तरह निर्गत हो रहे हैं। वस्तुतः सत्य तो यह है कि ये आँसू नृपनन्दिनी किशोरी राधाके हैं ही नहीं। ये तो ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके प्रेमाश्रु हैं, जिन्हें वे राधाके सर्वस्व-समर्पणकी गरिमाको देखकर उसके अन्तःकरणमें विराजित हुए, साक्षीकी अतिशय कृतज्ञताका प्रकाश करनेको स्वयं बहा रहे हैं। अवश्य ही श्रीकृष्ण अलक्षित रूपसे श्रीराधाके नेत्रोंके माध्यमसे ही अपने प्रेमका अश्रुरूपमें स्फोट कर रहे हैं, परन्तु सत्य, सत्य ये अश्रु उन्हीं श्रीकृष्णके ही बह रहे हैं। ये अश्रु निकले हैं अवश्य राधाके नेत्रोंसे किन्तु ये भिगो रहे हैं प्रतिमाके चरणनखोंको। और आश्चर्य यह है कि उन नखमणियोंको परिस्नात कराते हुए इन आँसुओंका एक कण भी बाहर नहीं प्रवाहित हो रहा; ये आँसू इन्द्रनीलमणिसे विरचित किशोरकी नखमणियोंकी ज्योत्स्नामें शुष्क भी होते जा रहे हैं।

वस्तुतः नृपनन्दिनी राधाके नेत्रोंसे प्रवाहित ये आँसू उनकी नित्यवर्धनशील उत्कण्ठाके प्रतीक हैं। नृपनन्दिनीके हृदयमें इस समय अपने प्रियतमसे मिलनजनित सुख और फिर अनन्तकालीन विरहकी संभावनारूप दुःख – दोनोंका एक साथ अतुलनीय रूपमें उदय हो रहा है। श्रीराधारानीकी यह उत्कण्ठा समर्पित हो रही है इन्द्रनीलमणि-प्रतिमाकी पद-नख-मणियोंमें ही। लज्जा उन्हें इस प्रतिमाके मुख-सौरभका पान करनेके लिये तो नयन उन्नत ही नहीं करने दे रही। अतः प्रतिमाकी ये नख-मणियाँ ही इस समय प्रियतमकी माधुर्यराशिकी सर्वतोभावसे प्रतिनिधि बनीं उसे श्रीराधाके सम्मुख प्रकाशित कर रही हैं। नृपनन्दिनी किशोरीकी दुर्लभ प्रेमजन्य उत्कण्ठा जो अजस्र अश्रुकणोंके रूपमें उनके नेत्रोंसे प्रवाहित हो रही है, भिगो रही है प्रतिमाकी नखमणियोंको, किन्तु वे प्रेमजन्य अश्रु इन नखमणियोंके माधुर्यको अनवरत उज्ज्वलतर करते हुए उनमें ही पर्यवसित हो जा रहे हैं। नखमणियोंका माधुर्य नृपनन्दिनी किशोरीके प्रेमजन्य अश्रुओंको पूरा-का-पूरा आत्मलीन कर ले रहा है, छलककर उसका एक कण भी बाहर नहीं आने दे रहा।

इन्द्रनीलमणिकी प्रतिमाको स्थापित हुए तो अनेक दिवस हो गये हैं। महर्षि भागुरि आदि अनेकों लोगोंने इसके दर्शन भी किये हैं। उन्होंने मंत्रोपचार द्वारा इसे यहाँ सुस्थापित भी किया है। किन्तु इस प्रतिमामेंसे ऐसा विलक्षण माधुर्यका प्रवाह अबतक किसी ऋषि-महर्षिके सम्मुख नहीं प्रवाहित हुआ कि उस प्रवाहमें उनका तन, मन, जीवन, यौवन, कुल, शील, धर्म, लोक-परलोक – सबकुछ बह जावे। यह अप्रतिम माधुर्य तो इस प्रतिमामेंसे मात्र नृपनन्दिनी श्रीराधाके सम्मुख ही व्यक्त हुआ है। यह प्रतिमा स्वयंमें अलौकिक नहीं है, ऐसा तो कहना नहीं बनता, किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि इसके नित्य नव-नवायमान चमत्कारी माधुर्यके प्रादुर्भावकी हेतु है नृपदुहिता श्रीराधाकी असमोर्ध्व प्रीति ही। वस्तुतः यही सत्य है कि नृपनन्दिनी श्रीराधाके दुर्लभ प्रेमने इस इन्द्रनीलमणिकी प्रतिमाकी अप्रतिम माधुर्यराशिको सर्वतोभावसे केवल ग्रहण ही नहीं किया है, अपितु उसपर अपना सर्वस्व समर्पणकर उसे जीवन्त कर दिया है, उसमें प्राण प्रतिष्ठित कर दिये हैं। इस इन्द्रनीलमणि प्रतिमाका जीवन्त सान्निध्य श्रीराधाप्रेमको अथाह वर्धनशील कर रहा है और इस असीम प्रेमवर्धनशीलताके कारण ही श्रीराधाके प्रेमाश्रु अजस्र रूपमें बहते हुए इस प्रतिमाकी चरण-नखमणियोंको भिगो रहे हैं। श्रीराधाके प्रेम-सान्निध्यसे इन नखमणियोंमें मधुरिमाकी ऐसी बाढ़ आ रही है कि वह मधुरिमा इन प्रेमाश्रुओंका पूरे-का-पूरा भोग कर ले रही है और इस प्रेमभोगसे और भी अधिक नव-नवायमान मधुर एवं चिन्मय होकर श्रीराधाकी उत्कण्ठाका अभिवर्धन कर दे रही है। इसीलिये श्रीराधाकी प्रेमोत्कण्ठाजन्य अश्रुओंका प्रवाह इन नखमणियोंको भिगोता ही है, किन्तु इन नखमणियोंकी अञ्जलिमें समाकर ही रह जाता है, उच्छलित होकर उससे बाहर छलक नहीं पाता। यह शाश्वत रहस्य है कि राधाकी अनन्त उत्कण्ठा प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनके माधुर्यकी थाह नहीं पा सकती; अतः निरन्तर बढ़ती ही जाती है और ब्रजेन्द्रनन्दनका माधुर्य राधाकी उत्कण्ठाको तृप्त नहीं कर पाता, अतः वह भी बढ़ता ही जाता है।

ओह ! कैसी असीम उत्कण्ठा है नृपनन्दिनी राधाकिशोरीकी कि वे अपने प्राणोंको इसी क्षण इन नखमणियोंकी ज्योतिमें एकात्म कर देना चाहती हैं, इसी क्षण अपनेको इन नखमणियोंमें पूर्णतया मिला देना चाहती हैं, जिससे क्षणके कोटिशः हिस्सेके कालके लिये भी फिर कोई उन्हें अपने प्रियतमसे दूर– विलग नहीं कर पावे; किन्तु साथ-ही-साथ कैसा अपूर्व माधुर्य है उनके प्रियतमका जो निज प्रियाकी इस उत्कण्ठासे भी असीम गुना अभिवृद्ध है एवं जिसके कारण उनकी प्रिया राधा अपनेको चरणनखोंमें विलीन– एकात्म करनेकी इच्छा रखते हुए भी अपने प्रियतमसे किञ्चित् पृथक् भी रहनेकी इच्छा एक ही साथ कर रही है। मिलित होकर भी किञ्चित् पृथक् रहनेकी यह इच्छा प्रियामें इसी कारणसे है कि वे अपने प्रियतमके असमोर्ध्व सौन्दर्य-माधुर्यभरे मुखको अन्तविरहित कालतक देखती रहना चाहती हैं।।३२२।।

भूली वह, कौन कहाँ मैं हूँ, कितने क्षण, कौन कटे, प्रियतम!
युग-युग बीते अथवा परार्द्ध नखमणिमें लीन हुए, प्रियतम!
सहसा आँखें जब खुलीं, लगा, 'मूर्च्छित थी हुई अभी' प्रियतम!
'सर्वस्व-समर्पण कर अपना, होकर दासी इनकी,' प्रियतम ॥ ३२३ ॥

किशोरीको विस्मृत हो गया – मैं कौन हूँ ? कहाँ हूँ ? यह विस्मृति कितने क्षणोंकी थी, इसे कौन बताये ? युग-युगान्त बीत गये अथवा क्षण-दो-क्षणोंका ही प्रश्न था यह ? श्रीप्रतिमाके नख-मणियोंमें वह कितनी देर लीन रही – कौन निर्णय दे ? जो हो, सहसा उसकी आँखें खुल गयीं। उसे भान हुआ कि वह मूर्छित हो गयी थी। अपना सर्वस्व उनको ही समर्पणकर, वह उनकी दासी होकर अपनी सारी सुध-बुघ खो चुकी थी।।३२३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

प्रिया राधाका अहं ही जब प्रियतमसे एकाकार होकर **'मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना'** हो गया और उसका समग्र अपनापन और अनुराग नीलसुन्दरकी नखमणियोंमें ही एकत्रित हो गया , फिर उसे अपने आपको, अपने अप्राकृत पञ्चतत्वोंको विस्मृत तो करना ही था। अपने माता-पिता एवं कुल-शीलको तो वह कभीकी बिसार चुकी थी। उसके मनमें उसके प्रियतम पूरे ठसाठस भर गये थे; फिर अन्य मनन तो उससे अब होता ही किसका ? प्रेमसुधा-स्निग्ध अश्रुजलधाराका मधुमय प्रवाह तो उसके नेत्र कबसे बहा ही रहे थे और उनसे उसके प्रियतमकी पाद्य, अर्घ्य, स्नानादि सब पूजा सम्पन्न हो ही चुकी थी। अब बारी थी जड़िमाके आगमनकी और इस जड़िमासे अचेतन हुई, स्पन्दनशून्य-सी वह, विवश अपने प्रियतमके चारु चिन्मय चरणोंमें लोट गयी। वह सर्वथा सर्वांशमें विस्मृत कर गयी कि वह कौन है, और कहाँ है। इस जड़िमा भावमें उसे कितना काल व्यतीत हो गया, इसकी गणना ही कौन क़रता। जड़ कालकी तो वहाँ अवधारणा ही नहीं थी। साथ ही चिन्मय काल-के-काल – महाकाल प्रियतम तो उसके पास ही थे।

वस्तुतः चिन्मय अप्राकृत जगत्के कालकी प्राकृत जगत्के कालसे गणना संभव ही नहीं है। इस प्राकृत लोक पृथ्वीके जीवोंका जहाँ एक वर्ष पूरा होता है, वहाँ देवजगत्का मात्र एक दिवस व्यतीत होता है। देवजगत्का एक दिवस ब्रह्मलोककी एक त्रुटिके समान है। त्रुटि एक दिनका अठारह करोड़ बाईस लाख पचास हजारवाँ अंश होती है। ब्रह्मलोकमें ही कालकी जब इतनी दीर्घता है तो अप्राकृत जगत्के कालकी गणना मनुष्यलोकके कालसे भला कैसे की जा सकती है। अस्तु, किशोरीको अपने प्रियतमकी नखमणिमें लीन हुए कितना काल व्यतीत हो गया, इसकी गणना संभव ही नहीं है। हाँ, किशोरीकी जब आँख खुली, उसमें जब बाह्य जगत्का अभिनिवेश होना प्रारम्भ हुआ, तक उसे यही अनुभव हुआ मानो मैं इन्हें अपना सर्वस्व समर्पणकर, इनकी दासी होकर अभी ही मूर्च्छित हुई थी।।३२३।।

'है सत्य किसीकी आकृति ही यह, पर वह है मेरा,' प्रियतम!
'हूँ एकमात्र उसकी मैं अब, अधिकार परस्पर है।' प्रियतम!
'वह मिले मुझे या मिले नहीं, इसकी क्या चिन्ता है' प्रियतम!
'प्राणोंका सौदा होता है क्षणमें कुछ ऐसे ही।' प्रियतम ॥ ३२४ ॥

वास्तवमें तो यह किसी व्यक्तिकी प्रतिकृति मात्र है।......... किन्तु कुछ भी हो, यह त्रिकालसत्य है कि मैं ,dekkvc bldhghoLrqgå ge nkakd kijLij ,d-दूसरेपर एक-सा ही अधिकार है। यह व्यक्ति मुझे मिले अथवा न मिले, इसकी क्या चिन्ता ? निसर्गका अनादि नियम है – परस्पर प्राणोंका सौदा कुछ ऐसे ही क्षणोंमें हुआ जो करता है ! ।।३२४।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

यहाँ इन छन्दोंमें श्रीराधाके विशुद्ध प्रियतम-प्रेममय जीवनका प्रारम्भ हो रहा है। प्रेमका पूर्वारम्भ जहाँसे होता है, उसीका नाम पूर्वराग है। पूर्वरागकी अपनी लीलाजन्य शोभा है। वस्तुतः श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्णका ही दूसरा स्वरूप हैं, प्रेमकी परमोच्च सीमास्वरूपा ही हैं वे। फिर भी पूर्वरागका यही क्रम है कि वे अपने नित्य प्रियतमको भी विस्मृत कर जाती हैं। श्रीराधा अपनी बाल्य एवं पौगण्ड अवस्थामें अनेक बार श्रीकृष्णको देख चुकी हैं, उनसे उनका मिलन भी हो चुका है। जन्मसे ही राधा सदैव अपने नेत्र निमीलित ही रखती थी। उसने प्रथम दिन नेत्र तभी विकसित किये जब कीर्त्तिदा मैयासे मिलने यशोदारानी अपने पुत्रको लेकर आयीं और उन्होंने अपने पुत्रको उसी पालनेमें, पर्यंकमें श्रीराधारानीके साथ-साथ लेटा दिया। बस, जैसे ही श्रीकृष्णसे राधाका संस्पर्श हुआ राधाने अपने नेत्र विकसित कर दिये। किन्तु जैसे ही यशोदा अपने पुत्रको लेकर नन्दग्राम लौटीं, पुनः श्रीराधाने अपने नेत्र पूर्वतया निमीलित कर लिये। सम्पूर्ण बृषभानुपुरमें यह चिन्ताका विषय हो गया कि सद्यजात बृषभानु-नृपनन्दिनीके नेत्र सदैव निमीलित ही रहते हैं। अनेक उपाय किये गये, महर्षियोंसे परामर्श किया गया, किन्तु सब उपाय व्यर्थ गये। श्रीराधा सदैव नेत्र निमीलित ही रखती थीं। इसके पश्चात् वीणाकी झङ्कारपर हरि-गुण-गान करते हुए एक दिवस देवर्षि नारद घूमते हुए वृषभानु-प्रासादके सम्मुख आकर खड़े हो गये। नृपवर वृषभानु गोपकी दृष्टि जब उनपर पड़ी तो वे श्रीनारदजीके चरणोंमें लोट गये। विधिवत् पाद्य-अर्घ्यसे पूजा करके देवर्षिको प्रसन्न अनुभवकर वृषभानु बाबा निवेदन करने लगे – 'भगवन् ! मेरी एक पुत्री है। सुन्दर तो वह इतनी है मानो समग्र त्रिलोकीकी सुन्दरता एक स्थानपर उसीके अङ्गोंमें सिमट आयी हो, परन्तु आश्चर्य यह है कि वह आँखें सदैव निमीलित ही रखती है। हम लोगोंकी बोली भी मानो उसके कानोंमें नहीं जाती – वह इतनी आत्मकेन्द्रित है। कभी-कभी उसके नेत्र इस प्रकार स्थिर हो जाते हैं, मानो वह उन्मादिनी हो। इसलिये हे देवर्षि ! श्रीचरणोंमें मुझ दीन गोपकी प्रार्थना है कृपया क्षणभर उस बालिकापर अपनी दृष्टि डाल दें।'

आश्चर्यमें भरे नारदजी वृषभानुजीके पीछे-पीछे उनके अन्तःपुर चले जाते हैं। जैसे ही श्रीनारदजीकी दृष्टि राधाकुमारीपर पड़ती है वे चमत्कृत हो उठते हैं। देवर्षिको जैसे ही राधाकुमारीका दर्शन होता है उनके प्राणोंमें अननुभूत प्रेमका सञ्चार हो उठता है। वे श्रीवृषभानुजीको कक्षके बाहर जानेका आदेश देते हैं। एकान्त होते ही परमानन्द-सिन्धुकी ऊर्मियाँ देवर्षिको लपेट लेती हैं। वे बालिकाको क्रोड़में लेकर मूर्च्छित हो जाते हैं। उस समय नारदजीके अन्तर्हृदयमें एक ध्वनि उठती है – देवर्षे ! श्रीकृष्णकी वन्दना करो, तभी श्रीकृष्ण-प्रियतमाके नेत्र तुम्हारी ओर उन्मुख होंगे।' देवर्षि जय-जयकार कर उठते हैं –

जय जय कृष्ण मनोहारिन् जय वृन्दावनप्रिय !
जय भ्रूभङ्गललित जय वेणुरवाकुल !
जय बर्हकृतोत्तंस ! जय गोपीविमोहन !
जय कुंकुमलिप्ताङ्ग जय रत्नविभूषण !

इसी समय दृश्य बदल जाता है । मणि-पालनेपर विराजित वृषभानु-नृपनन्दिनी अन्तर्हित हो जाती हैं तथा नारदके सामने किशोरी राधाका आविर्भाव हो उठता है। देवर्षि कृतकृत्य हो जाते हैं।

द्वारपर वृषभानु प्रतीक्षामें खड़े हैं। अश्रुपूरित नेत्रोंसे गद्गदकण्ठ नारदजी कक्षके बाहर आते हैं। स्खलित गतिसे डगमग पैर रखते नारद बिदा लेते हैं। वृषभानुजी बाहर खड़े-खड़े नारदजीका गायन सुनरहे होते हैं। नारदजीकी स्तुतिका मात्र इतना-सा अंश ही वृषभानुजीको याद रहता है। एक दिवस वे अपनी निमीलित-नेत्रा पुत्रीको गोदमें लेकर लाड़ लड़ाते हुए नारदजीकी स्तुतिका यह अंश सस्वर गाने लगते हैं – **'जय जय कृष्ण मनोहारिन्'**। सुनते ही

भानुकुमारी राधा अपने निमीलित नेत्र खोलकर बाबाके मुखको जोहने लगती है। वृषभानुके हर्षका पार नहीं रहता, कीर्तिदा आनन्दमें निमग्न हो जाती हैं। उन्हें तो अपनी पुत्रीको प्रकृतिस्थ करनेका मंत्र प्राप्त हो जात है।

कहनेका तात्पर्य यही है कि भानुनृपनन्दिनी श्रीराधाकिशोरी श्रीकृष्णसे पूर्वतया परिचित नहीं हों, सो बात नहीं है। परमानन्ददासजीको निम्नलिखित लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है जिसे उन्होंने पद रचनाकर गाया है –

मैं हरिकी मुरली बन पाई।
सुन यशुमति सँग छाँड आपनो कुँवर जगाय देन हौं आई।।
सुन तिय बचन बिहँसि उठ बैठे अन्तरयामी कुँवर कन्हाई।
मुरलीके सँग हुती मेरी पहुँची दै राधे बृषभानु दुहाई।।
मैं निहार नीची नहिं देखी चलौ सङ्ग देउँ ठौर बताई।
बाढ़ी प्रीति नंदनंदन सौं घर बैठे यशुमति बौराई।।
पायो परम भाँवतो जियकौ दोऊ पढे एक चतुराई।
परमानन्ददास तिन पूछौ जिन यह केलि जनमभर गाई।।

श्रीसूरदासजीने भी गाया है –

खेलनके मिस कुँवर राधिका नन्द महर घर आईं हो।
सकुच सहित मधुरे स्वर बोलीं, घर हैं कुँवर कन्हाई हो।।
सुनत स्याम कोकिल सुर बानी निकसे अति अतुराई हो।
माता सौं कछु कलह करत रहे, रिस डास्यौ बिसराई हो।।
मैया री, तू इन कौं चीन्हति, दै कर सैन बताई हो।
जमुना तीर काल्हि मैं भूल्यौ, बाँह पकरि मेरी ल्याई हो।।
आवत यहाँ तोहि सकुचति हैं, मैं दै सौंह बुलाई हो।
सूर स्याम ऐसे गुन आगर, नागरि बहुत रिझाई हो।।

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति।
बड़े बार सीमंत सीसके प्रेमसहित निरवारति।।
माँग पारि बेनी जु सँवारति गूँथी सुन्दर भाँति।
गोरे भाल विन्दु बन्दन मनु इन्दु प्रात रवि कान्ति।।
सारी चीर नई फरिया लै अपने हाथ बनाई।
अञ्चल सौं मुख पौंछि अंग सब आपुहि लै पहिराई।।
तिल चाँवरी बतासे मेवा दियो कुँवरिकी गोद।
सूरस्याम राधा तनु चितवत जसुमति तन-मन मोद।।

ब्रजभक्तों द्वारा अनुभूत इन सभी लीलाओंसे यही ज्ञात होता है कि शिशु अवस्थामें तो श्रीराधाका परिचय श्रीकृष्णसे था ही, पौगण्ड अवस्थामें भी श्रीराधाका सम्मिलन श्रीकृष्णसे बार-बार होता ही रहा।

पू.गुरुदेवने भी पञ्चम शतककी लीलामें लिखा है – 'उस दिवस रसमयी बसंत-पञ्चमीपर यमुनातटपर होलीकी क्रीड़ा चल रही थी। नन्दग्राम एवं बृषभानुपुर दोनोंके लोग सम्मिलित होकर यह उत्सव मना रहे थे। प्रथमतया पञ्चदेवताओंका आराधन धूमधामसे होना था, अतः महारानी पूजामें सहयोग कर रही थीं। अपनी प्राणोंसे प्यारी अलबेली बेटी राधाको उन्होंने अपनी अनुजा कीर्तिमतीको सम्हला दिया था। उसकी देखभालमें वह निमीलित नेत्र किये चुपचाप

स्थित थी। उस दिवस राधाकी उम्र मात्र एक वर्ष, चार माह एवं सत्ताईस दिनकी ही थी। हाँ ! यशोदारानी यदि अपने तनय श्रीकृष्णके सहित कहीं आसपास होतीं और बालकृष्णके अङ्गोंका सौरभ राधाके नासारंध्रोंमें पहुँचता होता तो उसके नेत्र अवश्य उन्मीलित एवं विकसित हो जाते थे।

जब पञ्चदेवताओंकी पूजाके उपरान्त होलीका खेल प्रारंभ हुआ, तो ढप-वादनके बीच ऐसी अबीर-गुलाल उड़ी कि सारा आकाश ही अरुणाभ हो उठा, रवि-किरण-जाल धुँधला हो गया । दोनों ग्रामोंके विशाल जनसमूहोंमें गुलालका खेल और ढपवादनकी तालपर नृत्य-स्पर्धा हो ही रही थी कि क्षणभरके लिये लाली राधा अपनी मौसीकी गोदसे उतर पड़ी। उस अत्यन्त छोटी बालिकाके ओठोंपर मुसकान थी एवं वह अपने शिशु करोंसे ढपोंकी तालपर ताली बजा रही थी। अपनी तोतली शब्दावलीमें वह मन्द-मन्द गाने लगी। उसका स्वर इतना मधुर था कि अनजानेमें ही उसके गायनसे सभीके प्राणोंमें प्रमत्तता भर उठी। किसीको होश नहीं रहा कि 'मैं कहाँ हूँ, कौन हूँ, तथा मुझको क्या करना चाहिये।' सब-का-सब जन-समुदाय आत्म-विस्मृत हुआ उस ओर दौड़ चला जिधर शिशु राधा ताली बजाकर गाती हुई रसका प्रवाह बहा रही थी। सबके हाथोंमें गुलालके झोले थे।

सहसा नन्दतनय श्रीकृष्ण जोरसे बोल उठे – 'ठहरो, ठहरो ! क्या करते हो ? राजाकी बेटी यहाँ खड़ी है, यह पिस जाती, यदि मैं यहाँ नहीं होता !'

उस आभीरराजसुत श्रीकृष्णका स्वर जैसे ही सुखमत्त जनसमूहके कानोंमें ध्वनित हुआ, सब ज्यों-के-त्यों रुक गये। सबके दृग छलक उठे। सभीने भली प्रकार जान लिया कि यदि यह ब्रजेन्द्रनन्दन इस समय सभीको सावधान नहीं करता तो दुर्घटना तो हो ही गयी थी, भीड़में बालिका पिस ही जाती। किन्तु बालिका राधा उस बालकका रूप अपने दृगोंमें भरकर पी रही थी, और वह बालक यशोदानन्दन अपनी मस्त हँसी हँसता जा रहा था।

इन उदाहरणोंसे यही प्रकट है कि किशोरी राधा अपने प्रियतमके स्वरूपसे पूर्णतया परिचित थी। नन्दनन्दन वेणुमें स्वर भरकर सबको मुग्ध करते हैं; वे श्याम नीलमणिवर्णके हैं। उनकी आकृति-प्रकृति– सभीसे नृपनन्दिनी किशोरी पूर्णतया परिचित थीं। किन्तु यहाँ जो उन्हें यह किसकी प्रतिमा है – इसका स्पष्ट अनुभव नहीं हो रहा है एवं यह किसी भी व्यक्तिकी आकृति हो, वह मेरा है – वे ऐसा अनुभव कर रही है – यह उनका भोलापन एवं विस्मृति – सभी मात्र पूर्वरागजन्य भाव है। अगर यह विस्मृति उनमें उदय न होती तो प्रेमका प्रथम स्वाद – पूर्वरागकी शोभा ही नष्ट हो जाती। पूर्वतया अज्ञात प्रियतमके प्रथम दर्शनमें आत्यन्तिक प्रेमोदय और पूर्ण समर्पण ही पूर्वरागकी शोभा है। अतः इसी प्रेम-प्रक्रियामें वे अपने पूर्वतया परिचित जन्म-जन्मान्तरके सङ्गी प्रियतम नीलसुन्दरको सर्वथा विस्मरण करके मानो अभी ही प्रारंभ हुआ हो, ऐसे नवीन प्रेमोदयका अनुभव कर रही हैं।* श्रीराधाकिशोरीका प्रेम अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय भावोंका समुच्चय है। उसका अनुभव मात्र श्रीराधाको ही होता है। दूसरा कोई उसका वर्णन करे, यह असंभव है। जैसे स्वर्णको जितनी बार अग्निमें तपाया जाता है, उसका रूप अधिक-से-अधिक निखरता जाता है, इसी प्रकार राधा भी प्रतिक्षण नव-नवायमान प्रेमका अनुभव करती हैं। श्रीभगवतरसिकजी प्रिया-प्रियतमके प्रेमका स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं –**'मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना'** ये दोनों प्रिया-प्रियतम इस प्रकार मिले रहते हैं; मानो पूर्वतया पहले कभी नहीं मिले हों, और इस प्रकार नित्य नूतन मिलन-रसका अनुभव करते हैं।

*श्रीराधारानीको अपने प्रथम मिलनमें यह भी विश्वास नहीं है कि यह अज्ञात व्यक्ति जिसे मैं मात्र उसकी प्रतिमा देखकर अपना बना रही हूँ , मुझे भविष्य जीवनमें मिलेगा भी या नहीं ? यह प्रेमकी अत्युच्च पराकाष्ठाका भाव है। वे अपनेको उस अज्ञात-कुल-शील व्यक्तिको सौंप दे रही हैं, जिसके नाम-रूप-गोत्र-स्वभावसे उनका किञ्चित् परिचय भी नहीं है। वे आशा भी नहीं कर रही हैं कि वह जीवनमें उसे कभी मिलेगा भी ! जिससे अपनी सम्पूर्ण ममताका सम्बन्ध

जोड़ा जा रहा है, उससे मिलनेकी भी पूरी संभावना नहीं है । प्रेममें इस प्रकारके क्षणोंमें ही बिना सोचे-विचारे ज़ाने-पहचाने प्राणोंका विनिमय होता है। यह कैसी प्रवहमान आनन्दधारा है, कैसे प्रेम-वैचित्र्यका विकास है ?

श्रीराधाके निरपेक्ष, निरीह, निर्मल एवं निष्काम प्रेमकी कैसी झाँकी छन्दकी इन चार पंक्तियोंमें है –

'अपने जीवन की साध अभी पूरी कर लेती हूँ,' प्रियतम !
'क्षण भर इस कण्ठ मनोहर से बस एक बार भेंटूँ;' प्रियतम !
'एकान्त मुझे अवसर ऐसा फिर मिले, न कभी मिले;' प्रियतम !
'आ पाऊँगी भी इस वन में है बात भाग्यलिपि की;' प्रियतम ।।३२५।।

अपने जीवनकी एकमात्र साध मैं अभी-अभी ही पूरी कर लेती हूँ – एक बार इस मनोहर कण्ठसे भेंट लूँ; मुझे एकान्तमें ऐसा अवसर मिले अथवा कभी न मिले ! और तो क्या, मैं इस वनमें फिर आ पाऊँगी, यह भी भाग्यलिपिकी ही बात है.......।।३२५।।

दृग लगे पुनः छल-छल करने, वह उठी; भुजा फैली, प्रियतम !
आगे तुम देख भले ही लो झूलना सरस उसका, प्रियतम !
कहकर पवित्रता मैं अधमा उसकी क्यों नष्ट करूँ, प्रियतम !
केवल वह है सम्बल मेरा; मैं क्यों खोऊँ उसको ! प्रियतम ।।३२६।।

............किशोरीकी आँखें पुनः छल-छल करने लगीं; वह उठ पड़ी; बिना परिश्रम उसकी भुजाएँ फैल गयीं । अब.......आगे क्या हुआ ? अहो ! नीलसुन्दर प्राणेश्वर देवता ! तुम उसे स्वयं ही देख लो भले ही.. .... अहा ! किशोरीका कण्ठसे झूलने लग जाना कितना सरस था.........जय जय जय !....... अरे ! मैं अधमा इसकी पवित्रताका चित्रण करके, वाणीसे उसका निरूपणकर, उसकी अनिर्वचनीय पावनताको नष्ट करनेका पाप क्यों बटोरूँ ? मेरे सम्पूर्ण जीवनका एकमात्र सम्बल इतना ही तो है, इसे मैं क्यों खोऊँ ?.....'।।३२६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

भानुनृपनन्दिनी श्रीराधाकिशोरीकी प्राणोंकी साध विशुद्ध प्रेमामृत मात्र है। सप्तवर्षीया बाला राधाकी प्रेमास्पद तो मात्र प्रतिमा है। यह प्रतिमा किसकी है ? यह भी उससे अज्ञात है। उसके प्रेमका आदर होगा, यह बात तो बहुत दूरकी है, राधाका प्रेमास्पद उसके प्रेमको जान भी पायेगा – इसकी भी उसे कल्पनातक नहीं है।

कहीं जान भी लेगा तो मानेगा, इसकी क्या संभावना ? इसके विपरीत वह उसका अपमान करे, घोर तिरस्कार करे, राधाके प्रेमके बदले भीषण कष्ट, भयानक यातना दे – तब भी राधा क्या अपने प्रेमास्पदके दोष देखेगी ? कदापि नहीं। राधाको तो अपने प्रियतमके दोषोंमें भी पवित्र प्रेम, अत्यन्त निकटकी आत्मीयता ही दृष्टिगोचर होगी, यही राधाके प्रेमका सुदृढ़ निश्चय है। राधाने अपने प्रेमके प्रतिदानके रूपमें अपने लिये कुछ भी नहीं चाहा है। उसकी केवल एक ही निरपेक्ष मान्यता है कि जिस किसीकी भी यह प्रतिमा है, राधा उसीकी है, राधाके देह-प्राण, मन-बुद्धि, अहङ्कार-आत्मा, सभी उसीके हैं, और प्रत्येक स्थितिमें, लोकदृष्टिमें प्रतिकूल-से-प्रतिकूल मानी जानेवाली अवस्थामें भी वह अपने प्रेमास्पदके मधुरातिमधुर प्रेममें ही डूबी रहेगी, उसके महान् दिव्य गुण ही उसके दृष्टिपथमें आवेंगे।

इस निश्चयको लेकर ही सात वर्षीया नृपनन्दिनी बाला लोक-वेद-कुलकी कुछ भी परवाह न करके सर्वसमर्पणपूर्वक अपने प्रियतमकी उस प्रतिमाको अपना शरीर-दान देनेको उत्सुक हो उठती है। वे मात्र क्षणभरके लिये उस प्रतिमाके

मनोहर कण्ठसे एक बार आलिङ्गित होनेकी लालसा कर लेती हैं। ध्यान रहे उनकी इस कण्ठसे आलिङ्गित होनेकी लालसाको क्षुद्र जागतिक काम-वासना कभी मत समझ बैठना। क्योंकि काम-वासना किसी किशोर जीवन्त व्यक्तिसे होती है, मात्र एक मणि-प्रस्तर-खण्डकी प्रतिमासे वैसा होनेकी कल्पना एक घोर दोषारोपण मात्र है। फिर सात वर्षकी अल्पवयस्का बालिकामें ऐसे कुत्सित विचारोंका तो उदय ही नहीं होता।

राधामें तो विशुद्ध अतिशय निर्मल प्रेमभाव ही उसकी प्रत्येक चेष्टासे प्रवाहित हो रहा है। राधा बड़ी उदारताके साथ भावका असीम प्रवाह बहा रही है। राधाका धर्म-कर्म मात्र प्रेम है। प्रेम ही उसका एकमेव कर्तव्य है। राधाके इस सर्व समर्पणमय प्रतिमाके कण्ठ लगनेकी क्रियामें आत्मसुखकी वासनाकी गंध भी नहीं है। यहाँ तो समर्पणका भी पूर्ण समर्पण है। राधाकिशोरीमें भोग-त्याग, बन्ध-मोक्ष, अनुरक्ति-विरक्ति– सभीकी पूर्णतया विस्मृति है। केवल प्रियतम-प्रेम ही उसका जीवन है।

शास्त्रोंमें पूर्वरागके दस लक्षण बताये हैं– १. लालसा २. उद्वेग ३. जड़ता ४. कृशता ५. जागरण ६. व्यग्रता ७. व्याधि ८. उन्माद ९. मोह १०. मरणोद्यम।

शास्त्रोक्त इन्हीं दस लक्षणोंमें से पूर्वरागजन्य 'लालसा'का छन्दकी इन चार पंक्तियोंमें साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इन सभी दसों लक्षणोंको चतुर्थ शतकके आगेके छन्दोंमें पू.गुरुदेवने व्यक्त किया है। ध्यान रहे – पूर्वरागजन्य मिलन-लालसामें देहगत विषयवासनाजन्य कामनाका सर्वथा, सर्वांशमें ही अभाव रहता है। तनिक विचार करें – प्रिया राधाकी अपार गुणदर्शनमयी दृष्टिमें वह प्रतिमा क्या है ? हमारी दृष्टिमें वह मात्र जड़ नीलमणि-प्रस्तरखण्डकी प्रतिमा हैं, किन्तु श्रीराधाकी प्रेममयी दृष्टिमें वह प्रीति-सौन्दर्य-सुधा-समुद्रकी विलक्षण तरङ्ग हैं, जो उस किशोरी बालाके चित्तरूप पर्वतको पूर्णरूपेण प्लावित कर दे रही है। राधाको तो उसके वचन भी सुनाई पड़ रहे हैं। वह प्रतिमा उसका प्रेमाह्वान भी तो कर रही है। राधाके चित्तको अपने प्रियतमकी प्रतिमाके मनोहर प्रेम-वचन ऐसे लगते हैं मानो उसके कानोंमें किसीने प्रेमसुधाका राशि-राशि मधुरतम रसायन डाल दिया हो। श्रीराधाकी गुणदर्शनमयी दृष्टिमें उसके प्रियतमरूप इस प्रतिमाके अङ्ग कोटि शरदिन्दुकी ज्योत्स्नाके सदृश शीतल हैं। श्रीराधाके लिये यह प्रतिमा मात्र जड़ प्रस्तरखण्ड है ही नहीं, यह है उसके चिन्मय प्रियतमका स्वरूप। अस्तु, उसके अधरोंसे राधाको ऐसी सौरभरूप सुधाका संप्लावन होता दृष्टिगोचर हो रहा है, जिससे मात्र वह अकेली नहीं, सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड संप्लावित है। अब बताओ, भोली नृपनन्दिनी बाला अपने ऐसे प्रियतमसे जो उसकी समस्त इन्द्रियोंमें प्रेमका असीम आकर्षण उत्पन्न कर रहा है, क्या उसके मात्र अङ्गसे लग जानेका, एक बार उससे आलिङ्गित होकर अपने जीवनको कृतकृत्य करनेका, अपने जीवन-यौवनका पूर्ण समर्पणकर इस प्रेमनिधिसे एकात्म मिलनका सङ्कल्प भी न करे ? यदि किसी भय, अथवा सङ्कोचसे वह ऐसा नहीं करती है तो क्या उसका एकाङ्गी निरपेक्ष प्रेम सार्थक होगा ? क्या वह किसी धर्म-मर्यादासे बँधी है, जो अपने प्रियतमके अङ्गसे लगनेसे डरे, भयभीत हो ?

पूर्वरागजन्य 'लालसा' जागतिक कामजन्य लालसा, तृष्णा नहीं है। वह इतनी विलक्षण है कि उस लालसाके अञ्जनसे अञ्जित बाला राधाकी दृष्टि ऐसी सुषमामयी हो उठती है, कि उसे अपने प्रियतमकी प्रतिमामें ही अपार, अनन्त मनोहरता दिखने लगती है। और तब उसकी मिलनोत्कण्ठा रस-सरिताके समान उन्मादिनी हो उठती है, और उसे एक-एक पलका अमिलन असह्य लगने लगता है। प्रेम-विह्वल, प्रेमविकल हुई वह अपने प्रेमसमुद्रसे मिलनेके लिये उमड़ पड़ती है। यहाँ ध्यान रहे पूर्वरागके समय श्रीराधाको अपना प्राणवल्लभ अपने-से-अपना अनुभव होता है। राधा अपने प्रियतमकी नित्य एकमात्र अपनी-से-अपनी है – यही उसकी दृढ़ निष्ठा रहती है। काम सदैव परायेके प्रति, अप्राप्तके प्रति, अपनेपनके न होनेपर ही उदय होता है, वहाँ विशुद्ध प्रेमका लक्षण ही है कि उसे निजमें एवं अपने प्रियतममें परायेपनका सर्वथा अभाव दिखता है एवं दोनोंमें पूर्णतया एक ही 'मैं' पना प्रवाहित दिखता है।

राधाकी अतिशय सुषमामयी आँखोंमें उसके प्रियतमकी प्रतिमा प्रेमसे उमड़ते जलधरके सदृश अनुभव होती है। बँगलाभाषी कवि माइकेल मधुसूदन राधाके इसी भावका प्रकाश करते हुए लिखते हैं–

चातकी आमि सजनि, सुनि जलधर-ध्वनि,
केमने धैरज धरि थाकिबो एखन।
जाक् मान, जाक् कुल, मन-तरी पावे कूल,
चल भासि प्रेम-नीरे भेबे ओ चरन।।

" अरी सखि ! मैं श्याम-नीरकी तृषित चातकी हूँ। अब जलधरकी गर्जना सुनकर किस प्रकार धैर्य धारण कर यहाँ रुक सकती हूँ ? मेरा मान-सम्मान नष्ट होगा, हो जाये ; मेरा कुल-शील-धर्म भाड़में जावे, मेरे मनकी नैया तो प्रेमकिनारे लग ही जायगी। सखि ! चल री ! प्रेमनीरमें अपनेको डुबोकर प्रियतमके चरणोंका संवाहन करें।"

तब भानुनृपनन्दिनी बाला जो प्रेमके पूर्वरागरूपी सिन्धुमें मिलनेको उमड़ रही है, भला कैसे अपनेको संवरित कर पाती। उसके प्रियतम भी तो नव-जलधरके समान सुन्दर कान्तियुक्त हैं, उसके प्रियतम भी तो विद्युन्मालासे भी अधिक मनोज्ञ पीताम्बर धारण किये हैं, उसके प्रियतमका भी वदन शारदीय पूर्ण चन्द्रमाकी अपेक्षा उसे अधिक समुज्ज्वल दिख रहा है ! अहा ! कैसी चित्र-विचित्र ध्वनि करती मुरली उसके प्रियतमके अधरोंपर विराजित है; मस्तक मयूरपिच्छसे सुशोभित है। अहा ! क्या ही सुन्दर निर्मल कान्तियुक्त श्रेष्ठ मोतियोंकी माला उसके प्रियतमके कण्ठमें सुविराजित है। वे नृपनन्दिनीके प्रियतम उसकी प्रेम-मिलनकी स्पृहा यदि उद्दीप्त कर दें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? सरोवरकी कृतार्थता तभी है, जब उसमें सरसिज खिले हों, और सरसिज तभी विकसित होता है जब सूर्य उदय हो। सूर्यके बिना सरसिज एवं सरोवर दोनो ही व्यर्थ हैं। तब प्रिया राधाके बिना उसके प्रियतमकी प्रतिमा भी भला कैसे शोभायमान रहती ? क्या सुधांशु रात्रिके बिना शोभायुक्त हो सकता है ?

बिना राधा कृष्णः न खलु सुखदः सा न सुखदा।

श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण अपूर्ण हैं। फिर दोनोंकी प्रेम-मिलनोत्कण्ठा प्रेमधर्म ही तो है !

बस, नृपनन्दिनी बालाने अपने जीवनकी एकमात्र अनन्य साध पूर्ण कर ली। वह अपने प्रियतमकी प्रतिमाके कण्ठसे आबद्ध हो गयी। नारीसुलभ लज्जाने उसे पुनः संप्रेरित किया कि वहाँ चारों ओर एकान्त है, या नहीं – इसे देख ले। वह जानती है कि प्रेम-मिलनके अवसर अतिशय दुर्लभ होते हैं। यह उसका शुभ प्रारब्ध था कि वह माता-पिताकी आज्ञा पाकर इस वनमें चली आयी थी। क्या पता ! उसके माता-पिता, कुल-परिवार पुनः इस प्रेमवनमें प्रवेशकी आज्ञा दें, न दें। आज तो उसे ऐसा अवसर भी मिल गया कि सखियाँ और उसकी अनुजा छोटी बहिन भी सरोवरका जल पीकर आनन्द-निद्रामें शयित हैं और वह निर्मल एकान्तमें अपने प्रियतमका अतिशय शुचितम दर्शन प्राप्त कर पारही है। ये सभी बातें बालिका नृपनन्दिनाकी भाग्यलिपिके अनुकूलतम लेखनसे ही संभव हुई हैं। परन्तु कल उसकी भाग्यलिपि उसे ऐसा मनोनुकूल वरदान दे, या न दे – इसका क्या विश्वास ? भविष्यके गर्भमें क्या है, इसका क्या भरोसा ? उसे तो यह भी भरोसा नहीं है कि उसके प्रियतम उसके प्रति द्वेष रखेंगे, उसे छिटका देंगे अथवा कृपाकर उसका हाथ थामेंगे, उसे स्वीकार करेंगे ? जैसा भी वे आचरण करें, उसकी गति तो एकमात्र वे ही रहेंगे। नृपनन्दिनीका दृढ निश्चय है –

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मां
अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।

"वे उसे हृदयसे लगावें अथवा चरणोंमें लिपटी उसे पैरों तले रौंद डालें, दर्शनोंसे वञ्चित रखकर मर्माहत कर दें। वे लम्पटतावश जैसे चाहें वैसे करें; मेरे प्राणनाथ तो वे ही हैं, दूसरा कोई नहीं।"

इन्हीं विचारोंमें खोई नृपनन्दिनी बालाके नेत्र पुनः भावविह्वल हुए छलछला आये। प्रेम तो देना ही जानता है, लेना नहीं। निरन्तर देते रहनेकी इच्छावाली नृपनन्दिनीकी शोभा यही है कि उसमें देनेका अभिमान नहीं, उलटे लेते रहनेवालीका भाव उच्छलित हो उठता है। त्यागकी पराकाष्ठामें अपनेको लेनेवाली दीना समझ बैठती है। उसका हृदय चीत्कार कर उठता है –

ना ठेलियो मोरे अबला बोलिये, जे हय न उचित तोर।
भाविया देखिनु प्राणनाथ बिने गति जे नाहिक मोर।।

"हे प्राणवल्लभ ! तुम मुझे ठुकरा मत देना। तुम्हारे लिये यह कदापि उचित नहीं होगा। क्योंकि मैं सोचविचार करके यही देख रही हूँ कि प्राणनाथ ! तुम्हारे अतिरिक्त मेरी कहीं भी अन्यत्र गति नहीं है।"

रसिक सिद्ध सन्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महाप्रभुने अपने महाभाव-काव्यसंग्रह षोडशगीत (राधामाधव-रस-सुधा) में गाया है –

तुमसे सदा लिया ही मैंने लेती लेती थकी नहीं।
अमित प्रेम सौभाग्य मिला पर मैं कुछ भी दे सकी नहीं।।

यहाँ पुनः ध्यान रहे कि श्रीराधाके ये आँसू किसी अभावगत, भयगत शङ्कासे उत्पन्न नहीं हैं। राधामें कामना है ही नहीं, उसमें मात्र प्रेम है। काममें ही आत्म-परिणामकी चिन्ता होती है। प्रेम आत्मविस्मृति एवं प्रियतम-स्मृतिसे लबालब भरा होता है। किशोरी राधाके मनमेंसे प्रियतमकी मधुर-मनोहर स्मृति हटे, तो स्वयंकी स्मृतिका उदय हो। राधा तो अपने अहंको ही नहीं, पूरे-के-पूरे स्वयंको कबसे ही प्रियतमके नख-चन्द्रोंमें विलीन कर चुकी, अब वह रही ही नहीं है। उसके अस्तित्वके अणु-अणुमें समायी है, उसके प्रियतमकी परम ललाम प्रतिमा। राधाकी अपने प्रियतमसे यही माँग है कि उसके अणु-अणुमें समायी स्मृतिरूपा यह उनकी प्रतिमा उसके हृदयसे नहीं हटे। **'ना ठेलियो मोरे'**का अर्थ राधाके शरीरके निर्वाहकका त्याग नहीं है, अपितु राधाके हृदयसे स्मृतिरूपमें हट जाना ही है। बस ! उसके प्रियतम उसके हृदयमें अविराम अखण्ड विराजित रहें और उसका प्रेमदान सर्वस्व-भोग करते रहें – यही राधाका अपने प्रियतमसे लेना है। शरीर-निर्वाहकी चिन्ता तो भोगदानकी स्पृहा है – वह राधामें सम्भव ही नहीं। उसे तो दिव्य लोक किंवा कैवल्यमुक्ति भी नहीं चाहिये। वह भोग, मोक्ष, वैराग्यकी रागी नहीं, मात्र अपने प्रियतमकी रागी है। उसके हृदयमें पूर्ण – परिपूर्ण उसके प्रियतमका अनुराग छलक रहा है, भरा है।

इस अनुरागके ही कारण किशोरी बालिकाके नेत्र छलछला आये थे और तत्क्षण ही वह अपने प्रियतमके कण्ठमें झूल जाती है।

वस्तुतः प्रिया राधा एवं उनके प्रियतमके मिलनके पावित्र्यकी तुलना अन्य कोई वस्तु करे, यह संभव ही नहीं है। श्रीयादवेन्द्र पुरी महाराज कहते हैं –

नन्दनन्दन कैशोर लीलामृत महाम्बुधौ।
निमग्नानां किमस्माकं निर्वाणलवणाम्भसा।।

प्रियतम नन्दनन्दनकी किशोरावस्थामें की हुई सुन्दर प्रेम-मिलन-लीलारूप पवित्रतम अमृतसमुद्रमें निमग्न हम लोगोंको निर्वाण-मुक्तिरूप खारे बेस्वाद समुद्रकी क्या आवश्यकता है ?

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।श्रीमद्भा० ।।

" स्वर्गकी तो बात ही क्या, कैवल्य मोक्षकी अपेक्षा भी भगवान् श्रीकृष्णकी सङ्गिनी (प्रेमिका) राधाके सङ्ग उसकी प्रियतम-सेवामें बिताया गया एक क्षण भी अतुलनीय है।

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः।
नैति प्रेमसुखाम्भोधेः परमाणुतुलनामपि।।भक्तिरसामृतसिन्धु।।

ब्रह्मानन्दको परार्द्धकी संख्यासे गुणा करनेपर भी जिस पवित्र आनन्दकी उपलब्धि होती है, उसको प्रेम-मिलन-सुख-सागरकी तुलनामें एक परमाणुके समान भी नहीं मानना चाहिये।

बात यह है कि ब्रह्मानन्द नित्य एकरस है, फिर वह अनुभवमें भी नहीं आता। प्रियतम-मिलन-विलासमें नित्य नूतनता है। उसका पावित्र्य एवं तत्सुखसुखी अनुभव मिलनरत प्रिया-प्रियतमको तो होता ही है, समग्र ब्रजधाम ही उसकी पवित्रतम भाव-तरङ्गोंको ग्रहणकर मिलनानन्दमें डूब जाता है। वह पवित्रतम प्रेम-मिलनका रस जड़-चेतन सबको विशुद्ध निर्मल प्रेमरसमें आप्यायित कर देता है।

फिर प्रियां राधाको तो इस मिलनमें अपने आनन्दभोगकी भी इच्छा नहीं रहती। प्रिया किशोरी तो अपने प्रियतमसे विशुद्ध हेतुरहित मिलनोत्सुका हैं। मिलनके लिये ही उनकी मिलन-लालसा है, स्वसुख हेतु मिलन-लालसा नहीं है। इस प्रेम-मिलनमें यदि कहीं अपने आनन्दका किञ्चित् भी अनुसन्धान या आनन्दप्राप्तिकी वासना उदय हो जाय, तब तो यह मिलन अपवित्र भोगरूप हो उठेगा। यह तो प्रेमराज्यका कलङ्क हो जायगा। यह राधाका भूषण नहीं, कूबरी, त्रिवक्रा, कंस-चेरीका भोग बन जायगा। अतः स्वभोगकी तो यहाँ कल्पना ही नहीं। न स्वभोगका भाव प्रियतम श्रीकृष्णमें है, न ही प्रिया श्रीराधामें ही यह कुत्सित भाव है। यहाँ तो दोनों युगल प्रिया-प्रियतम मत्सुखसे सर्वथा विरहित होकर तत्सुखमें निमग्न, आप्यायित हैं। प्रिया राधाका यह प्रियतम-मिलन कोटि-कोटि गुनी आत्मानन्दानुभूतियोंसे भी अधिक प्रिय और पवित्र है। यह मिलन प्रियतम श्रीकृष्णको अपने स्वरूपानन्दसे भी बढ़कर प्रेमरसानन्द देनेवाला है। अतः इसकी पवित्रता तो अकथनीय एवं अचिन्त्य है।

पू.गुरुदेव इसीलिये कहते हैं कि मैं अधमा इसकी पवित्रताका चित्रण करके, वाणीसे उसका निरूपणकर, उसे सीमित, इदमित्थं, शब्दार्थ-परिच्छिन्न बनाकर उसकी अचिन्त्य, अनिर्वचनीय पावनताको नष्ट करनेका पाप क्यों बटोरूँ ? वस्तुतः ही यह मिलन सर्वोच्च पावित्र्यकी असीम उच्चातिउच्च शिखापर विराजित है।।३२५।।३२६।।

इतना-सा ही कह सकती हूँ, वह मिलन अर्धपल का, प्रियतम !
आधार-शिला बनकर उसपर बनने प्रासाद लगा, प्रियतम !
जिसमें विभाग थे- स्नेह, मान, वे प्रणय, राग, आगे, प्रियतम !
अनुराग, भाव, फिर महाभाव, सातों अप्रतिम बने, प्रियतम।।३२७।।

..........इतना-सा ही कहना सम्भव है, वह आधे पलका-आधे क्षण किशोरीका मिलन मानो आधारशिला बन गयी और उसपर प्रेम-प्रासादका निर्माण भी होने लग गया। साथ ही अहो ! स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव – ये सात अप्रतिम विभाग भी अभिव्यक्त हो ही उठे भला !।।३२७।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

पू.गुरुदेव आगेके छन्दमें कहते हैं कि प्रिया राधाका अपने प्रियतमसे जो मिलन हुआ, वह आधारकी नींव बन गया और उसपर प्रेमका विशाल महल खड़ा हो गया।

वस्तुतः सत्य यही है कि विशुद्ध पूर्वराग वह नींव है जिसपर प्रेमका अष्टमञ्जिला 'महल' खड़ा होता है। हम पूर्वतया कह चुके हैं कि ब्रह्मानन्दमें विलास नहीं है। वहाँ आनन्द-स्वरूपता है, परन्तु आनन्दका आस्वादन नहीं है। श्रीराधामें स्वसुख-वाञ्छाका लेश भी नहीं है, अतः वे ही अपने प्रियतमको आह्लादित करती हैं, और उन्हें आह्लादित देखकर उनके आह्लादसे आह्लादित होती हैं। अतः श्रीराधाभावका सार प्रेम है। किशोरी मूर्त्तिमती प्रेमदेवी हैं। प्रेमका सारस्वरूप ही राधा बन गया है। ये अपने प्रियतमकी परमोत्कृष्ट प्रेयसी हैं। अपने प्रियतमकी सर्ववाञ्छाओंको पूर्ण करना ही श्रीराधाके जीवनधारण, अस्तित्वका प्रयोजन है। प्रियतमेच्छा पूर्ण करनेके अतिरिक्त इनमें सर्वेच्छा-राहित्य है। इसीलिये ये प्रियतमकी परमोत्कृष्ट प्रेयसी हैं; प्रियतम इनपर न्यौछावर हैं, इनके प्रेमके मतवाले हैं।

प्रेम-मञ्जिल

इस महलमें जहाँ पूर्ण रतिरूप पूर्वरागकी नींव है, वहाँ प्रेम ही प्रथम मञ्जिल है। **जब प्रियतमके अतिरिक्त अन्य किसी विषयकी तनिक भी चाह नहीं रहती, सर्वेन्द्रियरूप अपना सर्वस्व समर्पणकर जहाँ प्रियतम-रुचिमें निरत हुआ जाता है, उसे ही पूर्वराग कहा जाता है।** यह भाव जब अत्यन्त प्रगाढ़ हो उठता है तो प्रेम-महलकी पहली मञ्जिल बनती है। प्रेम-महलका यह जादू है कि सर्वथा पूर्ण इच्छारहित प्रियतम भी अपनी प्रियाकी कामनामें आतुर हो उठते हैं; जिन्हें किसी भी वस्तुका अभाव नहीं, वे अभावग्रस्त बन जाते हैं। प्रेमरसके मतवाले निज प्रियतमको अपना पूर्णकामी पाकर उनकी सर्वकामना पूर्ण करना ही इस प्रेम-महलमें प्रिया राधाकी सेवा होती है। इस प्रेम-महलमें श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा ललितादि सखियाँ उनके प्रियतमकी प्रेमपूजामें सहयोगिनी होती हैं।

प्रेम-महलके प्रथम प्रासादमें सखियाँ प्रियाको तारुण्यामृत, कारुण्यामृत एवं लावण्यामृतकी प्रेमधारासे स्नान कराती हैं, लज्जाका श्याम परिधान पहनाती हैं, फिर स्नेहकी कञ्चुकीसे इनके वक्षोजोंको आच्छादित करती हैं। इस प्रकार वस्त्रावृत हुई प्रिया प्रेममहलकी दूसरी मञ्जिल – स्नेहमहलमें प्रवेश करती हैं। यह स्नेहमहल अनन्य ममतारूपी रत्नोंकी अभेद्य शिलाओंसे निर्मित है।

सर्वत्र सब स्थानोंमें ममताराहित्य हो जाय और ऐसा अनुभव हो कि श्रीकृष्णके सिवा कहीं, कोई भी मेरा नहीं है – यह भाव अतिशय प्रगाढ़ हो जानेपर स्नेह कहलाता है। प्रियाके प्रति प्रियतमका एवं प्रियतमके प्रति प्रियाका चित्त अतिशय प्रगाढ़ ममत्वभावसे भावान्वित हुआ जब पिघलकर द्रवीभूत हुआ उमड़ उठता है, तब पिघले, उमड़े, भावभरे चित्तसे जहाँ प्रिया-प्रियतमका प्रगाढ़ मिलन होता है, उस मिलन-मञ्जिलका यह स्नेह-प्रासाद है।

मान-मञ्जिल

इससे ऊपरकी मञ्जिल मान-मञ्जिल है। **'मान' भावमें प्रियाका चित्त प्रियतममें स्नेहकी प्रगाढ़तासे भरकर उनपर अतिशय ममत्वके कारण अपना पूर्ण अधिकार समझने लगता है।** इस अधिकारका प्रिया जब भी प्रियतम द्वारा उल्लंघन किया जाना देखती हैं, उस समय वे दक्षिणभावका पूर्णतया परित्याग कर बैठती हैं। उस समय प्रियामें वाम भावकी सृष्टि होती है। प्रियाके इस नकारात्मक भावमें प्रियतमको उनका अधिकतम माधुर्यरस प्राप्त होता है।

इस मानमहलमें विराजिता प्रियाकी शोभा देखकर प्रियतम श्रीकृष्ण चकित हो उठते हैं। उन्हें अपनी प्रियाको मनानेके लिये दूतियोंका सहारा लेना पड़ता है। विप्रलंभका स्वभाव ही है, बाहर खोना, भीतर पाना। इसी तरह 'मान'में बाहर कठोरतम रूठना रहता है और भीतर पूर्णतया अनुकूल मिलन-भाव होता है।

श्रीराधाके अन्तर-बाहर दोनों ही क्षेत्रोंमें निज प्रियतमका नित्य निवास रहता है। प्रियाके हृदयमें प्रियतम नित्य ही लीला-विहार करते रहते हैं, साथ ही उनके नेत्रोंके सामने उनकी बाह्य लीला भी चलती रहती है। तथापि प्रेमकी अति विचित्र भाव-स्थितियोंका भी रसास्वादन उन्हें होता रहे, इसीलिये प्रियामें कठोरतम मानकी स्फूर्ति होती है।

श्रीराधा-माधवकी यह पवित्रतम, मधुरतम, उज्ज्वलतम प्रेमानन्द-सुधामयी लीला विविध विचित्र स्वरूपोंमें नित्य निरन्तर चलती रहती है। मानके बारह भेद तो पू.गुरुदेव ही बताया करते थे। वैसे, मानके अनन्त स्वरूप एवं अनन्त स्तर हैं।

प्रिया इस मान-महलमें अपने युगल नेत्रोंमें प्रेमजन्य अतिशय कठोरताका ही अञ्जन लगाती हैं, वैमुख्य भावके पर्यंकपर वे विराजित रहती हैं, कठोरता, तिरस्कार, अपमान, रूक्षवचन, तामसिक भाव इनके अङ्गोंके आभूषण होते हैं, दूती द्वारा अपना गुणगान एवं प्रियतमकी निन्दाको सुनना ही इनके कर्णभूषण होते हैं। कटुरसका ये उस समय निज प्रियतमको पान कराती हैं। अपने प्रियतमकी कलह-कामनाकी पूर्त्ति ही इनका उद्देश्य रहता है।

प्रियाकी कठोरताका चित्रण करते हुए अष्टछापके रसिक भक्त कवि श्रीगोविन्दप्रभु मानलीलाका प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए कहते हैं –

मानगढ क्यों हू न टूटत अबलाके बलको प्रताप।
आपन ढोवा चढि गिरिधर पिय अबलौं तू
किला चाँप मुक्त कटाक्ष घूँघट दरवाजो नहिं खूटत।।
विविध प्रणत हाथनाल गोला बोखें जू
उछट परत काम-कोट नहीं फूटत।
गोविन्द प्रभु साम-दाम-भेद-दण्डकर घेरा पर्यौ
चहुँदिस संचित रुखाई जल क्यों हू नहिं खूटत।।

'हे श्रीकृष्ण ! यह अबला नारीका प्रताप है कि उसका मानरूपी किला (गढ) किसी प्रकार भी ध्वस्त नहीं हो पा रहा है। अब तो तुम स्वयं ही इस पार्श्वके ढोवा (टीले) पर चढकर किलेको लाँघ सको तो लाँघो। तुम्हारे दूरसे फैंकेगये मुक्तकटाक्षोंसे तो प्रियाके मुखपर लगा घूँघट द्वार खुल ही नहीं पा रहा है। तुम जो विविध प्रकार विनयकी मुद्राओंसे प्रणाम कर रहे हो, एवं हाथ जोड़े खड़े हो – ये सभी तरह-तरहके तोप-गोलोंके प्रहार इस मजबूत कठोर किलेकी दीवारोंसे छिटककर उछट पड़ते हैं। प्रियाका काम-कोट भङ्ग नहीं हो पा रहा है। श्रीगोविन्द प्रभु कहते हैं कि साम-दाम-दण्ड-भेद आदि अनेक प्रकारकी सेनाओंके घेरा डालनेपर भी प्रियाने अपने किलेके चारों ओर जो खाईके रूपमें रूक्षता, रूखेपनका जल सञ्चित कर रखा है, वह समाप्त ही नहीं हो रहा है। इससे सेनाएँ किलेतक पहुँच ही नहीं पा रही हैं।'

इसी प्रकार रसिकप्रीतम (गो. श्रीहरिरायजी) दूतीके रूपमें हारकर श्रीकृष्णसे कहतें हैं –

हरि हौं तो हारी बिहारी लाल तिहारी प्यारीके पाँयन पर - पर।
रही सिर धर चरणन बडी बार भई, लीजिये मनाय रूठी मानै नाहिं क्यों हू कर।।
जैसें जैसें रात जात तैसें तैसें सतरात मोसों नाहिं बतरात,मानी है मैं यासों हार।
सुनत ही बचन रसिक प्रीतम दूतीके आप उठ चले देखत वदन जात इत हीं ढर।।

'हे हरि ! मैं तो तेरी प्यारीके चरणोंमें गिर-गिरकर हार गयी। मैं उसके चरणोंपर अपने सिरको रखकर उसे बहुत देरतक मनाती रही, अब तो आप ही उसे मनाइये। वह किसी भी प्रकार मान नहीं रही है। जैसे-जैसे रात्रि व्यतीत होती जाती है, वह और अधिक इतराती है, मुझसे तो बात ही नहीं करती, मैंने तो उससे पूरी तरह हार मान ली है। श्रीरसिकप्रीतम कहते हैं – दूतीके इन वचनोंको सुनते ही श्रीकृष्ण स्वयं ही उठकर प्रियाकी ओर चल पड़े। संभव है, श्रीकृष्णका मुख देखकर प्रिया उनकी ओर उन्मुख हो जाय।''

मानका सम्मान करनेके लिये स्वयं प्रियतम नीलसुन्दरको अपनी प्रेमाश्रु-सुधा-धारासे अपनी प्रियाके पाद-पद्मोंको पखारना पड़ता है। वे प्रेम-गद्गद कण्ठसे कहते हैं –

'राधे ! मुञ्चमयिमानमनिदानम्।
स्मर गरल खण्डनं, मम शिरसि मण्डनं, धेहि पद-पल्लवमुदारम्।।'

अदम्य वेगवती भागीरथीका तीव्र प्रवाह कहीं तनिक-सी बाधा पाकर जैसे उद्दीप्त गर्वसे उच्छलित हो उठता है और अन्तमें दोनों तटोंको बहाकर सुनील सागरमें सम्मिलित हो जाता है, श्रीराधाका प्रेम भी मानसे उद्वेल्लित होकर कलहान्तरके पश्चात् अन्तमें मधुरतम श्यामसिन्धुमें मिलकर आत्मसमर्पण कर देता है। कितना मधुर एवं सुन्दर है यह मान-मञ्जिल !

प्रणय-मञ्जिल

मानमें प्रियतमके प्रति अनन्य ममताजनित अधिकार-भावना उत्पन्न होती है। वह जब प्रगाढ़ एवं सुदृढ़ हो जाती है तो प्रिया 'प्रणय' नामक चौथी प्रेम-मञ्जिलमें पहुँचती हैं। यह चौथी प्रेम-मञ्जिल प्रणय-मञ्जिल है। इस प्रणय-मञ्जिलमें प्रियाके अङ्गोंमें सुदीप्त सात्विक भाव – हर्षादि सञ्चारी भावोंकी सजावट होती है। प्रिया अपने विशाल ललित ललाटमें **'नित्य अचलसुहाग'**का टीका लगाती है, प्रेम-वैचित्त्यके रत्नोंसे जड़े आभूषण धारण करती हैं, गर्वके पर्यंकपर वे विराजित रहती हैं।

ध्यान रहे वृन्दावनधामका यह प्रेमभवन चिन्मय रस-महल है। इस प्रणय-मञ्जिलमें हेमकान्तमणि श्रीराधा और नीलकान्तमणि प्रियतम श्रीकृष्णमें मानो प्रेमदानकी होड़ लगी रहती है। रूपमें, सौन्दर्यमें, लीलामें, प्रेममें और आनन्दमें वे सर्वत्र, सर्वदा एवं सर्वथा एक-दूसरेपर न्यौछावर होते रहते हैं।

प्रणयभावमें उन्मत्त राधिका इस प्रेम-मञ्जिलमें परमानन्द-प्रेम-सिन्धुमें लहराती रहती हैं।

राधिका आज आनन्दमें डोलै।
साँवरे चन्द गोविन्दके रँग भरी,
दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोलै।।
पहरि तन नील पट
कनक-हारावली[१]
हीर-हारावली[२]
पुष्प-हारावली[३]
मुक्त हारावली[४]
रत्न-हारावली[५]
हाथ लै आरसी रूप कौं तोलै।
कहत श्रीभट्ट ब्रजनारि नागरि बनी
कृष्णके सीलकी ग्रन्थिका खोलै।।

इस प्रणय–मञ्जिलमें श्रीराधारानी श्रीकृष्ण-विषयक अनुरागसे पूर्ण छलकती होनेके कारण श्रीकृष्णवल्लभा हैं। वे श्रीकृष्णप्रेमकी जीती-जागती पुतली, कृष्ण-माधुर्यमयी, श्रीकृष्णके प्राणोंकी सञ्जीवनी बूटी हैं। वे श्रीकृष्णप्रेमके नशेमें मतवाली हुई घूमती हैं और विलासमें उनको उन्मत्त बना देने वाली हैं।

इस प्रणय-मञ्जिलमें श्रीराधाकी कैसी विलक्षण शोभा है ! उनकी माँग मोतियोंसे दमकती रहती है, अलकावली ढुरढुरकर मुखमण्डलको रह-रहकर संस्पर्श करती है। वे रूप एवं प्रेम-गुणोंकी निधान हैं। उनकी लहरदार वेणी नागिनको भी लज्जित करती है। उनके अंगोंमें मेघमालाके सदृश श्याम वस्त्र सुशोभित हैं। नेत्रोंमें बाणकी नोकके समान काजलकी पतली रेखा है। मस्तकपर लगा तिलक मानो सौभाग्यकी अचल रेखा-सा है। बिम्बके सदृश लाल अधरोंमें

दन्तपंक्ति अनारके दानोंकी भाँति शोभा दे रही है। उनके चिबुकपर एक मसिबिन्दु है। सुन्दर हाथोंमें वलय, कङ्कण, चूड़ियाँ, अँगुलियोंमें अँगूठियाँ विजड़ित हैं। नाकमें रतिकलाओंकी निधिस्वरूपा बेसर लटक रही है। कानोंमें कर्णफूल और कमरमें रुनझुन करती करधनी है। वे वक्षस्थलपर श्रीकृष्णानुरागमयी लाल कञ्चुकी धारण किये हैं। उसमें श्रीकृष्ण-प्रीतिमयी मुक्तालड़ियाँ जड़ित हैं। नूपुरकी ध्वनि अतिमन्द है। चरणनख चन्द्रमाकी भाँति चमक रहे हैं। उनके अंगोंसे अत्यधिक सौरभ निस्सृत हो रही है। उनके रूपदर्शनसे उनके प्रियतमका हृदय स्नेह-तरंगोंसे अभिभूत हो रहा है। वे मन्द-मन्दस्वरमें गुनगुनाती हैं। उनके इस रागमय गायनपर श्रीकृष्ण पूर्णतया वशीकृत हो रहे हैं। उनके प्रियतम इस प्रणय-प्रासादमें सदैव उनको गलबाँही दिये रहते हैं। जहाँ-जहाँ किशोरीकी दृष्टि पड़ती है, सर्वथा आधीन हुए-से श्रीकृष्ण उधर ही देखते हैं। वे उनके साथ-साथ लगे हुए ही घूमते हैं। रसिक कवि वल्लभ (गो. श्रीहरिरायजी) इस प्रणय-मञ्जिलमें विराजित प्रिया-प्रियतमकी छवि निहारते हुए गाते हैं –

बैठे हरि राधा-संग कुञ्ज भवन अपने रंग,
कर मुरली अधर धरें सारँग मुख गाई।
मोहन अति ही सुजान, परम चतुर गुन-निधान,
जान बूझि एक तान चूकि कैं बजाई।।
प्यारी तब गह्यौ बीन सकल कला गुन प्रवीन,
अति नवीन रूप सहित वही तान सुनाई।
वल्लभ गिरिधरन लाल रीझि देत अंकमाल,
कहत भलैं-भलैं जु लाल सुन्दर सुखदाई।।

श्रीराधामाधवकी मधुर लीला अनन्त है। जिन भाग्यवानोंके मानस नेत्रोंमें इसका उदय होता है, वे ही इसके आनन्दका अनुभव करते हैं। वैसे अनिर्वचनीयका निर्वचन तो असंभव ही है। **'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्'।** यह निर्मल प्रेम-सम्बन्ध विशुद्ध आनन्दरूप है। यह कबसे है, कुछ पता नहीं; परन्तु यह नित्य निरन्तर जा रहा है अनन्तकी ओर। यह रस न कभी बासी होता है, न इसका स्वाद ही बिगड़ता है। यह नये-नये रस-सुखकी सृष्टि करता रहता है।

श्रीराधाका जीवन केवल श्रीकृष्ण-सुखमय है। वियोगव्यथामें उनका आर्त्त क्रन्दन भी प्रियतम-सुखके लिये है। **वस्तुतः प्रणयका अर्थ है – प्रियतमपर अपना ममत्वजन्य प्रगाढ़ अधिकार एवं साथ-ही-साथ प्रियतमका भी अपनेपर सम्पूर्ण अधिकार।** प्रणयभावमें जो प्रियतम पूर्ण निरावरण संभोग प्रदान करनेका अधिकार रखता है, वह दूर, विलग होनेका भी अधिकार रखता है। अतः श्रीराधाको संयोगमें परमानन्दरसकी जितनी अनुभूति होती है, वियोगमें भी वे उससे भी अधिक रसमत्ततामें डूबी रहती हैं।

प्रणय-मञ्जिलमें संयोग एवं वियोग दोनोंका ही विलक्षण सङ्गम होता है। संयोगमें तो समय-स्थान आदिकी निर्बाध स्थिति नहीं रहती, बहुतसे प्रतिबन्धक रहते हैं, केवल एक ही स्थानपर परस्पर मिलन-सुख मिलता है; किन्तु वियोगमें समय-स्थानकी कोई बाधा नहीं, सर्वत्र निर्बाध स्थिति है। प्रियाको अपने प्रियतम-वियोगके दिव्योन्मादमें उनसे सर्वत्र मिलनका अनुभव तथा उनके सर्वत्र दर्शन होते हैं। श्रीराधा अपनी सखी ललितासे कहती हैं –

सङ्गम-विरह विकल्पे वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्य।
एकः स एव संगे त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे।।

"अरी सखि ! यदि प्रियतमसे मिलन एवं विरहके बीच मुझे कोई विकल्प चुनना हो तो मैं प्रियतमका विरह ही चाहूँगी, क्योंकि मिलनमें तो वे केवल एक ही स्थानमें मुझे दिखते हैं, किन्तु विरहमें तो वे तीनों लोकोंको आत्मसात् कर लेते हैं।"

अब प्रणय-मञ्जिलकी विरह-लीलाका आस्वादन करें – श्रीराधा रसिकेन्द्रशिरोमणि प्रियतम श्रीकृष्णके साथ निकुञ्जमें प्रणयलीलारत हैं। नाना प्रकारका दिव्य रसालाप वे परस्पर कर रहे हैं। प्रिया अपने प्रियके बाहुपाशमें बँधी प्रियतमको विशेष सुखानुभव होता जानकर अतिशय आह्लाद सुधा-सरितामें बही जा रही है। उनमें परम अनिर्वचनीय रसमत्तताका आविर्भाव हो रहा है। सहसा प्रियतममें सङ्कल्प जागता है कि संयोगजन्य रसमत्ततामें तो प्रिया इस समय हैं ही, क्या विरहजन्य संतापमें भी उन्हें यह रसमत्तता बनी रहेगी ?

सत्यसङ्कल्प प्रियतममें ऐसी इच्छा जगते ही प्रियाके प्रणयसिन्धुमें अकस्मात् आत्यन्तिक बाढ़ आ जाती है। प्रगाढ़ प्रणय ही इस प्रेमोत्कर्षका कारण होता है। इस अवस्थामें प्रियामें एक ऐसी विलक्षण तृष्णाका उदय होता है, जिससे सम्मुख आलिङ्गनबद्ध प्रियतम जैसे हैं ही नहीं – इस प्रकार उन्हें अनुभव होने लगता है। नेत्रोंके बाहर जो प्रियतमकी छवि है वह इस प्रकार प्रतीत होने लगती है, मानो यह तो हृदयका स्मृतिजन्य ध्यानमात्र है।

प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः।
या विश्लेषधियाऽऽर्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते।।(उज्ज्वलनीलमणि)

प्रियतमके पास रहनेपर भी प्रेमके तीव्र उत्कर्षके कारण जहाँ उनके विरहकी स्फूर्ति होती है और उससे भाँति-भाँतिके विरह-विकारोंका विकास होता है, उसे प्रेमवैचित्त्य कहते हैं।

बस, परमानुरागमयी श्रीराधा विषम विरहतापसे विकल हो जाती हैं और अत्यन्त उद्घूर्णित होकर दाँतोंमें तृण दबाकर कहने लगती हैं – 'सखि ! मेरे प्रियतम प्राणवल्लभ कहाँ हैं ? उनके तत्क्षण दर्शन कराओ।' श्रीराधाकी इस प्रेम-वैचित्यजन्य विह्वलताको देखकर प्रियतम विस्मित हो जाते हैं।

प्रियाके शरीरमें प्रेम-वैचित्त्यके कारण विविध प्रकारके विरह विकार उत्पन्न हो जाते हैं। स्वजनप्रेमरसास्वादनपरायण प्रियतम प्रियाकी विचित्र विरह-भंगिमाएँ, प्रेमविकार – वैचित्त्यको देख-देखकर मुग्ध होने लगते हैं। प्रेम-वैचित्त्योन्मादिनी प्रबल विरह-संतप्ता प्रिया – 'हे नाथ ! हे रमण !! हे मेरे जीवनके आधार !!! तुम कहाँ चले गये , तुम कहाँ जा छिपे ?' – इस प्रकार अतिशय करुण स्वरमें चीत्कार करने लगती हैं। कभी प्रिया अपने प्रियतम नीलमणिकी गोदमें ढुलक पड़ती हैं, कभी उन्मादभरी उनसे वार्त्तालाप करने लगती हैं। राधा-प्राणप्रियतम नीलसुन्दर अपनी प्रियाकी विचित्र प्रेमावेश-भंगिमाको देख-देखकर पुलकित हो उठते हैं। अब उनसे नहीं रहा जाता। वे उसे प्रबुद्ध करनेको उद्यत हो उठते हैं। वे चेष्टापूर्वक किसी प्रकार अपनी प्रियतमाका प्रेमवैचित्त्य भङ्ग करते हैं। इस प्रकार प्रणय-भवनमें प्रिया-प्रियतम अनेक प्रकारकी भावमयी मिलन-विरहलीलायें करते रहते हैं।

राग-मञ्जिल

प्रणय भावके परमोत्कर्षपर राग-मञ्जिल खड़ी होती है। राग भावमें आरूढ प्रियाको प्रियतम नीलसुन्दरके लिये प्राप्त होनेवाले महान् दुःख भी सुखरूप भासते हैं।

श्रीकृष्ण गिरिराज गोवर्धनपर एक निकुञ्जमें विराज रहे हैं। प्रिया श्रीराधाके पास घनी दुपहरीमें उनसे मिलनका सङ्केत आता है। उन दिनों ज्येष्ठ मास होता है एवं निदाघ अपने पूरे जोरसे पृथ्वीको तप्त कर रहा होता है। प्रिया श्रीराधा नंगे पैरों मध्याह्नमें रविपूजनका बहाना लेकर चल पड़ती हैं। सभी सरोवर सूख चुके हैं, हरियालीका नामोनिशान नहीं है, भूमि सूखे तृणोंसे पैरोंको विद्ध कर रही है; किन्तु किसी भी विघ्न-बाधाकी परवाह न करते हुए प्रियाको प्रियतम-मिलन आकांक्षित है – इसलिये कि मिलनेसे प्रियतमको सुख होता है। वे अपने सुखके लिये उनसे नहीं मिलतीं। प्रियाका तन न तो अपना तन है, न ही उनका मन ही अपना मन है।

सिद्ध रसिक सन्त श्रीपोद्दार महाराज कहते हैं –

निज तन-मन जिनके नहीं, प्रिय-तन-मनकौं धार।
प्रियतममय राधा-सरिख सती नाहिं संसार।।

इसीलिये अनुसूयादि पतिव्रता-शिरोमणियाँ भी राधा-भाव चाहती हैं। श्रीकृष्ण सबका पार पा जाते हैं, उनका पार कोई नहीं पाता। किन्तु अपनी प्रियाके रागका वे भी पार नहीं पा सकते।

प्रेम-महलकी इस रागरूपी मञ्जिलमें राधा प्रियतमके लिये ही जीवित रहती हैं । वे नखसे शिखातक श्रीकृष्णके लिये ही हैं। श्रीकृष्ण जिस रूपमें उनको देखना चाहें, वे वैसी ही सज जाती हैं। रागमञ्जिलमें उनका खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना सब प्रियतमके लिये ही होता है। वे श्वास भी अपने प्रियतमके लिये लेती हैं। प्रियतम यदि चाहें कि राधा मुझे गाली दें, मेरा अपमान करें, तो वे उनकी तुष्टिके लिये वैसा करनेसे भी नहीं हिचकतीं। क्षोभवश किसीको गाली देना तो कामजनित क्रोधका कार्य है। किन्तु प्रियतमको अधिक प्रेमरसका आस्वादन इससे होता हो तो राधाको उन्हें गाली देनेमें भी सर्वथा निषेध नहीं है। प्रियतमकी चाह पूरी करनेके लिये यदि उनकी अवज्ञा करनी पड़े तो यह भी उन्हें स्वीकार है। यह भाव – राग कहलाता है।

'रञ्जयतीति रागः' श्रीकृष्णको सुखदानके लिये, उनके रञ्जनके लिये, अपने सर्वस्वको तुच्छातितुच्छ मानकर न्यौछावर कर देना ही 'राग' है। राग-मञ्जिलमें राधाका मधुर प्रेम एक-से-एक विघ्नों – अन्तरायोंके आनेपर भी अभेद्य, अखण्ड, अक्षुण्ण और अविचलित रहता है। इस रागमञ्जिलमें राधाका अपूर्व शृङ्गार होता है। स्व-सुख-इच्छासे रहित अपने प्रियतमकी अनन्य ममताके ही वे अलङ्कार धारण करती हैं। प्रियतम-मिलनकी आशामें अनन्त दुःखोंको सुख-स्वरूप मानना ही इनके नेत्रोंमें अञ्जन लगा रहता है। प्रियतम-अमिलनमें सकल सुखोंका महाघोर दुःखमय प्रतीत होना ही इनके अङ्गोंमें कस्तूरी-चन्दन-पङ्कका लेप है। प्रेमसिन्धुमें उठते इस रागभावके कारण ही श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्णको सदैव अपने वशमें रखती हैं।

अनुराग-मञ्जिल

रागमहलके ऊपर अनुराग भावकी मञ्जिल है। अनुराग-भावमें प्रिया राधा नित्य-निरन्तर नये-नये रूपमें परिणत होते अपने प्रियतमके सौन्दर्य-माधुर्यका आस्वादन करती हैं।

'एक दिनकी बात है, अखिल विश्वको मोहित करनेवाले मोहन प्रियतम प्रियाके पार्श्वमें ही विराजित होते हैं। वृन्दासखीके कुञ्जमें वृन्दा इन युगल दम्पतिकी सेवा कर रही होती है। अचानक श्रीराधाका प्रेम भावकी उन्मत्त लहरोंमें उमड़ने लगता है। वे भावाविष्ट हुई वृन्दासे पूछती हैं – 'वृन्दे ! बहिन, यह तो बता ! मेरे पास कौन पुरुष बैठा है ?' वृन्दा कहती है – 'सखि ! इन्हें पहचानती नहीं ? ये हम सभीके प्रियतम श्रीकृष्ण हैं।' श्रीराधारानी आश्चर्यचकित होकर बोल उठती हैं – 'श्रीकृष्ण' ? इनको तो अनेकों बार अपने उरका हार बना चुकी हूँ। वे तो निश्चय ही मेरे नेत्रोंमें अञ्जनवत् नित्य समाये रहते हैं। परन्तु ये, जैसा मैं आज देख रही हूँ, इतने सुन्दर तो कभी नहीं थे ? जैसा अपूर्व माधुर्य इस समय इनमें व्यक्त हो रहा है, वैसा माधुर्य तो अबतक उनमें मुझे कभी देखनेमें नहीं आया ! ओह ! इस समय तो मेरे प्रियतमके एक-एक अङ्गके एक-एक रोमसे शोभाकी ऐसी श्री बह रही है, कि उस सुधाकी एक बूँदके भी आस्वादन करनेकी शक्ति मेरे नेत्रोंमें नहीं है।'

प्रतीकेऽप्येकस्य स्फुरति मुहुरङ्गस्य सखि या।
श्रियस्तस्याः पातुं लवमपि समर्था न दृगियम्।।

अनुराग भावकी एक और झाँकी करें – एक बार ललिताकुञ्जमें प्रिया श्रीराधा ललिताके साथ बैठी होती हैं। सहसा एक पक्षी श्रीकृष्णकी प्रेम-पाती ललिताको देता है। ललिता उसे प्रियाको सुनाने लगती हैं। इसी मध्य प्रियाको भावावेश हो उठता है। वे अनुराग-मञ्जिलमें पहुँच जाती हैं। वे ललितासे पूछने लगती हैं – 'बहिन, बोल तो, यह श्रीकृष्ण किसका नाम है ? इस 'कृष्ण' नामने तो मेरे कानोंमें प्रवेश करते ही मेरे चित्तके सम्पूर्ण धैर्यका ही अपहरण कर लिया है। सखि, मुझे भ्रममें मत रख। बोल, यह किसका नाम है ?'

कृष्ण नाम जब तैं श्रवणन सुन्यौ री आली !
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि-भरि आवैं नैन, चित हू न परै चैन,
मुख हू न निकसै बैन,
तनकी दसा कछू औरै भई री।।
जेतेक नेम-धरम कीने री मैं बहु विधि,
अंग-अंग भई हौं तौ श्रवण मई री।
नन्ददास जाके श्रवण सुनत यह गति भई
माधुरी मूरत कैधौं कैसी दई री।।

ललिता श्रीराधाका भावावेश देखकर चकित हो उठती हैं। वे कहती हैं – 'अरी रागान्धे ! तुम कैसी अज्ञताकी बात कर रही हो ? तुम तो नित्य-निरन्तर ही इन श्रीकृष्णके हृदयपर विहार करती रही हो।' प्रिया श्रीराधा कहती हैं – 'सखि ! परिहास मत करो । ठीक बताओ, यह किसका नाम है – जिसने मेरे सम्पूर्ण नियम-धर्मका ह्रास कर दिया और मुझे रोम-रोमसे इस नामका श्रवणासक्त बना दिया । अरी, मेरे नयन बार-बार छलछला उठते हैं और चित्तमें चैन नहीं है। यह किस पुरुषका नाम है जिसके नाम-श्रवणमात्रसे मेरी यह दशा हुई ? जो कहीं वह मेरी दृष्टिमें पड़ गया तो मेरी न जाने क्या गति करेगा?'

तब ललिता कहती है – 'अरी पगली ! अभी-अभी तो मैंने तुम्हें उनके हाथोंमें समर्पित किया था?'

श्रीराधा इसपर बहुत देरतक विचार करती रहती हैं। बहुत सोचनेके पश्चात् वे कहने लगतीं हैं – 'हाँ ! सखि! सत्य है। इन कृष्णको बस, अभी मैंने आज ही देखा है, सो भी जन्मभरमें एक बार बिजली कौंधनेकी भाँति ! – **'सत्यं सत्यमसौ दृगङ्गनमगादद्यैव विद्युन्निभः'।**

एक दिवस निकुञ्जमें श्रीराधारानीकी अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ प्रेमचर्चा हो रही थी तब उन्होंने कुछ ऐसी बातें कहीं, जिन्हें सुनते-सुनते श्यामसुन्दर गद्गद हो गये।

श्रीराधा अपने प्रियतमसे कहती हैं –

'प्रियतम श्यामसुन्दर ! तुम मेरे हो, मैं नित्य तुम्हारी हूँ। कभी-कभी तो प्रियतम ! तुम्हारे प्रति मेरा यह ममत्वभाव इतना प्रगाढ हो उठता है कि उस समय मुझे यही अनुभव होने लगता है कि 'तुम' 'मैं' ही हो, और मैं पूरी तुम ही हो गयी हूँ। हम दोनों सदैव साथ रहते हैं, फिर भी विधाताने न जाने क्यों हमारी दो देहोंमें रचना की है ? मुझमें एवं तुममें यह खेल न जाने कबसे हो रहा है – इसका भी कुछ अनुसंधान नहीं होता। तुमसे जब वियोग होता है तब तीव्रतम मिलनाकांक्षाका उदय हो जाता है, फिर एक-एक पलका अमिलन असह्य हो उठता है, हृदयमें ज्वाला धधक उठती है। उस समय प्रियतम ! मैं रसकी बाढ़ग्रस्त सरितावत् उन्मादिनी बनी विह्वल-विकल तुम्हारी ओर उमड़ उठती हूँ। उधर तुम भी सब सीमाओंको तोड़कर मेरी ओर उमड़ चलते हो। यद्यपि यह हमारा संयोग-वियोग कुछ भी यथार्थ नहीं है, मात्र लीलारस भर है, फिर भी मैं एवं तुम – दोनों स्वयं ही संयोग-वियोग बनकर नये-नये खेल रचते हैं। यह हमारा कैसा चिन्मय रसस्वरूप है कि हमारा विशुद्ध प्रेम ही आश्रयालंबन एवं विषयालम्बन बनकर रमणी-रमणवत् व्यवहार करने लगता है। मुझमें रमणीके सभी लक्षण-अवयव प्रकट हो जाते हैं और तुममें रमणके, एवं हमारा लीला-विलास होता रहता है।'

एक दिवस प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनको देखकर प्रिया चमत्कृत हो जाती हैं और विशाखासे कहती हैं – 'अरी सखि! मेरे प्रियतम कितने सुन्दर हैं, तुम्हें पता है ? देख री, जो मेरी सदृश अनन्त ललनाओंके चित्तरूप पर्वतको पूर्णरूपसे प्लावित कर.दे, ऐसी सौन्दर्य-सुधा-सिन्धुकी तरङ्गोंसे तो उनके अङ्ग-अवयव बने हैं; जो आनन्दकी उत्तरोत्तर अभिवृद्ध लहरोंसे कर्ण-कुहरोंको संप्लावित करते रहें, ऐसी उनकी परिहासपूर्ण वचन-माधुरी है; कोटि शरदिन्दुके समान समुज्ज्वल उनका आनन है। उनके अङ्गोंसे असंख्य पद्मवनोंकी गन्ध उद्भव होती रहती है, अनन्त पद्मदलोंकी सुकोमलता उनके अङ्गोंके सम्मुख तुच्छ है, असंख्य चन्दनवृक्षोंकी सुशीतलता उनसे झरती रहती है। उनका अधरामृत दिव्य पीयूष है। अरी ! उनके अधरोंके सौरभसे मेरा रोम-रोम संप्लावित है। सखि ! वे नव-नवायमान सौन्दर्यके उद्भव मेरे प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके एकमात्र परमाकर्षक आश्रयस्थल हैं।'

सौन्दर्यामृतसिन्धुभङ्गललनाचित्ताद्रिसंप्लावकः
कर्णानन्दिसनर्मरम्यवचनः कोटीन्दुशीताङ्गकः।
सौरभ्यामृतसम्प्लवावृतजगत्पीयूष रम्याधरः
श्रीगोपेन्द्रसुतः स,कर्षति बलात् पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे।।।। गोविन्दलीलामृत।।

जैसे प्रिया श्रीराधारानीको इस प्रियतम-प्रेमकी अनुराग-मञ्जिलमें प्रियतम नित नव-नव सुन्दर दिखते हैं, वैसे ही प्रियतमको भी प्रिया इस अनुराग-मञ्जिलमें नित्य नूतन सुन्दरी अनुभव होती है। रसिक सिद्ध सन्त श्रीपोद्दार महाराज (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की वाणीमें इसका रसपान करें –

कोटि-कोटि कन्दर्प-दर्पहर हैं माधव सौन्दर्यनिधान।
तुम्हें देखते ही बढ़ आयी इनमें सुन्दरता सुमहान।।
माधव हैं सौन्दर्य अतुल, माधुर्य-रस-सुधा-पारावार।
शशि-ज्योत्स्नासे सागरकी ज्यों उठतीं आनन्दोर्मि अपार।।
देखो कैसे विह्वल हो, तव नित नव नूतन रूप पवित्र।
आनन कमल निरीक्षण-सुखमें खड़े विभोर लिखे-से चित्र।।

एक बार एक रूपगर्विता गोपी श्रीराधाके पास आकर उसे समझाने लगी – 'तुम सभी ब्रजकी वनिताएँ अपने कर्तव्य, अकर्तव्य, धर्म, शील एवं ज्ञानको भी जिसके मोहमें तिलाञ्जलि दे चुकी हो, जानती हो वह मात्र लम्पट है, तुमसे रञ्चक मात्र भी प्रेम नहीं करता ? वह अनेक-रमणी-चरित्र-हन्ता क्या किसीसे भी प्रेम कर सकता है ? तुमने ब्रजेशके उस काले-कलूटे पुत्रको न जाने कैसे सुन्दर मान लिया है ? यह तुम्हारी मात्र कामान्धता है। लोक-कुल-वेदकी सब मर्यादाएँ त्यागकर इस प्रकार उन्मादिनी हो जाना तुम्हारे जैसी कुल-शील-पवित्र रमणियोंको कदापि शोभा नहीं देता!' श्रीराधाने उस रूप-शील-गर्विताको इतना ही कहा –

असुन्दरः सुन्दरशेखरो वा, गुणैर्विहीनो गुणिनां वरो वा।
द्वेषी मयि स्यात् करुणाम्बुधिर्वा, श्यामः स एवाद्य गतिर्ममायम्।।

" अरी मेरी हितू ! विशुद्ध प्रेम रूप-गुणकी तथा बदलेमें सुख प्राप्त करनेकी अपेक्षा नहीं करता। वह बिना किसी हेतुके ही होता है, और प्रतिक्षण सहज ही बढ़ता रहता है।"

" हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण असुन्दर होंगे, गुणहीन होंगे, मेरे प्रति द्वेष रखते होंगे – यह सब तेरी दृष्टि है; मेरी दृष्टिमें तो वे सुन्दर-शिरोमणि, गुणियोंमें सर्वश्रेष्ठ , करुणावरुणालय, मेरी एकमात्र गति हैं।"

रसिक सिद्ध सन्त श्रीपोद्दार महाप्रभु इसी भावको अपने सुन्दर पदमें व्यक्त करते हैं –

सखि री ! यह अनुभवकी बात।
प्रतिपल दीखत नित नव सुन्दर नित नव मधुर लखात।।
छिन-छिन बढ़त रूप-गुन-माधुरि, छिन-छिन नूतन रंग।
छिन-छिन नित नव आनँद-धारा, छिन-छिन नई उमंग।।
नित नव अलकनिकी छवि निरखत अलिकुल नित नव लाजै।
नित नव सुकुमारता मनोहर अङ्ग-अङ्ग प्रति राजै।।
नित नव अङ्ग सुगन्ध मधुर अति मनहिं मत्त करि डारत।
नित नव दृष्टि सुधामयि जगके ताप अशेष निवारत।।
नित नव अरुनाई अधरनकी, नित नूतन मुसक्यान।
नित नूतन रस-सुधा-प्रवाहिनि मधु मुरलीकी तान।।
नित नूतन तारुन्य ललित लावण्य नित्य नव विकसै।
नित नव आभा बरन-बरनकी पियके तनु तैं निकसै।।
कछु वै होत न बासी कबहूँ, नित नूतन रस बरसत।
देखत-देखत जनम सिरान्यौ तऊ नैन नित तरसत।।
वे ही आत्माके प्रिय आत्मा मम प्राननिके प्रान।
मेरे परम प्रानवल्लभ वे, प्रानाराम सुजान।।
तेरे अनुभवकी तू जानै तेरी बुद्धि विसाल।
मैं तो अपने मन नित निरखौं नित नूतन नँदलाल ।।
एक बेर तू नैकु निरख लै वा जादूकी झाँकी ।
फिरि तो तू नहिं मानैगी बिन देखे वा छबि बाँकी।।

भाव-मञ्जिल

श्रीराधा परमानुरागमयी हैं। प्रियतमानुरागमें वे अपनेको सदैव भूली रहती हैं। वे अपने तन, मन, वचन, प्राण, आत्मा – सभीसे मुरलीमनोहर ब्रजेन्द्रनन्दन एकमात्र परम प्रियतम नव-नीरद-नील-द्विभुज श्यामसुन्दरका ही नित्य सेवन करती हैं। उन्हींमें उनका पूर्णानुराग जब और प्रगाढ़ होकर अति उद्दाम उत्कृष्ट तरङ्गें लेता है तो वह भाव-समुद्रमें पर्यवसित हो उठता है। श्रीराधाकी प्रियतम-निष्ठ भाव-प्रक्रियाको– इस भावकी पद्धतिको समझना ही दुरूह है। फिर, उसका प्रतिपादन करना तो अति दुरूह कार्य है।

इतना ही कहा जा सकता है कि प्राकृत हो, चाहे अप्राकृत, जब लोक-परलोककी कामना-वासनारूप रजोगुण एवं तमोगुणसे रहित, विशुद्ध सत्वरूप चित्तकी प्रेमसूर्यके प्रकाशके समान जो परमोज्ज्वल वृत्ति है, जिसका प्रकाश स्निग्ध कर देता है, उसीका नाम भाव है।

श्रीकृष्ण-रति ही स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुरागरूप मञ्जिलोंको पार करती हुई भाव-मञ्जिलपर पहुँचती है। भाव प्रियतमका स्मरण करानेवाली किसी भी वस्तुको देखकर उद्दीपित हो उठता है। भावोद्दीपनके समय नाचना, गाना, भूमिपर लोटना, अङ्ग मोड़ना, हुङ्कार करना, अट्टहास करना, जँभाई लेना, लम्बे श्वास छोड़ना आदि अनुभाव प्रकट होते हैं।

यहाँ ध्यान रहे कि 'भाव' जिसका वैष्णव शास्त्रोंमें उच्चातिउच्च प्रेमके रूपमें वर्णन है, शरीरगत आवेग कदापि नहीं है। नाचना, गाना आदि जैसा पूर्व वर्णित है शरीरगत आवेगवश भी होता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने नित्य वर्तमान रहनेवालेके रूपमें 'भाव'का अर्थ 'सत्' किया है। **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'**। किन्तु वैष्णवोंके भावका यह भी अर्थ नहीं है। इस वैष्णवोक्त भावका अर्थ है – 'भगवान् सच्चिदानन्दघन आनन्दस्वरूपकी अन्तरङ्गा आह्लादशक्तिका सारभाव जो 'प्रेम' है , उसका अतिशय विशुद्ध उच्छलित स्वरूप।

यह भावोदय प्राकृत जगत्के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण – तीनों देहोंमें संभव ही नहीं है। चिन्मय देह एवं भावदेह अप्राकृत जगत्में ही संभव हैं। भगवान् एवं उनकी ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाके नित्य विग्रह चिन्मय हैं। ये वस्तुतः देह हैं ही नहीं, ये भगवत्स्वरूप ही हैं। इन नित्य चिन्मय देहोंमें योगमायाका भी परदा नहीं है। योगमायाको भगवान्की जड़ प्रकृति कदापि नहीं मानना चाहिये। मलिना जड़माया जिससे जगत् आच्छादित है भगवद्देशमें प्रवेश ही नहीं कर सकती। योगमाया भगवान्की अन्तरङ्गा शक्ति है। यह भगवान्की आह्लादिनीशक्तिका रूपान्तर है।

भगवान्के भी दो स्वरूप हैं – एक तो चिन्मय स्वरूप, और दूसरा योगमाया समाच्छादित स्वरूप। जहाँ भगवान् सर्वजनदर्शनीय होते हैं, वहाँ योगमाया समाच्छादित रूपमें ही हो पाते हैं। महाभारतके समय कुरुक्षेत्रमें, मथुरालीलामें, द्वारिकाधीश रहकर एवं गोकुलमें भी जब भगवान् सर्वजनके सम्मुख अभिव्यक्त थे, तो योगमाया समन्वित रूपमें ही थे। जहाँ भगवान्की सर्वथा अन्तरङ्ग लीला होती है, जो गोकुल, वृषभानुपुरके सर्व गोपोंसे भी अदृश्य होती है, जहाँ शिव-सनकादिका भी प्रवेश असंभव है, वहाँ योगमायाका भी परदा हटा रहता है। परम अन्तरङ्ग निकुञ्जलीलामें जो प्रेमी जन भगवान्के साथ होते हैं – उनके प्रेममें पूर्ण ज्ञान अन्तर्हित होता है। उन प्रेमी जनोंको जो सच्चिन्मयी दिव्य देह प्राप्त होती है, उसमें ही यह वैष्णवोक्त 'भाव' अभिव्यक्त होता है। इसीलिये श्रीराधा एवं उनकी कायव्यूहस्वरूपा गोपियोंकी देहकी संज्ञा भावदेहके रूपमें की जाती है।

भगवान्के दिव्य धाममें भगवान्के दिव्य परिकरोंको जो प्रेमशक्ति दी गयी है, उस प्रेमशक्तिके परमोच्च उच्छलित विशुद्ध स्वरूपको 'भाव'कहा जाता है। भावदेहकी प्राप्तिके बिना किसीका भी भगवान्की अन्तरङ्ग प्रेमलीलामें प्रवेश असंभव है।

प्राकृत जड़ जगत्में और दिव्य अप्राकृत प्रेमलीला-जगत्में जमीन-आसमानका अन्तर है। प्रेमलीलाजगत्में प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी अचिन्त्य अमल मधुरतम लीला नित्य चलती रहती है। यहाँ एकमेवाद्वितीय परात्पर नित्य तत्व ही अनन्त नाम-रूपोंमें अपना अचिन्त्य प्रकाश करता हुआ नटनागर श्यामसुन्दर एवं गोपियोंके रूपमें प्रेमलीलाविहार करता है। लीलाविहारका यह महान् मधुर अगाध सागर अत्यन्त प्रशान्त होते हुए भी नित्य उछलता रहता है। इसमें ही रति, प्रेम, भाव, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभावकी विविध मनोहारिणी अलौकिक भावतरङ्गें एक-से-एक बढ़कर वेग लिये उठती रहती हैं। यह सब कल्पना नहीं, सत्य है। ये प्राकृत देहजन्य आवेग नहीं होकर वास्तविकता हैं, वस्तुस्थिति हैं।

व्यवहारकी भाषामें 'भाव'का अर्थ भावना ही माना जाता है। भावसे भावित पुरुष-स्त्रीमें होनेवाली मनोवृत्तिको भावुकता, भाव-प्रवणता कहा जाता है। जो विचारशील नहीं है, विवेकहीन, मूढ़ है, कल्पनाराज्यमें विचरण करता है, लोक-व्यवहारमें उसे भावुक संज्ञा दी गयी है। सांसारिक कामजनित मोहको ही जगत्में प्रेम, अनुराग माना जाता है, अतः ऐसे काममिश्रित मोहजन्य भाव जिनके अन्तस्तलमें अधिक उठते हैं, उनको भी भावुक संज्ञा दी जाती है। ऐसे मोही व्यक्तियोंका हृदय भावना करते-करते द्रवीभूत हो जाता है। जिन लोगोंमें थोड़ा श्रद्धा-आदर होता है, उन्हें भी भावुक कहा जाता है। भावुक व्यक्ति भावनाके अनुसार अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ करके उस कल्पना-राज्यमें विचरते रहते हैं।

वैष्णवोंकी यह 'भाव-मञ्जिल' कल्पनाशील मनकी मात्र ऊहापोहरूप तरङ्ग नहीं है। यह तो विशुद्ध आनन्दस्वरूप रसराज प्रियतम श्रीकृष्णकी अन्तरङ्गा ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाके आह्लाद-सार – प्रेमकी परमोच्च लहर है। यह प्राकृत देहकी कल्पनाप्रसूत भावना नहीं है। यह सर्वथा यथार्थ घनसत्य है, जो अनन्त सृजन एवं अनन्त प्रलयोंमें भी एकरस सम सत्य है।

यह सत्य है कि प्राकृत देहसे प्रेमसाधना जहाँ साधनाकर्मके रूपमें की जाती है, वहाँ भगवान्के रूपका ध्यान किया जाता है। जैसे भगवान्के रूपका ध्यान होता है, ठीक उसी प्रकार उनके प्रेमका, उनकी मुरलीध्वनिका, उनके आलिङ्गन-स्पर्शका, उनके रसका, गन्धका भी ध्यान होता है। उच्च साधन-निष्ठा में भगवान्की मधुर वंशीध्वनि साधकको सुनाई भी पड़ती है। उनके रूपको जैसे साधक स्पष्ट देखता है, वैसे ही साधक भगवान्के अधरामृतका भी पान करता है, उनके स्पर्शकी पुलकमें पुलकित होता है। उनके अङ्गोंकी गन्ध भी उसे मतवाला कर सकती है। ध्यानमें मनुष्य यह भी देख सकता है कि उसने भगवान्के चरण पकड़ लिये, उन्होंने मेरे मस्तकपर हाथ रख दिया। उच्च साधना-सम्पन्न भक्तमें यह सब प्रकट होता है। यह ध्यानकी अत्यन्त कल्याणप्रद ऊँची स्थिति है। परन्तु यह लौकिक प्राकृत भक्तिराज्य भर है। इससे उच्च स्तरपर ज्ञान-राज्य है, जिसका गीतामें भगवान्ने **'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति'** कहकर वर्णन किया है। उससे भी उच्चतम स्थिति किसी बिरले कृपापात्र भक्तमें जब व्यक्त होती है तो उसे एक – किन्तु नित्य दो बने हुए श्रीराधा-माधवके अतिशय उज्ज्वल धाममें प्रवेश मिलता है। तब उसे सत्यके परम सत्य – रासेश्वरी नित्यनिकुञ्जेश्वरी एवं रसराज सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं। ये राधाकृष्ण योगमायासे अनावृत साक्षात् परात्पर पूर्ण परब्रह्म हैं। उनकी कृपासे कृपापात्र भक्तका जिस परम मङ्गलमय क्षणमें उनकी परम अन्तरङ्ग, निगूढ़ प्रेमलीलामें प्रवेश होता है, तब उसे महासिद्ध 'भावदेह' प्राप्त होती है।

यहाँ पुनः ध्यान रखें कि न तो प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा ही भावदेहमें हैं, न ही उनकी कायव्यूहरूपा गोपियाँ ही भावदेहमें हैं। यह भावदेह तो प्रथमतया साधककी मात्र इस राज्यमें प्रवेशदेह है। इस भावदेहको प्राप्त करके ही शिवजी महाराज नरसी भक्तके साथ रासमें प्रविष्ट हुए थे। यह भावदेह सेवामें प्रवेश कराके स्वतः ही झड़ जाता है। तब भावदेहमें स्थित लीला-परिकरको श्रीराधारानीका कायव्यूहत्व प्राप्त होता है। फिर लीलापरिकर अपने प्रिया-प्रियतमके समान ही चिन्मय दिव्य भगवद्विग्रह ही हो जाता है और जिस प्रकार बालक अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, उसी प्रकार परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके साथ उसकी अनादि अनन्त 'रमण' क्रिया होती रहती है।

यह प्रेमलीलाजगत् परम विलक्षण है। यहाँ एक पूर्णतम परात्पर परब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही लोक है, जगत् है, प्राणी-समुदाय है, सूर्य-चन्द्र-पृथ्वी-जल-वायु-प्राण-आकाश है। अतः इस लोककी बात हम माया-मुग्ध मानवोंके लिये तर्कातीत है।

हमारा हृदय वासनासे इतना ग्रस्त है कि चिन्मय परमात्मलोककी सच्चिदानन्दमयी लीलाओंमें भी हम अपने मनके पापोंकी छाया देखते हैं। जहाँ मायिक जगत्की तो बात ही क्या, योगमायाका भी आवरण नहीं, उन प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णकी व्यवधानरहित मिलनलीलामें जो प्रेमोच्छलन रूप 'भाव' है, उसे हम प्राकृत प्राणी भला कैसे समझें?

यहाँ इतना विस्तार पूर्वक विश्लेषण करनेकी आवश्यकता इसीलिये हुई है कि साधक इस भाव-मञ्जिलमें जो उद्दीपनजन्य विशुद्ध सात्विक अष्ट विकार होते हैं, उन विकारोंको लौकिक नृत्य, गायन, भूमिपर लोटना, अङ्ग मोड़ना आदि शारीरिक क्रियायें नहीं समझ लें। ऐसी क्रियायें अनेक बार हिस्टीरिया नामक रोगमें भी घटित होती हैं। इस रोगमें भी हुङ्कार करना, अट्टहास करना, जँभाई लेना, लम्बे-लम्बे श्वास छोड़ना, मूर्च्छित हो जाना आदि अनुभाव होते हैं। परन्तु ये रोगजन्य विकार हैं। इसी प्रकार अनेक बार दंभी लोग भी प्रेमाभिनयकर लोगोंको प्रभावित करनेके लिये ऐसे आचरण

करते हैं। परन्तु हिस्टीरिया आदि रोगोंमें जो नाचना, गाना, अङ्ग मोड़ना, हुङ्कार करना आदि क्रियायें होती हैं, वे मनकी ज्वाला एवं अशान्तिसे प्रकट होती हैं। इसी प्रकार जो दंभसे दिखाने, प्रदर्शनके लिये ऐसी क्रियाएँ करते हैं वे भी किसी प्रतिष्ठा, बड़ाई आदिकी कामनावश ही ऐसा करते हैं। कामना तो एक प्रकारकी अग्नि है जो मनमें विषयगत अशान्ति तथा चित्तमें ज्वाला उत्पन्न करती है। आघात पानेपर यह क्रोधका कराल रूप धारण कर लेती है। अतः इन नाचने आदि प्रदर्शनकी क्रियाओंकी उस परमानन्दघन प्रेमोद्दीपनजन्य भावसे कोई संतुलना हो ही नहीं सकती।

इस भाव-मञ्ज़िल'में श्रीराधारानीका भावोद्दीपनजन्य गायन, नर्त्तन क्या है, यह कौन कहे, कैसे कहे? पू.गुरुदेव एवं रसिक सिद्ध सन्त पोद्दार महाराज जैसे प्राणी जिनका इस भाव-राज्यमें प्रवेश है, वे ही इस आनन्दको, इस उमड़ते विशुद्ध आनन्दजन्य गायनको, नर्त्तनको जानते हैं, परन्तु वे भी इस मादक आनन्दको लेशमात्र पाकर ही भावसमाधिमें गूँगे, अन्धे एवं बहरे हो जाते हैं। वे इस आनन्दपूर्ण नर्त्तनको मायिक वाणी दे नहीं पाते। जो इस अप्राकृत, अलौकिक भाव-मञ्ज़िलमें पहुँचते हैं, वे इस प्राकृत लोकको सर्वथा सर्वांशमें विस्मृत कर देते हैं, क्योंकि मानव-मस्तिष्ककी संवेदनाशक्तिकी भी एक सीमा है। मानव मस्तिष्क मात्र वैषयिक आनन्दाभासको ही ग्रहण कर सके – ऐसा ही क्षीणशक्ति यंत्र है। इसका प्रयोजन ही सीमित है। अतः जो भी महान् रसिक सिद्ध सन्त हैं, वे इसमें निमग्न होकर आत्ममूढ़, रसमूढ़ हो जाते हैं।

अतः इतना ही कहना बनता है कि यह कल्पना-लोक नहीं, परात्पर सत्यका दिव्य लोक है, जिसका इस काव्यमें पू.गुरुदेवके द्वारा पूर्ण समाधिभाषामें वर्णन हुआ है।

शास्त्रोंमें श्रीराधाके जिन विशुद्ध सात्विक भावोंका वर्णन आता है, ये सात्विक भाव आठ हैं – स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु एवं प्रलय। ये विशुद्ध सात्विक अष्ट प्रेम-विकार भी स्निग्ध, दिग्ध एवं रूक्ष – इस भाँति तीन प्रकारके हैं।

स्निग्ध सात्विक भावोंका उदय सिद्ध रसिक भक्तों अथवा राधामुख्या गोपाङ्गनाओंमें ही होता है। जिनके अन्दर श्रीकृष्णप्रेम उदय हो गया है, उन असंख्य गोपाङ्गनाओं एवं ब्रजभक्तोंको 'जातरति' की श्रेणीमें रखा जाता है। अजातरति उन्हें कहा जाता है जिन भाग्यशाली जनोंका ब्रजलीलामें प्रवेश अथवा ब्रजमें जन्म तो हो गया है, परन्तु अभी उनमें प्रेमोदयका प्रसङ्ग आया नहीं है, कालान्तरमें प्रेमोदय होने वाला है, वर्तमानमें भी उनमें श्रीकृष्ण-विषयक विस्मय एवं उनकी चर्चादि, गुणगान सुनकर जो आनन्दका अभ्युदय होता है, इस आनन्दसे जो भाव उदय होते हैं, उन्हें रूक्ष भाव कहा जाता है। श्रीराधारानी एवं उनकी कायव्यूहस्वरूपा गोपाङ्गनाओंके अतिरिक्त असंख्य मञ्जरियाँ एवं दासियाँ हैं, जिनमें प्रिया-प्रियतमके प्रति प्रेमोदय हो चुका है, उनमें जिन सात्विक भावोंका प्रकाश होता है, उन्हें दिग्ध सात्विक भाव कहते हैं।

श्रीराधारानीके स्निग्ध सात्विक भावोंकी झाँकी श्रीरूपगोस्वामी महोदय इस प्रकार कराते हैं –

अश्रण्णग् निवृष्टिभिर्द्विगुणयन्त्यर्कात्मजानिर्झरम्
ज्योत्स्नीस्यन्दिविधूपलप्रतिकृतिच्छायं वपुर्विभ्रती।
कण्ठान्तस्त्रुटदक्षराद्य पुलकैर्लब्ध्वा कदम्बाकृतिम्
राधा वेणुधर प्रवातकदलीतुल्या क्वचिद् वर्त्तते।।

श्रीललिता श्रीश्यामसुन्दरसे श्रीराधारानीकी विरह-दशाका वर्णन करती हुई कहती हैं –

'हे वेणुधर ! तुम्हारे अदर्शनसे श्रीराधाकी दशा आज कैसी हो रही है ! उनके नेत्रोंसे जलकी इतनी अधिक वर्षा हो रही है कि उससे यमुनाजीका जल दूना हो गया है। उनके शरीरसे इस प्रकार पसीना झर रहा है, जैसे चाँदनी रातमें चन्द्रकान्तमणि पसीजकर अमृतवर्षा बहाने लगती है। उनका शरीर मणिवत् स्तब्ध (निश्चेष्ट) जड़ हो गया है। उनका वर्ण उसी मणिवत् पीला पड़ गया है। उनके कण्ठकी वाणी रुक-रुककर निकलती है तथा उसका स्वरभङ्ग हो

गया है। उनका सर्वांग कदम्बकी केसरके समान पुलकित हो रहा है। भयङ्कर आँधी-पानीमें जैसे केलेका वृक्ष काँपकर भूमिपर गिर जाता है , वैसे ही उनकी अङ्गलता भूमिपर गिर पड़ी है।

{ प्राकृत जगत्का प्राणी इस वर्णनको अतिशयोक्ति मात्र ही कहेगा, किन्तु वस्तुतः भावोदयके समय ऐसी दशा तत्कालीन सिद्ध रसिक सन्तों - 'श्रीचैतन्य महाप्रभु आदिकी तत्कालीन वैष्णवोंने प्रत्यक्ष देखी है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके शरीरमें काष्ठ मौनके समय श्रद्धालु भक्तोंने इन सात्विक भावोंमेंसे अनेक भाव इसी वेगसे प्रकट होते प्रत्यक्ष देखे हैं। महासिद्ध रसिक सन्त श्रीपोद्दार महाराजमें भी अनेक भाव उनके भाव-समाधिकालमें प्रकट होते देखे गये हैं। }

ये सब प्रेममहलकी 'भाव-मञ्जिल'में उठनेवाली महान् भावतरङ्गें हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपाङ्गनासमूह एवं उनकी मधुरतम लीलाओंमें कहीं कोई भेद नहीं है। रस-स्वरूप श्रीब्रजेन्द्रनन्दन ही अनन्त रसोंके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही अनन्त रसोंका समास्वादन करते हैं। वे ही आस्वादक, आस्वाद्य एवं आस्वादन बने हैं, तथापि श्रीप्रिया-प्रियतमका मधुरातिमधुर लीला-रस-प्रवाह अनादि अनन्तरूपसे चलता रहता है।

प्रिया श्रीराधामें पाँच प्रकारके भाव उदय होते हैं। जो प्रायः प्रकट होते हैं, किन्तु जिन्हें प्रिया राधा गुप्त रखनेकी योग्यतावश प्रकट नहीं होने देती, वे भाव **धूमायित** कहे जाते हैं।

कभी-कभी जब प्रियामें एक ही समय दो-तीन भाव, अश्रु, स्वेद, कम्पादि प्रकट हो जावें और प्रिया उन्हें संवरित नहीं रख सकें तब उस भाव-प्रवाहको शास्त्र **ज्वलित** भाव-प्रवाह कहते हैं। ज्वलित भाव-प्रवाहको रोकना अतिशय कठिन होता है।

कभी-कभी ऐसी भाव-धारा उमड़ती है कि ये सात्विक भाव तीन-चार-पाँच एक साथ प्रकाशित हो उठते हैं, तब इस भाव-प्रवाहको शास्त्र **दीप्त** भावकी संज्ञा देते हैं।

अत्यन्त उत्कर्षको प्राप्त एक ही साथ उदय होनेवाले छः, सात, एवं आठ भावोंका जब एक ही समय प्रकाश होता है तो उसे शास्त्र **उद्दीप्त** भावकी संज्ञा देते हैं। यह उद्दीप्त भाव ही महाभावमें परिणत हो **सुदीप्त** हो उठता है।

उपरोक्त उदाहरणमें राधारानीमें एक साथ ही अश्रु, स्वेद, स्तंभ, वैवर्ण्य, स्वरभंग, कम्प, एवं प्रलय– इन सात भावोंका उदय हो रहा है। इसीलिये यह सुदीप्त भावका ही लक्षण है।

महाभाव-मञ्जिल

स्नेह, प्रेम, मान, प्रणय, राग, अनुराग एवं भाव-मञ्जिलोंको पार करता हुआ श्रीराधारानीका परम त्यागमय प्रेम अन्तमें जिस परमोच्च मञ्जिलमें पहुँचता है, उसे 'महाभाव' कहा गया है।

यह महाभाव-मञ्जिल सूर्यके सदृश है। सूर्यके दो स्वभाव हैं – जिसके साथ सूर्यका सम्पर्क होता है, उसके अन्धकारका नाश कर देना और अपनी किरणमालासे उसे स्नान करा देना। इसी प्रकार 'महाभाव' भी भगवान् श्रीकृष्णकी असीम कृपासे जिसके हृदयमें उदय हो जाता है, उसके हृदयमेंसे अनादि कालसे स्थित स्वसुखतात्पर्यरूप अन्धकारको सदाके लिये हर लेता है और निज सम्बन्धी जन मात्रके भीतर-बाहरको नित्य परमानुरागमय बना देता है।

{ यह हमारे परम सौभाग्यका विषय है कि हमें महारसिक सिद्ध संत श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा – दोनों ही ऐसे सिद्ध संत मिले, जो महाभाव-सिन्धुमें पूर्णतया निमग्न महापुरुष थे }

महाभावकी रूढ़ एवं अधिरूढ़ – ये दो अवस्थाएँ होती हैं। महाभावकी जिस अवस्थामें सात्विक भाव उद्दीप्त हो उठते हैं, उसे रूढ महाभाव कहते हैं। इस रूढ़ महाभावकी ब्रजगोपियोंमें ही अभिव्यक्ति होती है। ब्रजदेवियों द्वारा संवेद्य होनेसे यह परमोच्च प्रेमभाव उनकी ही मानो निजकी संपत्ति है।

जिसमें सात्विक भाव रूढ भावोक्त समस्त अनुभावोंसे किसी विशिष्ट दशाको प्राप्त हो जाते हैं, उसे अधिरूढ़ महाभाव कहते हैं।

श्रीराधा अधिरूढ महाभावकी घनीभूत प्रत्यक्ष मूर्त्ति हैं। श्रीराधाके प्रेमका नाम ही अधिरूढ महाभाव है। इस अवस्थामें प्राणप्रिया श्रीराधामें मिलन एवं विरहजनित सुख-दुखोंका साथ-ही-साथ युगपत् उदय होता है।

अधिरूढ़ महाभावके भी मोदन एवं मादन – ये दो तट हैं। मोदन-महाभाव प्रियतम श्रीकृष्णमें भी उदय होता है। इसे वैष्णव शास्त्रोंमें 'मोहन' भी कहा गया है। मोहन-अवस्था दिव्योन्मादसे भरी होती है।

मोदन महाभाव श्रीराधाकी ही एकमात्र सम्पत्ति है। ह्लादिनीशक्तिकी परिपूर्ण परिणति ही मादन है। इसमें श्रीराधारानी अनवच्छिन्न मिलनानन्द अनुभव करती हैं।

इस अनवच्छिन्न मिलनानन्दका रसिक सिद्ध सन्त श्रीपोद्दार महाराजने अपने काव्यमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है– 'प्रसंग श्रीउद्धवके ब्रज आगमनका है। उद्धव श्रीकृष्णका सन्देश लेकर ब्रजमें आये हैं। वे श्रीराधासे एकान्तमें मिलते हैं। वे श्रीराधाको बड़ी ही विचित्र स्थितिमें पाते हैं। जब उद्धवजी श्रीराधाको प्रियतम श्रीकृष्णका मथुरासे भेजा हुआ सन्देश सुनाते हैं, तो उसे सुनकर श्रीराधा पहले तो चकित होती हैं, फिर कहने लगती हैं –

उद्धव! तुम मुझको किसका यह सुना रहे कैसा सन्देश?
भुला रहे क्यों मिथ्या कहकर, प्रियतम कहाँ गये परदेश?

* * * * *

देखो - वह देखो, कैसे मृदु-मृदु मुसकाते नन्दकिशोर!
खड़े कदम्ब-मूल अपलक वे झाँक रहे हैं मेरी ओर।।
देखो, कैसे मत्त हो रहे, मेरे मुखको पङ्कज मान।
प्राण प्रियतमके दृग-मधुकर मधुर कर रहे हैं रस पान।।
भृकुटि चलाकर, दृग मटकाकर मुझे कर रहे हैं संकेत।
अति आतुर एकान्त कुञ्जमें बुला रहे हैं प्राणनिकेत।।
कैसे तुम भौंचक-से होकर देख रहे कदम्बकी ओर?
क्या तुम देख नहीं पाते, या देख हो रहे प्रेमविभोर?

* * * * *

अरे - अरे उद्धव! देखो वे पुनः प्रकट हो गये सुजान!
प्रेमभरी चितवन सुन्दर, छायी अधरोंपर मृदु मुसकान!
ललित त्रिभङ्ग कुटिल कुन्तल, सिर मोर-मुकुट, कल कुण्डल कान।
धर मुरली मुरलीधर अधरोंपर हैं छेड़ रहे मधु तान!

* * * * *

कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि यह महाभावकी लीला अनन्तकालतक चलती ही रहती है। यहाँ श्रीराधाके प्रेम–प्रासादके सात अप्रतिम विभाग जो पू.गुरुदेवने उल्लेख किये हैं, उनका संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। ।।३२७।।

अधिदेवी उन सातोंकी थी वह राजतनूजा ही, प्रियतम!
जो स्नेहकक्ष था, किंतु अभी उसमें थी वह उतरी, प्रियतम!
इतने में ही खोजती उसे अनुजा झट आ पहुँची, प्रियतम!
उसके पदचिह्नोंपर चलकर जो उगे धरापर थे, प्रियतम।।३२८।।

राजनन्दिनी राधाकिशोरी ही यद्यपि उस निर्मित प्रासादकी, सातों कक्षोंकी अधिदेवी थीं, किन्तु इस समय, जो 'स्नेह' नामसे अभिहित कक्ष था, है और रहेगा, उसमें ही वे अपना पैर रखे हुए थीं। और देखो ! इतनेमें ही उनकी अनुजा भी उन्हें ढूँढती हुई झट वहीं आ पहुँची। वह किशोरीके पद–चिह्नोंपर ही चलकर आयी थी – धरापर वे पदचिह्न अंकित जो हो गये थे। अस्तु, ।।३२८।।

दो हाथ हटी प्रतिमा से थी बैठी नृप की पुत्री, प्रियतम!
पीछे से उसके कंधों पर कर रखकर वह बोली, प्रियतम!
'री बहिन! कहाँ मन तेरा है, क्यों छोड़ मुझे आयी?' प्रियतम!
'अच्छा, अब तो बतला दे, क्या-क्या है करना कैसे?' प्रियतम।।३२९।।

किशोरी इस समय प्रतिमासे दो हाथ हटकर बैठी थी। पीछेसे अनुजाने आकर उसके कंधोंका स्पर्श किया। उसपर हाथ रखकर ही वह बोली – अरी बहन ! तेरा मन कहाँ है री ? तुम मुझे छोड़कर क्यों चली आयी ? अच्छा, जाने दे, अब यह बतला, यहाँ क्या-क्या, कैसे करना है ?।।३२९।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

पू.गुरुदेव कहते हैं कि राजनन्दिनी राधाकिशोरी ही यद्यपि उस निर्मित प्रेम-प्रासादकी सातों कक्षोंकी अधिदेवी थीं, किन्तु इस समय वे स्नेह नामसे अभिहित कक्षमें ही पदार्पित हैं। इस समय राधा अतिशय मुग्धा भावमें आरूढ़ हैं। उनमें पौगण्डकी समाप्ति और कैशोरका पदार्पण मात्र हो रहा है। इसीलिये कैशोरकी मधुरिमा उनके आननपर बालरविके समान स्निग्धरूपमें पदार्पण करनेको उत्सुक-सी दिख रही है। उनके नेत्रोंमें बाल-चपलता ज्यों-की-त्यों है। निर्मल उज्ज्वल हास्य उनके अधरोंको अनुरंजित कर रहा है। उनके अङ्गोंसे प्रियतम मानसोन्मादकारी अङ्ग-सौरभ स्फुटित हो रहा है। उनकी मनोज्ञ वाणीमें सहज विनयशीलता भरी है। पूर्ण करुणासे उनका चित्त छलकता रहता है। लज्जाशीलता उन्हें नखसे शिखातक आवृत किये है। वे परम सुमर्यादित हैं। परन्तु अपने प्रियतम-समर्पणके प्रति अतिशय गौरवमयी हैं। उनमें धैर्यकी पराकाष्ठा है, आदर्श गम्भीरता है। सम्पूर्ण वृषभानुपुर ही नहीं, समग्र आभीरमण्डलकी वे प्रेमपात्री हैं। उनमें बीजरूपसे महाभावमयता तत्सुखभाव स्फुटित हो रहा है। सखियोंके प्रति वे अतिशय प्रेम-परवश हैं। गुरुजनोंकी स्नेह-पात्रता उनका निस्व है। अपने प्रियतमको सदा-सर्वदा अपने आधीन रखनेकी उनमें माधुर्यशक्ति लबालब भरी है। ऐसी राधा उस अप्रतिम नीलमणिकी प्रतिमासे सटकर बैठी थी, तभी पीछेसे आकर उनकी अनुजा बहन मञ्जुश्यामाने उसके कंधेपर हाथ रख दिया और उसे विचारोंमें खोयी देखकर कहने लगी – " बहिन ! तेरा मन कहाँ घूम रहा है ? तू मुझे अकेलीको क्यों छोड़ आयी ? अच्छा, कोई बात नहीं, अब भी बतला, आगे क्या करना है ?।।३२९।।

जागी समाधि से वह, लज्जा किंचित्-सी हुई उसे, प्रियतम!
क्रमशः उसको सब बतलाया, जिस भाँति यहाँ पहुँची, प्रियतम!
सुनकर वह बड़ी बहिन से यह पूरा ब्योरा, बोली, प्रियतम!
'मैं पहले से ही प्रतिमा की कुछ बात जानती हूँ।' प्रियतम।।३३०।।

किशोरी अब मानो समाधिसे जग उठी हो – इस प्रकार सचेत हो उठी। उसे क़िंचित लज्जाका भी अनुभव होने लगा। वह कैसे यहाँ पहुँची थी, विस्तारसे एक-एक बात उसने अनुजाको बतला दी। बड़ी बहनसे पूर्ण विवरण सुन लेनेके अनन्तर अनुजा बोल उठी – देख बहन ! मैं पहलेसे ही इस प्रतिमाकी कुछ बातें जानती हूँ भला ! ।।३३०।।

नृप-पुत्री चौंक उठी, मानो मिल गयी उसे ताली, प्रियतम !
पेटी की अहो ! महानिधि वह थी बन्द पड़ी जिसमें, प्रियतम !
'तू सब बतलादे, पता तुझे जो कुछ है, अभी मुझे,' प्रियतम !
भुजमाल कनिष्ठाको पहना, इतना ही कह पायी, प्रियतम ॥३३१॥

राजनन्दिनी चौंक उठी – मानों जिस पेटीको वह खोलना चाहती थी, उसकी ताली उसे मिल गयी भला ! किशोरीकी महानिधि उसी पेटीमें ही तो बंद थी। वह बहनके कंधेको कम्पित करते हुए कह उठी – 'अरी ! तुझे जो कुछ भी पता है, सब-का-सब मुझे अविलम्ब, अभी बता दे।' इतना ही कह पायी वह और कनिष्ठाको अपने कण्ठसे लगा लिया.......।।३३१।।

"अच्छा, सुनले !' आँखें, वाणी अनुजा की घूम उठीं, प्रियतम !
"मौसीने बात कही मुझसे, रूठी बैठी तू थी," प्रियतम !
"आश्विन की एक वर्ष पहले थी साँझ अमावस की," प्रियतम !
"साँझीके फूल बीन लौटीं हम सभी देरसे थीं," प्रियतम ॥३३२॥

अच्छा, सुन ले – अनुजाकी आँखें, वाणी, दोनों ही चञ्चल हो उठीं – अरी ! जिस दिन मुझे मौसीने ये बातें बतलायी थीं, उस दिन तू रूठी हुई थी भला ! अबसे एक वर्ष पहलेकी बात है; आश्विन मासकी घटना है ; अमावसकी तिथि थी; संध्याका समय था; उस दिन हम सभी साँझीके फूल चयनकर देरसे घर लौट पायी थीं। ।।३३२।।

"मौसी बोली, 'लाड़िली बड़ी बावली, सत्य यह है।' प्रियतम !
'छोटी होकर भी तू तो पर सब बात समझती है।' प्रियतम !
'मैं बतलाऊँ, क्यों तुम सब पर तुम सबकी ही मैया,' प्रियतम !
'है आज तनिक-सी खीझ गयी ज्यों ही तुम सब आयीं।' प्रियतम ॥३३३॥

मौसीने मुझे कहा था – अरी सुन, यह लाड़िली जो है, बड़ी बावली है भला ! तू छोटी तो उससे है, किन्तु सच तो यह है कि तू छोटी होकर भी सब बात अच्छी तरह समझती है। मैं बतलाऊँ ? आज तुम सबकी मैया तुमपर रुष्ट क्यों हुई ? और आज तुम सब ज्यों ही आयीं, तनिक-सी खीझभरी वाणीमें क्यों बोली ?।।३३३।।

'घटना है ग्यारह मास, दिवस दो अबसे पहले की,' प्रियतम !
'तेरा श्रीभैया वनमें था गायों को लिये गया,' प्रियतम !
'शिशुओं में दैवयोग से यह-चर्चा छिड़ गयी वहाँ,' प्रियतम !
'इन सभी अरण्योंका राजा है कौन, कहे कोई।' प्रियतम ॥ ३३४।

सुन, अबसे ग्यारह महीने, दो दिन पहलेकी घटना है। एक स्थलपर तेरा श्रीभैया गायोंको चरानेके लिये वनमें ले गया था। सभी बैठे थे और दैवयोगसे शिशुओंमें यह चर्चा छिड़ गयी – इन समस्त अरण्योंका राजा कौन है, कोई बतलाओ तो भला !।।३३४।।

'जो वे गोपों के अधिपति हैं, उनका बेटा बोला; प्रियतम !
'मैं ही हूँ नित्य ईश सबका, थे, हैं, होंगे वन जो।' प्रियतम !
हँस पड़ा हँसोड़ा शिशु सुनकर, भूसुरकुल का जो था, प्रियतम!
बारह ही वर्ष-वय सदा जो रहता था बना सदा, प्रियतम ॥३३५॥

गोपराज नन्द महाराजाका पुत्र बोल उठा – अरे भैया, सुन लो तुम सब; यहाँ जितने वन हैं, पहले थे और आगे होंगे, उन सबका नित्य स्वामी मैं ही हूँ भला ! नन्दनन्दनकी बात पूरी होते-न होते वह हँसोड़ा शिशु – ब्राह्मण बालक मधुमंगल हँस पड़ा। मधुमंगल सदा ही बारह वर्षकी आयुका ही बना रहता था !।।३३५।।

'क्यों हँसा, बोल सच तू,' उसके पीछे पड़ गये सभी, प्रियतम !
वह भी पक्का था, चंगुल में फँसता न किसी के था, प्रियतम !
थी किंतु एक दुर्बलता, जो उसको थी च्युत करती, प्रियतम !
कोई मीठी कुछ वस्तु खिला लेते लेता मोल उसे।' प्रियतम ॥३३६॥'

अरे मधुमंगल ! तू सच बता । क्यों हँसा ? – सभी शिशु मधुमंगलके पीछे पड़ गये। किन्तु मधुमंगल भी पक्के गुरुका शिष्य था। किसीके चंगुलमें फँसना उसने सीखा जो न था। हाँ, एक दुर्बलता उसमें अवश्य थी, जो उसे पद-पदपर अपने निश्चयसे च्युत कर देती। कोई मीठी वस्तु उसे किञ्चित् खिला दे, फिर तो मानो उसने मधुमंगलको सदाके लिये मोल ही ले लिया।।३३६।।

शिशुओं ने यही उपाय किया, मोदक की भेंट धरी, प्रियतम !
खाकर वह बोला, 'राजा हैं श्रीभैया के बाबा।' प्रियतम !
'वे सभी वनों के, व्रज के हैं पालक पालक के भी;' प्रियतम !
'ये गोपराज भी पहले थे देते कर उस कुल को।' प्रियतम ॥३३७॥

.... सभी शिशुओंने इसी उपायका आश्रय लिया। मधुमंगलके आगे उन सबोंने मोदककी भेंट रखी। वह हँसता जा रहा था और उसे खाता जा रहा था। खाते-खाते बोल उठा – अब बतलाता हूँ। देखो, तुम सभी याद कर लो। श्रीभैयाके जो बाबा हैं बृषभानुजी महाराज, वे ही राजा हैं। केवल इस वनके ही नहीं, सभी वनोंके। और तो क्या, जितने भी वन हैं और उनके जो राजा हैं, उनके भी शासक बृषभानुजी महाराज हैं। और सुन लो, पहले इस नीलसुन्दरके पिता नन्दबाबा भी श्रीभैयाके पिताको कर दिया करते थे।।३३७।।

'जो वृद्धपितामह हैं, उनने कर लेना बंद किया;' प्रियतम !
'हो गयी मित्रता अद्भुत-सी दोनों ही नृपकुल में,' प्रियतम !
'बँध गये स्नेह के बन्धन में दो राजवंश ऐसे,' प्रियतम !
'मानो हों अहो! एक माँ से जाये जो गद्दी लें;' प्रियतम॥३३८॥

वे जो हम सबोंके दादाजी हैं महीभानु महाराज, सर्वप्रथम उन्होंने ही कर लेना बन्द किया था। इतना ही नहीं, उसके पश्चात् दोनों कुलोंमें – नन्दकुलमें और बृषभानुकुलमें ऐसी अद्भुत मित्रता हो गयी, जिसकी तुलना अन्यत्र नहीं हो सकती – दो राजवंश स्नेहके बन्धनमें ऐसे बँध गये, मानो वे दोनों एक ही माताके पुत्र हैं और दोनों ही अपने पिताकी गद्दी लेनेके अधिकारी हैं।।३३८।।

'अतएव छूट इसको है, यह चाहे जिस कानन में, 'प्रियतम !
'जाकर गोचारण करे, कहीं है रोक नहीं कोई।' प्रियतम !
'श्रीभैया के बाबा चाहें तो आज बंद कर दें, 'प्रियतम !
'छोटा-सा जो वन है इसका, उसमें ही फिर घूमो।' प्रियतम ॥ ३३९ ॥

इसीलिये इस नन्दपुत्रको छूट मिली हुई है कि वह जिस काननमें चाहे, गो-चारण कर सकता है। इसे कोई भी, कहीं भी रोक नहीं सकता। केवल श्रीभैयाके बाबा अवश्य ऐसे हैं कि वे यदि चाहें तो इसकी गतिविधिको नियन्त्रित कर दें.......। फिर इसके बाबाका जो छोटा-सा वन है, उसमें ही यह घूमता रहे।।३३९।।

'यह वन विशेषतः, जिसमें हैं बैठे हम सभी अभी, 'प्रियतम !
'केवल जगदम्बा का है, वे रहती इसमें ही हैं।' प्रियतम !
'है पता नहीं कुछ, तब भी यह बोला-'मालिक मैं हूँ, 'प्रियतम !
'इसके इस भोलेपनपर ही आ गयी हँसी मुझको, 'प्रियतम ॥ ३४० ॥

विशेषतया यह वन, जिसमें हमलोग बैठे बातें कर रहे हैं, वह वन तो केवल-केवल जगज्जननीकी ही सम्पत्ति है। इसीमें तो जगदम्बा प्रत्यक्ष निवास करती हैं ! इस नन्दपुत्रको कुछ ज्ञात तो है नहीं, तब भी बिना सोचे-समझे यह बोल उठा था – मैं ही स्वामी हूँ – इसके इस भोलेपनपर ही मुझे हँसी आ गयी थी।।३४०।।

गोपेश-तनय मुसकाया, दृग-कनखी से देख उसे, प्रियतम !
प्राणों का प्यार उधर उमड़ा तेरे श्रीभैया का, प्रियतम !
जीवन के नित्य-सखा की क्यों खण्डित वह उक्ति हुई, प्रियतम !
तत्क्षण उसने पूछा हँसकर उस बन्धु हँसोड़े से, प्रियतम ॥ ३४१ ॥

मधुमङ्गलकी बात सुनकर नन्दनन्दन अपने दृगोंके कोनेसे उसे देखकर मन्द-मन्द मुसकरा उठे। उधर श्रीदामभैयाका प्यार उमड़ चला। उसे वेदना-सी होने लगी – मेरे नित्य सखा नीलसुन्दरकी वह उक्ति क्यों मिथ्या हुई ? और वह हँसकर मधुमङ्गलसे पूछ ही बैठा –।।३४१।।

'तू तो पण्डित है ही, बतला, कोई उपाय है क्या ?' प्रियतम !
'कल रवि उगने से पहले यह हो जाय बात सच्ची, 'प्रियतम !
'अधिकार आज जिस जिस वनपर मेरे बाबा का है, 'प्रियतम !
'स्वामी उन सबका निरवधि हो यह प्राण-सखा मेरा।' प्रियतम ॥ ३४२ ॥

अरे भैया मधुमङ्गल ! तू तो पण्डित है, सभी बातें जानता है; तू इतना-सा और बता, क्या कोई उपाय है कि कलका सूर्योदय होनेसे पहले ही मेरे भैया नीलसुन्दरकी यह बात सच्ची हो जाय ? आज जिस-जिस वनपर मेरे बाबाका अधिकार है, उन सभी वनोंका स्वामी अनन्तकालतकके लिये मेरा प्राणसखा नीलसुन्दर ही हो जाय ! ।।३४२।।

उत्तर तुरंत सुन्दर इसका दे दिया हँसोड़े ने, प्रियतम !
'तू ही तो है युवराज, कहीं तू त्याग सत्य कर दे।' प्रियतम !
'उस ओर अहो ! तेरी बहिनें जो दो सहोदरा हैं, 'प्रियतम !
'उनकी इस गोपराजसुतसे हो चुकी सगाई है।' प्रियतम ॥ ३४३ ॥

विदूषक मधुमङ्गलने इसका उत्तर हाथ-का-हाथ दे दिया – यह कौन-सी बड़ी बात है ? बापका इकलौता बेटा तू ही तो युवराज है। कहीं तू सच्चे हृदयसे इस पदका त्याग कर दे कि मैं इसे स्वीकार ही नहीं करूँगा, तब तो क्षणोंमें ही सब काम बन जाय। देख ! तेरी दो बहनें, जो सहोदरा हैं, उनके सम्बन्धमें तुम्हें कुछ पता है कि नहीं, इसे तो तू ही जाने। और यदि नहीं जानता है तो मैं बतला दे रहा हूँ, सुन ले ! इस गोपराज नन्दके बेटे नीलसुन्दरसे ही तो तेरी इन दोनों बहनोंकी सगाई हो चुकी है ?..........।।३४३।।

'जब भी विवाह हो, इससे क्या, बस, आज रात में ही; प्रियतम
'भावी दहेज का दान-पत्र तेरे बाबा लिख दें; प्रियतम !
'फिर तो वैसा ही होगा, तू जैसा है चाह रहा;' प्रियतम !
'पूरे अरण्यंका कल होगा यह एकछत्र राजा।' प्रियतम ।।३४४।।

अच्छा अब आगेकी बात ध्यानसे सुन – विवाह कभी हो, इससे क्या ? यदि आज रातको तेरे बाबा दानपत्र लिख दें – अरे दहेजका दानपत्र रे......! बस, फिर तो जैसा तू चाह रहा है, वैसा-का-वैसा होगा ही – सम्पूर्ण अरण्योंका एकच्छत्र राजा यह नन्दका पुत्र कलसे ही हो जायगा। कोई भी इस बातको जाने-न-जाने, इससे क्या ? अस्तु,।।३४४।।

"चर्चा यह आयी-गयी- सदृश औरों के लिये हुई," प्रियतम !
"तेरे श्रीभैया के मन से वह किंतु नहीं निकली;" प्रियतम !
"सन्ध्या के समय लौट कर जब बन से घर पर आया," प्रियतम
"चुपचाप महादेवी के वह मन्दिर में जा बैठा।" प्रियतम ।।३४५।।

इस प्रकारकी यह चर्चा सभी सखाओंके लिये तो आयी-गयीके सदृश हो गयी। किन्तु मेरी छोटी लाडली री, सुन ! तेरे श्रीभैयाके मनसे यह बात नहीं निकली। ....और जब वह संध्याके समय वनसे लौटा, तब चुपचाप श्रीदेवीके ही मन्दिरमें आकर बैठ गया; तेरी मैयाके पास आज वह नहीं आया।।३४५।।

"जाकर तुरंत हम सब चिन्तित उसको पूछने लगे;" प्रियतम !
"कारण न किंतु बतलाता कुछ, मुख था उदास उसका," प्रियतम !
"तेरी मैया, मौसी मैं, फिर तेरे बाबा, मौसा;" प्रियतम !
"ये चार जने थे वहाँ, लगा रोने वह आकुल हो।" प्रियतम ।।३४६।।

हम सभी चिन्तित हो उठे-वह सदाकी भाँति घर – अपनी मैयाके पास क्यों नहीं आया ? अतएव हम सभी उसके पास मन्दिरमें ही जा पहुँचे – मेरे लाल ! आज कोई नयी बात हुई है क्या ? किन्तु उसने उसका कोई कारण नहीं बताया। उसका मुख आज किंचित् उदास था। तेरी मैया, तेरी मौसी – मैं, फिर स्वयं तेरे बाबा और तेरे मौसा – हम चार जने वहाँ थे। बस, इतनेमें तो वह व्याकुल होकर रोने लग गया।।३४६।।

"मैने समझाया, मैया ने, बाबा ने, मौसा ने," प्रियतम !
"घिग्घी उसकी बँध गयी, और इतना-सा बोल सका," प्रियतम !
'बाबा! प्रण तुम पहले कर लो, जो भी मैं अभी कहूँ;' प्रियतम !
'उसको ज्यों-का-त्यों सत्य-सत्य पूरा करना ही है।' प्रियतम ।।३४७।।

मैंने समझाया, तेरी मैयाने, बाबाने, मौसाजीने बड़ी अच्छी-अच्छी बातें कहीं; पर तेरे श्रीदाम भैयाकी तो रोते-रोते घिग्घी बँध गयी। वह तो केवल इतना-सा बोल सका – बाबा, पहले तुम प्रण कर लो कि मैं अभी जो तुमको कहूँ, उसको तुम ज्यों-का-त्यों सत्य कर ही दोगे।।३४७।।

"तेरे बाबा ने भी पलभर सोचा तक नहीं तनिक;" प्रियतम !
"अर्चन का जल था पास, उसे करमें लेकर बोले," प्रियतम !
' रे लाल ! देन जगजननी की तू तो मेरे घर है; प्रियतम !
'तू जो भी कह देगा, उसको वैसे ही कर दूँगा;' प्रियतम ! ॥३४८।

आश्चर्यकी बात यह हुई कि तेरे बाबाने भी पलभरके लिये भी सोचा तक नहीं। समीपकी झाड़ीमें अर्चनाके लिये जो जल था, उसे उन्होंने अपने दक्षिण करकी अञ्जलिमें किंचित् ले लिया और गद्गद् कण्ठसे बोल उठे – अरे मेरे लाल ! मेरे घर तो तू जगदम्बाका दिया हुआ, भेजा हुआ आया है – उनकी देन है ! तू जो भी कह देगा, मैं वैसे-के-वैसे कर दूँगा भला ! ।।३४८।।

'बोला श्रीभैया, आँखों में फिर से जल भर कर के; प्रियतम !
'बाबा ! है प्रिय साँवरा अहो ! प्राणों से अधिक मुझे;' प्रियतम !
'बातें इस भाँति हुईं वनमें, भारी है व्यथा मुझे;' प्रियतम !
'उस सखा विदूषक के अन्तिम निर्णय को सत्य करो !' प्रियतम ॥३४९॥

श्रीभैयाकी आँखोंमें पुनः जल भर आया। वह बोल उठा – बाबा ! मुझे साँवरा प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। आज वनस्थलमें....... इस प्रकार बातें हुई हैं; मेरे हृदयमें इतनी अधिक व्यथा है कि मैं तुम्हें कैसे बताऊँ। बस, उस समय मधुमङ्गल भैयाने जो अन्तिम निर्णय दिया था, उसे ही तुम सत्य कर दो।।३४९।।

'जीवन में चाह नहीं है यह, राजा मैं कभी बनूँ,' प्रियतम !
'मेरी प्राणोपम दो बहिनें असमोर्ध्व भागवाली' प्रियतम !
'हो चुकी साँवरे की हैं, अब मैं भी निहाल होऊँ;' प्रियतम !
'राजा हो वही, रखूँ मैं तो निरवधि सँभाल उसकी' प्रियतम ॥३५०॥

श्रीदामने रोते-रोते अपने बाबाके कटिदेशमें अपना हाथ डालकर उसे वेष्टित कर दिया, पकड़ लिया उसे। बाबा ! बाबा ! ....गद्गद् कण्ठसे वह कहता जा रहा था। मेरे जीवनमें छाया-की-छाया मात्र भी यह अभिलाषा नहीं है कि मैं कभी राजा बनूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मेरी प्राणोपम दो बहनें इस प्रकार असमोर्ध्व भाग्यवाली मुझे मिली हैं। वे दोनों तो साँवरेकी हो ही चुकी हैं, अब मैं भी उसका होकर धन्य हो जाऊँ – मेरा भैया नीलसुन्दर राजा हो, और मैं उसके पास रहकर उसकी निरवधि सँभाल करता रहूँ।।३५०।।

"चारों ही स्नेह-विभावित थे हम लगे विकल रोने;" प्रियतम !
"तेरे श्रीभैया के उरकी लखकर विशालता को;" प्रियतम !
"चलती अविराम रही पावन धारा आठों दृग से;" प्रियतम !
"उसमें भीगे रह कर ही यों तेरे बाबा बोले," प्रियतम ॥३५१॥

मेरी छोटी लाड़िली री ! हम चारों भी इतने स्नेह-विभावित हो गये थे कि हम सभी विकल होकर फूट-फूटकर रोने लगे – अहा ! श्रीदामका कितना विशाल हृदय है ।............अहा ! बारम्बार इसकी स्मृतिसे हम चारों ऐसे निमग्न हो रहे थे कि हमारे आठों दृगोंसे अविराम अश्रुधाराका प्रवाह बहता ही जा रहा था। तुम्हारे बाबा हम

सबोंकी अश्रुधारामें स्नान करके सर्वथा उस प्रवाहमें मानो डूबते जा रहे थे। बड़ी कठिनाईसे किञ्चित् धीरज धारणकर वे बोल सके.........।।३५१।।

'सुन्दर ऐसा क्षण पहला है, जिसमें मैं आज कहूँ,' प्रियतम !
'है धन्य पितापन मेरा अब, जो पुत्र मिला तुमसा।' प्रियतम !
'मेरी भी यही लालसा थी, रे लाल ! धन्य तू है,' प्रियतम !
'दे दिया अहो ! तुमने सब कुछ माँगे ही बिना मुझे।' प्रियतम ।।३५२।।

– मेरे जीवनमें आज प्रथम बार ऐसे सुन्दर क्षणकी उपलब्धि मुझे हुई है, जिस क्षणमें मैं उच्च स्वरसे सबको सुनाकर कह सका – अहा ! मेरा पितृत्व आज धन्यातिधन्य हो गया, जो मुझे तेरे-जैसा पुत्र मिला। अरे लाल ! मेरी भी यही आन्तरिक अभिलाषा थी। तू धन्य-धन्य-धन्य है, जो बिना माँगे ही आज सब कुछ दे दिया। अहो !. ....।।३५२।।

"तत्काल बुलाने दूत चला गुरुदेव महोदय को," प्रियतम !
"वे भी आये रजनी सौ पल चढ़ने से पहले ही।" प्रियतम !
"उनको प्रत्यक्ष मिला था यह आदेश दिवाकर का," प्रियतम !
"सायं संन्ध्या के समय उठ ज्यों चले नहाने वे," प्रियतम ।।३५३।।

अरी मञ्जू ! इससे अधिक तेरे बाबा बोल नहीं सके।......... मौसीकी आँखें पुनः बरबस भरने लग गयीं। बोल वे भी नहीं सकती थीं। बार-बार अपने अञ्चलसे आँखें पोंछतीं, पर तुरंत पुनः नवीन अश्रुधारा प्रसृत होने लगती और उनका कण्ठ रुद्ध हो जाता। अस्तु, उसी समय महाराज बृषभानुने दूतको बुलाया। उनकी आज्ञा हुई – दूत ! गुरुदेव महोदय महर्षि भागुरीको तुम शीघ्रातिशीघ्र मेरे समीप बुला लाओ। दूत आज्ञापालनमें तत्क्षण लग गया.........। और गुरुदेव महोदय भी सौ पल (४० मिनट) रजनी चढनेके पूर्व ही, बृषभानुपुरमें आ पहुँचे। आज उनके साथ भी एक विचित्र घटना घटी थी। वे सायं सन्ध्याके लिये स्नान करने चले कि मानो आकाशसे दिवाकरदेव उन्हें प्रत्यक्ष आदेश दे रहे थे – ।।३५३।।

'जाओ तुम नील-सरोवर पर, उसको प्रणाम करना,' प्रियतम !
'उत्तर-पूरब के कोने पर अञ्जलि में फूल लिये,' प्रियतम !
'जल में प्रविष्ट होकर धीरे-धीरे क्रमशः बढ़ना,' प्रियतम !
'अपने ही आप सुमन करसे च्युत होते ही रुकना,' प्रियतम ।।३५४।।

..........जाओ, तुम अभी नील सरोवरपर चले जाओ। पहले उस सरोवरको दण्डवत् प्रणाम कर लेना। जाते समय पथके उपवनसे ही कुछ पुष्पचयन कर लेना। उसे अञ्जलिमें लिये हुए उत्तर-पूर्वके कोणपरसे सरोवरमें प्रविष्ट होना। क्रमशः धीरे-धीरे अग्रसर होते जाना और जहाँ अपने आप तुम्हारी अञ्जलि ढीली हो जाय तथा पुष्प जलमें गिर पड़ें, वहीं रुक जाना।।३५४।।

'उस जल के तल में ही निमग्न तत्क्षण तुम हो जाना,' प्रियतम !
'उपलब्ध वहाँ तुमको निरुपम दो स्वतः वस्तु होंगी,' प्रियतम !
'उनको लेकर वृषपत्तन में सीधे तुम चल देना,' प्रियतम !
'वह दूत मिलेगा पथमें ही प्रेषित उस राजा का।' प्रियतम ।।३५५।।

आज प्रथम वार केवल, केवल तुम्हें उस अगाध जलके तलका अनुभव होगा। तुम उसे पावनतम जलमें निमग्न होकर, जलके तलपर बैठकर हाथोंसे टटोलने लगना। वहाँ अपने आप तुम्हें निरुपम दो वस्तुएँ प्राप्त होंगी। उन्हें हाथोंमें ले लेना। अपने उत्तरीयसे उसे आवृत कर लेना और फिर जलसे बाहर आकर आर्द्र वस्त्रको पहने ही बृषभानुपुरकी ओर चल देना। तुम्हें बुलानेके लिये आया हुआ दूत पथमें ही मिल जायेगा। उसे महाराज बृषभानुने तुम्हें बुलानेके लिये भेजा है।।३५५।।

"ऐसा ही हुआ और गुरुवर थे महासिद्ध पहुँचे;" प्रियतम !
"वे लिये हुए थे साथ वही, जो वस्तु मिली उनको;" प्रियतम !
"नीली-प्रतिमा थी एक और था, एक पुरट-पत्ता;" प्रियतम !
"पुरइनकी आकृतिका, जिसपर अक्षर थे लिखे हुए;" प्रियतम।।३५६।।

अंशुमालीकी उक्तिके अनुसार ही सब बातें महर्षि भागुरीको ज्यों-की-त्यों मिलीं। वे महासिद्ध पुरुष थे। जो वस्तु मिली थीं उसे अपने उत्तरीयसे ढके हुए वे बृषभानुपुर जा पहुँचे। प्राप्त हुई वस्तुओंमें एक तो नीली प्रतिमा थी और एक स्वर्णनिर्मित पुरइनकी आकृतिका पत्ता था, जिसपर कुछ अक्षर लिखे हुए थे।।३५६।।

"वह दान-पत्र ही था सचमुच भावी दहेज-वाला;" प्रियतम !
"तेरे बाबा की सही, भला, उस पर पहले से थी।" प्रियतम !
"अङ्कित थी उस पर तिथि, जो थी उस दिन धनतेरसकी;" प्रियतम।
"साखी थे गुरुवर और तरणि उनके थे चिह्न बने।" प्रियतम।।३५७।।

वह स्वर्णपत्र भविष्यमें दिये जानेवाले दहेजका दानपत्र ही था। और तो क्या, मेरी लडैती श्यामे ! देख, भला, तेरे बाबाके हस्ताक्षर उसपर पहलेसे ही अङ्कित थे। उस दिन धनत्रयोदशीकी तिथि थी, वह भी पहलेसे ही अङ्कित थी। दो साक्षी थे – एक गुरुवर महोदय और दूसरे भगवान् तरणि। उनके भी चिह उस पत्रपर बने हुए थे। अस्तु,।।३५७।।

"की सभी व्यवस्था अग्रिम अब गुरुदेव महोदय ने;" प्रियतम !
"उस ओर गोप राजा को था होने यह भान लगा;" प्रियतम !
"श्रीनारायण का नीराजन सन्ध्या में करते ही;" प्रियतम !
"मानो श्रीविग्रह मणिमय वह मुसकाकर कहता हो;" प्रियतम।।३५८।।

अग्रिम सभी व्यवस्था गुरुदेव महोदय ने की। उस ओर गोपराज नन्द महाराजको – ज्योंही उन्होंने श्रीनारायणका नीराजन संध्यामें सम्पन्न किया – ऐसा अनुभव होने लगा, मानो भगवान् नारायणका मणिमय श्रीविग्रह मन्द-मन्द मुसकराकर कह रहा हो – ।।३५८।।

'हे वत्स! बुलाता है तुमको वह नृपति धर्मभाई;' प्रियतम !
'कुलगुरु को साथ लिये तुम तो प्रस्थान तुरंत करो।' प्रियतम !
"प्रेषित गोपेश वहाँ आये दो घड़ी रात जाते;" प्रियतम !
"उन शकट-बलीवर्दों में था मानो बल उड़ने का;" प्रियतम।।३५९।।

वत्स ! तुम्हारा वह धर्मभाई बृषभानु महाराज तुम्हें बुला रहा है भला ! अतएव कुलगुरु शाण्डिल्यजीको साथ लेकर तुम तो वहाँके लिये अविलम्ब प्रस्थान करो। – इस प्रकार भगवत्-प्रेषित हुए नन्द महाराज दो घड़ी रात बीतते ही बृषभानुपुर जा पहुँचे – मानो शकटके बलीवर्दोंमें उडनेकी शक्ति थी और वे उड़कर आये हों।।३५९।।

"मिलकर, बातें कर, भाव विकल वे धर्मबन्धु रोये," प्रियतम !
"दोनों कुलगुरुवर का निर्णय अपने-ही-आप हुआ;" प्रियतम !
"बस, अभी प्रतिष्ठित हो प्रतिमा सुन्दरीवाटिका में," प्रियतम !
"हो दानपत्र यह नित्य जड़ा प्रतिमा-पद के नीचे।" प्रियतम॥३६०॥

दोनों धर्मबन्धुओंने मिलनेपर सभी बातोंकी चर्चा की और दोनों ही भावविह्वल हो उठे। दोनों कुलगुरुओंका एक साथ अपने आप निर्णय यह हुआ – बस, अभी सुन्दरी वाटिकामें हम लोग चले चलें। प्रतिमाको वहीं प्रतिष्ठित कर दें और प्रतिमाके चरण-प्रान्तमें ही नीचे यह दानपत्र अखण्ड रूपसे जड़ दिया जाय।।३६०।।

"तुम दोनों बहिनों की सँभाल करती मैं यहाँ रही," प्रियतम !
"तेरी मैया, तेरे बाबा, ब्रजराज, महामुनि दो;" प्रियतम !
"पाँचों, तेरे श्रीभैया को आगे कर, वहाँ गये," प्रियतम !
"हो अर्धनिशा, उससे पहले पूरा सब कृत्य हुआ।" प्रियतम॥ ३६१॥

री मञ्जुश्यामे ! मैं तो तुम दोनों बहनोंकी सँभाल करनेके उद्देश्यसे यहाँ बृषभानुपुरमें रुकी रही। उधर तेरी मैया, तेरे बाबा, महाराज नन्द और वे दोनों महामुनीन्द्र – ये पाँचों तेरे श्रीभैयाको आगे करके चल पड़े; सुन्दरी वाटिकामें जा पहुँचे तथा अर्द्धनिशा हो पायी, उससे पूर्व ही वहाँके सारे कृत्य विधिवत् सम्पन्न कर दिये गये।।३६१।।

"चौदस के प्रातः तुम दोनों बाहर खेलने गयीं;" प्रियतम !
"करके साँवरा कलेवा जब कानन में चला गया," प्रियतम !
"लेकर सङ्गिनी एक आयीं वे गोपराज-रानी;" प्रियतम !
"दो तथा इधर से हम पहुँची उद्यान-सुन्दरी में।" प्रियतम॥३६२॥

चतुर्दशीके प्रातःकाल जब तुम दोनों खेलनेके लिये बाहर चली गयीं तथा उस ओर जब नीलसुन्दर कलेवा करके वनमें गोचारणके लिये चला गया, तब उधरसे तो नन्दरानी अपने साथ एक सङ्गिनी लेकर आ पहुँची और इधरसे हम दोनों बहनें भी सुन्दरी उद्यानमें पहुँच गयीं। प्रेमपूर्ण मिलन हुआ हम चारोंका।।३६२।।

"चारों न निहार-निहार थकीं प्रतिमा की सुन्दरता;" प्रियतम !
"गोपेश-गेहिनी के सुत की आकृति वह विधिकृत थी;" प्रियतम !
"दिन में तो तरणि-किरण को वह नीलाभ बना देती;" प्रियतम !
"साढ़े-चौबीस रात में शशि उससे निस्सृत होते।" प्रियतम॥३६३॥

हम सभी चारों प्रतिमाका सौन्दर्य निहार-निहारकर विथकित हो रही थीं। नन्दरानीके पुत्र नीलसुन्दरकी आकृति ज्यों-की-त्यों उस प्रतिमासे मिलती थी। आश्चर्यकी बात थी कि प्रतिमाका एक अद्भुत वैचित्र्य सबको प्रत्यक्ष यह दीखता था – वह दिनके समय अंशुमालीकी किरणोंको तो नीलाभ बना देती थी और रात्रिमें साढ़े चौबीस चन्द्र उसमेंसे निसृत होते रहते थे।।३६३।।

"उस दिन से ही उद्यान अहो! प्रायः अदृश्य रहता," प्रियतम !
"वनफेरी देते, देतीं थीं जो उन दो तिथियों में;" प्रियतम !
"उनमें जिसको भी देवी का दर्शन हो जाता था;" प्रियतम !
"उसको ही ज्योतिर्मय वह पल-दो पल दीखता भला," प्रियतम॥३६४॥

उसी दिनसे वह उद्यान प्रायः सबोंकी दृष्टिसे अदृश्य बना रहता। अमावस्या एवं पूर्णिमाके दिन जो-जो भी उस वनकी फेरी दिया करती थीं और उनमेंसे जिसे वहाँ जगदम्बाका प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता था, उसको ही वह ज्योतिर्मय श्रीविग्रह पल-दो-पलके लिये दीख जाता था।।३६४।।

जिज्ञासा

छन्द संख्या ३५४से ३६४तकके वर्णनमें वृषभानुपुरके कुलगुरु भागुरिको आदेश होना, कृष्णकुण्डमें नीलमणि-रचित स्वयंभू प्रतिमाके साथ स्वतः पूर्वलिखित दानपत्रका मिलना, उसपर वृषभानु बाबाके पूर्वतया हस्ताक्षर अंकित होना, साथ ही उस नीलमणिकी प्रतिमाके द्वारा सूर्यकी किरणोंको नीलाभ बना देना, एवं उससे साढ़े चौबीस शशि रात्रिमें निसृत होना आदि बातें कहीं गई हैं। ये समझमें नहीं आतीं। कृपया इन सबको भली प्रकार खुलासा करें।

समाधान

यह ध्यान रहे कि यह समग्र लीला जो पू.गुरुदेव द्वारा इस काव्यमें गुम्फित हुई है, अप्राकृत लीलाराज्यमें संघटित हुई है। इस लीलाराज्यकी सूत्रधार स्वयं साक्षात् भगवती योगमाया हैं। वे योगमाया ही शिशुओंमें यह चर्चा छिड़वाती हैं कि इस वनका, जिसमें ब्रजेन्द्रनन्दन गाय चराने आये हैं, स्वामी कौन है ? बच्चोंको गाय चरानेसे प्रयोजन था, वन किस स्वामीका है, इन सब व्यर्थकी चर्चामें बच्चे क्यों पड़ते ? योगमाया लीलाशक्ति ही ब्रजेन्द्रनन्दनके मुखसे यह गर्वोक्ति करवाती हैं कि – 'अरे भैया, तुम सब सुन लो ! यहाँ इस भूमिमें जितने वन हैं, पहले थे, और आगे होंगे, उन सबका स्वामी मैं ही हूँ भला !'

वस्तुतः श्रीकृष्णके मुखसे निकली यह वाणी इस अंशमें सत्य भी थी क्योंकि ब्रजेन्द्रनन्दन ही, जो इस समय गोपबालक बने हैं, परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तम साक्षात् भगवान् हैं, एवं इस लीलाक्षेत्रके जितने भी वन हैं, थे, एवं होंगे, ये सभी वन श्रीकृष्णके ही स्वरूपभूत हैं, उनसे नित्य अभिन्न उनकी ही सन्धिनीशक्तिकी परिणति हैं। अतः स्वाभाविक ही इनके एकमात्र अधिपति स्वामी वे ही हैं।

परन्तु मधुमङ्गल जो श्रीकृष्णका विदूषक सखा है, वह तो प्रेमलीला रङ्गमञ्चका एक प्रमुख पात्र है। उसमें श्रीकृष्णके प्रति 'वह मात्र उसका अपने-से-अपना सखा है' – यही बुद्धि है, उसमें उनका ऐश्वर्यमय परात्पर भगवान्का भाव उन्मिषित हो ही नहीं सकता। यदि यह ऐश्वर्यभाव उसमें लेशभर भी झाँक जाय तो समग्र लीलाका माधुर्य ही जाता रहे। अतः वह श्रीकृष्णकी इस सत्य ऐश्वर्योक्तिको भी मात्र विनोदकी वस्तु, भोलापन, अज्ञानताजन्य उक्ति मानकर हँस पड़ता है। यहाँ मधुमङ्गल सखाका भी किञ्चित् परिचय दे देना उचित रहेगा।

मधुमङ्गल देवी पौर्णमासीके साथ ही ब्रजमें पदार्पित हुआ था। ये देवी पौर्णमासी सर्वप्रथम उसी अवसरपर ब्रजमें पधारी थीं, जब नन्दनन्दनका जन्म गोकुलमें हुआ था। यह ब्राह्मणकुमार परम हँसमुख है। यह पौर्णमासी देवीके पास स्नातकके रूपमें रहता है। इसकी प्रकृति देवर्षि नारदके तुल्य है। किसी विशेष विद्याके प्रभावसे यह बालक सदैव मात्र बारह वर्ष, कुमारवयका ही रहता है। अनेकों सिद्ध सन्तोंको ऐसी अनुभूति हुई है कि अनन्त शक्तिमान् भगवान्की अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया ही देवी पौर्णमासीके रूपमें मूर्त होकर ब्रजमें निवास करती हैं। वैसे पौर्णमासीजी ब्रजमें ज्योतिष-विद्याकी प्रकाण्ड पण्डिता मानी जाकर पूजी जाती हैं। भविष्यकी ज्ञाता होनेसे ब्रजके सब लोग इनकी राय मानकर ही कार्य करते हैं । इनकी भविष्यवाणी प्रायः अमोघ मानी जाती है।

भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके समय ब्रजमें देवी पौर्णमासीके साथ मधुमङ्गलने नन्दभवनमें जब सर्वप्रथम पदार्पण किया था तो उसमें दिव्यदृष्टिका उन्मेष हो उठा था और वह हठात् बोल उठा था – 'जननि यशोदे ! ऊपर देखो! ऊपर अन्तरिक्षमें हंस, वृषभ, मयूर, हाथी, रथ, हरिण आदि विविध वाहनोंपर चित्र-विचित्र आकृतिवाले कितने लोग तुम्हारे

पुत्रका मुख देखने खड़े हैं। ब्रजमें आकाशमें उड़ते हुए मैं इन्हें अनेक बार देख चुका हूँ। ये कल भी यहीं थे।' ब्राह्मणकुमारकी बातसे आश्चर्य और भयसे युक्त होकर ब्रजरानी तथा अन्य गोपिकाएँ ऊपरकी ओर देखने लग जाती हैं। परन्तु उन्हें कुछ भी नहीं दिखता। भगवती पौर्णमासी इसपर मुसकाने लगती हैं एवं कहती हैं – 'नन्दरानी ! डरो मत ! भयकी कोई बात नहीं है। अन्तरिक्षमें देवताओंका निवास रहता ही है। ये हंसवाहन पितामह ब्रह्माजी, बृषभवाहन भगवान् शङ्कर, मयूरवाहन देवसेनापति कार्त्तिकेय, ऐरावत हाथीपर देवराज इन्द्र, रथपर भगवान् सूर्यदेव, हरिणपर निशानाथ चन्द्रदेव आदि देवगण ही हैं, जो तेरे पुत्रकी चिरायुकी कामनार्थ आशीर्वाद देने यहाँ आये हैं। यह बालक अतिशय शुद्धचित्त ब्राह्मण है, अतः इसे ऐसे दर्शन प्रायः होते रहते हैं।' यह कहकर आशीर्वाद देती देवी पौर्णमासी ब्रजवासियों द्वारा बनायी अपनी पर्णकुटीमें चली जाती हैं। तबसे तपस्विनी पौर्णमासीजीके साथ मधुमङ्गल ब्रजमें ही निवास करता है। नन्दनन्दनकी कुमार एवं पौगण्डलीलामें यह उनका प्रमुख हँसोड़ सखा माना जाता है। यह अतिशय मिष्ठान्नप्रिय, बहुभोजी, अपने ब्राह्मणत्वपर अभिमान रखनेवाला, श्रीकृष्णसे वयमें बड़ा होनेके कारण यशोदाजी द्वारा सोंपेगये गोचारणके समय वनमें उनके संरक्षकका दायित्व निभानेवाला है। यह प्रायः प्रातःसे लेकर सायंतक छायावत् श्रीकृष्णके साथ रहता है। श्रीकृष्ण सदैव इसे अपने हाथसे भरपेट मोदकादि मिष्ट भोजन कराते हैं। श्रीकृष्णकी थालीसे उच्छिष्ट होनेपर भी समग्र मिष्ठान्न, नवनीत, खीरादि, भोज्य यह ब्राह्मण होकर भी खा जाता है। श्रीकृष्ण भी इसके मुखका ग्रासतक निकलाकर खा जाते हैं। इस प्रकार दोनोंमें अतिशय प्रेममयी सख्यरससे परिपूर्ण लीलाएँ होती रहती हैं।

यह मधुमङ्गलकी हँसी भी योगमाया-प्रेरित मात्र विशेष लीलाकी सूत्रधारके रूपमें ही थी। स्वाभाविक ही था कि नन्दनन्दनकी गर्वोक्तिके प्रतिवादके रूपमें मधुमङ्गलकी इस व्यंग्य करती हँसीपर अन्य श्रीकृष्णके सखा उससे स्पष्टीकरण माँगते। परन्तु मधुमङ्गल अपने पेटकी रहस्यभरी बातें तभी उगलता था, जब उसे कोई मीठी वस्तु खिलाता है। यह उसकी दुर्बलता है।

सखा उसकी इसी दुर्बलताका लाभ उठाते हैं और उसे मिष्ठान्न खिलाकर उसके पेटकी बात उगलवा लेते हैं। वह जो रहस्य प्रकट करता है वह नन्दनन्दनकी गर्वोक्तिको खण्डन करनेवाला होता है। यह रहस्य सखाओंसे अज्ञात भी होता है। यह रहस्य है – सम्पूर्ण आभीरमण्डलमें जितने भी वन हैं – अम्बिकावन, कुमुदवन, तालवन, मधुवन, बहुलावन, बृहद्वन (महावन), लोहवन, कामवन, गोदृष्टिवन, मोहिनीवन, कोकिलावन, छत्रवन, खिदिरवन, विस्मरणवन, कोटवन, चमेलीवन, खेलनवन, भूषणवन, गुञ्जावन, विहारवन, भाण्डीरवन, अघवन, तमालवन, भद्रवन, बिल्ववन, एवं वृन्दावनादि सबके एकछत्र राजा तो वस्तुतः वृषभानु महाराज हैं। श्रीनन्दराय तो मात्र वृहद्वनके एक करद राजा हैं। पहले वे अपने आधीन वनका कर प्रतिवर्ष महाराज महीभानुको चुकाते थे। महाराजा महीभानुने ही सर्वप्रथम नन्दरायसे कर लेना बन्द किया था, एवं पश्चात् तो दोनों कुलोंमें इतना सौहार्द हो उठा था, जिसकी तुलना त्रिभुवनमें कहीं हो ही नहीं सकती । दोनों राजवंश सगे भ्राताओंसे भी बढ़कर प्रेमबन्धनमें बँधकर एक हो उठे थे।

मधुमङ्गलने इस समय यही रहस्योद्घाटन किया कि इस सौहार्दके कारण ही इस नन्दपुत्रको यह छूट मिली हुई है कि यह अपनी गौएँ सभी वनोंमें निरङ्कुश चरा लेता है। यदि श्रीभैयाके पिता चाहें तो आज ही इसकी गतिविधि नियन्त्रित कर दें। फिर इसके बाबाका जो एक छोटा-सा वन है, उसमें ही भले यह अपनी गायें चरा ले।

जब यह वार्त्ता सखाओंके मध्य हो रही होती है, वे श्रीसुन्दरीवनमें ही गौएँ चरा रहे होते हैं। इसलिये मधुमङ्गल यह रहस्य भी खोल देता है कि यह विशेष वन जहाँ हम सब वर्त्तमानमें बैठे हैं, केवल जगज्जननी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका है। इसमें वे साक्षात् निवास करती हैं एवं भाग्यवान्, परम पवित्र-हृदयके भक्तोंको यहाँ उनका प्रत्यक्ष दर्शन भी होता है। इस नन्दतनयको कुछ भी ज्ञान तो है नहीं, फिर भी यह हेकड़ी लगा देता है कि 'मैं सबका मालिक हूँ' – इसीलिये मुझे इसकी बातपर हँसी आ गयी थी।

मधुमङ्गलकी सच्ची उक्ति सुनकर उसपर श्रीकृष्णका प्यार उमड़ पड़ता है, किन्तु उसी समय जगदम्बाकी ही प्रेरणासे राजा वृषभानुके पुत्र श्रीदामके मनमें यह सङ्कल्प उठता है कि कैसे मेरे प्राणसखा श्रीकृष्णके वचनकी रक्षा हो जाय और कल सूर्योदयके पूर्व ही यह सब वन-सम्पत्ति, यह राज्य नन्दतनयकी सम्पत्ति बन जाय।

यहाँ ध्यान रहे कि यह सब लीला अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाके द्वारा ही सम्प्रेरित होकर रङ्गमञ्चपर संघटित हो रही है। योगमाया-प्रेरित मधुमङ्गल श्रीदामको उपाय भी यही बताता है कि 'वह घर जाकर अपने पिता-पितामहके सम्मुख मचल उठे। उसके पिता अपनी दोनों पुत्रियोंका वाग्दान श्रीकृष्णको कर दें तथा अपना समग्र राज्य अपनी दोनों पुत्रियोंको दहेजमें दे दें। वे योगमाया-मन्दिरमें सङ्कल्प करके आज ही दानका सङ्कल्पपत्र लिख दें तभी यह वन श्रीकृष्णकी संपत्ति हो सकेगा।' श्रीदाम ठीक मधुमङ्गलका सिखाया सभी नाट्य करता है। और तब उसके पिता इस सङ्कल्पका साक्षी बनानेके लिये वृषभानुकुलके कुलगुरु भागुरिको बुलाते हैं।

पुनः यहाँ इस बातको दुहरा देता हूँ कि यह सब घटना भगवती योगमायाकी इच्छासे ही उनके द्वारा पूर्वनिर्धारित विधानसे घटित हो रही है। वृषभानुकुलके कुलदेव सूर्य जिनके अंशसे महाराज वृषभानुकी उत्पत्ति हुई है, वे भी इस विधानका पहलेसे ही सङ्कल्प कर चुके हैं। वे भागुरि ऋषिको सन्ध्यार्चनके समय ही निर्देश देते हैं कि तुम पुष्पाञ्जलि लेकर पूर्वोत्तरके कोनेमें कृष्णकुण्डमें शनैः-शनैः प्रवेश करो और जहाँ तुम्हारी अञ्जलिमें निहित पुष्पराशि स्वतः निपतित हो जाये, वहाँ डुबकी लगाकर उसके तलमें खोजो। वहाँ तुम्हें दो वस्तुएँ मिलेंगीं जिन्हें लेकर राजभवनमें तुरन्त चले आओ। वे दो वस्तुएँ होंगी – एक तो नीलमणिरचित नन्दतनयकी प्रतिमा एवं दूसरी, भगवती योगमाया द्वारा पूर्वतया रचित स्वर्णपत्रमें अङ्कित सम्पूर्ण राज्यका दानपत्र, जिसमें उस दिवसकी तिथि धन्या-त्रयोदशी तथा राजा वृषभानुके हस्ताक्षरके साथ गुरुदेव भागुरि एवं सूर्यदेवकी साक्षी भी पूर्वतया अङ्कित होगी।

इधर नन्दरायजीको भी जब वे सन्ध्याकालमें भगवान् नारायणका सान्ध्यकालीन नीराजन कर रहे होते हैं, यही आदेश होता है कि तुम अपने कुलगुरु ऋषिप्रवर शाण्डिल्यको लेकर तुरन्त वृषभानुपुरी प्रस्थान करो, तुम्हें तुम्हारा धर्मभ्राता स्मरण कर रहा है। वे भगवदाज्ञासे प्रेरित हुए दो प्रहर रात व्यतीत होते-न-होते वृषभानुपुर पहुँच जाते हैं और दोनों धर्मभाई मिलकर भावविह्वल हुए दोनों कुलगुरुओंको साथ लेकर सुन्दरीवाटिकामें वह प्रतिमा और उस प्रतिमाके नीचे वह दानपत्र सुस्थापित कर देते हैं। यह सब कृत्य धन्यात्रयोदशीकी अर्धनिशाके पूर्व ही सम्पादित हो जाता है।।।३६१।।

चतुर्दशीके प्रातःकाल जब नन्दतनय कलेवा करके गोचारणके लिये एवं वृषभानुनन्दिनी एवं उनकी अनुजा भगिनी मञ्जुश्यामा सूर्यपूजनके लिये वनमें प्रस्थान कर जाती हैं, तब गोकुल नन्दग्रामसे नन्दपत्नी यशोदा एवं इधर वृषभानुपुरसे कीर्त्तिदा एवं श्रीराधाकी मौसी कीर्त्तिमती भी इस सुन्दरी-उद्यानमें उस नीलमणि-प्रतिमाको देखनेको चली आती हैं। वे चारों उस प्रतिमाकी शोभा, सुन्दरता देख-देखकर विस्फारित-नेत्र चकित हो जाती हैं। वे देखती हैं कि उस नीलमणिकी प्रतिमासे यशोदाके पुत्रकी आकृति हूबहू मिलती है। उस प्रतिमासे ऐसा विचित्र तेज निकलता है जो दिनके समय उसके चतुर्दिक् दिनकरकी किरणोंतकको नीलाभ बना देता है। उस नन्दतनूजकी प्रतिमाके चतुर्दिक् सम्पूर्ण वातावरण ही नीलज्योति एवं नीली छटासे उद्भासित हो उठता है। निशामें उस प्रतिमाके कलेवरसे साढ़े चौबीस चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं। इनमें दस तो चरणोंके नखोंसे, दस हाथोंके नखोंसे, दो नेत्रोंसे, तथा दो कुण्डलोंकी दमकसे – इस प्रकार चौबीस स्थानोंसे तो पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाश निःसृत होता ही रहता है एवं उसकी नाकमें पडी बेसरके लघु आकारकी होनेके कारण जो ज्योत्स्ना प्रसारित होती है वह अर्धचन्द्रकी उपमा धारण कर लेती है। इस प्रकार साढ़े चौबीस चन्द्रमा उसमें से निःसृत होते हैं जिस दिन इस उद्यानमें यह प्रतिमा स्थापित हुई है, तभीसे यह उद्यान प्रायः सर्वजन-अगोचर ही रहता है, अमावस्या एवं पूर्णिमा – मात्र दो दिन, वृषभानुपुरकी प्रजा जब नियमानुसार उस वनकी

फेरी देती है, तो उनमे जो भी सौभाग्यशाली होते हैं, उन्हें उस वनमें भगवती जगज्जननीके दर्शन होते हैं, एवं उन्हें ही यदा-कदा पल-दो पलके लिये इस प्रतिमाके भी दर्शन हो जाते हैं।।।३६४।।

"गुरुवर ने चलते समय कहा तेरी मैया से था," प्रियतम !
"मैं पास खड़ी थी, मुद्रा थी गम्भीर बड़ी उनकी," प्रियतम !
"अपनी इन दो दुहिताओं की, रानी! सँभाल रखना," प्रियतम !
"निश्चित उस एक अवधितक ये उस वनमें जायँ नहीं" प्रियतम!।।३६५।।

पू.गुरुदेवने भी चलते समय तेरी मैयासे कहा था – उस समय मैं उसके पास ही खड़ी थी; पू. गुरुदेवकी मुद्रा आदेश देते समय बहुत ही गम्भीर थी। वे कह रहे थे - "रानी ! अपनी इन दोनों पुत्रियोंको सँभालकर रखना; उस एक निश्चेष्ट अवधितक ये उस वनमें प्रवेश नहीं करें"।।३६५।।

"तेरी बुढ़िया नानी, जो है जननी हम बहिनों की," प्रियतम !
"उसने ही आज दुपहरी में आकर है यहाँ कहा," प्रियतम !
"ये चपल छोरियाँ घुसती हैं उस वन की सीमा में," प्रियतम !
"तेरी मैया अत्यधिक इसे सुनते ही घबरायीं" प्रियतम।।३६६।।

मेरे प्राणोंकी प्राण छोटी लाड़ली री मेरी ! तेरी जो बुढ़िया नानी है, और हम दोनोंकी जो जननी है, उसीने आज मध्यान्हमें आकर यहाँ हम लोगोंसे यह कहा – अरी छोरियों ! सुनती हो, यह जो तेरी छोटी-बड़ी दोनों छोरियाँ हैं , दोनों ही उस वनकी सीमामें घुसती हैं भला ! – बस, इतना सुनते ही तेरी मैया अत्यधिक घबरा उठी।।३६६।।

"उसने मुझको भेजा, दौड़ी मैं उस वन में पहुँची," प्रियतम !
"कोई न मिली तुम, किंतु वहाँ थक गयी खोजकर मैं" प्रियतम!
"आखिर लौटी, रवि-मन्दिर में तुम सब थी खेल रही," प्रियतम!
"मैंने न कहा कुछ तुम सबको चुपचाप चली आयी।" प्रियतम ।।३६७।।

उसने तुरन्त मुझे भेजा। मैं दौड़ी हुई उस वनमें पहुँची, किन्तु तुम दोनोंमें से कोई भी वहाँ नहीं मिली। खोज-खोजकर मैं थक गयी। आखिर क्या करती, लौट आयी। लौटनेके पथमें मैंने देखा – तुम दोनों सूर्य-मन्दिरमें खेल रही थीं । मैं चुपचाप घर लौट आयी।।३६७।।

"तुम भी तुरंत पहुँची, तेरी मैया भी खीझ उठी," प्रियतम !
"है हेतु यही, है पता नहीं यह किन्तु लाड़ली को," प्रियतम !
"गुरुवर की रुचि का ही पालन मङ्गलकारी होगा," प्रियतम !
"जाकर उसको सब बतला दे, तू बड़ी सयानी है।" प्रियतम।। ३६८।।

तुम दोनों भी मेरे पीछे-पीछे ही आ पहुँची। बस, अब क्या था, मैया बड़े जोरसे तुम दोनोंपर खीझ उठी। यही हेतु है, तुम्हारी मैयाके रुष्ट होनेका। किन्तु बड़ी लाडली इस बातसे अनभिज्ञ है। तू बड़ी सयानी है री; अपनी बहनको सभी बातें ठीकसे समझा दे कि गुरुवरकी रुचिका पालन करना ही हम सबके लिये बड़ा मङ्गलकारी होगा. ....।।३६८।।

"मौसी इन बातों को मुझसे जिस समय कह रही थी," प्रियतम।
"केवल दस-बीस हाथ हटकर तू भी तो थी बैठी।" प्रियतम!
"उसका स्वर था परधीमा, मुँह तू तथा फुलाये थी;" प्रियतम!
"घटना रहस्यपूरित यह तू इसलिये न सुन पायी।" प्रियतम। ३६९॥

राधाकिशोरीकी अनुजा इतना कहकर कुछ क्षणोंके लिये रुक गयी, और फिर अपनी बड़ी बहनका कंधा हिलाकर बोली-अरी बहन ! मौसी जब मुझे यह बातें कह रही थी, तब तू भी तो पास ही बैठी थी ! केवल दस-बीस हाथका ही तो अन्तर था ! हाँ, मौसीका स्वर बहुत ही धीमा था और तू मुँह फुलाये हुए थी। इसी लिये यह रहस्यपूरित घटना तू सुन नहीं पायी।।३६९।।

"मैं चली तुझे कहने यह सब, इतने में ही बाबा," प्रियतम!
"आ गये वहाँ, उनसे लालित होकर तू मान गयी;" प्रियतम!
"ब्यारू के लिये तुरंत तथा फिर हम सब जा बैठीं" प्रियतम!
"बातों में मैं फँस गयी और कहना यह भूल गयी;" प्रियतम।।३७०।।

मैं जब तुझसे कहने तेरे पास आयी कि बस, इतनेमें ही बाबा आ गये, उनके द्वारा परिलालित होकर तू रूठना भूल गयी, और सर्वथा प्रसन्न हो उठी। उसके उपरान्त ब्यारूका समय हो गया; हम सभी उसीमें संलग्न हो गये; मैं भी बातोंमें फँस गयी और तुझसे यह कहना भूल ही गयी।।३७०।।

"अतएव यही प्रतिमा है, जो तब हुई प्रतिष्ठित थी;" प्रियतम!
"तू देख, यहाँ दिनकर की हैं किरणें नीली-नीली।" प्रियतम!
"है स्वर्णपत्र भी जटित अहो! चरणों के वह नीचे;" प्रियतम!
"संयोग देखनेका इसको अपने-ही-आप लगा।" प्रियतम॥ ३७१॥

अतएव देख ले, खूब अच्छी तरह देख ले – उस दिन रातके समय यही प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई थी। तू देख सही, प्रत्यक्ष देख ले, यहाँ दिनकरकी किरणें नीली-नीली दीख रही हैं। सब ओर नीला प्रकाश फैला हुआ है तथा वही तो वह स्वर्णपत्र है, जो प्रतिमाके चरणोंमें जटित हो रहा है। अहा हा ! अपने आप प्रतिमाके दर्शनका संयोग हम लोगोंके लिये लग गया।।३७१।।

'अब तू कह, किधर चलें?' कहकर अनुजा पल तीन रुकी, प्रियतम
चिन्तित-सी बड़ी बहिन उसको उत्तर कुछ दे न सकी, प्रियतम!
सहसा उसके मुख से निकला, 'वे गयी कहाँ सखियाँ,' प्रियतम!
आये ये शब्द कि टूट गयी पूरी समाधि उसकी, प्रियतम।। ३७२॥

अब तू बता बहन, किधर चलें ? ......दो-तीन पलतक अनुजा कुछ भी न बोली; केवल देखती रही अपनी बड़ी बहनको। राधाकिशोरी अपनी अनुजाको कुछ भी उत्तर न दे सकी। वे किसी गम्भीर चिन्तामें पड़ी हुई दीखती थीं। सहसा किशोरीके मुखसे निकला – अरी ! सखियाँ सब कहाँ चली गयीं ? तथा यह शब्दावलि निसृत होते-न-होते किशोरीकी समाधि टूट गयी।।३७२।।

दीखा जगते ही, सन्मुख है सर वही मिष्टजल का, प्रियतम!
घबरायी-सी होकर सखियाँ हैं उसे निहार रही, प्रियतम!

तोता भी द्रुम-डालीपर है वैसे ही निरख रहा, प्रियतम!
शीतल-समीरका झोंका वह वैसा ही है अब भी, प्रियतम ॥ ३७३॥

बाह्य ज्ञान होते ही किशोरीने देखा – सामने बड़ा सुमिष्ट जलका सरोवर लहरा रहा है, और घबरायी-सी होकर सखियाँ उसको ही निहार रही हैं। तोता भी एक द्रुमकी डालीपर बैठा वैसे ही देख रहा है। शीतल समीरका झोंका भी वैसा ही बार-बार सबको स्पर्श कर रहा था।।३७३।।

पूछा सहचरियोंने, कैसा अनुभव री! हुआ तुझे? प्रियतम!
क्या कहती वह, बरबस पानी आँखोंमें भर आया, प्रियतम
इच्छा न तनिक भी अब उसकी आगे बढ़नेकी थी, प्रियतम!
आयी थी जिस पथसे वनमें, उससे ही लौट पड़ी, प्रियतम ॥ ३७४॥

सहचरियोंने किशोरीसे पूछा – अरी ! तुझे क्या, कैसा अनुभव हुआ, किंचित् बता तो सही ! किन्तु किशोरी क्या कहती, उसकी आँखोंमें बरबस पानी भर आया। अब उसके मनमें तनिक भी उत्साह नहीं रहा था, तनिक-सी भी इच्छा नहीं बची थी कि वह आगे बढ़कर वनकी शोभा निहारे। वह चुपचाप उसी पथसे लौट पड़ी, जिससे आयी थी।।३७४।।

आयी झाड़ी मेंहदीकी वह दक्षिण सीमावाली, प्रियतम!
नृपपुत्रीने उदास मनसे उसको ज्यों पार किया, प्रियतम!
आया, बस, कीर वही उड़कर, करके प्रणाम बोला, प्रियतम!
'संदेश एक है श्रीपदमें उन नीलदेवताका।' प्रियतम॥ ३७५॥

घड़ीका चतुर्थांश बीतते-न-बीतते वह मेंहदीकी झाड़ी वनकी दक्षिण सीमाके समीप आ पहुँची। राजनन्दिनीने उदास मनसे ज्योंही उस झाड़ीको पार किया कि उड़ता हुआ वही कीर वहाँ आ पहुँचा। राधाकिशोरीके चरणोंमें प्रणाम करके वह बोल उठा – श्रीचरणोंमें निवेदन कर देनेके लिये नीलदेवताने एक संदेश भेजा है।।३७५।।

'सेवा न बनी कुछ भी सचमुच अरसिक मुझ किंकरसे,' प्रियतम!
'अपनी ही ओर देख, उरमें अविचल निवास देना।' प्रियतम!
'है नहीं मनोभ्रम, सच्ची है घटना सब इस वनकी,' प्रियतम!
'माला है झूल रही उरपर, झूलेगी नित्य तथा।' प्रियतम ॥ ३७६॥

कीर बोलता ही चला गया- नीलसुन्दरदेवने यह कहा है – मुझ किङ्करके द्वारा कुछ भी सेवा न हो सकी; सचमुच तुम्हारा यह किङ्कर अत्यधिक अरसिक है ! देवि ! तुम अपनी ओर देखकर अपने इस किङ्करको अपने हृदयमें अविचल निवास देनेकी कृपा करना भला ! और देखो, तुम इन अनुभूत घटनाओंको अपना मनोभ्रम बिलकुल मत मानना । इस वनकी सभी घटनाएँ सच्ची-से-सच्ची हैं। तुम्हारी पहनायी हुई पुष्पोंकी माला मेरे उरपर वैसे ही झूल रही है और नित्य झूलेगी ही।।३७६।।

वह वायुकोणमें कीर उड़ा, कहकर इतना-सा ही, प्रियतम!
घर चली नृपति-पुत्री, अपना मन रखकर वनमें ही, प्रियतम!
सब बोल रही थीं सखियाँ, वह बोली न किंतु कुछ भी, प्रियतम!
काँचा वह भाव-तड़िच्चालिततनका था लौट रहा, प्रियतम॥ ३७७॥

इतना-सा ही कहकर वह तोता वायुकोणमें उड़कर चला गया। राजनन्दिनी भी अपने घरकी ओर अग्रसर हुई। किन्तु उनका मन उस वनस्थलमें ही फँसा रह गया। चारों ओर सहचरियाँ बोल रही थीं; पर राधाकिशोरी एक शब्द भी न बोली – भाव-विद्युत्से परिचालित उनके तनका ढाँचामात्र ही घरकी ओर लौट रहा था।।३७७।।

आते ही घर मैया उरमें भर कर, दृगधारा से, प्रियतम!
नहलाकर, 'कैसे क्या देखा वनमें?' पूछने लगी, प्रियतम!
औरों ने बात कही, किंचित छोटी छोरी ने भी, प्रियतम!
केवल नीरव वह एक रही, कह सकी न, बड़ी लली, प्रियतम।। ३७८।।

घर आते ही मैयाने राधाकिशोरीको हृदयसे लगा लिया। अपने नयनोंकी धारासे किशोरीको नहलाकर वे पूछने लगीं-मेरी लाडिली री ! तूने वनमें क्या-क्या, कैसे देखा ?............किशोरीकी सहचरियोंने तो अपनी-अपनी बातें बतायीं; किंचित्-सी बात लाडिलीकी छोटी बहनने भी कही, नीरव तो एकमात्र राधाकिशोरी ही रहीं। वे चेष्टा करनेपर भी कुछ बोल न सकीं।।३७८।।

उद्यान महल से सटा हुआ जो था विशाल उसका, प्रियतम!
उसमें ही जा बैठी उस दिन हो जाने पर सन्ध्या, प्रियतम!
था प्रिय एकाकीपन उसको सर्वथा आज अब तो, प्रियतम!
उस वनकी वह नीली प्रतिमा मानो सन्मुख ही थी, प्रियतम।। ३७९।।

राजप्रासादसे सटा हुआ जो विशाल उद्यान था, जिसमें किशोरी प्रायः संध्याके समय अवश्य जाती थीं, उसमें वह आज भी जा बैठीं। उस दिनकी संध्या हो चुकी थी, तभी किशोरी उद्यानमें आयी थी। किन्तु आज किशोरीको सर्वथा एकाकीपन प्रिय था। उसे अनुभव हो रहा था, मानो उस वनकी वह नीली प्रतिमा सम्मुख खड़ी है।।३७९।।

तोते के द्वारा प्रेषित वह सन्देश देवता का, प्रियतम!
उसके कानों में गूँज रहा मधुमय निरन्तर था, प्रियतम!
त्वक् और नासिका, रसना में अनुभूति भरी वह थी, प्रियतम!
जो भुजा-समर्पण के क्षण में उसको थी वहाँ हुई, प्रियतम।। ३८०।।

किशोरीके कर्णपुटोंमें तोतेके द्वारा प्रेषित नीलसुन्दरके संदेशकी ध्वनि गूँज रही थी; उसमें कहीं भी तनिक विराम नहीं हुआ था। और तो त्या, उस संदेशमें भरी हुई मधुकी धारा उत्तरोत्तर वेगवती होती जा रही थी। उसकी स्पर्शेन्द्रिय एवं नासिकामें तथा रसनामें भी – नीली प्रतिमाकी ग्रीवामें भुजा-समर्पणके समय जो अनुभूति हुई थी – वही परिपूर्ण हो रही थी।।३८०।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

इन छन्दोंमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने किशोरी राधाके 'स्नेह-प्रासाद'में प्रवेशकी समग्र दशाका वर्णन किया है। छन्दसं.३२८में वे पूर्वतः कह ही चुके हैं कि राजतनूजा राधा स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभाव – प्रेम-महलकी इन सप्त मञ्जिलोंकी एक मात्र अधिष्ठात्री देवी हैं। किन्तु अभी वे मात्र स्नेहकक्षमें ही उतरी हैं। इस समग्र शतकमें स्नेहभावसे अभिभूत विशुद्ध प्रेमीके चित्तकी जो दशा होती है, उसीका साररूपमें वर्णन किया गया है।

यह सदैव ध्यान रहे कि श्रीराधा स्वरूपतः श्रीकृष्णप्रेमकी घनीभूत नित्य चेतन स्थिति हैं। वस्तुतः भगवान्में जो आनन्दशक्ति है, उसका सार है प्रेम और प्रेमका सार है मादनाख्य महाभाव। अतः प्रेमकी एकमात्र आत्मस्वरूपा होनेसे श्रीराधाके चित्तमें मात्र सात वर्षकी वयमें ही लीला-रसास्वादनार्थ विलक्षण विशुद्ध प्रेमवृक्ष पल्लवित हुआ है। यह नहीं भूलना चाहिये कि वे चिन्मय परतत्व हैं, साधारण मानवी बालिका नहीं; परन्तु अभी तो उनसे ऐसी ही लीलाका प्रकाश हो रहा है जिसमें उनका चित्त पूरा चुरा लिया गया है। वे जबसे वनसे उस प्रतिमाको अपना आत्मसमर्पण करके अपने प्रासादमें लौटी हैं, अतिशय निर्मल स्वर्णकी भाँति दोषरहित, दुर्लभ एवं पवित्रतम प्रेमकी मधुर-मधुर विविध लहरियोंमें नित्य प्रमुदित मनसे नाच रही हैं। वे अपने प्रियतमके प्रेममें सबकुछ पूर्णतया विस्मृतकर उन्मत्त हो रही हैं। उन्हें अपने प्रियतमका सन्देश उनके दूत शुकके द्वारा मिल चुका है। दूत शुक द्वारा मिले सन्देशने किशोरीके प्रेमको और उद्दीपित कर दिया है। उनके कानोंमें निरन्तर शुककी वाणी ही गूँज रही है – 'प्रिये ! मैं तो अतिशय अरसिक हूँ। प्रेमधनसे सर्वथा दरिद्र हूँ। मैं तुम्हें तनिक भी सुख देनेमें असमर्थ ही रहा। मुझ तुम्हारे चरण-किङ्करसे तुम्हारी कुछ भी सेवा नहीं बन पायी। परन्तु तुम्हारे द्वारा मुझे जो प्रेम-सौभाग्य मिला, वह असीम है। उसकी कहीं कोई परिमिति ही नहीं है। तुम मेरी त्रुटियोंकी ओर कभी मत देखना। अपना सम्पूर्ण प्रेमामृत उँडेलनेको सदैव मुझे अपने पावनतम हृदयमें अविचल निवास देना। हे प्राणेश्वरी ! तुम सरीखी प्रेममयी केवल तुम्हीं हो। मैं तुमपर बलिहारी हूँ। तुमने जो अपना तन-मन-धन-जीवन अर्पण करते हुए अपने समर्पण-भावोंकी प्रतीक यह वनमाला मुझे पहनायी है, विश्वास करना, यह माला मेरे कण्ठमें आज भी झूल रही है और निरवधि अनन्तकालतक सदैव ही झूलती रहेगी। तुमने धर्म, लोक, परलोक, स्वजन, कुल सबका आत्यन्तिक विस्मरणकर जो मेरी यह प्रेमाराधना की है, इस ऋणसे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। हमारी इस पवित्रतम प्रेमाराधनाको तुम निरा मनोभ्रम मत मान लेना। अघटन-घटना-पटीयसी श्रीसुन्दरीके इस वनकी यह अपूर्व घटना है, जो परम सत्य-की-सत्य है। निश्चय मानना, इस मालाके रूपमें मुझे तो सदैव तुम्हीं मेरे हृदयसे लगी दृष्टिगोचर होती रहोगी। प्राणेश्वरी ! मेरे कानोंमें तुम्हारे नूपुरोंकी मधुरतम झङ्कार, मेरे नेत्रोंमें अनन्त मदनका मद हरण करनेवाला तुम्हारा रूप, मेरी घ्राणेन्द्रियोंमें प्रेम-मतवाला बना देनेवाली तुम्हारी मधुर सुन्दर अङ्ग-गंध और मेरे मनमें तुम्हारा मदमत्त करदेनेवाला अङ्ग-संस्पर्श सदैव-सदैव बसा रहेगा। प्रेम-विवश मेरा मन सदैव तुम्हारे लिये नित्य नव-नव रूपमें लालायित होता रहेगा। हृदयेश्वरी ! इसे सत्य, सत्य मानना।'

प्राणप्रियतमके दूत शुकपक्षी द्वारा अतिशय विनम्र भाषामें निवेदित यह प्रिय-प्रेम-सन्देश उसके कानोंमें रह-रहकर गूँज उठता था। भुजा-समर्पणके समय उसे जो विचित्र प्रेमानुभूति हुई थी, वह उसकी त्वचा, नासिका एवं रसनामें समा गयी थी और उस विचित्र प्रेम-समर्पणकी भावानुभूतिमें वह डूब गयी थी।

उसकी प्रेम-समर्पणकी वह अनुभूति क्या थी ? क्या उसका भुजा-समर्पण उस प्रतिमासे प्रेमालिङ्गन मात्र था ? क्या उसकी रसनाको अधरामृतरस, नासिकाको अङ्ग-गन्ध अथवा त्वचाको कोई विलक्षण अलौकिक संस्पर्शभोग भर प्राप्त हुआ था, और उस भोग-संस्पर्शकी स्मृति उसे रह-रहकर पुनः प्राप्तिकी कामनामें मतवाला बना रही थी ?

नहीं, नहीं, इन सभी मलिन कामभावोंका तो उसके चित्तमें लेशमात्र भी समावेश नहीं है। उसका प्रेम अचिन्त्य, अनिर्वचनीय है। कहनेके लिये इतना ही कहा जा सकता है कि काम-दोषके गन्धलेशसे भी वह हीन, शून्य, परम विशुद्ध सहज स्वरूपतः ही है। उसका मन, तन, उसके अङ्ग-अवयव सभी सच्चिदानन्दमय हैं। वहाँ कामना – अभावरूप विजातीय धातु आये ही कहाँसे ? वहाँ स्वसुख-लालसा तो है ही नहीं। स्वसुख-लालसा तो अपूर्णमें ही होती है। उसमें तो मात्र उसके प्रियतम-ही-प्रियतम ठसाठस भरे हैं। तब ? उस समालिङ्गनमें जो सुखास्वादन उसकी रसना, नासिका एवं त्वचाके माध्यमसे उसके मन-बुद्धितक पहुँचा था , वह तो मात्र आत्मदानका था। उस आत्मदानको भी करनेकी उसमें अहंता ही कहाँ रही थी, सब अहंता ही प्रियतमकी अहंतामें लवलीन हो गयी थी। आत्मदान भी उसने किया

नहीं, उससे स्वतः हो गया था। आत्मदान करनेमें यदि कुछ हेतु था तो मात्र प्रियतमको सुखदान देनेकी स्पृहा भर थी। उसके प्रियतमको उसके अधरामृतरस-घूँटने अनन्त प्रेम-सुखमें सराबोर कर दिया, उसके अङ्ग-गंधके आस्वादसे प्रियतमकी नासिका अनन्त अनादि गंध-सुखसे तृप्त हो उठी और उसके मादक सुकोमलतम अङ्ग-स्पर्शसे प्रियतम प्रेमसुखकी लहरोंसे लहरा उठे, यही उसकी इन्द्रियोंका आस्वाद था। उसकी इन्द्रियाँ प्रिय-सुखसे निहाल होकर सुखी होगयी थीं।

जगत्में न जाने कबसे उसमें जो 'मेरे'पनकी दुर्गन्ध अपने निजत्वको लेकर समायी थी, उस पावन क्षणसे उसकी यह मेरेपनकी दुर्गन्ध प्रियतमके पावन अङ्गोंकी सुगन्धसे एकात्म हो गयी थी और अब उसके'मेरे' केवल और केवल नीलसुन्दर प्रियतम ही हो गये। उसकी नासिकाको यही मधुरतम अनुभूति हुई थी कि उसमें जो प्राणी-पदार्थ और परिस्थितियोंसे ममत्वकी दुर्गन्ध भरी थी, वह कपूय प्रियतमकी मादक प्रेमभरी अङ्गगंधसे मिलकर दूर होगयी और अब उसके ममताके एकमात्र केन्द्र नीलमणि श्रीकृष्ण ही हो गये। उसकी रसनाने प्रियतम-प्रेमका जो भी रस चखा उससे उसका जगत्में जो जहाँ भी प्रेम, विश्वास एवं आत्मीयताका भाव था, वह सब मिट गया। अपने प्रियतमको अधरामृतरस-पान करानेका उसे यही प्रतिदान मिला कि उन्हींमें उसका सारा प्रेम केन्द्रित हो गया। अब तो एकमात्र वे-ही-वे और उनका ही भाव रह गया। और उसकी त्वगिन्द्रियने जो प्रियतमको समालिङ्गित किया उससे तो यह समग्र संसार ही अब उनमें ही विलीन हो गया। अब तो किशोरी राधाके लिये उसके प्रियतमके सिवाय किसीकी सत्ता ही शेष नहीं रही।।३८०।।

दो घड़ी बीतते ही सखियाँ उसके समीप आयीं, प्रियतम !
उसको न किंतु दीखी सब वे क्षणभर भी खड़ी वहाँ, प्रियतम !
उन पाँच-सात की संख्या में नीली-प्रतिमा ही है, प्रियतम !
उसको यह अनुभव हुआ और विस्मय में थी डूबी, प्रियतम।। ३८१।।

रजनी दो घड़ी बीतते-न-बीतते सहचरियाँ उसके समीप आ बैठीं। किन्तु किशोरीको वे क्षणभरके लिये भी वहाँ खड़ी हुई दीखी नहीं। किशोरीने तो यह अनुभव किया कि पाँच-सातकी संख्यामें नीली प्रतिमा ही उसके सम्मुख मूर्त हो रही है।- आत्यन्तिक विस्मयमें भरी हुई उसकी आँखें सहचरियोंको निहार रही थीं।।३८१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अहा ! कैसे विशुद्ध प्रियतम-सङ्गमकी उपलब्धि पौगण्डवयसे कैशोरमें पैर रखती हुई सप्तवर्षीया राधाको हुई है कि जैसे पक्षियोंके बिना पाँख उगे बच्चे अपनी माँ चिड़ियाकी क्षुधातुर हुए बाट देखते हैं, जैसे भूखा बछड़ा अपनी माँ गायका दूध पीनेके लिये आतुर बना उसकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही वह अपने प्रियतमके प्रेममें छटपटा रही है।

इसीलिये दो घड़ी बीतते-न-बीतते जैसे सखियाँ उसके पास आती हैं, उसे वे दिखलायी ही नहीं पड़तीं। किशोरीको तो यही अनुभव हो रहा है कि पाँच-सातकी संख्यामें वह नीलमणिनिर्मित प्रतिमा ही उसके सम्मुख मूर्त हो रही है और वह विस्मयमें भरी उस प्रेम-खेलको निहारने लग जाती है।

यहाँ कोई शङ्का कर सकता है कि एक नीलमणिरत्नमयी प्रतिमाके दर्शन-स्पर्शालिङ्गन मात्रसे ऐसा विलक्षण प्रेम श्रीराधामें कैसे उदय होगया ? इसका उत्तर यही है कि श्रीराधा तो स्वरूपतः ही महाभावमयी हैं, एवं उसके प्रियतम श्रीकृष्ण भी चिदानन्दमय रसराज हैं। श्रीराधाके प्राणप्रियतम श्रीकृष्णमें देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी एवं लीला-लीला-पुरुषोत्तमका भेद है ही नहीं। जब श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग, उनका नाम, उनका रूप-ध्यान भी पूर्ण श्रीकृष्ण है तो उनके चिदानन्द-रस-सरोवर कृष्णकुण्डसे स्वयंभूत यह प्रस्तर प्रतिमा भी पूर्णरूपेण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णमें

अलौकिक प्रेम-सामर्थ्य है। वे अपनी नाकसे चुम्बन ले सकते हैं, अपनी नाकसे समालिङ्गन-सुख दे सकते हैं, अपनी नख-ज्योत्स्नासे रासनृत्य कर सकते हैं, वे अपने रोमसे माखन-चोरी कर सकते हैं, तब उनके चिदानन्द-रस-सरोवरसे उद्भूत स्वयंभू प्रतिमा यदि अपनी नित्यवर्धनशील रूपमाधुरीसे, नित्यनवीन प्रेमरसदान-चातुरीसे राधा-भावोदधिमें चमत्कारिक उच्छलन उत्पन्न कर दे रही है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

परम प्रेमके दिव्यरसमें डूबी प्रेमानन्दमयी राधा सर्वत्र अपने प्रेममय रसमय प्रियतमको ही देखती है। उसके चित्तमें जब अन्य दूसरेकी सत्ता ही नहीं रही, एकमात्र उसके प्रियतमका ही अखण्ड साम्राज्य और पूर्ण अधिकार होगया, तब थोड़ा-सा भी स्थान कहाँ रहा जहाँ उसकी अपनी सखियोंकी कल्पनाकी स्मृति छायारूपमें भी प्रवेश पा सके। जब उसका चित्त साक्षात् अपने प्रियतमके प्रेमका स्वरूप ही बन गया, तब यह तो स्वाभाविक ही था कि उसके समस्त अङ्ग-अवयव, इन्द्रियाँ अपने प्रियतमका ही अनुभव करतीं। अतः श्रीराधाकी समस्त इन्द्रियाँ मात्र अपने प्रियतमको ही विषय कर रही हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?।।३८१।।

बातें कितनी ही बार-बार कह गयीं न जाने वे, प्रियतम!
कानों में कोई भी उनकी बट उक्ति न किंतु गयी, प्रियतम!
हैं ओठ हिल रहे, बोल रही नीली-प्रतिमा ही है, प्रियतम!
'प्रियतमे! वल्लभे! प्राणेश्वरि!' यों, थी प्रतीति उसको, प्रियतम॥३८२॥

सखियाँ न जाने कितनी ही बार कितनी ही बातें कह गयीं, किन्तु किशोरीके कर्णपुटोंमें उनकी कही हुई उक्तियाँ-एक भी-स्थान न पा सकीं। उसे अनुभव हो रहा था कि नीली प्रतिमा सामने खड़ी है। उसके होठ हिल रहे हैं, और होठोंके अन्तरालसे यह शब्द निसृत हो रहे हैं – प्रियतमे ! वल्लभे! प्राणेश्वरि ....।।३८२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

सखियाँ न जाने कितनी ही बार कितनी ही बातें कह गयीं , किन्तु राधाके कर्णपुटोंमें जगत्-वार्त्ता प्रवेश कर पावे तब न ! क्या सूर्यको प्रयास करके रात्रिका नाश करना पड़ता है ? सूर्योदयके प्रकाशका आभास ही रात्रिके अन्धकारको मार डालता है। ठीक इसी प्रकार जब राधाके हृदयमें प्रेम-सूर्योदय हो उठा तो उसमें जगत् श्रवणेन्द्रियके द्वारा कैसे प्रवेश कर पाता ? महान् रसिक सिद्ध सन्त पोद्दार महाराज कहते हैं –

नित्य प्रकासित स्याम सूर्य, तहँ जग-तम जात डराय !
दुस्साहस करि जाय कबहुँ तो बिनु मारे मर जाय।।

श्रीराधाके तो हृदयमें पवित्र प्रेमका बीज वपन होते ही उसके कानोंने अन्य श्रवणकी वृत्ति ही समेट ली।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँक रहि सकैं, रबि-रजनी इकठाम।।

जहाँ प्रियतम-प्रेम है, वहाँ जगच्चर्चा-श्रवणरूप इन्द्रिय-काम कैसे रह सकता है ?

कानन दूसरौ नाम सुनै नहिं एकहि रङ्ग रँग्यौ यह डोरौ।
धोखेहु दूसरो नाम कढ़ै रसना मुख काढि हलाहल बोरौ।।
ठाकुर चित्तकी वृत्ति यहै अब कौन उपाय करै नहिं भोरौ।
बावरि वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँडि निहारत गोरौ।।

फिर राधाके कान अन्य वार्त्ता कैसे सुनें ? उसे तो यही अनुभव हो रहा था कि नीली प्रतिमाके ही होठ हिल रहे हैं, वही मुझसे कुछ कह रही है। और उसे तो एकरस मात्र अपने प्रियतमकी प्रीति-शब्दावली ही श्रवणगोचर हो रही थी – 'प्रियतमे ! वल्लभे !! प्राणेश्वरी !!!' ।।३८२।।

अविलम्ब महल में ले जाना उसको आवश्यक था, प्रियतम!
जैसे उस सखी सयानी ने उसका कर अब पकड़ा, प्रियतम
मेरा है किया हस्तधारण नीली-प्रतिमा ने ही, प्रियतम!
यह लगा और अनुभूति हुई प्राण स्पर्शी सुख की, प्रियतम।। ३८३।।

चिन्तामें निमग्न हुई सखियाँ अपने कर्तव्यका निश्चय करने लगी – किशोरीको शीघातिशीघ्र महलमें ही ले चलना चाहिये – सबका यही निश्चय हुआ। जैसे ही उस सयानी सहचरीने उसका हाथ पकड़ा कि राधाकिशोरीको यह अनुभव हुआ – नीली प्रतिमाने ही मेरा हस्त-धारण किया है – एक प्राणस्पर्शी अनिर्वचनीय सुखका अनुभव करके किशोरी भूल गयी अपने आपको।।३८३।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

सखियाँ उसकी दशा देखकर चिन्तित हो उठीं। उन्होंने एकमतसे यही निर्णय लिया कि उसे अविलम्ब महलमें ले जाना चाहिये। उन सखियोंमें सबसे सयानी और राधाकी परम प्रेष्ठ सखी ललिता ही थीं। उसने उसका हाथ पकड़ा। किन्तु प्रिया राधाकी तो यही अनुभूति थी कि वह अपने प्रियतमको प्राणोंसे बढ़कर प्यारी है। प्रियतमके मन-बहलावकी वह मात्र साधन है। बस ! इसीलिये प्रियतमने अपने केलिसुख या उसे कुञ्जोंमें ले चलनेके लिये ही उसका हस्त-ग्रहण किया है। अपने प्राण-प्रियतमकी कमनीया वे उनकी सुखेच्छाका निषेघ कैसे करें ? वे तो अपने प्रियतमके पारावारमें विहार करनेवाली मीन हैं। अपने प्रियतमकी वे ही प्रेम-तरङ्गिणी हैं। बस, उनके वदनपर हास्य एवं आनन्दकी अनन्त तरङ्गें नाच उठीं। वे अपने प्रियतमके प्रेममें मतवाली हो उठीं और प्राणस्पर्शी सुखने उन्हें अभिभूत कर दिया।।३८३।।

विश्राम-कक्ष में उसको वे ज्यों-त्यों कर ले आयीं, प्रियतम!
थी बहिन कनिष्ठा लगा रही सुरभित विलेप तन में, प्रियतम!
यह भान हुआ उसको, सौरभ नीली-प्रतिमा में है, प्रियतम!
उससे झर-झर भर रहा और मेरे अङ्गों में है, प्रियतम।।३८४।।

.........जैसे-तैसे सखियाँ उसे विश्रामकक्षमें ले आयीं। अनुजाने सुरभित विलेपन किशोरीके तनमें लगाना आरम्भ किया, किन्तु किशोरीको अनुभव हुआ कि यह सौरभ तो नीली प्रतिमासे झर-झरकर मेरे अङ्गोंमें भरकर उनको सुरभित कर दे रहा है।।३८४।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

उसको सखियाँ तो दिख ही नहीं रही थीं। उसे तो सखियोंके रूपमें वह नीली प्रतिमा ही अनेक बनी दृष्टिगोचर हो रही थी। वह आश्चर्यसे उन अनेक बने अपने प्रियतमकी छविको निहारती विश्राम-कक्षतक चली आयी। वहाँ सखियोंने उसे पलङ्गपर लेटा दिया। उसकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामाने अतिशय सुरभित विलेप लेकर उसके अङ्गोंमें लगानेका मन किया, जिससे उसे किञ्चित् शीतलता मिले। सखियाँ यही अनुमान कर रही थीं कि वन-भ्रमणमें अतिशय श्रान्त हो जानेके कारण ही उसके मस्तिष्कमें विकार उत्पन्न हो गया है। किन्तु किशोरीको तो अपने प्रियतमके प्रेम-नशेमें मतवाली होनेके कारण यही अनुभव हो रहा था कि विश्वमें जहाँ जितना भी सौरभ है, वह समग्र भी यदि कहीं पुञ्जीभूत हो जाय और उसको कोई अनन्त गुना कर दे, तब भी जो सौरभ उसकी प्रियतमस्वरूपा नीली प्रतिमामें है, उसकी तुलनामें वह सौरभ हेय, तुच्छ ही सिद्ध होगा। अस्तु, उसके अङ्गों-प्रत्यङ्गोंमें नीली प्रतिमाका ही सौरभ, उसके अङ्गोंसे ही झरकर भर

रहा है। क्यों न झरे, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग रोम-रोमको वह नीली प्रतिमा ही तो असीम प्रेम करती है। अतः वह प्रतिमा यदि अपनी प्रीति-सुवासका आस्वादन उसे न करायेगी तो किसे करायेगी? अपने प्रियतमके प्राणोंकी स्वामिनी तो वही है। नीली प्रतिमाके प्राणोंकी स्वामिनी , उनकी अधिष्ठात्री, उनके मनमें एकमात्र वही तो बसी है।।३८४।।

ब्यारू न करा पायीं सखियाँ, तब अनुजाने अपनी, प्रियतम!
अधजूठ मिठाई वह उसके ओठों पर तनिक रखी, प्रियतम!
है अधर-सुधा यह तो सचमुच नीली-प्रतिमाकी ही, प्रियतम!
होने यह भान लगा उसको, खाती वह चली गयी, प्रियतम।।३८५।।

कोई भी सहचरी उसे आज ब्यारू न करा सकी। कोई उपाय न देखकर अनुजाने एक मिठाईको अधजूठ करके बड़ी बहनके होठोंपर रख दिया। बड़ी बहनको अनुभव हुआ – अहा ! यह तो नीली प्रतिमाका ही प्रीतिदान है। उसकी यह अनुभूति गाढ़ी-से-गाढ़ी होती चली जा रही थी और वह खाती ही चली गयी।।।३८५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

सन्ध्याका समय हो गया है। किशोरीके चित्तमें प्रेमोन्मादके चिह्न स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं। उसके अणु-अणुसे प्रेमानन्द झर-सा रहा है। किशोरीकी प्रेमोन्मत्तता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। सखियोंके चित्तमें आकुलता है। प्रातःकाल कलेऊ करके वह उनके सङ्ग वनमें गयी थी। तबसे अबतक उसने कुछ भी नहीं खाया है। सबने पाकशालासे विविध पक्वान्नोंके थाल प्रस्तुत किये और मनुहार कर-करके किशोरीको खिलानेकी चेष्टा करने लगीं। किन्तु किशोरी इतनी प्रेमोन्मत्त थी कि सखियोंकी सम्पूर्ण चेष्टा विफल ही रही। अखिल विश्वको मोहित करनेवाले उसके प्रियतम उसके हृदयके भीतर उसे भरे दिख रहे थे। किशोरी अपने हृदयमें अपने प्रेमास्पदको प्रतिपल नये-नये सौन्दर्य-माधुर्यसे भरपूर देख रही थी।

उसके प्रियतम किशोरीको इस समय पूर्वापेक्षा अधिक सुन्दर एवं मधुर दिख रहे थे। इस समय उन प्रेममयके एक-एक अङ्गसे, एक-एक रोमसे शोभाश्रीकी ऐसी सुधा-धारा बह रही थी कि किशोरीको यही अनुभव हो रहा था मानो उसकी एक बूँदके आस्वादन करनेकी भी शक्ति उसके नेत्रोंमें अवशिष्ट नहीं रही है। फिर निज शरीरकी भला उसे स्मृति ही कैसे होती ? शरीरकी आत्यन्तिक विस्मृतिमें भोजन फिर कौन करे ?

जब सभी ललितादि सखियाँ विफल-मनोरथ हो गयीं तो राधानुजा मञ्जुश्यामा किशोरीके सम्मुख ऐसी मुद्रा धारण करके खड़ी हो गयी मानो वह नीली प्रतिमा ही हो। मञ्जुश्यामाका श्यामल वर्ण और उसकी वैसी ही प्रेम-मुद्रा देखकर किशोरी भावमें भर उठी। उसके होठ बुदबुदाकर अस्फुट भाषामें कुछ उच्चारण करने लगे –'प्रियतम ! तुम तो सदैव ही मेरे नेत्रोंको सुख देते हो, परन्तु जैसा अतिशय माधुर्य इस समय मैं तुम्हारी इस भंगिमामें देख रही हूँ – वैसा तो मैंने पहले कभी नहीं देखा था।''

बस, अनुजा मञ्जुश्यामाको अवसर मिल गया। उसने थालीमें से एक मिष्ठान्न-खण्ड उठाया, उसे अपने अधरोंसे लगाया और किशोरीके मुखमें दे दिया। किशोरी इसी अनुभवमें डूब गयी मानो नीली प्रतिमा ही जीवन्त उसके सामने खड़ी उसे अपना अधरामृत-प्रसाद दे रही है। किशोरीके शरीरके अणु-अणुमें एक बार तो अभिनव तड़िल्लहरी ही दौड़ गयी। उसके नेत्र छल-छल करने लगे। नीली प्रतिमा अपने बंकिम नेत्रोंसे प्रेम-वर्षा करती उसे अपना अधरामृत प्रसाद खिलाना चाहती है। अब निषेध कैसा ? ओह ! शत-सहस्रगुणित माधुर्य, अरुणाभ नयनाम्बुज, मणि-किङ्कणी-विभूषित कटिदेश, नूपुर-सुशोभित चरणारविन्द, कौस्तुभमणिभूषित वक्षस्थल, वही सुवर्णरेखा, प्रफुल्ल नीलोत्पल-विनिन्दित अङ्गकान्तिसे कक्षको उद्भासित करती नीली प्रतिमा जब किशोरीके मुखपर अपने हाथसे अपना अधर-रसना-प्रसाद दे तो वह उसे कैसे ग्रहण नहीं करे। किशोरी मञ्जुश्यामाके हाथसे भोजन करती ही चली गयी।।३८५।।

वैसे ही उसे पिलाया फिर जल भी अनुजाने ही, प्रियतम !
वैसे ही भुला-भुलाकर ही वह पान खिला पायी, प्रियतम !
'है प्रीति-दान यह तो मुझको नीली-प्रतिमा का ही', प्रियतम !
उसकी प्रतीति थी क्रमशः यह गाढ़ी होती जाती, प्रियतम ।।३८६।।

जिस प्रकार अनुजाने किशोरीको भोजन कराया, ठीक उसी विधिसे उसने उसे पानी भी पिलाया, और जब उसने पानी पी लिया तो इसी विधिका अवलम्बन करके अनुजाने उसे बीड़ी भी मुखमें दे दी। यह सब मेरे प्रियतम नीली प्रतिमाका ही योगदान है, उसकी यह अनुभूति क्रमशः गाढ़ी-से-गाढ़ी होती चली जा रही थी। ।।३८६।।

थी एक पहर रजनी बीती, सहसा वह उठ बैठी, प्रियतम !
अपनी ही अहो ! हथेली पर जा टिकी आँख उसकी, प्रियतम !
दीखी वह पूरी-की-पूरी नीली-प्रतिमा-जैसी, प्रियतम !
ऊपर वह बाहुमूल तक था पूरा कर ही नीला, प्रियतम ।।३८७।।

रजनी एक प्रहर व्यतीत हो चुकी थी कि सहसा किशोरी उठ बैठी। अपनी ही दोनों हथेलियोंपर उसकी आँखें जा टिकी। उसे अनुभव हुआँ – अरे ! यह तो पूरी-की-पूरी नीली प्रतिमा जैसी है। और तो क्या, बाहुमूलतक उसके दोनों हाथ नीलवर्णके हो गये थे ।।३८७।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

अब तो मञ्जुश्यामाको किशोरीको खिलानेकी कुञ्जी मिल गयी। उसने उसी मुद्रामें अपने अधरोंसे सटाकर पानी पिलाया और जब किशोरीने पानी पी लिया तो इसी विधिसे उसे पानकी अमल सुगन्धित बीड़ी खिलाई।

जिज्ञासा

कोई रससे अपरिचित प्राकृतावेशी व्यक्ति यहाँ शङ्का कर सकता है कि सच्चिदानन्दमयी ह्लादिनीशक्ति होकर श्रीराधाजी प्रियतमके विभु प्रेमभावमें विभोर हुई भी अधरगत लारसे सना प्रसाद भोजन करनेमें, उच्छिष्ट जल पीनेमें, जूठी पानकी बीड़ी खानेमें इतनी आसक्त क्यों हो गयीं, जब कि पूर्वतया उन्हें ललितादि सखियाँ भगवती त्रिपुरसुन्दरीका भोग वृषभानु-प्रासादसे लाकर खिला रही थीं, और जिसे प्रयास करनेपर भी वे नहीं खा रही थीं। वह भागवत दिव्य प्रसाद जो ऋषि भागुरि जैसे ब्रह्मनिष्ठ संत-परम्पराके ब्राह्मणोंके द्वारा वेद-मंत्रोंकी पूत ध्वनिसे अभिमंत्रित किया गया था, जिसे देवाह्वान मंत्रोंसे परमदेवताको साक्षात् प्रकट करके भोग लगाया गया था, वह अपने गृहदेवता द्वारा भुक्त परम पवित्र प्रसाद जब उन्हें अग्राह्य था तो अपनी भगिनीके द्वारा मात्र नाटकीय त्रिभङ्गी मुद्रा बनाकर उच्छिष्ट किया मिष्ठान्न उन्हें क्योंकर ग्राह्य हो गया ?

समाधान

इस प्रश्नका यही उत्तर है कि यहाँ सच्चिदानन्दघन दिव्यप्रेमरसविग्रह ब्रजेद्रनन्दनकी अभिन्नस्वरूपा नीलमणि-प्रतिमासे प्रिया किशोरी राधाका पूर्वरागरूप प्रेमविहार हो रहा है। श्रीराधा-माधवके इस सर्वथा अलौकिक अतिशय उज्ज्वल भावराज्यमें नित्य 'एक' पर 'अनेक' बने परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णकी अचिन्त्य अमल मधुरतम लीला अनन्त भाव-लहरियोंमें लहरा रही है। यहाँ वृषभानुपुरके भवनमें स्थित वृषभानु गोप-परिवारकी आराध्या परमदेवता

पराभट्टारिका त्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बा श्रीराधा-माधवकी जितनी मात्रामें आराध्या एवं पूजनीया हैं, ठीक उसी मात्रामें भगवती ललिताम्बाके लिये भी ये नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण और नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया राधा उतनी ही प्रेमास्पद हैं। हाँ, यदि कोई भेद है तो इतना ही है कि पराम्बा इन अज अनादि युगल दम्पतिकी श्रद्धास्पद हैं और ये युगल दम्पति पराम्बा भगवतीका हृदय हैं। इस सत्यका प्रकाश भगवती जगदम्बा स्वयं बृषभानुपुर-महिषी कीर्त्तिदा मैयाके सम्मुख करती हैं। पू.गुरुदेव इसी काव्यके प्रथम शतक छन्द संख्या ६४ से ७१ में इसी रहस्यका प्रकाश कर चुके हैं। वे कहते हैं –

प्रातःकी वेला थी, रानी देवी मन्दिरमें थीं, प्रियतम!।।६४।।

* * * * *

थे नहीं अभी राजा आये अर्चनके लिये वहाँ, प्रियतम!
कर रही अकेली रानी थीं पूजाकी तैयारी, प्रियतम!।।६५।।

* * * * *

दीखा यह अकस्मात् उनको, हँस पड़ीं महादेवी, प्रियतम!
फिर अहो! उरस्थल उनका था क्रमशः खुलता जाता, प्रियतम!
अञ्चल वह परदा-सा होकर बायें-दायें सरका, प्रियतम!
बन गया द्वार उससे निकली मनको हरनेवाली, प्रियतम!।।६६।।

* * * * *

रानीमें चेतनता न रही बाहरकी किञ्चित् भी, प्रियतम।।६७।।

* * * * *

भीतरकी आँख किन्तु उनकी थी देख रही घटना, प्रियतम!
देखी उनने जो थी उसका संकेत भले कर दूँ, प्रियतम!
द्रुम एक परम रमणीय खड़ा पुष्पित कदम्बका था, प्रियतम!
थी नित्य किशोरी एक, और था एक किशोर वहाँ, प्रियतम!।।६८।।

उन दोनोंकी ही ओर दृष्टि करके जगदम्बा थीं, प्रियतम!
कहती – 'हे सती! आज कर ले दर्शन मेरे उरका,' प्रियतम!
'सच्चिदानन्द, असमोर्ध्व और जो भगवत्ताका भी,' प्रियतम!
'है सार-मूल मधुरिमा, यही नीली-पीली द्युति है,' प्रियतम!।।६९।।
'रसमय, संविद्,केवल, अद्वय, जो नील-पीतमय है,' प्रियतम!
'यह नित्य हृदय मेरा, जिसमें हूँ लीन हुई रहती,' प्रियतम!
'लीलारस पीता हुआ नित्य जो युग्म रूपमें है,' प्रियतम!
'रहकर दो, नित्य एक जो है,दृग-विषय हुआ वह है, प्रियतम!।।७०।।

यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि भगवती पराम्बाका हृदय परात्पर परतत्व-सार है। अस्तु, जब श्रीराधा स्वयं भगवतीका सार-स्वरूप ही हैं तो उनका प्रसाद-ग्रहण करना, न करना उनके लिये कोई अपराधका सृजन नहीं करता। दूसरे, वर्त्तमानमें वे जिस प्रेमकी गरिमामयी भाव-अवस्थामें स्थित हैं, उसमें समग्र अंग-जगका डेरा ही उन्होंने अपने प्रियतमके चरणोंमें समर्पित कर दिया है। समर्पणका अर्थ ही है कि वे सम्पूर्ण अग-जगको विस्मृतकर मात्र प्रियतम-स्मृतिमयी हो चुकी हैं। हम शरण शब्दका, समर्पण शब्दका वस्तुतः सही अर्थ जानते ही नहीं हैं। जब हम

पिताकी, पुत्रकी, परिवारकी, धनकी स्मृति अपने भीतर सघन सँजोये हैं तो वस्तुतः हमने इन वस्तुओंका समर्पण प्रभुको किया ही नहीं। समर्पित वस्तुको प्रभुको देकर हम अपने भीतर मात्र प्रभु-स्मृति ही रखें और समर्पित वस्तुका हमें विस्मरण हो जाय, तभी सच्चे अंशमें समर्पण घटित होता है। किशोरीको तो देह-देही, बन्धु-परिवार, अपनी अनुजा मञ्जुश्यामा एवं प्राणप्रेष्ठ सखी ललिता-विशाखाकी भी आत्यन्तिक विस्मृति है। उनके चित्तसे सबकी सत्ताएँ ही सिमट-मिटकर उनके प्रियतमके अखण्ड अस्तित्वमें समा गयी हैं। यही उनके आत्यन्तिक प्रेमके समर्पणका स्वरूप है। इसीलिये उनका भोजन-पान विस्मृत हो गया है। श्याम-कलेवरा उनकी छोटी बहिन वस्तुतः ही कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय, माधुर्य-सौन्दर्य-सुधा-रस-समुद्र परमानन्दोदधि प्रियतम श्रीकृष्णकी ही छाया है। आगेके प्रसङ्गमें पाँचवे शतकमें छन्द सं.४३२ एवं ४३३में श्रीकृष्ण अपनी मैया यशोदाको कीर्त्तिदा रानीके सम्मुख स्पष्ट निर्देश देते हुए कहते हैं –

'मैया री ! अच्छा,सुन ले यह,तू समझ नहीं पायी, प्रियतम !
मैं एक साथ दोनों गृहमें रह लूँगा देख सही', प्रियतम !
आरसी एक चम-चम करती थी पड़ी पासमें ही, प्रियतम !
मरकत-साँवर छोरा बोला होकर समक्ष उसके, प्रियतम !।।४३२।।

'तेरे घर तो मैं स्वयं नित्य हूँ और रहूँगा ही, प्रियतम !
अब अहो ! प्रतिच्छाया मेरी रानीको यह दूँगा, प्रियतम !
इनकी दृगपुतरी बेटीजी श्रीजीके साथ सदा, प्रियतम !
मेरी यह छाया भी खेले, मैं तो खेलूँगा ही', प्रियतम !।।४३३।।

वह थी विनोदकी बात,किन्तु रानीमें समा गयी, प्रियतम !
बनकर लालसा बुद्धि-मनको मन्थन करनेवाली, प्रियतम !
यह बने कदाचित् संभव सच जगजननीकी रुचिसे, प्रियतम !
परछाँही,यदि वह आ सकती शिशु बनकर घर मेरे, प्रियतम !।।४३८।।

यह अहो ! चित्तधारा विरमित हो, उससे पहले ही, प्रियतम !
रानीकी आँखोंमें शत दस दिनकरकी ज्योति भरी, प्रियतम !
श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी खड़ी नभमें थीं पूछ रही, प्रियतम !
'है एक चाह, जो भी अबतक पूरी न तुरन्त हुई ? प्रियतम !।।४४०।।

इस नीलदेवताकी छाया चिन्मयी अनूप हुई, प्रियतम !
कन्या बनकर उदरस्थलमें तेरे प्रविष्ट होगी, प्रियतम !

कहनेका यही तात्पर्य है कि किशोरीके प्रियतम श्रीकृष्णकी छाया ही जब उनकी अनुजा बहिन मञ्जुश्यामा थी, तो उसमें उस नीलमणि प्रतिमाकी प्रत्यक्ष अनुभूति प्रिया किशोरीको हो उठे और वह उसका चिन्मय प्रसाद खाती चली जावे, इसमें अस्वाभाविकता है ही कहाँ ?

श्रीराधामें प्रेम-समर्पणकी परिपूर्णता है, इसीलिये वे परम अनुरागके मधुर सागरमें डूबी हैं। उन्हें अपनी बहिन मञ्जुश्यामा दिखती ही नहीं। उन्हें तो उनकी नीली प्रतिमा ही भोग लगाती दिख रही है और उस प्रेम-प्रतिमाके एक-एक अङ्गके एक-एक रोमसे प्रेमकी ऐसी सुधाधारा बह रही है कि किशोरी उस प्रेमधाराका ही आस्वादन कर रही है, किसी भोज्य-खाद्यका आस्वादनानुभव उसे है ही नहीं।

यहाँ ध्यान रहे, श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग-अवयव पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णका मुखमण्डल तो किसीको स्पृहणीय लगे, प्रेम-पवित्र, मङ्गल-निकेतन अनुभव हो और श्रीकृष्णके अधररसको कोई प्राकृत लारके समान घृण्य, निकृष्ट काम-कमनीय समझे, यह उसकी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अज्ञानजन्य भ्रान्ति ही है। जिन श्रीकृष्णके अधररससे सनी मुरलीमें जड़को चेतन और चेतनको जड़ कर देनेकी सामर्थ्य है, जो अधररस वेणु-निंनादके माध्यमसे ब्रजके पशु-पक्षी, स्थावर-जङ्गममें, पत्र-पत्रमें, वृन्दावनकी भूमिके कण-कणमें, यमुनाजलके अणु-अणुमें, वृन्दावनाकाशके परमाणु-परमाणुमें, प्रेमानन्द भर दे, जो श्रीकृष्णकी अधर-सुधा निर्बीज समाधिनिष्ठ परमहंसोंको समाधिसे विचलित करनेमें समर्थ है, जो अधर-सुधा अमृतके माधुर्यको फीका बना देनेवाली हो, जो गोपाङ्गनाओंके धर्म-धैर्यको विस्मृत कराके उन्हे अधीरताकी चरम सीमामें प्रतिष्ठित कर देनेवाली हो, वह कामदेवपर विजय-दुंदुभि बजाकर उसको अपने शासनमें रखनेवाली श्रीकृष्णकी अधर-सुधा प्राकृत निकृष्ट लार सर्वथा नहीं है। फिर इन राधानुजाका अधरामृत-रस तो परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयंके द्वारा भी सदैव लालायित होकर स्पृहणीय है। अतः जो ऐसी निकृष्ट प्राकृत बुद्धि रखते हैं वस्तुतः वे अपने भयङ्कर प्राकृतावेश, श्रीकृष्णतत्वके प्रति पूर्ण अज्ञान एवं अनास्थाका ही प्रकाश करते हैं। वे अबतक निकृष्ट नरक-भूमिसे ही पार नहीं गये हैं।

जैसे निर्विशेष अमूर्त्त सुगन्ध सविशेष मूर्त्त पुष्पके प्रति प्रीतिकी अभिवृद्धि कर देती है, वैसे ही इस अधरामृतरससे सने अन्न-जल एवं ताम्बूलसे किशोरीके चित्तमें अपने प्रियतमकी प्रतीति प्रगाढ़, प्रगाढ़तर एवं प्रगाढतम होती चली गयी। इस अधरामृतरसमें **'रसो वै सः'** इस श्रुतिके अनुसार 'सः' वह लीला पुरुषोत्तम, रसिक-परब्रह्मरूपा नीली प्रतिमा तो थी ही। अतः वह रसिक-प्रतिमा मुझे अनन्त आनन्दराशि अपना रसदान करने यहाँ भी मेरे सम्मुख प्रकट हो गयी है, इस भावने किशोरीके प्रेमको और प्रगाढ़ कर दिया। बस, किशोरीके प्रेममें इतनी प्रगाढ़ता अभिवृद्ध हुई कि उनके शरीरके अङ्ग-अङ्ग, रोम-रोमका भी उस प्रतिमासे विशुद्ध प्रेममय निरुपाधिक संयोग हो गया। यहाँ 'निरुपाधिक' शब्दको समझनेकी चेष्टा करें। प्रिया किशोरीका यह प्रियतम-संयोग किसी काम-हेतुसे नहीं है। यह कर्म, लोक, धर्म, शास्त्र, मोक्ष, किसी भी भाव, वस्तु या मनोरथसे शून्य विशुद्ध प्रेममय है, इसीलिये यह अन्य किसी भी उपाधिसे हीन होनेसे निरुपाधिक है। यहाँ किशोरी तो अङ्गी हैं और राधानुजा मञ्जुश्यामा उस अद्भुत अनिर्वचनीय काम-गन्ध-लेश-शून्य दिव्य विलासरसके आस्वादन-वैचित्र्यका सम्पादन करानेवाली उनके रसास्वादनकी उपकरणरूपा हो गयी हैं। बस, इस प्रगाढ़तामें झूबी किशोरीकी जब वृत्ति बहिर्मुखी हुई तबतक एक पहर रजनी व्यतीत हो चुकी थी। सहसा वह उठ बैठी। उसकी दृष्टि अपनी ही हथेलीपर जा टिकी। उसने देखा कि वह हथेली पूरी-की-पूरी नीली प्रतिमा-जैसी ही है। उसकी दृष्टि हथेलीसे बाहुमूलतक ऊपर उठ गयी, किशोरीको ठीक प्रतीत हुआ कि उसका बाहुमूलतक पूरा हाथ ही नीले वर्णका हो गया है। ।।३८६-८७।

दो-तीन पलोंके अन्तर से उसने लहँगा अपना, प्रियतम!
सरका कर हेतु भरे दृगसे देखा अपने पदको, प्रियतम!
वे गुल्फ और घुटने सब थे नीली-प्रतिमा-जैसे, प्रियतम!
वैसा ही नीलापन पूरित पूरे चरणोंमें था, प्रियतम॥३८८॥

दो-तीन पलोंके अन्तरसे किशोरीने अपने लहँगेको किंचित् ऊपरकी ओर सरकाया और ध्यानसे अपने चरणोंको देखने लग गयी। अहो ! यह कैसे ! यह गुल्फ, ये घुटने सर्वथा नीली प्रतिमा-जैसे हैं। ज्यों-का-त्यों वही नीलापन सम्पूर्ण चरणोंमें परिपूरित जो है ! ।।३८८।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

दो-तीन पलतक तो किशोरी विस्मित-सी स्तब्ध बैठी रही, फिर उन्होंने अपना लहँगा सरकाकर अत्यन्त हेतुभरी दृष्टिसे अपने चरणोंको, अपनी पिण्डलियोंको देखा। वे चकित थीं कि उनकी जंधा, घुटने आदि सभी निम्नाङ्ग नीली प्रतिमाके समान ही थे। जैसा नीलापन उनके बाहुमूलतक पूरे हाथमें था, वही नीलापन उनके चरणोंमें भी ऊपर कटितक था।।३८८।।

जाते न एक पल जाते ही उसको यह भान हुआ, प्रियतम।
नव चिह्न किशोरीपन का वह कोई न अङ्गमें है, प्रियतम!
'मेरा तन भी यह पूरा है नीली-प्रतिमा-जैसा', प्रियतम!
'आभूषण के बदले यह है वैसे ही वेणु धरे', प्रियतम।।३८९।।

एक पल जाते-न-जाते किशोरीको भान हुआ-अरे ! किशोरीपनका तो कोई भी चिह्न मेरे अङ्गोंमें नहीं है। मेरा सम्पूर्ण शरीर नीली प्रतिमा-जैसा ही है। और देखो, अरे ! आभूषणके बदले यह तो वेणुधारण किये हुए है।।३८९।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

त्यागका अर्थ क्या है ? त्याग केवल वस्तुका ही नहीं होता, हम तो अपनी वस्तुओंको भी त्यागते हुए सङ्कोच करते हैं। श्रीराधाका परमोज्ज्वल त्याग इतना स्वाभाविक है कि वे नीली प्रतिमाके प्रेममें अपने शरीरके स्वरूपको ही त्याग देती हैं। श्रीराधा प्रेमरसमें डूबी अपने आपमें विचित्र व्यवहार अनुभव कर रही हैं।

महारसिक सिद्ध सन्त श्रीपोद्दार महाराज अपनी एक रसमयी रचनामें कहते हैं –

मेरे तुम, मैं नित्य तुम्हारी, 'तुम' 'मैं' 'मैं' 'तुम' सङ्ग-असङ्ग।
पता नहीं कबसे 'मैं' 'तुम'बन 'तुम' 'मैं ' बने कर रहे रङ्ग।।

प्रीतिमें 'मैं' एवं 'तू' इतनी पृथक्ता कहाँ रह पाती है। प्रियतम श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण रहें और राधा राधा रहे, तब प्रेम कहाँ हुआ ? किशोरीके सुध-बुध भूलनेका अर्थ मात्र शारीरिक बाह्य ज्ञानशून्यता भर नहीं है। यह वह स्थिति है, जहाँ प्रियतमको छोड़कर बाह्य एवं अन्तर् कहीं और कुछ रहता ही नहीं। प्रेम जब प्रियतमके लिये होता है तो वह अपने और प्रियतमके भेदको मिटाता ही है।

राधा भई कान्ह अरु कान्ह भए राधारानी,
है है कैं फेरि दोऊ एक ही लखात हैं।

इसीलिये यहाँ किशोरीकी ऐसी अवस्था हो रही है कि वे प्रियतम-मन-प्राणवाली ही नहीं, उनके तनवाली भी हो गयी हैं।

एक पल बीतते-न-बीतते किशोरीको भान हुआ कि उसमें तो जो कैशोरके नवचिह्न वक्षोजोंके रूपमें मुकुलित हो रहे थे वे भी अब उसके अङ्गमें नहीं हैं। उसका पूरा तन ही ठीक नीली प्रतिमा जैसा ही हो गया है। और विलक्षण बात यह थी कि उसके आभूषण भी 'मुरली' के रूपमें परिवर्त्तित हो गये हैं – ऐसा अनुभव हो रहा था।

सचमुच ही किशोरी राधाके प्रेमने राधाके पास अपना कुछ भी शेष नहीं रखा। उसका अपना अस्तित्व ही प्रियतम हो गया है। श्रीकिशोरी उस अवस्थामें अपने चरण रख चुकी है जहाँ तन,मन, प्राण, सबकुछ उसके प्रियतमके होकर वे एकमात्र प्रियतम-सुखरूप हो उठी हैं।

श्रीराधाके आभूषण भी हैं क्या ? श्रीराधाके आभूषण मात्र उनका प्रेम और उनके प्रियतम रूप ही तो हैं। किशोरीके आभूषण जड़ पत्थर , स्वर्ण एवं रत्न तो होनेसे रहे ! नित्यकिशोरी प्रिया श्रीराधा और नित्यकिशोर प्रियतम श्रीकृष्णमें जो कुछ भी अङ्ग-अवयव, वस्त्र-आभूषण, रूप-गुणमें भिन्नता है, यह मात्र भिन्नतामयी रसलीला-धाराके प्रवाहहेतु प्रातीतिक मात्र ही तो है। वस्तुतः श्रीकृष्णका सर्वस्व श्रीराधा हैं और श्रीराधाके सर्वस्व श्रीकृष्ण हैं। अतः श्रीराधाके आभूषणरूपमें या तो उनके प्रियतम-सुखमें हेतुरूप प्रेम-भाव-गुण हैं या स्वयं प्रियतम ही उन्हें सजाने उनसे संलग्न हैं। जो प्रियतम अबतक उनसे संलग्न थे, वे मुरलीरूपमें परिवर्त्तित हो गये। मुरली भी तो उनके प्रियतमके हाथमें यंत्ररूप श्रीराधाका प्रेमाह्वान करनेके निमित्तसे उनकी दूती ही तो है। मुरलीका प्रयोजन भी तो श्रीराधाके प्रेमको उद्दीपित करना है और उनके आभूषणोंका प्रयोजन उनके प्रियतमको सौन्दर्याभिभूत कर रिझाना एवं सुख देना ही है। वस्तुतः तो प्रिया-प्रियतम दोनों ही एक सनातन अज-अनादिरूप हैं जो दो बने हुए अचिन्त्य प्रेमलीला कर रहे हैं।।।३८९।।

थी दशा एक-दो पल तक तो उसकी विचित्र-सी थी, प्रियतम!
इस ऊहापोह-भँवर में था उसका मन उलझ गया, प्रियतम!
रमणी हूँ या सर्वथा पुरुष, नीली-प्रतिमा ही हूँ, प्रियतम!
परिवर्तन है सच यह अथवा हो रही भ्रमित मैं हूँ, प्रियतम।।३९०।।

एक दो पलतक तो राधाकिशोरीकी दशा अत्यन्त विचित्र-सी हो रही थी। इस भाँतिके ऊहापोहमें उनका मन पूरी तरह उंलझ गया था। यहाँतक कि वे यह भी निर्णय नहीं कर पा रही थी कि वे सर्वथा पुरुषें – वह नीली प्रतिमा ही हैं अथवा रमणी हैं। यह परिवर्तन जो उन्हें दीख रहा है, यह वास्तविक है अथवा भ्रमित हो रही हैं वे। क्या उन्हें अपने स्वरूपतककी भी विस्मृति हो रही है ?।३९०।।

आँखें आधा पल मुँदी रहीं पलकें आधी उसकी, प्रियतम!
निर्णय उसको मिल गया और मन लीन हुआ उसमें, प्रियतम!
वह पर्यवसित मैं पना हुआ नीली-प्रतिमा में ही, प्रियतम।
सब ओर वहाँ अब फैल गयीं नीली-नीली लहरें, प्रियतम।।३९१।।

आधे पलके लिये किशोरीकी आँखें मुँद गयीं और उन्हें निर्णय मिल गया। उनका मन उसीमें लीन हो गया – किशोरीका सम्पूर्ण मैं-पना उस नील प्रतिमामें ही सर्वथा पर्यवसित हो गया भला! ....अब वहाँ सब ओर नीली-नीली लहरें फैल रही थीं...........।।३९१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

प्रिया किशोरी इस प्रियतम-भाव-मिलनके प्रवाहमें एक-दो पल पुनः स्तब्ध हो गयीं। उसकी विचित्र दशा थी। वह सोचने लगी – 'वस्तुतः मैं स्त्री हूँ या पुरुष हूँ ? जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहकता और पृथ्वीमें गन्ध होती है, उसी प्रकार क्या यह प्रतिमा मुझमें नित्य व्याप्त है ? यह मुझमें जो परिवर्त्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है, क्या यह सच है, या मात्र मैं किसी भावावेशवश भ्रमित हो रही हूँ ?' श्रीराधाकी पलकें आधे पलतक तो इस अनिर्णयकी अवस्थाका समाधान करनेको मुँदी रहीं, परन्तु तत्क्षण ही उसे इस सबका निर्णय मिल गया। उसने ठीक-ठीक निश्चय कर लिया कि वस्तुतः नीली प्रतिमा और उसमें अलगाव है ही नहीं। वस्तुतः न वह रमणी है और न ही नीली प्रतिमा ही 'रमण' है। यह दोनोंका ही नारी-पुरुष भाव मात्र एक चिन्मय प्रेमतत्व है जो मात्र आश्रयालम्बन और विषयालम्बन बनकर लीला-विलास कर रहा है।

प्रिया श्रीराधाने ठीक-ठीक अवगत कर लिया कि वर्त्तमानमें हम दोनों – नीली प्रतिमा और मेरे, समरुचि और समवासनावाले मन एकाकार हो गये हैं। इस प्रेम-विलासमें सम्पूर्ण तन्मयता होनेके कारण ही स्वरूप-शक्तिमान् शृङ्गार रसघनमूर्त्ति नीली प्रतिमा और वह उस प्रतिमाकी स्वरूपाशक्ति महाभावघनमूर्त्ति राधा इस क्षण एकात्म हो उठे हैं। यह जीव एवं ब्रह्ममें अभेद-ज्ञानके समान नहीं है। वस्तुतः मैं राधा और मेरे प्रियतम यह नीली प्रतिमा एक आत्मा होनेपर भी वस्तुतः दो बने रहते हैं और रसराज-महाभावकी यह शाश्वत नित्य पृथक्ता सत्य होते हुए भी दोनोंमें विलक्षण एकात्मता है। इसमें विलास एवं रसास्वादन ही हेतु है। हम दोनोंमें तात्विक एकता अक्षुण्ण होते हुए भी हम दोनोंका सर्वातिशायी प्रेम हमें आश्रयालंबन एवं विषयालंबनके रूपमें एक दूसरेके सुखमें सुखी करनेकी वासनासे पृथक् कर देता है और समचित्त सत्ताके कारण पुनः एक कर देता है। इस प्रेममें विवर्त्तके कारण ही नीली प्रतिमा आश्रयालंबन होना चाह रही है, अतः उसने मेरा रूप ग्रहणकर मुझे विषय बना लिया है। इसी प्रेम-विवर्त्तके कारण ही मैं अपनेको 'कान्त' रूपमें देख रही हूँ। पर यह रज्जु-सर्पवाला विवर्त्त नहीं है। यह प्रेमराज्यकी एक विलक्षण प्रेम-वैचित्य स्थिति है।

बस, यह विचार करते-करते ही किशोरीका 'मैं'पना उस नीली प्रतिमामें ही तल्लीन हो गया। निश्चय ही प्रियतम नीलसुन्दरका प्रेम जिसके अन्तरमें प्रकट हो जाय, वही उस प्रेमके असमोर्ध्व प्रभावको जान सकता है। किसी भी भाग्यवान्के हृदयमें जब इस प्रेमकी आनन्दधारा बहने लगती है, तब वह अमृतके माधुर्यजनित अहङ्कारको सङ्कुचित कर देती है।

अब तो किशोरीके चतुर्दिक् मात्र प्रेममयी नीली-नीली लहरें ही फैल गयीं। परम रसिक सिद्ध संत श्रीपोद्दार महाराज अपनी काव्यमयी रसानुभूतिमें इस तत्वका कैसा विलक्षण प्रकाश कर रहे हैं –

स्रवननि भरि निज गिरा मनोहर मधु मुरलीकी तान।
सुनन न दै कछु और शब्द नित बहिरे कीने कान।।
लिपट्यौ रहै सदा तन सौं मम, रह्यौ न कछु बिवधान।
अन्य परसकी स्मृति न रही कछु, भयौ चित्त इकतान।।
अँखियनकी पुतरिनमें मेरे निसदिन रह्यौ समाय।
देखन दै न और कछु कबहूँ, एकै रूप समाय।।
रसना बनी नित्य नवरसिका चाखत चारु प्रसाद।
मिटे सकल परलोक-लोकके खारे-मीठे स्वाद।।
अंगसुगन्ध नासिका राची, मिटी सकल मधुवास।
भई प्रमत्त गई अग-जगकी सकल सुवास-कुवास।।
मनमें भरि दीनी मोहन निज मुनि-मोहनि मुसकान।
चित्त कर्‌यौ चिन्तन रत चिन्मय चारु चरन छविमान।।
दई डुबाय बुद्धि रस-सागर उछरनकी नहिं बात।
आय मिल्यौ चेतनमें मोहन, भयौ एक संघात।।

किशोरीके श्रवणपुटोंमें इस नीली प्रतिमाने अपनी मनोहारिणी गिरा भर दी और निरन्तर परिपूरित कर दिया उसे अपनी मधुस्यन्दी 'प्रियतमे ! प्राणवल्लभे !! प्राणेश्वरी !!!' शब्दोंसे । अब उनके अधरोंसे निःसृत स्वरकी झंकृतिके अतिरिक्त वह अन्य कुछ भी सुन नहीं पाती। अन्य सम्पूर्ण घोषोंके लिये कान बहरे हो गये हैं। इस प्रतिमाके परिहासपूर्ण मनोहर सुवचनोंसे उसके कर्णकुहर आनन्दसे परिपूर्ण हो उठे हैं।

इस नीली प्रतिमाके श्रीअङ्गोंका संस्पर्श ही सतत समा गया है, किशोरीके रोम-रोममें। उसका परम सुखद मादक संस्पर्श सर्वथा व्यवधानरहित होकर मूर्त्त हो उठा है, सातवर्षीया बाला किशोरीकी त्वगिन्द्रियमें । अन्य किसी संस्पर्शकी तो क्षीणतम स्मृति अब उसके चित्तमें संस्काररूपमें भी नहीं बची है। एकमात्र इस नीली प्रतिमाका ही संस्पर्श किशोरीके गात्रमें अवशिष्ट रह गया है।

किशोरीकी काली पुतलियोंमें बस, एकमात्र वह नीली प्रतिमा ही नीली प्रतिमा अहर्निश भर गयी है, उसके अनिन्द्य सौन्दर्यसिन्धुमें पूरी डूब गयी है बाला। अन्य किसी वस्तुको वह कभी देख सके, ऐसी उसकी स्थिति ही वर्त्तमानमें नहीं रही। केवल नीली प्रतिमाका त्रिभुवनमोहन रूप ही उसके मनमें एकछत्र प्रतिबिम्बित रहता है।

किशोरीकी रसनाकी दशा तो और भी विचित्र है। उसे ठीक अनुभव होता है कि इस नीली प्रतिमाके अधरोंके सौरभरूप सुधा-समुद्रसे विश्व-ब्रह्माण्ड पूरा सम्प्लावित है। वह साक्षात् दिव्य पीयूष है। अतः वह उसके अधरामृतसिक्त नित्य नवीन मञ्जुल प्रसाद-रसका ही मात्र आस्वादन करती है। इसी रसकी रसिका वह बन चुकी है। सम्पूर्ण अन्य षड्रस भोग उसके लिये स्वाद-विरहित हो उठे हैं।

किशोरीके नासारन्ध्रोंमें इस नीली प्रतिमाने अपने श्रीअङ्गोंका समग्र सौरभ ही सम्पुटित कर दिया है, अब उसका चित्तरूप पर्वत इस सौरभसे समाच्छादित हो उठा है। अन्य सब सौरभ तो उसके लिये अब दुर्गन्ध ही बन गये हैं। कुवासमें अब कैसा समाकर्षण, अतः उसका सब गन्धजन्य भेद ही विलुप्त हो चुका है।

जब सभी ज्ञानेन्द्रियोंकी यह दशा हो गयी है तो अबला किशोरी बाला भला अपने मानसतलकी संरक्षा भी कैसे करे ? अहा ! मुनि-मन-मोहिनी ही नहीं, राधा-मन-मोहिनी इस प्रतिमाके अधरोंमें कैसी मुसकान तैरती रहती है ! इस स्मितकी छटा तो त्रिभुवनमें निराली ही है।

अहा ! इस नीली प्रतिमाके चारु चरण-नख-चन्द्रोंकी आभा भी तो विलक्षण है। ये नख कोई प्राकृत अस्थिरूप थोड़े ही हैं, ये तो संवित् ज्योतिकी छटासे परिपूर्ण उद्भासित झलमल करते हैं। राधाके चित्तका प्रकाश उनसे एकात्म हो गया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? राधाके चित्तको इस ज्योतिने एकमेक कर लिया है।

फिर बिचारी बुद्धि कहाँ बचती ? बुद्धिका अध्यवसाय भी तो निमज्जित होना ही था, उस प्रतिमाके अभिनव नित-नूतन रस-महासिन्धुमें। अब तो डूब ही गयी बुद्धि। बाहर कैसे छलक सके ?

और अहंता ? हाँ, अहंतामें भी एक अपूर्व संघात हुआ। उस संघातजन्य स्फोटसे अहंता चूर-चूर हो गयी। होता ही है ऐसा। जब सर्वेन्द्रियोंमें कोई भर जाता है, तभी अहंतामें तीव्रतम मिलनाकांक्षाका उदय होता है। जबतक इन्द्रियाँ ही अन्य रसमें व्यभिचारिणी हो रही हैं तो मिलन किसका, किससे ? एक-एक पलका अमिलन तभी असह्य होता है, जब सभी इन्द्रियाँ, सारे अवयव पहले बिक जाते हैं, तभी हृदयमें मिलनकी ज्वाला धधकती है। उसी समय अहंताकी सरिता उन्मादिनी हुई विह्वल एवं विकल होकर किसीसे मिलने चल पड़ती है। और तभी दूसरे छोरसे भी रससमुद्र उमड़ता है। वह भी अपना कूल-किनारा रहने नहीं देता। अहंता जब तीव्र वेगसे रससिन्धुमें प्रविष्ट होती है, उसी क्षण एक संघात होता है और अहंताके अनादिकालीन सारे सञ्चित संस्कार सीमितताको तोड़ देते हैं। परिच्छिन्नतासे तभी पूर्णतया मुक्ति पाती है अहंता।

अब तो किशोरी रही ही नहीं। अब तो बस एक अनन्त असीम नीला आनन्द-सिन्धु ही आनन्द-सिन्धु शेष रह गया।

पू.गुरुदेवकी वाणी तो इतना ही कहकर मूक हो गयी कि **'सब ओर वहाँ अब फैल गयीं नीली-नीली लहरें प्रियतम!'** किन्तु इन नीली लहरोंको पाठक मात्र लहरें ही नहीं समझ लें। आओ ! थोड़ा हम इन लहरोंके स्वरूपका भी विचार कर लें।

ये लहरें बड़े-बड़े संन्यासी-सम्राटोंकी भी समझके परे हैं। संन्यांसिप्रवर आदिशङ्कराचार्यने एक बार अपनी माताकी मुक्तिके लिये इन्हीं लहरोंसे प्रकट होकर दर्शन देनेकी प्रार्थना की थी। उस समय ये लहरें उनके सम्मुख उनकी **'मम भवतु कृष्णोऽक्षि विषयः'** प्रार्थनापर प्रकट अवश्य हुई थीं, किन्तु, क्योंकि वह प्रार्थना मात्र मुक्तिकी माँगको लेंकर थी, इसलिये उनके सम्मुख ये लहरें अपनेको आवरणमें रखकर ही व्यक्त हुई थीं। उस समय इन लहरोंपर अपने श्रीसम्पन्न गुणोंका, अपने शङ्ख, चक्र, गदा एवं कमल नामक आयुधोंका आवरण था। उस समय ये लहरें सर्वगत थीं, सर्वात्मा थीं, समस्त अवतारोंकी प्रवर्त्तक थीं और साक्षात् परमात्मा थीं। वे लहरें ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे भी अतीत थीं और सच्चिन्मयी नीलिमाके रूपमें उन्होंने आदिशङ्कराचार्यको कृतार्थ किया था। आदिशङ्कर भावाभिभूत होकर करबद्ध प्रार्थना कर बैठे थे—

'कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयी नीलिमा।'

'हे कृष्ण ! निश्चय ही तुम ब्रह्मादि त्रिदेवोंसे परे हो, तुम विकाररहित सर्वश्रेष्ठ एक सच्चिन्मयी नीलिमा हो।'

इन नीली लहरोंने ज्ञानियोंके आदिगुरु शङ्कर भगवत्पादको अपनी कृपा-वारिधारामें पूर्णतया भिगो दिया था। जब भी ये ध्यानमें बैठते, इनके हृदय-कमलके आसनपर ये सजल जलधरके समान नीली लहरें लहराने लगतीं। ये लहरें निश्चय ही एक किशोराकृति कमलनयन पुरुषके रूपमें होतीं। उसके गलेमें वनमाला, मस्तकपर मुकुट, हाथोंमें कङ्कण होते। शारदीय चन्द्रमाके समान उसका मुख होता, हाथोंमें सुन्दर मुरली विधृत होती। केसर-समन्वित चन्दनसे उसके अङ्ग-अङ्ग विलेपित होते और गोपरमणियाँ उसे घेरे होतीं। यह किशोर इतना चञ्चल होता कि महात्यागी बालसंन्यासी विरक्त-शिरोमणि ज्ञाननिधि शङ्कराचार्यकी भी मर्यादा नहीं रखता और कभी-कभी अपनी प्रेयसी गोपाङ्गनाओंके कुच-कलशोंपर पत्ररचना भी करने लगता था।

'कदाचित् कान्तानां कुचकलश पत्रालिरचना समासक्तः'

तो इन्हीं लहरोंने किशोरीकी समग्र अहंताको ही अपने भीतर समावृत कर लिया था। उसके चतुर्दिक् सब ओर ये ही नीली-नीली लहरें उत्ताल तरङ्गोंमें लहरा रही थीं।।३९१।।

उसके पश्चात् नीलिमाकी अव्यक्त परिस्थितिका, प्रियतम !
आगे फिर संविन्मयी उसी नीली रस-सत्ताका, प्रियतम !
जिसमें अप्रतिम पीतिमा भी वह नित्य विराजित है, प्रियतम !
अज्ञेय भला वह है, उसका कैसे निर्देश करूँ, प्रियतम ।।३९२।।

इसके पश्चात् नीलिमाकी अभिव्यक्त परिस्थितिका और इसके भी आगे – आगेसे भी आगे संविन्मयी उसी नीली रस-सत्ताका, जिसमें एक अनिर्वचनीय, अचिन्त्य, अप्रतिम पीतिमा नित्य विराजित है – अहो, वह तो अज्ञेय है भला ! उसका निर्देश मैं कैसे करूँ ?।।३९२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

ये अलौकिक नीलवर्णकी लहरें प्रिया किशोरीकी चित्तभूमिरूपी कालिन्दीके पुलिनोंमें कितने कालतक दौड़ती रहीं और उन लहरोंसे आप्यायित-मानस किशोरीकी परिस्थितिका कौन चितेरा शब्द-चित्र प्रस्तुत कर पायेगा ? वे परिस्थितियाँ जो पूर्णतया किशोरीकी स्वसवेद्य थीं, संसारमें अव्यक्त ही रहेंगी। हाँ, इतना ही कहा जा सकता है कि उस नीलवपु – जिसके हाथमें वंशी सुशोभित है, जो पीत वस्त्र धारण किये है, जिसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मनोहर है और जिसके नेत्र कमलके समान हैं, उसे नील लहर – नील ज्योति कुछ भी कहो, उसके परे कोई तत्त्व है, किशोरीको इसका कभी कुछ भी अनुसन्धान नहीं हुआ और आगे भविष्यमें भी कभी नहीं होगा।

हाँ ! किशोरीको यह अवश्य अनुभव हुआ कि ये नीली लहरें बिना पीतिमाके सुखद नहीं हैं। वह पीतिमा भी अप्रतिम है। यह पीतिमा नीलिमाके बिना, और नीलिमा पीतिमाके बिना रह ही नहीं सकती। एकके बिना दूसरेकी सत्ता ही सन्देहमें पड़ जाती है। पीतिमा नहीं है तो नीलिमा कोई वस्तु ही नहीं है, और नीलिमा नहीं हो तो पीतिमाका निवास ही कहाँ हो ? पीतिमा प्रेमशक्ति है और नीलिमा प्रियतम-प्रेमस्वरूप है। प्रेमशक्तिके दो स्वरूप नित्यसिद्ध हैं – मूर्त्त और अमूर्त्त। अमूर्त्त स्वरूपमें प्रेम परात्पर परब्रह्ममें तिरोहित है। वहाँ नीलिमा भी निर्विशेष है और लीलारहित अवस्थामें मात्र सत्तारूपा है। वहाँ नीलिमामें आनन्दोल्लास भी शान्त है, वहाँ उच्छलन है ही नहीं। वहाँ लहरें नहीं हैं, मात्र घन शान्ति है। किन्तु जैसे ही नीलिमा अपनी सत्ता लहरोंके रूपमें व्यक्त करती है, पीतिमा सर्वप्रधान हो उठती है। बिना पीतिमाके उत्तरोत्तर दिव्य परमानन्दकी नित्य आनन्दवर्धक सत्ता सिद्ध ही नहीं होती।।३९२।।

जब शरद-निशा वह बीत चुकी पहली सित परिवाकी, प्रियतम!
अपने उस राज-तनूजा के तनको वह पकड़ सकी, प्रियतम!
मैया, मौसी, सब सहचरियाँ भारी चिन्ता में थीं, प्रियतम!
जो हुआ अचानक परिवर्तन उसमें, लेकर उसको, प्रियतम ।।३९३।।

जब उस शुक्लपक्षकी – शरद्-निशाकी – प्रथम प्रतिपदा बीत चुकी थी, तब कहीं जाकर राजतनूजाको अपने गौरवर्ण तनका भान हुआ। मैया, मौसी, सभी सहचरियाँ भारी चिन्तामें पड़ी हुई थीं – किशोरीके मनका जो अचानक अद्भुत परिवर्तन हुआ था, उसको लेकर ।।३९३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अब शरद ऋतु आयी और शुक्लपक्षकी प्रथम प्रतिपदा व्यतीत हो गयी, तब उस राजकिशोरी बालाको अपने गौरवर्णका, अपने नारी-शरीरका तनिक अध्यास हुआ।

वस्तुतः प्रेमकी स्थितिमें तथा 'ब्राह्मी' स्थितिमें कोई अन्तर नहीं। मात्र साधनकालमें ही अन्तर होनेसे भिन्न-भिन्न अधिकार-भेदसे ये अलग-अलग साधनाएँ मानी जाती हैं। अन्तिम परम सत्य तो सबका एक ही है। प्रेमीको भी बाह्यज्ञान नहीं रहता और ज्ञानीको भी। परन्तु यह मात्र शारीरिक बाह्यज्ञान-शून्यता ही नहीं है। ज्ञानीके लिये यह स्थिति तब उदय होती है जब मात्र 'परब्रह्म'के अतिरिक्त उसे बाह्य एवं अन्तर् दोनों ओर कुछ नहीं दीखता। प्रेमी भी ज्ञानीकी भाँति ही अपने प्रियतमके अतिरिक्त कुछ भी कहीं नहीं पाकर पूर्ण विमुग्ध हो जाता है। प्रेमीमें भी अन्तमें अपनेमें और अपने प्रियतममें कहीं कोई भेद नहीं रहता।

कहनेका तात्पर्य यही है कि निरतिशय प्रेमस्वरूप प्रियतमकी प्रगाढ़ स्मृतिमें खोयी राधाको न तो कालका ज्ञान रहा था, न ही देशका। राधाकी इस आन्तरिक प्रेममयी स्थितिको ऊपरसे उसकी मैया, मौसी, कुछ भी नहीं समझ पायीं। वे तो इसे एक शारीरिक व्याधि मात्र मानकर चिन्ता ही कर रही थीं, साथ ही बाह्य व्याधिका जो भी उपचार संभव था, उसमें वे संलग्न थीं।।३९३।।

मैया कहती तू बतला दे, क्या हुआ, लड़ैती री! प्रियतम!
जो भी चाहेगी तू, तुझको दूँगी अवश्य वह मैं, प्रियतम!
क्या कहे लड़ैती उसकी, अब कोई भी रुचि न रही, प्रियतम!
जा मिली चाह उसकी सारी उन नील-देवता में, प्रियतम ।।३९४।।

मैया कहती – मेरी लड़ेती री ! सचमुच बतला दे, तुझे क्या हो गया है ? तू जो भी वस्तु चाहेगी, तुझे अवश्य-अवश्य दे दूँगी। किन्तु लड़ैती क्या उत्तर दे ? अब उसमें कोई भी रुचि अवशिष्ट जो न रही थी। उसकी सम्पूर्ण अभिलाषाएँ उन नील देवतामें जाकर मिल चुकी थीं; अपना अस्तित्व खो बैठी थीं वे। अस्तु,।।३९४।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

जब राधाको किञ्चित् बाह्य संसारकी स्मृति हुई तो सर्वप्रथम उसकी मैयाने उससे जिज्ञासा की – 'बेटी ! तुझे क्या चाहिये ? तुझे हो क्या गया था ? तू अपने मनकी, तेरी कामनाकी एक गन्ध भर मुझे लगने दे, मैं तू जो चाहेगी वही वस्तु तुझे दे दूँगी।'

परन्तु राधा अपनी माँको कैसे बतावे कि उसका प्रेम चिच्छक्तिकी वृत्ति होनेसे विभु है। वह पूर्ण, असीम एवं सर्वव्यापक है। जहाँ असम्पूर्णता होती है, वहीं कोई कामना एवं चाह रहनेकी संभावना होती है। राधाको कोई कामना नहीं, कोई चाह नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि किशोरीके विभु परमानुरागकी विषयालम्बन अवश्य है – नन्दनन्दनकी वह नीली प्रतिमा। प्राकृत मन-इन्द्रियोंको चरितार्थ करनेवाले नीच कामकी तो राधामें कल्पना ही नहीं है। उसका प्रेम तो मात्र प्रियतम सुखैक-तात्पर्यमय है। अतः उसमें अचिन्त्यानन्त रससुधामयी विविध विचित्र लहरें उठती रहती हैं और उनकी बेटी इन्हीं लहरोंमें लहरा रही है। राधाकी कामनाओंका मूल जो देह और जगत् है, वही जब इन नीली लहरोंमें पर्यवसित हो गया, आपाततः निमज्जित ही नहीं, नीले रससिन्धुमें ही उसके अतल तलमें समाकर विलीन हो गया, अब बिचारी चाह और कामनाओंका तो आधार ही नहीं रहा।।३९४।।

व्यवहार संतुलित कोई-सा उसका न आज भी था, प्रियतम !
जब सखी पान कर पर रखकर बोली, 'बतला, क्या है?' प्रियतम!
उसने उत्तर यह दिया, 'तड़ित वारिद में रहती है; प्रियतम!
'पहले वह किंतु चमकती है, जलधर तब झरता है।' प्रियतम ।।३९५।।

आज भी किशोरीका कोई-सा व्यवहार संतुलित रूपसे नहीं हो सका। सखी जब उसके हाथपर पान रखकर बोली – अरी ! बतला, क्या है ? उसके उत्तरमें किशोरी बोल उठी – विद्युत् वारिदमें रहती है; किन्तु पहले विद्युत् चमकती है, तब जलधर झरने लगता है।।३९५।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

इसके उपरान्त अपने तनका किञ्चित् अध्यास होनेपर भी किशोरीका कोई भी व्यवहार सामान्य सांसारिक लोगोंकी तरह सन्तुलित नहीं था। वह अपने भावोंमें ही बहती रहती थी।

ललिता सखीकी प्रधान सेवा उसे ताम्बूल अर्पण करनेकी रहा करती थी, स्वाभाविक ही वह उसे ताम्बूल खिलाने आयी। ललिताने अपनी हथेलीमें ताम्बूल संपुटित करके उससे पूछा –'बता ! मैं तेरे लिये क्या लायी हूँ ?' किन्तु किशोरी अपनी परमप्रेष्ठ सखीको कैसे समझाये कि आज वह पहलेकी तरह निपट एकाकी नहीं है। उसकी प्राण-प्रियतमा वह नीलमणिकी प्रतिमा अहर्निश उससे संलग्न ही उससे लिपटी एकात्म हुई रहती है। ललिता अकेले ही उसे पान खिलाने आयी है अब वह उसकी यह ताम्बूल सेवा कैसे स्वीकार करे ? ललिता एवं अन्य सखियाँ किशोरीके प्रत्युत्तरको भले ही उसके विकृत मस्तिष्ककी उपज समझें – परन्तु किशोरीने ललिताके सम्मुख सर्वथा सत्यका प्रकाश किया। उसने ललितासे सङ्केतमें मात्र एक विशुद्ध तत्वको ही प्रकाश किया – 'अरी मूढा ! अकेले पराशक्तिकी उपासना नहीं होती। भगवती कामेश्वरी सदैव कामेश्वराङ्क-निलया ही रहती हैं।' इस परम तत्वको किशोरीने परम रसमय शब्दावली दे दी। उसके मुखसे जो शब्द फूटे , वे शब्द थे –

'तड़ित् वारिदमें रहती है, प्रियतम !
पहले वह किन्तु चमकती है, वारिद तब झरता है, प्रियतम !

पहले प्रेम ही प्रकट होता है। प्रेम जब चमकता है, तब प्रियतमका रस-संभोग होता है। बिना प्रेमके रस-संभोग हो ही नहीं सकता। प्रेम शक्ति है। प्रियतम शक्तिमान् हैं। वस्तुतः प्रिया जो प्रेममयी है, वह प्रियतमके बिना कैसे एकाकिनी रहेगी ? प्रिया ही तो प्रेममूर्त्ति हैं, वही प्रेमघनविग्रह हैं। इसीलिये प्रिया तड़िल्लता-द्युति है। वह चमकती है, मात्र नीरदसे रस-घन-वर्षा करानेकी भूमिका बनाने। अतः चिन्ता मत कर। मैं तेरा अपने प्राण-प्रियतमसे संयोग कराऊँगी। अभी तो तू मुझे ही यह ताम्बूल देने आयी है, मैं तुझे ऐसा सौभाग्य प्रदान करूँगी कि ताम्बूलवत् तू प्रियतमके अधरामृतरसमें उनकी पूरी भोग्या हो जायगी।।३९५।।

सहचरी अलक-रचना करने आयी, प्रस्ताव किया, प्रियतम !
पहले तो बोली कुछ न, तथा बोली तब कह बैठी, प्रियतम !
'प्रियता में सुख है, सुख में है प्रियता स्वभाव से ही,' प्रियतम !
'क्यों भेद अहो! फिर, नित्य बढ़ें, ये इसीलिये तो हैं;' प्रियतम।।३९६।।

एक सहचरी अलककी रचना करने आयी । उसने किशोरीसे प्रस्ताव किया। पहले तो उसने कोई उत्तर ही नहीं दिया और जब बोली, तब कह उठी – प्रियतामें सुख है और सुखमें स्वभावसे ही प्रियता है। अहो ! यह भेद क्यों ? दोका अस्तित्व इसीलिये तो है कि प्रियता और सुख दोनों ही नित्य बढें और इनकी अभिवृद्धिका अन्त कभी न हो। !।।३९६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अब विशाखाकी पारी आई। उसके करोंमें कस्तूरी, चन्दनादिका विलक्षण लेप था और प्रियाके अङ्गोंमें विलेपन एवं उनके केशोंकी रचना उसकी सेवा थी। किशोरीको तो अपने केशोंमें अपने प्रियतम ही भरे दृष्टिगोचर हो रहे थे। वह अपनी सर्वाधिक प्राणप्यारी सखीको कैसे समझाती कि समग्र श्यामलतामें उसके प्रियतम-ही-प्रियतम भरे हैं। अतः जबतक विशाखा उसके प्राणप्रियतम नीलसुन्दरकी केशरचना नहीं करेगी उस अकेलीकी केशसेवा कैसे संभव है ? वह अकेली है भी तो नहीं। उसके केशोंके रूपमें, नेत्रोंमें काजलके रूपमें, नेत्रोंकी काली पुतलियोंके रूपमें, श्यामल साड़ीके रूपमें उसके प्रियतम उससे नित्य संलग्न जो हैं। अब इतनी बात खोलकर किशोरी अपनी सखीसे कैसे कहे ? लज्जा उसे इतनी मुखर होनेकी अनुमति दे, तब न किशोरीके मुखसे यह वाणी फूटे !

अतः अत्यन्त तात्त्विकताका आश्रय लेकर किशोरी विशाखाको समझाती है – 'तू केशोंका, मेरे कलेवरका शृङ्गार करने आयी है। शृङ्गार क्या है ? शृङ्गार रस है। सौन्दर्य रस है। माधुर्य रस है। रस ही प्रियता है। रस और प्रियता एकात्म है। रसको, आनन्दको प्रियतासे भिन्न कोई कर ही नहीं सकता। आनन्द वे हैं; आनन्द नीली प्रतिमा है ; **'रसो वै सः'**। समग्र रस-निकेतन, आनन्द-घन-मूर्त्ति नीली प्रतिमा है। और प्रियता मैं हूँ। सुख (रस) और प्रियता नित्य एक होकर नित्य दो भी हैं, और नित्य दो होकर भी एक हैं । वे एकमें ही सदा दो हैं एवं दोमें ही सदा एक हैं। ये स्वभावतः ऐसे ही हैं। फिर यह भेद क्यों ? यह भेद इसीलिये है कि दोनोंकी ही अभिवृद्धि एक दूसरेसे प्रतिस्पर्द्धा करती नित्य बढ़ती रहे। अतः तू हमदोनों युगलका शृङ्गार कर, अकेली मेरा नहीं।।३९६।।

'क्यों अरी ! सुमन लेकर अर्चन करने न जायगी तू ?' प्रियतम !
बोली लघु-सखी, सुना उसने या नहीं, कौन जाने, प्रियतम !
धीमा स्वर निकला, 'दी किसने यह बुद्धि पपीहे को,' प्रियतम !
'मैंने या उनने या पा ली उसने अपने से ही ?' प्रियतम।।३९७।।

अरी क्यों आज सुमन लेकर तू अर्चना करने नहीं जायेगी ? – उच्च स्वरसे चित्रा बोल उठी। किन्तु किशोरीने सुना या नही – कौन बतलाये ? उसके कण्ठसे तो एक धीमा स्वर मात्र निकला– पपीहेको किसने बुद्धि दी ? मैंने या उनने ? अथवा इसने अपने ही से उसे पा लिया ? ।।३९७।।

अनमनी हुई वह बैठी थी, सन्मुख थे फूल खिले, प्रियतम !
कुछ कहा सहेली ने, पर वह कुछ और समझ बैठी, प्रियतम !
बोली, 'यौवन ऐसा ही है, जैसे ये खिलते हैं; प्रियतम !
'है नियम नहीं, अलि रस पी ले प्रत्येक पुष्पका ही।' प्रियतम ।।३९८।।

अनमनी-सी हुई किशोरी बैठी थी। सामने कुछ फूल खिले हुए थे। सहेलीने आकर कुछ कहा; किन्तु वह कुछ और ही समझ बैठी। वह अन्यमनस्क-सी बोल गयी – यौवन ऐसा ही है, जैसे ये पुष्प खिलते हैं। यह नियम तो है नहीं कि भ्रमर प्रत्येक पुष्पका रस तो पी ही ले !।।३९८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

दिवसका द्वितीय प्रहर होनेको आया था। यह प्रति दिवसका नियम था कि किशोरी अपनी सखियोंके साथ अर्चन-सामग्री, पुष्पादि लेकर रविपूजन करने सूर्यमन्दिर जाया करती थी। भगवान् सूर्यके अंशसे ही किशोरीका जन्म हुआ था। आज भी इस नियमकी रक्षार्थ उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा किशोरीसे अनुनय करती है कि 'अरी ! तू पुष्पादि पूजन-सामग्री लेकर रविपूजनार्थ नहीं जायेगी क्या ?' मञ्जुश्यामाके साथ चित्रा सखी भी है। चित्रा दिवाभिसारिका भावप्रधान है। सूर्यपूजनके लिये जब प्रिया सूर्यमन्दिर जाती हैं, वहीं आगे षष्ठ शतककी लीलामें उनका ब्रजेन्द्रनन्दनसे दिवाभिसार – वन-मिलन होता है। ब्रजेन्द्रनन्दन अपने सखाओंके साथ गोचारणके लिये उसी वनमें आते हैं। अभी तो वर्त्तमानमें आगामी लीलाके सूत्र पिरोये जा रहे हैं।

किशोरी इस समय अपने भावोंमें इतनी गंभीररूपमें डूबी थीं कि मञ्जुश्यामाका रविपूजनार्थ चलनेका आग्रह उसने सुना या नहीं – कहा नहीं जा सकता। हाँ ! एक पलभरके लिये किशोरीके नीचे झुके हुए नेत्र ऊपर उठे और उन्होंने अपनी अनुजां मञ्जुश्यामा एवं चित्राको देखा अवश्य और तब अति मन्द स्वरमें उनकी वाणी निम्न शब्द ही कह पायी – 'अरी बहिन ! प्रेमार्चन तो मात्र पपीहा ही करता है। मेघ अपने अनन्य प्रेमी चातकको स्वातिका जल तो कभी दे ही नहीं , वरन् कठोर ओलोंकी वर्षा करके उसके पङ्खोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, इतनेपर भी प्रेमके तत्वको जाननेवाले चतुर चातकके प्रेममें चूक नहीं पड़ती। चातकका प्रेम इससे जरा भी न तो शिथिल होता है, और न ही उसका प्रवाह ही रुकता है। मेघ गरज-गरजकर बड़ी रूखी और कठोर ध्वनि करता हुआ, कठोर पत्थर तो बरसाता ही है, साथ ही बड़ी डाँट-डपटके साथ तरजकर-तड़ककर वज्र भी गिराता है। फिर भी क्या चातक अपने प्रियतम मेघके सिवा किसी दूसरेकी ओर ताकता है ? कभी नहीं ! इतना ही नहीं, मेघ बिजली गिराकर, ओले बरसाकर, बिजली चमकाकर, गरजकर, वर्षाकी झड़ी लगाकर, और आँधीके प्रबल झौंके देकर अपनी सच्ची खीझ प्रकट करता है; वह चातकको दर्शाता है कि मैं तुम्हारा प्रियतम नहीं, पूरा शत्रु हूँ। इतने प्रत्यक्ष दोषोंको देखकर भी चातकको अपने प्रियतमके दोष दिखते ही नहीं। चातकको तो मेघके इन कृत्योंमें अपने प्रति उसका अनुराग ही दिखाई देता है। उसकी मेघके प्रति चाहत, रीझ, और बढ़ती ही जाती है। उसे यही लगता है कि मेरा प्रियतम मुझे अपना समझकर स्वच्छन्दतासे मेरे साथ अपने मनकी करके आत्मीयताका परिचय देता हुआ सुख प्राप्त कर रहा है।

अरी सखि ! तू भी प्रेमकी शिक्षा ले सके तो चातकसे ही लेना। सखि ! एक पपीहा उड़ रहा था। एक व्याधने उसे लक्ष्य बनाकर घायल कर दिया। वह प्यासा भी बहुत था। घायल चातक यद्यपि एक नदीमें गिर पड़ा। परन्तु उसने नदीका जल नहीं पिया। वह स्वातिके जलपानकी आशामें चौंच ऊपर उठाये ही मर गया।

अरी बहिन ! एक पपीहा उड़ता हुआ लम्बी यात्रापर जा रहा था। उड़ते-उड़ते उसे थकावटका अनुभव होने लगा था। गरमीके कारण उसकी देह जल रही थी। उसे एक सघन छायादार वृक्ष भी दिखाई पड़ा। परन्तु वह वृक्ष नदीके जलसे सिञ्चित था। चातकने उस वृक्षकी छाया भी स्वीकार नहीं की। क्योंकि उसे तो आश्रय भी उसी वृक्षका लेना था, जो स्वातिमेघके बरसाये जलसे सिञ्चित हो। किसी अन्य जलसे सींचे वृक्षकी छाया लेनेकी अपेक्षा तो उसे तीव्र ताप देनेवाली घाम वरणीय थी।

अरी सखि ! चातक प्रेमका समुद्र है। प्रेमार्चना तो उसकी ही सफल है। चातकमें माप-तौल, लेन-देन है ही नहीं। चातकको यह प्रेमकी शिक्षा किसने दी ? उसने यह प्रेमबुद्धि मुझसे पायी, या उस नीली प्रतिमासे अथवा उसके प्रेममय हृदयसे यह बुद्धि स्वतः ही उसे मिली ?

अब इन्दुलेखाने चेष्टा की कि वह अपनी सखिका चित्त किसी प्रकार आकर्षितकर बहला सके। किशोरी महलके उद्यानमें ही एक बारादरीमें विराजित थी। सम्मुख विलक्षण शोभावाले रङ्ग-बिरङ्गे सौरभ बिखेरते पुष्प अवश्य खिले थे। किन्तु इन खिले पुष्पोंका प्रियतम भ्रमर तो दूर विदेशमें था। इन्दुलेखा कुछ बोले और वन-शोभा दर्शन करानेकी चेष्टा करे, इसके पहले ही किशोरी बोल उठी – 'अरी सखि ! प्रत्येक तरुणीका यौवन ऐसा ही है जैसे ये पुष्प खिले हैं। अवश्य ही यौवनकी कृतकृत्यता इसीमें है कि इसके अतिशय मनभावन पावन रूप-सौन्दर्यको वे देखें, भोगें और सुखी हों। परन्तु यह नियम नहीं है कि प्रत्येक पुष्प भ्रमरसे मिलनसुखको पावे ही। प्रेमका तो स्वभाव ही है, प्रियतमको अपरिमित दान। अपने प्रियतम भ्रमरकी अवज्ञा, अपमान, वियोगका दारुण दुःख सहकर भी उसे निरन्तर अपरिमित सुखदान देते रहना ही तो इन कलिकाओंका स्वभाव है। देखो सखि ! ये पुष्पावलियाँ भ्रमरके विदेशवासी होनेपर भी सदैव हँसती रहती हैं। भ्रमर उन्हें कुछ भी सुखकी सामग्री नहीं दे पाता। वह तो अपनी मन-इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये देश-विदेश भ्रमण करता रहता है। भ्रमणशील स्वभाव होनेसे ही उसका नाम भ्रमर है। परन्तु ये पुष्पावलियाँ कभी बुरा नहीं मानतीं। अपने प्रियतम भ्रमरका दोष देखना वे जानती ही नहीं। ये उसके स्वार्थपूर्ण कार्योंको भी प्रेममय ही मानती हैं। देख सखि ! ये कलियाँ क्या बोलती हैं? इनकी भाषा तुम सुन पाती हो ? नहीं सुन पाती। परन्तु मैं इनकी भाषा समझ रही हूँ। ये कहती हैं – रे भ्रमर ! सदैव स्वच्छन्द विचरण करना। हमारा सङ्कोच मानकर कदापि हमारे पास मत आना। तुम चाहे कहीं भी रहो , दूर-सुदूर चले जाना भले ही । हमारा प्रेम तुम्हें सदैव निरन्तर बढ़ता ही मिलेगा। तुम हमें मुसकाते ही पाओगे। हो सकता है, हमारा अस्तित्व तुम्हारी प्रतीक्षा करता-करता काल-कवलित हो जाय। हमारी पँखुड़ियाँ तुम्हारी प्रतीक्षामें मुरझाकर धरामें निपतित हो जावें, परन्तु हम सदैव अपना सौभाग्य ही मानेंगी कि तुमने हमें अपनी प्रियाका पद दिया है।

बहिन इन्दु, देख ! इन कुन्दके श्वेत पुष्पोंपर तुझे जो जल दिखाई देता है, इन्हें भ्रमवश कभी ओसकण मत मानना। ये इसके अश्रुकण हैं। यह कुन्द कह रही है कि व्यर्थ ही मैं अपना शृङ्गार करके अपनेको ठगती रही कि वे आवेंगे। वह मात्र मेरा प्रेमका स्वप्न ही था। वह क्षणमें ही टूट गया। मेरा प्रेम मात्र दम्भ था। वह अपने प्रेमको ही धिक्कारती हुई रो रही है। प्रियतममें तो उसे गुण-ही-गुण दिख रहे हैं।। ३९७-३९८।।

यों तीस घड़ी जाकर आयी दूजी तिथिकी रजनी, प्रियतम !
उसके प्रत्येक पहरमें वह भावित हो भाग चली, प्रियतम !
पहले मैं दीखा, वे आये लेकर चम्पकमाला, प्रियतम !
झट डाल कण्ठमें चले, चली वह भी पीछे उनके, प्रियतम।।३९९।।

........इस प्रकार तीस घड़ी बीतनेके अनन्तर द्वितीया तिथिकी रजनी आयी। रजनीके प्रत्येक प्रहरमें ही वह भावित होकर भाग चलती। पहले प्रहरमें किशोरीको दीखा- वे एक चम्पकमाला लेकर आये हैं और झटसे मेरे कण्ठमें डालकर चल पड़े हैं.........वह भी उनके साथ ही चल पड़ी।।३९९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

किशोरी इसी प्रकार भाव-निमग्न डूबी रहती। उसकी इस भाव-निमग्नावस्थामें ही दूसरी तिथिकी रजनी आ गयी। रजनीमें तो उसका भावावेश और भी बढ़ चला। रजनीका प्रत्येक पहर उसके असीम उद्दीपनमें हेतु हो रहा था। प्रथम प्रहरमें उसे अनुभव हुआ कि उसके प्रियतम चम्पकमाला लेकर आये, उन्होंने तुरन्त ही उसके कण्ठमें वह माला डाल दी और चले गये। अब वह क्या करती ? जहाँ वे जा रहे थे, उनका अनुगमन करना ही तो उसके पास विकल्प था। सखियोंको तो वह नीली प्रतिमा दृष्टिगोचर हो नहीं रही थी अतः उन्मादिनी एकाकी अज्ञात देश एवं दिशाकी ओर उसे कदम बढ़ाते देखकर उन्हें तो उसे विवर्जित करना ही था। किसी प्रकार सखियाँ उसे रोक पायीं।।३९९।।

ले हार-चमेली का दीखे वे खड़े दूसरे में, प्रियतम !
लेकर गजरा तीसरे पहर यूथी का वे आये, प्रियतम !
चौथे में जवाकुसुम की थी माला शोभित करमें, प्रियतम !
उनका रसदान उषा का वह अत्यन्त निराला था, प्रियतम।।४००।।

दूसरे प्रहरमें उसे अनुभव हुआ – मल्लिका-पुष्पोंका हार लिये सम्मुख खड़े हैं..........तीसरे प्रहरकी विचित्र अनुभूति यह थी – यूथीका गजरा लिये खड़े हैं वे........चौथे प्रहरमें किशोरी देखने लगी जपा कुसुमोंकी माला उनके हाथोंमें सुशोभित है और वे मेरी ओर देख रहे हैं। आगे, नीलसुन्दरका वह उषाकालीन रसदान अत्यन्त निराले-से-निराला था भला !।।४००।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

इस उद्दीपित भावावस्थामें रजनीका द्वितीय पहर आया। भाव-विह्वला किशोरीको अनुभव हुआ उसके प्रियतम चमेलीका हार लिये खड़े हैं। उन्हें देखते ही उसकी बुद्धि जैसे लुप्त ही हो जायगी, ऐसा उसे अनुभव हुआ। उन्होंने उसे सङ्केतस्थलपर मिलने आनेका निमंत्रण दिया। किशोरीके प्राण प्रियतमसे मिलनेको विकल हो उठे। सखियाँ अवरोध करें, इसके पहले तो वह मूर्च्छित हुई प्रियतमके पास भावावस्थामें पहुँच ही गयी थी।

जबतक किशोरीको बाह्यज्ञान हुआ, रात्रिका तीसरा प्रहर हो चुका था। किशोरीको दिखाई पड़ा कि उसके प्रियतम यूथीका गजरा लिये उसके स्वागतमें खड़े हैं। समीर उस समय साँय-साँय कर रहा था। किन्तु जब वह प्रियतमके पास दौड़ी-दौड़ी गयी तो उसे अनुभव हुआ कि वह उसका भाव-विभ्रम मात्र था। वहाँ मात्र यूथीकी लता ही खड़ी थी। वह अति विकलतासे उस जुहीकी लतासे ही लिपट गयी और उसीसे अपने प्रेमका निवेदन करने लगी । इस भावावस्थामें ही सखियाँ उसे उठाकर महलमें लायीं।

किसी प्रकार निशावसान हुआ। जब चौथा प्रहर चल रहा था तो उसे लगा उसके प्रियतम ऊषाका अत्यन्त निराला रसदान देने उसके पास चम्पाकुसुमकी माला लेकर आये हैं। किन्तु जब उनके पास गयी तो वहाँ वे नहीं थे, मात्र नीचा मुख किये जपाकी लता ही थी। उसकी आँखोंमें लालिमा थी। अवश्य ही पास खड़ा नीला तमाल अपनी दीनता और व्यथाका प्रकाश कर रहा था। वह तमाल वृक्ष पुरवैया हवाके झौंकेसे झुक-झुक जाता था। किन्तु जपाकी लता पश्चिमकी ओर अपना झुकाव कर लेती थी। किशोरीने देखा जबतक संध्या नहीं होगी तबतक यह जपाकी लता रोती ही रहेगी।।४००।।

उसके पश्चात् लोचनों से उसके जो स्रोत चला, प्रियतम!
चालीस पहर, दो घड़ी, भला, झरता ही सतत रहा, प्रियतम!
मानो वह राजसदन अब तो उसमें ही बूड़ चला, प्रियतम!
आया अलक्ष्य रक्षाकर तब उन नीलदेवता का, प्रियतम!।४०१।।

........इसके पश्चात् राधाकिशोरीके नयनोंसे जो अश्रुका स्रोत चल पड़ा, वह अविराम चालीस प्रहर और दो घड़ीतक निरन्तर चलता ही रहा। मानो वह राजसदन तो उसमें ही निमग्न होने चला। इसी समय उन नील देवताका अलक्षित कर – रक्षाके लिये प्रस्तुत हस्तकमल – व्यक्त हो उठा। अस्तु,।।४०१।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

इसके पश्चात् चालीस प्रहर अर्थात् पाँच दिवस-रात्रि और अड़तालीस मिनटतक किशोरीके लोचनोंसे जो आँसुओंका स्रोत बह चला वह अविराम बहता ही रहा। सभी सखियोंको उस कालमें यही अनुभव हुआ मानो उनकी सखी अश्रुजलकी मात्र निर्झर है। किशोरीने अपना सबकुछ अपने प्रियतमको सौंपकर अपना सबकुछ उन्हींको समझती हुई, उन्हींके प्रेमसे, उन्हींके लिये जो निरन्तर प्रेमाश्रुओंकी धारा बहायी, सखियोंको यही अनुभव हो रहा था मानो अब इस राजसदनकी सत्ता ही प्रेम-ही-प्रेम हो जायगी। किशोरीके पास अपने प्रियतमको प्राप्त करनेका इस अश्रुजलके अतिरिक्त अन्य कोई साधन भी तो नहीं था। यह पवित्र अश्रुजल ही उनके प्रेमको प्राप्त करनेका एकमात्र अवलम्ब, उनके साधनका स्वरूप था। सत्य ही है, यह अनादि अनन्त अचिन्त्य अतुलनीय सनातन क्रन्दन ही किशोरीका प्रेम है। इस क्रन्दनमें ही प्रिया-प्रियतमकी भिन्नतामयी रसलीलाधाराका प्रवाह है, जो नित्य अविच्छिन्न रूपसे बहता रहता है। इस क्रन्दनमें ही प्रिया-प्रियतमका सुखमय मिलन भी है और दारुण विरह-वियोग भी है।

यह क्रन्दन प्रिया-प्रियतमके हृदयका दाह भी है, और मधुर मनोहर प्रेमोल्लास भी है। यह अनादि अनन्त क्रन्दन परम सुखमय है, क्योंकि इसमें प्रगाढ़ प्रियतम-स्मृति है। यह अश्रु-प्रवाह प्रियतमके चरणकमलोंको ही भिगोता, उनकी ही स्मृति-संयोगमें पर्यवसित होता है। यह परम अतर्क्य है। यह क्रन्दन ऐसा है, जहाँ देश एवं काल सभी सूने हो जाते हैं। पल-पलमें प्रिय-मिलनकी आकांक्षाका दाह भीषणरूपसे बढ़ा चला जाता है। उस तापसे कण्ठ और तालू सूख जाते हैं, मुखसे आह भी नहीं निकल पाती। मनकी भीषण वेदना मनमें ही अप्रकट रह जाती है। न उस क्रन्दनके हेतुको भाषा दी जा सकती है, न ही शब्द उस अनुभूतिको संस्पर्श कर पाते हैं। इस क्रन्दनको किञ्चित् विराम तभी होता है जब स्वयं प्रियतम ही प्रियाके जलते-भुनते अङ्गोंको शीतल करें। दूसरा तो कोई यदि उस प्रेमिकाके पास चला भी जावे तो उसकी वियोग-ज्वाला उसे भी उसी आगमें जलनेको विवश कर देती है। प्रियाके आग उगलनेवाले श्वास उसे भी झुलसाकर उसी प्रकार आग उगलनेको विवश कर देते हैं।

हुआ भी यही, किशोरीके मनमें इस रुदनने आकुलताका वह विन्दु सृजन कर दिया, जहाँ प्राणधनको मूर्त्त होना ही पड़ता है। यद्यपि उस क्रन्दनके कालमें क्षण-क्षण, प्रतिपल वेदनाका स्रोत फूट रहा था, किशोरीके नेत्रोंसे, हा-हाके स्फुट रवसे उसके होठ यत्किञ्चित् व्याकुलताका प्रदर्शन भी कर उठते थे, किन्तु उसमें प्रगाढ़ प्रियतम-स्मृतिका अभाव कदापि किसी कालमें नहीं हुआ था। ममताके अखण्ड केन्द्रविन्दु थे, किशोरीके प्राणधनके चरण-सरोरुह ही। किशोरीके नयनोंकी मधुमयी जलधाराने सागर-समन्वित सम्पूर्ण धराको डुबो अवश्य दिया था, विघ्न-बाधा-शून्य पातालकी वैभवसुखमयी स्पृहा भी तृणवत् बह गयी थी। ब्रह्मपद, योगसिद्धियोंकी तो बात कहे ही कौन, जन्म-मृत्यु-विहीन मोक्षपदतककी कामनाको लवणवत् खारा मान किशोरीका सारा अनुराग इस अश्रुधारामें एकत्रित हो गया था उन नीलसुन्दरकी नख-मणियोंमें ही।

भूलकर भी मत मान लेना कि किशोरीके इस अश्रु-प्रवाहमें कहीं कोई उसकी स्वयंकी, व्यक्तिगत कामना किंवा अभाव-दुःख है, किशोरी सर्वथा सर्वांशमें विस्मृत कर गयी है, अपनेको, अपनी देहको, मनकी मनन-वृत्तिको, बुद्धिके किसी भी व्यक्तित्व सम्बन्धी निर्णयको, अहङ्कृत अस्मिताको, इन सभीसे निर्मुक्त हुई वह इस अश्रुधाराके प्रवाहमें पहुँच गयी है अपने प्रियतमके प्रगाढ़ स्मृति-सान्निध्यमें, अपने रसनिधिके दरबारमें उसे अपना अश्रु-अर्घ्य, अश्रु-पाद्य, अश्रु-आचमनीय एवं अश्रु-स्नानीय समर्पण करने। अपनी अनादिकालीन सञ्चित परिच्छिन्न अस्मिताकी भेंट दे रही है, वह प्रियतमके पाद-पद्मोंमें।

अब भला प्रियतम भी चलायमान क्यों न हो उठें ? अस्तु, उन नीलदेवताका अलक्ष्य रक्षा-कर किशोरीकी रक्षा करने बढ़ आया।।४०१।।

प्रातः था वही बहुश्रुत शुक आया उस कोने से, प्रियतम !
बोला, 'श्री-पद्म में प्रणति सरस उनकी पल-पल शत है,' प्रियतम !
'है और विनम्र निवेदन यह उनके अन्तस्तल का' प्रियतम !
'प्रियतमे! रखो धीरज, मुझ से अब नित्य मिलन होगा।' प्रियतम।।४०२।।

प्रातः समीर स्पन्दित हो उठा था कि इतनेमें ही वह बहुश्रुत शुक उसी कोनेसे आ पहुँचा। क्षणभर भी विराम न लेकर वह बोल उठा – श्रीचरणोंमें उनकी शत-शत प्रणति स्वीकार करो किशोरी ! उनके अन्तस्तलका विनम्र निवेदन यह भी है – प्रियतमे ! धैर्य धारण करो, मुझसे अब तुम्हारा नित्य मिलन होगा।।४०२।।

'पूरे हो रहे इसी क्षण हैं बारह शुभ मास, भला,' प्रियतम !
'उन्मत्त हुए मुनि थे तुमसे ले रहे बिदा, तब से,' प्रियतम !
'उनका प्रदत्त वरदान वही उसमें निमित्त होगा,' प्रियतम !
'जय हो! जय हो! निरवधि जय हो! श्रीचरण-सरोरुह की।' प्रियतम।।४०३।।

किशोरी ! सुनो, बारह शुभ मास इसी क्षण पूरे हो रहे हैं, जब उन्मत्त हुए मुनिराज तुमसे विदा ले रहे थे। उनका दिया हुआ वही वरदान इसमें निमित्त बनेगा भला ! श्रीचरणसरोरुहकी जय हो, जय हो, निरवधि जय हो!।।४०३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

ज्योंही प्रातःकाल हुआ, नीलदेवताका दूत बहुश्रुत शुकपक्षी उसी वनकी दिशासे जिस ओर वह श्रीसुन्दरीवन था, उड़ता हुआ किशोरीके पार्श्वमें चला आया। शुककी उपस्थिति मात्रने किशोरीके प्रेम-वैकल्यको विराम दे दिया। वह प्रकृतिस्थ हो उठी। शुकको देखते ही किशोरीको यही अनुभूति हुई कि दूतके रूपमें स्वयं प्रियतम ही उसे अपनी पीयूषवर्षिणी दृष्टिसे निहारते हुए उसके पार्श्वमें विराजित हैं। दूत शुकपक्षीने एक क्षण भी विराम नही लिया एवं आते ही किशोरीको प्रियतमका संदेश सुनाना प्रारंभ कर दिया।

'हे प्राणेश्वरी ! प्रियतम श्यामसुन्दरने अत्यन्त सरसतापूर्वक श्रीचरणोंमें अपने शत-शत प्रणाम निवेदन किये हैं। वे तुम्हारी स्मृतिमें पल-पल निमग्न हैं। उनके अन्तस्तलका यह सन्देश है कि 'प्रियतमे ! तनिक धैर्य रखो । मुझसे तुम्हारा अब नित्य मिलन होगा। किशोरी ! सुनो, जब उन्मत्त-से हुए मुनिराज दुर्वासा तुमसे विदा ले रहे थे, इसी क्षण उस विदाईके शुभ बारह मासकी अवधि समाप्त हो रही है। उन्होंने जो तुम्हें वरदान दिया था, वही उनका प्रदत्त वरदान मेरे एवं तुम्हारे नित्य मिलनका हेतु होगा।'

पू. गुरुदेवके काव्यका भाषानुवाद तो इतना ही है। किन्तु शुकके सन्देश-शब्दों – **सरस एवं पल-पल शत प्रणति'** का अर्थ-विस्तार यदि किया जाय तो यही होगा कि प्रियतमे ! तुम मेरे अन्तस्तलको नित्य नवीन रससे पल-पल भरती रहो और मैं तुम्हारे प्रेमरसके सिन्धुमें डूबा रहूँ। यह मेरा रसपान अनन्तकालतक कभी पलभरके लिये भी विराम नहीं ले। नित्य नयी-नयी मधुर मनोहर प्रीतिकी ऊर्मियाँ उमड़ती रहें, इस दिव्य रसानन्दसे कभी तनिक भी तृप्ति नहीं हो, वरं इसकी मेरी प्यास अधिक-से-अधिक बढ़ती रहे। प्रियतमकी सरस पल-पल प्रणति यही है।

इसी प्रकार अब नित्य मिलन होगा – इसका भी विस्तृत विवेचन यही किया जा सकता है कि 'प्रिये ! हम दोनों अनन्त नित्य एक सनातनरूप हैं। किन्तु सदैव ही दो बने हुए सहज अचिन्त्य अतुलनीय प्रेमलीला करते रहते हैं। हम नित्य नूतन और नित्य पुरातन सदा एक, एकरस, तथा अभिन्न हैं । परन्तु हमारी भिन्नतामयी रसलीलाधाराका प्रवाह नित्य अविच्छिन्नरूपसे बहता रहता है। उस रसलीलाधाराका ही एक भाग सहज सुखमय मिलन है और दूसरा भाग सहज दारुण विरह-वियोगजनित हृदय-दाह है। उसमें ही नित्य मधुर मृदु मनोहर हास्य है और नित्य आह-कराहभरा करुण रुदन भी है। हमारा अमिलन भी सुखसारस्वरूप है और मिलन भी दुःखभार रूप दुखमय है। हमारे अमिलनमें मिलन और मिलनमें अमिलन, वियोगमें संयोग और संयोगमें वियोग नित्य है।

श्रीराधाके मिलनको, प्रियतमकी राधाके प्रति सरस पल-पल शत-शत प्रणतिके निर्मल भावको समझानेकी यहाँ मात्र चेष्टा ही की गयी है। यद्यपि यह संक्षिप्त नितान्त आंशिक वर्णन है। किन्तु इसे भक्ति-श्रद्धापूत हृदयसे समझनेपर श्रीराधा-माधवके स्वरूपके सम्बन्धमें उठनेवाली शङ्काओंका समाधान हो जाना चाहिये। फिर भी कुतर्क उठें तो श्रीराधामाधवसे विश्वासपूर्वक कातर प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे ही वस्तुतः उनके स्वरूपका किसी अंशमें परिचय प्राप्त हो सकता है। ।४०२-४०३।।

शीतल अवनीश-नन्दिनी के वे अश्रु हुए पल में, प्रियतम!
आनन-सरोज मुरझाया वह खिल उठा अहो! फिर से, प्रियतम!
क्रन्दन-विराम का हेतु नहीं मिल सका किसी को भी, प्रियतम!
प्लावित पर अब सुख से सब थे, हँस रहे तरणि भी थे, प्रियतम।।४०४।।

अवनीशनन्दिनीके वे तप्त अश्रु पल बीतते-न-बीतते अत्यन्त शीतल हो गये। मुरझाया हुआ आनन-सरोज अहो ! क्षण बीतते-न-बीतते फिरसे खिल उठा। किन्तु किसीको भी, इस क्रन्दनका विराम अचानक कैसे हो गया, यह पता न लग सका। हाँ, अब तो सभी सुखकी लहरोंमें डूब-उतरा रहे थे; ऊपर आकाशमें भगवान् अंशुमाली भी हँस रहे थे।।।४०४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

अपने प्रियतमके दूत शुक पक्षी द्वारा मिले सन्देशके पश्चात् पलमात्रमें राजतनूजा बाला किशोरीके अश्रु शीतल हो उठे। उनका मुरझाया आनन-सरोज पुनः खिल उठा। किशोरीका क्रन्दन क्यों प्रारंभ हुआ था और उसका यह अनवरत पाँच दिवस एवं दो प्रहर चला क्रन्दन क्यों विराम पा गया, इसका हेतु किसी भी वृषभानुपुर- परिवारके प्राणीको नहीं मिल सका। किन्तु किशोरीको सामान्य-स्वस्थ देखकर सभी अब सुखसे थे एवं किशोरीके पिता सूर्यदेव भी हँस रहे थे।

वस्तुतः यही सार–की–सार बात है कि श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण सुखद हो ही नहीं सकते और श्रीकृष्णके बिना श्रीराधाके मुखपर सुखकी लहर आ ही नहीं सकती। और इन दोनोंके सुखके बिना सम्पूर्ण ब्रजक्षेत्र भी रसमय नहीं

है। ब्रजके सूर्य, चन्द्र, तारकावलि, पृथ्वी, नभ, पर्वत, वायु, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग भी इन दोनोंके बिना सुखी कदापि नहीं हो सकते। सुधांशुके बिना रजनी शोभामयी हो ही नहीं सकती। और सुधांशु एवं शोभामयी रजनीके बिना कुमुदिनी प्रमुदित हो ही नहीं सकती।

सम्पूर्ण ब्रजमण्डल भगवदानन्दस्वरूपा श्रीराधाका ही स्वरूप-विस्तार है। श्रीराधाका प्रेमविलास क्या है ? वस्तुतः विशुद्ध प्रेमके ही लीलायमान होनेपर भोगवासनाविहीन अप्राकृत प्रेमी-प्रेमास्पदके मनोंमें जिन परम पवित्र प्रिय-सुख-हैतुक मानसिक अवस्थाओंका उदय होता है, उसीको तो प्रेम-विलास कहा जाता है। यहाँ प्राकृत शरीर और इन्द्रियोंका व्यापार है ही नहीं। एकसे बढकर एक विघ्नों - अन्तरायोंके आनेपर भी जब मधुर रति अभेद्य, अखण्ड, अक्षुण्ण अविचलित ही नहीं, वरं स्नेह, मान, प्रणयादिरूपोंमें उत्तरोत्तर विकसित होती है, उच्चसे उच्चस्तरपर चढ़ती जाती है, तभी यथार्थ प्रेम-विलास होता है।

श्रीराधारानीकी कृपासे शरीरभावरहित होकर इसमें अवगाहन करनेकी चेष्टा करें – यही प्रार्थना है।

❑

कुँवरी राधिका तुव सकल सौभाग्य की सीमा
वदन पर कोटि शत चंद वारों ।
खंजन कुरंग मीन शत कोटि नयनन ऊपर
वारने करत जियमें विचारों।।
कदली शत कोटि जंघन ऊपर वारने
सिंह शत कोटि कटि पर उतारों ।
मत्त गज कोटि शत चाल पर, कुंभ शत
कोटि इन कुचन पर वार डारों।।
कीर शत कोटि नासा ऊपर कुंद शत कोटि
दशनन ऊपर कही न पारों ।
पक्व कंदूर बंधूक शत कोटि अधरन
ऊपर वार शचि गर्व टारों।।
नाग शत कोटि बेनी ऊपर कपोत
शत कोटि ग्रीवा पर दूर सारों।
कमल शत कोटि कर युगल पर वारनें
नाहिन कोऊ लोक उपमाजु धारों।।
दास कुंभन स्वामिनी सुनख शिख अंग
अद्भुत सुठान कहा लग सँभारों।
लाल गिरिवर धरन कहत मोहि तोहि लों
सुख जोंलों वह रूप छिन-छिन निहारों।।

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

पञ्चम शतक

महर्षि दुर्वासाका वरदान

थे अतिथि हुए कोपन अतिशय कोई एक नृपति-गृह में प्रियतम!
दाढ़ी थी लंबी पिङ्गलाभ, सिर पर थी बँधी जटा, प्रियतम!
तपका था तेज भरा उनके लोचन में, अङ्गों में, प्रियतम!
हुतभुक् था मानो मूर्तिमान, इतने तेजस्वी थे, प्रियतम ।।४०५।।

महाराज बृषभानुके गृहमें एक दिन महर्षि दुर्वासा अतिथि हुए। वे अत्यन्त कोपन स्वभावके थे। उनके पिङ्गल वर्णकी दाढ़ी और सिरपर जटा सुशोभित हो रही थी। नेत्रोंमें – अङ्गोंमें तपका तेज परिपूर्ण हो रहा था। ऐसा लगता था, मानो अग्निदेव उनके अङ्गोंके अन्तरालसे मूर्तिमान् हो रहे हैं – इतने तेजस्वी थे वे।।४०५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

एक विशाल कदम्बकी छायामें महर्षि दुर्वासा शान्त खड़े हैं। वे बदरिकाश्रमसे लौटकर आये हैं। इसके पूर्व भी एक बार वे गोकुलमें आये थे। उन्हें उस समय अन्तर्जगत्‌का निर्देश हुआ था कि ब्रजमें परात्पर परब्रह्मतत्व अवतरित हुआ है। वे उसे ही ढूँढ़ने गोकुलकी गलियोंका चक्कर लगा रहे थे। किन्तु उन्होंने ब्रजमें परात्पर परब्रह्मको जिस वेषमें देखा, उसे देखकर तो वे विस्मित ही हो गये। "ओह ! ये तो धूलिमें लोट रहे हैं। उनके केश टेढ़े-मेढ़े हो रहे हैं। भला, परात्पर परब्रह्म हरि इस रूपमें ? " मुनिवर आश्चर्य-चकित हो उठे थे। उन्हें किञ्चित् सन्देह भी हुआ था। किन्तु महर्षि संशयके झूलेमें झूलते हुए भ्रमित हों, इसके पूर्व ही श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमाया सर्वज्ञताशक्तिने उन्हें सङ्केत दे दिया था कि महर्षिका भ्रम निवारण होना चाहिये – अनुसूया-जैसी परम सतीके पुत्र भ्रमित कदापि नहीं रहें। बस, श्रीकृष्णने ऐसी आँखसे महर्षिकी ओर निहारा कि मुनिका सबकुछ उस दृष्टिमात्रसे लुट गया; उनका शरीर काँपने लगा, मुद्रा चञ्चल हो गयी। उनके अङ्गोंकी समस्त दीप्ति ही श्रीकृष्णके अङ्गोंकी महामरकत द्युतिमें जैसे मिल गयी । महर्षिकी एक अनिर्वचनीय स्थिति हो गयी थी।

मुनिवरने अञ्जलि बाँध ली, सिर झुका लिया। उनकी बुद्धि आवरणशून्य होकर अब परात्पर परतत्वकी अभिनव रसमाधुरीमें परिप्लुत हो उठी। वे ब्रजसे वन्दना करते-करते ही बदरिकाश्रमकी ओर लौट गये।

इस बार उन्हें पुनः आदेश हुआ है कि बृषभानुपुरमें परात्पर पराशक्ति भी अवतीर्ण हुई हैं। अतः आज वे उनके दर्शन करने पुनः बृषभानुपुर चले आये हैं। स्वभाव तो उनका, जैसा जगज्जननीने बनाया है, अति कोपन करके विख्यात है ही। उनका दिया श्राप अमोघ होता ही है। अतः सभी लोग उनसे भयभीत होकर काँपते रहते हैं।।।४०५।।

अवनीश गिरे चरणों में आ, रानी ने पद चूमे, प्रियतम।
विधिवत् अर्चा करके उनकी, कर जोड़, खड़े वे थे, प्रियतम!
गम्भीर हुए-से मुनि बोले, 'राजन् चरित्र! सुनो', प्रियतम!
रहना है सोलह पहर मुझे इस गृह में जहाँ कहो।' प्रियतम।।४०६।।

महाराजने उनके चरणोंमें प्रणिपात किया; महारानीने उनके चरणोंका प्रक्षालन किया। विधिवत् अर्चाके अन्य उपचार उनके समक्ष प्रस्तुत किये गये और तब महारानी और महाराज – दोनों हाथ जोड़े उनके समक्ष खड़े होकर अग्रिम आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगे। गम्भीर स्वरमें मुनिराज बोले – धर्मज्ञ राजन् ! सुनो, मुझे तुम्हारे इस गृहमें सोलह प्रहर रहना है, तुम जो भी स्थान बतलाओ, वहीं रह लूँगा।'।।४०६।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

क्रोध-भट्टारक दुर्वासा जैसे ही राजा बृषभानुके महलमें पहुँचे, धर्मात्मा दम्पतिने उनकी विधिवत् चरणवन्दना की। भारतीय संस्कृतिकी यह मर्यादा है कि कोई भी अतिथि किसी गृहस्थके घर आये तो वह उसकी पञ्चोपचारोंसे विधिवत् पूजा करे। पञ्चोपचारमें पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क-समर्पण एवं आरती – ये पाँच प्राथमिक पूजोपचार होते हैं। महाराज बृषभानु एवं महारानी कीर्त्तिदाने भी यथाविधि तपस्वी अतिथिकी पूजा सम्पन्न की एवं उनके सम्मुख विनीत भावसे खड़े रहकर उनकी अग्रिम आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगे।

ऋषि दुर्वासाने राजाको यही आज्ञा दी कि वे दो दिवस-रात्रि अर्थात् सोलह प्रहर उनके महलमें रुकेंगे। यह शास्त्रोक्त विधान ही है कि अतिथिको किसी गृहस्थके घर चौबीस प्रहरसे अधिक कदापि नहीं ठहरना चाहिये। परिव्राजक संन्यासीको तो किसी भी ग्राममें मात्र रात्रिभर ही विश्राम करना चाहिये। कहीं शिवक्षेत्र हो तो वहाँ वह चौबीस प्रहर (तीन दिवस) विश्राम कर सकता है। किसी विष्णुक्षेत्र (तीर्थ)में संन्यासी छप्पन प्रहरतक रुक सकता है। शेष स्थानोंमें तो परिव्रजन ही उसका धर्म है।

महर्षि दुर्वासाने भी इसी परम्पराका पालन करते हुए राजासे उसके महलमें मात्र सोलह प्रहर ही निवासकी इच्छा व्यक्त की तथा किसी ऐसे स्थानमें अपने ठहरनेकी इच्छा जताई जहाँ वे निर्विक्षेप एकान्त रह सकें। ।।४०६।।

सोती थी जहाँ राजपुत्री, प्रासाद-कक्ष वह था, प्रियतम !
सबसे सुन्दर, नृपने उनको ठहराया उसमें ही, प्रियतम !
'जब एक घड़ी ध्यानस्थ यहाँ एकाकी मैं रह लूँ, प्रियतम !
आकर फिर तुम सेवा करना।' कहकर मुनि बैठ गये, प्रियतम।।४०७।।

जिस प्रासाद-कक्षमें राजपुत्री राधाकिशोरी प्रतिदिन शयन करती थी, वही स्थान सबसे सुन्दर था; बृषभानु नरेशने उसमें ही उन्हें ठहराया। मुनिराज दुर्वासा फिर बोले – 'यहाँ मैं एक घड़ी एकाकी ध्यानस्थ होकर रह लूँ, उसके पश्चात् तुम आकर आवश्यक सेवा कर सकते हो।' उपर्युक्त वाक्य पूरा होते-न-होते मुनिराज ध्यानस्थ होकर बैठ गये।।४०७।।

करके प्रणाम राजा उनको, चल पड़े वहाँ से हे प्रियतम !
सीधे आये कुलदेवी के मन्दिर में दौड़े-से, प्रियतम !
परिचित मुनि के स्वभाव से थे, अतएव भीत मनसे, प्रियतम !
कह 'पाहि, जननि !' सिर टेक दिया विग्रहके चरणों में, प्रियतम।।४०८।।

महाराजने उनको नमस्कार किया और चल पड़े। वे सीधे अपनी कुलदेवीके मन्दिरमें दौड़ते हुए-से चले आये। महर्षि दुर्वासाके स्वभावसे वे परिचित थे। अतएव भयपूर्ण चित्तसे – 'जननी पाहि-पाहि !' – कहकर विग्रहके श्रीचरणोंमें उन्होंने अपना मस्तक टेक दिया।।४०८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

सृष्टिमें भगवती महायोगमाया आदिशक्ति त्रिपुरसुन्दरीके बारह आचार्य प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे महर्षि दुर्वासा एक हैं। ये सृष्टितंत्रके नियामक ऋषि हैं। उच्छृंखलताके नियमनके लिये इनके स्वभावमें भगवतीकी इच्छासे ही क्रोधका उद्भव होता है। इन-जैसा महाज्ञानी एवं कठोर तपस्वी दूसरा कोई हो नहीं सकता। घोर तपके फलस्वरूप ही ये मूर्त्तिमान् अग्निके तुल्य तेजस्वी बने रहते हैं।

महाराज बृषभानुके महलमें आठ प्रखण्ड हैं। इस महलका विस्तृत वर्णन **'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा – पाँचवाँ खण्ड के 'भगवती श्रीराधाका लीलाधाम – बृषभानुपुर पृष्ठ सं. ९९ में देखें।** भानुमहलका आठवाँ प्रखण्ड, जो सर्वाधिक सुन्दर है, उसमें श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामा अपनी सखियों सहित निवास करती हैं। इस प्रखण्डमें एक बहुत ही सुन्दर उद्यान अवस्थित है, जिसमें एक परम रम्य कासार भी है। इस कासारमें सभी ऋतुओंमें अतिशय मनोहर पद्म प्रस्फुटित होते रहते हैं। इसका जल परम सुमिष्ट एवं अत्यन्त निर्मल है। महलकी पूर्व दिशामें उन्नत गिरिशिखिर हैं और वहाँसे एक अतिशय सुन्दर निर्झर कलकल निनाद करता हुआ सतत प्रवाहित होता रहता है। यह निर्झर राजमहलके बायीं ओर किनारे-किनारे प्रवाहित होता हुआ, आगे जाकर बृषभानुपुरसे होकर भानुसरोवरको परिपूरित करता, समग्र वनक्षेत्रको सिञ्चित करता सुदूर यमुनामें मिल जाता है। इस निर्झरका नाम ब्रह्मनिर्झर है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति ही ब्रह्मगिरिसे हुई है।

महाराज बृषभानुने महलके इसी सर्वोत्कृष्ट स्थलपर महर्षिको ठहरानेका विचार किया और जिस कक्षमें किशोरी राधाका निवास था, उसीमें महर्षिके निवासकी व्यवस्था कर दी।

दुर्वासाजीको उस स्थानमें एक विलक्षण अलौकिकता दृष्टिगोचर हुई। उन्हें अनुभव हुआ कि इस कक्षमें प्रवेश करने मात्रसे तुच्छ पार्थिव विलासरसका भाव सम्पूर्ण रूपसे विनष्ट होकर एक अपूर्व प्रेमरस– तत्सुखभावका तीव्र प्रवाह उनके चित्तमें लहराने लगा है। उनकी चित्तवृत्तियोंकी विभिन्न गतियाँ रुक गयी हैं – वे सभी वृत्तियाँ अपना सम्पूर्ण अस्तित्व विसर्जनकर महर्षिको किसी अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्यमें डूब जानेको विकल बना दे रही हैं। महर्षिकी तो सर्वत्र अव्याहत गति है। वे कैलास, ब्रह्मलोक, – यहाँ तक कि वैकुण्ठमें भी गये हैं, सर्वत्र उन्हें आत्मकल्याण, आत्मसुख, आत्मज्ञान, आत्मशान्तिकी झाँकी ही मिली है, यह तदर्थ समर्पण-भाव (तत्सुखभाव) तो उन्हें अबतक कहीं बीजरूपमें भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ । यहाँ तो उनकी समग्र तपस्या, उनका साधनबल, उनके समस्त सञ्चित पुण्य, उपासना आदि विसर्जित हुए जा रहे हैं। उन्हें सतत ऐसा अनुभव हो रहा है मानो जैसे पापीमें पाप-बोझ होता है, वैसे ही वे तप-बोझ, उपासना-बोझ, उत्तम कर्मबोझ आदिसे भाराक्रान्त हैं। इस सारे बोझको किसीके चरणोंमें समर्पितकर वे मानो पूर्ण रिक्त हो गये हों, एक सच्चिन्मयी अपूर्व नीलिमा उनके हृदयमें भरती जा रही हो, इस कक्षमें उस नीलिमाका वेगपूर्ण प्रवाह उन्हें तीव्ररूपसे आकर्षितकर अपनेमें मिल जानेकी संप्रेरणा प्रदान कर रहा है।

दुर्वासा महलके कक्षमें प्रवेश करते ही किञ्चित् अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। वे बृषभानुजीसे इतना ही कहते हैं कि वे यहाँ एक घड़ी ध्यानस्थ रहेंगे; उन्हें एकाकी छोड़ दिया जाय, एक घड़ी पश्चात् राजा उनसे मिलें और तब आगेकी सेवा करें। उपर्युक्त बात कहते-कहते महर्षिके नेत्र मुँद जाते हैं और वे किसी अलौकिक जगत्में प्रवेश कर जाते हैं। महाराजा देखते हैं कि महर्षिके मन एवं शरीरपर सच्चिदानन्द प्रेम-मदका एक विलक्षण अपूर्व नशा छा रहा है।

महाराजा महर्षिको प्रणामकर बाहर आ जाते हैं। वहाँसे महाराजा सीधे अपनी कुलदेवी पराभट्टारिका भगवती महात्रिपुरसुन्दरीके मन्दिरमें दौड़े चले जाते हैं। राजा मुनिके स्वभावसे परिचित हैं। मुनिको क्रुद्ध होनेमें एक क्षणकी भी देर नहीं लगती, और उनका कोप भीषण विनाशका कारण बन जाता है। क्रोधके प्रखर आवेगमें महर्षि भले ही स्वयं महाराजाको भस्म कर डालें, इसकी उन्हें किञ्चित् भी चिन्ता नहीं है, किन्तु उनकी लाडिली कन्याओं और भगवती-प्रदत्त

उनके इकलौते पुत्रका कोई अनिष्ट संघटित न हो जाय, इसी चिन्तामें राजा अपनी आराध्या भगवतीके मन्दिरमें – उस कृपामयीकी देहलीमें आकर दण्डवत् गिर जाते हैं। वे अञ्जलि-बद्ध हुए, घुटने टिकाकर, सिरसे माताकी स्वर्णप्रतिमाके चरणोंका स्पर्श करते हुए मातासे इस अप्रत्याशित सङ्कटसे त्राण दिलानेकी प्रार्थना करने लग जाते हैं। महाराजको पता ही नहीं कि जिस महात्रिपुरसुन्दरीको प्रसन्नकर उनके रक्षा-कवचके लिये वे प्रार्थना कर रहे हैं, उन्हीं जगज्जननीके आदेशसे ही अपनेको कृतकृत्य बनाने महर्षि दुर्वासा बृषभानुपुर आये हैं। जिन राजदुहिताओंके कुशल-क्षेमकी चिन्ता महाराजको सता रही है, उन युगल राजदुहिताओंकी चरणधूलि तो दुर्वासाको भी विशुद्ध प्रेम-पथका पथिक बना देनेकी क्षमता रखती है। प्रीतिरस-सुधाकी मन्दाकिनी-धाराओंमें दुर्वासाको आप्लावितकर उन्हें सच्चिदानन्दसिन्धुमें निमग्न कर देनेका जगज्जननीका विधान ही तो उन्हें यहाँ बदरिकाश्रमसे आकर्षित करके लाया है। ।।४०७-४०८।।

मुसकान कनकमय विग्रह के अधरों पर भर आयी, प्रियतम!
वीणा से भी मीठी वाणी होने फिर व्यक्त लगी, प्रियतम!
"चिन्ता न करो तुम, वत्स! सुखद मिलना होगा इनका;" प्रियतम!
"अपनी दोनों दुहिताओं को आगे कर यह कहना," प्रियतम।।४०९।।

जगदम्बाके कनकमय विग्रहके अधरोंपर मुस्कान भर आयी। वीणासे भी अधिक सुमिष्ट वाणीमें, जगदम्बाके अधरोंके अन्तरालसे ये शब्द व्यक्त होने लगे – 'वत्स ! तुम चिन्ता मत करो; मुनिराजका मिलना तुम्हारे लिये अत्यन्त सुखद होगा। किन्तु उनके समक्ष अपनी दोनों दुहिताओंको आगे करके जाना भला !'।।४०९।।

'मुनिपुंगव! जो है पुत्र एक, अत्यन्त चपल वह है;' प्रियतम!
'सेवा के योग्य चार हम हैं, चारों को या दो को;' प्रियतम!
'स्वीकार करें, होऊँ कृतार्थ पाकर पद की सेवा;' प्रियतम!
'जगजननी की रुचि है, पर यह पुत्री पर दया करें।' प्रियतम।।४१०।।

'और तब इस प्रकार कहना – "मुनिपुङ्गव ! मेरा निवेदन कृपया सुन लें। जो मेरा एक पुत्र है, वह तो अत्यन्त चञ्चल है। उसके द्वारा आपकी यथोचित सेवा सम्पन्न न हो सकेगी। सेवाके योग्य तो मैं, महारानी और मेरी दो पुत्रियाँ – हम चार ही हैं। हम चारोंको, अथवा दोको – जैसा उचित समझें – सेवाके लिये स्वीकार करें। आपके चरण-सरोरुहकी सेवा पाकर हम कृतार्थ हो जायँ। हाँ! जगज्जननीकी रुचि भी मैं निवेदन कर दे रहा हूँ – वे चाह रही हैं कि आप मेरी इन दो पुत्रियोंपर ही कृपा करें।"।।४१०।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

महाराजा बृषभानु ज्योंही भगवती योगमायाके श्रीविग्रहके चरणोंमें प्रणाम करते हैं उन्हें अनुभव होता है मानो भगवतीके कनकमय विग्रहके अधरोंपर मुसकान खिल उठी है। महाराजा बृषभानु चकित हो उठते हैं। उन्हें अनुभव होता है कि यह मुसकान तो अनादि मोहान्धकारको सर्वथा- सर्वदाके लिये नष्ट करदेनेवाली ब्रह्मस्वरूप रत्नप्रदीपकी झलमलाहट है। महाराजा अनुभव करते हैं, मानो ईश्वर-प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंका प्रामाण्य ही पराम्बाका शरीर ग्रहणकर उनके सम्मुख मुसका रहा है। राजा कृतकृत्य हो उठते हैं। उनके सौभाग्यरूप कल्पतरु-काननका मूलभूत पुष्प ही प्रस्फुटित होकर माता पराम्बाके आननका रूप ग्रहणकर उनके सामने खिल रहा है। " ओह ! जिस वाणीका प्रभाव देश-कालसे परिच्छिन्न नहीं है, वही देश-कालकी सीमासे अतीत मधुरातिमधुर वाणी महाराजाके कर्ण-विवरोंमें

अमृत घोलने लगती है। जिसे कुछ लोग परात्पर परब्रह्मकी नादशक्ति – **'ॐकार'** कहते हैं, जिसे कुछ लोग परमात्मशक्ति तुरीय वाणी कहकर **'परावाणी'** संज्ञा देते हैं, जिसे श्रेष्ठ पुरुष भगवद्वाणी, वेदध्वनि कहकर अपौरुषेय बतलाते हैं, वही वीणाविनिन्दक स्वरलहरी महाराजा बृषभानुको परम सन्तोषमें डुबो देती है – "चिन्ता मत करो, वत्स! इन महर्षिका आगमन तुम्हारे लिये परम कल्याणकारी, सुखद ही होगा। तुम जब भी महर्षिके पास जाओ, अपनी दोनों कन्याओंको अपने आगे करके जाना और यह निवेदन कर देना– " मुनिपुङ्गव ! मेरा जो एकमात्र पुत्र है, वह तो अतिशय चपल है अतः आपकी सेवाके अयोग्य है। मैं, मेरी पत्नी एवं ये दोनों पुत्रियाँ – हम मात्र चार ही हैं जो आपकी सेवाके किञ्चित् योग्य हो सकते हैं। आप हमें कृतार्थ करें। मेरी इन दोनों पुत्रियोंपर भगवती जगदम्बाकी अतिशय कृपा है। मेरी रुचि तो इन्हें ही आपकी सेवामें नियोजित कर देनेकी है। आपकी अनुमति हो तो इन्हें मैं आपकी सेवामें नियुक्त कर दूँ।" ।।४१०।।

निश्चिन्त नृपति रानी को ले, पुत्री युग को, आये, प्रियतम !
लोचन मुनि के जब खुले तभी वैसी ही की विनती, प्रियतम !
कन्या थी बड़ी गौर वर्णा, साँवरी कनिष्ठा थी, प्रियतम !
ज्यों दृष्टि पड़ी, मुनि के तनमें विद्युत-सी व्याप गयी, प्रियतम ।।४११।।

जगदम्बाके अधरपुटोंसे उपर्युक्त इतना-सा आदेश व्यक्त हुआ। किन्तु इतना सुनते ही महाराज बृषभानुका मन निश्चिन्ततासे पूर्ण हो गया। रानी तथा दोनों पुत्रियोंको साथ लिये हुए, जहाँ मुनिराज ध्यानस्थ बैठे थे, वहीं अवनीश लौट आये। जब मुनिराजके नेत्र उन्मीलित हुए, तब जगदम्बाकी रुचिके अनुसार ही महाराजने मुनिके चरणोंमें निवेदन कर दिया। बड़ी कन्या गौरवर्णा थी और कनिष्ठा श्यामवर्णा। उन दोनों राजपुत्रियोंपर ज्योंही मुनिराजकी दृष्टि पड़ी कि उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उनके सम्पूर्ण तनमें विद्युत्-सी व्याप्त हो गयी है।।४११।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

जगन्माताकी मङ्गलमयी वाणी सुनकर निश्चिन्त हुए राजा रानीको साथ ले, युगल पुत्रियोंको आगेकर मुनिपुङ्गव दुर्वासाजीके सम्मुख खड़े हो जाते हैं। एक घड़ी पश्चात् जैसे ही मुनि अपने ध्यान-निमीलित नेत्रोंको खोलते हैं, दोनों कन्याओंको देखकर चकित हो जाते हैं। राजा तो जगन्माता द्वारा दी गई आज्ञाका अनुपालन करते हुए, उन्हें जो-जैसा माताने कहा था, मुनिके समक्ष निवेदन कर देते हैं। किन्तु मुनि तो जैसे सर्वथा बहरे ही हो गये हों – उन्होंने क्या सुना, क्या नहीं सुना, कुछ भी कहा नहीं जा सकता। मुनिकी दृष्टि जैसे ही गौरवर्णा बड़ी एवं श्यामवर्णा छोटी बालिकापर पड़ती है उनके मनमें तो विद्युत्की-सी लहर दौड़ जाती है।

आसन को छोड़, उठे, कम्पित था रोम-रोम उनका, प्रियतम !
थीं पलकहीन आँखें, अञ्जलि बँध गयी अचानक थी, प्रियतम !
क्या हुआ, पता क्या, अचरज में पड़कर रानी-राजा, प्रियतम !
करबद्ध खड़े थे, हँसती थी पर कन्या वह छोटी, प्रियतम ।।४१२।।

.... मुनिराज आसन छोड़कर उठ पड़े। उनका रोम-रोम कम्पित हो रहा था। नेत्रोंके पलक पड़न बंद हो गये। अचानक अपने आप उनकी अञ्जलि बँध गयी। क्या हुआ, कैसे हुआ - महारानी एवं महाराज अचरजमें पड़ गये। हाथ जोड़े वे दोनों खड़े थे किन्तु वह छोटी राजकन्या हँस रही थी।।४१२।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

" ओह ! तो यही वह सत्ता है, जिसकी चरणधूलि प्राप्त करनेके लिये जगन्माताने मुझे बदरिकाश्रमसे ब्रजप्रदेश आनेकी आज्ञा दी थी। हे अखिल जगदीश्वरी ! रासेश्वरी ! नित्यनिकुञ्जेश्वरी ! नित्य परात्पर परब्रह्म नराकृति पुरुषोत्तमकी प्राणवल्लभा ! श्रीकृष्णात्मा ! श्रीकृष्ण-प्राणस्वरूपा ! श्रीकृष्णाराध्या ! श्रीकृष्णाराधन-तत्परा ! अखिल सौन्दर्य-माधुर्य-सार-प्रतिमा ! तुम्हारी जय हो ! जय हो !! " मुनिपुङ्गव दुर्वासा एकमात्र रसायनरूप परमानन्दसिन्धुमें अवगाहन करने लगते हैं। मुनिकी समग्र प्रार्थना उनके मनमें ही उच्चरित हो रही है अतः वह बृषभानु-नृपति एवं रानी कीर्त्तिदाको न तो श्रवणगम्य ही होती है, न ही उन्हें मुनिकी कोई चेष्टा समझमें ही आती है। उन्हें तो यही दृष्टिगोचर होता है कि मुनिराज आसन छोड़कर उठ पड़े हैं, उनका रोम-रोम कम्पित हो रहा है, उनके ओंठ अस्पष्ट रीतिसे बुदबुदा रहे हैं। दम्पति देख रहे हैं कि मुनिकी अञ्जलि दोनों कन्याओंके सम्मुख बँध गयी है, मुनिके नेत्रोंके पलक गिरने बन्द हो गये हैं। मुनिकी प्रार्थनाके शब्द, सबके हृदयान्तरालमें साक्षीरूपमें विराजित, उसमें नित्य-निरन्तर निवास करनेवाले, मञ्जुश्यामाका रूप धारण किये श्रीकृष्ण तो अवश्य ही सुनकर मन्द-मन्द मुसका रहे हैं। जिनके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान ब्रह्मा, शङ्कर, शुक, नारद और भीष्मादि 'महतो महीयान्' पुरुषोंको भी नहीं है, वे सर्वनियमातीत, सर्वबन्धनविमुक्त, नित्य स्ववश, परात्पर परम पुरुषोत्तम बृषभानुकी श्यामवर्णी छोटी कन्या बने, महर्षि दुर्वासाके शब्द-शब्दको, उनके हृदयके अन्तरतम भीतरी भावोंको भी सुन एवं जान भी रहे हैं, साथ ही उसका पूर्णास्वादन करके मुसका भी रहे हैं। ।।४१२।।

डरकर रानीने कर रखकर ढक दिये अधर उसके, प्रियतम।
आकुल मुनिने संकेत किया, हाथों को नचा-नचा प्रियतम।
छेड़ो मत, इसको करने दो करती जैसे यह है, प्रियतम।
चल पड़ा आसुओं का प्रवाह अब ना दृगसे उनके, प्रियतम।। ४१३।।

भयभीत होकर रानीने अपनी छोटी पुत्रीके अधरपुटोंको अपने हाथोंसे ढक दिया। किन्तु व्याकुल हुए मुनिने हाथोंको नचा-नचाकर सङ्केत किया – 'इसे तुम छेड़ो मत; यह जैसे कर रही है, करने दो।' मुनिके दोनों दृगोंसे अश्रु-प्रवाह झर रहा था।।४१३।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

कन्याको हँसती हुई पाकर भयभीत हुई रानी अपनी छोटी पुत्रीके अधरपुटोंको अपने हाथोंकी हथेलीसे ढँकनेकी चेष्टा करने लगती है। किन्तु महर्षि दुर्वासाकी दूरदृष्टि तो इस श्यामवर्णी बालिकाके तत्व-रहस्यकी विज्ञाता है, अतः वे उसी क्षण अपने हाथोंके सङ्केतसे रानीको बालिकाकी किसी चेष्टाको रोकनेके लिये मना कर देते हैं। रानीकी दृष्टिमें तो यह कन्या उनकी छोटी सन्तान ही है, किन्तु दुर्वासाकी दृष्टिमें तो वह योगीन्द्र-मुनीन्द्र-दुर्गमगति साक्षात् मधुसूदन ही हैं जो गोष्ठमें अपनी प्रियाकी सेवाके लिये, उनकी छोटी बहन बनकर उनके पूर्ण अनुगत हुए, वहाँ खड़े हँस रहे हैं। इस बालिकाको देखनेभरसे महर्षिके नेत्र अश्रुवर्षा करने लगते हैं ।

महर्षिको यह रहस्य पूर्णतया ज्ञात हो जाता है कि अपने प्रियतमको अनन्त वैदग्ध्य, अनुराग, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य, वात्सल्य एवं कृपादि महाभावोंसे नित्य आप्यायित रखने वाली ह्लादिनी शक्ति प्रिया बृषभानुनन्दिनीको निज स्वरूपसे सुखदान नहीं कर पानेकी विवशताके कारण ही प्रेमघन-रस-सुधा-सागर आनन्दकन्द परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण मञ्जुश्यामाका रूप रखकर श्रीराधाकी अनुजा बने खड़े-खड़े मुसका रहे हैं। ।।४१३।।

वह आम्रमञ्जरी-प्राशन की दो नगर वासियों की, प्रियतम।
नीली लहरों वाली तटनी तट परकी होली की, प्रियतम।
रसमयी पञ्चमी की लीला छप्पन शुभ मास तथा, प्रियतम।
दिन एक आज से पहले की लो देख तपोधन ने प्रियतम ।।४१४।।

मुनि भाव-समाधिमें निमग्न होने लगे। उनके सामनेका दृश्य बदल गया। बृषभानु-राजप्रासादके स्थानपर अब वे वनस्थलकी एक लीला देखने लग गये - आज तो आम्रमञ्जरी-प्राशनकी वसन्त पञ्चमी है। बृषभानुपुर तथा नन्दग्रामके सम्पूर्ण स्त्री-पुरुष एकत्र हो गये हैं, नीली लहरोंवाली कलिन्दनन्दिनीके तटपर। होलीकी प्रथम दिनवाली लीला मुनिकी दिव्य आँखोंने देखनी प्रारम्भ की – यद्यपि यह लीला संघटित हुई थी आजसे छप्पन महीने और एक दिन पूर्व।।४१४।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

मुनिके नयनोंमें उनकी परमाराध्या सर्वज्ञाशक्ति जगन्माता इस क्षण आजके छप्पन महीने एवं एक दिवस पूर्वकी घटना ज्यों-की-त्यों प्रत्यक्ष कर देती है। उस घटनाके सच्चिन्मय दर्शनसे मुनि भाव-समाधिस्थ हो जाते हैं। वे प्रत्यक्षवत् देख रहे हैं – 'समग्र ब्रजक्षेत्रमें होलीकी धूम है। ब्रजप्रदेशके सभी वनोंमें आम्र मुकुलित हो चुके हैं। नवधान्यसे ब्रजवासियोंके अन्नभण्डार भर चुके हैं। नवधान्यके साथ आम्रमञ्जरियोंके प्राशनका त्यौहार सम्पूर्ण ब्रजप्रदेशमें धूमधामसे मनाया जा रहा है।।।४१४।।

आराधन पञ्चदेवता का नाना उपचारों से प्रियतम।
हो रहा जहाँ पर था, रानी सहयोग दे रही थीं, प्रियतम।
प्यारी प्राणोंसे बढ़कर उस अलबेली बेटी की प्रियतम!
रक्षाका भार सभी रखकर अपनी अनुजा पर ही प्रियतम ।।४१५

उस दिन विविध उपचारोंसे पञ्चदेवताका आराधन वहाँ हो रहा था। महारानी सहयोग दे रही थीं। अपनी अलबेली पुत्रीकी प्राणोंसे बढ़कर प्यारी बेटीकी रक्षाका – सँभालका भार अपनी छोटी बहनपर रखकर ही उन्होंने ऐसा किया था।।४१५।।

उस समय लली की वयस मास सत्रह में थे घटते प्रियतम
दिन तीन; किंतु अब भी वह थी आँखें मूँदे रहती, प्रियतम
वह एक नाम सुनकर अवश्य कुछ देर खोलती थी प्रियतम;
वह भी तबसे आये जब थे वे मुनि वीणाधारी प्रियतम ।।४१६।।

उस समय बड़ी लाड़िलीकी आयु सत्रह मास पूर्ण होनेमें तीन दिन घट रहे थे। किन्तु अभी भी वह अपनी आँखें मूँदे ही रहती। हाँ, वह एक नाम सुनकर अपनी आँखें कुछ देरके लिये खोलती अवश्य थी; किन्तु वह भी तभीसे, जब वे वीणाधारी देवर्षि नारद बृषभानुपुर पधारे थे।।४१६।।

अथवा आती जब थीं अपने अप्रतिम लाल को ले, प्रियतम।
गोपेश-गेहिनी-शिशु-तनका सौरभ मिलता रहता प्रियतम।
उसके दृग-नलिन खुले रहते तब तक, वह किंतु जहाँ प्रियतम।
ओझल होता, पलकें तुरंत मुद्रित हो जाती थीं, प्रियतम ।।४१७।।

अथवा एक अवसर और था, जब उसकी आँखें अपने-आप खुल जातीं। जब कभी नन्दरानी अपने नीलसुन्दर पुत्रको साथ लेकर बृषभानुपुर आती और उस नीले शिशुका अप्रतिम अङ्ग-सौरभ बृषभानुपुत्रीको प्राप्त होता – जबतक उस सौरभकी अनुभूति उसे होती रहती, तबतक उसके दृग-नलिन खुले ही रहते। किन्तु जैसे ही वह नीला शिशु उसके नेत्रोंसे ओझल होता कि बस, राजपुत्रीकी आँखें अपने-आप निमीलित हो जातीं।।४१७।।

ये उसी प्रकार सलोने दृग खुलते, मीलित होते, प्रियतम।
गोदी में उसको लेकर थी मौसी यह सोच रही प्रियतम।
कम्पित होकर, पुलकित होकर, भरकर जल लोचन में प्रियतम
रह-रहकर तन-सुधि भी खोकर, बहकर रस-वारिधि में प्रियतम।।४१८।

आज भी उसी प्रकार राजपुत्रीकी सलोनी आँखें निमीलित एवं उन्मीलित हो रही थीं। उसी समय उसको अङ्कमें लेकर मौसी सोच रही थी।............मौसीका कलेवर रह-रहकर कम्पित हो जाता; पुलकावलि उदित हो जाती; नेत्रोंमें जल भर आता; रह-रहकर उन्हें अपने शरीरकी सुधि भी भूल जाती; और वे रस-समुद्रकी लहरोंमें न-जाने कहाँ-से-कहाँ बहने लगती। ....।।४१८।।

होती जो एक अतुल ऐसी सुषमाशालिनी अहो, प्रियतम।
इसकी ही छोटी बहिन, भला, सुखदा सहोदरा ही, प्रियतम।
मैं उसे अङ्क में लिये सदा रहती या इसको ही, प्रियतम।
भगिनी के वक्षःस्थलपर यह शोभित या वह रहती प्रियतम।।४१९।।

मौसी विचारके प्रवाहमें सोचने लगी – अहो ! यदि ऐसी ही सुषमाशालिनी अप्रतिम सुन्दरी इसीकी एक सहोदरा, सुंखकी पुञ्जभूता बहन और होती तो ? अहो ! तब या तो मैं इसे अथवा उस कनिष्ठाको सदा अङ्क में धारण किये रहती और मेरी बहनके वक्षःस्थलपर या तो यह अथवा वह सुशोभित रहती।' अस्तु,।।४१९।।

मनमें यह अभिलाषा जगकर होगयी विकल मौसी प्रियतम।
तत्काल अनुग्रहमयी गिरा नभवाली गूँज उठी, प्रियतम।
यह है त्रिकाल सच, जननि, इसे छूकर चाहो कुछ भी प्रियतम।
मिलती ही है वह वस्तु, परम मङ्गल एवं होगा प्रियतम।।४२०।

..........मनमें ऐसी अभिलाषा उदित होते ही मौसी विकल हो उठी। तत्क्षण अनुग्रहमयी आकाशवाणी उनके कानोंमें गूँजी – 'अरी मैया ! तुझे त्रिकाल सत्यका सङ्केत हो रहा है। देखो, तुम इस लाड़िली पुत्रीको छूकर किसी वस्तुकी भी चाह करोगी तो वह वस्तु तुम्हें मिलेगी ही और तुम्हारा परम मङ्गल होगा।'।।४२०।।

मौसी के तन-मन फूल उठे, उस ओर हुई पूरी, प्रियतम !
देवों की सविधि अर्चना वह, डफ लगे तथा बजने, प्रियतम !
आकाश बना अरुणाभ, हुआ रवि-किरण-जाल धुँधला प्रियतम
आटोप अबीर-गुलाल रचित हो चला घना क्रम से, प्रियतम।।४२१।।

मौसीके तन-मन आनन्द-परिप्लुत हो उठे। उस ओर देवोंकी विधिपूर्वक अर्चना सम्पन्न हो गयी। अब डफ बजने लगे, आकाश अरुणाभ बन गया। अंशुमालीका किरणजाल गुलालसे धुँधला हो गया। अबीर और गुलालसे रचित आटोप क्रमशः घना-से-घना होता चला गया।।४२१।।

उस दिन के उस अतिशय विशाल जन-समारोह में, हे प्रियतम !
क्षणभर के लिये लली उतरी मौसी की गोदी से, प्रियतम !
इतने में सभी रमणियों ने, जो थीं अहीरपुर की, प्रियतम !
रसभेंट लिये, रानी को, फिर मौसी को घेर लिया, प्रियतम ।।४२२।।

उस दिनके उस अतिशय विशाल जन-समारोहमें मौसीकी गोदीसे लाड़िली – राधाकिशोरी क्षणभरके लिये उतर पड़ी। इतनेमें ही नन्दग्रामकी सभी रमणियोंने हाथोंमें रसकी भेंट लिये कीर्तिदा महारानीको और फिर मौसीको – दोनोंको ही घेर लिया।।४२२।।

हो गयी लली कुछ दूर अहो ! वैसे ही दृग मूँदे, प्रियतम !
ओठों पर थी मुसकान, भला, देती करताली थी, प्रियतम !
गा रही तथा कुछ थी धीरे, स्वर था इतना मीठा, प्रियतम !
भर चली मत्तता प्राणों में सबके अजान में ही, प्रियतम ।।४२३।।

इसी बीचमें लाड़िली वैसे ही आँखें मूँदे कुछ दूर चली गयी। उसके होठोंपर मुस्कान थी और बड़े तालके साथ वह ताली दे रही थी। मन्द मधुर स्वरमें धीरे-धीरे कुछ गा भी रही थी। लाड़िलीका स्वर इतना मीठा था कि अनजानमें ही सबके प्राणोंमें उन्मत्तता भर उठी।।४२३।।

'मैं कौन, कहाँ पर हूँ, क्या है करना मुझको,' भूले, प्रियतम !
अञ्जलि में लिये गुलाल तरल सब के सब दौड़ चले, प्रियतम !
उस ओर जहाँ थी लली सृजन करती रस की सरिता, प्रियतम !
नव-नव कुछ लहरों का सुन्दर आवर्त चित्र लिखती, प्रियतम ।।४२४।।

उस होली-क्रीड़ामें प्रायः सभीको, 'मैं कौन हूँ, कहाँपर हूँ, मुझे क्या करना है,' इस बातकी विस्मृति हो गयी। सबकी अञ्जलि तरल गुलालसे परिपूर्ण थी। सभी अनजानमें ही उस ओर दौड़ चले, जहाँ लाड़िली नेत्र बंद किये खड़ी-की-खड़ी रसकी प्रवाहिणीका सृजन कर रही थी। उस प्रवाहिणीमें नवीन-नवीन ऊर्मियोंका सुन्दर आवर्त्त-चित्र स्वतः अङ्कित होता जा रहा था।।।४२४।।

'ठहरो, ठहरो ! क्या करते हो ?' राजा की यह बेटी,' प्रियतम !
'है खड़ी यहाँ, पिस जाती यह, होता जो मैं न यहाँ,' प्रियतम !
स्वर उसी अनोखे बालक का, आभीर राज सुत का, प्रियतम !
सहसा सुखमत्त हुए सबके कानों में ध्वनित हुआ, प्रियतम ।।४२५।।

अचानक नन्दनन्दनका मधुरातिमधुर स्वर गूँज उठा – 'अरे ! ठहरो ठहरो, तुम सब क्या कर रहे हो ? बृषभानु महाराजकी बेटी यहीं खड़ी है; और यदि मैं यहाँ नहीं रहता तो तुम सबके द्वारा आज यहाँ पिस ही गयी होती ! ..... आभीरनरेश महाराज नन्दके पुत्र उस नीलसुन्दर बालकका स्वर सबके कानोंमें – सुखमत्त हुए एक-एकके कर्णपुटोंमें – सहसा ध्वनित हो गया।। ४२५।।

ज्यों के त्यों सब रुक गये तथा दीखा यह सम्भव-सा, प्रियतम !
समवेत तरुण-तरुणी-वयस्क, सबके दृग धलक उठे, प्रियतम !
हँसता था केवल एक वही छोरा अहीर-नृपका, प्रियतम !
रानी की सुता रूप उसका पी रही दृगों से थी, प्रियतम ।।४२६।।

फिर तो ज्यों-का-त्यों – जो जहाँ था, वहीं-का-वहीं रुक गया और सबको उस अनिष्टकी सम्भावना भी ज्यों-की-त्यों दीख गयी । एकत्रित हुए सम्पूर्ण तरुण-तरुणियोंको, वयस्कोंको एक साथ वैसा ही अनुभव होने लगा। सबकी आँखें छलक उठीं – 'अहो, आज तो भारी अनर्थ हो जाता।' प्रायः सभी स्तब्ध-से होकर बृषभानुपुत्रीको निहारने लग गये। एक केवल आभीर राजपुत्र नन्दनन्दन मात्र हँस रहे थे और उनकी सौन्दर्यसुधाका बृषभानुनन्दिनी अपने नेत्रोंके द्वारा पान कर रही थी।।४२६।।

पन्द्रह-सोलह पल जब बीते, प्रकृतिस्थ हुई रानी, प्रियतम!
बोलीं सब हँसकर, 'मेरे रे लाल, नैनतारा,' प्रियतम!
'तू ही था, तू ही है, आगे निरवधि तू ही होगा,' प्रियतम!
'हरदम सँम्भाल रखने वाला मेरी इस बेटी की।' प्रियतम।।४२७।।

इस अवस्थामें ही पंद्रह-सोलह पल बीत गये। इतने कालके अनन्तर ही बृषभानुपुरीकी महारानी प्रकृतिस्थ हो सकी तथा हँसकर वे बोल उठीं – 'अरे मेरे लाल ! मेरे नैनोंका तारा रे ! मैं सत्य कह रही हूँ, तुम ही मेरी इस पुत्रीकी सँभाल करनेवाले सदासे थे, आज भी सँभाल करनेवाले तुम ही हो, और अनन्तकालतक निरवधि – एकमात्र तुम ही रहोगे भी। मेरी बेटी तुम्हारे ही हस्तकमलकी छायामें नित्य सुरक्षित रहेगी', अस्तु,।।४२७।।

लोचन खिल उठे सभीके, ज्यों यह उक्ति सुनी सबने, प्रियतम!
इतने में वही नीलसुन्दर बालक फिर बोल उठा, प्रियतम!
आँखें मटकाकर रानी से, 'दो पुरस्कार अब तो,' प्रियतम!
'दोगी तुरंत, या ले जाकर मुझको अपने गृह में?' प्रियतम।।४२८।।

..........सभीके नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। कीर्तिदा महारानीकी यह उक्ति सबके कानोंमें झंकृत होने लगी। इतनेमें ही वह नीलसुन्दर बालक पुनः बोल उठा, शैशवकी सरलता उसकी वाणीमें परिपूरित थी, वह अपनी चञ्चल आँखोंको मटका रहा था और कहता भी जा रहा था - 'रानी ! अब मुझे पुरस्कार तो दो भला ! ....बतलाओ, अभी तुरंत दे दोगी या अपने घर ले जाकर दोगी ?'।।४२८।।

'सस्ते छूटोगी, दे दोगी जो अभी यहीं कुछ भी,' प्रियतम!
'ले गयी कदाचित् घर पर तो दूना देना होगा,' प्रियतम!
'है एक लाभ इसमें अवश्य, इन, अहो! लाड़िली के,' प्रियतम!
'लोचन फिर तो मुद्रित होंगे क्षणभर भी नहीं कभी।' प्रियतम।।४२९।।

'देखो ! यदि तुम मुझे यहीं कुछ दे दोगी तो बहुत सस्ते ही छूट जाओगी। किन्तु कदाचित् मुझे अपने घर लिवा ले गयी तो दूना पुरस्कार देना होगा भला ! हाँ, मुझे घर ले जानेमें एक लाभ तुम्हें अवश्य होगा। उसके पश्चात् तो तुम्हारी पुत्रीकी आँखें कभी निमीलित नहीं होंगी।'।।४२९।।

''रे लाल! भला, घर चलकर तो तू देख सही क्या-क्या,' प्रियतम!
'देती हूँ मैं तुझको; पर फिर कुछ दिन रहना होगा।' प्रियतम!
'अपना पूरा घर सौंप, अहो! सचमुच दूँगी तुझको;' प्रियतम!
'मनमानी तू करते रहना, रोकूँगी नहीं कभी।' प्रियतम।।४३०।।

कीर्तिदा मैया क्षणभरका भी विलम्ब किये बिना बोल उठी – 'अरे मेरे लाल ! तू मेरे घर चलकर तो देख सही कि मैं तुझे क्या-क्या देती हूँ। किन्तु हाँ, फिर कुछ दिनोंके लिये तो तुम्हें मेरे घर ही रहना पड़ेगा। देख! मैं तुझे अपना पूरा घर ही सौंप दूँगी और तू मनमानी करते रहना। मैं कभी भी तुम्हें रोकूँगी नहीं।'।।४३०।।

हँसपड़ी ठठाकर, कहकर, कर धरकर शिशुका, रानी, प्रियतम!
चलने के लिये तुरंत हुआ सम्मत वह बालक भी, प्रियतम!
गोपेशा-गेहिनी मुसकाकर बोलीं, 'साँवला अरे!' प्रियतम !
'आवास करेगा उजियारा फिर कौन नित्य मेरा?' प्रियतम।।४३१।।

महारानी इतना कहते-कहते ठठाकर हँस पड़ी तथा नीलसुन्दरका कर-सरोज उन्होंने अपने हाथमें धारण कर लिया। नीलसुन्दर भी बृषभानुपुर जानेके लिये तुरंत प्रस्तुत हो गये। उस ओर गोपेशगेहिनी - नन्दरानी – मुस्कुराकर बोल उठी – 'अरे साँवरा ! फिर मेरे घरको निरन्तर उद्भासित कौन करेगा रे ?' ।।४३१।।

'मैया री! अच्छा, सुन ले यह, तूँ समझ नहीं पायी,' प्रियतम!
'मैं एक साथ दोनों गृह में रह लूँगा, देख सही।' प्रियतम!
आरसी एक चम-चम करती थी पड़ी पास में ही, प्रियतम!
मरकत-साँवर छोरा बोला होकर समक्ष उसके, प्रियतम।।४३२।।

'अरी मैया ! अच्छा तो सुन ले ! तू बात समझ नहीं पायी, री । तू देख तो सही, मैं एक साथ ही दोनों घरोंमें रह लूँगा।' नीलसुन्दरका मधुस्यन्दी स्वर पुनः झंकृत हो उठा।...............एक चमचम करता हुआ दर्पण पासमें ही पड़ा था। उसके समक्ष होकर वह साँवर-बालक बोल उठा – ।।४३२।।

'तेरे घर तो मैं स्वयं नित्य हूँ और रहूँगा ही,' प्रियतम!
'अब अहो! प्रतिच्छाया मेरी, रानी को यह दूँगा,' प्रियतम!
'इनकी दृगपुतरी बेटीजी श्रीजी के साथ सदा,' प्रियतम!
'मेरी यह छाया भी खेले, मैं तो खेलूँगा ही।' प्रियतम।।४३३।।

'अच्छा, फिरसे सुन लो ! तेरे घर तो मैं स्वयं नित्य रहता ही हूँ और रहूँगा ही तथा देख ! एक नया खेल मैं कर दे रहा हूँ। लाड़िलीकी मैयाको, जो तू इस दर्पणमें मेरी प्रतिच्छाया देख रही है, उसे ही दे दूँगा। महारानीकी दृगपुत्री इन बेटी – श्रीजीके साथ ही मेरी यह छाया खेलती रहेगी, और मैं तो खेलूँगा ही।'।।४३३।।

कुञ्चित केशों से घिरा हुआ वह मुख नीला-नीला, प्रियतम!
हो गया मनोहर कितना था उस समय, कहूँ कैसे, प्रियतम!
जब आँख डूबती है उसमें, वाणी रुक जाती है; प्रियतम!
चलती है जब वह, मोहनता उसको ठग लेती है, प्रियतम।।४३४।।

अहा ! कुञ्चित अलकोंसे मण्डित वह नीला-नीला मुख-सरोज उस समय कितना मनोहर हो गया था – कैसे बताऊँ ? जब आँखें उस रूप-सुधा-सिन्धुमें डूबने लगती हैं, तब उस समय वह रूपमाधुरी वाणीको ठग लेती है।।४३४।।

जो हो, रसमयी विनोद, अहो! उस लघु वय के शिशु की,प्रियतम
सुनकर विचित्र सबके मनकी क्षणभर हो गयी दशा,प्रियतम!
अचरज था एक और भारी, सबको प्रतीति यह थी,प्रियतम।
'मैं हूँ सन्निकट अवस्थित,वह इस भाँति कह रहा है।' प्रियतम।। ४३५

जो हो, अहो ! उस लघुवयके नील शिशुका यह रसपूर्ण विनोद सुनकर क्षणभरके लिये सबके मनकी विचित्र दशा हो गयी। उस समय एक और भारी अचरजकी बात यह थी – सबको यही प्रतीति हो रही थी कि मैं ही इस नीले बालकके सर्वथा सन्निकट अवस्थित हूँ और वह श्यामसुन्दर इस प्रकार कह रहा है।।४३५।।

ढल पड़े देव दिनकर अब थे, फिर भी उल्लास नया, प्रियतम!
प्रतिपल अदम्य था जाग रहा सबके प्राणों में ही,प्रियतम।
गोरी छोरी, साँवर छोरा दृगमें थे भरे हुए,प्रियतम!
हो भान कहाँ किसको कैसे इस दृश्य कालगति का,प्रियतम।। ४३६।।

देव दिनकर अब ढल पड़े थे, तथापि प्रतिपल सबके प्राणोंमें नवीन उल्लास अदम्य बनकर उन्हें परिपूर्ण कर रहा था। सबकी आँखोंमें बृषभानु महाराजकी वह गोरी छोरी एवं नन्दका साँवरा छोरा – केवल यही दो भरे हुए थे। फिर कहाँ, किसको, कैसे इस परिदृष्यमान कालका अनुभव हो भला!।।४३६।।

केवल थीं एक महारानी हो गयीं श्रमित मानो,प्रियतम!
हटकर उस जन-समूह से वे बाहर थीं आ बैठीं,प्रियतम।
गम्भीर सोचती- सी कुछ थीं,लोचन थे अर्ध खुले,प्रियतम!
लाड़िली अङ्कमें थी राजित,मुट्ठी अपनी बाँधे,प्रियतम।। ४३७।

हाँ, केवल बृषभानुगेहिनी अब अत्यन्त श्रमित हो गयी थी – अतएव जन-समूहसे हटकर वे बाहरकी ओर आ बैठीं। उनके अन्तस्तलमें एक गम्भीर विचारधारा चल पड़ी थी। उनके नेत्र आधे खुले हुए थे। तथा उनकी वह बड़ी पुत्री लाड़िली उनके अङ्क में विराजित थी। लाड़िलीकी मुट्टी बँधी हुई थी। अस्तु,।।४३७।।

वह थी विनोद की बात, किंतु रानी में समा गयी,प्रियतम!
बनकर लालसा बुद्धि-मनको मन्थन करने वाली,प्रियतम!
'यह बने कदाचित सम्भव सच जगजननी की रुचि से,' प्रियतम!
'परछाँही यदि यह आ सकती शिशु बनकर घर मेरे,'प्रियतम।।४३८।।

वह बात तो सर्वथा विनोदकी थी, किन्तु बृषभानु महाराजके, रानीके अन्तस्तलमें गहरी-से-गहरी बनकर स्थान पा चुकी थी। उनके मनमें तीव्रतम लालसाका रूप धारण करके उनकी बुद्धिको, मनको मन्थन कर रही थी। वे सोच रहीं थी – 'कदाचित् जगज्जननीकी रुचि मेरी इस लालसाको समर्थित कर दे और यह प्रतिबिम्ब नीला शिशु बनकर मेरे घर आ सकता !'.......।।४३८।।

'हो जाती मैं निश्चिन्त उसे रखकर समीप इसके,'प्रियतम!
'यह खोल सलोनी आँखों को हँसकर खेला करती;'प्रियतम!
'आता क्षण वह जब कर-अम्बुज इसके पीले होते,'प्रियतम!
'वह छाँह साँवरा बनती या संगिनी नित्य इसकी।' प्रियतम।। ४३९।।

'उस समय मैं अपनी बड़ी पुत्रीको उसी प्रतिबिम्बस्वरूप शिशुके पास रखकर निश्चिन्त हो जाती तथा यह अपनी सलोनी आँखोंको खोलकर हँस-हँसकर खेला करती। और जब वह शुभमङ्गल-वेला आती, इसके हाथ पीले होनेका क्षण आता, तब यह श्यामवर्णवाली छाया या तो इस नीले शिशुमें मिल जाती अथवा मेरी बड़ी पुत्रीकी नित्य सङ्गिनी बन जाती।'।।४३९।।

यह अहो! चित्त धारा विरमित हो, उससे पहले ही, प्रियतम!
रानी की आँखों में शत दस दिनकर की ज्योति भरी, प्रियतम!
श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी खड़ी नभमें थीं पूछ रही, प्रियतम!
'है एक चाह भी अबतक जो पूरी न तुरत हुई?' प्रियतम।।४४०।।

रानीकी चित्तधारा विरमित हो, इससे पूर्व ही आँखोंमें सहस्रों दिनकरकी ज्योति भर उठी। उन्हें प्रत्यक्ष दीख पड़ा कि महामहिमामयी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी आकाशमें खड़ी मुझसे पूछ रही हैं – "रानी ! सोचकर तुम बताओ सही, तुम्हारी क्या एक भी अभिलाषा अबतक ऐसी है, जो तुरंत पूरी न हो गयी हो ?"।।४४०।।

'इन नील-देवता की छाया चिन्मयी अनूप हुई,' प्रियतम!
'कन्या बनकर उदर स्थल में तेरे प्रविष्ट होगी।' प्रियतम!
'रजनी है मङ्गलमयी परम पञ्चमी आज की जो,' प्रियतम!
'आनेवाली अब से होगी अप्रतिम सुहागनिशा।' प्रियतम।।४४१।।

"सुनो ! सामने विराजित इस नील बालककी प्रतिच्छाया अनुपम, सुन्दर एवं चिन्मयी कन्याका रूप धारणकर तुम्हारे उदरस्थलमें प्रविष्ट होगी। कुछ घटिकाओंके अनन्तर ही आज परम मङ्गलमयी पञ्चमीकी रजनी जो आ रही है, वह भविष्यमें, सदाके लिये, अनन्तकालतकके लिये अप्रतिम सुहागनिशा बन जायगी।"।।४४१।।

अन्तर्हित हुईं महादेवी, यह कहकर रानी से, प्रियतम!
फिर उस दिन के उत्सव का जब आया विराम शुभ था, प्रियतम!
नारीदल एक ओर, नरदल उससे कुछ हट करके, प्रियतम!
नीली सरिता में अवगाहन करने लग गया वहाँ, प्रियतम।।४४२।।

महादेवी इतना कहकर अन्तर्हित हो गयी। और जब उस दिनके उत्सवका शुभ विराम होने चला - विराम हुआ, तब उस समय नारी-दल तो एक ओर, उससे कुछ हटकर पुरुष-दल कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहमें अवगाहन करने लग गया।।४४२।।

उस ओर महामाया ने दी रच एक नयी लीला, प्रियतम!
हो गये महाराजा भावित रसमय कुछ भावों से, प्रियतम!
अप्रतिम जितेन्द्रिय थे, पर वे चञ्चल-से क्षणिक हुए, प्रियतम!
फिर चाह तीसरी संतति की हो गयी प्रबल सहसा, प्रियतम।।४४३।।

महामायाने उस समय एक नयी लीला भी रच दी। अचानक महाराज बृषभानु कुछ रसमय भावोंसे भावित हो उठे। महाराज अप्रतिम जितेन्द्रिय थे; किन्तु क्षणमात्रके लिये आज उनका मन चञ्चल हो गया। इतना ही नहीं, सहसा उनके मनमें एक तीसरी संततिकी प्रबल अभिलाषा जग उठी। अस्तु,।।४४३।।



राधानुजा श्रीमंजुश्यामा (पृष्ठ ३४७)

पहुँचे जब घर पर, संध्या थी हो चुकी, खिन्न वे थे, प्रियतम!
जगदम्बा के पदपद्मों पर सिर रखकर वे रोये, प्रियतम!
संधिनी रूपिणी रानी में संवित्-छाया नीली, प्रियतम!
व्यक्त हुई जब उस रजनी में, नृप तब सब समझ सके, प्रियतम ॥४४४॥

स्नान आदिसे निवृत्त होकर वे अपने घर पहुँचे। उस समय संध्या हो चुकी थी। आज महाराज खिन्न-से दीख रहे थे। जगदम्बाके मन्दिरमें जाकर उनके पादपद्मोंमें सिर रखकर वे रोने लग गये। ....जब संधिनी-स्वरूपिणी महारानीमें एक संविन्मयी नीली छाया उस रजनीमें व्यक्त हो गयी तभी महाराज बृषभानु सम्पूर्ण रहस्योंको समझ सके।।४४४।।

ज्योतिर्मय यही अतीत दृश्य सब वर्तमान-जैसा, प्रियतम!
बनकर उन मुनि-पुंगव के था लोचन में समा गया, प्रियतम!
गोरी-साँवरी नृपति की दो छोरियाँ न दीखी थी, प्रियतम!
वे परदेवता युगल उनको प्रत्यक्ष दीखते थे, प्रियतम॥४४५।

आज अचानक अतीतका यह उपर्युक्त ज्योतिर्मय दृश्य ही सर्वथा वर्तमान-जैसा बनकर महर्षि दुर्वासाके लोचनोंमें समा गया। अब गोरी या साँवरी – महाराज बृषभानकी दो पुत्रियाँ उन्हें नहीं दीख रही थीं। उन्हें तो युगलरूप धारण किये हुए प्रत्यक्ष पर-देवता अनुभूत हो रहे थे।।४४५।।

पाकर मुनिका संकेत, नृपति रानी को लिये हुए, प्रियतम!
बाहर उस सदन-कक्ष से थे आ गये, हाथ जोड़े, प्रियतम!
भीतर रह गयीं पुत्रियाँ दो, मुनि ने आरम्भ किया, प्रियतम!
अर्चन उनका विह्वल होकर, वाणी के पुष्पों से, प्रियतम ॥४४६॥

महाराज बृषभानु और महारानी महर्षि दुर्वासाका सङ्केत पाकर अविलम्ब शयनकक्षसे बाहर आ गये। वे दोनों ही उसी भाँति हाथ जोड़े हुए थे। कक्षके भीतर तो वे दोनों पुत्रियाँ रह गयी थीं। भाव-विह्वल मुनिने वाणीके पुष्पोंसे उनका अर्चन-स्तवन आरम्भ कर दिया।।४४६।।

गम्भीर हुई गोरी छोरी सुनती थी श्लोकों को, प्रियतम।
उसकी भगिनी साँवरी किंतु रह-रहकर हँस देती, प्रियतम!
दो दण्ड बीतने पर सहसा मुनिकी जब गिरा रुकी, प्रियतम!
श्यामा छोरी चपला उनसे बोली मीठे स्वरमें, प्रियतम॥४४७॥

महर्षि दुर्वासाके मुखसे निसृत श्लोकोंको गम्भीर मुद्रामें खड़ी गौरवर्णा एवं श्यामवर्णा – दोनों छोरियाँ सुन रही थीं; किन्तु बीच-बीचमें वह श्यामवर्णा लाडिलीकी अनुजा रह-रहकर हँस दिया करती थी। दो दण्ड बीत जानेपर जब अचानक मुनिकी वाणी रुक गयी, तब चञ्चला श्यामा छोरी अत्यन्त मीठे स्वरमें मुनिराजसे बोल उठी - ।।४४७।।

'मुनिराज! थक गये होगे सच अब तक तुम खड़े-खड़े,' प्रियतम!
'आसन पर बैठो, अहो! श्रमित हो गयी खड़ी मैं तो!' प्रियतम!

इतना-सा ही कहकर उनसे, कर-अलक कँपा करके, प्रियतम!
अपनी फिर बड़ी बहिन से थी कहने लग गयी, भला, प्रियतम!।।४४८।।

मुनिराज ! तुम सचमुच अब थक गये होओगे। अबतक तुम खड़े जो रहे हो। सुनो, आसनपर विराज जाओ। मैं तो खड़ी-खड़ी सचमुच थक गयी हूँ।' – इतना-सा ही बोलकर श्यामा अपनी अलकोंको कम्पित करके बड़ी बहनसे कहने लग गयी – ।।४४८।।

'री! तू चुपचाप देखती है, मुनिवर भूखे होंगे,' प्रियतम!
'ये कोस न जाने कितने हैं चलकर घर पर आये!' प्रियतम!
'तू पूछ सही, लायें क्या हम, किसपर इनकी रुचि है?' प्रियतम!
'मेरे घर हैं तैयार नित्य वस्तुएँ सभी रसकी!' प्रियतम।।४४९।।

'अरी बहिन ! तू चुपचाप कौतुक देख रही है; सुन सही ! मुनिवर अत्यन्त क्षुधित होंगे। ये न-जाने कितने कोस चलकर हमारे घर आये हैं। तू पूछ तो सही, हम कौनसी वस्तु ले आयें? किसपर इनकी रुचि है ? हमारे घर रसकी सभी वस्तुएँ नित्य प्रस्तुत रहती हैं भला!' ।।४४९।।

गोरी ने मन्द-मधुर हँसकर समझाया भगिनी को, प्रियतम!
रहने के लिये अचञ्चल, फिर कर-बद्ध हुई बोली, प्रियतम!
'ऋषिवर्य! देव! हम दोनों को पुत्रीवत् ही समझें,' प्रियतम!
'है पली लाड़में श्यामा यह, बातूनी अतः बनी!' प्रियतम।।४५०।।

किशोरीने मन्द-मन्द हँसकर अपनी छोटी बहनको समझाया; उसे किञ्चित् अचञ्चल रहनेका सङ्केत किया। इसके पश्चात् करबद्ध होकर मुनिपुङ्गवसे बोली – 'ऋषिप्रवर ! देव ! हम दोनोंको आप अपनी पुत्रीवत् ही समझें। यह श्यामा अत्यन्त लाड़में पली है, इसीलिये अतिशय वाचाल बन गयी है।'।।४५०।।

'अब आप विराजें, कृपा करें, सेवा सब बतला दें,' प्रियतम!
'मैं स्वयं करूँगी, पल-पलमें उत्साह नवीन लिये,' प्रियतम!
'यह भी कुछ कर देगी, फिर जो भूलें होंगी हमसे,' प्रियतम!
'उनको तो क्षमा करेंगे ही, विश्वास सत्य यह है!' प्रियतम।।४५१।।

'अब आप आसनपर विराजें। हम सबपर कृपा करें। अपनी सभी सेवाएँ हमें बतला दें। मैं पल-पलमें नवीन उत्साह लिये सभी सेवाएँ स्वयं सम्पन्न करूँगी। यह मेरी छोटी बहन भी कुछ कर देगी। फिर हम दोनोंसे जो भूलें होंगी, उन्हें तो आप क्षमा कर ही देंगे, यह सच्चा विश्वास है मुझे।'।।४५१।।

वाणी क्या थी उसकी, मानो धारा थी सुधामयी, प्रियतम!
मुनिवर को, अहो! और भी वह सुधिहीन लगी करने, प्रियतम!
इतने में पुनः साँवरी ने ऐसी चर्चा छेड़ी, प्रियतम!
सुनकर जिसको हँस पड़ी बड़ी बरबस ऊँचे स्वर से, प्रियतम।।४५२।।

राजपुत्रीकी वाणी क्या थी, मानों सुधामयी एक धारा प्रसरित हो रही हो। वह मुनिवरको उत्तरोत्तर और भी सुध-बुधहीन बनाती चली गयी। इतनेमें ही साँवरीने ऐसी चर्चा छेड़ दी, जिसे सुनकर किशोरी बरबस ऊँचे स्वरसे हँस पड़ी।।४५२।।

हो गयी समाधि शिथिल मुनिकी, दैवी प्रेरणा हुई, प्रियतम!
भावोंका संधि-स्थल आया, माया-सी फिर फैली, प्रियतम।
आकर्षण अहो! दोनोंमें यद्यपि था वैसा ही, प्रियतम!
असमोर्ध्व ईशतापर झीना आवरण एक आया, प्रियतम।।४५३।।

.........उस हास्यसे महर्षिकी भाव-समाधि शिथिल हो गयी। उसी क्षण उन्हें कुछ दैवी प्रेरणा भी हुई, साथ ही भावोंका संधिस्थल भी आ गया; एक माया-सी फैल गयी। यद्यपि दोनों राजपुत्रियोंमें मुनिराजका आकर्षण तो ज्यों-का-त्यों बना ही रहा, तथापि उनके असमोर्ध्व ऐश्वर्यपर एक झीना आवरण-सा आ गया।।४५३।।

उन महातपोधनके उरमें, ऊसर जो अबतक था, प्रियतम।
अङ्कुर अभिनव वत्सलताका जग उठा, अहो! क्षणमें, प्रियतम!
नृप-दुहिताओंके प्रति, निर्मल अत्यन्त ममत्व लिये, प्रियतम!
बढ़ते पल्लवित और पुष्पित होते न विलम्ब हुआ, प्रियतम।।४५४।।

उन महातपस्वी ऋषिवरका हृदय, जो अबतक अत्यधिक ऊसर था ही, अचानक क्षणभरमें मसृण हो उठा। उसमें अभिनव वत्सलताके अङ्कुर प्रस्फुटित होने लगे – उन दोनों राजपुत्रियोंके प्रति निर्मल ममत्वसे अभिषिक्त होते हुए भाव-वल्लरी बढ़ने लग गयी और ऐसी शीघ्रतासे बढ़ी कि उसे पल्लवित एवं पुष्पित होते किञ्चित् भी विलम्ब नहीं हुआ।।४५४।।

मध्याह्न हो चला था, श्यामा कर धारणकर ऋषिके, प्रियतम!
बोली, 'तुम हुए नये बाबा हम दोनों बहिनोंके।' प्रियतम!
'अब आज इसी क्षणसे, जो सब सहचरी हमारी हैं,' प्रियतम!
'वे भी इस भाँति मानकर ही सर्वदा पुकारेंगी।' प्रियतम।।४५५।।

अब मध्याह्न हो चला था। मुनिपुङ्गवके दोनों हाथ छोटी बहन श्यामाने पकड़ लिये। साथ ही वह बोल उठी – 'देखो ! तुम आजसे हम दोनों बहनोंके नये बाबा हो गये भला; आज इसी क्षणसे हमारी जितनी सहचरियाँ हैं, वे सब भी सच्चे हृदयसे ऐसा ही मानती हुई तुम्हें इसी भाँति पुकारा करेंगी।'।।४५५।।

'हमसे है बड़ा सहोदर जो प्यारा अतिशय भाई,' प्रियतम!
'कानन में चरा रहा है वह इस समय धेनुओं को,' प्रियतम!
'संध्या होनेपर आयेगा, उससे भी कह दूँगी,' प्रियतम!
'वह और समस्त सखा उसके ऐसा ही मानेंगे।' प्रियतम।।४५६।।

'हम दोनोंसे बड़ा हमारा अत्यन्त प्रिय जो सहोदर भाई है – वह तो इस समय वनमें गोचारण करने गया हुआ है। संध्या होनेपर वह आयेगा। उसे भी मैं कह दूँगी । केवल वही नहीं, उसके सभी सखावर्ग भी तुम्हारे प्रति ऐसा ही भाव निरन्तर रखने लगेंगे।'।।४५६।।

'वे सब हैं पर अतिशय चञ्चल, जो छेड़ कहीं वे लें,' प्रियतम!
'तुम रुष्ट नहीं होना उनसे, उनका स्वभाव यह है।' प्रियतम!
'प्यारी अत्यन्त बहिन मैं हूँ उन सबकी ही, फिर भी,' प्रियतम!
'मुझको भी कभी-कभी सब वे देते हैं रुला, भला।' प्रियतम।।४५७।।

'हाँ, वे सब-के-सब अत्यन्त ही चञ्चल हैं। और कहीं तुम्हें भी छेड़ बैठें, तब तुम उनपर रुष्ट मत होना भला ! उनका स्वभाव ही ऐसा है। मैं उन सबकी अत्यन्त प्यारी बहन हूँ, फिर भी वे कभी-कभी तो मुझे भी रुला देते हैं।'।।४५७।।

'अब चलो, सरोवर में तुमको हम दोनों नहलायें,' प्रियतम!
'जिसमें प्रतिदिन हमको मैया, मौसी नहलाती हैं।' प्रियतम!
'कमलों से भरा हुआ वह है, निर्मल जल है उसका,' प्रियतम!
'सुन्दर विहंग हैं नित्य वहाँ कलरव करते रहते।' प्रियतम।।४५८।।

'अब चलो, 'अब चलो, सरोवरपर हम दोनों तुमको ले चलती हैं। उसीमें स्नान करावेंगी। उसमें ही हम दोनोंको मैया एवं मौसी प्रतिदिन नहलाती हैं। अहा ! वह कमल-पुष्पोंसे भरा है। उसका जल अत्यन्त निर्मल है। वहाँ सुन्दर-सुन्दर विहङ्गम नित्य कलरव करते रहते हैं।'।।४५८।।

छोरी की सरस, सरल वाणी मुनिवर के प्राणों में, प्रियतम!
अनुपम मादकता थी क्रमशः भर रही, मौन वे थे, प्रियतम!
'क्या करें, कहें क्या उनसे?' नहीं निर्णय कर पाते थे, प्रियतम!
भावों की विमल नीरधारा आँखों से थी बहती, प्रियतम।।४५९।।

श्यामा छोरीकी सरस एवं सरल वाणी महर्षिके प्राणोंमें क्रमशः अनुपम मादकता भरती जा रही थी। वे मौन थे – क्या करें, उनसे क्या कहें – इस सम्बन्धमें वे कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहे थे। भावोंकी निर्मल जलधारा उनकी आँखोंसे अनर्गल प्रवाहित हो रही थी।।४५९।।

दोनों के हाथों में ऋषिने अपने को सौंप दिया, प्रियतम!
'जो रुचे, करो!' पल-पल उनकी अनुभूति बदलती थी, प्रियतम!
'हैं नृपति-तनूजा, नहीं, अहो! मेरी बेटी ये हैं,' प्रियतम!
फिर इष्टदेवता की झाँकी उनमें होने लगती, प्रियतम।।४६०।।

कुछ भी निर्णय न कर पानेकी स्थितिमें.......... उन्होंने अपने आपको उन दोनों पुत्रियोंके हाथमें सौंप दिया। उनकी मुद्रा सुस्पष्ट सङ्केत कर रही थी - 'तुमको जो अच्छा लगे, कर लो।' उन दोनोंके प्रति पल-पलमें उनकी अनुभूति बदलती जा रही थी। कभी वे सोचते – 'ये दोनों राजपुत्रियाँ हैं।' किन्तु कुछ ही क्षणोंमें यह भाव बदल जाता – 'अरे नहीं ! ये तो मेरी पुत्रियाँ हैं।' पाँच-छः पलोंके अनन्तर उन्हें सुस्पष्ट दीखने लग जाता – 'नहीं-नहीं, यह तो हमारे इष्ट देवता हैं भला।' तथा उन्हें अपने इष्टदेवकी ही झाँकी उन दोनोंमें प्रत्यक्ष होने भी लग जाती।।४६०।।

वह बड़ी राजपुत्री हँसकर जैसे-तैसे मुनि को, प्रियतम!
ले गयी सरोवर पर सचेत कर-करके नहलाया, प्रियतम!
श्यामा ने अङ्ग पोंछकर फिर परिधान दिया उनको, प्रियतम!
जैसे कठपुतली हों, उनने धारण कर लिया उसे, प्रियतम।।४६१।।

हँसकर वह बड़ी राजपुत्री जैसे-तैसे मुनिराजको सरोवरपर ले गयी। फिर उन्हें बार-बार सावधान करके ही स्नानकी क्रियाको सम्पन्न करवाया। श्यामाने महर्षिके अङ्गोंको पोंछकर हाथोंमें परिधानका वस्त्र दे दिया। वे मानो कठपुतली हों – इस भाँति उन्होंने वस्त्र भी धारण कर लिये।।४६१।।

मध्याह्न-कृत्य भी कहने पर कर गये यन्त्रवत् ही, प्रियतम!
ले आयीं उसी कक्षमें वे उनका कर-युग पकड़े, प्रियतम!
आसीन हुए जब वे, उनसे बोली नृपलली बड़ी, प्रियतम!
'लाऊँ क्या, हे मुनीश! अब मैं भोजन की सामग्री?' प्रियतम।।४६२।।

उन दोनों राजपुत्रियोंके कहनेपर यन्त्रवत् ही वे अपने मध्याह्न कृत्यको भी सम्पन्न कर गये। दोनों दो ओरसे उनका हाथ पकड़े पुनः उन्हें उसी कक्षमें ले आयीं, जहाँ वे ध्यानस्थ हो गये थे। जब वे आसनपर विराज गये तो बड़ी राजनन्दिनीने उनसे कहा – मुनीन्द्र ! अब मैं भोजनकी कौनसी सामग्री ले आऊँ ?।।४६२।।

कह उठी कनिष्ठा बहिन, 'अरी! भोली सचमुच तू है; प्रियतम!
'हैं ध्यानमग्न मुनि, तो उनको तू व्यर्थ छेड़ती है!' प्रियतम!
'जैसे मैं कहती हूँ कर ले; चल, खीर बना लायें; प्रियतम!
'खा लेंगे जो वे स्वयं, ठीक है; नहीं खिला देना।' प्रियतम।।४६३।।

बीचमें ही कनिष्ठा बोल उठी – 'अरी बहन ! तू बड़ी भोली है। मुनि तो ध्यानमग्न हैं और तू बार-बार उन्हें छेड़ रही है । जैसे मैं कहती हूँ कर ले । चल, खीर बना लायें हम दोनों । ये स्वयं खा लेंगे, तब तो ठीक है ही; अन्यथा तू खिला देना।'।।४६३।।

फिर भी जब रुकी रही, लोचन उनकी ही ओर किये, प्रियतम!
ढलकी मुनि-दृग से बूँद, मिली सम्मति, हिलकर पलकें, प्रियतम!
हँसकर, आकर्षित लाली को करके, अनुजा बोली, प्रियतम!
'तू कर विश्वास, बात मेरी ऋषि मान सभी लेंगे।' प्रियतम।।४६४।।

श्यामाके यह कह देनेपर भी जब मुनिवरकी ओर आँखें किये बड़ी राजपुत्री खड़ी देखती ही रही, तब महर्षिकी आँखोंसे अश्रुकी दो-चार बूँदें ढलक पड़ीं और उनका मस्तक किञ्चित् स्पन्दित होनेपर खीर लानेकी सम्मति भी प्राप्त हो गयी। बड़ी बहनको हँसकर अपनी ओर आकर्षित करते हुए चञ्चला श्यामा बोल उठी – 'तू विश्वास कर ले, मेरी प्रत्येक रुचि मुनिवर मान ही लेंगे।'।।४६४।।

वे चलीं, वहाँ पहुँचीं, जननी थी जहाँ प्रतीक्षा में, प्रियतम!
उसकी ग्रीवामें झूल, लली साँवरी लगी कहने, प्रियतम!
जबतक उसकी अनुपस्थिति में बातें जो हुईं वहाँ, प्रियतम!
सुनकर अवाक् दस पल मैया रह गयी अचम्भे से, प्रियतम।।४६५।। ।।

वे दोनों ही चल पड़ीं। वहाँ मैया प्रतीक्षा कर रही थी; वहीं वे आ पहुँची । मैयाकी ग्रीवामें झूलती हुई साँवरी एक-एक बात बताने लग गयी, जो मैयाकी अनुपस्थितिमें घटी थी। सब सुननेके अनन्तर मैया आश्चर्यमें डूबकर दस पल तो अवाक्-सी देखती रह गयीं। अस्तु,।।४६५।।

पायस- रन्धन की तैयारी उसने तुरंत करदी, प्रियतम!
लाड़िली सलोने हाथों से प्रस्तुत कर ले आयी, प्रियतम!
समयोचित आसन आदि पूत विधिवत् सब रच करके, प्रियतम!
फिर हाथ जोड़ करके ऋषि से विनती कर खड़ी रही, प्रियतम।।४६६।।

..........मैयाने पायस-रन्धनकी तैयारी तुरंत कर दी। लाडिलीने अपने सलोने हाथोंसे रन्धनका कार्य सम्पन्न भी कर दिया। तथा वह उसे लेकर मुनिवरके समीप आ पहुँची। विधिवत् समयोचित पवित्र आसन लगाकर एवं हाथ जोड़कर ऋषिसे विनती करके वह चुपचाप खड़ी रही।।।४६६।।

वे उठ विराज गये आकर ,आचमन किया उनने, प्रियतम!
अग्रिम कर्तव्य तुरंत किंतु वे पुनः भूल बैठे, प्रियतम!
रच करके ग्रास लाड़िली ने अपने कर-सरसिज से, प्रियतम!
उनके मुखमें रखदिया, अहो! जय घोष हुआ नभमें, प्रियतम।।४६७।

मुनिवर उठ पड़े तथा आकर आसनपर विराज गये। आचमन भी उन्होंने कर लिया, किन्तु अब आगे क्या करना है, इसे वे तुरन्त भूल गये। लाड़िलीने अपने कर-सरोजसे स्वयं ग्रासका निर्माण करके उनके मुखमें रख दिया। अहो ! उसी क्षण आकाशमें जय ! जय !! जय !!! यह घोष हो उठा।।४६७।।

तन था गतिहीन, खा रहे थे वे खीर तथापि, भला, प्रियतम!
लाड़िली खिलाने वाली थी, इसलिये हुआ ऐसा, प्रियतम!
अन्यथा दशा उनकी ऐसी हो गयी उस समय थी, प्रियतम!
पायस तो दूर, नीरकण तक भीतर न उतर पाता, प्रियतम ।।४६८।।

महर्षिका शरीर तो स्पन्दनहीन था, किन्तु फिर भी वे खीर खाते चले जा रहे थे। खिलानेवाली लाडिली जो थी ! इसीलिये तो ऐसा हुआ। अन्यथा इस समय उनकी दशा ऐसी हो गयी थी कि खीर खा लेना तो दूरकी बात, उनके कण्ठमें एक नीरकणतक नहीं उतर पाता।।४६८।।

आचमन करा कर लाली ने मुखवास दिया उनको, प्रियतम!
फिर नील सुकोमल मखमल की शय्या पर बैठाया, प्रियतम!
आरती लगी करने गाकर महिमा उनके तपकी, प्रियतम!
अनुसरण साँवरी भी उसका कर रही सरसतम थी, प्रियतम।।४६९।।

..............पुनः लाडिलीने मुनिवरको आचमन कराया; उन्हें मुखवास समर्पित किया; तथा एक नीलवर्ण सुकोमल मखमलकी शय्यापर उन्हें विराजित कर दिया। उसके अनन्तर महर्षिकी महिमा गाकर उनके तपका वर्णन करके उनका नीराजन करने लगी। तथा बड़े ही सरसतम ढंगसे साँवरी भी किशोरीका अनुसरण कर रही थी।।४६९।।

जो भूत-भविष्यत्- वर्तमान माधुरी स्वरों की है, प्रियतम!
उसका उद्गम जो है, जिसको छू सकी न बुद्धि-गिरा, प्रियतम!
जो नित्य सनातन अद्भुत है मीठा अनुपम, उसको, प्रियतम!
पालिया छोरियों के स्वरमें उन महातपस्वी ने, प्रियतम।।४७०।।

भूत, वर्तमान, भविष्यमें किसीको स्वरोंका जो कुछ भी माधुर्य उपलब्ध हुआ है, उसका जो उद्गमस्थल है, जिसे वाणी, मन, बुद्धि छू तक नहीं सकी है, जो नित्य है, सनातन है, अद्भुत है, अनुपम माधुर्यमय है - उसको ही उन महातपस्वीने आज उन दोनों राजदुहिताओंके स्वरमें अनुभव कर लिया।।४७०।।

क्षणमें वे अन्तर्मुख होते, बाहर आते क्षणमें, प्रियतम!
आखिर लग गये झूमने वे उठकर धीरे-धीरे, प्रियतम!
नीराजनपात्र लाड़िली के कर-नलिन-दलों से वे, प्रियतम!
लेकर विक्षिप्त चित्त होकर लग गये नृत्य करने, प्रियतम।।४७१।।

क्षणमें तो मुनिवर अन्तर्मुख होते और दूसरे क्षण बाह्य ज्ञान भी हो जाता। अन्ततः वे उठकर धीरे-धीरे उन राजपुत्रियोंके स्वरका अनुगमन करते हुए झूमने लग गये। अचानक नीराजन-पात्रको उन्होंने लाडिलीके कर-सरोजसे अपने हाथमें ले लिया तथा ओह ! ....विक्षिप्त-से ऋषिवर्य नृत्य करने लग गये भला !।।४७१।।

हँसकर साँवरी, तान भरकर, नूपुर रुनझुन करके, प्रियतम!
उस तालबन्ध पर ही उनको सहयोग लगी देने, प्रियतम!
जाने ही बिना मुनीश मत्त अब अहो! लाड़िली की, प्रियतम!
करने प्रदक्षिणा लगे, लली लज्जित रह गयी खड़ी, प्रियतम।।४७२।।

साँवरी छोरी हँसकर, अपने नूपुरको रुन-झुन करके तथा तान भरकर उसी तालबन्धपर ही मुनिराजको सहयोग देने लग गयी। भावसे मत्त हुए मुनिराज अब बिना जाने ही नीराजन-पात्र हाथमें लिये लाड़िलीकी प्रदक्षिणा करने लग गये........... राजनन्दिनी लज्जित-सी चुपचाप खड़ी देखती रह गयी।।।४७२।।

लगभग जब सवा घड़ी बीती मुनिवर की आँख खुली, प्रियतम!
भौंचक होकर उन दोनों को लग गये देखने वे, प्रियतम!
आदर से बड़ी लली उनको बैठा करके, बोली, प्रियतम!
थे अभी, मुनीश! आप भावित लोकोत्तर भावों से, प्रियतम।।४७३।।

जब लगभग सवा घड़ी काल व्यतीत हो गया, तब मुनिराजकी आँखें खुली। वे भौंचक्के-से होकर उन दोनों राजपुत्रियोंको देखने लगे। बड़ी राजपुत्रीने आदरसे उन्हें आसनपर विराजित करके यह कहा-'मुनीन्द्र ! अभी आप लोकोत्तर भावोंसे भावित हो गये थे।'।।४७३।।

बस, अतुल आपके निर्हैतुक, निस्सीम अनुग्रह से, प्रियतम!
उसका दर्शन कर हम दोनों हो गयीं निहाल, भला, प्रियतम!
अब समय आपके संध्योचित कृत्यों का आया है, प्रियतम!
कासार-कूल पर चलें, यहीं रहकर अथवा कर लें, प्रियतम।।४७४।।

'बस, आपके निर्हैतुक निस्सीम अनुग्रहसे ही हम दोनों बहनें उसका दर्शन करके कृतार्थ हो गयीं। अब आपके संध्योचित कृत्योंका समय हो गया है। आप सरोवर-तटपर चलें, अथवा यहीं सन्ध्योपासन कृत्य सम्पन्न कर लें।'।।४७४।।

मुनि अन्यमनस्क हुए आये सुन्दर उस सर पर ही, प्रियतम!
मज्जन करके दिनकर को जब वे अर्घ्य दे रहे थे, प्रियतम!
रवि ढले अस्तगिरि में, उनके दृगपथमें आ न सके, प्रियतम!
वे नृपति-छोरियाँ ही नभमें हो रही अवस्थित थीं, प्रियतम!।४७५।।

अन्यमनस्क-से हुए मुनिराज उस सुन्दर सरोवर-तटपर ही चले आये। स्नान करके अंशुमालीको जब वे अर्घ्य समर्पित कर रहे थे, उस समय अंशुमाली अस्तगिरिकी ओर ढ़ल चुके थे। देव-निकर आज उनके दृष्टिपथमें न आ सके। दोनों राजपुत्रियाँ ही आकाशमें अवस्थित हो रही हैं, उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था।।४७५।।

हो करके चकित दृष्टि उनने सर-तट पर जब डाली, प्रियतम!
वे ठीक वहाँ पर भी दोनों वैसी ही खड़ी मिलीं, प्रियतम!
दोनों ही ओर योगबल से अब एक समय में ही, प्रियतम!
देखा युगपत् वे वहाँ और थीं यहाँ तीर पर भी, प्रियतम!।४७६।।

अत्यन्त चकित होकर मुनिवरने सरोवरके तटपर अपनी दृष्टि डाली। वहाँ भी दोनों ज्यों-की-त्यों खड़ी मिलीं। अब दोनों ही ओर एक समयमें अपने योगबलसे मुनिराजने देखना आरम्भ किया। उनको अनुभव हुआ-'अहो ! यह क्या ? दोनों एक समयमें ही तटपर भी अवस्थित हैं और आकाशमें भी !' ।।४७६।।

विस्मित अत्यन्त हुए, फिर तो उत्तर की ओर तथा, प्रियतम!
पूरब-दक्षिण, ऊपर-नीचे, चारों कोनों में ही, प्रियतम!
वे देख गये पलनें, उनकी पर दृष्टि जहाँ पड़ती, प्रियतम!
वे दो नरपाललली उनको मिलती थीं खड़ी वहीं, प्रियतम!।४७७।।

फिर तो मुनिराज, उत्तरकी ओर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, ऊपर, नीचे, चारों कोनोंमें भी देखने लग गये। उनकी दृष्टि जहाँ पड़ती, उन्हें वे दोनों नरपालनन्दिनी ही अवस्थित दीखतीं।............।।४७७।।

मुनि के दृगसे संसार हटा, बच गयीं ज्योतियाँ दो, प्रियतम!
थी एक नील घन-सी, सुतप्त कनकाभ दूसरी थी, प्रियतम!
हो गयी सभी वृत्तियाँ लीन मनकी उनके उनमें, प्रियतम!
अप्रतिम समाधि लगी उनकी हट सभी दृष्टियों से, प्रियतम!।४७८।।

मुनिकी आँखोंसे संसार हट गया और नेत्रोंमें बच गयी केवल मात्र दो ज्योतियाँ – एक थी नीलघन-सी और दूसरी सुतप्त कनकाभ थी। अब तो मुनिराजके मनकी सभी वृत्तियाँ उन दोनोंमें समा गयीं। मुनिवरकी अप्रतिम समाधि लग गयी।।४७८।।

निस्पन्द देह मुनिवर की थी, नृपललियों ने उसको, प्रियतम!
जलसे बाहर लाकर, गीला परिधान बदल करके, प्रियतम!
फिर उसी जलाशय के तट के संन्निकट वेशगृह में, प्रियतम!
ले जाकर बैठा दिया और दोनों हो गयीं खड़ी, प्रियतम!।४७९।।

मुनिवरका गात्र निस्पन्द हो गया था। दोनों राजपुत्रियोंने उनके शरीरको जैसे-तैसे जलसे बाहर निकाला। उनके गीले परिधानको बदल दिया। फिर उसी जलाशयके तटके पास जो एक वेषगृह था, वहीं मुनिराजको लाकर बैठा दिया तथा दोनों उनके समक्ष खड़ी रहीं।।४७९।।

शारीरिक निस्पन्दता, अहो! ज्यों-की-त्यों बनी रही, प्रियतम!
रजनी जाकर आयी शुक्ला सप्तमी शरद पहली, प्रियतम!
दिन बीत गया, संध्या होकर वह रात पुनः बीती, प्रियतम!
हँसता प्रभात फिर था लौटा वह महाअष्टमी का, प्रियतम।।४८०।।

महर्षि दुर्वासाकी शारीरिक निस्पन्दता ज्यों-की-त्यों बनी रही। सम्पूर्ण रजनी बीत गयी। शरद ऋतुकी पहली शुक्ला सप्तमी आ गयी। आजका दिन भी बीत गया। संध्या होकर उस दिनकी रात्रि भी पुनः बीत गयी। और अब हँसता हुआ प्रभात फिरसे लौटा था। यह प्रभात महाष्टमीका था।।४८०।।

अब तक दो दण्ड जहाँ बीते, रानी-नृप आते थे, प्रियतम!
कुछ दूर अवस्थित रह कर ही सब ढंग देख लेते, प्रियतम!
श्यामा समीप जाकर भी सब बातें बतला देती, प्रियतम!
निश्चिन्त लौटते नृप, रानी चिन्ता करती जाती, प्रियतम।।४८१।।

अबतक - दो दण्ड जैसे बीतते; महाराज एवं महारानी वहीं आ पहुँचते; और कुछ दूरपर ही अवस्थित रहकर अन्तर्पक्षका दृश्य देख लेते। श्यामा उनके समीप जाकर सब बातें बतला देती। महाराज तो निश्चिन्त होकर लौटते, किन्तु महारानीका मन चिन्तातुर बना रहता। अस्तु,।।४८१।।

जगदम्बा की अनुमति लेकर रानी चुपचाप वहाँ, प्रियतम!
षष्ठीप्रदोषमें, आगे के प्रातः, फिर संध्यामें, प्रियतम!
बस, तीन बार जाकर अपनी दो, अहो! बेटियों को, प्रियतम!
नहलाकर फिर शृङ्गार धरा किंचित् थीं खिला सकी, प्रियतम।।४८२।।

जगदम्बाकी अनुमति लेकर रानी चुपचाप वहाँ जाती – षष्ठी तिथिके प्रदोषमें, और आगेके प्रातःकाल और फिर संध्यामें – बस, तीन बार अहो ! अपनी दोनों बेटियोंको नहलाकर शृङ्गार धारण कराकर वे किञ्चित् खिला पायी थीं।।४८२।।

दो रात न सोयी बड़ी लली, प्राय: बैठी रहती, प्रियतम!
साँवरी बहिन की गोदी में सिर रखकर कुछ सोयी, प्रियतम!
छोटी के हठ कर लेने पर लाड़िली लेट जाती, प्रियतम!
पल बीस-तीस, फिर उठ जाती, करके प्रसन्न उसको, प्रियतम।।४८३।।

बड़ी राजपुत्री तो दो रात बिलकुल ही न सो पायी; प्रायः वह बैठी ही रहती। श्यामा अपनी बड़ी बहनकी गोदमें सिर रखकर कुछ देरके लिये सो जाती। छोटीके अत्यन्त हठ कर लेनेपर लाड़िली लेट भी लेती मात्र बीस पल, तीस पलके लिये ही तथा फिर उठ बैठती। इतनेमें ही श्यामाका मन प्रसन्न हो जाता।।४८३।।

जो हो, जब महाअष्टमी की दो घड़ी प्रथम बीती, प्रियतम!
मुनिवर की खुली समाधि, उठे धीरे-धीरे फिर वे, प्रियतम!
आकर के उस सर पर, उनने कालोचित कृत्य किये, प्रियतम!
आये फिर राजभवनमें वे दोनों को साथ लिये, प्रियतम।।४८४।।

जो हो, महाष्टमीके प्रातःकाल, दो घड़ी दिन बीतनेपर महर्षि दुर्वासाकी समाधि खुली। वे धीरे-धीरे उठ बैठे और उसी सरोवरपर आकर उन्होंने अपने कालोचित कृत्य सम्पन्न किये। इसके अनन्तर दोनों राजपुत्रियोंको साथ लिये राजभवनमें आये।।४८४।।

वे अपने-आप वहाँ पहुँचे, रानी-अवनीश जहाँ, प्रियतम!
थे जोह रहे पथ पल-पलमें बढ़ती उत्कण्ठा से, प्रियतम!
आठों अङ्गों से राजाने प्रणिपात किया मुनिको, प्रियतम!
धरतीपर बार-बार मस्तक रानी थी झुका रही, प्रियतम।।४८५।।

मुनिराज वहाँ अपने आप आ गये, जहाँ महाराज एवं महारानी विराजित थे। दोनों ही पल-पल बढ़ती हुई उत्कण्ठासे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आठों अङ्गोंसे राजाने उन्हें प्रणिपात किया। भूमिपर रानी बार-बार अपना मस्तक झुका रही थी।।४८५।।

भर आया कण्ठ तपोधन का, जैसे बोलने चले, प्रियतम!
कर उठे अभय मुद्रामें, पर लग गये काँपने वे, प्रियतम!
भर गया स्वेद भी अङ्गोंमें, भावित इस भाँति हुए, प्रियतम!
वे खड़े रहे बारह-चौदह पल तक आँखें मूँदे, प्रियतम।।४८६।।

...........सहसा तपोधनका कण्ठ भर आया। जैसे ही वे बोलने चले कि उनके कर-सरोज अभय मुद्रामें ऊपरकी ओर उठ गये। किन्तु अब उनका सारा शरीर काँपने लग गया; सम्पूर्ण अङ्गोंमें स्वेद भी भर उठा था। इस प्रकार दिव्य भावोंसे भावित होकर वे बारह-चौदह पलतक आँखें मूँदे चुपचाप खड़े थे।।४८६।।

जैसे-तैसे धीरज लाकर ललचाये लोचन से, प्रियतम!
श्रीमुख निहार कर बार-बार वे नृपति-छोरियों का, प्रियतम!
बोले, "हे रानी! राजन्! सच हो धन्य नित्य तुम हीं," प्रियतम!
"जो इन अप्रतिम पुत्रियों की माता हो और पिता।" प्रियतम।।४८७।।

बहुत साहस बटोरकर जैसे-तैसे उन्होंने अपने मनको धैर्य बँधाया। अपनी सतृष्ण आँखोंसे बार-बार दोनों राजपुत्रियोंके श्रीमुखको निहारकर बड़ी कठिनाईसे वे बोल सके – 'हे महारानी ! हे राजन् ! तुम सचमुच नित्य धन्य, धन्य, धन्य हो, जो इन अप्रतिम दो पुत्रियोंके माता-पिता होनेका तुम्हें सौभाग्य मिला।'।।४८७।।

'होने के लिये कृतार्थ परम मैं भी हूँ अतिथि हुआ,' प्रियतम!
'इस गृहमें, जिसकी धरणी का कण-कण पावन तम है।' प्रियतम!
'छूकर इन दोनों के अभिनव पद अरुण सरोजों को,' प्रियतम!
'जिनका किञ्जल्क सुदुर्लभ है योगीश-मुनीशों को,' प्रियतम।।४८८।।

'मैं भी परम कृतार्थ होनेके लिये ही तुम्हारे यहाँ इस गृहमें अतिथि हुआ हूँ। इस धरणीका कण-कण पावनतम है भला; क्योंकि यह धरा तुम्हारी इन दोनों पुत्रियोंके अरुण-सरोजके सदृश चरणोंको छू-छूकर पावनतम बन चुकी है। इन चरण-सरोरुहोंका किञ्जल्क योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके लिये भी दुर्लभ है।'।।४८८।।

क्षणभर वे रुके, और निकली रसमयी पुनः वाणी, प्रियतम!
जैसे प्रसङ्ग की धारा को दे फेर शक्ति कोई, प्रियतम!
'हे नृप दम्पति! इनने मेरी सुन्दर जो की सेवा,' प्रियतम!
'कोई भी कर न सका अबतक, कर सकी नहीं कोई,' प्रियतम।।४८९।।

महर्षि क्षणभरके लिये रुक गये और उनकी रसमयी वाणी पुनः प्रस्फुटित हुई – इस भाँति जैसे प्रस्तुत प्रसङ्गकी धाराको अचिन्त्य शक्ति मोड़ दे। वे बोले – 'नृप-दम्पति ! तुम्हारी इन दोनों पुत्रियोंने जैसी सेवा की है, वैसी अबतक कोई भी न कर सकी, न कर सका ।'।।४८९।।

'मैं क्या इनको दूँ, किंतु सफल हो जाय वचन मेरा;' प्रियतम!
'इसलिये अवश्य कहूँगा कुछ दैवी इच्छा से ही;' प्रियतम!
'इस बड़ी लाड़िली के कर से अब बने रसोई जो,' प्रियतम!
'तत्क्षण रुजापहर हो, अक्षय, सुस्वादु अनूप तथा।' प्रियतम।।४९०।।

'मैं इनको क्या दूँ ? .... किन्तु मेरी वाणी सफल हो जाय, इसलिये दैव-इच्छासे कुछ कहूँगा अवश्य। देखो, तुम्हारी इस बड़ी लाडिलीके कर-सरोजसे जो रसोई निर्मित होगी, वह तत्क्षण सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाली होगी; इसके द्वारा प्रस्तुत सभी पदार्थ अक्षय गुणशाली होंगे तथा अनुपम सुस्वादु भी होंगे।'।।४९०।।

'मुझको यह लगा, अभी मानो साँवरी कह रही हो;' प्रियतम!
'दिखलाकर अहो! लाड़िली को, 'वरदान मुझे देना।' प्रियतम!
'इसके प्रति पल-पल भाव, सदा अनुराग बढ़े मेरा,' प्रियतम!
'बस, मैं भी 'एवमस्तु' कहकर देता हूँ यही इसे।' प्रियतम।।४९१।।

'महाराज ! महारानी ! सुनो, अभी मुझे ऐसी प्रतीति हुई कि अपनी बड़ी बहन लाड़िलीको दिखाकर साँवरी कह रही है – 'मुनिराज ! मुझे तो यह वरदान देना..........इसके प्रति मेरा भाव, अनुराग सदा बढ़ता ही रहे।' उसी स्वरमें महर्षि दुर्वासा गद्गद कण्ठसे इतना-सा और बोल गये – 'अतएव मैं भी तुम्हारी इस छोटी पुत्रीको 'एवमस्तु' कहकर वही दे रहा हूँ। इसकी इच्छित वस्तु ही इसे प्राप्त हो ।'।।४९१।।

"जा रहा किंतु हूँ अब मैं तो, हे राजा! हे रानी!" प्रियतम!
"वे करुणामयी ललित अम्बा मुझको ले जाँय वहीं," प्रियतम!
"होगा जो भाग पुनः मेरा, आऊँगा इस गृह में," प्रियतम!
"देखूँगा आँखें भर-भरकर इन दोनों शिशुओं को।" प्रियतम।।४९२।।

...........'राजन् हे ! रानी हे ! मैं तो अब जा रहा हूँ। वे करुणामयी ललिताम्बा जहाँ मुझको ले जायँ, वहीं. ....। यदि मेरा पुनः सौभाग्य उदय होगा तो मैं इस गृहमें आ सकूँगा, और ....तुम्हारे इन दोनों शिशुओंको आँखें भरकर निहार सकूँगा।'।।४९२।।

रुक गयी गिरा ऋषि की, रोने लग गये सिसक कर वे, प्रियतम!
रोने रानी लग गयीं, अहो! रो उठे विकल राजा, प्रियतम!
वह भाव-उदधि उनके दृग से उमड़ा जो, अबतक है, प्रियतम!
दे रहा प्राण वत्सलता से सम्पुटित ईशता को, प्रियतम॥४९३॥

ऋषिराजकी गिरा अवरुद्ध हो गयी; वे सिसक-सिसककर रोने लग गये; रानी भी रोने लग गयीं; अहो ! विकल होकर महाराज भी रोने लगे। जो भाव-समुद्र उनकी आँखोंसे उमड़ चला, वह अबतक वर्तमान है, और वत्सलतासे सम्पुटित ईशताको प्राणान्वित कर रहा है भला !।।४९३।।

साँवरी और लाड़िली अहा! मुनिवर से लिपट गयीं, प्रियतम!
'बाबा! बाबा! तुम फिर आना;' कहकर, भरकर आँखें, प्रियतम!
मुक्ताएँ फिर झर-झर साँवर-गोरे गालों पर जो, प्रियतम!
फैलीं, उनको रो-रोकर मुनि लग गये चयन करने, प्रियतम॥४९४॥

इस ओर साँवरी और लाड़िली-दोनों बहनें मुनिवरके श्रीअङ्गोंसे लिपट गयीं-'बाबा ! बाबा ! तुम फिर आना, फिरसे आना।' ....दोनों पुत्रियाँ बार-बार मुनिवरके कटिदेशको वेष्टित कर रही थीं। उनकी आँखोंसे जो मुक्तायें झर-झरकर श्यामवर्ण और गौरवर्ण कपोलोंपर बिखर रही थीं, उन्हें रो-रोकर मुनिराज चयन करने लग गये।।४९४।।

जो क्रियाशील होती न कहीं रानी-नृप-मुनिवर में, प्रियतम!
उस समय अचिन्त्य शक्ति कोई शासित करने वाली, प्रियतम!
आसन्न-अनागत-गत समस्त इस दृश्य तमाशे को, प्रियतम!
हो जाती अहो! दशा दसवीं उनकी व्याकुलतासे, प्रियतम॥४९५॥

.... कदाचित् रानी, राजा एवं मुनिराजपर शासन करने वाली कोई अचिन्त्य महाशक्ति यदि वहाँ क्रियाशील न हो जाती तो आसन्न, अनागत एवं भूतके इस सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्चकी विकलतावश दशमी-दशा हो जाती भला ! ......।।४९५।।

जिज्ञासा

छन्द सं.४९५में उल्लेख है कि यदि अचिन्त्य महाशक्ति क्रियाशील नहीं होती तो श्रीबृषभानुजी, श्रीकीर्त्तिदा महारानी एवं मुनिवरके रोनेसे आसन्न, अनागत एवं गत - समस्त दृश्य तमाशेकी दशा दसमी हो जाती। यह दसवीं दशा क्या होती है एवं इनके रुदन मात्रसे सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्चकी दसवीं दशा हो जाना कैसे संभव होता – इसपर कृपया प्रकाश डालें ।

समाधान

यहाँ जो दसवीं दशाका उल्लेख है, यह प्राणोंकी ही दसवीं भूमिका है। योगशास्त्रमें प्राणोंकी दस भूमिकाओंका वर्णन आता है। दसवीं भूमिकामें मनुष्य सर्वमायाबन्धनोंसे विनिर्मुक्त असमोर्ध्व त्रिगुणातीत मुक्त अवस्थामें पहुँच जाता है। प्राणोंकी नौ दशाएँ प्राकृत हैं और दसवीं भूमि अप्राकृत है। नौवीं दशातक जीव चाहे सिद्ध भूमिमें भले ही रहे, किन्तु वह पुनर्भव दंशामें ही रहता है। एकमात्र दसवीं दशा ही ऐसी है, जहाँ जीव सर्वलोकोंका अतिक्रमण करता हुआ प्रकृतिसे पूर्ण अतीतावस्थाको उपलब्ध हो जाता है।

प्राणोंकी प्रथम दशामें तो सारे जीव सामान्यतः रहते ही हैं। इस अवस्थामें श्वास-प्रश्वासका विषम आयाममें आवागमन होता रहता है, और इससे मनकी अशान्त, क्षुब्ध, पूर्ण चञ्चल अवस्था ही बनी रहती है। इस अवस्थामें मन यदि किञ्चित् कालके लिये कभी स्थिर होता भी है तो वह घोर अज्ञानमयी तमोगुणी मूढ अवस्थामें ही स्थिर होता है। सर्व प्रकारसे पूर्ण व्यामूढ़ हुआ जीव इसी दशामें निद्रित हो जाता है। इस अवस्थामें विशुद्ध सत्वके प्रकाशका तो उसे अनुभव ही नहीं होता। रजोगुणप्रधान सत्व एवं तमोगुणप्रधान रज ही इस कालमें जीवकी नियति होती है। इसीलिये इस दशाको प्राप्त जीवको कभी विशुद्ध स्वरूपानन्दके दर्शन नहीं होते। वह विषयानन्दको ही श्रेय एवं प्रेय समझता है, और क्षणभङ्गुर भोगोंकी लालसामें धुंधकारीकी तरह दिनरात बवंडर बना भटकता रहता है।

प्रभुकृमा किंवा सत्सङ्गके फलस्वरूप जब जीव साधनोन्मुखी होता है तो वह अपने श्वास-प्रश्वासरूप प्राणोंकी क्रियाको प्रभुके ध्यानमें समर्पित करता है। परमात्माके सगुण साकार अथवा निर्गुण निराकार– किसी भी स्वरूपके जप, ध्यान, मनन, चिन्तन एवं निदिध्यासनके फलस्वरूप उसके प्राणोंकी भूमिका ऊर्ध्वमुखी होती है और अधोमुखी तमस् प्रधान धरातलसे ऊपर उठकर जीव विशुद्धचक्रमें अपने प्राणोंको निविष्ट कर देता है।

विशुद्ध शब्दका अर्थ ही है कि तमस्प्रधान रजोगुणसे उसके प्राण सतोमुखी हो उठते हैं। जैसे ही विशुद्धचक्रमें उसके प्राण प्रवेश करते हैं, वैसे ही उसका चित्त मलिन देहेन्द्रिय-भोगोंसे उपरत हो जाता है, उसकी प्रवृत्ति एवं गति तमस्से सज्ज्योतिकी ओर, मृत्युमय देहाध्याससे अमृतमय स्वरूपाध्यासकी ओर, असत् संसारसे सत्स्वरूप परमात्माकी ओर हो जाती है। देहेन्द्रियोंके भोगोंसे वह उपरत हो जाता है, और उसमें जन्म-मरण, रोग-शोक, जरा-व्याधिरूप संसारसे मुक्त होनेकी इच्छा – मुमुक्षा जाग उठती है। उसके समग्र प्रयास एवं कर्म इसके पश्चात् संसारके बन्धनसे मुक्तिकी ओर ही होते हैं।

भगवत्कृपा एवं साधनासे जब जीवके प्राण इससे भी और ऊर्ध्व जाते हैं तो वह अनाहत चक्रमें अपने प्राणोंको प्रविष्ट कर देता है। इस चक्रमें जिसके भी प्राण प्रवेश कर जाते हैं, उसे फिर माया – अविद्याशक्ति आहत नहीं कर सकती। अविद्याके बन्धन इस साधकके लिये सदा-सदाके लिये टूट जाते हैं। जहाँ प्राणोंको अविद्या, माया आहत नहीं कर सके, उस चक्रका नाम ही अनाहतचक्र है।

इसके पश्चात् गुरु एवं भगवान्की कृपा जब जीवकी प्राणशक्तिको और ऊर्ध्व करती है तो जीव अपने प्राणोंको मणिपूरचक्रमें प्रविष्ट कर पाता है। यहाँ जीव विगत-तमस् हो जाता है। वह ज्योतिर्मान् हो उठता है। यह सत्व प्रकाश की भूमि है। तेजस्-प्रधान होनेसे इस चक्रमें प्रविष्ट प्राणोंको उच्च भूमिमें स्थित देवजगत्से तथा अनेक महातेजस्वी सिद्ध मुनियोंसे सत्सङ्गलाभ होता है।

इसके पश्चात् जीवके प्राणोंकी जब और ऊर्ध्व अवस्था होती है तो उसमें निर्विकल्प अवस्थाको प्राप्त करनेकी स्पृहा उत्पन्न होती है, और साधनामें प्रवृत्त होकर वह अपनी निर्लेप, निर्मल, नित्य, निर्विकल्प स्वरूपावस्थाको प्राप्त कर लेता है। यह अपने अधिष्ठानमें रमणकी स्थिति है, इसे स्वाधिष्ठानचक्रमें पहुँचना कहा जाता है। विषयासक्ति और भोगवासनामें फँसे हुए, मायामोहके पदाघातसे जर्जरित, स्पन्दनहीन जगत्के प्राणी इस अधिष्ठानचक्रमें कैसा विलक्षण जीवन्मुक्त आनन्दवैभव है – इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

जब प्राणोंकी गति इससे भी ऊर्ध्व होती है, तब जीवकी प्राणशक्ति मूलाधारचक्रमें प्रवेश करती है। मूलाधारचक्रमें ब्रह्मशक्ति भगवती योगमायासे जीवकी एकात्मता हो जाती है। ये भगवती महादेवी सबके हृदयोंमें व्याप्त अन्तर्यामी हैं, ये सर्वातीता हैं, साथ ही सर्वगुणमयी, लीलामयी, अखिल रसमयी हैं। ये ही महादेवी चिति, ह्लादिनी एवं सन्धिनी तीनोंकी युगपत् एकीभूत मूर्त्ति हैं। इनके ही सङ्केतसे सब भगवदवतार होते हैं। ये ही वाराही एवं नारसिंही शक्तिस्वरूपा हैं। ये ही वैष्णवी, रौद्री एवं ब्राह्मीशक्ति हैं। ये सबकी प्रतिष्ठा हैं, इसीलिये ये मूलाधारनिवासिनी हैं। ये जगन्माता जिन्हें

कुण्डलिनी महाशक्ति भी कहा जाता है, सर्व सौन्दर्य, माधुर्य एवं आह्लादकी मूल स्रोतस्विनी हैं । ये मुनिमनमोहिनी हैं, आत्मारामगणाकर्षिणी हैं। ये कामेश्वरी हैं, ये प्रेमपरवश, जन-वत्सल, सबकी सुहृद्, निराविल स्नेहदायिनी जगन्माता हैं।

मूलाधारचक्रमें जीव इनसे एकात्मताका लाभकर ईश्वरीय शक्तियोंका स्वामी शिवस्वरूप हो जाता है। यहाँ जीव जीवसंज्ञक रहता ही नहीं, शिवरूप होकर महाशक्तिके हाथका यंत्र हो जाता है। फिर वह और ऊर्ध्व होकर सातवें चक्र सुषुम्नामें पहुँचता है। सुषुम्नाचक्रतककी यात्रामें इस शक्तिको जीवकी अवरोहात्मक इक्कीस ग्रन्थियोंका भेदन करना होता है। तब शिवस्वरूपताको प्राप्त जीवमें सम्पूर्ण ईश्वरीय वैभवका प्रकाश होना संभव होता है। इस सभी क्रियामें जीवका अपना कुछ भी पुरुषार्थ आवश्यक नहीं है। मूलाधारचक्रमें स्थित शक्तिसे एकात्मतातक ही जीवका अपना पुरुषार्थ क्रियाशील रहता है। यह शक्ति वस्तुतः गुरुरूपा ही है। गुरु-शरणागतिके पश्चात् सब क्रियाएँ गुरु द्वारा ही होती हैं। गुरुतक पहुँचना एवं गुरु-वरण कर लेना ही जीवका अन्तिम पुरुषार्थ है।

इसके पश्चात् जीवकी गति इस ब्राह्मीशक्तिकी कृपासे हानोपादानरहित, अप्राकृत हो जाती है। आज्ञाचक्रमें प्रवेश करते ही जीव जन्म-मृत्यु आदि सब दोषोंसे रहित, सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है। आज्ञाचक्रमें प्रविष्ट होनेतककी अवस्थामें भी जीवका नियंत्रण महाशक्तिके हाथोंमें ही रहता है। उसमें पूर्ण·स्वातंत्र्यका प्रकाश नहीं होता है। महाशक्ति अब जीवके प्राणोंको सहस्रारचक्रमें प्रविष्ट कराती है। इस चक्रमें ज्ञान एवं आनन्दकी असंख्य, अनगिनत धाराओंमें जीव चक्राकार घूमता रहता है। यहाँ भी उसकी सविकल्प समाधि होती है। क्योंकि अभीतक विकल्प भगवती महाशक्तिके हाथोंमें ही रहता है। शास्त्रोंमें यहाँतक जीवकी नवमी दशा कही गयी है। दसवीं दशामें ही जीव पूर्ण स्वातंत्र्यलाभ कर पाता है। यहाँ वह शक्तिके नियंत्रणमें नहीं रहता, सर्वशक्तिनियन्ता हो जाता है।

छन्द सं. ४९५ में आसन्न, अनागत एवं गत अर्थात् वर्त्तमान, भविष्य एवं भूतके समस्त दृश्य तमाशेकी श्रीबृषभानुजी, श्रीकीर्त्तिदा महारानी एवं मुनिवर दुर्वासाके रोनेसे दसवीं दशा हो जाती, यह तथ्य उजागर किया गया है।

अवश्य यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि जीवोंके द्वारा बिना किसी प्रकारकी साधना किये ही सम्पूर्ण दृश्य-तमाशेकी इन तीनोंके रोदन मात्रसे ऐसी दुर्लभ दसवीं दशा कैसे संभव हो जाती ?

इसकां उत्तर यही है कि श्रीबृषभानुजी, महारानी कीर्त्तिदा एवं मुनिवर दुर्वासाका रोदन किन्हीं दो साधारण राजा-रानियोंका अथवा किसी वृद्ध ऋषिका बिछोहके कारण होनेवाला सांसारिक रुदनभर नहीं है। कीर्त्तिदा रानी एवं श्रीबृषभानुजी जननी-जनक हैं श्रीराधाके, जो मूर्त्तिमान् अधिरूढ महाभावरूपा, मधुररतिकी सजीव प्रतिमा, परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति हैं, तथा राधानुजा श्रीमञ्जुश्यामाके, जो स्वयं कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुंसमर्थ भगवान् श्रीकृष्णकी ही छाया-स्वरूपा हैं। यहाँ छाया एवं छायावांन् दो नहीं हैं; मात्र लीलाके लिये ही दो बने हैं। दुर्वासा ऋषि भी साधारण ऋषि.नहीं हैं, ये भी भगवती शक्तिकी प्रेरणासे आये हुए भगवतीकें महासिद्ध बारह आचार्योंमेंसे एक हैं। अतः इन तीनोंके इस उन्मादी विरह-रस-प्रवाहसे सबकुछ होना संभव है।

यह तो शास्त्रोंमें उल्लेख है ही कि द्रौपदीकी हँडियामें चिपके हुए शाकके अंशमात्रको खाकर तृप्तिका सङ्कल्प करके डकार लेने मात्रसे भगवान् श्रीकृष्णने दस हजार शिष्यों सहित महर्षि दुर्वासाकी क्षुधा निवृत्त कर दी थी। शास्त्रोंमें ऐसा भी उल्लेख है कि ब्रह्मनिष्ठ रैक्वको भोजन कराने मात्रसे सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्डके जीव-समुदाय भोजन करके तृप्त हो गये थे। सर्वात्मभावमें प्रतिष्ठित मुनि शुकदेवसे पूछें गये प्रश्नोंका उत्तर वेदव्यासजीको वृक्षों द्वारा दिया गया था। अतः सर्वात्मनिष्ठ इन तीनोंके द्वारा अधिरूढ महाभावमें स्थित होकर रसका जो रोदन-प्रवाह उसकालमें प्रवाहित हुआ था, उसकी भावोर्मियोंसे यदि ब्रजक्षेत्रका सम्पूर्ण प्रपञ्च डूब जाता – इसमें कुछ भी असंभव नहीं मानना चाहिये।

यहाँ पुनः प्रश्न होता है कि फिर अचिन्त्य महाशक्ति विश्वप्रपञ्चकी इस महामङ्गलमयी परिणतिमें अवरोधक क्यों बनी ? उसे तो सहायक ही होना चाहिये था।

इसका उत्तर भी यही है कि अचिन्त्य लीलामहाशक्तिको राधा-महाभावकी समग्र लीलाको विश्व-प्रपञ्चके सम्मुख रखकर उसे महामङ्गलसिन्धुमें रसावगाहनका परम सौभाग्य देना है। अभीसे ही वह यदि ब्रजजगत्को तुरीय भूमिमें प्रविष्ट करादे तो रसका आस्वादन ही नहीं हो पावेगा। जबतक फल परिपक्व नहीं हो, उसे तोड़ना एवं खाना क्या उचित कहा जायगा ? फलके परिपक्व होनेपर ही उसके आस्वादनसे स्वादकी प्राप्ति होती है। इसी अभिसन्धिसे कि पूरी लीला रङ्गमञ्चमें अभिनीत हो जाय, लीलामहाशक्ति उस समय लीलामञ्चको तुरीय भूमिमें प्रवेश करानेमें अवरोधक हो गयी थी।

जो हो, प्रवाह यह भावोंका हो गया नियन्त्रित-सा, प्रियतम !
ऋषिपदमें गिर कर पुनः-पुनः लालियोंको साथ लिये, प्रियतम !
उत्तर के निर्झर तक उनको पहुँचाकर, अनुमति पा, प्रियतम !
रानी-नृप लौटे, पागल-से मुनि समा गये वनमें, प्रियतम।।४९६।।

जो हो, अचानक भावोंका यह प्रवाह नियन्त्रित-सा हो गया। बार-बार महर्षिके पादपद्मोंमें गिरकर राजा एवं रानी उन्हें बृषभानुपुरके उत्तरके निर्झरतक पहुँचाने आये। उनकी अनुमति पाकर महाराज एवं महारानी तो लौट आये, किन्तु महर्षि दुर्वासाकी दशा तो निराली हो गयी थी। वे सर्वथा विक्षिप्त-से हुए आगेके वनस्थलमें प्रविष्ट हो गये। कहाँ गये, कौन बताये ?।।४९६।।

इसके पश्चात् वर्ष पूरा होकर फिर से आयी, प्रियतम।
तिथि वही शरद् की संध्या थी नवरात्र-अष्टमी की, प्रियतम!
महिषी-अवनीश चले गृहसे ज्यों, वटु इतने में ही, प्रियतम !
आया आदेश लिये कुलके गुरुदेव महाऋषि का, प्रियतम ।।४९७।।

इसके पश्चात् एक वर्ष पूरा हो गया। पुनः शारदीय महाष्टमीकी संध्या आ गयी। महारानी एवं महाराज घरसे ज्यों ही निकले कि वह चिर-परिचित वटु उनके समक्ष आ गया। कुलगुरुदेव महर्षि भागुरीका एक आदेश लेकर वह आया था।। ४९७।।

आने की आवश्यकता अब तुम दोनों के न रही, प्रियतम !
सहचरी-वर्ग के सहित युगल दुहिता के द्वारा ही, प्रियतम !
नवनीत-दुग्ध-दधि-घृत जितना वे बिना परिश्रम के, प्रियतम !
ले सकें, भेज देना कल तुम दो घड़ी दिवस चढ़ते, प्रियतम।।४९८।।

'गुरुवर्यने कहा है', वह बोल उठा – 'अब तुम दोनोंको आनेकी आवश्यकता नहीं रही। सहचरियोंके सहित अपनी दोनों दुहिताओंके द्वारा ही नवनीत, दुग्ध, दधि, घृत- वे बिना परिश्रम जितना उठा सकें, उन सामग्रियोंको ही भेज देना। हाँ, दो घड़ी दिवस चढ़नेके पूर्व ही यह सामग्री आश्रमपर पहुँच जाय।'।।४९८।।

अतएव सदाकी भाँति वहाँ दोनों वे नहीं गये, प्रियतम।
होते ही सुप्रभात, भरकर उन सभी वस्तुओं को, प्रियतम!
सोने के लघु-लघु कलशों में रानी ने भेज दिया, प्रियतम!
रखकर सिर पर कन्याओं के शत-शत सहचरियों के, प्रियतम।।४९९।।

अतएव सदाकी भाँति इसबार नृप-दम्पति गुरुवरके पास नहीं गये। सुप्रभात होते ही उनकी आज्ञाके अनुसार सभी वस्तुओंको एकत्रित करके, स्वर्णनिर्मित छोटे-छोटे कलसोंमें भरकर, रानीने अपनी कन्याओंके एवं उनकी शत-शत सहचरियोंके सिरपर रख दिया। .... अश्रुपूरित नेत्रोंसे ही सबको जानेकी अनुमति वे दे सकीं।।।४९९।।

वे चलीं राजपथ से पहले, फिर तो अरण्यपथ ही, प्रियतम !
सुन्दर उनको प्रतिभात हुआ टेढ़ी पगडंडी का, प्रियतम !
दोनों ही ओर लताएँ थीं फूलों से लदी हुई, प्रियतम !
अत्यधिक फलों का भार लिये हो रहे नमित तरु थे, प्रियतम ॥ ५००॥

सब-की-सब पहले तो राजपथसे चलीं, किन्तु फिर उन्हें अरण्यपथ ही सुन्दर एवं आकर्षक प्रतीत हुआ। वह पथ टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडीसे विभूषित था। दोनों ओर फूलोंसे लदी लताएँ लहरा रही थीं। तरुश्रेणी अत्यधिक फलोंका भार लिये नमित हो रही थीं।।५००।।

गा रहे विहंगम थे अगणित रागिणी सरस ऐसी, प्रियतम !
गन्धर्व- रमणियाँ भी जिसकी छू सकीं न छाँह कभी, प्रियतम !
सौ- दो सौ पद के अन्तर से निर्मित पावस- जल से, प्रियतम !
छोटे हृद शतशः थे, जिनमें प्रस्फुटित कंज अब थे, प्रियतम ॥ ५०१॥

अगणित विहङ्गम ऐसी सरस रागिणीका सृजन कर रहे थे, जिनकी छायातक गन्धर्व-रमणियाँ भी छू नहीं सकती। सौ-दो सौ पगके अन्तरसे पावस-जलके द्वारा शतशः छोटे-छोटे हृद निर्मित हो गये थे। उनमें राशि-राशि कञ्ज प्रस्फुटित हो रहे थे। ।५०१।।

उड़कर गुन-गुन करता समूह भौंरों का आता था, प्रियतम !
थी सत्य रसीली मति उसकी अपहृत हो रही वहाँ, प्रियतम !
लाड़िली आदि सबके तन से निःसृत उस सौरभ को, प्रियतम !
पाकर उनके मुखको अभिनव अरविन्द समझ करके, प्रियतम ॥ ५०२॥

गुन-गुन करता हुआ भ्रमरोंका समूह उड़-उड़कर आता था। उनकी सचमुच रसीली मति वहाँ अपहृत हो रही थी। लाडिली एवं सहचरियोंके तनसे अद्भुत सौरभ निस्सरित जो हो रहा था। उन सबके मुखकी शोभा अभिनव प्रस्फुटित अरविन्दके सदृश हो रही थी, मानों भ्रमर ऐसा ही अनुभव कर रहे थे। अस्तु,।।५०२।।

वे इसी मधुर पथसे पहुँचीं आश्रमपर गुरुवर के, प्रियतम !
अर्चा उन सब कुमारियों की ऋषि परम सिद्ध ने की, प्रियतम !
भावों की भेंट समर्पित कर फिर पट रङ्गस्थल का, प्रियतम !
परिवर्तन कर, तन्मय होकर, उनको कर दिया विदा, प्रियतम ॥ ५०३॥

वे इसी सुन्दर पथसे गुरुवरके आश्रमपर जा पहुँचीं। गुरुवर-उन परम सिद्ध महर्षिने उन सब कुमारियोंकी अर्चना की; भावोंकी भेंट समर्पित कर तथा फिर रङ्गस्थलका पट-परिवर्तन करके, उसीमें तन्मय होकर उन्होने सबको विदा कर दिया।।५०३।।

उत्तर की पगडंडी से वे लौटीं, रवि कुण्ड मिला, प्रियतम !
श्यामा हठ कर बैठी, इसमें मैं आज नहाऊँगी, प्रियतम !

थी सदा साँवरी की रुचि जो, थी वही लाड़िली की, प्रियतम!
प्यारी सहचरी सयानी ने दी राय किंतु ऐसी, प्रियतम ॥५०४॥

वे सभी उत्तरकी ओर जानेवाली पगडंडीसे लौटीं। पथमें ही अंशुमालीका वह कुण्ड मिला। उसको देखकर श्यामा हठ कर बैठी कि मैं तो आज इसीमें नहाऊँगी। सदाका नियम था, साँवरीकी जो रुचि होती, बड़ी लाडिलीकी रुचि भी उसीमें मिल जाती। किन्तु बड़ी सहचरी ललिताने यह राय दी – ।।५०४।।

'री! क्यों न चलें फिर तो, अब वह अत्यन्त सन्निकट है, प्रियतम!
"सुन्दरी सरोवर पर ही, जो रमणीय अप्रतिम है, प्रियतम!
पीने भर पानी के बदले निर्झर पीयूष मिले, प्रियतम!
दक्षिण कर गहि लाड़िली का धरकर साँवरी चली, प्रियतम ॥५०५॥

'अरी ! फिर तो हम लोग क्यों नहीं अब सुन्दरी सरोवरपर ही चलें। वह अब अत्यन्त सन्निकट है भला ! अप्रतिम रमणीय भी है वह ।' अहा ! कोई पीने भरको पानी माँगे और उसके बदले उसे पीयूषका निर्झर मिल जाय ! इसी भाँति अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी बड़ी बहन लाडिलीका दक्षिण कर पकड़कर साँवरी तो अविलम्ब चल ही पड़ी उत्तरकी ओर ।। ५०५।।

पञ्चम शतक समाप्त

❑

जीवके मनमें स्वाभाविक ही प्रेमका स्रोत है, परन्तु विषयोंके प्रति वृत्तियोंके अनवरत प्रवाहित होनेसे उसके प्रेमकी धारा दूषित हो गयी है, इसीसे विशुद्ध प्रेम दुःख उत्पन्न करनेवाले कामके रूपमें परिणत हो गया है।

* * * * *

अहा! कब हमारा ऐसा सौभाग्य होगा कि हमें भगवान् प्राणों–के–प्राणकी तरह प्यारे लगने लगेंगे। वे हमारे जीव–के–जीव, सुख–के–सुख होंगे। भगवान्‌के बिना हम भोजन खा रहे हैं, उसका स्वाद–सुख ले रहे हैं, हम जल पी रहे हैं, हमें श्वास लेना सुखदायी लग रहा है, हम घर–द्वार, सुख–सम्पत्ति, मान–सम्मान, स्त्री–पुत्रके सभी भोग भोग रहे हैं, निश्चय ही हमारे ऊपर विधाता अनुग्रहशील नहीं है। अन्यथा हमें भगवान्‌के विरहमें कुछ भी प्रिय लगना नहीं चाहिये था। जबतक हमारे हृदयमें भगवानके चरण–कमल विराजित नहीं हों, हमें इतर धरम–करम, सुख–आनंद अग्निके समान जलानेवाला लगना चाहिए था। श्रीवसिष्ठजी महाराज कहते हैं कि यदि ऊँची–से–ऊँची योग–समाधि भी भगवान्‌के प्रेमसे छलकती रसमयी नहीं है, तो वह समाधि योग नहीं, कुयोग ही है। योगको योग तभी कहना चाहिये जब वह भगवान्‌के परम शंतम चरणोंसे हमें संयुक्त कर दे। यदि भगवान्‌के दर्शन–मिलनसे हीन कोई ज्ञानोपलब्धि है, तो निश्चय ही वह घोर अज्ञान ही है।

– पूज्य राधाबाबाके अमृतमय वचन

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

षष्ठम शतक

श्रीकृष्णका पूर्वराग

ऋतु शरद् विराजित थी वनमें, शुक्ला नौमी तिथि थी, प्रियतम!
प्रातः-वेला थी बीत चुकी, संगव था हुआ अभी, प्रियतम!
सुन्दर अनेक शिशुओं को ले, जो समवयस्क सब थे, प्रियतम!
जा मस्त रहा था एक वहाँ बालक धीरे-धीरे, प्रियतम।५०६।

उस समयकी यह घटना है, जब व्रजमें शरद् ऋतु विराजित थी। आज शुक्ला नवमी तिथिका दिन था। प्रातःकी वेला समाप्त हो गयी थी और अभी-अभी सङ्गवकाल आरम्भ हुआ था। उसी समय अनेक सुन्दर शिशुओंको लेकर – जो प्रायः सब-के-सब समवयस्क थे – एक बालक मन्द-मन्थरगतिसे चलता हुआ, अपनी मस्तीमें डूबा धीरे-धीरे जा रहा था।।५०६।।

साँवर था आगे-पीछे थीं उसके चलती गायें, प्रियतम!
रुकता रह-रहकर था किंचित, फिर फूँक वेणु देता, प्रियतम!
ऐसी लहरी निःसृत होती, जो पूरित हो जाती, प्रियतम!
नभमें, समीर, रविमें, जलमें, थलमें, मनमें सबके, प्रियतम ।।५०७।।

यह ब्रजेन्द्रनन्दन नीलसुन्दर ही थे, जो गो-चारणके लिये वनस्थलकी ओर अग्रसर हो रहे थे। उनके आगे-पीछे शत-सहस्र गायें चल रही थीं। वे रह-रहकर अत्यन्त अल्प-कालके लिये रुक जाते और फिर अपनी वेणुमें स्वर भरने लगते। उस समय वेणुसे ऐसी स्वर-लहरी निःसृत होती, जो देखते-देखते त्रिभुवनमें पूरित हो जाती। सम्पूर्ण आकाशमें, समीरके कण-कणमें, दिवाकरकी किरणोंमें, सम्पूर्ण जलमें, स्थलमें, और सबके मनमें एकमात्र वेणुका स्वर ही बच रहता।।५०७।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

शरद् ऋतुके प्रभातने अरुणोदयके रागसे ब्रजक्षेत्रको रञ्जित कर दिया है। शारदीय पद्मोंसे लघु एवं छिछले सरोवर – सभी परिपूर्ण हो गये हैं। एक अद्भुत आलोकमाला वनमें सर्वत्र फैली है। रविकिरणोंका संस्पर्श पाकर सौन्दर्य, सौरभ एवं आनन्दसे सम्पूर्ण ब्रजभूमि मानो विह्वल हो रही है। जब रवि पश्चिममें अस्ताचलके समीप होता है तो वहाँ स्वर्णपुत्तलिकाकी तरह खड़ा-खड़ा गो-गोवत्सोंके मध्य श्रीकृष्णचन्द्रको निहारता ही रह जाता है। सन्ध्या बारबार उसे उस दर्शन-समाधिसे विरत करती है, तब कहीं जाकर वह अस्ताचलमें स्थित अपने अन्तर्गृहमें प्रवेश कर पाता है। उसे रात्रिमें स्वप्न भी श्रीकृष्णचन्द्रकी वन-चारणलीलाओंके ही आते हैं। प्रभात होनेपर जैसे ही रवि ब्रजप्रदेशकी ओर झाँकता हैं, उसे नन्दगृह, कालिन्दीतट, पनघट, गोष्ठ, वन, उपवन, वीथी, अलिन्द, मन्दिर – सर्वत्र गोप-गोपियोंकी चर्चाका एक ही विषय श्रवणगोचर होता है – 'श्रीकृष्णचन्द्रका रुचिर कौमार-चापल्य!

रवि देखता है – दधि-मन्थनके घर्घर शब्दसे समस्त ब्रजक्षेत्र मुखरित है। इस घर्घरध्वनिसे ही श्रीकृष्णचन्द्रकी निद्रा भङ्ग होती है। निद्रा टूटते ही नेत्र मलते हुए वे सीधे ब्रजरानीके पार्श्वमें पहुँचते हैं। अहा! उनका मन्द-मन्द

पादनिक्षेप, अलसाये सारे अङ्ग, मुखपर प्रसरित काजलकी काली-काली रेखाएँ– रवि नन्दनन्दनकी यह अनुपम शोभा देखकर आनन्दमें जड़वत् हो जाता है। उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। अहा ! नन्दनन्दनके श्रीअङ्गोंकी श्यामज्योतिके सम्मुख फीका हुआ रवि लज्जासे अपना मुख छिपानेको आतुर हो उठता है। रविके दुर्धर्ष प्रकाशके सम्मुख सभी अन्य ज्योतियाँ मन्द ही नहीं, लुप्त हो जाती हैं, किन्तु यह चिन्मयी रसमय श्यामज्योति रविकी ज्योतिको भी तुच्छ कर देती है। नीलमणिके मुखमण्डलकी ज्योति रविको निर्वापित – निस्तेज कर देती है। रविके नेत्रोंमें भी श्याम रङ्ग समा जाता है। रवि देखता है – 'नन्दभवनका पद्मरागमणिसे निर्मित द्वार भी श्याम हो गया है, देहली श्याम है; प्राङ्गण श्याम बन गया है, गवाक्ष श्याम हो गये हैं, स्तम्भ भी श्याम हो गये हैं। रविके देखते-देखते उसके स्वयंके अङ्ग श्याम हो जाते हैं। अहा ! रवि श्याम-प्रेम – श्याम-प्रीतिसे भर जाता है। ऐसे श्यामवर्णवाले रविके हृदयमें श्यामसुन्दर निलीन हो जाते हैं।

रविका बाह्यज्ञान लुप्त हो जाता है। कुछ काल पश्चात् उसे होश आनेपर रुनझुन-रुनझुनकी अत्यन्त मन्दध्वनि सुनाई पड़ती है। रवि अपने मुखको लताजालकी ओटमें छिपा लेता है। वहींसे वह छिपकर देखता है – 'ओह ! नीलमयङ्ककी किसलय-कोमल हथेलीपर उज्ज्वल नवनीत शोभित है।' रविके अङ्गोंमें एक विलक्षण प्रकारका कम्पोदय हो उठता है। उसके रोम-रोम ऊर्ध्व हो उठते हैं।

ओह ! हाथमें माखन धारण किये नीलमणिके अरुण अधरोंपर कैसी मधुर मुसकान छायी है ! और देखो, अब तो वह नीलमयङ्क हँसकर पुकार रहा है। उसकी मधुमय वाणीमें तो मानो कोई मोहनमंत्र ही भरा हो। वह आवाज दे रहा है – 'अरे भैया विशाल, वृषभ, देवप्रस्थ, वरूथप, मिलिन्द! आओ, आओ, शीघ्र आओ ! मैया मक्खन खिला रही है !' और फिर रवि देखता है – नन्दभवनके प्राङ्गणमें छोटे-छोटे गोपशिशुओंका समुदाय विलक्षण मधुर अट्टहास करता हुआ प्रवेश कर रहा है। यह बाल-समुदाय नीलदेवता नन्दनन्दनको घेर लेता है। रविके देखते-ही-देखते मन्द-मन्द चालसे अपने चरणोंके नूपुर ठुमकारते, रुनझुनकी मधुर किङ्किणी-ध्वनि करते नन्दनन्दनके सभी छोटे-छोटे बालसखा नन्दभवनके अन्तर्भागकी ओर चल पड़ते हैं। इन सखाओंके भीतर प्रवेश करते-करते ही दूसरा दल भी आ जाता है। दूसरे दलका नायक श्रीकृष्णका चचेरा भाई स्तोककृष्ण होता है। स्तोक वयमें श्रीकृष्णसे दो-अढ़ाई वर्ष छोटा है किन्तु इसके सभी अङ्ग-अवयव श्रीकृष्णके समान ही हैं; कहीं भी भिन्नताका लेशतक नहीं। स्तोकके समुदायमें हैं – दाम, सुदाम, किङ्किणी, अंश आदि सखागण। यह दल अधिक कोलाहल नहीं करता। इनके पीछे-पीछे कुछ ही काल पश्चात् प्रवेश करता है – नन्दनन्दनके वयस्क सखाओंका दल। इस दलका नायक होता है – सुबल। सुबलके दलमें होते हैं – अर्जुन, गन्धर्व, बसन्त, उज्ज्वल एवं कोकिल आदि । इनके पीछे ही सर्वाधिक कोलाहल करता हुआ मधुमङ्गल प्रवेश करता है। उसके दलमें होते है – पुष्पाङ्क एवं हंस आदि। ये सभी सखागण निस्संकोच नन्दभवनपर अपना पूर्ण अधिकार कर लेते हैं। नन्दरानी यशोदा एवं रोहिणी सद्योमथित नवनीतसे पूर्ण स्वर्णभाण्ड, सुमिष्टतम दधिसे भरे रजतपात्र इन सबके सम्मुख रख देती हैं। मेवा और मिष्ठान्न तो अनगिनत पात्रोंमें भरे हैं ही।

इस शोभा-दृश्यको देखते-देखते कुछ क्षण तो रविको ऐसा प्रतीत होने लगता है – मानो उसके हृदयमें एक अनन्त पारावार-रहित रससिन्धु है, उसमें नीलवर्णकी तरङ्गें उठ रही हैं, प्रत्येक तरङ्ग एक-दूसरेसे अधिक उत्तुङ्ग, एक दूसरेसे अधिक आनन्दवर्षी है। रविके नेत्र आनन्दभारसे बारबार निमीलित होते हैं, किन्तु दर्शनोत्कण्ठा उन्हें पुनः-पुनः उन्मीलित कर देती है। रवि मानो स्वप्न देख रहा हो। उसे अपने दर्शन-सुखकी सत्यतापर ही सन्देह होने लगता है।

नीलमणि नन्दतनय एवं अग्रज बलराम इन्हीं भाण्डोंसे अपने हाथोंमें दधि एवं नवनीत भर-भरकर समस्त सखागणको खिला रहे हैं। नवनीत-वितरणकी इस प्रक्रियामें नीलमयङ्कका वक्षस्थल, उसके कण्ठ एवं हृदयमें धारण किये अनमोल मणिमय आभूषण – सभी दधि एवं नवनीतसे सन गये हैं। सभी सखाओंके मुख, कपोल, चिबुक, कण्ठ एवं उदर आदि

अङ्ग भी दधि एवं नवनीतसे लिप्त हैं। ओह ! नन्दरानी और रोहिणी अपने सखाओंके प्रेमसे परवश हो-होकर उन्हें नवनीत खिलानेकी अपने पुत्रोंकी भङ्गिमाओंके लालित्यको देख-देखकर निहाल हो रही हैं, न्यौछावर हो रही हैं।

रविकी दशा तो यह है कि यदि विश्व-नियन्त्री-शक्ति उसे सँभाले नहीं होती तो निश्चय ही वह मूर्च्छित होकर नन्दभवनके आँगनमें ही गिर पड़ता।

शनैः–शनैः काल गतिशील होता है। प्रातः-बेला बीत जाती है। दिवसके प्रथम प्रहरका अवसान होने लगता है। इसीको सङ्गवकाल कहते हैं। रवि देखता है – रोहिणीजी बलरामको सजाने जा रही हैं, और यशोदा मैया नीलमणिको। सखागण तो पहले से ही सजे खड़े हैं। बलरामने देखते- ही-देखते निज जननी द्वारा प्रस्तुत शृङ्गारको धारण कर लिया है। परन्तु नीलमयङ्क इतने सहजमें वस्त्राभूषण धारण कर लें, यह कैसे संभव हो सकता है ? चञ्चलता तो नन्दतनयमें सदैव मूर्त्त ही रहती है। किन्तु वे जानते हैं कि शृङ्गार धराये बिना मैया वन जाने नहीं देगी, और उन्हें वन जानेकी अत्यधिक त्वरा है, अतः वे सजनेको मैयाके सम्मुख खड़े हो जाते हैं।

अपने असीम वात्सल्यपूरित करोंसे ब्रजरानी पुत्रके महामरकत श्यामल अङ्गोंमें उबटन लगाती हैं, उन्हें उष्ण वारिसे स्नान कराती हैं, फिर वस्त्र और आभूषण धारण कराती हैं। ओह ! अपने नीलमणिका भुवनमोहन सौन्दर्य निहारती-निहारती मैया भ्रान्त होने लग जाती हैं। कदाचित् मेरे नीलमणिको किसीकी दृष्टि लग गयी तो ? जननी अविलम्ब सुकोमल तूलिकाको काजलसे भर लेती हैं और नीलतनयके भालपर काजलकी टेढ़ी रेखा खींच देती है। फिर भी उनकी स्नेहजनित अनिष्टाशङ्का निवृत्त नहीं हो पाती। जननी अत्यन्त आकुल होकर श्रीनारायणदेवसे प्रार्थना करने लगती हैं। भगवान् नारायणदेव तो सर्वभयहारी हैं ही।

लो, एक साथ ही सभी गोपशिशु शृङ्गध्वनि करने लगे है, असंख्य गौएँ कूदती हुई आगे बढ़ रही हैं। वे अपने तीक्ष्ण खुरोंके आघातसे पृथ्वीको खोदती हुई वनपथकी रजःकणिकाओंको पीसती हुई मृण्मयी रेणुकाको पुष्प-पराग-जैसी सुकोमल बनाती हुई, कङ्कड़-पत्थर एवं कण्टकोंको चूर्ण-विचूर्ण करती हुई अपने प्राणधन नीलमणिके वन-पथको ऐसा सुकोमल बनाती जा रही हैं, जिससे उस भूमिपर नन्दतनय नीलमणि अतिशय सुखपूर्वक अपने चरण-निक्षेप कर सकें।

और अब पौगण्डवयस्क बलराम एवं नीलसुन्दर गोपालोंका वेष धरे अपने असंख्य सखाओंके साथ गोचारण करने काननके उस भूभागकी ओर जा रहे हैं जहाँ इस अनोखे नीलमणिका ही एकछत्र साम्राज्य है। वनभूमिका भी अतुल सौभाग्य है कि वह अपने प्राणपति श्रीकृष्णचन्द्रके ध्वज, वज्र, अङ्कुश आदि चिह्नोंसे समन्वित पदाङ्कोंसे पूर्वापेक्षा अत्यधिक समलंकृत हो रही है। धराके भाग्यकी सराहना करता हुआ रवि अपने किरणरूपी हाथोंसे उसके श्रीकृष्णचन्द्र-चरण-चिह्न-समन्वित अङ्गोंको संस्पर्श करता कृतकृत्यता लाभ कर रहा है।

वनके राजा पधारे हैं। कानन अपने कोशकी अपरिसीम सम्पदा उसके चरण सरोजोंमें समर्पित कर देता है। अपने समस्त चर-अचर सहित वह स्वयं ही न्यौछावर हो जाता है। रसमत्त भ्रमरोंकी मधुर गुञ्जार, मृग एवं विहङ्गमोंका अव्यक्त सुमधुर रव, स्वच्छ, शीतल, सुमिष्ट जलसे पूर्ण सरोवरोंका शीतल सान्निध्य, पद्मगन्ध-वासित मन्द समीरका सुखद स्पर्श – कानन अपना समग्र निजस्व ही अपने प्राणधनके चरणोंमें समर्पित कर देता है।

'हे प्रियतम प्राणवल्लभ ! आप सुखी होवें। मेरा सौन्दर्य तो आपके ही विश्वविमोहक लावण्यका एक अल्पतम अंशमात्र है, आपके मनको यदि सुखकर लगे तो क्षणमात्रके लिये ही सही, अपनी वस्तुसे अपना रञ्जन कर लीजिये। नाथ ! इन पक्षीगणोंकी सुमधुर काकलीसे अपनी कर्णेन्द्रियोंको तृप्त कर लीजिये। यह सुखद अनिल आपके श्रीअङ्गोंको किञ्चित्-सा सुखदान देकर धन्य हो सके; इन सरोवरोंके स्वच्छ सलिलकी मधुरिमा आपकी रसनाकी तृषा बुझा दे; विकसित पद्मोंकी शोभा आपके नेत्र–कोणोंको अनुरञ्जित कर दे; एवं नानाविध कुसुमोंका सुवास आपकी घ्राणेन्द्रियको

किञ्चित् तृप्ति दे सके, तो निश्चय ही मैं कृतकृत्य हो उठूँ ।' – वनके देवताकी यह पुकार ब्रजेन्द्रनन्दन द्वारा मानो स्वीकार कर ली जाती है एवं बृन्दावनेश्वर सोचने लगते हैं – बस, आज यहीं विहार हो ।

नन्दनन्दनके विहारकी असंख्य प्रक्रियाएँ हैं। इन सभीमें जो सर्वप्रमुख प्रक्रिया है – वह है वंशीवादन । किसीने आजतक नहीं जाना – ब्रजेशतनयने वंशीवादनकी शिक्षा कब एवं किससे ली। संभव है, यह कला उनकी स्वरूपमाधुरीसे ही जुड़ी कोई अविभाज्य माधुरी है। किन्तु इतना सत्य है कि वे जब इस अमृतपूरका प्रवाह बहाने लगते हैं तो चर–अचर उसमें निमग्न हुए बिना नही रह सकते। आज यही हो रहा है –

'आगें गाय पाछें गाय, इत गाय, उत गाय,
गोविन्द कौं गायनमें बसिबौ ही भावै।।''

ब्रजेन्द्रनन्दनके आगे शत-सहस्र गायें हैं, उनके पीछे भी इतनी ही संख्यामें गायें हैं और आर्श्व-पार्श्वमें भी वे गायोंसे ही घिरे हैं । पथके दोनों ओर पीत झिण्टीके पुष्प विकसित हैं। असंख्य गोपशिशु गायोंको हियो-हियो बोलकर नियंत्रित कर रहे हैं। वन आनन्द-कोलाहलसे मुखरित है। इन सबके मध्य मस्त चाल भरते हुए ब्रजेन्द्रनन्दनने अपने बिम्बारुण अधरोंपर हरित बाँसकी बाँसुरी धारण कर ली है। किसी कविने इसका वर्णन किया है – '' **हाँकैं हटकि-हटकि गायें ठठकि-ठठकि रहीं** ''ब्रजेन्द्रनन्दन चलते-चलते, रह-रहकर अल्पकालके लिये रुक जाते हैं और तब अपनी बाँसुरीमें स्वर भरने लगते हैं। वेणुसे उस समय ऐसा मधुर स्वर निकलता है कि सुननेवाले चर-अचर सभी प्राणी उत्कण्ठाके प्रबल आवेगमें भर उठते हैं। सभी गोपाल एवं गायें अपने नीलमणिको अपलक नेत्रोंसे निहारते हुए जड़ पुत्तलिकाकी भाँति खड़े-के-खड़े रह जाते हैं। गायोंके प्राणोंकी अनुभूतिका संस्पर्श पाकर मानो पवन द्विगुणित वेगसे चलायमान हुआ वन-प्रान्तरके कोने-कोनेमें यह सूचना भर देता है कि यह तो नीलमयङ्क नन्दनन्दनकी बजायी गयी मोहन वंशीध्वनि है।

यह ध्वनि बृन्दाकाननको झंकृत करके ही नहीं रह जाती, अन्तरिक्षको भी आत्मसात् करने ऊपर उठ जाती है; केवल ऊपर ही नहीं, निम्न लोकों – अतल, वितल, सुतल, तलातल और पातालतकको प्रकम्पित कर देती है।

यह ऐसा विलक्षण नाद है कि समस्त लोक-लोकान्तरोंको मात्र नादमय बना देता है। तुम्बुरु एवं हाहा-हूहू गन्धर्व अपनी स्वर–साधनाका अतिशय गर्व करते हैं, परन्तु जो नाद किसीकी सत्ताको ही अपनेमें विलीन कर ले, ऐसे नादसे तो वे भी अबतक परिचित नहीं हुए हैं। यह नाद तो सनक-सनन्दन प्रभृति ऋषिवर्ग, स्वयं स्रष्टा, चतुरानन, वेदगर्भ ब्रह्मा, चिर-शान्त-स्वभाव बलि, योगीन्द्र अनन्तदेवतकके अस्तित्वको अपनेमें आत्मसात् कर लेता है। आकाशका अणु-अणु नादमय हो उठता है। समीरका स्पन्दन, दिवाकरकी किरणें, जलकी सरसता और स्थलका कण-कण केवल नादमें ही रूपान्तरित हो उठता है और सब शेष-शेषी नाद-ही-नाद रह जाता है।।५०७।।

हो जाता धर्म-विपर्यय था चर-अचर-समूहों में, प्रियतम !
वह नाद मात्र बच जाता था, मिटकर सबकुछ मन से, प्रियतम !
बहती इतने में अन्य लहर, जो चेत करा देती, प्रियतम !
कौतुक होता था बालक का, हँसता वह देख इसे, प्रियतम।।५०८।।

वेणु-ध्वनिका स्वाभाविक परिणाम यह होता कि सम्पूर्ण अचर-चरमें धर्मका विपर्यय हो जाता। सबके मनसे सब कुछ मिटकर एकमात्र वह वेणु-स्वर ही बच रहता, जिसकी झंकृतिमें सबका मन तन्मय हो जाता। इतनेमें ही वेणुनादका दूसरा स्वर गूँज उठता। इस बार सबकी विलुप्त हुई चेतना फिरसे लौट आती। सब अकचकसे मानो देखने लग जाते कि अभी-अभी कैसे, क्या उनको हो गया था ! सबकी दशा देखकर नीलसुन्दर हँसने लगते।

उनके लिये तो यह एक कौतुक मात्र होता। आश्चर्यपूरित आँखोंसे गोप-शिशु नीलसुन्दरकी ओर देखने लगते। सबकी आँखें मानो पूछने लगतीं– 'भैया रे नीलसुन्दर ! यह तो तुम एक अद्भुत कौतुक जानते हो रे ! क्या तुम बतला सकोगे कि ऐसी विचित्र घटना कैसे संघटित कर बैठते हो ?'।।५०८।।

जिज्ञासा

पञ्चम शतकके छन्द सं.५३० तक ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण अपने सखाओंको अपने वंशीनादका चमत्कारिक प्रभाव दिखाते हैं। कृपया इस सभी प्रसङ्गका आध्यात्मिक रहस्य खोलकर समझावें, अन्यथा यह वर्णन एक जादूगरकी कलाकी तरह आश्चर्यजनक भर प्रतीत होता है।

समाधान

ऐसी सभी शङ्काओंके मूलमें एक ही भ्रान्ति रहती है कि हम सगुण-साकार ब्रजेन्द्रनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् मानना विस्मरण कर जाते हैं। यह सदैव ध्यानमें रहे कि सारस्वतकल्पमें भगवान्का यशोदानन्दनके रूपमें जो अवतार हुआ है वह समस्त कला-वैभवोंके सहित परिपूर्ण भगवान्का अवतार है और इन परात्पर पूर्ण परब्रह्म सर्वभवनसमर्थ भगवान्की अपने निज-जन सखाओंके साथकी यह लीला है।

भगवान् श्रीकृष्णका यशोदानन्दन द्विभुज रूप इतना सुन्दर तथा मधुर है कि उनके इस गुणातीत-मायातीत नित्य रूपका वर्णन करनेकी सामर्थ्य चौदह भुवनोंमें किसीमें भी नहीं है। शास्त्रोंमें भगवान्के रूपका जो वर्णन आता है, वह तो मात्र ध्यानकी सुकरताके लिये उनके रूपका आभास मात्र है।

भगवान् श्रीकृष्णके नेत्रोंके कटाक्षसे ही मीनावतार, उनकी पगथलियोंसे कच्छपावतार, उनकी पिण्डलियोंसे वाराहावतार, उनकी मोहनतासे वामनावतार, उनकी श्यामलतासे रामावतार, उनके ध्यानसे बुद्धावतार, उनके आभूषण – बघनखासे नृसिंहावतार हुआ है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें वर्णन है कि उनमें विभुत्व एवं ऐश्वर्यके तीनों तत्व, विष्णु, महाविष्णु और महेश्वर – सभी का समावेश है।

जब भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका आयोजन होने लगता है तब अकस्मात् एक मणिरत्नखचित अपूर्व सुन्दर रथ दिखाई पड़ता है। उस रथपर शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये महाविष्णु विराजित होते हैं। वे नारायण रथसे उतरकर महेश्वर श्रीकृष्णमें विलीन हो जाते हैं – **गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे।'** इसके पश्चात् दूसरे स्वर्णरथपर आरूढ़ पृथ्वीपति विष्णु आते हैं और वे भी श्रीराधिकेश्वर श्रीकृष्णके शरीरमें विलीन हो जाते हैं। इसके पश्चात् स्वयं नारायण उनमें विलीन हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं – समस्त भूत 'क्षर' हैं और कूटस्थ 'अक्षर' है। इन दोनोंसे पृथक् अविनाशी परमात्मा पुरुषोत्तम त्रिलोकीमें व्याप्त रहकर सबका धारण-पोषण करते हैं। मैं ही वह वेदोक्त 'पुरुषोत्तम तत्व' हूँ।

सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णमें सबकुछ पूर्ण चमत्कारी ही है। इनके दिव्य विग्रहका सौन्दर्य असमोर्ध्व, चमत्कारी एवं पूर्ण है; इनका माधुर्य पूर्ण चमत्कारी है; इनका बल एवं ऐश्वर्य पूर्ण चमत्कारी है और इनका मुरली-निनाद भी पूर्णतम चमत्कारी ही है। श्रीकृष्णकी वाणीमें असीम माधुर्य है, उसको सुनते-सुनते चित्त कभी अघाता ही नहीं और यह सोच प्रारंभ हो जाता है कि 'हाय ! विधाताने लाखों-करोड़ों कान क्यों नहीं दिये ताकि यह मधुर ध्वनि सुनकर किञ्चित् तृप्ति तो होती ! मुरली-निनादके रूपमें सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें नादका भी पूर्णावतार हुआ है। श्रीकृष्णका मुरली-निनाद अप्राकृत है; उसका प्राकृत नादसे कोई संबंध नहीं। फिर भी जो प्राकृत नाद है, वह भी परम ज्योति है, वह भी स्वयं परमेश्वर हरि है। नाद अनादि है। जबसे सृष्टि है, तभीसे नाद है। महाप्रलयके बाद सृष्टिके आदिमें जब परमात्माका यह सङ्कल्प होता है – **'एकोऽहं बहुस्याम'** – "मैं एक बहुत हो जाऊँ" तभी इस शब्दात्मक सङ्कल्परूप

अनादिनादकी आदि-जाग्रति होती है। यह नादब्रह्म ही शब्दब्रह्मका बीज है। वेदोंका प्रादुर्भाव भी इसी नादसे ही होता है। नादसे ही विन्दु उत्पन्न होता है। यह विन्दु ही प्रणव है। इसीको बीज कहते हैं।

शास्त्रोंमें कहा गया है –

सच्चिदानन्द-विभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्मात् विन्दुसमुद्भवः।।
नादो विन्दुश्च बीजश्च स एव त्रिविधो मतः।
भिद्यमानात् पराद्विन्दोरुभयात्मा रवोऽभवत् ।।
स रवः श्रुतिसम्पन्नः शब्दो ब्रह्माभवत् परम्।

सच्चिदानन्दरूप वैभवयुक्त पूर्ण परमेश्वरसे उनकी स्वरूपाशक्ति भगवती आविर्भूत हुईं। उन पराम्बा महाशक्तिसे नाद प्रकट हुआ। नादसे विन्दुका प्रादुर्भाव हुआ। वही विन्दु – नाद, विन्दु तथा बीजरूपसे तीन प्रकारका माना गया है। बीजरूप विन्दु जब भेदको प्राप्त हुआ, तब उससे अव्यक्त और व्यक्त प्रकारके शब्द प्रकट होते हैं। व्यक्त शब्द ही श्रुति, वेदरूप, श्रेष्ठ शब्दब्रह्म है।

जब यह नाद पराम्बा भगवती आदिशक्तिका ही स्वरूप है, जो भगवान् श्रीकृष्णके अधरोंकी लालिमामें नित्य विराजित रहती हैं, तब अधरोंसे संलग्न वेणु द्वारा सम्पूर्ण चर-अचरका धर्म-विपर्यय हो जाय और चर-अचरका सबकुछ मिटकर मात्र नाद-ही-नाद रह जाय और फिर दूसरी बार वंशी-निनाद होनेपर सबकी विलुप्त चेतना फिरसे लौट आवे – इसमें असंभव ही क्या है ? भगवती आदिशक्ति महामाया ही तो संसाररूपमें चर-अचरकी प्रवृत्तिमें हेतु हैं, और वे ही यदि सङ्कल्प करलें तो सबकी निवृत्तिमें फिर संशय ही कहाँ रहता है।।५०८।।

'भैयाओ! एक जानता हूँ मैं मन्त्र रहस्यभरा,' प्रियतम!
'उसको पढ़कर वंशी में स्वर भर देता हूँ ऐसा,' प्रियतम!
'जो सुने, वही पागल-पगली हो जाय, और तो क्या,' प्रियतम!
'देखो इन पाँचतत्वपर भी इसका परिणाम भला!' प्रियतम।। ५०९।।

नीलसुन्दर मन्द स्मितके साथ उन शिशुओंको उत्तर देने लगते – 'भैयाओं! देखो, मैं एक अत्यन्त रहस्यपूरित मंत्र जानता हूँ। मैं पहले उसे मन-ही-मन पढ़ लेता हूँ, फिर वेणुमें स्वर भरता हूँ। स्वरका प्रभाव ऐसा होता है कि जो भी उसे सुने, वही अपनी स्वाभाविक चेतनता भूल जाता है। स्त्री हो, पुरुष हो, कोई भी हो, वह पागल एवम् पागल-सी हो जाता है। और तो क्या, तुम लोग प्रकृतिके इन पाँच तत्वोंपर भी वेणुका प्रभाव तुरंत अभी-अभी प्रत्यक्ष देख लो।'।।५०९।।

जिज्ञासा

कृपया उस रहस्यभरे मंत्रका परिचय दें, जिसका उल्लेख भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन छन्द सं. ५०९ में कर रहे हैं। इस मंत्रको पढ़कर वे वंशीमें स्वर भरते हैं और तब उसका प्रभाव ऐसा होता है कि जो सुने वही पागल अथवा पगली हो जाती है।।५०९।।

समाधान

यह मंत्र भगवती आद्या महाशक्तिका कामबीज 'क्लीं' है। भगवान् श्रीकृष्णका भी यही **'क्लीं कृष्णाय नमः'** षडक्षर मंत्र है। गोपालमंत्र जिसका शास्त्रोंमें असीम प्रभाव बताया गया है, वह मंत्र भी 'क्लीं' कामबीजसे ही प्रारंभ होता है। पूर्वतः यह उल्लेख किया जा चुका है कि सच्चिदानन्द विभु पूर्ण परमेश्वरसे जो उनकी आद्या स्वरूपाशक्ति आविर्भूत होती हैं एवं उनसे जो नाद प्रकट होता है, वह भी 'क्लीं' कामबीज मंत्र ही है।

यह 'क्लीं' नाद ही क्रमशः स्थूल रूपको प्राप्त होता हुआ समस्त जगत् रूपमें परिणत होता है। पाँच भूतोंमें सबसे पहले यह आकाशकी तन्मात्रा – 'शब्द' बनता है। शब्द 'क्लीं'का ही एक रूप है। आदिनादरूप 'क्लीं' बीजसे ही पञ्चतत्वकी उत्पत्ति मानी गयी है। 'क' ब्रह्मा 'ल' लयरूप रुद्र एवं 'ईं' मायाबीज – इन तीनोंसे ही सृष्टि एवं प्रलय संभव होते हैं। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण जो महायोगेश्वर हैं, अपने सखाओंको समझाते हुए कहते हैं कि मैं 'क्लीं' मन्त्रका सिद्ध महायोगी हूँ। पहले इसको जपता हूँ, फिर इसके प्रभावका सङ्कल्पकर तब मुरलीमें स्वर भरता हूँ और तब पञ्चभूतोंको भी प्रभावित कर देता हूँ। तुम सब इस मुरलीके चमत्कारको अपनी आँखोंके आगे प्रत्यक्ष देख लो ।।५०९।।

कहकर साँवर ने दिखलाया रत्नों के पर्वत को, प्रियतम!
फिर गूँजा क्षणभर वेणु, अहो! हीरे-पुखराज गले, प्रियतम!
पीली उज्ज्वल धारा बनकर बह चले सामने ही, प्रियतम!
गायें पीछेकी ओर कूद लग गयीं रँभाने-सी, प्रियतम ।।५१०।।

नीलसुन्दरकी उपर्युक्त उक्तिके अनन्तर उन्होंने सबोंका ध्यान रत्नोंसे निर्मित उस गोवर्धन पर्वतकी ओर आकर्षित किया। इसके पश्चात् क्षणभरके लिये वेणुका स्वर गूँज उठा। अहा ! देखो, गोवर्धनके वे राशि-राशि हीरक, पुखराज आदि रत्न गलने लग गये भला ! पीली उज्ज्वल धारा बनकर सामनेकी ओर बह चले। राशि-राशि गायें पीछेकी ओर कूद-कूदकर रँभाने-सी लग गयीं।।५१०।।

साँवर अब बायीं ओर मुड़ा, नीलम-सी लहरें थीं, प्रियतम!
सरिता में उठती, उस पर भी उसने जादू डाला, प्रियतम!
पूरी प्रवाहिणी का ही जल पलमें आवर्त बना प्रियतम!
जम गया दूसरे क्षण फिर वह होकर हिमधरती-सा, प्रियतम ।।५११।।

अब नीलसुन्दर किञ्चित् बायीं ओर मुड़ गये। कलिन्दनन्दिनीकी धारामें नीलमकी लहरें-सी उठ रही थीं। उन्होंने अब इन लहरोंपर ही वेणुनादका प्रभाव दिखलाना आरम्भ किया। देखते-देखते पूरी प्रवाहिणीका जल आवर्तके रूपमें परिणत हो गया। दूसरे ही क्षण वह मानो हिमखण्ड-सा जम गया। अब कलिन्दनन्दिनीकी धाराके स्थानपर हिमखण्डसे जमी हुई धरती परिलक्षित होने लगी!।।५११।।

उन अगणित नीर-विहंगों के तन अक्षत रहकर भी, प्रियतम!
पद यन्त्रित थे हिम के भीतर, पाँखें, बस, हिलती थीं, प्रियतम!
आवर्तस्थल था दीख रहा वापी विशाल जैसा, प्रियतम!
जलचारी मत्स्य आदि सब थे निस्पन्द पड़े जिसमें, प्रियतम।।५१२।।

आश्चर्यकी बात यह थी कि उन अगणित जल-विहङ्गमोंके गात्र तो सर्वथा अक्षत थे, किन्तु उनके पद उस हिम-पिण्डमें जन्त्रितसे हो गये। उनकी पाँखें मात्र हिलती दीखती थीं। वह आवर्तस्थल विशाल वापी जैसा दीख रहा था। जलचारी मत्स्य आदि सब-के-सब उसमें निस्पन्द पड़े थे।।५१२।।

ऊपर थे पद्मबन्धु हँसते, हँस पड़ा साँवरा भी, प्रियतम!
ध्वनि हुई वंशिकासे निस्सृत दिनमणिको लक्ष्य किये, प्रियतम!
वह शारदीय रवि-किरण राशि बन गयी सुधा शशि की, प्रियतम!
नवमीका दिवस-काल क्षण पल राकासे भासित था, प्रियतम ।।५१३।।

ऊपर दिनकर हँस रहे थे और इधर नीलसुन्दर भी स्थलपर चलते हुए हँस पड़े। इस बार वंशीका छिद्र दिनमणिको लक्ष्य करके नीलसुन्दरके होठोंकी बयारसे पूर्ण होने लगा। शारदीय दिनकरकी वह किरणराशि सुधाकरकी ज्योत्स्नामयी किरणें बन गयी। नवमी तिथिका वह दिवसकाल दस पलोंके लिये राकामयी रजनीकी भाँति प्रतिभात होने लगा।।५१३।।

गाते हुई धेनुकुल, खगकुल की, अलिकुल की, तरुकुल की, प्रियतम!
उतने क्षण रजनी कालोचित, दर्शक केवल शिशु थे, प्रियतम!
'अब करो पूर्ववत् इनको,' यों बोले वे, बस, निकला, प्रियतम!
स्वर ललित, बह चला नीर सरित, उग उठे अंशुमाली, प्रियतम।।५१४।।

धेनु-समूहोंकी, विहङ्गमकुलकी, भ्रमरों और राशि-राशि तरुश्रेणीकी उतने क्षणतक रात्रिकालोचित दशा हो गयी। अवश्य ही इसके दर्शक नीलसुन्दरके शिशु सखामात्र ही हैं! और ये सब-के-सब बड़ी शीघ्रतासे बोल उठे – 'अरे भैया ! अब इनको फिर पहलेकी भाँति बना दो। यह सुनना था कि नीलसुन्दर क्षणार्ध पर्यन्त वंशीके स्वरमें एक ललित स्वर भरने लगे तथा दूसरे ही क्षण नीली सरिता प्रवाहित हो उठी ! और अंशुमाली भी अपनी प्रखर किरणोंको पुनः विस्तारित करने लग गये।।५१४।।

साँवर बोला, 'शीतल-सुरभित-जीवन दाता सबको,' प्रियतम!
'है पवन, किंतु देखो मेरा जादू तुम इसपर भी,' प्रियतम!
'जैसे ही मैं फूँकूँगा स्वर सम्मोहित कर इसको,' प्रियतम!
'होगा यह लीन एक मेरी नासा-मुख-वंशी में,' प्रियतम।।५१५।।

नीलसुन्दर अपनी स्वाभाविक मन्द मुस्कानसे सबको उल्लसित करके बोल उठे – 'देखो, तुम सबने सुना होगा – यह शीतल मन्द समीर सबका जीवनदाता है, किन्तु अब देखो, इस पवनपर मेरे वंशीरवका क्या प्रभाव होता है । जैसे ही मैं इस वंशीमें स्वर भरूँगा और पवनको सम्मोहित करना चाहूँगा, वैसे ही यह सम्पूर्ण समीर मेरे नासापुटोंमें, मुखमें और वंशीमें – सब जगहसे सिमटकर – विलीन हो जायेगा।'।।५१५।।

ऐसा ही हुआ, सभी बालक अचरज में भरे हुए, प्रियतम!
लग गये देखने खेल, अहो! क्या बात दूर पर की, प्रियतम!
प्रत्येक सखा को अनुभव था होरहा, न चलती है, प्रियतम!
उनकी ही साँस, किंतु तब भी जीवित सब थे सुख से, प्रियतम।।५१६।।

सचमुच ऐसा ही हुआ भी। सभी बालक आश्चर्यमें भरे हुए, यह नूतन कौतुक देखने लग गये। सबकी जिज्ञासा है – 'अहो ! यह क्या बात है ? दूरपरकी बात तो छोड़ दो, हम सबने अभी-अभी यह अनुभव किया है कि हमारी साँस तक नहीं चल रही है, तब भी हम सब-के-सब सुखपूर्वक जीवित कैसे थे ? बोलो भैयाओं ! तुममेंसे कोई भी समीरका अनुभव कर रहा था क्या ?' और प्रायः सबकी ग्रीवा हिल गयी अस्वीकृति मुद्रामें। अस्तु,।।५१६।।

पल बीस-पचीस बीतने पर गतिशील समीर हुआ, प्रियतम!
सुनकर रसमयी तान फिर से, शिशुओं ने प्रश्न किया, प्रियतम!
'हम, अरे कन्हैया भैया! थे कैसे सब बचे हुए,' प्रियतम!
'है सुना, श्वास रुक जाने पर मर जाता है प्राणी।' प्रियतम।। ५१७।।

बीस, पच्चीस पल बीतनेपर समीर जब पुनः गतिशील हुआ और वंशीके छिद्रोंसे रसमयी तान निःसृत होने लगी, तब शिशुओंने प्रश्न किया – 'अरे कन्हैया ! भैया ! हम सब-के-सब जीवित कैसे बचे हुए हैं ? हमने सुना है कि श्वास रुक जानेपर प्राणी मर जाता है और अचरज तो देखो श्वास भी नहीं चल रही थी, और हम सब-के-सब जीवित भी हैं !'।।५१७।।

हँस-हँसकर समाधान उनका कर रहा साँवरा था, प्रियतम !
देखो, वंशी के छिद्रों से जो सुधा बरसती है, प्रियतम !
कोई भी क्षणभर एकबार सपने में भी पी ले, प्रियतम !
हो जाता है वह सदा अमर, तुम नित्य पी रहे हो। प्रियतम ।।५१८।।

नीलसुन्दर हँस-हँसकर सबका समाधान करने लग गये – 'देखो भैयाओं ! वंशीके छिद्रोंसे जो सुधा बरसती है, कोई क्षणभर सपनेमें एकबार भी उसे पी ले, तो वह सदाके लिये अमर हो जाता है ! और तुम नित्य-निरन्तर यह सुधा पी रहे हो। तुम सब क्यों नहीं जीवित रहते ?' शिशुओंके मनका नीलसुन्दरकी उक्ति सुनकर पूरा-पूरा समाधान हो गया। अस्तु,।।५१८।।

निर्मल था व्योम, दृष्टि उसपर अब गयी साँवरे की, प्रियतम !
बोला; 'है ऐसा कौन, गगन जो ले समेट नखमें ?' प्रियतम !
'मैं अभी बजाकर वंशी यह करके दिखलाता हूँ,' प्रियतम !
'नभ बायें पद अनामनख में मेरे आ सिमटेगा।' प्रियतम ।।५१९।।

अब नीलसुन्दरकी दृष्टि निर्मल व्योमकी ओर गयी। वे बोले – 'अच्छा भैया ! तुम सभी बताओ, कोई भी बता दे कि ऐसा भी कोई है, जो सम्पूर्ण आकाशको अपनी एक अँगुलीके नखमें समेट ले ? किन्तु मैं तुम सबको अभी वंशी बजाकर ऐसा ही करके दिखा देता हूँ। तुम सब प्रत्यक्ष देख लोगे कि मेरे बायें पैरकी अनामिकाके नखमें यह सम्पूर्ण आकाश अभी आकर सिमट जायेगा।'।।५१९।।

धारा-सी मधुकी क्षणभर फिर बह-चली वंशिका से, प्रियतम !
इतने में जो अनुभूति हुई प्रत्येक सखा शिशु को, प्रियतम !
है सत्य अनिर्वचनीय शाख-शशधर के न्याय कहूँ, प्रियतम !
अवकाशदान दाता केवल तुम एक बच रहे थे, प्रियतम ।।५२०।।

इसके अनन्तर मधुकी धारा-सी वंशीके छिद्रोंसे बह चली। उस समय प्रत्येक शिशु सखाको जो अनुभव हुआ, उसे मैं शाखाचन्द्रन्यायसे ही कह दे रही हूँ – 'यद्यपि शिशुओंकी वह अनुभूति नित्य सत्य है, किन्तु अनिर्वचनीय भी है। जो हो, कुछ कालके लिये अवकाश देनेवाली वस्तु केवल तुम्हीं बच रहे थे नाथ ! उस अनुभूतिके सम्बन्धमें इतना मात्र ही कहा जा सकता है....।'अस्तु,।।५२०।।

अब पुनः बहा पीयूष सरित, तब भावसमाधि खुली, प्रियतम !
शिशुओं की, लगे नहाने वे सब झूम-झूम उसमें, प्रियतम !
शत-शत हँसिनी-हंस दौड़े, जल-खगगण उड़ आये, प्रियतम !
उस ओर सहस्र मयूरों के दलने आ घेर लिया प्रियतम ।।५२१।।

जब पुनः वह पीयूषकी सरिता वंशीके छिद्रोंसे प्रसरित हुई, तब सब शिशु सखाओंकी भाव समाधि टूटी। वे सब शिशु झूम-झूमकर उस अमृत प्रवाहिणीमें अवगाहन करने लगे। देखते-देखते हंसिनी, हंस उड़कर आ गये और उनके साथ ही जल-विहङ्गमोंका समूह भी उड़कर आ गया। इनके साथ सहस्र-सहस्र मयूरोंके दलने आकर नीलसुन्दरके सहित उस शिशु मण्डलीको घेर लिया।। ५२१।।

रव भरते समय जिधर झुकती ग्रीवा भी साँवर की, प्रियतम!
दल मत्त विहँगों का तत्क्षण गतिशील उधर होता, प्रियतम!
पल-पलमें सरस बदलती थी उनकी भङ्गी धारा, प्रियतम!
हाथों से पेट थामकर थे हँस रहे सभी शिशु वे, प्रियतम।।५२२।।

देखने ही योग्य दृश्य था नीलसुन्दरकी ग्रीवा वंशीमें स्वर भरते समय जिस ओर झुकती, उन्मत्त हुआ विहङ्गमोंका दल तत्क्षण उसी दिशामें ही गतिशील हो उठता। पल-पलमें नीलसुन्दरकी सरस भङ्गिमा बदलती और अपना पेट हाथोंसे थामकर हँसते-हँसते सभी शिशु आनन्दमग्न हो जाते।।५२२।।

ज्यों होता क्षणिक विराम, अहो! मधुभरे वेणु रव का, प्रियतम!
रह-रहकर, जान-बूझकर ही साँवर यह करता था, प्रियतम!
उस समय विहँगों में आती प्रेमोत्थित जड़िमा जो, प्रियतम!
पा सकीं न एक निदर्शन भी उसका ब्रह्माणी भी, प्रियतम।।५२३।।

जैसे ही क्षण-आधे क्षणके लिये मधुर वेणु-रवका विराम होता – यद्यपि जान-बूझकर, रह-रहकर श्यामसुन्दर ही ऐसा करते थे – उस समय विहङ्गमोंके समुदायमें जो प्रेमोत्थित जड़िमाका आविर्भाव होता – उसका एक भी निदर्शन ब्रह्माणी भी न पा सकी भला !।।५२३।।

टप-टप सुमिष्ट बूँदें तरुकी शाखा से, पल्लव से, प्रियतम!
फूलों से, बेलि समूहों से, झर रही निरन्तर थीं, प्रियतम!
स्वरलहरी के चालन से ही विहगों की चोंचें को, प्रियतम!
साँवर ऊपर कर देता था, बूँदें गिरतीं उनमें, प्रियतम।।५२४।।

जलकी सुमिष्ट बूँदें टप-टप करती हुई तरु शाखाओंसे, पल्लवोंसे, फूलोंसे, वल्लरी-समूहोंसे निरन्तर झर रही थीं और नीलसुन्दर अपनी वंशीकी स्वर-लहरीके चालनसे विहङ्गमोंकी चोंचको बड़ी चतुराईसे उसके ठीक नीचे, ऊपरकी ओर कर देते। वे बूँदें उन चञ्चुओंमें ही गिरतीं। अप्रतिम सुन्दर दृश्य था वह !।।५२४।।

बारी अब वन्य चतुष्पद की आयी रस लेने की प्रियतम,
टेरी वंशिका साँवरे ने उस गहन वनस्थल में, प्रियतम!
हों हुए निमन्त्रित ऐसे वे द्वीपी करेणु-करिणी, प्रियतम!
भल्लूक-मृगी-मृग आदि दौड़ आ जुड़े वहाँ क्षणमें, प्रियतम।।५२५।।

अब वन्य चतुष्पदोंकी बारी आयी नीलसुन्दरकी वंशी रवसे निःसृत मधुधाराका पान करनेकी। जैसे ही साँवरेने उस गहन वनस्थलमें अपनी वंशीके छिद्रोंको अपने मुख-सरोजके श्वाससे पूरित किया, वैसे ही मानो सब-के-सब निमन्त्रित हुए हों, इस भावसे वे व्याघ्र, हाथी, हथिनियोंका दल, भल्लूक, मृग-मृगी आदि सब क्षणभरमें नीलसुन्दरके समीप दौड़कर आ पहुँचे।।५२५।।

हैं बैरहीन ये नित्य यहाँ, शिशु सभी जानते थे, प्रियतम!
भय हुआ न किंचित् भी उनको चिहुँकी न गाय तक भी, प्रियतम!
एवं पयस्विनी अमृतमयी ज्यों प्रसरित पुनः हुई, प्रियतम!
वे हुए भाव-भावित चौपद, जैसे न कह सकूँगी, प्रियतम ॥ ५२६॥

सभी शिशु जानते थे कि यहाँके हिंसक पशु भी नित्य सर्वथा परस्पर वैरसे शून्य रहते हैं। इसीलिये किसीको किञ्चित् भी भय नहीं हुआ। गायें भी तनिक चिहुँकी तक नहीं एवं उस समय वहाँ जो अमृतमयी पयस्विनी पुनः प्रसृत हुई तथा वे चतुष्पद जिस भावमें निमग्न हो गये, उसका वर्णन करनेमें मेरे देवता ! मैं सर्वथा असमर्थ हूँ भला ! संभव नहीं है उसका चित्रण मेरे द्वारा।।।५२६।।

पल बीस-पचीस खेल कर-कर, रसमत्त बना उनको, प्रियतम!
साँवर ने स्वरसञ्चालन से वनमें फिर भेज दिया, प्रियतम!
शिशुओं ने पूछा, 'कान्हा रे! कैसे ये चले गये;' प्रियतम!
'दृग बन्द किये, वंशी जब थी बज रही यहीं; फिर भी;' प्रियतम ॥ ५२७॥

इस प्रकार बीस-पच्चीस पलतक क्रीड़ा करके, उन वन्य पशुओंको रसमत्त बनाकर, श्यामसुन्दरने अपने स्वर-संचालनके द्वारा ही उन्हें यथास्थान वनमें ज्यों-का-त्यों लौटा दिया। शिशुओंने आश्चर्यसे पूछा – 'अरे कन्हैया ! यह सब वन्य पशु कैसे चले गये ? सबकी आँखें भी बन्द थीं और जब ज्यों-की-त्यों वंशी भी बज रही थी यहाँ तब भी कैसे चले गये ? ।।५२७।।

साँवर के अरुणिम अधरोंका सुस्मित वह हास बना, प्रियतम!
फिर तान एक मधुभरी छिड़ी, निर्णय शिशु कर न सके, प्रियतम!
पूरब से या दक्षिण से है, आ रही प्रतीची से, प्रियतम!
या उत्तर से कि धरातल से ध्वनि यह या ऊपर से, प्रियतम ॥ ५२८॥

अब साँवरके अरुणिम अधरोंका वह सुस्मित मनोहर हास्यमें परिणत हो गया। आधे क्षणके अनन्तर ही वंशीके छिद्रोंसे एक मधुभरी तान छिड़ गयी। इस बार शिशु सखा आश्चर्यमें डूब गये। वे निर्णय नहीं कर सके कि वंशी-रव किस ओरसे प्रसृत हो रहा है। प्राचीसे अथवा प्रतीचीसे, दक्षिणकी ओरसे या उत्तरसे, ऊपरसे अथवा धरातलसे-किस ओरसे आ रहा है यह रव?।।५२८।।

बोला साँवर, 'सर्वत्र समा जाती है स्वरलहरी;' प्रियतम!
'मैं जिसको जहाँ जभी इसकी अनुभूति कराता हूँ;' प्रियतम!
'उसको ही वहीं प्रतीति तभी होने लग जाती है;' प्रियतम!
'तत्क्षण उसके तन-मन की गति होती है लीन वहीं;' प्रियतम ॥ ५२९॥

आँखोंमें आश्चर्य लिये हुए शिशु इसका निर्णय नीलसुन्दरसे जानना चाह रहे थे। नीलसुन्दरने भी अविलम्ब उनको उत्तर दे देना चाहा। वे बोले – 'भैयाओं ! देखो, जब मैं वंशी बजाता हूँ, तो यह स्वर-लहरी सर्वत्र परिपूरित हो जाती है। किन्तु मैं जिसको, जहाँ, जिस समय इस लहरीको अनुभूति कराना चाहता हूँ, उसको ही, उसी समय इसकी अनुभूति होने लगती है। तथा तत्क्षण ही उसके तन-मनकी गति इस लहरीमें विलीन हो जाती है।'।।५२९।।

जिज्ञासा

छन्द सं. ५१०में भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनने वंशीध्वनि द्वारा मणिपर्वतको गलाकर तरल प्रवाह बना दिया; छन्द सं ५११ एवं ५१२में पूरी जल-प्रवाहिणीके जलको ही उन्होंने हिममें परिवर्त्तित कर दिया; छन्द सं. ५१३ में दिनमणिको सुधाकर बना दिया। छन्द सं.५१४में अपने सखाओंके कहनेसे सबको पूर्ववत् कर दिया। इस प्रकार छन्द सं. ५२९तक मुरलीके चमत्कारोंका ही वर्णन है। कृपया यह समझावें कि इन चमत्कारोंके पीछे भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन द्वारा चर-अचरको क्या दान दिया गया है ? ऐसी कौनसी रस-वस्तु भगवान् इस मुरली-निनादके द्वारा ब्रजके चर-अचरको वितरण कर रहे हैं ? कृपया इसे सुस्पष्ट करें ।।। ५२९।।

समाधान

मुरली-निनाद द्वारा भगवान् सर्वत्र चर-अचरमें ह्लादिनी-सुधाका अनिर्वचनीय आनन्द ही मुक्तहस्तसे वितरण कर रहे हैं। 'क्लीं' बीजका प्राकृत अर्थ तो छन्द सं. ५०९ की व्याख्यामें दे दिया गया है; किन्तु इसी 'क्लीं' बीजका रसजगत्का अप्राकृत अर्थ यहाँ दिया जा रहा है। 'कलं वामदृशां मनोहरम्' इस कल पदामृत वेणुगीतसे 'क्लीं' पदकी सिद्धि होती है। कल अर्थात् क्ल। इसमें वामदृक् अर्थात् चतुर्थस्वर 'ई' कार संयुक्त करनेपर 'क्ली' शब्द बनता है। यह 'क्ली' पद मनोहर है, अर्थात् मनको मथनेवाले मन्मथके भी मनको मथनेवाले मन्मथ-मन्मथ श्रीकृष्णचन्द्रको, जो चन्द्रविन्दु स्वरूप हैं, यह हरण कर लेता है। इसीलिये यह 'क्लीं' श्रीकृष्ण-कामिनी श्रीराधा एवं माधव – दोनोंका युगपत्, साथ ही उनके प्रेममिलनका भी स्वरूप है।

ककारो नायकः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ईकारो प्रकृती राधा महाभावस्वरूपिणी।।
लश्चानन्दात्मकः प्रेमसुखं च परिकीर्त्तितम्।
चुम्बनाश्लेष माधुर्यं बिन्दुनादं समीरितम्।।

ककार सच्चिदानन्दविग्रह नायक श्रीकृष्ण हैं। ईकार महाभावस्वरूपा प्रकृति श्रीराधा है। 'ल' कार इन नायक-नायिकाके मिलनात्मक प्रेमसुखका आनन्दात्मक निर्देश है। नादविन्दु चुम्बन-आलिङ्गनादि माधुर्यामृतसिन्धुको परिस्फुट करने वाला है।

श्रीराधाकृष्णका मिलन दिव्य है। यह आत्मरमण है। **'आत्मारामोऽप्यरीरमत्'** यह अपने ही स्वरूपमें सच्चिदानन्द भगवान्की लीला है। इस लीलाका विकास 'क्लीं' रूप मुरली-निनादके वितरणसे ही होता है। मुरली-निनाद स्वयं सच्चिदानन्दमय है। यह ब्रह्मरूप है। यही नादब्रह्म है।

प्राकृत धरातलपर 'क्लीं' जहाँ सृष्टि-सङ्कल्प है; अप्राकृत लीलाजगत्में चिन्मय ब्रह्मस्वरूप नादका सञ्चार भगवान् पवित्र मधुररसका आस्वादन करानेके लियें करते हैं। श्रीकृष्णावतारकालमें भी 'क्लीं' भगवत्कामबीज बन जाता है। मन्मथ-मन्मथ मदनमोहन अपने तप-वैराग्ययुक्त अधिकारसम्पन्न भक्त साधकोंमें इस भगवत् कामबीजको वितरणकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। **'कर्षति इति कृष्णः'।**

भगवान् श्रीकृष्ण मुरली-निनादके द्वारा आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं धरा – इनमें निवास करनेवाले सभी जीव-समुदायको अपना मधुर स्वरूपालिङ्गनका सुखदान करनेके लिये ही मुरलीवादन करते हैं। मुरलीके चिन्मय स्वरके रूपमें वे स्वयं ही स्वरूपतः उनसे एकात्म होते हैं और उन सभीको अपनेमें एकात्म कर लेते हैं। किसी कविकी उक्तिका रसास्वादन करें।

ए सजनी वह नन्दकुमार सु या वन धेनु चराइ रह्यौ है।
मोहिनी तानन गोधन-गायन बेनु बजाइ रिझाइ रह्यौ है।।
ताही समै कछु टोना करै रसखानि हिये सु समाइ रह्यौ है।
कोउ न काहु की कानि करै, सिगरौ ब्रज बीर! बिकाइ रह्यौ है।।।५२९।।

ऐसे वंशी ध्वनि का प्रभाव शिशुओं को दिखलाता, प्रियतम!
हँस-हँसकर तथा स्वयं वह रस पीता मृगछौना-सा, प्रियतम!
चञ्चल साँवर बालक आया अतिशय सुरम्य वनमें, प्रियतम!
था एक जहाँ कासार बृहत् तट स्फटिक-विनिर्मित थे, प्रियतम।।५३०।।

इस प्रकार अपनी वंशी-ध्वनिका प्रभाव शिशुओंको प्रत्यक्ष दिखलाते हुए और हँस-हँसकर स्वयं इस रसका पान करते हुए, मृगछौना सदृश नीलसुन्दर आगे-से-आगे चलते जा रहे थे। अब वे एक अतिशय सुरम्य वनमें जा पहुँचे, जहाँ एक सुन्दर कासार सुशोभित हो रहा था जिसके विशाल तट स्फटिकसे निर्मित थे ।।५३०।।

उद्भासित दिनकर-किरणों से सरसिज-संकुल जल था, प्रियतम!
थी तथा तड़िल्लहरी-जैसी आभा भी फैल रही, प्रियतम!
बाला एवं सहचरियों के अवगाहन की क्रीड़ा, प्रियतम!
निर्बाध-चल रही थी, तरु थे झंकृत कङ्कण-रव से, प्रियतम।।५३१।।

कमलोंसे भरा हुआ जल दिनकरकी किरणोंसे उद्भासित हो रहा था। साथ ही तड़िल्लहरी जैसी आभा भी वहाँ फैली हुई थी। यहीं राधाकिशोरी एवं उनकी सहचरियोंकी स्वच्छन्द क्रीड़ा निर्बाध रूपसे चल रही थी। तटकी वृक्षावली उनके रत्न-कङ्कणोंसे झंकृत हो रही थी।।५३१।।

कटि से ऊपर थे अङ्ग सभी आवरणहीन सबके, प्रियतम!
भीगी अलकों का जाल मात्र रह-रहकर ढक लेता, प्रियतम!
अप्रतिम रूपकी उन्मादी धाराको, भावोंको, प्रियतम!
पौगण्ड-किशोर-सन्धि पर जो जगकर थे झाँक रहे, प्रियतम।।५३२।।

राधाकिशोरी एवं उनकी सहचरियोंके श्रीअङ्ग कटिसे ऊपर तो आवरणहीन थे। उनके अप्रतिम रूपकी उन्मादी धाराको एवं पौगण्ड तथा कैशोरकी सन्धिपर जगकर झाँकनेवाले भावोंको, उनकी भीगी अलकोंका जाल मात्र रह-रहकर ढक दे रहा था।।५३२।।

उस जलबिहार से अरुण हुए नयनों की सुषमा से, प्रियतम!
टोना-सी शक्ति बिखरती थी मोहित करने वाली, प्रियतम!
त्रिभुवन थिर जङ्गम को; यह भी छोड़ो, अचरज देखो, प्रियतम!
हो गयी रुद्ध गति वहाँ, भला, त्रिभुवन-मन-मोहन की, प्रियतम।।५३३।।

जो हो, उस जल-विहारसे राधाकिशोरी एवं सहचरियोंके अरुणिम नयनोंकी सुषमासे एक अद्भुत सम्मोहिनी शक्ति बिखर रही थी। त्रिभुवनके स्थावर-जङ्गमकी बात तो दूर, आश्चर्यकी बात तो यह है कि वहाँ त्रिभुवन-मन-मोहिनीकी गति भी अचानक उसके प्रभावसे रुद्ध हो गयी भला!।।५३३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

लीला महाशक्तिके चित्तपटलमें विलक्षण सङ्कल्प उद्भासित हो उठता है। अब रङ्गस्थलका पट-परिवर्त्तन ऐसा होना चाहिये जिससे ब्रजेन्द्रनन्दन एवं भानुकिशोरीका अनादि-अन्तविहीन लीलाविहार 'पूर्वराग' नामक महाभावसे प्रारंभ हो। ब्रजक्षेत्रमें तदनुसार ही रङ्गमञ्च समुपस्थित हो जाता है।

महर्षि दुर्वासाके भानुनगर आगमनको पूरा एक वर्ष हो गया है। इसी मध्य भानुनन्दिनीकी मौसेरी बड़ी बहन कुन्दवल्लीका पाणिग्रहण उपनन्दजीके पुत्र सुबलके साथ सम्पन्न हो जाता है। वह अपने ससुराल – नन्दभवन प्रस्थान कर जाती है। भानुकिशोरी राधा सातवें वर्षकी वयमें प्रवेश कर जाती है।

पञ्चम शतकमें उल्लेख हो ही चुका है कि श्रीराधाकिशोरी अपनी सभी सखियों एवं अनुजा मञ्जुश्यामा सहित महर्षि भागुरिके आश्रमसे लौटते समय 'सुन्दरीसरोवर' में स्नान करने पहुँच जाती हैं। वे सरोवरमें स्नान कर ही रही होती हैं कि ब्रजेन्द्रनन्दन भी अपने सखाओं सहित हँस-हँसकर अपनी वंशीध्वनिका प्रभाव दिखाते हुए एवं स्वयं भी इस वंशीध्वनिके रसका पान करते हुए इसी सरोवरके तटपर पहुँच जाते हैं।

यह सुन्दरीसरोवर नामक वही दिव्य सरोवर है, जिसके जलमें महामायाकी शक्ति प्रत्यक्ष भरी है एवं जिसका विस्तृत वर्णन इसी काव्यके तृतीय शतकमें किया जा चुका है।

सदैव ध्यान रहे कि इस अप्राकृत लीलाराज्य ब्रजमें प्राकृत ज्वलनशील पिण्ड सूर्यका तो अस्तित्व ही नहीं है। यहाँ तो सदैव चिन्मय सूर्यकी ही चिज्ज्योति दिवसकी उद्भावना कराती है। अतः सुन्दरीसरोवरके जलको चिदानन्दमय प्रकाशकी किरणें ही उद्भासित कर रही हैं। 'जल सरसिज-सङ्कुल था' – इसका तात्पर्य यही मानना चाहिये कि यद्यपि चिज्ज्योतिका प्रकाश इस सरोवरमें पर्याप्त था, फिर भी इसमें सरस प्रीति-भावोंके पद्म विकसित थे। श्रीराधाकिशोरी इस सरोवरमें अपनी सखियोंके सहित स्नान कर रही हैं, अतः उनके अङ्गोंकी विद्युत्लता-सी भावप्रभा भी इस सरोवरके जलमें सर्वत्र प्रसरित हो रही है। इस सरोवरके चतुर्दिक् छाये कदम्बके वृक्ष भी इन किशोरियोंके कङ्कणोंकी झङ्कारसे उत्पन्न 'क्लीं' रवसे मन्द-मन्द निनादित हो रहे हैं। यह 'क्लीं' नाद ही प्रेमबीज है। जहाँ ब्रजेन्द्रनन्दन द्वारा प्रेमबीज मंत्र – 'क्लीं' मुरलीरवसे प्रसारित होकर ब्रजाङ्गनाओंको अपनी ओर समाकर्षित करता है, वहीं श्रीराधामुख्या गोपाङ्गनाओंके नूपुरों, उनकी कटि किङ्किणियोंकी झङ्कार एवं उनके कङ्कणोंकी ठुमकारसे यही 'क्लीं' बीज स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दनको प्रेमविभोर कर देता है।

यह सदैव ध्यान रखें कि श्रीराधाका तन एवं उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग किसी नारीका मांसल कर्मशरीर नहीं है, न ही श्रीराधाके तनमें पौगण्ड एवं कैशोर वयके संधिस्थलमें उठे उभार ही कामोत्पादक मांसल पिण्डोंके विकार हैं। श्रीराधारानी मूर्त्त भगवदानन्दस्वरूपा हैं। इनकी अनुजा मञ्जुश्यामा एवं सभी सखियाँ भी श्रीराधाका ही स्वरूप-विस्तार हैं। ये सभी गोपाङ्गनाएँ नित्यसिद्धा, सच्चिदानन्दस्वरूपा, भगवान्की स्वरूपाशक्तियाँ हैं। यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके जिस पूर्वरागका वर्णन किया जा रहा है, वह भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनका दिव्य प्रेमरमण है। इसमें प्राकृत मानवभावको लाना तो महापाप है। अतः पद-पदपर अप्राकृत चिन्मयताको जागरूक रखकर ही इन लीलाओंका आस्वादन परमावश्यक है। इस पूर्वरागरूप महाभावमें स्वरूपानन्दी ब्रजेन्द्रनन्दन स्वयं अपने ही स्वरूपभूत विलक्षण स्वरूपानन्दका विशेष आस्वादन अपनी ही स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्तिके द्वारा करते हैं। बृन्दाकानन चिन्मय प्रेमक्षेत्र है। सुन्दरीसरोवरमें भी प्रेमनीर ही छलछला रहा है। प्रेम-साम्राज्यके इस नित्य पवित्र क्षेत्रमें वेणुवादन द्वारा पहले ही प्रेममयङ्क श्रीकृष्णने प्रत्येक पशु-पक्षी, स्थावर-जङ्गम, पत्र-पत्र, कण-कण और अणु-अणुको प्रेमानन्दसे सिक्त कर दिया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, एवं आकाशतकको ब्रजेन्द्रनन्दन मुरलीध्वनि द्वारा अपने प्रेमस्वरूपमें बरबस ही निमग्न कर चुके हैं। श्रीकृष्णके उस

वेणुनिर्गत प्रेमनादामृतसे गौएँ घास चरना भूल गयी हैं। सुरम्य बृन्दावनके विहङ्गोंने वंशीध्वनिसे झरनेवाले अनिर्वचनीय प्रेमामृतका पान करनेके लिये अपने श्रवणपात्रोंको उस सुधाधारासे संलग्न कर दिया है। महिषी कालिन्दी भी अपनी ऊर्मि-भुजाओंको फैलाकर अपने परम प्रियतम प्रेमार्णव ब्रजेन्द्रनन्दनकी ओर दौड़ पड़ी है। इस प्रकार पूर्वरागके अभिनयको प्रारंभ करनेके पूर्व ही ब्रजेन्द्रनन्दन समग्र रङ्गमञ्चको इस पवित्रतम मधुररसके वितरण योग्य बना चुके हैं।

अस्तु, इस लीलाके पाठकोंको भी इस लीलाके अवगाहनके पूर्व नरकोंकी ओर आकर्षित करनेवाले, मन और इन्द्रियोंको विक्षुब्धकर आत्माका घोर पतन करानेवाले विषय-विषसे तो स्वयंको दूर कर ही लेना चाहिये। साथ ही साथ अपनी घृणित काम-कालिमासे मधुररसकी पवित्रतम प्रतिमा श्रीराधा एवं गोपाङ्गनाओंकी दिव्य आकृतियोंको तो मलिन कदापि नहीं करना चाहिये; अपने कामकलुषित पशुभावसे भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी भी छवि दूषित कदापि नहीं करनी चाहिये।

श्रीराधारानी एवं उनकी कायव्यूहरूपा सभी सखियोंके स्नान करते समय कटिसे ऊपरके भाग निरावरित हैं। इस निरावरणका भी तनिक रहस्य समझ लें। श्रीराधारानी कोई प्राकृत नारीशरीर नहीं हैं। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण सगुण साकार नराकृतिमें रहते हुए भी परात्पर परब्रह्मकी प्रतिष्ठा, पुरुषोत्तम सच्चिदानन्दकन्द विग्रह हैं, ठीक वैसे ही श्रीराधारानी भी नारी–आकृतिमें मधुरा प्रीतिकी सजीव प्रतिमा हैं। वे आनन्दांशघनीभूता सच्चिदानन्दविग्रहा हैं; आनन्द-चिन्मयरस-प्रतिभाविता ह्लादिनीशक्ति हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जो परात्पर परब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा हैं, भला क्या किसी मलिन प्राकृत मांसल नारीदेहके प्रति **'धेहि पदपल्लवमुदारम्'** कह सकते हैं ? शक्ति एवं शक्तिमान्के नित्य मधुर लीलाविलासके बीजवपनके समय शक्तिके निरावरित रूपकी ही आवश्यकता है। आनन्द-चिन्मय -रसामृत-तरङ्गिणी श्रीराधारूपा राकाशशि यदि किसी अन्य आवरणसे युक्त हो तो ह्लादात्माके आह्लाद-सिन्धुमें ज्वारका उदय कैसे संभव होगा ? पट ही तो कपट है। कपटके रहते प्रीतिका उद्भव ही कहाँ संभव है ?

श्रीराधा एवं गोपियाँ स्वयं श्रीकृष्णसे पृथक् हैं ही नहीं; श्रीकृष्णका ही सौन्दर्य-माधुर्य-रस उन्हें उनका ही समास्वादन करानेके लिये श्रीराधारूपमें अभिव्यक्त है, तो फिर आस्वाद्यको आस्वादकके सम्मुख किसी आवरण, सज्जा एवं वस्त्रावगुंठनकी आवश्यकता ही कहाँ है ?

जिज्ञासा

श्रीराधा जब नारी आकृतिमें हैं तो उन्हें नारीधर्मके अनुरूप अवगुंठन या वस्त्र पहनकर ही स्नान करना चाहिये – क्या इस नारी-मर्यादाकी यहाँ आवश्यकता नहीं है ?

समाधान

ध्यान रहे कि यह सुन्दरीसरोवर-स्थल गोपाङ्गनाओंका प्रेमराज्य है। यह न तो बृषभानुपुरकी भानुतलैया है, न ही महर्षि भागुरिंका आश्रम अथवा नन्दभवनके पश्चिमी छोरपर बहनेवाली यमुनाका घाट। यह श्रीराधामाधवका निकुञ्ज क्षेत्र है। यहाँ लोकको कल्पना ही नहीं है। यहाँ पूर्वतः ही मुरलीवादनने श्रीकृष्णेतर किसी वस्तुकी सत्ता ही नहीं रहने दी है। यहाँ कोई वेद-मर्यादा, पाप-पुण्यका बंधन ही नहीं है। यहाँ बन्धन है तो श्रीकृष्णको राधाका एवं राधाको श्रीकृष्णका, इसके अतिरिक्त सब ओर पूर्ण स्वातंत्र्यका साम्राज्य है।

सुन्दरीसरोवरक्षेत्रमें केवल श्रीराधा हैं, और हैं श्रीकृष्ण । वे दोनों एक हैं और एक होकर ही दो बने हुए परस्पर रसास्वादन करनेके लिये नित्य प्रेमलीला कर रहे हैं, विहार कर रहे हैं। श्रीकृष्ण प्रेमबीज-वितरणार्थ वेणुवादन करते हैं, और उसके आकर्षणसे खिंची राधा उन्हें अपने नूपुरोंकी झङ्कारसे प्रमत्त, मुग्ध कर देती हैं, उन्हें अपनी अङ्गछटासे अपनेमें लीन कर लेती हैं। यह उनका अलग साम्राज्य है। यहाँ साधना नहीं है, कोई साध्य नहीं है, यह सर्वतंत्रस्वतंत्र,

मुक्तिको भी मुक्त करनेवाला पूर्ण स्वविलास है। अतः यहाँ नारीत्व एवं नारी–पुरुषके धर्मकी शृंखला है ही नहीं। यहाँ तो एकमेव प्रेम ही धर्म, कर्म, मर्म – सबकुछ है।

जिज्ञासा

छन्द सं.५३२ की अन्तिम तीन पंक्तियोंका भाव स्पष्ट करें। 'भीगी अलकोंका जाल मात्र रह-रहकर ढक लेता, प्रियतम !' – इस पंक्तिका क्या गूढ़ अर्थ है ?

समाधान

ध्यान रखें, श्रीराधा ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति हैं, ईंसीसे उनका नाम ह्लादिनी राधा है। उनके श्रीकृष्ण भी ब्रजके प्रेमराज्यमें परमात्मा नहीं, भगवान् नहीं, ब्रह्म नहीं, ह्लादात्मा श्रीकृष्ण हैं। **'कृष्णके आह्लादे ताते नाम आह्लादिनी'** वे निरन्तर श्रीकृष्णको ही आह्लादित करती रहती हैं अतः वे प्रियतममयी हैं।

उनके केश श्रीकृष्ण हैं, और अपने प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी करनेके लिये अपने प्रियतमकी सज्जा ही उनकी केश-सज्जा है। उनकी वेणी श्रीकृष्ण है, और वेणीमें फूल खौंसकर भी वे अपने प्रियतम श्रीकृष्णको ही भावसुमन समर्पण करती हैं। उनका उर श्रीकृष्ण है, एवं श्रीकृष्णप्रेम ही उनके पौगण्ड एवं कैशोरकी संधिपर उभरते बाल उरोज-द्वय हैं। उनके रूपकी उन्मादी धारा श्रीकृष्ण-सुखार्थ हैं, वह उनको सुख देनेको ही प्रवाहित हो रही है। उनकी अलकें भी श्रीकृष्ण हैं, जो राधा-प्रेम-रसमें भीगी हैं एवं उनके रूपकी उन्मत्त प्रवाहिणीको ढँकनेका असफल प्रयास कर रही हैं। श्रीराधा स्वयंमें कुछ नहीं है, उनका सबकुछ मात्र प्रियतम और अपने प्रियतमका सुख है। श्रीसुन्दरीसरोवर, जहाँ श्रीराधा एवं सखियाँ स्नान करने आयी हैं, मात्र प्रेमजलसे भरा प्रेम-सरोवर ही है। इसका एक घूँट जल पीने मात्रसे प्रेमोन्माद चढ़ जाता है और प्रेम-विस्मृतिकी अवस्था हो जाती है। श्रीराधा साधारण प्राकृत प्राणी हैं ही नहीं, जो प्राकृत जलमें अपने प्राकृत देहाङ्गोंको स्वच्छ करे। वह तो प्रियतम प्रेमकी सघन प्रतिमा है और प्रियतम-प्रेम-सरोवरमें ही स्नान करती है। सदैव ध्यान रहे कि यह पूरा काव्य पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा समाधि-अवस्थामें अनुभूत अप्राकृत प्रेमजगत्‌की तत्सुखीभावमयी लीलाका ग्रन्थ है। अतः यहाँ श्रीराधारानीके मुखचन्द्रपर स्वयं उनके प्रियतम श्रीकृष्ण ही पूर्ण प्रेमरसमें भीगी अलकें बने बार-बार मँडरा रहे हैं। इस पंक्तिका वस्तुतः यही निहितार्थ मानना चाहिये।

जिज्ञासा

छन्द सं.५३३ में अन्तिम पंक्ति – 'होगयी रुद्ध गति वहाँ भला त्रिभुवन-मन-मोहनकी प्रियतम!' का भाव सुस्पष्ट करें।

समाधान

यहाँ यही बात भली प्रकार समझनी है कि स्वरूपतः श्रीराधारानी क्या हैं। श्रीराधारानी सच्चिदानन्दघन ब्रजरसनिधि ह्लादात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी ह्लादिनीशक्ति हैं। यद्यपि श्रीराधाका अपने प्रियतम श्यामसुन्दरसे अविनाभाव नित्य अविच्छेद्य ऐक्य सम्बन्ध है, फिर भी श्यामसुन्दरकी रसशक्ति तो श्रीराधा ही हैं। शक्ति यद्यपि शक्तिमान्‌में ही रहती है, किन्तु शक्तिसे विहीन तो शक्तिमान्‌की गति निश्चय ही रुद्ध है। श्रीकृष्ण जहाँ साक्षात् अग्नि हैं, वहाँ उनकी तेज एवं दाहिकाशक्ति तो राधा ही हैं। अग्निकी सारी गति तो दाहिकाशक्तिको लेकर ही है। दाहिकाशक्तिका यद्यपि अग्निसे प्रतिस्पर्द्धी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, फिर भी अग्निमें जो कुछ भी विशेष है, वह तो उसकी दाहिकाशक्ति ही है। जहाँ श्रीकृष्ण स्वमन-मोहन हैं, वहाँ श्रीराधा स्वमन-मोहन-मनोमोहिनी हैं। श्रीकृष्ण त्रिभुवनमोहन हैं, वहाँ श्रीराधा त्रिभुवन-मोहनाकर्षिणी हैं। श्रीकृष्ण निश्चय ही सर्वाकर्षक हैं, किन्तु श्रीराधा सर्वाकर्षक कृष्णाकर्षिणी हैं। श्रीकृष्ण मन्मथ-मन्मथ हैं, किन्तु श्रीराधा मन्मथ-मन्मथ-मानस-मन्थिनी हैं। वे मदनमोहन-मनविमोहिनी हैं। श्रीकृष्णचन्द पूर्णचन्द्र

हैं तो श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रके पूर्णतम विकासकी आधारमूर्त्ति हैं। वे अपने विचित्र विभिन्न भावतरङ्ग-रूप अनन्त सुख-समुद्रमें श्रीकृष्णको नित्य निमग्न रखनेवाली महाशक्ति हैं। श्रीकृष्ण निश्चय ही अनन्त सौन्दर्यनिधि, गुणनिधि हैं, किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि वे राधा-रूप, राधा-नयनकटाक्ष, राधा-गुण-स्मृतिमात्रसे ही विह्वल, मुग्ध एवं गद्गदकण्ठ हो जाते हैं।

यहाँ पुनः यह बात सुस्पष्ट कर दूँ कि श्रीसुन्दरी-सरोवरका जल प्राकृत जल नहीं है, यह तो मूर्तिमान् प्रेमरस है। इस विशुद्ध प्रेमरसमें विहार करती श्रीराधाके लोचनोंमें भगवती कामेश्वरीकी सर्वमोहन-मोहिनी सुषमा-सामर्थ्य भर गयी है। इसीलिये उनके लोचनोंकी सुषमासे जादू-जैसी शक्ति सर्वत्र विकीर्ण हो रही है। यह शोभा त्रिभुवनके चर-अचर को ही नहीं, त्रिभुवन-मन-मोहनको भी आश्चर्यजनक रूपसे मोहित कर रही है। ।।५३३।।

सचमुच था विश्वविमोहन वह सुन्दर साँवर छोरा, प्रियतम!
गायों को लिये अहो! जैसे पहुँचा, ज्यों दृष्टि पड़ी, प्रियतम!
उन आर्द्र कुन्तलों से मण्डित आनन पर बाला के, प्रियतम!
वंशी चुप हुई, हुई अपलक वे नित्य चपल आँखें, प्रियतम॥५३४॥

नीलसुन्दर सचमुच विश्वविमोहन थे। किन्तु संयोगकी बात, गायोंको लिये हुए जब वे आज उस सरोवरपर पहुँचे और उनकी दृष्टि राधाकिशोरी एवं उनकी सहचरियोंके आर्द्र कुन्तलोंसे मण्डित मुखपर पड़ी, बस, उसी क्षण वंशीमें स्वर भरनेकी क्रिया विरमित हो गयी। उनकी वे चञ्चल आँखें अचानक अपलक हो गयीं। अस्तु,।।५३४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यह सत्य है कि भगवान् श्रीकृष्ण अनिर्वचनीय अचिन्त्य अनन्त-रसैश्वर्य-सौन्दर्य-माधुर्य-परिपूर्ण हैं, वे अनन्त दिव्य रससुधासार समुद्र हैं, किन्तु विलक्षण संयोग तब घटित होता है जब वे महाभावस्वरूपा श्रीराधाके अप्रतिम माधुर्यके प्रभाव-क्षेत्रमें आ जाते हैं, और उनकी दृष्टि श्रीराधाकिशोरी एवं उनकी सहचरियोंके आर्द्र कुन्तलोंसे मण्डित मुखपर टिक जाती है। जैसे पुष्पमें मधुका सञ्चार मधुप्रेमी मधुकरके लिये ही होता है, ठीक वैसे ही श्रीराधा एवं गोपाङ्गनाओंके आनन-सरोजमें जो प्रेम-मधु है, उसपर तो उनके प्रियतम श्रीकृष्ण-मधुकरका ही पूर्ण अधिकार है।

ओह ! श्रीराधाका आनन-सौन्दर्य कितना विलक्षण है। परम मधुर, परम विशद, समुज्ज्वल प्रेम-सुधा-धारा जिस मूल-स्रोतसे प्रवाहित होती है, और जिस प्रेम-सुधा-धाराका प्रत्येक सुधाकण नित्य प्रवाही प्रेमसुधाका रसार्णव होता है, उस प्रेमका अनन्त अगाध उदधि है – श्रीराधाका आनन-चन्द्र। उस आनन-चन्द्रपर दृष्टि पड़ते ही श्रीकृष्णका तो सबकुछ ही समर्पित हो जाता है। आत्मसमर्पणकी पूर्णता होते ही ब्रजेन्द्रनन्दन परम अनुरागके मधुर सागरमें गोते लगाने लगते हैं। ओह ! राधा-आननके एक-एक अणुसे, एक-एक रोमसे ऐसी प्रेम-सुधा-धारा प्रवाहित होती है, कि उसकी एक बूँदके आस्वादनकी भी शक्ति प्रियतम श्रीकृष्णके नेत्रोंमें नहीं बच रहती। कितनी मधुर, कितनी सुन्दर है उनकी यह उत्कण्ठा !

विप्रलंभका स्वभाव ही होता है – भीतर पाना और बाहर खो देना। इसीलिये प्रियतम श्रीकृष्णकी परम चञ्चल आँखें श्रीराधामुखका दर्शन करते ही अपलक – अचञ्चल हो उठती हैं। प्रिया श्रीराधाका प्रेम जिसके अन्तरमें प्रकट होता है, वही जानता है कि उसका मधुर, किन्तु साथ ही वक्र विक्रम क्या रङ्ग लाता है। अभी तक तो ब्रजेन्द्रनन्दन अपने सखाओंको अपना वंशी-समाकर्षण-वैभव दिखा-दिखाकर अहङ्कारके गर्वमें फूल रहे थे। उनका गर्व राधा-नयन-कटाक्षमाला चूर-चूर कर देती है। वंशी मौन हो जाती है। हृदयमें जब प्रेमकी आनन्दधारा बहने लगती है तो वंशीके 'क्लीं' – कामबीजका सरस पक्व फल तो प्राप्त हो ही जाता है, अब वंशीका प्रयोजन ही नहीं रहता। नदीके

कूलको प्राप्त करनेके लिये ही नौका आवश्यक होती है। जब कूल ही मिल गया तो फिर नौका निरर्थक हो जाती है। वंशी माधुर्यजनित अमृतवर्षा ही तो करती थी, जब वंशीवादक ही स्वयं राधा–मुखरूपी माधुर्यसिन्धुमें समाहित हो गये तो वंशीका अहङ्कार भी चूर-चूर हो जाता है। प्रियाननका सौन्दर्य-माधुर्य सर्वजयी है। हरे बाँसकी बाँसुरी तो श्रीकृष्णके अधरामृतसे सनकर मधुर रसके बीज वपन करती है, किन्तु श्रीराधा तो समग्र मधुर रसकी मूल आश्रय-मूर्त्ति है। जहाँ प्रेमकी पराकाष्ठारूप आदित्यका उदय हो जाय, वहाँ जुगनूके समान मुरली भला कैसे चमकेगी ? जहाँ जलनिधि हो वहाँ ओसकणकी बिसात ही क्या ? साधनसिद्धा गोपियोंमें प्रेमबीज-वितरणार्थ ही मुरलीका जादू चलता है। श्रीराधा कोई साधनसिद्धा गोपी थोड़े ही हैं, वे तो नित्यधाम गोलोककी अधीश्वरी, प्रियतम-समाकर्षिणी, श्रीकृष्ण-प्राणेश्वरी हैं। स्वयं श्रीकृष्ण ही जिसके नेत्रोंका अञ्जन बननेको, अपना सर्वात्म-समर्पण करके जिस सत्ताके आराधक होनेमें अपना सौभाग्य-साफल्य समझ रहे हों, वहाँ बिचारी हरित बाँसकी बाँसुरीकी बिसात ही कहाँ है जो बोले ! बस! मुरली अपने स्वस्थान – नन्दनन्दनकी कटिफेंटमें बाँध दी जाती है।।५३४।।

दो रसमय हृदयों के जब है आता क्षण जुड़ने का प्रियतम!
उसका संयोग कहाँ कैसे लगता है, क्या जाने, प्रियतम!
वे सरल दुधमुँहे-से शिशु, जो सहचर थे साँवर के, प्रियतम!
अतएव सखाकी चादरको कर्षित कर वे बोले, प्रियतम ॥५३५॥

जब दो रसमय हृदयोंके परस्पर जुड़नेका समय आता है, तब उसका संयोग कहाँ, कैसे लगता है – यह बात वे साँवरके सहचर-दुधमुँहे सरल शिशु क्या जानें ? इसीलिये वे अपने प्राणसखा नीलसुन्दरकी चादरको कर्षित करके तत्क्षण बोल उठे –।।५३५।।

भैया! क्या है तूँ देख रहा, तेरे श्रीभैया की,' प्रियतम
बहिनें एवं उनकी सखियाँ हैं नहा रही सुखसे; प्रियतम!
चल, चल, विलम्ब मत कर, आगे क्रीड़ा करनी हो तो, प्रियतम!
या यहीं नहानेकी रुचि हो तेरी भी तो कह दे; प्रियतम ॥५३६॥

अरे भैया ! तू क्या देख रहा है ? मुझसे सुन ले। तेरे श्रीभैयाकी बहिनें और उनकी सहचरियाँ सुखसे स्नान कर रही हैं, इतनी-सी तो बात है। देख, अब जल्दी चल; बिल्कुल विलम्ब मत कर यदि तुझे आगे क्रीड़ा करनी हो तो। अन्यथा यदि तेरी भी यहीं नहानेकी रुचि हो, तो हम सबको स्पष्ट बतला दे।'।।५३६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यही दशा नन्दनन्दनके अनुगामी सरल सखाओंकी भी होती है। यहाँ दुधमुँहेका अर्थ यह नहीं मानना चाहिये कि वे वयमें अत्यन्त लघु – मात्र दूध पीनेवाले शिशु ही है। दुधमुँहा उसे कहा जाता हैं जिस शिशुका अन्नप्राशन-संस्कार नहीं हुआ है, और जो मात्र माताके स्तन्य दूधपर ही अवलम्बित हो। ये सभी सखा इस अर्थमें दुधमुँहे नहीं हैं।

यहाँ पू.गुरुदेवने सखाओंके लिये 'दुधमुँहा' शब्द इस अर्थमें प्रयोग किया है कि वे सभी सखा स्त्री-पुरुष सम्बन्धी प्रेमाकर्षणके क्षेत्रमें सर्वथा अबोध हैं। जिस कालकी यह लीला है, उस समय नन्दनन्दनकी वय मात्र सात वर्ष, एक माह, सोलह दिवसकी थी। श्रीकृष्णके सखाओंका मात्र एक वर्ग – जिसमें सुबल-श्रीदाम एवं मधुमङ्गल आदि मुख्य थे, नन्दनन्दनसे वयमें दो वर्षसे अधिकके सखाओंका था। सखाओंका यह एक वर्ग ही नौ वर्षकी वयको पार कर चुका था। श्रीकृष्णके साथ आये अधिकांश बालकोंका मन इतना अबोध था कि उन्हें प्रेमजन्य आकर्षणका ज्ञान ही नहीं था।

इन सखाओंकी तो मात्र माखन, दही, दूध, मिष्ठान्न खाने, नाचने–गाने, उछल-कूदकी चपल क्रीड़ाओंमें ही रुचि थी। ये अपने प्राणसखाको सर्वाधिक प्यार अवश्य करते थे। इनका स्वप्नमें-जागरणमें क्षणभरके लिये भी अपने सखासे वियोग नहीं होता था। इनकी निद्रा भी श्रीकृष्णकी प्रगाढ़ स्मृतिजन्य तल्लीनतारूप ही होती थी। ये अपने सखा श्रीकृष्णके वियोगमें पलभर भी जीवित नहीं रह सकते थे। इन्हें गोपाङ्गनाओं – गोपबालाओंमें इतनी ही रुचि थी कि उन्हें मुख बनाकर चिढ़ाया जाय, उनकी हास्यास्पद अनुकृति की जाय, उनकी जलभरी गगरी ढुलका दी जाय, उनके गृहोंमें माखन चुराकर उनके दधिभाण्ड, नवनीतभाण्ड फोड़ दिये जावें ओर वानरोंकी-सी चञ्चल क्रीड़ाएँ की जावें। स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाओंमें अन्य प्रकारका कोई प्रेमजन्य समर्पणात्मक आकर्षण भी होता है, इससे ये – दुधमुँहा बालक जैसे अन्य स्वादसे अपरिचित ही रहता है – पूरे अबोध थे।

अतः जब इन सखाओंने देखा कि उनका प्राणप्रिय सखा कन्नू अपलक स्नान करती समवयस्का कन्याओंकी ओर एकटक निहार रहा है, उसने बाँसुरीवादन भी स्थगित कर दिया है, बालसुलभ चञ्चलताके स्थानपर एक विलक्षण गंभीरता उसके वदन एवं आननमें परिलक्षित हो रही है, तो इनमेंसे एक स्तोककृष्ण नामक सखा तुरन्त ही अपने अग्रज एवं उसे सर्वाधिक प्रेम करनेवाले श्रीकृष्णका पीताम्बर खींचता हुआ बोल उठता है – " अरे भैया ! तू क्या देख रहा है ? ये तो हमारे श्रीभैयाकी दोनों बहनें एवं उनकी सखियाँ हैं, जो सहज सुखपूर्वक स्नान कर रही हैं। चल, चल, विलम्ब मत कर, अपनेको तो अभी अनेक खेल खेलने हैं। हाँ, यदि तेरी भी इस सरोवरमें इनकी ही भाँति स्नान करनेकी रुचि हो तो स्पष्ट कह दे, ताकि यहाँ जल-स्नानका कौतुक ही हो।"

अपने परम प्रिय सखाकी बातका आज प्रथम बार श्रीकृष्ण कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं। वह अबोध सखा, बिचारा क्या जाने कि उसके सखा लीलासिन्धु कन्नूकी अनादि अनन्त लीलाएँ हैं। वह रसराज है। केवल सख्यरस-अवगाहन ही उसकी सीमा नहीं है। क्षणमें ही जहाँ वह वात्सल्य -रस-सिन्धुका विषय बन जाता है, तो दूसरे ही क्षण उसमें अनन्त माधुर्यका स्फोट भी हो उठता है। जहाँ पहले क्षण वह शिशुकी मुग्धताको वरण किये है, तो दूसरे ही क्षण उसे शिशुसे पौगण्ड एवं पौगण्डसे कैशोरजन्य भावोंको ग्रहण करते किसी विशेष कालमानकी अपेक्षा नहीं होती। उसके वय-परिवर्त्तनकी, रस-परिवर्त्तनकी 'अथ-इति' निर्देश कर देना कि यहाँ तो वात्सल्यरसका प्रारम्भ है, और यहाँ वात्सल्यकी परिसमाप्ति होकर पौगण्डजन्य सख्यरसका प्रादुर्भाव हुआ, और यहाँ पौगण्डका अन्त होकर कैशोरजन्य मधुरभावका प्रकाश हुआ – इस प्रकार इत्थंभूत निर्धारणा कर देना आजतक किसीके लिये संभव नहीं हुआ है।

लीला-निर्वाहके लिये एक अभिनव प्रतीयमान काल-नियंत्रण है अवश्य, पर वह सब-का-सब सर्वथा सच्चिदानन्दमय है, अनिर्वचनीय, अचिन्त्य है। ब्रजेन्द्रनन्दनकी लीलामहाशक्ति कहाँसे, किस लीलास्रोतको मोड़ देती है, अन्तर्हित कर देती है, एवं पुनः उसे उद्‌बुद्धकर प्रसरित कर देती है – इसे तो कोई उनकी कृपाशक्तिसे अनुप्राणित हुआ प्राणी ही किसी अंशमें भले ही जान सके, किन्तु उसका आरंभ कब होगा, कब हुआ एवं इसके अवसानकी सीमा कहाँ होगी, इसे निर्धारित कर लेना तो उसके लिये भी असंभव ही है।

अतः इन शिशुमनके सखाओंके लिये यह संभव ही नहीं है कि दो रसमय हृदयोंके परस्पर जुड़कर एक होनेका क्षण, सचमुच अभी ही आ गया है, और यह संयोजन उनके सम्मुख मात्र एक दृष्टि-मिलनमें ही संघटित हो चुका है, इसे जान पावें। ।।५३५–५३६।।

सॉंवर ने उत्तर नहीं दिया, ली दृष्टि हटा उसने, प्रियतम !
अविलम्ब उस तरफ से फिर वह चुपचाप चल पड़ा भी, प्रियतम !

प्रतिदिन के निर्धारित पथसे पूरब की ओर नटा प्रियतम।
उल्लास नित्य रहता, उसकी छाया तक पर न रही, प्रियतम।५३७।।

नीलसुन्दरने शिशुओंको कुछ भी उत्तर नहीं दिया; उन्होंने तुरंत अपनी दृष्टि उधरसे हटा ली। इतना ही नहीं, वे आगे भी चुपचाप चल पड़े। प्रतिदिनके निर्धारित पथसे वे पूर्वकी ओर अग्रसर हुए। किन्तु जो उल्लास उनके मुख-सरोजपर प्रतिदिन रहता था, उसकी छाया तक भी आज न थी।।५३७।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

स्तोककृष्णके प्रश्नका उत्तर उसका सखा कन्नू नहीं ही देता है। हाँ, यह अवश्य होता है कि कन्नू राधाकिशोरीसे चार होती हुई अपनी नजरें संवरण कर लेता है। सरोवरके तटसे वह चुपचाप प्रति दिवसकी तरह ही अपने निर्धारित पथसे पूरबकी ओर गौओंके लिये चल भी पड़ता है। अब अन्तर यही है कि उसके चरण तो वनमें पथ-सञ्चरण कर रहे होते हैं, किन्तु उसका मन सुन्दरीसरोवरमें स्नान करती बाला भानुनन्दिनीके पास ही अपहृत हुआ, बन्धक हो जाता है। उस रूपोदधिमें डूबा कन्नूका मन विचारने लगता है –

'ओह ! ऐसे विश्वविमोहन सौन्दर्यके दर्शन तो मुझे आज ही हुए हैं। यद्यपि मैं सरोवरसे अतिशय दूर चला आया हूँ, वे बालाएँ भी मेरे दृष्टिपथसे हट गयी हैं, किन्तु मेरे प्राण तो अभी भी उस त्रैलोक्य–मनोरम आनन–सरोरुहपर भ्रमरकी तरह मँडरा रहे हैं। अब भी मेरे चित्तमें राधाकी एक-एक भङ्गिमासे सौन्दर्यके, माधुर्यके, लावण्यके, सरलताके निर्झर स्फुटित हो रहे हैं। उसकी आकृति कैसी नयन-सुखद है। विद्युल्लता कहूँ, अथवा ज्योतिर्मान् कुन्दनकी द्युति भरी है उसकी अङ्गकान्तिमें ? सम्पूर्ण हृद ही उस विद्युत्-द्युतिसे उद्भासित हो रहा था। अहा ! उसके दर्शनसे मेरे रोम-रोममें अबतक सुधाका प्रसरण है। मेरे नयन-पथसे प्रवेशकर क्या वह मेरे प्राणोंमें समा गयी है ? उसके पीताभ अङ्गोंसे प्रवाहित आनन्दसे मेरा रोम-रोम अबतक क्यों पूरित हो रहा है ? उसके कटिदेशमें नीला लहँगा परिशोभित था। ओह ! वक्षोजोंके रूपमें दो अविकसित पद्मकोरक अबतक नयनोंको किस प्रकार आकर्षित कर रहे हैं ? स्वर्णाभ रोमराजिसे भरा कटिसे ऊपरका निर्वस्त्र अङ्गभाग; मृदु हास्य-समन्वित आनन-सरोज अभी भी मेरी स्मृतिमें छाये हैं। वे सुन्दरताकी समस्त सीमाएँ छिन्न-भिन्न कर रहे हैं।'

लीलाशक्तिकी अचिन्त्य प्रेरणासे ब्रजेन्द्रनन्दनके हृत्तलमें पूर्वराग-महाभावकी एक विद्युच्छटा-सी जग उठती है, और वह परमाह्लादमयी ज्योति राधा-मुख-सरोजकी आकृतिमें मिलकर उनके हृदयको चिर प्रीति-प्रकाशसे सराबोर कर देती है। राधा-आनन उनके हृदयमें अपना अखण्ड चिरस्थायी आवास बना लेता है।

अपने सखा कन्नूमें उसके सखा प्रतिदिवस ही जो सख्यरसकी चञ्चलता, चपल बाल्योचित क्रीड़ा-कौतुकका उल्लास नित नवीन वेगसे उमड़ता पाते थे, वे भला आज कहाँसे पावें ?

सीमित रसावगाहनमें लहराते इन बिचारे सख्य रस–रसिक सखाओंको क्या पता कि उनके सखा कन्नूके रोम-रोममें श्रीदाम भैयाकी बहिनके श्रीअङ्गोंका सौन्दर्य, उसका नित्य नव-नवायमान लावण्य, उसके प्रेमकी मधुरिमा लबालब आपूरित हो गयी है। वह आपूरित ही नहीं हुई है, अपितु क्षण-क्षणमें बढ़कर कोटिगुणित होती जा रही है। कन्नू वस्तुतः उदास नहीं है। वह भानुकन्याके अपरिसीम प्रेमानन्द-तरङ्गोंमें लहरा रहा है, अतः अन्य छीलर रस उसे सुहा नहीं रहे हैं। यह तो नियम ही है कि जब किसीका भी मन अनन्त पारावाररहित प्रेमसिन्धुकी ऊर्मियोंमें प्रवाहित हो उठेगा, उसमें बहिःरससे उपरति तो होगी ही। बहिःरसके उल्लासकी छायातक ब्रजेन्द्रनन्दनमें नहीं होना इसी हेतुसे है।।।५३७।।

शिशुओं ने किया प्रयास अथक, जिससे हँस पड़े सखा, प्रियतम!
कृत्रिम मुसकान कभी क्षण भर होठों पर, पर आती, प्रियतम!
कोई कौतुक न हुआ अतुलित, लग सकी न होड़ तथा, प्रियतम!
उनमें वह वेणु बजाने की या शृङ्ग फूंकने की, प्रियतम ॥५३८॥

शिशुओंने अथक प्रयास किया, जिससे नीलसुन्दर हँस पड़ें। पर उनके सभी परिश्रमका मात्र इतना ही फल हुआ कि कृत्रिम मुस्कान साँवरके होठोंपर कभी क्षणभरके लिये नाच उठती। बस, इसके अतिरिक्त उल्लासका कोई भी चिह्न उनमें न दीखता। आज कोई भी अतुलित कौतुक नहीं हुआ। न परस्परमें कोई होड़ लग सकी उनके। वेणु बजानेकी अथवा शृङ्ग फूँकनेकी प्रतिस्पर्द्धा करनेका खेल भी आज सर्वथा न हो सका.......... ॥५३८॥

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

शिशु सखा अथक प्रयास कर रहे हैं कि उनका कन्नू भैया मुसका उठे। उनकी चञ्चल बन्दर-कुदान-क्रीड़ा में वह भी सम्मिलित हो; चञ्चल बन्दरोंकी अनुकृति करता हुआ उनसे स्पर्द्धा करे; मेंढकोंकी तरह उछले, मयूरोंके समान नृत्य करे, राजहंसोंके समान उड़नेके लिये अपने हाथोंको पंखोंकी आकृतिका स्वरूप दे। वह बंशी बजावे और वे सींगा फूँकें; परन्तु उसका मन कहीं अन्यत्र है। अपने सखाओंकी उदासी दूर करनेके लिये वह क्षणार्धके लिये अपने मनको हँसनेमें, चञ्चल होनेमें लगानेकी चेष्टा अवश्य करता है, किन्तु तत्क्षण ही उसका मन उसके हाथसे निकलकर सुन्दरी सरोवरके मध्य स्नान करती मुसकाती राधाके पास चला जाता है। वह मन-ही-मन मनुहार कर बैठता है – " नहीं, नहीं किशोरी, तेरे इतने मृदुल चरण इस कठोर धरापर रखने योग्य नहीं हैं। इनको रखनेका उपयुक्त स्थान तो मेरा हृदय है। प्रिये ! कब वह अनिर्वचनीय सौभाग्य प्राप्त होगा, जब तेरे सुकोमल चरणोंको मैं अपनी सुकोमलतम हथेलियोंमें रखकर अपने नयनोंसे सहलाऊँगा, अपने भालसे संस्पर्श कराऊँगा ? "

ओह ! बिचारे भोले गोपशिशु क्या जानें कि उनके कन्नूके हृदयमें कैसी मुग्ध एवं कितनी तीव्र उत्कण्ठा जग उठी है। कन्नूका हृदय प्रेम-दीपककी लौ बना जल रहा है। यह लौ ऐसी उज्ज्वल मञ्जुल ज्योति बिखेर रही है, जिसके निर्मल आलोकमें वह अपनी प्राणप्रियाको अपने हृदय-सिंहासनमें विराजित किये ललाटसे चरणपर्यन्त भ्रमरकी तरह मँडरा-मँडराकर निहार रहा है। निहारते-निहारते ही उसे भय होने लगता है कि कहीं उसकी नजर उसकी प्रियाको नहीं लग जावे। और तब वह अपने ही अङ्गोंकी श्यामलताको लेकर अपनी प्रियाके कपोलोंपर श्याम मसिबिन्दु बनाने लगता है। ओंह ! कृष्णप्रियाके कपोलोंपर राजित मसिबिन्दुकी शोभा निहारनेपर तो ब्रजेन्द्रनन्दनका रोम-रोम ही न्यौछावर हो उठता है, मानो सचमुच ही वात्सल्य एवं सख्यरसकी पकड़से छूटकर मत्त मिलिन्द हुआ ब्रजेन्द्रनन्दनका मन अर्ध-विकसित सहस्रदल स्वर्णकमलपर जा बैठा हो और पूर्वकी अपेक्षा अधिक मधुरतम परागका आस्वाद पाकर तत्क्षण वहीं अचेत हुआ उसीसे चिपक गया हो ॥५३८॥

आने पर छाक उसे लेकर साँवर अवश्य बैठा, प्रियतम!
भोजन-रस लेने वालों का मण्डल भी वही बना, प्रियतम!
केवल दो ग्रास लिये पर जब उस दिन साँवर ने ही, प्रियतम!
खाते कैसे शिशु वे, सब कुछ सामग्री पड़ी रही, प्रियतम ॥५३९॥

मध्याह होनेपर यशोदा मैयाकी भेजी हुई छाक आ गयी; उसे लेकर साँवर बैठ अवश्य गये, भोजन रसका आस्वादन करनेवाले शिशु सखाओंका मण्डल भी प्रतिदिनकी भाँति ही बना; किन्तु उस दिन साँवरने केवल दो

ग्रास अपने मुखमें रख लिये, इसीलिये शिशु सखा भी कुछ भी न खा सके। साँवरने नहीं खाया तो वे कैसे खा लें ? सम्पूर्ण सामग्री ज्यों-की-त्यों पड़ी रही..........।।५३९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

यह सत्य है कि क्षीरसिन्धुके मन्थनसे सुधा निकली थी। अमरवृन्द सुधाका पानकर तृप्त भी हुए थे, किन्तु उस सुधामें वह अनुपम स्वाद सर्वथा ही नहीं था, जो जननी यशोदा द्वारा अपने पुत्र ब्रजेन्द्रनन्दनको भेजी छाक (वनभोजन)में है। इसीलिये जबसे यशोदानन्दन पहले वत्सपालक और फिर गोपालक बने हैं, उन्हें इस छाकसे 'अलम्'का भान कभी नहीं हुआ है, प्रत्युत उनकी यह छाक-भोजनकी अभिलाषा प्रतिदिन नव-नव वेगसे बढती ही गयी है। जब उन्हें स्वयंको ही यह छाक अतिशय सुस्वादु लगती है, तो वे अपने सखाओंको भी इसे खूब मनुहार कर-करके खिलावें – यह तो प्रतिदिनकी स्वाभाविक प्रक्रिया हो ही गयी है।

प्रतिदिनकी तरह ही आज भी श्रीकृष्णचन्द्रको वेष्टितकर गोपशिशुओंने आसन ग्रहण किया है। पहले सुबल, मधुमङ्गल, श्रीदाम आदि वयस्क सखाओंकी पंक्ति है, इसके पश्चात् अपेक्षाकृत बृहत् पंक्तियाँ बनी हैं। पहलीको आवृत किये दूसरी, फिर दूसरी पंक्तिको आवृत किये, उससे भी बृहत् तीसरी पंक्ति बनी है। इसी प्रकार चौथी, पाँचवीं तथा अगली असंख्य पंक्तियाँ बनी हैं। गोपबालकोंने असंख्य पंक्तियोंमें छाक-भोजनका आयोजन किया है। प्रत्येक सखाकी यह अभ्रान्त अनुभूति है कि मेरा कन्हैया सर्वथा मेरे पार्श्वमें ही मेरी ओर दृष्टि किये आसीन है। उसके नेत्रोंसे स्नेहकी अजस्र धारा बह रही है। उत्फुल्ल नेत्र किये असंख्य गोपशिशु अपने कोटि-प्राण-प्रतिम सखाको निहार रहे हैं। वह पहले मुख-ग्रास उंठा ले तो पश्चात् वे सभी सखागण भी कुछ भोजन करें। सबने छाककी अपनी-अपनी सर्वोत्तम वस्तुएँ कन्नूके सम्मुख रख दी हैं। किन्तु न जाने क्यों आज नियममें व्यतिक्रम घटित हो रहा है। प्रत्येक दिवस तो कन्हैया हँसते हुए सभीके मुखोंमें स्वयं कौर देता है। आज तो वह गुमसुम बना मन-ही-मन कुछ बुदबुदाता चुपचाप बैठा है; न खाता है, न खिलाता है। उसकी मुख-भङ्गिमा अतिशय शान्त है। प्रतिदिनकी तरह वह नेत्रोंसे, होठोंकी सञ्चालन-क्रियासे कौनसा मिष्ठान्न बहुत सुस्वादु लगा और कौनंसा अच्छा नहीं लगा – कुछ भी सङ्केत नहीं कर रहा है। जो उसे रुचिकर लगती है, उन वस्तुओंको सखाओंके मुखमें रख देनेकी जोर-जबर्दस्तीकी क्रिया भी आज वह नहीं कर रहा है। प्रतिदिवस तो वह एक-से-एक सुन्दर कौशलपूर्ण विनोद करता है – कभी मोदकमें निम्बचूर्ण मिलाकर मधुमङ्गलके मुखमें ठूँस देता है, कभी उसकी खीरमें कन्दके स्थानपर नमक मिला देता है; किन्तु आज तो वह मात्र दो कौर खाकर ही पत्तलसे खड़ा हो गया है। केवल एक मुसकानकी रेखा उसके मुखपर अवश्य आयी है, जब उसने सभी सखाओंको भरपेट खानेका आग्रहकर, अपना आसन त्यागकर एकान्तमें पीत झिण्टीके पुष्पोंके कुञ्जमें शयन करनेकी रुचि जतलायी है। सभी सखा हतप्रभ हैं। जब उनका प्राणसखा ही भरी पत्तल छोड़कर बुभुक्षित ही उठ गया, तो भला, वे रुचिसे कैसे भोजन करें।

आज तो उनके कन्नूके महामरकत-श्यामल अङ्गोंकी भङ्गिमा ही सभी सखाओंके प्रति, प्रतिदिन होनेवाले असाधारण परिहास-वाक्योंके प्रति, भोजन-द्रव्योंके प्रति, सुन्दरातिसुन्दर बालकेलिके प्रति, अरुचिमूलक हो रही है। अतः सभी सामग्री ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती है – कोई भी उसे उदरस्थ नहीं कर पाता है। ।।५३९।।

कोमल तृण राशि हरित पर भी गायें सब चून रहीं, प्रियतम!
अपने चालक-दल से चालित, उन भिन्न दिशाओं में, प्रियतम!
अपराह्न काल तक कानन में गिरिवर के परिसर के, प्रियतम!
वे भी पर सत्य पेट भरकर चर सकीं न आज भला, प्रियतम ।।५४०।।

हरी-हरी कोमल तृण राशिपर गायें सब ओर घूम रही थीं। अपने चालक दलसे चालित होकर गायोंकी भिन्न-भिन्न दिशाओंमें गति भी होती रहती। अपराह्न कालतक गिरिवरके परिसरमें, परिसरके काननमें वे गायें घूमती रहीं, पर अचरजकी बात है कि वे चतुष्पद भी आज पेट भरकर चर न सके। ।।५४०।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

वनमें नवीन तृणाङ्कुरोंका भला कहीं अभाव थोड़े ही है। अदूरवर्त्ती तृण-श्यामल भूभागपर राशि-राशि गौएँ एवं गोवत्स स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं। सदैवकी भाँति आज भी अपने कृष्ण-कन्हैयापर उन सबकी दृष्टि केन्द्रित है। उनका प्राणधन कृष्ण पुलिन-भोजनका रस ले रहा हो, एवं उसका उद्दाम कौतुक चल रहा हो तो उसे देख-देखकर गौएँ भी हरित तृणोंका स्वाद ले-लेकर अपना उदर भर लेती हैं। वे वनमें, तृणसङ्कुल भूमिमें कहीं भी विचरें; परन्तु उनकी दृष्टि सदैव अपने गोपालको निहारती रहती है। उन्हें तृणाङ्कुरोंकी लालसा रहती है अवश्य, परन्तु वह लालसा तभीतक अभिवृद्ध होती है, और सन्तुष्टि भी उन्हें तभी होती है, जब उनकी अनुभूतिमें उनका गोपाल उन्हें उनकी गर्दनमें झूलता दिखता है, एवं कोमल-कोमल तृणराशि अपने हाथों उन्हें खिलाता है।

प्राणोंसे संयुक्त रहनेपर ही इन्द्रियोंमें विषयग्रहणकी सामर्थ्य रहती है। प्राणशून्य इन्द्रियोंमें कभी किसी रसकी अनुभूति होती है क्या ? गौओंके, गोवत्सोंके प्राण तो जुड़े हैं अपने पालक – गोपालसे । फिर आज गोपाल उदास है, वह अपनी पत्तल मात्र स्पर्श करके ही बिना खाये-पिये पीत झिण्टीकुञ्जमें एकान्तमें अनमना, उदासीन होकर चला गया है, और गौएँ-गोवत्स तृणचारी बने रहें, यह तो असंभव ही है। अतः गायें, गोवत्स चालकदलसे चालित होकर भी अपराह्न कालतक काननमें गिरिके परिसरमें भ्रमण करती हुई कन्हैयाको निहारती रही हैं। उनके नेत्र अश्रुवर्षा करते रहते हैं, तथा पेटभरकर आज तृणचारण नहीं ही करते हैं।।५४०।।

साँवर की अकस्मात् ऐसी अत्यन्त उदासी के, प्रियतम !
कारण का मित्रमण्डली वह अनुमान लगाती थी, प्रियतम !
कोई सोचता कहीं क्या तो मुझसे ही भूल हुई, प्रियतम !
या और किसी शिशुसे चिढ़कर हो रहा खिन्न यह है, प्रियतम ।।५४१।।

अकस्मात् साँवरकी ऐसी अत्यन्त गम्भीर उदासीके कारणका मित्रमण्डली अनुमान लगाने लगी। कोई सोचने लगता, क्या कोई मुझसे ही तो भूल नहीं हो गयी ? अथवा किसी शिशुसे चिढ़कर नीलसुन्दर इतना खिन्न हो गया है ?।।५४१।।

आती यह बात किसी के थी मनमें भोरेपनकी, प्रियतम !
'क्षणभर में, अहो ! अलक्ष्य नजर लग सकती है इसको,' प्रियतम !
'इसलिये सदा मैया जैसे करती है, मैं कर दूँ;' प्रियतम !
गोपुच्छ फिरा साँवर पर वह परिणाम देखता था, प्रियतम ।।५४२।।

किसीके भोले मनमें भोलेपनकी यह बात भी आने लग गयी- 'अरे ! क्षणभरमें किसीकी नजर भी तो इसे लग ही सकती है। अतएव सदा यशोदा मैया जैसे करती हैं, वैसे मैं भी कर देता हूँ।' तथा यह सोचकर गायोंकी पूँछ नीलसुन्दरके चारों ओर फिरा-फिराकर अपनी इस क्रियाका परिणाम वह देखने लगता।। ५४२।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

सभी सखा मिलकर मधुमङ्गलका छोर पकड़ लेते हैं। वह ब्राह्मण ऋषिपुत्र है, वह सर्वज्ञा तपस्विनी पौर्णमासीका प्रपौत्र स्नातक है। आखिर सखाओंको श्रीकृष्णके उदासीन होनेका कोई कारण तो ढूँढना ही है। अतः सभी उसके सम्मुख लड्डुओंका थाल रखकर निदान-निर्देश करनेका हठ कर बैठते हैं।

स्तोककृष्णको तो सरासर अपनी भूल ही समझमें आ रही है। उसे उसके कन्नू भैयाको टोकना कदापि नहीं चाहिये था। अरे, यदि कन्नू श्रीदाम भैयाकी बहिनोंकी ओर एकटक देख रहा था, तो इसमें उसे हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता ही कहाँ थी। उसीने तो उसे वहाँसे निवृत्तकर आगे बढ़नेकी प्रेरणा दी, और फलस्वरूप निश्चय ही कन्नू उसीसे रुष्ट होकर आज भोजन नहीं कर पाया है। तोक रुआँसा होकर सुबल एवं श्रीदामके सम्मुख कन्नूसे क्षमा करा देनेकी प्रार्थना कर रहा है।

मधुमङ्गलने तो अपना निदान प्रारंभ भी कर दिया। सखागण पार्श्वमें ही तृण चरती कपिला गौको ले आते हैं। मधुमङ्गलने ठीक मैया यशोदाकी अनुकृति करते हुए उसकी पूँछ पकड़कर तीन बार अपने सखा कन्नूका संस्पर्श करा दिया है। सभी सखा अत्यन्त उत्सुकतासे मधुमङ्गलके उपचारका फल देखनेको आतुर हैं। किन्तु उनका कन्नू तो नेत्र बन्द किये चुपचाप एक पीत पुष्पलताके सहारे ध्यानस्थ बैठा है। उसके आननपर तो बाल–चापल्य, अथवा मुसकानकी रेखा भी उदय नहीं हो रही है।

मधुमङ्गल शीघ्र हार माननेवाला तो है नहीं। वह अपने उपचारमें कहीं कोई कसर भी नहीं छोड़ता है। काले सरसोंके दाने श्याम कलेवरपर औंछकर अग्निमें डाले जाते हैं। एक सखा किसी वनवासीके गृहसे सूप उठाकर ले आता है, उसके कोनेसे कन्नूका सिर एवं उदरस्थल बहुत ही शनैः-शनैः स्पर्श कराया जाता है। गोमूत्रके छींटे भी दे दिये जाते हैं। चिकनी गोरजका भी संस्पर्श कराया जाता है। अन्ततः मधुमङ्गल ॐ केशवाय नमः, माधवाय नमः, नारायणाय नमः, गोविन्दाय नमः, विष्णवे नमः, मधुसूदनाय नमः, त्रिविक्रमाय नमः, वामनाय नमः, श्रीधराय नमः, हृषीकेशाय नमः, पद्मनाभाय नमः, दामोदराय नमः – भगवान् नारायणके इन द्वादश नामोंका उच्चारण भी करता है। एवं स्तोककृष्ण श्रीकृष्णके अङ्गोंमें गोबर संस्पर्श भी कराता जाता है। फिर भी श्रीकृष्णकी उदासीनतामें कहीं कोई परिवर्त्तन नहीं आता है। ।।५४१–५४२।।

श्रीभैया, तथा उसीने जब संकेत किया अपने, प्रियतम!
उस मित्र सुबल सद्‌गुणशाली शिशुको, तब, बस, ये दो, प्रियतम!
ये बात जान पाये सर पर आँखों के मिलने की, प्रियतम!
साँवर की और बहिन भोरी गोरी सहोदरा की, प्रियतम।। ५४३ ।।

श्रीभैया तथा उसके द्वारा ही संकेत मिलनेपर अत्यन्त सद्गुणशाली सुबल – बस, केवल ये दो – सरोवरपर नीलसुन्दरकी राधाकिशोरीसे आँख मिलनेकी बातकी कल्पना कर सके। मन-ही-मन श्रीदाम सोच रहा था – 'भैया नीलसुन्दरकी आज मेरी सहोदरा गोरी किन्तु अत्यन्त भोली बहन राधासे आँख मिली तो अवश्य है.......... ।'।।५४३।।

जब लगा प्रतीची-क्षितिज देव रवि का स्वागत करने, प्रियतम।
साँवर गो शिशुओं को लेकर वासस्थल पर आया, प्रियतम!
प्रतिदिन वंशीरव सुन पड़ता उपवन की सीमा से, प्रियतम!
नीरव आगमन किंतु उसका था आज यही पहला, प्रियतम।। ५४४ ।।

देखते-ही-देखते प्रतीची दिशामें देव दिनकर ढल पड़े तथा जब क्षितिज उनका स्वागत करने लग गया, तब नीलसुन्दर गोप शिशुओंको साथ लिये अपने घरपर आ पहुँचे। प्रतिदिन तो उपवनकी सीमासे ही वंशी-रव सुन पड़ता था, किन्तु आज प्रथम वार उनका गोष्ठमें आगमन नीरव भावसे हुआ। न वंशीकी काकली सुन पड़ी और न उनके मुख सरोजपर कोई उल्लासका ही चिह्न था..........।'।।५४४।।

उद्विग्न हुए सब-के-सब ही आ गये ग्रामवासी, प्रियतम!
मैया छाती से लगा उसे बेहाल हो रही थी, प्रियतम!
अपने अनमोल नीलमणि का आनन उदास इतना, प्रियतम!
उसने देखा था कभी नहीं अबतक सपने में भी, प्रियतम।।५४५।।

सभी ग्रामवासी उद्विग्न हुए-से नन्द-द्वारपर एकत्रित हो गये। मैया नीलसुन्दरको छातीसे लगाकर बेहाल-सी होने लग गयी। अपने अनमोल नीलमणिका मुख-सरोज इतना उदास उसने कभी भी नहीं देखा था। आजके पहले कभी भी, स्वप्नमें भी उसे ऐसी अनुभूति नहीं हुई थी। इसीलिये नन्दरानीकी आँखोंसे अजस्र अश्रुधारा बह चली।।५४५।।

रोती जननी को देख हँसी सूखी साँवर हँसता, प्रियतम!
देता प्रबोध भी कह कर यह, 'री! स्वस्थ सत्य मैं हूँ!' प्रियतम!
ब्यारू के लिये किंतु जब वह बैठा, तब जननी को, प्रियतम!
विश्वास करा न सका खाकर आधे का आधा ही, प्रियतम।।५४६।।

जननीकी यह दशा देखकर साँवर सूखी हँसी हँस देते, किञ्चित् प्रबोध भी देने लगते – 'अरी ! मैं सचमुच स्वस्थ हूँ।' किन्तु जब वे ब्यारू करनेके लिये आसनपर विराजे तब वे जननीको विश्वास न दिला सके; क्योंकि प्रत्यक्ष था कि वे थालमें परोसे हुए द्रव्योंका चतुर्थ अंश ही खा सके थे............।।५४६।।

दशमी के प्रातः भी उसका वैसा ही हाल रहा, प्रियतम!
मैया के हाथों से प्रस्तुत नवनीत, दही मीठा, प्रियतम!
औंटाया हुआ दूध गाढ़ा, ओदन, मिष्टान्न, सभी, प्रियतम!
वस्तुएँ कलेवा की जो थीं साँवर ने चख भर लीं, प्रियतम।।५४७।।

नवमी बीतकर आज दशमीका प्रातःकाल लग चुका था। किन्तु नीलसुन्दरकी स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मैयाके हाथोंसे प्रस्तुत नवनीत, मीठा दही, औंटाया हुआ दूध, अत्यन्त गाढ़ा दूध-भात, विभिन्न भाँतिके मिष्टान्न, कलेवेकी सभी वस्तुएँ – मैयाने परोसी थी, किन्तु नीलसुन्दरने केवल नाममात्रके लिये उन्हें चख भर लिया........। कलेवेकी वस्तुएं ज्यों-की-त्यों धरी रह गयीं।।५४७।।

गोचारण के मिस से तुरंत अटवी की ओर चला, प्रियतम!
टोली गायों की, मित्रों की वैसी ही संग चली, प्रियतम!
पर अन्यमनस्कपना जो था साँवर का कल-सा ही, प्रियतम!
शिशुओं से छिप न सका उसके किंचित् हँसने पर भी, प्रियतम।।५४८।।

अविलम्ब नीलसुन्दर गोचारणका बहाना करके अटवीकी ओर चल पड़े। गायोंकी टोली, मित्रोंका समुदाय वैसे ही साथ चला। किन्तु आज भी नीलसुन्दरका अन्यमनस्कपना जैसा कल था, वैसा-का-वैसा बना रहा। यह बात कभी-कभी उनके किञ्चित् हँस देनेपर भी शिशुओंसे छिप न सकी।।५४८।।

दैनन्दिन वह अरण्यका क्रम गो संरक्षण वाला, प्रियतम!
पूरा कर साँझ-समय साँवर जैसे ही घर लौटा, प्रियतम!
था हुआ छाक-भोजन जनमें, बस, नाम मात्र का ही, प्रियतम!
कहने के लिये पुनः उसने कर दी ब्यारू लीला, प्रियतम ।।५४९।।

गो संरक्षणका क्रम, दैनन्दिनीचर्या, अरण्यमें जैसे-तैसे कलकी भाँति ही पूरी हुई । संध्याके समय नीलसुन्दर वैसे ही घर भी लौटे। मैयाके पूछनेपर शिशुओंके द्वारा यह ज्ञात भी हो गया कि आज भी छाक-भोजनकी लीला भी नाममात्रकी ही हुई। ब्यारूकी लीला भी, उसी भाँति नीलसुन्दरने कहनेके लिये पूरी कर दी...........।।५४९।।

मैया कैसे धीरज धरती, थे प्राण विकल उसके, प्रियतम!
उन निपुण वैद्यवर को उसने बुलवाया छिप करके, प्रियतम!
भोरी थी वह, है नहीं, न था, होगा न कभी कोई, प्रियतम!
जो उसके नित्य निरामय उस शिशु की नाड़ी परखे, प्रियतम ।।५५०।।

मैया धीरज न रख सकी। उसके प्राण विकल हो रहे थे। उसने बृषभानुपुरसे सुनिपुण वैद्यको बुलवाया। किन्तु यह बात मैयाने किसीको ज्ञात होने न दी। वस्तुतः मैया भोली थी। अरे ! मैयाके नित्य निरामय शिशुकी नाड़ी परख सके, ऐसा वैद्य न तो कहीं कभी था, न है और न आगे कभी होगा...........।।५५०।।

जिज्ञासा

श्रीराधाको प्रथम दृष्टिमें देखने मात्रसे श्रीकृष्णका भोजन करना, हँसना-खेलना क्यों छूट गया, कृपया इसे सुस्पष्ट करें।

समाधान

रसिक सिद्ध सन्त श्रीपोद्दार महाराजने पवित्र प्रेमकी साङ्केतिक परिभाषा यों वर्णित की है –

इन्द्रिय-सुख-इच्छासे विरहित अतिशय मधुर शुद्ध अनुराग।
प्रियतम-सुखमय सहज उदित 'सर्वस्वत्याग' मन भोग-विराग।।
दिव्य ज्योति योगी-वांछित शुचि सिद्धि अनेक अलौकिक भुक्ति।
तीव्र ज्ञान-साधन-संयुत ज्ञानीजन-वांछित दुर्लभ मुक्ति।।
नहीं कामना-लेश किसीमें, नहीं कहीं ममता-मद-मान।
केवल हृदय प्रेम-रस-पूरित, निर्मल निरुपम दिव्य महान्।।
देना ही देना है जिसमें, लेनेका न कहीं कुछ काम।
नित देनेको, नित लेना ही सहज मानती वृत्ति ललाम।।

विशुद्ध प्रेमका सर्वप्रथम प्रारंभ ही त्यागसे होता है। जहाँ ऋषि-मुनि-वांछित मोक्षसुखपर्यंत स्वसुख-वाञ्छाका सहजरूपमें त्याग हो जाय, वहीं प्रेमका पूर्वराग-महाभाव प्रारंभ होता है। मुक्तिका अर्थ ही है – अहंतागत सत्ताका परमात्मसत्तामें पूर्ण विलय एवं प्रीति तथा पूर्वरागका अर्थ ही है – आत्मसत्ताका प्रियतम प्रेमास्पदमें पूर्ण एकत्व।

सभी शास्त्र एकमतसे कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण सब प्रकारसे पूर्ण हैं । उनमें अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त बल, अनन्त यश, अनन्त श्री, अनन्त ज्ञान, अनन्त वैराग्य जन्मसे ही हैं। जन्मसे लेकर लीलावसान पर्यन्त उनके सम्पूर्ण कार्य अलौकिक रहे हैं। गर्भसे भूमिस्थ होते ही जिस चमत्कारी ऐश्वर्यका प्रकाश वे करते हैं, उसके दो-एक उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

श्रीकृष्ण गर्भस्थावस्थासे भूमिस्थ हुए ही हैं। ज्यों ही माता यशोदा अपने भूमिस्थ पुत्रको आँखें खोलकर देखती हैं, उनके मुखपर आश्चर्य एवं भय छा जाता है। शिशुके श्याम कलेवरमें उनका स्वयंका मुख प्रतिबिम्बित होने लगता है। भयसे काँपती अपनी माताको नृसिंह, नृसिंह उच्चारण करती देखकर श्रीकृष्ण अपनी माया तिरोहित कर लेते हैं। माता उस चमत्कारको वात्सल्यरसके उमड़ते आवेगके सम्मुख अपना दृष्टिभ्रम मानकर अनदेखी कर जाती है। भावाभिभूत हुई कभी अपने पुत्रके सिरको अत्यन्त नीचे झुकाकर, कभी टेढ़ा करके, कभी बायें, कभी दाहिनी ओर घुमाकर और कभी ऊँचा उठाकर देखने लगती हैं। अश्रुविन्दुओंके रूपमें उनका स्नेहरस झरने लगता है।

यशोदानन्दन अभी मात्र पाँच दिवसके निरे शिशु हैं, इसी समय नन्दभवनकी ओर पूतनाका प्रस्थान होता है। कृशोदरी रमणीका उसका वेश देखकर सभी गोप-गोपियाँ उसे सम्पदधिष्ठात्री महालक्ष्मी समझ रहे हैं। कमलपुष्प घुमाती वह ब्रजेन्द्रगेहिनीसे अपना परिचय मथुरावासिनी ब्राह्मणीके रूपमें देती है, साथ ही कहती है कि मेरे इन सर्वमङ्गलदायी स्तनोंसे अमृत झरता है। इसके स्तन्यका पानकर तुम्हारा शिशु अमर हो जायगा, जबकि उसके स्तनोंमें सर्व प्राणहर कालकूट विष संलग्न है। वह यशोदानन्दको विष पिलाकर मार डालनेकी अभिसन्धि रचकर आयी है।

बाल्य लीलाविहारी कृष्ण नेत्र बन्दकर उसका कालकूट–मिश्रित स्तन्य चसक-चसककर पी जाते हैं। सर्वज्ञ स्वामी समझ रहे हैं कि मेरे उदरमें अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंके अनन्तानन्त जीव-समुदाय निवास कर रहे हैं। आश्चर्य ! वे सर्वलोकमहेश्वर अन्तर्देशमें जाकर उन्हें अभयदान करते हैं और हलाहलको पीकर भी उसकी ज्वालाको सुधाकी जीवनदायिनी मिठासमें परिवर्त्तित कर देते हैं । पूतना उनका प्राण हरण तो क्या करती, स्वयं हाहाकार करती प्राणत्याग कर बैठती है। श्रीकृष्ण उसे अपनी माताके समान गति देकर सीधे अपने गोलोकधाम भेज देते हैं। विस्तारभयसे उनके अनन्त ऐश्वर्यके ये मात्र कतिपय चमत्कार ही उल्लिखित किये गये हैं। ये सभी उदाहरण उनके सद्यःजात शिशु-अवस्थाके ही हैं।

इसी प्रकार उनके अनन्त बलके दो-चार उदाहरण देखें। नन्दनन्दनने पालनेपर स्वतः करवट बदल ली है और इस मङ्गलकृत्यके फलस्वरूप नन्दभवनमें अतिशय घूमधामसे उनका औत्थानिक उत्सव मनाया जा रहा है।

नन्दभवनके प्राङ्गणके एक भागमें अत्यन्त बृहदाकार शकट रखा है। शकटके नीचे स्तम्भोंसे सम्बद्ध एक अतिशय सुन्दर पलना टँगा है। जननी यशोदाने अपने पुत्रको आज इसी पलनेपर सुला दिया है। यशोदानन्दन अपने अङ्गुष्ठक्षरित रसको पी-पीकर प्रसन्न हो रहे हैं।

इसी समय सबसे अलक्षित वायुकी लहरके समान दैत्य उत्कच नन्दप्राङ्गणमें आ पहुँचता है। वह मन ही मन विचार करता है – " पूतनाके प्राण हरण करनेवाला , श्रीधरको गूँगा बनानेवाला, कागासुरको संज्ञाशून्य करके कंसके सभामण्डपमें उसके ही सामने फेंकने वाला, अपरिमित बलशाली यही बालक है। इससे सम्मुख युद्ध करना तो मृत्युको निमंत्रण देना ही है। अतः चुपचाप इस शकटमें आविष्ट हो जाऊँ। फिर अपने महान् भारी एवं विशाल शरीरभारसे शनैः-शनैः इस शकटको पृथ्वीमें दबा दूँगा। शकट चक्र भूमिमें धँसते जायेंगे। शकट (गाड़ी) का नीचेका हिस्सा बालकको पीसता हुआ धरातलसे जा लगेगा। इस प्रकार प्रच्छन्न रहकर ही इससे युद्ध करना चाहिये। उत्कचका निर्णय उसकी अपनी बुद्धिके अनुसार तो पूरी तरह निर्भूल ही था, किन्तु ज्यों ही वह दैत्य उस शकटमें आविष्ट हुआ, सहसा ही नन्दनन्दन रो-रोकर अपने हाथ-पैर उछालने लगते हैं। ऐसा लगता है – उन्हें क्षुधा लग गयी है। उनकी इसी रुदन-क्रियाके मध्य उनके सुकोमलतम चरणोंकी पगथली शकटसे जा लगती है। उत्कच तो शकटाविष्ट था ही। शकट आकाशमें उछलता है और टुकड़े- टुकडे होकर भूमिमें बिखर जाता है। उत्कच भी शकटके साथ ही चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। वायुदेह त्यागकर सर्वथा निर्मल, चिदानन्दमय देह धारणकर उत्कच नन्दनन्दनको प्रणामकर गोलोकधामकी ओर प्रस्थान करता है।

ऐसे ऐश्वर्यशाली तथा अनन्त बलशाली श्रीकृष्ण प्रिया राधाको देखते ही अपनी ऐश्वर्यपूर्ण भगवत्ताको, अपने अनन्त बलवान् सृष्टिनियन्ताके स्वरूपको, वंशीनिनादसे चराचरको मोहित करनेवाले अपने अनन्त यशनिकेतन रूपको, अपनी अनन्त श्रीको, शोभाको, अपने पूर्ण ज्ञानको, वैराग्यको – सबको आत्यन्तिक विस्मृतकर, मात्र उस गोपकन्याके अलकावलि-आवृत निरावरण स्नान करते रूपपर अतिशय मोहित – मुग्ध हो उठें – यही तो प्रेमका सर्वविजयी स्वरूप है। प्रेमकी पाठशालामें प्रवेश करते ही प्रेमतत्व श्रीकृष्णको यही प्रथम अक्षरज्ञान कराता है कि तुम अपनी भगवत्ताको, ऐश्वर्यको, बलको, ज्ञानको, वैराग्यको, धर्मको, पूर्णतया विस्मृतकर मात्र प्रेमी बनो। यहाँ यही हुआ है। वे अपने–आपको भी अपनी प्रियाकी स्मृतिमें विस्मृत कर गये हैं। अपनी अनन्त वात्सल्यमयी माताको, अपने नित्यके सङ्गी सखाओंको, अपनी गौओंको – बछड़ोंको, अपने क्रीड़ा–चापल्यको, इतना ही नहीं अपनी भोजन-पानकी रुचिको, निद्रातकको विस्मृत कर गये हैं। वे रुग्ण नहीं हैं इसीलिये बड़े से बड़े वैद्य भी उनका निदान नहीं कर पाते। उन्हें स्वयंकी स्मृति ही नहीं है। वे चाहनेपर भी मात्र क्षणके करोड़वें हिस्सेमें ही सखाओंकी स्मृति अपने मनः पटलपर उतार पाते हैं। उसके पश्चात् उनके स्थानपर भी उन्हें अपनी प्रिया राधा ही दिखने लगती है। वही सुन्दरी-सरोवर और वही आर्द्र कुन्तलोंसे मण्डित कुन्दनानना बृषभानुजा। श्रीकृष्ण नहीं चाहते कि उनके सखागण उदास हों किन्तु सरसताके सिन्धुमें डूबे वे अब छीलरकी तरह नीरस बालक्रीड़ाकेलि, चञ्चल मनोरञ्जक खेल कैसे करें ? वे जिस पावन प्रेमराज्यमें प्रवेश कर चुके हैं, वहाँ तो सारी ममता सिमटकर एक ही चरणतलमें न्यौछावर हो चुकी है। महाभावसिन्धु श्रीराधा-चरण ही जब उनके काम्य हो गये हैं तो अब वे अपने बाल-चापल्यमें संलग्न हों – यह असंभव है। उन्हें तो अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अब चञ्चल चितवन एवं कर्णविलम्बी, कजरारे दीर्घ नेत्रोंवाली राधा ही अनुभवमें आ रही है। उनके पास जब अपना मन है ही नहीं तो वे कैसे गौओंके प्रति अपने प्रेमका प्रदर्शन करें, कैसे सखाओंके सङ्ग क्रीड़ा-कौतुक करें, कैसे मैया यशोदाकी रुचिकी रक्षा करें, कैसे भरपेट पक्वान्न भोजन करें ? उनका मन तो बृषभानुजाके ध्यानमें डूब गया है। अब ये श्रीकृष्ण पहले वाले चपल श्रीकृष्ण रहे ही नहीं हैं। अब उनके क्रीड़ा-सुखकी आधारभूता वे वात्सल्यरस-प्रधान गोपियाँ नहीं हैं, जिनके घर वे माखनचोरी करने जाते थे, उनके नवनीत भाण्ड वानरसखाओंके सङ्ग फोड़ देते थे। अब तो उनकी कमनीया बृषभानुकिशोरी हैं, जिनके प्रेमरूपी पारावारमें वे मत्स्य बने स्वच्छन्द विहर रहे हैं। भानुकिशोरीका ज्ञान-ध्यान ही उनकी सर्वश्रेष्ठ गति है। श्रीराधा ही उनकी उत्कण्ठाकी एकमात्र विषय हैं। श्रीराधा ही उनके प्राणोंकी एकछत्र स्वामिनी हैं। श्रीराधाने ही इनका पूरे-का-पूरा मन चुरा लिया है।

आयी अब एकादशी वह अङ्कुश रूपा अघ की, प्रियतम!
केवल मैया ही नहीं, अखिल पुरवासी व्रती हुए, प्रियतम!
संकल्प किया यह सबने, श्रीनारायण सदय बनें, प्रियतम!
नीरोग नीलसुन्दर हो, बस, निर्जल रह गये सभी, प्रियतम॥ ५५१॥

दशमी निशाकी परिसमाप्ति हुई। पापांकुशा एकादशीका प्रभात विहँसने लगा। आज केवल मैया ही नही, अखिल पुरवासी निरम्बु व्रतके व्रती हो गये। सबने संकल्प किया – 'भगवान् श्रीमन्नारायण हम सबपर दया करें, हमारा नीलसुन्दर नीरोग हो जाय।' सब-के-सब निर्जल ही रह गये।।५५१।।

उस ओर दशा क्या थी मनकी साँवर के, कौन कहे, प्रियतम!
दोनों वे सखा सयाने, बस, गति-विधि थे देख रहे, प्रियतम!
हृत्तल में उठी हुई लहरें प्रतिचित्रित हो जातीं, प्रियतम!
आननपर, वह उनको रोके कितना भी क्यों न भले, प्रियतम॥ ५५२॥

उस ओर नीलसुन्दरके मनकी क्या दशा थी – कौन बतलावे ? साँवरकी सम्पूर्ण गतिविधिको वे दोनों सयाने सखा बड़े ध्यानसे देखते जा रहे थे। नन्दनन्दनके हृत्तलमें भावकी जो लहरें उठतीं, वे उनके मुख-सरोजपर प्रतिबिम्बित हो ही जातीं, नीलसुन्दरका मुख-सरोज तद्भाव-भावित हो ही जाता, वे भले उन्हें रोकनेका कितना ही प्रयास करें।। ५५२।।

जिज्ञासा

कृपया छन्द सं. ५५२ की प्रथम दो पंक्तियोंका अर्थ सुस्पष्ट करें। साँवरके मनकी उस काल क्या दशा थी इसका विश्लेषण करें।

समाधान

वस्तुतः जब किसी भी भाग्यवान्के चित्तमें विशुद्ध प्रेमोदय हो जाता है तो उसके चित्तपटलपर मात्र प्रेमास्पद ही रहता है, अन्य सभी लौकिक-पारलौकिक पदार्थोंके प्रति पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। यों तो भगवान् श्रीकृष्ण स्वरूपतः ही पूर्ण प्रेमस्वरूप हैं, किन्तु लीलाके लिये वे यहाँ प्रेमीका समादर्श रख रहे हैं। यहाँ ध्यान रहे कि लीला नाटक नहीं होती। लीलामें भगवान् श्रीकृष्ण ठीक प्राकृत प्रेमीकी तरह ही प्राकृतानुकरण अवश्य कर रहे हैं किन्तु स्वरूपतः हैं वे असीम प्रेमैश्वर्यके एकमेव आधार ही। वे इस समय न ही कोई दम्भ कर रहे हैं, न ही नाट्य। यहाँ भगवान् सर्वज्ञ होकर अनजानकी भाँति प्रेम कर रहे हों सो भी बात नहीं। उनकी प्रत्येक लीला सच्ची है। लीलाशक्तिकी इच्छासे यहाँ उनकी पूर्णता छिप गयी है। यह उनकी लीलाधीनता ही समझनी चाहिये। भगवान्का ऐश्वर्य तो सर्वत्र स्पष्ट है, परन्तु उनका माधुर्य बड़ा गोपनीय है। उनका माधुर्य उनकी मुग्धतामें ही है। श्रीराधा भी कोई साधारण ग्राम्य बालिका नहीं, स्वयं भगवान्की ही सर्वोच्च ह्लादिनी महाशक्ति हैं। फिर भी मिलन और विरहकी इस प्रेमलीलामें दोनों प्रिया-प्रियतम श्रीराधा एवं श्रीकृष्णमें ऐसा मुग्ध माधुर्य-सिन्धु उमड़ रहा है, इसमें ऐसी एक-से-एक विलक्षण विविध प्रेमतरङ्गें लहरा रही हैं, जिससे सारा जगत् परमानन्दसुधासे आप्यायित ही हो उठता है। श्रीराधा मधुर प्रेमकी कल्पवृक्ष हैं। श्रीकृष्ण स्वरूपतः नित्य विजयी हैं, किन्तु यहाँ वे अपनी ही स्वरूपाशक्ति राधासे प्रेममें पूर्णतया हार गये हैं। श्रीकृष्ण सर्वचित्ताकर्षक हैं, किन्तु उनकी स्वरूपाशक्ति श्रीराधा यहाँ उनका ही चित्त पूर्णतया हरणकर उन्हें घायल कर चुकी हैं। श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये परमातुर हैं। स्वरूपतः जो सर्व हैं, सर्वरूप हैं, वे परिच्छिन्न होकर ही राधाकामी हो रहे हैं।

यहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी ही लीला है कि उनका प्रेम भानुकिशोरीसे हो गया है और समस्त इतर वस्तुओंसे हट गया है। वे माता यशोदा, पिता नन्द, अग्रज बलराम, वरूथप, सुबल, अनुज स्तोककृष्ण, सखा श्रीदाम, मधुमङ्गल, यहाँ तक कि अपनी प्यारी गौओं, बछड़ों – सबकी सुधि भूल गये हैं। वे राधाको ही सर्वत्र देख रहे हैं, उसे ही सुन रहे हैं, उसका ही प्रेम सर्वत्र अनुभव कर रहे हैं। उन्हें अपने प्रेममें रह-रहकर कमी दिख रही है और उनका प्रेम प्रतिक्षण सीमारहित रूपसे बढ़ता ही जा रहा है। प्रेममें श्रीकृष्णका सबकुछ तो अर्पित हो ही गया है, यहाँ तक कि वे स्वयंको भी अपनी प्रेमास्पदा राधाको अर्पित कर चुके हैं। सम्पूर्ण त्याग और सम्पूर्ण आत्मसमर्पण ही प्रेमका स्वभाव है।

यदि उनका प्रेम मैया यशोदाके वात्सल्यमें, भोजन-पानमें, सखाओंके सङ्ग बालक्रीड़ाओंमें, गौओं और बछड़ोंमें बँटा होता तो वस्तुतः वह प्रेम होता ही नहीं।

प्रेम वाणीका विषय नहीं है, इसलिये वे स्तोककृष्णके टोकनेका कुछ भी उत्तर नहीं देते, किन्तु उनका मन तबसे ही उनके वशमें रहा नहीं है। वह तो चला गया है बृषभानुजा श्रीराधाके वशमें। अब उनके मन, प्राण, बुद्धि, आत्मा सबपर मात्र अधिकार होगया है, एकमात्र श्रीराधाका ही। यह समर्पण उन्हें करना पड़ा हो, सो बात नहीं, स्वतः ही हो गया है।

श्रीकृष्णके कुछ सखा तो अतिशय भोले हैं, सुबल-श्रीदामा वर्गके जो वयस्क सखा हैं, वे श्रीकृष्णकी गतिविधि एवं व्यवहारको अन्वेषककी सूक्ष्म दृष्टिसे अवश्य देख रहे हैं। मधुमङ्गल यद्यपि विदूषक श्रेणीका सखा है, किन्तु उसने स्तोककृष्णकी बात सुनकर यह जान अवश्य लिया है कि उसका सखा श्रीकृष्ण श्रीदामकी छोटी बहिन राधाको स्नान करते समय एकटक निरख रहा था। उसने हँसते-हँसते श्रीदामको भी यह बात कह दी कि इसे तो तेरी दोनों बहनोंकी नजर लगी है। यह दृष्टिदोष मात्र गोपुच्छ फिरानेसे उतरनेवाला नहीं है। इसका यह दृष्टिदोष तो तभी निवारण होगा जब इसे तुम्हारी बहनों एवं उसकी सखियोंकी चरणधूलि दी जायगी।

यह सर्वथा निर्विवाद सत्य है कि भगवान् श्रीकृष्णकी भगवत्ताको कोई भी इतर भाव आवृत नहीं कर सकता। किन्तु स्वयं भगवान्को भी उनके स्वरूपानन्दसे भी बहुत अधिक आनन्दातिशयका अनुभव करानेके लिये उन्हींकी स्वरूपभूत इच्छासे, उन्हींकी अपनी चिच्छक्तिकी सारवृत्ति प्रीति उनकी भगवत्स्वरूपताको ढँक लेती है। यह प्रेम अन्य कुछ नहीं भगवान् श्रीकृष्णका अपना ही स्वरूप है या उनकी अपनी ही लीलामयी स्वरूपाशक्ति है। अतएव उसके द्वारा होनेवाली श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण क्रियाएँ न तो दोषरूप ही होती हैं, और न ही इससे उनकी भगवत्तामें ही कोई बाधा आ सकती है। यह उनकी लीला है जो उन लीलापुरुषोत्तमसे सर्वथा अभिन्न है।

यहाँ जो भगवान्की लीला हो रही है, उसमें केवल विशुद्ध माधुर्य ही माधुर्य है। महामहिम श्रीकृष्णका माधुर्य ही इस सुन्दरीसरोवरके प्रेमराज्यमें न तो वात्सल्यको ही प्रवेश करने देता है, न ही सख्यरसको; शान्तरति, दास्यरतिका तो प्रश्न ही नहीं है। किन्तु यह सदैव ध्यानमें रखनेकी बात है कि यह मोहमयी मुग्धता सांसारिक विषयासक्त लोगों-जैसी नहीं है। इस माधुर्यमें भी भगवान्की सर्वज्ञता, विभुता, अनन्त सर्वशक्तिमत्ता, ज्ञानस्वरूपता, आनन्दमयता प्रच्छन्न है। इसीसे इसे भगवत्स्वरूप माधुर्य ही मानना चाहिये।

अवश्यं ही इस रागराज्यमें माधुर्यका ही साम्राज्य है, और माधुर्यमयी गाढ़ तृष्णा, परम प्रेमाविष्टताकी लहरें सयाने श्रीदामादि सखागण अपने कन्नूके हृत्तलमें प्रतिचित्रित हुईं परिलक्षित कर ही लेते हैं। श्रीकृष्ण यद्यपि उन भावलहरोंको रोकनेकी कितनी ही चेष्टा क्यों न करें, अन्ततः वे लहरें उनके आननको आक्रान्त कर ही लेती हैं।

आया जब कर्णिकार-वन दृग उसके थे भर आये, प्रियतम!
पिङ्गल थी जहाँ शिला गिरिकी, बैठा वह आज वहीं, प्रियतम!
अपने पीले दुकूल पर ही थी दृष्टि गयी उसकी, प्रियतम!
कम्पन था हुआ क्षणिक उसके दो बार कलेवर में, प्रियतम॥ ५५३॥

उन दोनों सखाओंने देखा था जब कर्णिकार वन आया था, तब नीलसुन्दरकी आँखें भर आयी थीं। फिर देखा, जहाँ गिरि गोवर्द्धनकी शिला पिङ्गल वर्णकी थी, आज भी नीलसुन्दर वहीं जाकर बैठे थे। अपने ही पीले दुकूलपर उनकी दृष्टि गयी थी तथा दृष्टि पड़ते ही उनके सारे शरीरमें क्षणिक कम्पन हो गया था। यह कम्पन दो बार हुआ था।।।५५३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

संसारमें कोई भी, कुछ भी न तो नित्य प्रिय होता है, न किसीमें सदा-सर्वदा प्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है। इस जड़ संसारमें कुछ दिनोंके व्यवहारके पश्चात् किसीसे भी पहले जितनी अनुरक्ति नहीं रहती, अपितु कभी-कभी तो विरक्ति ही हो जाती है। किन्तु विशुद्ध निर्मल प्रेम पल-पल बढ़ता ही रहता है। इस विशुद्ध प्रेमामृतमें एक ऐसा सुदुर्लभ दिव्य महान् माधुर्य रहता है; जिसके रसास्वादनके लिये परम रसामृतस्वरूप स्वयं रसराज श्रीकृष्ण भी नित्य प्रलुब्ध, प्रेमाविष्ट एवं लालायित रहते हैं। छन्दसं. ५५३में भगवान् श्रीकृष्णमें बढ़ती उत्तरोत्तर प्रेमप्रलुब्धताका ही क्रमशः विकास दर्शाया गया है।

एकादशीका दिवस है। साँवर श्रीकृष्ण अपने सखाओं सहित प्रतिदिवसकी तरह ही गोचारणके लिये अवश्य अरण्यकी ओर चले हैं, किन्तु उनका चित्त तो राधा-मुखचन्द्रसे झरती हुई सौन्दर्य-सुधाके ध्यानमें ही सराबोर है। उनके हृदयमें उमड़ते रस-सिन्धुमें एक-से-एक गहन आवर्त्त उठ रहे हैं। गोचारणपथमें प्रतिदिवस ही कर्णिकार वन आया करता है। किन्तु आज तो कर्णिकार वनमें प्रवेश करते ही सखागण देखते हैं कि उनके कन्नूकी विचित्र ही दशा हो गयी है। उनके कन्नूके नेत्र प्रीति-मधुरिमासे सन गये हैं, वे अश्रुकणोंसे छलकने लगे हैं। अब सखागण भला अपने अप्रतिम सुन्दर सखासे सख्यक्रीड़ाके लिये कैसे एकरस हों – उन सभीका यथेच्छ क्रीड़ा करनेका उत्साह ही जाता रहता है। श्रीकृष्ण तो कर्णिकारके पीत कुसुमोंकी शोभा निहारते-निहारते वहीं एक गिरिकी पिङ्गल वर्णकी शिलापर ही बैठ जाते हैं। उनकी दृष्टि भी चारों ओरके दृश्योंसे विरत हुई अर्धनिमीलित हुई, अपने अङ्गोंमें धृत पीताम्बरपर ही स्थिर हो उठती है।

चकोरके नेत्र जैसे चन्द्रमाकी ओर एकटक संलग्न रहते हैं और चातक जैसे अनन्य निष्ठासे मेघसे ही जलविन्दु ग्रहण करता है, इसी प्रकार श्रीकृष्णका चित्त माधुर्यकी असीम सिन्धु एवं अनुपम परमानन्दकी धाम श्रीराधाकी छविको प्रत्येक पीत वस्त्रमें निरख रहा है। उनका मन अनन्य भावसे श्रीराधाके ही ध्यानमें संलग्न है। अपने अङ्गोंमें लिपटे पीताम्बरसे श्रीराधाके अङ्गोंकी साम्यताकर वे अनुभव करने लगते हैं, मानो प्रिया ही उनके कटिभागसे लिपट गयी है। बस, इस भावके उदय होते ही उनमें कम्पन विकारका उदय हो उठता है। अपने भावको रोकते-रोकते ही दो बार उनके अङ्गोंमें समृद्ध कम्प-विकार परिलक्षित हो ही जाता है।।५५३।।

गहरी आँखों से अरुण नलिन-दलको उसने देखा, प्रियतम!
प्रस्वेद कपोलों पर उसके तत्क्षण भर आया था, प्रियतम।
थी उड़ी हंसिनी जब, जल-कण उच्छलित हुए कुछ थे, प्रियतम।
साँवर ने ठीक उसी क्षण था अपना लिलार छूआ, प्रियतम।।५५४।।

बड़ी गम्भीर दृष्टिसे नीलसुन्दरने अरुण वर्णके सरोज-दलोंको देखा था। उन्हें देखते ही उनके कपोलोंपर तत्क्षण प्रस्वेद भर आया था। और फिर जब वह हंसिनी उड़ी थी, तब कुछ जलकण उच्छलित हुए थे। नीलसुन्दरने ठीक उसी क्षण अपने ललाटका स्पर्श किया था..........।। ५५४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

रसकी उपलब्धि भावके बिना तो संभव ही नहीं। भावुक हुए बिना कोई रसिक कैसे हो सकता है। अतः प्रियतम श्रीकृष्णके हृदय-स्रोतसे रसानन्दकी अजस्र धारा प्रवाहित हो उठती है। अबतक सखाओंके साथ, मातृवर्गकी यशोदामुख्या गोपियोंके साथ आनन्दकन्द ब्रह्मकी लीला हो रही थी। अचानक ही सुन्दरीसरोवरमें महाभावने उस आनन्दकन्द ब्रह्मको परिरंभित कर लिया। चाहे यह परिरंभण मात्र दृष्टिमिलनसे ही सम्भव हुआ था, फिर भी आनन्दब्रह्मका भावसे संस्पर्श तो हुआ ही। बस, भावके दृष्टि-संयोगसे ही आनन्दकन्द ब्रह्म रसानन्दकी नित्यधारामें परिणत हो गया। यही परमानन्द ब्रह्मका स्वयंका स्वयंमें ही रसास्वादन है।

माधुर्यका अर्थ ही है – अशेष, अचिन्त्य, अतुल सौन्दर्य, लालित्य, सौशील्य, औदार्य, वैदग्ध्य आदि आकर्षक गुण-समूह। श्रीकृष्णको भानुनन्दिनी श्रीराधामें ये सभी गुणसमूह परिपूर्ण दृष्टिगोचर होते हैं। उन्हें ऐसा ठीक अनुभव होता है कि श्रीराधाकी रूपमाधुरीसे ही नलिनदल सुकुमार एवं अरुण हैं। श्रीराधाकी स्वरमाधुरीके मात्र एक कणसे ही कोकिल, चातक, मयूर, कपोत, कलहंस आदि सभी विहङ्गम मधुर काकली कर पाते हैं। श्रीराधाकी प्रेममाधुरीको लेकर

ही कमल विकसित हो रहे हैं, भ्रमर उनपर आकर्षित हुए मत्त हो रहे हैं। क्योंकि इस समय श्रीकृष्ण श्रीराधा-दर्शनार्थ उत्कण्ठातुर हैं, अतः उन्हें सम्पूर्ण कानन ही श्रीराधामय दृष्टिगोचर होता है। उन्हें सरोवरमें स्फुटित सरोज (नलिनदल) श्रीराधाके मुखारविन्दके रूपमें ही दिखते हैं। तत्क्षण ही उनमें स्वेदविकारका उदय हो जाता है। श्रीकृष्णके कपोलोंपर स्वेदकण उभर आते हैं।

उनकी दृष्टि नलिनदलोंसे थोड़ी हटती है और सरोवरमें तिरती हंसिनीमें स्थिर हो जाती है। उन्हें हंसिनीके स्थानमें श्रीराधा ही सरोवरमें स्नानरत दिखती है। वे हंसिनीको देखते-देखते – **अहं सा** – मैं ही राधा हूँ – इस भावमें डूबने लगते हैं। किन्तु ओह ! क्षणोंमें ही हंसिनी भी उड़कर उनके दृष्टिपथसे दूर चली जाती है, और वे अपने ललाटको छूने लगते हैं, क्योंकि उड़ती – विदा होती हंसिनी अपने पंखोंसे कुछ जलके छींटे उनके मस्तकपर बिखेर गयी होती है। उन जलके छींटोंसे उन्हें यही सन्देश मिलता है कि उनके भालमें विधाताने मात्र अश्रुकण एवं विरह-विलाप ही लिख रखा है।।५५४।।

पीने पिरोइनी आयी थी निर्मलजल सरिता का, प्रियतम!
लहरों के कुछ छींटे उसके मस्तक पर बिखर गये, प्रियतम।
किंचित्-सा कृष्ण-अंश उसके रोओं का भीग गया, प्रियतम!
साँवर था देख रहा, उसने अपनी अलकें छू लीं, प्रियतम।।५५५।।

आज सरिताका निर्मल जल पीने पिरोइनी आयी थी। जल पीते समय सरिताकी लहरोंके कुछ छींटे उसके मस्तकपर बिखर गये थे। उसकी रोमावलीके किञ्चित् काले अंश भीग गये थे। बड़े ध्यानसे नीलसुन्दर उसे देख रहे थे और ठीक उसी समय उन्होंने अपनी अलकोंका स्पर्श किया था..........।।५५५।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

वस्तुतः मिलन एवं वियोग – सम्भोग एवं विप्रलंभ दोनों ही रति हैं एवं दोनोंमें परमानन्दरसका असीम ऊर्ध्व उच्छलन ही होता रहता है। संसारके प्राणी-पदार्थोंके वियोगमें जहाँ केवल दुःख-ही-दुःख, रोना-ही-रोना है, वहाँ अपनी प्रियाके वियोगमें प्रियतम श्रीकृष्णको परमाह्लादिनी भानुनन्दिनी राधाकी अपार सुख रसमयी सन्निधिका ही क्षण-क्षण अनुभव होता है। संयोगमें जहाँ वे मात्र बाहर ही दृष्टिपथमें रहती हैं, वियोगमें वे उनके रोम-रोम अणु-अणुमें मिल जाती हैं। संयोगमें समय-स्थान आदिकी निर्बाध स्थिति नहीं है, वहाँ स्तोककृष्ण, मधुमङ्गल आदिके द्वारा उपहास उड़ाये जानेके रूपमें प्रतिबन्धक हैं, मैया यशोदाके सम्मुख सूचित किये जानेकी लज्जा है, वहाँ मात्र क्षणभरके लिये ही परस्पर मिलन एवं दर्शन संभव हैं; किन्तु वियोगमें समय-स्थानकी कोई बाधा नहीं, सर्वत्र निर्बाध मिलन-स्वातंत्र्य है, और एक स्थानमें ही नहीं, इस प्रिया-वियोगसे प्रियतम नीलमणिमें ऐसा दिव्योन्माद है कि कर्णिकारवन ही उन्हें श्रीराधासे भरा दृष्टिगोचर होता है। उनकी प्रिया उनके कटिवस्त्र एवं उत्तरीय पीताम्बरतकमें उन्हें अपनेसे आलिङ्गित अनुभूत होती है। उन्हें सरोवरमें स्फुटित पद्मोंमें राधा, जलमें विहरती वराटीमें राधा, नाचती मयूरीमें राधा, सरिताका निर्मल जल पीने आयी पिरोइनी (पीले रङ्गकी कपोती) में भी राधा ही दर्शन-सुखदान करती दिखती हैं। किसी कविने कहा है–

सङ्गम-विरह विकल्पे वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्य।
एकः स एव सङ्गे त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे।।

मिलन एवं विरहमें यदि श्रीकृष्ण कहीं विकल्प करें तो इनमें उन्हें अपनी प्रियाका विरह ही श्रेष्ठ लगेगा; क्योंकि विरहमें उन्हें तीनों लोक ही तन्मय (राधामय) दीख रहे हैं।

पिरोइनी जल पीने आयी है, वह बस पीले वर्णकी है, उसका पीतवर्ण ही श्रीकृष्णको राधास्मृतिमें प्रमत्त कर देता है। उन्हें पिरोइनी दिखनी ही स्थगित हो जाती है। उन्हें तो भानुनन्दिनी ही यमुनाजलमें विहरती दिखने लगती है। उस पक्षीका जल पीनेके लिये झुकना और जलकी लघु लहरियोंके स्पन्दनसे पिरोइनीकी काली रोमराजिका कुछ अंश भीग जाना, प्रियतम श्रीकृष्णको सद्यस्नाता भानुकिशोरीकी जल चुवाती चिकुरराशिकी स्मृतिमें इतना अधिक तन्मय कर देता है एवं इस तन्मयतामें इतनी प्रगाढ़ता होती है कि वे स्वयंको ही श्रीराधा मानकर अपनी चिकुरराशिको ही संस्पर्शित करने लगते हैं।।।५५५।।

दस पाँच सखा उसके जलमें सहसा थे कूद पड़े, प्रियतम!
करने के लिये प्रसन्न उसे, तटपर था वह बैठा, प्रियतम!
भहरा उठती उनके मुखपर चिकुरावलि जब भीगी, प्रियतम!
जड़िमा साँवर के तनमें थी सुस्पष्ट दीख जाती, प्रियतम।।५५६।।

नीलसुन्दरके शिशु सखा दस-पाँचकी संख्यामें अचानक जलमें कूद पड़े थे। उनका उद्देश्य था – नीलसुन्दरको जैसे-तैसे प्रसन्न करना। नीलसुन्दर तटपर ही बैठे थे। सखाओंके मुखपर जब भीगी चिकुरावली भहरा उठी थी, तब साँवरके गात्रमें सुस्पष्ट रूपसे जड़िमा अभिव्यक्त हो गयी थी।......।।५५६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

सखागण अपनी चेष्टाओंसे अपने सखा कन्नूका मनोरञ्जन करना तो चाह ही रहे हैं। वे परस्पर वार्त्ता करते हैं – " कन्नू भैयाकी वंशी-स्वरलहरीसे जिस मधुकी वर्षा होती थी, वह तो अप्रतिम थी ही, किन्तु वह तो आजकल वंशीवादनसे सर्वथा विरक्त ही हो गया है। चलो, आज हम ही वंशीमें उसके समान ही फूँक लगावें। वे अपने कन्नूको प्रसन्न करनेको वंशीको उसीकी ठीक अनुकृति करते हुए अधरोंसे लगाते हैं, फिर उसीकी तरह फूँक भी मारते हैं, परन्तु वंशी भी निगोड़ी ऐसी है कि प्रस्तरकणकी रगड़की तरह खर-खर स्वर उत्पन्नकर रह जाती है। सखा हताश हो जाते हैं।

एक दलको अपने कन्नूको प्रसन्न करनेकी अन्य क्रीड़ा सूझती है। मधुमत्त भ्रमरोंका तो स्वभाव ही है, वे यूथ के यूथ उसी दिशाकी ओर उड़ते चले जाते हैं जिधर कन्नू हो। कोकिलाएँ भी उसी कदम्बका आश्रय लेकर कुहू-कुहू ध्वनिमें परस्पर प्रतिस्पर्धा करती हैं, जिस कदम्बके नीचे कन्नू बैठा हो। बस, सखागण अपने कन्नू भैयाके मनोरञ्जनार्थ कभी भ्रमरोंके गुन-गुन स्वरमें अपना कण्ठस्वर मिलाना आरंभ कर देते हैं, एवं कभी कोकिलोंके कण्ठका अनुकरण। वे झुण्ड-के-झुण्ड अपने कन्नूके चतुर्दिक् भ्रमरदल बने गुन-गुन कर रहे हैं। आगे सरोवर उनका मार्ग अवरुद्ध कर लेता है तो दस–पाँच तैराक सखाओंका दल सरोवरमें हंसोंकी अनुकृति करने कूद पड़ता है। उनका सखा सरोवरके तटपर ही तो कदम्ब वृक्षके नीचे आसीन जो था। सखाओंकी भीगी चिकुरावली उनके सुन्दर सरोज-से मुखपर भहरा उठती है। बस! श्रीकृष्णको सखा तो दिखने ही बन्द हो जाते हैं एवं उन्हें उनके स्थानपर स्नानार्थ सरोवरमें डुबकी लगाती भानुकिशोरी ही वहाँ प्रकट हो जाती है। श्रीकृष्णके अनुराग-सागरमें अकस्मात् अत्यन्त बाढ़ आ जाती है। संवर्द्धित प्रगाढ अनुराग ही तो प्रेमोत्कर्ष है। इस अवस्थामें उनमें एक ऐसी विलक्षण तृष्णाका उदय होता है कि उनके सारे अङ्ग जड़ हो उठते हैं। उनके रोम-रोमसे प्रियाका व्यवधानशून्य मिलन तो होता ही है। यह मिलनानन्द इतना सघन होता है कि यह सारे शरीर एवं अङ्ग-अवयवोंको भी सघन– जड़ बना देता है।।५५६।।

जो उसी जलाशय के समीप उत्तुङ्ग एक तरु था, प्रियतम!
दो दिनसों से उसके नीचे आकर रुक जाता था, प्रियतम!
वन जाते और लौटते भी आँखें उसकी उठतीं, प्रियतम!
सर-तट की ओर देख लेता आहट-सी वह लेता, प्रियतम।।५५७।।

उसी जलाशयके समीप एक उत्तुङ्ग तरुवर था। दो दिवसोंसे नीलसुन्दर उसके नीचे आकर किञ्चित् रुक अवश्य जाते थे। वन जाते समय और लौटनेके समय उनकी आँखें ऊपरकी ओर उठतीं और वे तटकी ओर देखने लगते, मानों किसीकी आहट ले रहे हों।.........।।५५७।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीकृष्णकी इस जड़िमा दशाको देखकर सखा विस्मित हो उठते हैं किन्तु कुछ ही क्षणोंमें श्रीकृष्ण अपनी इस भावदशाको संवरित कर लेते हैं। श्रीदाम, सुबलादि सखागण निरन्तर परख रहे हैं कि दो दिवसोंसे सुन्दरीसरोवरके जलाशयके समीप जो उत्तुङ्ग कदम्बका वृक्ष है , जिसकी निराली हरीतिमा निरन्तर कालके नियमोंका अतिक्रमणकर सदा एकरस, मनोज्ञ, सुखशीतल एवं पुण्यसौरभका सञ्चार करती रहती है उसी वृक्षके नीचे कन्नू दो दिवसोंसे वन जाते एवं लौटते हुए प्रतिदिन ही आकर रुक जाता है, उसके नयन सरतटकी ओर उठते हैं और वह वहाँ प्रतिदिन ही भानुनन्दिनीकी आहट लेता है; किन्तु उसे वह वहाँ न पाकर निराश-सा एक वेदनाभरी उच्छ्वास लेकर आगे बढ़ जाता है। ।।५५७.।।

यों चतुर निरन्तर सहचर वे दोनों थे परख रहे, प्रियतम!
साँवर के मनोभाव को, पर रखकर सुगुप्त उसको, प्रियतम।
करते थे परामर्श छिपकर दोनों किस भाँति करें, प्रियतम!
प्राणों के प्राण सुहृद्वर की किंचित् सहायता भी, प्रियतम॥ ५५८॥

इस प्रकार वे दोनों चतुर सहचर निरन्तर नीलसुन्दरकी गतिविधिको परख रहे थे – साँवरके मनोभावका मन-ही-मन विश्लेषण कर रहे थे। किन्तु नीलसुन्दर इसको जान न लें,इस विषयमें वे अत्यन्त सावधान थे। वे दोनों छिपकर परामर्श अवश्य करते कि क्या, कैसे किया जाय। अपने प्राणोंके प्राण सुहृद्वर नीलसुन्दरकी वे किञ्चित् भी सहायता कर सकें, इसके लिये वे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे।।५५८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

सुबल श्रीदामादि सखा अपने कन्नूके मनोभावोंकी गतिविधि खूब सावधानीपूर्वक परख रहे हैं, वे उसे परस्पर भी किसीके सम्मुख प्रकट नहीं करते, क्योंकि वे भली प्रकारसे जानते हैं कि यदि किसीको गंध भी लगी तो मधुमङ्गल-सरीखे चञ्चल विदूषक उसका अतिशय उपहासास्पद स्वरूप बना देंगे जिससे उनके सखाकी लज्जास्पद स्थिति हो सकती है। अतः वे परस्पर यदि परामर्श भी करते हैं तब भी अतिशय गोपनीयता ही बरतते हैं। वे अपने प्राणों-के-प्राण सुहृद सखाकी किञ्चित् सहायता भी करना चाहते हैं, किन्तु वे यह सहायता कैसे करें – यही उनकी मंत्रणाका उद्देश्य रहता है।।५५८।।

ओ थीं कल्याणमयी अम्बा आदरणीया सबकी, प्रियतम!
गैरिकवसना कुटीरदेवी महिमा अपारवाली, प्रियतम!
अणिमादिसिद्धियाँ छाया में जिनकी लोटा करतीं, प्रियतम!
उनसे ये परिचित थे, इनपर थी कृपा बड़ी उनकी, प्रियतम। ५५९।

सहसा दोनोंके मनमें आया – क्यों नहीं, कल्याणमयी, परम आदरणीया, सबकी जगदम्बा, उन गैरिकवसना कुटीरवासिनी देवीका आश्रय ग्रहण किया जाय ? उनकी अपार महिमासे वे दोनों ही परिचित थे। अणिमा आदि सिद्धियाँ उन माताकी छायामें लोटा करती थीं। उनसे ये दोनों पूर्णरूपसे परिचित थे और उनकी इन दोनोंपर बड़ी कृपा भी थी।।५५९।।

जिज्ञासा

कृपया छन्द सं. ५५९ में वर्णित सबकी आदरणीया गैरिकवसना कल्याणमयी अम्बाका संक्षेपमें परिचय दें।।५५९।।

समाधान

गैरिकवसना कल्याणमयी अम्बा पौर्णमासीदेवी देवर्षि नारदजीकी शिष्या एवं सान्दीपनि ऋषिकी माता थीं। वे नारदजीसे श्रीकृष्णावतारकी सूचना पाकर उज्जयिनी नगरीसे सीधे ब्रजमें पधारी थीं। वे महान् शक्तिमती थीं । उनके साथ उनका पौत्र बटुक मधुमङ्गल भी उज्जयिनीसे ही आया था। यह महर्षि सान्दीपनिका पुत्र था।

भगवती पौर्णमासीके आनेपर ब्रजवासियोंने इनके निवासके लिये नदी कृष्णा (यमुना) के किनारे पर्णकुटी बनवा दी थी। इनकी ही प्रेरणासे नन्दरायने अपने प्राणोपम मित्र बृषभानुजीका विवाह रावलनरेश बिन्दुगोपकी यज्ञाग्निसे प्रकट पुत्री कीर्त्तिदासे कराया था।

पौर्णमासीजी ब्रजमें उस समय पधारी थीं जब महाराज नन्दरायजीके कोई सन्तान नहीं थी। सभी ब्रजवासी नन्दरायजीके पुत्र होनेकी कामना रखते थे। इनकी ही प्रेरणासे नन्दरायने पुत्रेष्टि यज्ञ भी किया था और इन्हीं दैवज्ञाने समग्र ब्रजवासियोंके सम्मुख नन्दरायके पुत्र होनेकी भविष्यवाणी भी की थी।

जब श्रीनन्दरायके सम्पूर्ण ब्रजमण्डलको आनन्दसिन्धुमें निमग्न कर देनेवाला पुत्र उत्पन्न हो गया तो पौर्णमासीदेवीकी वरदान-क्षमता देखकर समग्र ब्रजमण्डल ही इनके प्रति श्रद्धाभिभूत हो उठता है। ये ही नन्दरायके पुत्रका नाम कृष्ण रखती हैं। ये सब ब्रजवासियोंके सम्मुख उद्‌घोष करती हैं – क्योंकि तुम सभीने मुझे कृष्णा (यमुना)के किनारे रहनेका आश्रय दिया है, इसलिये नन्दरायके भावी पुत्रका नाम भी कृष्ण ही होगा और वह यमुनाके समान ही कृष्ण वर्णका, परम रसमय स्वभाववाला होगा। भगवती पौर्णमासीजीके प्रति सम्पूर्ण ब्रजमण्डल ही श्रद्धाभिभूत है।।।५५९।।

{इनका विशद वर्णन पूर्वमें श्रीकृष्ण-जन्म-प्रसङ्गमें कुन्दवल्ली-चरित्रमें भी किया जा चुका है। यही चरित्र महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा -पञ्चम खण्ड पृष्ठ सं. ३८१ में भी उल्लिखित है}

दोनों की राय हुई, चलकर कह दें सब कुछ उनसे, प्रियतम!
वे परम अनुग्रहमयी हमें पथ उचित बता देंगीं, प्रियतम!
है छिपा न कुछ उनसे, पर यह कर्तव्य हमारा है, प्रियतम!
स्वाहा होजाय भले सब कुछ, साँवरको सुखी करें, प्रियतम।।५६०।।

दोनोंकी राय हुई, हम लोग चलकर उन्हींसे सब कुछ निवेदन कर दें। वे परम अनुग्रहमयी अम्बा हम दोनोंको उचित पथ अवश्य बतला देंगी। यद्यपि उनसे कुछ भी छिपा नहीं है, तथापि यह हम लोगोंका कर्तव्य है कि हमारा सब-कुछ स्वाहा भले ही हो जाय, हम साँवरको सुखी करके ही रहेंगे।।५६०।।

इसलिये द्वादशी तिथिका जब अरुणोदय हुआ वहाँ, प्रियतम!
सर्वथा अलक्षित सबसे वे आश्रम पर जा बैठे, प्रियतम!
अम्बाके पद पर सिर रखकर बातें सब बतलायीं, प्रियतम!
वे हँसीं कुटीरवासिनी दे आलिङ्गन दोनों को, प्रियतम।।५६१।।

इसीलिये द्वादशी तिथिका जैसे ही अरुणोदय हुआ कि वे दोनों प्रौढ़ शिशु सर्वथा अलक्षितरूपसे उन कल्याणमयी अम्बाके आश्रमपर जा पहुँचे। अम्बाके चरण-सरोरुहमें सिर रखकर उन्होंने सभी बातें बतला दीं। वे कुटीरवासिनी अम्बा दोनोंको अपनी छातीसे लगाकर हँस पड़ीं।।५६१।।

'मैं अभी साथ चलती हूँ, तुम निश्चिन्त रहो, यह तो,' प्रियतम!
'आमुख है परम सुखद भावी सुन्दर उस अभिनय का।' प्रियतम!
वे तेजोमयी उठीं कहकर, पहुँची निमेष में ही, प्रियतम!
बालक दोनों का कर पकड़े आभीर-राजगृह में, प्रियतम।।५६२।।

'मैं अभी तुम दोनोंके साथ ही चलती हूँ। तुम निश्चिन्त रहो। यह तो भविष्यके उस परम सुखद अभिनयका आमुख मात्र है।' – यह कहती-कहती ही तेजोमयी अम्बा उठ पड़ी और मानो, निमेष बीतनेसे पहले ही उन दोनों बालकोंका हस्त धारण किये हुए नन्दप्रासादके द्वारपर पहुँच गयी।।५६२।।

साँवर की वह उदास मैया दौड़ी, पद पकड़ लिये, प्रियतम।
लोचन थे बरस रहे उसके, इस ओर भगवती के, प्रियतम।
फिर बँधे एक डोरी में हों एवं आकर्षित हों, प्रियतम!
यों हुए इकट्ठे सभी वहाँ पुरनरनारी पल में, प्रियतम।।५६३।।

नीलसुन्दरकी उदास मैया दौड़ पड़ी। गैरिकवसना अम्बाके चरण उसने पकड़ लिये। नन्दरानी मैयाकी आँखें बरस रही थीं। भगवतीकी आँखोंसे भी अश्रुका निर्झर झर रहा था। फिर पुरवासी सभी नरनारी मानो एक डोरीसे बँधे हों, इस भाँति आकर्षित होकर पलभरमें ही नन्दरानीके प्रांगणमें एकत्रित हो गये।।५६३।।

नीरव थे सभी, चित्त पर अब हो रहा प्रफुल्लित था, प्रियतम!
उन पर्णकुटीरवासिनी की इस समय उपस्थिति से, प्रियतम!
सबका अनुभव यह था, सबकी रुचि ये रख देती हैं, प्रियतम!
सर्वथा असम्भवको भी ये सम्भव कर देती हैं, प्रियतम।।५६४।।

सभी नीरव थे। किन्तु अब सभीका चित्त प्रफुल्लित हो रहा था, वे पर्णकुटीरवासिनी इस समय उपस्थित जो हो गयी थीं। सबको यह अनुभव था कि वे गैरिकवसना माता सबकी रुचि रख देती हैं। इतना ही नहीं, वे सर्वथा असम्भवको भी सम्भव कर देती हैं।।।५६४।।

प्राणों का प्राण साँवरा यह अब रोगहीन होगा, प्रियतम!
आयी हैं ये सच हम सबको देने ही भीख यही, प्रियतम!
ये बात जानने वाली हैं सबके अन्तस्तल की, प्रियतम!
प्रत्यक्ष हमारे व्रतका फल मिल रहा अभी यह है, प्रियतम।।५६५।।

अब निश्चित रूपसे हमारे प्राणोंका प्राण साँवरा रोगहीन हो ही जायेगा। हम सभीको यह भीख देने ही तो वे आयी हैं। वे सबके अन्तस्तलकी बात जानती हैं। यह देख लो, हम सबके व्रतका प्रत्यक्ष फल, बस अब मिलने ही जा रहा है। अस्तु,।।५६५।।

जो हो पल सात-आठ पूरित सुखसिक्त मनोरथ से, प्रियतम!
बीते अब, पर्णकुटीवाली देवी मुसका करके, प्रियतम!

सॉंवर की मैया के सिर पर कर वरद फेर करके, प्रियतम!
बोलीं रुक-रुककर कण्ठ अहो! उनका भी भर आता, प्रियतम॥ ५६६॥

जो हो, जब सुखमय मनोरथसे परिपूरित सात-आठ पल बीत गये, तब पर्णकुटीरवासिनी देवी मुस्कराते हुए साँवरेकी मैयाके सिरपर हाथ रखकर रुक-रुककर बोल उठी; उनका भी कण्ठ रह-रहकर भर जो आता था।।५६६।।

'री गोपराजरानी! अपनी जेठानी से कह दे,' प्रियतम!
'जो नगर महादेवी से है प्रतिपालित, वह उसमें,' प्रियतम!
'जाकर नरपाल-गेहिनी की वृद्धा उस जननी से,' प्रियतम!
'मिल लेगी, रहती है अब वह जामाता के घर ही,' प्रियतम॥५६७॥

'अरी गोपराज रानी ! अपनी जेठानी प्रभावतीसे कह दो – महादेवीके द्वारा प्रतिपालित जो वह सामने बृहत्सानुपर्वतकी द्रोणीमें नगर बसा हुआ है – वहाँ जाकर नरपालगेहिनी कीर्तिदा महारानीकी उस वृद्धा जनन्नीसे वह मिल ले। अब वह वृद्धा मैया जामाताके घर ही निरन्तर रहने लगी है।'।।५६७।।

जिज्ञासा

छन्द सं५६७ में उल्लिखित महादेवीसे प्रतिपालित नगर कौनसा है और वहाँ कौनसी नरपाल-गेहिनी वृद्धा अपने जामाताके घरमें रहती हैं ? कृपया उनका परिचय दें ।

समाधान

ब्रह्मगिरि पर्वतकी तलहटीमें बसा बृषभानुओंकी राजधानी बृषभानुपुर ही वह नगर है, जो आद्याशक्ति पराभट्टारिका भगवती महादेवी त्रिपुरा द्वारा प्रतिपालित है। इस परम पूत नगरीका निर्माण आद्याशक्ति पराभट्टारिका महादेवीके आदेशसे स्वयं देवशिल्पी विश्वकर्माने किया था। यहाँ इस नगरीमें सबकुछ संविन्मय और संधिनीशक्तिकी स्वतः स्वप्रकाश परिणति ही है।

बृषभानुपुरके नरेश बृषभानुजी हैं और यहाँ उन्हींकी महारानी कीर्त्तिदाकी माता रावलनरेश महाराज बिन्दुकी पत्नी महारानी मोक्षदाका ही सङ्केत भगवती पौर्णमासीजी करती हैं। ये भानुनन्दिनी राधाकी नानी हैं और जबसे मञ्जुश्यामाका जन्म हुआ है, ये रावलग्रामसे बृषभानुपुर आकर ही रहने लगी हैं। ये अतिशय धर्मनिष्ठ सती-शिरोमणि सन्नारी हैं, और इनके धर्मपालन एवं तपश्चर्याका ही परिणाम है कि यज्ञाग्निसे महारानी कीर्त्तिदाका इनकी पुत्रीके रूपमें जन्म हुआ है। श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामाको नारीधर्म, सन्नारी-उचित शीलकी शिक्षा ये सदैव देती रहती हैं। ये बहुत ही अनुशासन-प्रिय वृद्धा रमणी हैं एवं सारे ब्रजमें घूमती हुईं सभी ब्रजवासियोंको धर्माचरणमें प्रवृत्त रहनेका निर्देश देती रहती हैं। वृद्धावस्थाके कारण इनकी कमर (कटिभाग) किञ्चित् झुकी हुई रहती है और ये हाथमें लकुटी लिये रहती हैं। इन्हें ब्रजके लोग प्रायः मुखराके नामसे पुकारते हैं।

तपस्विनी पौर्णमासीजी नन्दरानी यशोदाको यही आदेश देती हैं कि वे अपनी जेठानी उपनन्दपत्नी प्रभावतीको मुखरा नानीके पास मिलनेको भेज दें। ।।५६७।।

'सुन्दर अत्यन्त उपाय एक निर्दोष अनोखा-सा, प्रियतम!
'वृद्धा बतला देगी अतिशय तुम सबको सुखकारी,' प्रियतम!
'तूँ कर लेना, तेरा, मेरा, इस अखिल विश्व का ही,' प्रियतम!
'उरहार अमोल नीलमणि यह रोगी न कभी होगा,' प्रियतम॥ ५६८॥

'वृद्धा मैया एक अत्यन्त सुन्दर उपाय – सर्वथा निर्दोष और अनोखा-सा उपाय बतला देगी। वह उपाय तुम सबके लिये ही बड़ा सुखकारी होगा। तुम लोग उसे कर लेना। फिर तेरा, मेरा और इस अखिल विश्वके हृदयका अनमोल हार यह नीलसुन्दर कभी क्षण भरके लिये भी रोगग्रस्त नहीं होगा।'........।।५६८।।

'हे भगवति! सही स्वस्थ मैं हूं, मैया तो भोली है; प्रियतम!
'मुझमें अत्यंत मोहवश है चिन्ता करती रहती;' प्रियतम!
यह कहता, हँसता इतने में साँवर आगया वहाँ, प्रियतम!
देवीके पदवन्दनकर कुछ लज्जित-सा खड़ा हुआ, प्रियतम ।। ५६९।।

देखते-न-देखते नीलसुन्दर वहीं आ पहुँचे और हँसते हुए उन गैरिकवसना जगदम्बाके चरणोंकी वन्दना करके बड़ी तीव्र गतिसे बोल उठे – 'भगवती ! माता ! मैं सचमुच स्वस्थ हूँ। मैया तो भोली है। मुझमें अत्यन्त मोहवश यह मेरे लिये चिन्ता करती ही रहती है।'........नीलसुन्दरके मुख-सरोजपर एक पवित्र लज्जाकी छाया अभिव्यक्त हो गयी और वे दृष्टि नीची करके खड़े हो गये।।५६९।।

गैरिकवसना अम्बा ऊँचे स्वरसे हँस पड़ीं भला, प्रियतम!
साँवर को अपने उरमें ले, छूकर ठोड़ी उसकी, प्रियतम!
आँखें छलकीं पर नेह-लोर बाहर वह आ न सका, प्रियतम!
होकर संयत-सी फिर बोलीं वे लक्षित कर सबको, प्रियतम।।५७०।।

गैरिकवसना अम्बा ऊँचे स्वरसे हँस पड़ी। साँवरको हृदयसे लगाकर, उनकी ठोढ़ी छूकर, उनका सिर सहलाने लगी। अम्बाकी आँखें बार-बार छलक उठतीं; किन्तु स्नेहजनित अश्रु बाहर न आ सके। अम्बा कुछ ही क्षणमें संयत-सी होकर सबको लक्षित करके बोल उठीं।।५७०।।

'जननी यह नित्य साँवरे की अप्रतिम भागवाली; प्रियतम!
' भोरी ही नहीं, बावरी भी हरदम सचमुच है ही;' प्रियतम!
'इसका पर लाल सलोना अब होगया सयाना है; प्रियतम!
'मानेगी क्या यह इतना भी कोई कहकर देखो।' प्रियतम।।५७१।।

'साँवरेकी नित्य जननी यह यशोदा अप्रतिम भाग्यशालिनी हैं तथा भोली ही नहीं यह सचमुच बावरी भी बनी रहती हैं। किन्तु अब इसका सलोना लाल सयाना हो गया है भला ! कोई इसको कहकर देख लो, यह इतना भी मानेगी क्या ?'।।५७१।।

जिज्ञासा

छन्द सं.५७१में पिछली दो पंक्तियोंका भाव सुस्पष्ट करें । यशोदाका सलोना लाल सयाना हो गया है, इसे यशोदा क्यों नहीं समझ पातीं ?

समाधान

वृद्धा तपस्विनी पौर्णमासीजीने इन दो पंक्तियोंमें नन्दरानी यशोदाके प्रगाढ़ वात्सल्यभावका ही दिग्दर्शन कराया है। यशोदा, रोहिणीमुख्या मातृवर्गीया गोपियाँ घनीभूत वात्सल्यसिन्धुकी ऊर्मियोंमें लहरातीं इस भावनाको संस्पर्शित ही नहीं कर पा रही हैं कि उनके नीलमणिमें आयुसम्बन्धी कोई विशेष परिवर्त्तन हुआ है, और इसीसे उसकी चेष्टाओंमें उदासीनताका प्रादुर्भाव हो रहा है। जननीकी आँखें तो अभी भी उसे दुधमुँहे बच्चे के समान ही देख रही हैं। यह सत्य

है कि माता यशोदाके लिये उसका नीलसुन्दर उसकी वात्सल्यधाराके आवर्त्तमें भविष्यकी सुखमयी कल्पनाके रूपमें कितनी ही बार कौमार्यसे पौगण्ड एवं तब किशोर अवस्थामें प्रवेश करता है। वे मण्डप सजाकर उसके विवाहकी कल्पनामें भी तन्मय होती हैं, किन्तु वात्सल्यजनित परमानन्दकी लहरें एक क्षणमें ही माताको अपने भावमें डुबो देती हैं। वे प्राणोंमें उल्लास भरकर अपने नीलसुन्दरको स्तनपान करादेनेकी भावधारामें बह जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्रके अङ्गोंके अन्तरालसे वस्तुतः व्यक्त हुआ कैशोर्य ब्रजेन्द्रगेहिनी यशोदाके लिये कोई महत्व ही नहीं रखता। प्रगाढ़ वात्सल्यके प्रवाहमें बहती यशोदाको तो उनका कन्हैया स्तनपानके लिये क्रन्दन करता शिशु ही दिखने लगता है और वे उसे सचमुच ही स्तनपान करानेको आतुर हो जाती हैं। यहाँ एक महान् आश्चर्य घटित हो जाता है कि माताकी भावधाराका प्राबल्य शीघ्रतापूर्वक श्रीकृष्णके कैशोरको विलुप्त कर देता है तथा उन्हें अवश होकर सत्यांशमें शिशुरूप ग्रहण करना पड़ता है।

वात्सल्य-रसघनमूर्त्ति यशोदाका यह अप्रतिम भाव है कि उसके सामने कालशक्तिको भी उनके भावानुसार ही नियंत्रित होना पड़ता है। यदि वे अपने नीलमणिको चन्ददर्शन करानेकी भावधारामें बह रही हों तो कालशक्तिको ठीक उनके भावके अनुरूप ही श्रीकृष्णचन्द्रकी वय सुनिश्चित करनी होती है। यशोदामैयाका वात्सल्यभाव इतना सर्वातिशायी है कि जैसे सूर्यके उदय होनेपर जुगनूका कहीं पता ही नहीं लगता, वैसे ही उसके प्रभावके सामने बिचारी वय–नियंत्रक शक्ति हतप्रभ हो जाती है। उसे यशोदामैयाके भाव-सङ्केतके अनुसार, उनकी भाव-अनुगामिनी होकर ही चलना पड़ता है। इसीलिये श्रीकृष्णचन्द्रके अङ्गोंके अन्तरालसे व्यक्त हुआ कैशोर्य यशोदाके लिये विशेष महत्त्व नहीं रखता। उन्हें तो अपने भावानुसार दिनमें असंख्य बार श्रीकृष्ण किशोर दीखते हैं और फिर छोटे शिशु होकर उनके स्तनपायी हो जाते हैं। यशोदाके इस विलक्षण भावको प्रकट करनेवाली ही ये दो पंक्तियाँ हैं।।।५७१।।

फिर तो देवी के अञ्चल में चञ्चल होकर अपना, प्रियतम!
श्रीमुख निलीन कर साँवर ने बिनती-सी कुछ करदी, प्रियतम!
केवल सुन सकीं उसे वेटी, स्वीकार कर लिया भी, प्रियतम!
'ऐसा ही हो,' कहकर सहला-सहला कर कच उसके, प्रियतम।।५७२।।

देवीकी यह उक्ति पूरी होते-न-होते नीलसुन्दर चञ्चल होकर अपना मुख देवीके अञ्चलमें ही छिपा लेते हैं। इतना ही नहीं, अञ्चलमें छिपे हुए श्रीमुखसे उन्होंने देवीसे कुछ विनती भी कर दी। किन्तु उस विनतीको केवल जगदम्बा ही सुन सकीं और उन्होंने उसे स्वीकार भी कर लिया। गैरिकवसना अम्बाने 'एवमस्तु' इतना सा ही कहा और वे नीलसुन्दरकी अलकोंको सहलाने लगीं।।५७२।।

जिज्ञासा

छन्द संख्या ५७२में नीलसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र पौर्णमासीजीके अञ्चलमें मुख छिपाकर क्या प्रार्थना करते हैं, जिसका प्रत्युत्तर पौर्णमासीजी 'तथाऽस्तु' कहकर देती हैं ? कृपया इस रहस्यको उजागर करें।

समाधान

विशुद्ध दिव्यरससे अनभिज्ञ लोग ही ऐसा समझते हैं कि भगवान् कामी नहीं हैं। प्रेमका सर्वोच्च विकसित रूप – माधर्यरस इतना सुस्वादु है कि भगवान्को भी अपनी ह्लादिनीशक्ति राधाका कामी बना देता है। इस रसमें पगे भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सम्पूर्ण भगवत्तारूप ऐश्वर्यको भूलकर भानुनन्दिनी राधाके प्रेममें मतवाले हो जाते हैं।

शान्तरसमें शुद्धान्तःकरणकी भगवदभिमुखी वृत्ति अत्यन्त विकसित होकर सर्वत्र भगवान् ही भगवान्को देखती है, जानती है, मानती है। वहाँ 'अहं' 'स्व' भगवान्में समर्पित ही नहीं, विलीन हो जाता है। दास्यमें भगवान् महान् ऐश्वर्यशालीरूपमें सेव्य रहते हैं। दास्यमें अलगाव है, सङ्कोच है। सख्यमें ऐश्वर्य अप्रकट रहकर छिप जाता है और प्रेम प्रकट हो जाता है। वात्सल्यमें भी ऐश्वर्यकी छाया रहती है, किन्तु माधुर्यमें तो भगवान् अपने सारे ऐश्वर्यको भुलाकर – अपनी सब विभूतियोंको पूर्णतया मिटाकर प्रियतमा कान्ताके कामी हो जाते हैं। प्रिया मेरी है, मैं प्रियाका हूँ, मेरा सबकुछ प्रियाका है, और प्रियाको छोड़कर मेरा तो कुछ है ही नहीं। इस रसके द्वारा प्रिया सेव्या हो जाती है। प्रिया राधाका निरन्तर चिन्तन, मिलनकी अत्यन्त उत्कट अतृप्त उत्कण्ठा, प्रियामें किसी भी दोषका नहीं दीखना, अपितु स्वयंको पूर्ण दोषी मानना, इस प्रकार प्रेमका उत्कट उत्कर्ष होनेके कारण इस अवस्थामें नन्दनन्दनको श्रीराधाका क्षणभरका अदर्शन ही असह्य हो उठता है। इस पूर्वरागके बढ़ते प्रेमके कारण श्रीकृष्ण प्रतिक्षण चाहे गोष्ठमें हों, चाहे वनमें गायें चरा रहे हों, चलते-उठते, खाते-पीते निरन्तर श्रीराधाका ही चिन्तन करते हैं। प्रियादर्शनके बिना उनका एक-एक पल युगोंके समान ही व्यतीत होता है।

यहाँ यशोदानन्दन 'आप्तकाम' भगवान् नहीं हैं। अतः वे पौर्णमासीजीसे भानुकुमारीका कम-से- कम दिनमें एक बार तो निश्चय ही दर्शन हो जाय – इसीकी कामना करते हैं। उनके चित्तमें अपनी प्रियाके दर्शनकी तीव्रतम उत्कट अभिलाषा है। उनके मनकी यह प्रियादर्शनकी निष्कपट एवं स्वाभाविक व्याकुलता ही वृद्धा तपस्विनी पौर्णमासीजीके सम्मुख अभिलाषाके रूपमें व्यक्त होती है, और इसीकी पूर्त्तिका ही तपस्विनी पौर्णमासी द्वारा उन्हें 'तथाऽस्तु' कहकर वरदान दिया जाता है। इस वरदानको पाकर संतुष्ट हुए श्रीकृष्ण पौर्णमासीजीकी गोदसे उठकर अपनी मैयाकी गोदमें चले आते हैं। ।।५७२।।

जा बैठा साँवर अब अपनी मैया की गोदी में, प्रियतम !
मैया खिल उठी प्रसन्नवदन लखकर अपने सुत का, प्रियतम !
सबका मन डूब गया नीले आनन्द-हिलोरों में, प्रियतम !
कल्याणी वे देवी फिर जब बोलीं तब चेत हुआ, प्रियतम ।।५७३।।

नीलसुन्दर अपनी जननीकी गोदमें जाकर बैठ गये। मैयाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। अपने पुत्रका मुख प्रसन्नतासे परिपूरित देखकर मैयाके लिये अब कुछ प्राप्तव्य ही नहीं था। सबका मन एक नीले आनन्दकी हिलोरोंमें डूब गया। जब कुटीरवासिनी अम्बा फिर बोली, तभी सबको बाह्य ज्ञान हुआ भला !।।५७३।।

'री गोकुलेश रानी ! वनमें इसको अब जाने दो; प्रियतम !
'जो रुचे कलेवा जितना-सा, उतना ही आज करे।' प्रियतम !
वृद्धा की बतलायी विधि वह आचरित हुई जैसे, प्रियतम !
उसके पश्चात् निरन्तर रुचि परिवर्द्धित होगी ही, प्रियतम ।।५७४।।

देवी कह उठी – 'नन्दरानी ! अब नीलसुन्दरको वनमें चले जाने दो। अभी जितना-सा वह कलेवा करना चाहे, इसे कर लेने दो। फिर तो उस वृद्धा माताकी बतलायी हुई विधिका तुम लोगोंने जैसे ही आदर किया कि बस, उसके पश्चात् तो नीलसुन्दरकी रुचि निरन्तर परिवर्धित होती ही चली जायेगी।'।।५७४।।

वे महाप्रभावमयी समता-करुणा-वत्सलता की, प्रियतम !
विग्रहरूपा अम्बा इतना कहतीं-कहतीं लौटीं, प्रियतम !
तोरण तक साथ सभी उनके आये, इतने में ही, प्रियतम !
गिरते न पलक गिरते वे तो हो गयीं अदृश्य, भला, प्रियतम।।५७५।।

वे महाप्रभावमयी कुटीरवासिनी देवी समता, करुणा एवं वत्सलताकी विग्रहरूपा थीं। सबकी जननी भी थीं। बस, वे उपर्युक्त बात कहती-कहती ही बाहरकी ओर चल पड़ीं। तोरण द्वारतक तो सभी उनके साथ आये। इतनेमें ही अचानक पलक गिरते-न-गिरते वे तो अदृश्य हो गयीं भला ! ।।५७५।।

साँवर भी मैया से जल्दी-जल्दी लेकर छुट्टी, प्रियतम !
चल पड़ा धेनु आगे कर, फिर पथमें हँसकर बोला, प्रियतम !
'भैयाओ ! स्वप्न एक सुन्दर मैंने गत रजनी के,' प्रियतम !
'उस ठीक अन्तवाले क्षणमें देखा है, चलो, सुनो ।' प्रियतम ।।५७६।।

नीलसुन्दरने मैयासे जल्दी-जल्दी छुट्टी लेकर, धेनु-समूहको आगे करके वनस्थलकी ओर चलनेके लिये तैयारी कर ली और मन्द मन्थर गतिसे चल भी पड़े। पथमें अपने शिशु सखाओंसे हँसकर बोले – 'देखो भैयाओं ! गत रजनीके ठीक अन्तिम क्षणमें मैंने एक बड़ा ही सुन्दर स्वप्न देखा है। चलो ! मैं तुम लोगोंको सुनाता हूँ।'.......।।५७६।।

प्राचीतट विशद सुरम्य उसी सुन्दरी सरोवर का, प्रियतम !
आ गया और साँवला लाल गोपाल वहीं बैठा, प्रियतम !
सहचर मण्डल की उत्सुक थीं आँखें द्रुमसुमनों से, प्रियतम !
झरता था मधु, आरम्भ हुई सपने की वह गाथा, प्रियतम ।।५७७।।

उसी सुन्दरी सरोवरका वह सुरम्य प्राची तट शीघ्र-से-शीघ्र आ गया। साँवरे गोपाललाल वहीं आ बैठे। सखा सहचरोंकी आँखें उत्सुकतासे भरी थीं, उस स्वप्नको सुन लेनेके उद्देश्यसे। वृक्षावलिसे, वृक्षोंके सुमनोंसे टप-टप मधु झर रहा था, ऐसे ही सुरम्य समयमें नीलसुन्दरकी स्वप्नवाली गाथा आरम्भ हुई ....।।५७७।।

जिज्ञासा

छन्द सं. ५७६-५७७ में श्रीकृष्ण सखाओंसे अपने गत रजनीके अन्तिम भागमें देखे गये स्वप्नका उल्लेख करते हैं। यह स्वप्न क्या था ? इसका वर्णन आगे इस शतकमें तो कहीं नहीं किया गया है । इस स्वप्नका जो भी स्वरूप रहा हो, उसे पूरी तरह सुस्पष्ट करें।

समाधान

नीलसुन्दरके स्वप्नवाली गाथा वही गाथा है जिसे मोक्षदा – मुखरा नानी श्रीकृष्णकी ताई प्रभावतीके सामने प्रकट करती है। एक संवत्सर पहले अति तेजस्वी ऋषि दुर्वासा बृषभानुपुर आये थे। भानुनन्दिनी राधाको उन्होंने विदा होते समय यह वरदान दिया था कि इसके हाथसे स्पर्शित एवं रंधन किया हुआ भोजन अनुपम स्वादयुक्त होगा तथा जो भी उसे ग्रहण करेगा, वह सभी रोगोंसे तत्क्षण मुक्त हो जायगा। श्रीकृष्ण अपने सखाओं – सुबल, श्रीदामादिके सम्मुख इसी स्वप्नकी गाथा बतलाते हैं कि स्वप्नमें बृषभानुनन्दिनीके द्वारा रंधनकी हुई खीर बृषभानुपुरसे आयी है, और उसे जैसे ही उन्होंने खायी है, वे उदासीनता एवं भूख नहीं लगने आदि सभी रोगोंसे पूर्णतया मुक्त हो गये हैं। सखा यह स्वप्न सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं और सचमुच जैसे ही वे वनसे नन्दभवन पहुँचते हैं, मैया यशोदा उन्हें बृषभानुपुरसे आयी अनुपम सुस्वादु खीर खिला देती है। श्रीकृष्णके खीर खाते ही स्वस्थ हो जानेसे नन्दग्रामके लोगोंके लिये वह रात समस्त चिन्ताओंको हरनेवाली, एक नये उत्सवके रूपमें परिणत होकर व्यतीत होती है।।५७७।।

वह उधर नीलसुन्दर की जो ताई थी जा पहुँची, प्रियतम!
देवी रक्षित महीपपुर के उत्तर की सीमा में, प्रियतम!
गिरिवर के सोते को उसने, बस, पार किया ही था, प्रियतम!
वृद्धा मिल गयी वहीं, जिससे मिलने आयी वह थी, प्रियतम॥५७८॥

उस ओर नीलसुन्दरकी ताई प्रभावतीदेवी यशोदा मैयाके द्वारा प्रेरित होकर बृषभानुपुरके उत्तरकी सीमामें जा पहुँची। तथा इस ओर वृद्धा नानीजीने गिरिवरके सोतेको पार करके घने अरण्यस्थलमें अपने पैर रखे। यहीं प्रभावती देवी भी आ पहुँची। संयोगकी बात, जिससे मिलने प्रभावती ताईजी आयी थी वे वृद्धा नानीजी पथमें ही मिल गयीं।।५७८।।

किंचित् थी झुकी कमर उसकी, अब सितकेशी वह थी, प्रियतम!
थी ज्योति बनी दृगमें अबभी कुछ घट जाने पर भी, प्रियतम!
लाठी करमें लेकर चलती सब ओर घूम आती, प्रियतम!
सब खेर-नगरकी जनता थी परिचित उस नानी से, प्रियतम॥५७९॥

वृद्धा नानीजीकी कमर किञ्चित् झुक गयी थी; मस्तकके सम्पूर्ण केश उज्ज्वल हो चुके थे। किन्तु नेत्रोंकी ज्योति कुछ घट जानेपर भी, अभी पर्याप्त थी। अपने दाहिने हाथमें वे लाठी लिये चलतीं और सम्पूर्ण व्रजमें घूम आतीं। सम्पूर्ण खेर एवं नगरके लोग उन वृद्धा नानीजीसे पूर्ण परिचित थे।।५७९।।

वह बड़े स्नेह से मिली, भला, साँवर की ताई से, प्रियतम!
स्वाभाविक बहुत बोलती थी, उसने ही पूछ लिया, प्रियतम!
'कैसे तुम आज अकेली हो आयी, प्रसन्न सब हैं?' प्रियतम!
'वे लोग अहीर राजपुरके, है स्वस्थ नीलमणि तो?' प्रियतम॥५८०॥

नानीजी नीलसुन्दरकी ताईसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक मिलीं। नानी स्वभाविक बोलती भी बहुत थीं और इसलिये ही उन्होंने प्रभावतीसे पूछ लिया – 'क्यों, कैसे तुम आज अकेली ही यहाँ खड़ी हो ? अभी आयी दीखती हो ? सब प्रसन्न तो हैं नन्दरायजीके ग्रामके नर नारी ? नीलमणि तो पूर्ण स्वस्थ है न ?.....।।५८०।।

अपने ही आप दैवगति से सुन्दर भूमिका बनी, प्रियतम!
बातें गत तीस पहर की सब ताई ने बतलायीं, प्रियतम!
सुन रही ध्यान देकर वह थी प्रत्येक बात को ही, प्रियतम!
थी जहाँ समझ न सकी, उसको दुहराकर पूछ लिया, प्रियतम॥५८१॥

दैवगतिसे अपने-ही-आप सुन्दर भूमिका बन गयी। गत तीस प्रहरकी सभी बातोंको प्रभावती ताईजीने नानीजीको बतला दिया। बुढ़िया नानी प्रत्येक बात बड़े ध्यानसे सुनती जा रही थी; जहाँ ठीकसे नहीं सुन पातीं, उसको दोहराकर तुरन्त पूछ लेतीं।।५८१।।

सुनकर पर उन गैरिकवसना ऐश्वर्यशालिनी की, प्रियतम!
वह उक्ति रहस्यमयी शुचि, जो सम्बद्ध उसीसे थी, प्रियतम!
अत्यन्त पड़ी असमंजस में, उत्तर वह दे न सकी, प्रियतम!
आ गयी याद थी बात एक संवत्सर पहले की, प्रियतम॥५८२॥

जब नानीजीने उन ऐश्वर्यशालिनी गैरिकवसना अम्बाकी वह पवित्र रहस्यमयी उक्ति सुनी, जो उनसे ही सम्बद्ध थी, तब वे बड़े असमञ्जसमें पड़ गयीं। तथा कुछ भी उत्तर न दे सकी। नानीजीको एक वर्ष पूर्वकी घटना याद आ गयी।। ५८२।।

'आये थे पुत्री के घर ऋषि तेजस्वी एक महा;'प्रियतम!
'साँवरी दौहिती से मैंने उनकी बातें पूछी;'प्रियतम!
'मेरी मनुहारों से दबकर उसने भी बतला दी;'प्रियतम!
'वह बात सुगुप्त लाड़िली को उनके वर देने की;'प्रियतम।।५८३।

वे सोचने लगीं – मेरी कीर्तिदा बेटीके घर एक अत्यन्त तेजस्वी ऋषि एक वर्ष पूर्व आये थे। अपनी साँवरी दौहित्रीसे फुसलाकर मैंने सब बातें पूछ ली थीं। साँवरीने भी मेरी मनुहारोंसे दबकर सब बातें ज्यों-की-त्यों बतला भी दी थीं। मेरी बड़ी लाड़िली राधाको ऋषिवरने एक सुगुप्त वरदान भी दिया था।।५८३।।

'देवी ने जिसकी ओर किया संकेत यही वह है;'प्रियतम!
'आमयहारी उपाय निश्चित; पर जो मैं कह दूँ तो;'प्रियतम!
'मेरी साँवरी रूठे! मुझसे अत्यधिक रुष्ट होगी;'प्रियतम!
''विश्वास घातिनी' कह-कहकर नाकों दम कर देगी;'प्रियतम।।५८४।।

गैरिकवसनाने जिस बातकी ओर सङ्केत किया है, वह तो यही है। सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला उपाय निश्चितरूपसे यही है। किन्तु यदि मैं उसे प्रकट कर देती हूँ, तो साँवरी मुझसे अत्यधिक रुष्ट हो जायेगी ; मुझे विश्वासघातिनी कह-कहकर नाकों दम कर देगी।।५८४।।

"छोरा साँवरा ज्वर वह है रोगी हो रहा तथा;"प्रियतम!
"देवी-रुचि की हेला सम्भव है नहीं किसी से भी;"प्रियतम!
"जैसे-तैसे श्यामा को फिर आगे फुसला लूँगी;"प्रियतम!
"इसके अतिरिक्त और तो क्या कर सकती हूँ अब मैं?"प्रियतम।।५८५।।

उस ओर नीलसुन्दर रुग्ण हो रहा है। साथ ही गैरिकवसना देवीकी रुचिकी अवहेलना किसीके द्वारा संभव भी नहीं है। मैं जैसे-तैसे साँवरीको फिर आगे भी फुसलाकर प्रसन्न कर लूँगी। इसके अतिरिक्त अब मैं और कर ही क्या सकती हूँ ?'.......।।५८५।।

इस भाँति घड़ी आधी तक वह चिन्ता में पड़ी रही, प्रियतम!
आखिर साँवर की ताई से उसने सब बात कही, प्रियतम!
दी राय और यह, 'साँवर को कुछ वस्तु खिला देना;' प्रियतम!
'जो मेरी बड़ी दौहिती ने राँधी हो, उसमें से;'प्रियतम।।५८६।।

इस प्रकार आधी घड़ी तक नानी चिन्तामें पड़ी रहीं। आखिर प्रभावती ताईजीसे वह बात उन्होंने बतला ही दी और यह राय दी कि नीलसुन्दरको मेरी बड़ी दौहित्री राधाके द्वारा रन्धन की हुई वस्तुमेंसे किञ्चित् खिला दो, सीधा-से-सीधा उपाय यही है।।५८६।।

ताई तुरंत लौटी, मैया साँवर की बैठी थी, प्रियतम!
जाकर आधे से कुछ आगे वन के उस पथ के ही, प्रियतम!
दोनों वे मिलीं; बात करके ताई फिर से आयी, प्रियतम!
अत्यन्त वेगसे चलकर उस देवी पालित पुर में, प्रियतम।।५८७।।

यह सुनकर प्रभावती ताई तुरंत नन्दरानी मैयाके पास लौट आयीं। बीच पथमें ही नन्दरानी मैया बैठी थीं। प्रभावती ताई और उनका वहीं मिलन हुआ। मैयासे बात करनेके अनन्तर प्रभावती ताईजी अत्यन्त वेगसे चलकर पुनः महादेवीसे रक्षित वृषभानुपुरीमें जा पहुँची।।५८७।।

था डेढ़ पहर बाकी दिन अब, रानी अंतःपुर के, प्रियतम!
आँगन में थीं बैठी करती खिलवाड़ छोरियों से, प्रियतम!
दोनों बहनें खेलने आज बाहर थीं नहीं गयीं, प्रियतम!
अच्छा संयोग लगा, पहुँची वह ठीक समयसे ही, प्रियतम।। ५८८।।

इस समय केवल डेढ़ पहर दिन बाकी बचा था। कीर्तिदा मैया अपने प्राङ्गणमें बैठी दोनों पुत्रियोंसे खिलवाड़ कर रही थीं। दोनों बहनें खेलनेके लिये आज बाहर वनस्थलमें नहीं गयी थीं। इसीलिये भाग्यसे बड़ा अच्छा संयोग लग गया। प्रभावती ठीक समयसे ही पहुँची।। ५८८।।

प्राणों का प्यार भरा सुखमय आलिङ्गन दे उसको, प्रियतम!
रानी ने आने का कारण पूछा, फिर सुनते ही, प्रियतम!
ले गयीं तुरंत लाड़िली की दादी के पास उसे, प्रियतम!
वह पितामही रहती अब थी केवल पति सेवामें, प्रियतम ।।५८९।।

अपने प्राणोंका प्यारभरा सुखमय आलिङ्गन देकर कीर्तिदा मैयाने प्रभावतीका स्वागत किया और उनके आनेका कारण पूछा। कारण जान लेनेपर वे अविलम्ब राधाकिशोरीकी दादीजीके पास उन्हें ले गयीं। दादीजी अब निरन्तर केवल पतिसेवामें ही रहती थीं।।५८९।।

थे वृद्ध महाराजा प्रायः रहते समाधि में ही, प्रियतम!
दो-दो थे पहर बीत जाते, खुलती न आँख उनकी, प्रियतम!
प्रातः फिर अर्धनिशामें वे कुछ देर बोलते थे, प्रियतम!
दादी उस समय पूछ लेती, जो कुछ करना होता, प्रियतम।। ५९०।।

महाराज महिभानु दादाजी-प्रायः अब समाधिमें ही रहते थे। दो-दो पहर बीत जाते थे, पर उनकी आँखें नहीं खुलती थी। प्रातःकाल एवं अर्द्धनिशामें कुछ देरके लिये वे दो-चार वाक्य बोलते थे। दादीजी उसी समय उनसे जो कुछ करना आवश्यक होता, पूछ लिया करतीं।।५९०।।

अतएव परम सुन्दर निर्णय दादी ने यही दिया, प्रियतम!
'लाली तुरंत अब आज यहीं रन्धन कुछ कर देगी,' प्रियतम!
'ब्यारू के समय नीलमणि को दे दो, प्रातः कल तो,' प्रियतम!
'मैं वहीं भेज दूँगी इसको, लेकर अनुमति इनकी!' प्रियतम।।५९१।।

इसीलिये दादीने भी सब सुनकर परम सुन्दर निर्णय यही दिया – 'अब आज तो बड़ी लाली तुरंत यहीं कुछ रन्धन कर देगी। ब्यारूके समय नीलमणिको आज वह खिला देना। आज अर्द्धनिशामें वृद्ध महाराजकी अनुमति लेकर कल प्रातःकाल मैं इन सबको वहीं नन्दग्राम भेज दूँगी और वे रन्धन कर आयेंगी।'।।५९१।।

'मेरी शतशुभाशीश कहना गोपेश-गेहिनी से,' प्रियतम!
'चिन्ता न करें, नीरोग नीलमणि नित्य रहेगा ही,' प्रियतम!

'लाली तो साँवर की ही निधि, साँवर जननी की है;' प्रियतम!
'चाहेंगी जब-जब वे, तब यह रन्धन कर आयेगी,' प्रियतम ॥५-९२॥

दादीजी उस भाँति ही स्नेहभरे स्वरमें इतना-सा और बोल गयीं – 'नन्दरानीसे मेरी शत-शत शुभ आशीष कहना। और कह देना कि वे सर्वथा किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। नीलमणि नित्य निरोग रहेगा ही। मेरी लाली तो साँवरेकी ही निधि है, साँवर-जननीकी ही वस्तु है। नन्दरानी जब-जब चाहेंगी, यह जाकर वहाँ रन्धन कर आयेगी।'।।५९२।।

वैसा ही हुआ, द्वादशी के रवि गये अस्तगिरि में, प्रियतम!
आकर वन से अलिन्द में जब साँवर खाने बैठा, प्रियतम!
वह एक कटोरा खीर जिसे ताई ले आयी थी, प्रियतम!
उसकी कैसी महिमा थी, यह जो देख सके, देखे, प्रियतम ॥५-९३॥

सब कुछ वैसे ही हुआ। जब द्वादशी संध्यामें दिवाकर अस्तगिरिमें चले गये और नीलसुन्दर वनसे लौटकर अलिन्दमें व्यारू करने बैठे, तब वह एक कटोरा खीर – जिसे प्रभावती ताईजी वृषभानुपुरसे ले आयी थीं – उसकी कैसी महिमा प्रकट हुई, इसे जो व्यक्ति देख सके, वह देख ले.........।।५९३।।

गोपेशपुरी के लोगों की चिन्ता हरने वाली, प्रियतम!
वह रात एक नूतन उत्सव-जैसी होकर बीती, प्रियतम!
आने तक उषा गूँजता था पत्तन के कण-कण में, प्रियतम!
श्रीमन्नारायण-नारायण-रव सतत भरा स्वर में, प्रियतम ॥५-९४॥

नन्दग्रामके लोगोंके लिये समस्त चिन्ताओंको हरनेवाली वह रजनी नूतन उत्सव जैसी होकर बीत चली। उषाकी लालिमा आनेतक नन्दपुरीमें, पत्तनके कण-कणमें 'श्रीमन्नारायण नारायण' यह रव निरन्तर बँधे स्वरमें गूँज रहा था।.........।। ५९४।।

वे महीपाल-गेहिनी उधर कुक्कुट-रव सुनते ही, प्रियतम!
वन्दन कुलदेवी का करके उठ पड़ी शीघ्रता से, प्रियतम!
निर्मञ्छन ललियों का कर, फिर उनको प्रबुद्ध करके, प्रियतम!
नहला कर, अतुल वेषभूषा सुन्दर उनकी रच दी, प्रियतम ॥५-९५॥

उधर वृषभानुगेहिनी कुक्कुटका रव सुनते ही उठ पड़ी। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी कुलदेवीका वन्दन किया। फिर बड़ी शीघ्रतासे अपनी दोनों पुत्रियोंका निर्मञ्छन करके उन्हें प्रबुद्ध किया। स्नान कराया और अतुल सुन्दर वेष रचना कर दी उनकी।।५९५।।

आ पहुँची सब सहेलियाँ भी वैसी ही सजी-धजी, प्रियतम!
प्राची में दीखा-सा ही था ज्योतिर्मय रथ रवि का, प्रियतम!
मन्दिर में वृद्ध पितामह के एकत्र हुईं सब वे, प्रियतम!
आशीष लाड़िली को उनकी लेनी आवश्यक थी, प्रियतम ॥५-९६॥

इतनेमें ही सज-धजकर सब सहेलियाँ, सखियाँ आ पहुँचीं। इस समय प्राचीमें दिनकरका ज्योतिर्मय रथ उद्भासित-सा ही हुआ था। वृद्ध पितामह जिस मन्दिरमें निवास करते थे, वे सब-की-सब वहीं एकत्र हुईं। आज लाडिली राधाकिशोरीको उनका आशीर्वाद लेना अत्यन्त आवश्यक जो था।।५९६।।

दोनों उन अहो! पोतियों पर, जो खड़ी सामने थी, प्रियतम!
दादा की दृष्टि गयी, वे तो उठ पड़े अधीर हुए, प्रियतम!
था यही प्रथम अवसर उनके जीवन का, जो उनमें, प्रियतम!
हो गया देखते ही उनको आवेश मोह का-सा, प्रियतम!! ५९७!!

अपनी दोनों पोतियोंपर, जो ठीक दादाजीके सामने खड़ी थीं, जैसे ही महिभानु दादाजीकी दृष्टि पड़ी, कि बस, वे आज अधीर हुए अपने आसनसे सहसा उठकर खड़े हो गये। दादाजीके जीवनका यह प्रथम अवसर था, जो उनमें पोतियोंको देखकर मोहका-सा आवेश हो गया भला !।।५९७।।

कर्तव्यपरायण होकर भी निर्लिप्त सदा वे थे, प्रियतम!
था जन्म शाक्तकुलमें उनका पर वैष्णवाग्र वे थे, प्रियतम!
क्षणभर भी पद्मनाभ-पदकी विस्मृति न कभी होती, प्रियतम!
अब तो व्यवहार-जगत् से वे सर्वथा अलग-से थे, प्रियतम।।५९८।।

महिभानु महाराज अत्यन्त कर्तव्यपरायण थे। ऐसा होनेपर भी वे सदा अत्यन्तिक रूपसे निर्लिप्त रहते थे। उनका जन्म तो शाक्तकुलमें हुआ था, पर वे साथ ही में वैष्णवाग्र भी थे। क्षण भरके लिये भी उन्हें भगवच्चरण-सरोरुहकी विस्मृति कभी न होती थी और अब तो व्यवहार जगत्से सर्वथा अलग-से हो गये थे। ... ..अस्तु, ।।५९८।।

दादीने हाथ पकड़ उनको आसन पर बैठाया, प्रियतम!
लाड़िली साँवरी एवं सब जो खड़ी छोरियाँ थीं, प्रियतम!
वन्दना अङ्कमें दादा के सिर रखकर सबने की, प्रियतम!
दादाजी के दृगसे झर-झर बूँदें थीं बरस रही, प्रियतम।।५९९।।

दादीने तुरन्त हाथ पकड़कर उन्हें आसनपर विराजित कर दिया। लाडिली, साँवरी एवं उन दोनोंकी सम्पूर्ण सहचरियोंने, जो वहाँ खड़ी थीं, सबने ही दादाजीके अङ्कमें सिर रखकर उनकी वंदना की। आज दादाजीके दृगोंसे झर-झरकर अश्रुबूँदें निरन्तर बरस रही थीं।।५९९।।

कोई न समझ पाया, उनकी यह हुई अवस्था क्यों, प्रियतम!
संकेत अतः कर देती हूँ, दादा ने यह देखा, प्रियतम!
सच्चिदानन्द परतत्व, अहो! अविषय मन वाणी का, प्रियतम!
गोरी-साँवरी-नीलसुन्दर, इनसे अभिन्न ही है, प्रियतम।।६००।।

कोई भी समझ नहीं पाया कि दादाजीकी ऐसी अवस्था आज अचानक क्यों हो गयी। अतः मैं सङ्केतमात्र कर दे रही हूँ। दादाजीने देखा – 'सच्चिदानन्दघन परतत्व – जो मन-वाणीसे सर्वथा परे है, अहो ! वही तत्व इन गोरी-साँवरी एवं नीलसुन्दर – इनसे तो सर्वथा अभिन्न है भला ।'.......।।६००।।

है खेल अनिर्वचनीय और निरुपम अचिन्त्य इनका, प्रियतम!
साँवर जिसको जितना-सा जब, दिखला दे वह देखे, प्रियतम!
उतना-सा तभी मर्म फिर भी अज्ञात रहेगा ही, प्रियतम!
अतएव नहीं पहचान सका अपनी पोती-युग को, प्रियतम।।६०१।।

'इनका खेल अनिर्वचनीय, अचिन्त्य एवं निरुपम है। साँवरा जिसको जितना-सा जब दिखला दे, बस, वह उतना-सा ही देख ले। फिर भी उसका मर्म उसके लिये अज्ञात ही रहेगा। इसीलिये तो मैं अपनी दोनों पोतियोंको अबतक पहचान ही नहीं सका..........।।६०१।।

ऐसी अनुभूति पितामह को हो गयी, और फिर वे, प्रियतम!
बह चले लहर में संविद् के ऊपर वत्सलता की, प्रियतम!
इच्छा थी सर्वनियन्ताकी, दादाजी अब आगे, प्रियतम!
हों मग्न रसोदधि में, जो है बह परे ज्ञान से भी, प्रियतम।।६०२।।

पितामहको ऐसी अनुभूति आज सहसा हो गयी और फिर वे तुरन्त पूर्ण संविद्के ऊपर वत्सलताकी जो लहर होती है, उसमें बहने लगे। सर्वनियन्ताकी इच्छा थी – अब दादाजी आगे इस रसोदधिमें निमग्न हो जायँ, जो ज्ञानसे भी परे है।.............अस्तु,।।६०२।।

हो जाय न कहीं विलम्ब, डेढ़ योजन जाना जो था, प्रियतम!
दादी ने उरसे लगा-लगा उन सबको बिदा किया, प्रियतम!
हो अहो! जम्बुनद धारा के अन्दर से चमक रही, प्रियतम!
मानो सुवर्ण की राशि भला, इसभाँति चलीं वे सब, प्रियतम।।६०३।।

कहीं विलम्ब न हो जाय – लाडिली आदि सबको डेढ़ योज़नका पथ अभी तय जो करना है। सहसा दादीके ध्यानमें यह बात आयी। दादीने सबको हृदयसे लगाया और तत्क्षण विदा कर दिया। अहो ! मानो जाम्बूनद स्वर्णकी विगलित धाराके अन्तरालसे स्वर्णकी राशि चमक रही हो – चम-चम कर रही हो – इस भाँति वे सब-की-सब नन्दग्रामकी ओर अग्रसर हुईं।।६०३।।

दूरी संकुचित अहो! पथ की हो गयी सत्य सहसा, प्रियतम!
लाड़िली आदि सब जा पहुँची आधी घटिका में ही, प्रियतम!
साँवर की मैया ने सबका कैसा सत्कार किया, प्रियतम!
वाणी कहने का साहस कर कर देगी विकृत उसे, प्रियतम।।६०४।।

पथकी दूरी सहसा, सचमुच संकुचित हो गयी। आधी घड़ीका समय ही लगा और लाड़िली आदि सब-की-सब नन्दग्राममें जा पहुँची। साँवरकी जननीने राधाकिशोरी एवं उसकी सहचरियोंका कैसा स्वागत किया, वाणी इसे कहनेका साहस करके उसे विकृत कर देगी.......।।६०४।।

हो प्रबल चाह सुनने की यदि फिर भी तो यहाँ नहीं, प्रियतम!
आगे इस वनकी सीमासे दोनों हम जब पहुँचें, प्रियतम!
तुम याद दिला देना, लज्जा सर्वथा त्याग दूँगी, प्रियतम!
प्राणों में अङ्कित चित्रोंका विवरण कर जाऊँगी, प्रियतम।।६०५।।

फिर भी यदि प्रबल चाह इन्हें सुननेकी ही हो, तो अब यहाँ नहीं, इस वनकी सीमासे हम दोनों जब आगे जा पहुँचें, तब हे मेरे प्रियतम ! तुम मुझे याद दिला देना। मैं लज्जाका सर्वथा त्यागकरके प्राणोंमें अंकित चित्रोंका विवरण कर जाऊँगी.........।।६०५।।

प्राणेश! अभी तो इतना ही सुनकर सन्तोष करो, प्रियतम!
लाली ने सरस रसोई की कर एक घड़ी में ही, प्रियतम!
भोजन कर वेणु बजाता वन साँवरा जा रहा था, प्रियतम!
मैया का प्यार अतुल लेकर लाली थी लौट रही, प्रियतम ।।६०६।।

प्राणरमण नीलसुन्दर ! अभी तो इतना ही सुनकर सन्तोष कर लो – एक घड़ीमें ही लाड़िलीने अत्यन्त सरस रसोईका निर्माण कर दिया।.........भोजन करके वेणु बजाते हुए नीलसुन्दर वनकी ओर जा रहे थे और नन्दरानी मैयाका अतुल प्यार लेकर राधाकिशोरी अपनी सहचरियोंके साथ घरकी ओर लौट रही थी। अस्तु,।।६०६।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपाशक्ति श्रीराधा और भगवच्छायारूपा श्रीमञ्जुश्यामाजी, साथ ही भगवती श्रीराधाकी ही कायव्यूहरूपा ललिता-विशाखादि सभी सखियोंके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान तभी संभव है, जब भगवान्‌की कृपाशक्ति इनका परिचय दे। भगवान् क्या हैं, इसे तो भगवान् ही जानते हैं, अन्य कोई उनका ज्ञान भला कैसे कर सकता है ? भगवान्‌का ज्ञान साधन–साध्य तो है ही नहीं। "भगवान्‌की ह्लादिनीशक्ति श्रीराधा ही निराकार, निर्विकार, मायातीत, सच्चिदानन्दघन, परतत्व, परब्रह्म हैं; वे भगवान् श्रीकृष्ण की भी आत्मा हैं। वे ही परदेवता हैं; वे ही जीवात्मा, जगत् एवं प्रकृति हैं; इतना ही नहीं, है और नहींसे जिसका वर्णन नहीं होता, वह भी वे ही हैं; ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा – सब इन्हींके विभिन्न लीलास्वरूप हैं" – अबतक दादाजी श्रीमहीभानुजी महाराजको यह ज्ञान नहीं हुआ था। दादाजी श्रीमहीभानुजी उच्च कोटिके साधक थे। शाक्तकुलमें जन्म होनेसे शक्तिपरतत्वके विषयमें उनका पर्याप्त प्रवेश था और वैष्णवी साधनाकी भी उच्च स्थिति होनेसे उनमें शाक्त और वैष्णवकुलका भेद भी नहीं रहा था। वे अन्तःकरणसे जगत्‌के व्यवहारक्षेत्रसे सर्वथा उपराम भी हो चुके थे, फिर भी वे अपनी छोरियों– श्रीराधा, मञ्जुश्यामा आदिको अपने वंशकी बालिकाएँ ही मानते थे। वे नन्दतनय श्रीकृष्णको भी नन्दपुत्र ही समझ रहे थे। उन्हें यह अनुभव अबतक नहीं हुआ था कि श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामा – ये तीनों ही सच्चिदानन्द परतत्वसे सर्वथा अभिन्न हैं। यह अनुभव अचानक आज ही प्रथम बार उन्हें श्रीराधा द्वारा उनके अङ्कमें सिर रखकर वन्दना करते समय हुआ। यही कारण है कि आज उनके नेत्र इस तत्वका अनुभवकर झर-झर बरसने लगे हैं।

श्रीमहीभानुदादाजीके सम्मुख राधातापिनी उपनिषद्‌का तत्व प्रत्यक्ष हो रहा है। वे प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि राधा और कृष्ण आनन्दके सागर हैं। वे एक ही हैं, किन्तु लीला करनेके लिये तीन रूप धारणकर श्रीकृष्ण, राधा एवं मञ्जुश्यामा बने हैं। जैसे देह छायासे संयुक्त होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी ही छायारूपा मञ्जुश्यामा है। लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्ण रसेश्वर हैं ओर नित्य विहारिणी, नित्यविहारकी बीजभूता, रस-सागरा, महारासकी अधिष्ठात्रीदेवी भगवती श्रीराधाजी रसेश्वरी हैं। रसेश्वर एवं रसेश्वरीका महामिलन नित्य अखण्ड और अनन्त है।

देवी राधिका कृष्णमयी होनेसे परदेवता हैं। ये सर्वलक्ष्मीस्वरूपा श्रीकृष्णाह्लादमयी हैं । त्रिगुणात्मिका दुर्गा आदि शक्तियाँ इन्हींकी कोटि-कोटि कलाएँ एवं अंश हैं।

देवी राधिका कृष्णमयी होनेसे परदेवता हैं। ये सर्वलक्ष्मीस्वरूपा श्रीकृष्णाह्लादमयी हैं। त्रिगुणात्मिका दुर्गा आदि शक्तियाँ इन्हींकी कोटि-कोटि कलाएँ एवं अंश हैं ।

अबतक दादाजी विधिमार्गके ही उपासक थे। उनका मार्ग ऐश्वर्यमार्ग था। वे शाक्तरूपमें भगवती त्रिपुरा महादेवीके अनन्तानन्त ऐश्वर्यमें डूबे रहते थे। वैष्णवी साधनामें भी उनके इष्टदेव नारायण अनन्त ऐश्वर्यनिकेतन शेषशायी हैं। अबतक उनकी उपलब्धिका लक्ष्य सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य एवं सायुज्य मोक्ष ही रहा है।

किन्तु आज तो उन्हें अपना प्राप्तव्य ही तुच्छ प्रतीत हो रहा है। दादा महीभानुजी वैराग्यकी चरम सीमाको तो अतिक्रमकर समाधिकी अपरोक्ष अनुभूति मोक्षसुखतकका लाभ कभीका कर चुके थे।किन्तु आज तो उन्हें मोक्षसुख एवं समाधिसुख – सब अपनी दोनों पोतियोंके दर्शनसुख-मोहके सम्मुख फीका लग रहा है। इन दोनों पोतियों और इनके सङ्गकी छोरियोंने न जाने क्या किया है, कि उन्हें अपने अहंकी सर्वतोभावेन विस्मृति एवं निवृत्ति हो गयी है। उनकी न जाने क्यों ऐसी बुद्धि हो रही है कि इन छोरियोंके प्रेमधनके सम्मुख, इन्हें सुखी देखनेकी विशुद्ध अभिलाषाके सम्मुख मोक्षसुख, समाधिसुखकी किसी भी अंशमें तुलना नहीं हो सकती है।

आज उन्हें यह प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है कि उनकी इष्ट भगवती त्रिपुराका ऐश्वर्य तो सर्वत्र व्याप्त है ही, वे उसका अनुभव तो अनायास करते ही रहे हैं, किन्तु उन्हीं अनन्तैश्वर्य-निकेतना जगन्माता महादेवीका यह राधारूप माधुर्य आजतक न जाने क्यों उनसे गोपनीय ही रहा। आज भगवती महादेवीकी कृपासे ही वे इस माधुर्यभरी मुग्धताको प्रत्यक्ष निहार रहे हैं –

" ओह ! अनन्तानन्त कोटि ब्रह्माण्डोंको अपने उन्मेषसे उत्पन्न करनेवाली एवं निमेषमें विलय कर देनेवाली महादेवी जगन्माता महान् होकर भी कितनी छोटी बनकर इन छोरियोंके रूपमें अपनी माधुर्यरूपा मुग्धता प्रकट कर रही हैं। अनन्त अखण्ड ज्ञानमयी होकर भी इन बालाओंके रूपोंमें ये अपनी अज्ञताका कैसा प्रकाश कर रही हैं। इस मुग्धतामें एक-से-एक विलक्षण विविध तरङ्गें उठ रही हैं। और ये तरङ्गें मुझ परम वयोवृद्ध महीभानुको परमानन्दसुधासे आप्लावित एवं आप्यायित कर दे रही हैं।"

" ओह ! ये बालिकाएँ नहीं हैं, ये तो मुझे वात्सल्यरसमें डुबो देनेका वरदान देनेवाली कल्पलताएँ हैं। ये श्रीकृष्णरूपी दिव्य कल्पवृक्षसे लिपटने जा रही हैं। इन्हें मैं रोकनेवाला कौन हूँ ?"

" ओह ! यह नन्दतनय भी ठीक बालकोंकी तरह कैसी लीलाएँ करता है। यह रोगी हो गया है। अप्राकृतका यह विचित्र प्राकृतानुकरण कैसा मनोहर है। जिसके सङ्कल्पसे मायानटी अनन्त ब्रह्माण्डोंको कठपुतलीकी तरह नचा रही है, उसकी जन्म लेनेकी , शिशुवत् आचरण करनेकी और अब रोगी होनेकी प्राकृत लीलाको देख-देखकर यदि मुझे भ्रम हो गया कि यह नन्दतनय सर्वेश्वर भगवान् नहीं है, तो मेरा यह भ्रम स्वाभाविक ही तो था। किन्तु आज मेरा दृष्टिभ्रम निवृत्त हो रहा है और मुझे ठीक अनुभव हो रहा है कि सच्ची भक्तवत्सलता एवं प्रेमाधीनताका यही विशुद्ध स्वरूप है। अपने असीम ऐश्वर्यका तनिक भी प्रकाश नहीं करके साधारण बालक बनकर यशोदा एवं नन्दको निहाल कर देना और बालिकाएँ बनकर मेरे बृषभानुपुरको कृतकृत्य कर देना – यह उनका अनन्तानन्त अनुग्रह ही तो है। जिनमें अनन्त ऐश्वर्य है, उन्हींमें अनन्त अनुग्रह तो होना ही चाहिये, भला !"

इस प्रकार सोचते-सोचते श्रीमहीभानुजीके हृदयमें इन युगल पोतियोंके अतिरिक्त कुछ रहा ही नहीं। वे अतिशय भावमय हो गये और उनका हृत्पट संविद्के धरातलसे ऊपर उठकर वात्सल्य- रसोदधिमें लहराने लगा, जो ज्ञानराज्यसे बहुत ही ऊपरकी वस्तु है। "

वस्तुतः ज्ञानयोगसे भगवान्को ब्रह्म समझकर संसारसे मुक्त हुए महीभानुजी अबतक आत्महितकी ही, स्वार्थकी ही साधना कर रहे थे। अष्टाङ्गयोगसे वे समाधिमें स्थित हुए परमात्मज्योतिमें डूबकर स्वयंको ही आनन्दित कर रहे थे। उन्हें भागवती ऐश्वर्यज्ञानयुक्त भगवान्की सामीप्यादि मुक्तियाँ मिल भी चुकी थीं, किन्तु आज उनकी भक्तिधारा ऐसे मोड़पर आ गयी जहाँ उन्हें आत्मविस्मृति हो गयी और अपनी पोतियों – राधा-मञ्जुश्यामाकी ममतामें वे जकड़ गये। उनका अपना कुछ भी नहीं रहा, वे श्रीराधा-सुख-रूप तत्सुखिया हो गये। उनका अपना ज्ञान-सुख, मोक्ष-सुख सबकुछ इन पोतियोंकी विशुद्ध वात्सल्यरसधारामें प्रवाहित होगया। उनकी इष्ट भगवती महादेवी त्रिपुरा भी अब ममतासम्पन्न महीभानुजीको उनकी ममताके अनुरूप ही लीला करके उन्हें दिव्य प्रेमरसका आस्वादन कराने लगीं।।६०२।।



प्रथम भाग समाप्त